कार्ल मार्क्स
पूंजी

कार्ल मार्क्स

पूंजी

Karl Marx

दुनिया के मज़दूरो, एक हो!

राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना

खंड

२

दूसरी पुस्तक। पूंजी के परिचलन की प्रक्रिया।
फ़्रेडरिक एंगेल्स द्वारा सम्पादित

प्रगति प्रकाशन · मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि.
चमेलीवाला मार्केट, एम. आई. रोड, जयपुर-302001

अनुवादक : डॉ० रामविलास शर्मा

सम्पादक : नरेश वेदी

К. Маркс

КАПИТАЛ

т. II

на языке хинди

K. Marx

CAPITAL

Vol. II

in Hindi

पहला संस्करण : १९७९

दूसरा संस्करण : १९८७

प्रकाशक की ओर से

कार्ल मार्क्स की कालजयी कृति 'पूंजी' के दूसरे खंड का हिंदी अनुवाद पाठकों के हाथों में रखा जा रहा है। पहले खंड का हिंदी अनुवाद प्रगति प्रकाशन, मास्को, द्वारा १६६५ में प्रकाशित किया गया था, १६७५ में उसका पुनर्मुद्रण हुआ था और १६८७ में उसे कुछ संशोधनों के साथ पुनःप्रकाशित किया गया।

'पूंजी' के दूसरे खंड को कार्ल मार्क्स के देहावसान के बाद फ़ेडरिक एंगेल्स ने प्रकाशनार्थ तैयार किया था और उसका अंतिम संपादन किया था। उसका पहला जर्मन संस्करण १८८५ में प्रकाशित हुआ था। १८६३ में प्रकाशित दूसरा जर्मन संस्करण भी एंगेल्स ने ही प्रकाशनार्थ तैयार किया था।

'पूंजी' के दूसरे खंड का यह हिंदी अनुवाद १८६३ के जर्मन संस्करण पर आधारित अंग्रेज़ी संस्करण (विदेशी भाषा प्रकाशनगृह, मास्को, १६५६) से किया गया है। अंग्रेज़ी संस्करण को एंगेल्स द्वारा संपादित मूल जर्मन पांडुलिपि से सावधानीपूर्वक मिला लिया गया था, जो सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति के मार्क्सवाद-लेनिनवाद संस्थान में सुरक्षित रखी हुई है।

पुस्तक में 'पूंजी', खंड २, के पहले तथा दूसरे जर्मन संस्करणों के लिए एंगेल्स द्वारा लिखित भूमिकाएं भी दी गयी हैं।

'पूंजी' के पहले खंड के हिंदी संस्करण से संबद्ध सभी उद्धरण प्रगति प्रकाशन, मास्को, द्वारा प्रकाशित कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', खंड १ से लिये गये हैं।

विषय-सूची

दूसरी पुस्तक
पूंजी के परिचलन की प्रक्रिया

भाग १
पूंजी के रूपान्तरण और उनके परिपथ

भाग २
पूंजी का आवर्त

भाग ३
कुल सामाजिक पूंजी का पुनरुत्पादन तथा परिचलन

भूमिका

'पूंजी' के दूसरे खंड को प्रकाशन के लिए उपयुक्त रूप देना आसान काम नहीं था। इस बात का ध्यान रखना था कि पुस्तक आन्तरिक रूप से सम्बद्ध हो और जहां तक हो सके, अपने में पूर्ण हो। साथ ही इस बात का ध्यान भी रखना था कि वह केवल उसके रचयिता की कृति हो, उसके सम्पादक की नहीं। जो पाण्डुलिपियां सुलभ थीं और जिन्हें प्रेस के लिए तैयार किया जा रहा था, वे बहुत सी थीं और अधिकतर अपूर्ण थीं। इससे उपर्युक्त काम की कठिनाई और बढ़ गयी। हद से हद उन्होंने केवल एक पाण्डुलिपि (४) को पूरी तरह संशोधित और प्रेस के लिए तैयार किया था। लेकिन इसके बाद में संशोधन के कारण इसका अधिकतर भाग पुराना पड़ चुका था। भाषा की दृष्टि से अधिकांश सामग्री को अन्तिम रूप से परिष्कृत नहीं किया गया था, यद्यपि विषय-वस्तु की दृष्टि से उसका बहुत सा हिस्सा पूरी तरह तैयार कर लिया गया था। भाषा ऐसी ही थी, जैसी मार्क्स सामग्री संकलन करते समय इस्तेमाल करते थे: शैली में लापरवाही, बोलचाल के रूप बहुत ज्यादा, अक्सर रूक्ष, हास्यपूर्ण शब्दावली और मुहावरे, जहां-तहां अंग्रेज़ी और फ़ांसीसी भाषाओं के पारिभाषिक शब्द, और कभी-कभी तो पूरे वाक्य ही नहीं, पन्ने के पन्ने अंग्रेज़ी में लिखे हुए। लेखक के दिमाग़ में जैसे-जैसे विचार उठते थे और रूप ग्रहण करते थे, वैसे ही वह उन्हें लिखते जाते थे। कहीं तो वह पूरी बात कहते हैं और कहीं सिर्फ़ इशारे से काम लेते हैं, भले ही तर्क के विषय का महत्व दोनों जगह बराबर हो। उदाहरण के लिए, तथ्य सामग्री इकट्ठा तो की गयी है, लेकिन बहुत कम ही व्यवस्थित की गयी है, उसे परिष्कृत करने का काम और भी कम हुआ है। अध्याय समाप्त करने पर लेखक की अगला शुरू करने की जल्दी में अक्सर अन्त में कुछ असम्बद्ध वाक्य ही हुआ करते थे, जो यह दिखाते थे कि यहां अपूर्ण छोड़ी सामग्री आगे और विकसित की जानी है। और आख़िरी कठिनाई उस प्रसिद्ध लिखावट की थी, जिसे कभी-कभी लेखक ख़ुद भी नहीं पढ़ पाते थे।

मैंने अपने को जहां तक बन पड़े, इन पाण्डुलिपियों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने तक ही सीमित रखा है। मैंने उनकी शैली में केवल उन स्थलों पर तबदीली की है, जहां मार्क्स स्वयं ऐसी तबदीली करते। जहां बहुत ही ज़रूरत थी, और साथ ही जहां असंदिग्ध रूप से उनका आशय भी स्पष्ट था, वहीं पर व्याख्यात्मक वाक्य, संयोजनात्मक शब्द मैंने जोड़े हैं। जिन वाक्यों का आशय समझने में थोड़ी भी दुविधा हो सकती थी, उन्हें मैंने शब्दशः नक़ल कर देना उचित समझा। जिस सामग्री को मैंने नया रूप दिया है या अपनी ओर से जोड़ा

है, वह छपे हुए दस पन्नों से ज्यादा न होगी और उसका सम्बन्ध केवल प्रस्तुति से ही है।

दूसरे खंड के लिए मार्क्स ने जो पाण्डुलिपियां छोड़ी हैं, उनकी सूची से ही यह साबित हो जायेगा कि अपनी अर्थशास्त्र सम्बन्धी महान खोजों को प्रकाशित करने से पहले उन्होंने किस बेजोड़ ईमानदारी और कठोर आत्मालोचना से काम लेते हुए उन्हें तैयार करने का यत्न किया था। अपनी इस आत्मालोचना के कारण वह विषय के अपने प्रस्तुतीकरण – क्या विषय-वस्तु और क्या रूप – को कदाचित ही अपने निरन्तर अध्ययन के फलस्वरूप सत्वर व्यापक होते विचार-क्षितिज के अनुरूप कर पाते थे। उपर्युक्त सामग्री निम्नलिखित है:

सबसे पहले है *Zur Kritik der politischen Oekonomie** नामक पाण्डुलिपि। यह तेईस कापियों में है, जिनमें कुल मिलाकर क्वार्टो आकार के १,४७२ पृष्ठ हैं, जिन्हें अगस्त, १८६१ से जून, १८६३ के बीच लिखा गया था। यह उसी कृति का सिलसिला है, जिसका पहला भाग इसी शीर्षक से १८५९ में बर्लिन से प्रकाशित हुआ था। 'पूंजी' के प्रथम खंड में जिन विषयों की छानबीन की गयी है, उन्हीं का विवेचन पृष्ठ १ से २२० तक (कापी १ से ५ तक) और फिर पृष्ठ १,१५९ से १,४७२ तक (कापी १९ से २३ तक) किया गया है। द्रव्य [मुद्रा] पूंजी का रूप कैसे धारण करता है, यहां से शुरू करके अन्त तक के विषयों का विवेचन यहां किया गया है और पुस्तक का यह पहला मसौदा है, जो सुलभ है। तीसरे खंड के लिए पाण्डुलिपि में आगे चलकर जिन विषयों की विस्तार से चर्चा की गई, उनका विवेचन पृष्ठ ९७३ से १,१५८ तक (कापी १६ से १८ तक) किया गया है। ये विषय हैं: पूंजी और लाभ, लाभ की दर, व्यापारी पूंजी और द्रव्य पूंजी। दूसरे खंड में जिन विषयों का विवेचन किया गया है और बहुत से ऐसे विषय भी, जिनका विवेचन आगे चलकर तीसरे खंड में किया गया, उन्हें अभी अलग-अलग क्रमबद्ध नहीं किया गया है। उनकी चलते-चलाते, ठीक-ठीक कहें, तो पृष्ठ २२० से ९७२ तक (कापी ६ से १५ तक) के अंश में, जो पाण्डुलिपि का मुख्य अंग है, जिसका शीर्षक है: 'बेशी मूल्य के सिद्धान्त', चर्चा कर दी गयी है। इस हिस्से में राजनीतिक अर्थशास्त्र के सारतत्व, बेशी मूल्य के सिद्धान्त, का विस्तृत आलोचनात्मक इतिहास दिया गया है और साथ ही साथ पूर्ववर्ती लेखकों के साथ वादविवाद के दौरान यहां वे अधिकांश बातें कही गई हैं, जिनकी छानबीन अलग-अलग और आन्तरिक तर्कसंगति का ध्यान रखते हुए मार्क्स ने बाद में, दूसरे और तीसरे खंडों की पाण्डुलिपि में की थी। दूसरे और तीसरे खंडों में जो बहुत से अंश आ चुके हैं, उन्हें निकाल देने के बाद, मेरा 'पूंजी' के चौथे खंड के रूप में पाण्डुलिपि का यह आलोचनात्मक हिस्सा प्रकाशित करने का विचार है।** अत्यंत मूल्यवान होने पर भी इस पाण्डुलिपि का दूसरे खंड के वर्तमान संस्करण के लिए बहुत ही कम उपयोग किया जा सका।

---

*इसे आगे *Zur Kritik* कहा गया है। – सं०

**मृत्यु के कारण एंगेल्स 'बेशी मूल्य के सिद्धान्त' को 'पूंजी' के चौथे खंड के रूप में प्रकाशित नहीं कर पाये। १९०५-१० में काउत्स्की ने इस पुस्तक का एक जर्मन संस्करण प्रकाशित किया था, जिसमें मूल पाठ से अनेक मनमाने विचलन, क्रम परिवर्तन और छोड़े हुए अंश थे। रूसी भाषा में 'बेशी मूल्य के सिद्धांत' का पहला प्रामाणिक संस्करण १९५४-६१ में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति के मार्क्सवाद-लेनिनवाद संस्थान द्वारा प्रकाशित किया गया था। अनुवाद में कुछ आवश्यक सुधारों और पुस्तक की सहायक सामग्री में परिवर्धनों

कालक्रमानुसार दूसरी पाण्डुलिपि तीसरे खंड की है। कम से कम उसका अधिकतर भाग १८६४ और १८६५ में लिखा गया था। इस पाण्डुलिपि में मूल बातों का विवेचन पूरा कर लेने के बाद ही मार्क्स ने पहले खंड को विस्तार देना शुरू किया था, जो १८६७ में प्रकाशित हुआ। इस समय इस तीसरे खंड की पाण्डुलिपि को मैं प्रकाशन के लिए तैयार कर रहा हूं।

इसके बादवाले – पहले खंड के प्रकाशन के बाद के – समय की दूसरे खंड की फ़ोलिओ आकार की चार पाण्डुलिपियां हैं, जिन्हें १ से ४ तक की संख्या स्वयं मार्क्स ने दी है। इनमें से पाण्डुलिपि १ (१५० पृष्ठ) सम्भवतः १८६५ या १८६७ में तैयार की गयी थी और दूसरे खंड में जो सामग्री अब व्यवस्थित की गयी है, उसे इसमें अलग से, किन्तु बहुत कुछ अपूर्ण रूप से पहली बार विस्तार दिया गया था। इससे भी किसी सामग्री का उपयोग नहीं किया जा सका। पाण्डुलिपि ३ में बहुत से उद्धरण इकट्ठे किये गये हैं; मार्क्स जिन कापियों में सामग्री संकलित करते थे, उनके संदर्भ भी यहां दिये गये हैं। इनमें अधिकांश का सम्बन्ध दूसरे खंड के पहले भाग से है। इसके अलावा इस पाण्डुलिपि में कुछ विशेष बातों को विस्तार दिया गया है। ख़ास तौर से स्थायी और प्रचल पूंजी तथा लाभ के उद्गम के बारे में ऐडम स्मिथ की धारणाओं की आलोचना की गयी है। इसके सिवा यहां बेशी मूल्य की दर और लाभ की दर के सम्बन्ध की व्याख्या की गई है, जो तीसरे खंड का विषय है। संदर्भों से नयी सामग्री प्रायः कुछ नहीं मिली और दूसरे तथा तीसरे खंडों के लिए जो विस्तरण किये गये थे, वे भी मार्क्स द्वारा बाद में किये संशोधनों के कारण बेकार हो गये थे और उनको भी अधिकांशतः छोड़ना पड़ा।

पाण्डुलिपि ४ में दूसरे खंड के पहले भाग और दूसरे भाग के प्रारम्भिक अध्यायों की सामग्री को विस्तार दिया गया है। यह सामग्री प्रेस भेजने के लिए तैयार कर दी गयी थी और जहां वह उपयुक्त थी, उसका उपयोग किया गया है। यद्यपि यह पता चला कि इसकी रचना पाण्डुलिपि २ से पहले हुई थी, फिर भी रूप के लिहाज़ से यह कहीं अधिक पूर्ण थी, इस कारण वर्तमान पुस्तक के तदनुरूप अंशों में उसका उपयोग लाभकारी ढंग से हो सका है। आवश्यकता केवल इस बात की थी कि पाण्डुलिपि २ से कुछ बातें लेकर यहां जोड़ दी जायें। इस पाण्डुलिपि में ही दूसरे खंड का किसी हद तक पूर्ण विस्तार दिया हुआ रूप है। इसका रचना काल १८७० है। अन्तिम संपादन की टिप्पणियों में, जिनका उल्लेख मैं अविलंब करूंगा, स्पष्ट लिखा है, "दूसरे परिवर्धित रूप को ही आधार बनाया जाये।"

१८७० के बाद पुनः एक अन्तराल आया। इसका मुख्य कारण मार्क्स की अस्वस्थता थी। इस समय का उपयोग मार्क्स ने अपनी पुरानी आदत के अनुसार किया, उन्होंने कृषि अर्थशास्त्र

के साथ यह मार्क्स तथा एंगेल्स 'संकलित रचनाएं' (मास्को, १९६२-६४) के दूसरे रूसी संस्करण का २६ वां खंड (तीन भागों में) था। १९५६-६२ में १९५४-६१ के रूसी संस्करण के नमूने पर जर्मन जनवादी जनतंत्र में इसका जर्मन संस्करण प्रकाशित किया गया। आजकल जर्मन जनवादी जनतंत्र में 'बेशी मूल्य के सिद्धांत' के एक नये संस्करण को का० मार्क्स, फ़े० एंगेल्स, 'संकलित रचनाएं' के २६ वें खंड के रूप में प्रकाशित करने के सिलसिले में काम हो रहा है। प्रगति प्रकाशन, मास्को द्वारा पुस्तक के पहले भाग का अंग्रेज़ी संस्करण प्रकाशित किया जा चुका है और दूसरे तथा तीसरे भागों को प्रकाशनार्थ तैयार किया जा रहा है। – सं०

और ग्रामीण सम्बन्धों – अमरीकी, और ख़ास तौर से रूसी ग्रामीण सम्बन्धों – का अध्ययन किया।* उन्होंने मुद्रा बाज़ार और बैंकिंग का, फिर भूविज्ञान और शरीरक्रियाविज्ञान जैसे प्राकृतिक विज्ञानों का भी अध्ययन किया। इस दौर की सामग्री संकलन की उनकी ढेरों कापियों में गणित सम्बन्धी स्वतंत्र अध्ययन कार्य का भी महत्वपूर्ण स्थान है। १८७७ के आरम्भ में उनकी हालत इतनी सुधर गयी थी कि वह अपना मुख्य काम फिर जारी कर सकें। मार्च, १८७७ का अन्त उपर्युक्त चार पाण्डुलिपियों की उनकी टिप्पणियों और संदर्भों को लिखने का समय है, जिन्हें दूसरे खंड की सामग्री को नये सिरे से विस्तार देने के लिए आधार बनना था। इस काम की शुरूआत पाण्डुलिपि ५ से होती है, जिसमें फ़ोलिओ आकार के ५६ पृष्ठ हैं। यह शुरू के चार अध्यायों की सामग्री है, किन्तु उसे अभी बहुत कम संवारा गया है। मुख्य बातें पादटिप्पणियों में दे दी गयी हैं। सामग्री इकट्ठा तो कर दी गयी है, पर उसकी छानबीन नहीं की गयी। फिर भी यही पहले भाग के सबसे महत्वपूर्ण अंश का पूर्णतम और अन्तिम प्रस्तुतीकरण है।

इस सामग्री से प्रेस कापी तैयार करने का पहला प्रयत्न (अक्तूबर, १८७७ के बाद और जुलाई, १८७८ से पहले) पाण्डुलिपि ६ में किया गया, जिसमें क्वार्टो आकार के केवल सत्रह पन्ने थे और जिसमें पहले अध्याय का अधिकांश आ गया था। इसके बाद दूसरा और आख़िरी प्रयत्न पाण्डुलिपि ७ में किया गया, जिसकी लेखन तिथि है २ जुलाई, १८७८, और जिसमें फ़ोलिओ आकार के कुल सात पन्ने ही हैं।

लगता है कि इन दिनों मार्क्स ने यह समझ लिया था कि अगर उनके स्वास्थ्य में आमूल परिवर्तन ही न आ गया, तो दूसरे और तीसरे खंडों को विस्तार देने का काम वह इस ढंग से पूरा न कर सकेंगे कि जिससे उनके मन को संतोष हो सके। दरअसल पांचवीं से आठवीं पाण्डुलिपियों में इस बात के चिह्न बहुत अधिक मिलते हैं कि निराशाजनक बीमारी के ख़िलाफ़ तीव्र संघर्ष चल रहा है। पहले भाग के सबसे कठिन हिस्से को पाण्डुलिपि ५ में नये सिरे से तैयार किया गया था। पहले भाग के बाक़ी हिस्से में और सत्रहवें अध्याय को छोड़कर समूचे दूसरे भाग में कोई बड़ी सैद्धान्तिक कठिनाइयां दरपेश नहीं थीं। लेकिन तीसरे हिस्से को, जिसका सम्बन्ध सामाजिक पूंजी के पुनरुत्पादन और परिचलन से था, उनके विचार में संशोधन की बहुत ज़रूरत थी, क्योंकि पाण्डुलिपि २ में पहले तो पुनरुत्पादन का विवेचन द्रव्य परिचलन को ध्यान में रखे बिना किया गया था, जो इस पुनरुत्पादन को सम्भव बनाता है, और बाद में इसी सवाल का द्रव्य परिचलन को ध्यान में रखते हुए विवेचन फिर किया गया था। इसे दूर करना ज़रूरी था और इस भाग को पूरी तरह फिर से यों लिखना था कि वह लेखक के विस्तृततर विचार-क्षितिज के अनुरूप हो। इस प्रकार पाण्डुलिपि ८ का जन्म हुआ, जिसमें क्वार्टो आकार के केवल सत्तर पन्ने थे। इस पाण्डुलिपि की तुलना छपे हुए तीसरे भाग से करें और केवल वे हिस्से छोड़ दें, जो पाण्डुलिपि २ से यहां शामिल किये गये हैं, तो यह पूरी तरह स्पष्ट हो जायेगा कि उन सत्तर पन्नों में मार्क्स कितनी विशाल सामग्री समेट सके थे।

---

*सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति के मार्क्सवाद-लेनिनवाद संस्थान ने मार्क्स द्वारा रूसी स्रोतों से लिये उद्धरणों को अंशतः प्रकाशित किया है (देखिये 'आर्ख़ीव मार्क्सा इ एंगेल्सा' [मार्क्स-एंगेल्स अभिलेख], खंड ११, मास्को, १९४८; खंड १२, मास्को, १९५२ तथा खंड १३, मास्को, १९५५)।–सं०

यह पाण्डुलिपि भी विषय का प्राथमिक विवेचन ही प्रस्तुत करती है, क्योंकि उसका मुख्य उद्देश्य उस दृष्टिकोण को सुनिश्चित तथा विकसित करना था, जिसे पाण्डुलिपि २ की तुलना में बाद में प्राप्त किया गया था। ऐसा करते हुए उन बातों को छोड़ देना था, जिनके बारे में नया कुछ कहने को नहीं था। दूसरे भाग के ग्रध्याय सत्रह के एक महत्वपूर्ण ग्रंश को, जो तीसरे भाग के साथ न्यूनाधिक संबद्ध है, पुनः विस्तार देते हुए तैयार किया गया था। यहां तर्कसंगति ग्रक्सर टूट जाती है, कई जगह विषय विवेचन में बीच की ग्रावश्यक कड़ियां ग़ायब हैं ग्रौर सारा विवेचन, ख़ास तौर से निष्कर्षवाला हिस्सा, कहीं-कहीं सातत्यहीन ग्रौर ग्रपूर्ण है। फिर भी इस विषय पर मार्क्स जो कुछ भी कहना चाहते थे, उसे जैसे-तैसे कह दिया गया है।

दूसरे खंड के लिए यही सब सामग्री थी, जिसका मुझे "कुछ बनाना था", जैसा कि मृत्यु से कुछ दिन पहले मार्क्स ने ग्रपनी पुत्री एलियानोर से कहा था। मैंने इस कार्यभार को इन शब्दों के बहुत संकुचित ग्रर्थ में ही ग्रहण किया है। जहां तक ज़रा भी गुंजाइश थी, मैंने ग्रपने काम को एक ही विवेचन के जितने भी भिन्न रूप सुलभ थे, उन्हीं में से एक का चयन करने तक ही सीमित रखा है। मैंने ग्रपने काम को सदा मार्क्स द्वारा सबसे ग्राख़िर में सम्पादित ग्रौर सुलभ पाण्डुलिपि को ग्राधार बनाकर ग्रौर उससे पहले की पाण्डुलिपियों से तुलना करते हुए ही किया है। केवल पहले ग्रौर तीसरे भागों में ऐसी वास्तविक कठिनाइयां सामने ग्रायीं, जो मात्र तकनीकी नहीं थीं, ग्रौर इनकी संख्या सचमुच काफ़ी थी। मैंने प्रयत्न किया है कि मार्क्स की चिन्तन पद्धति को ध्यान में रखते हुए उसी के ग्रनुरूप इन्हें हल करूं।

मूलपाठ में जहां भी तथ्यों की पुष्टि के लिए उद्धरण दिये गये हैं, या जब मूलकृति मामले की पूरी तरह से छानबीन करना चाहनेवाले हर किसी को उपलब्ध है, जैसे ऐडम स्मिथ से लिये ग्रंशों, मैंने उनका ग्रनुवाद कर दिया है। ऐसा करना सिर्फ़ दसवें ग्रध्याय में ही ग्रसम्भव था, क्योंकि वहां स्वयं ग्रंग्रेज़ी मूलपाठ की ही ग्रालोचना की गयी है। पहले खंड से जो उद्धरण दिये गये हैं, उनकी पृष्ठ संख्या उसके दूसरे संस्करण के ग्रनुसार है, जो मार्क्स के जीवन काल में निकलनेवाला उसका ग्रन्तिम संस्करण था।

तीसरे खंड के लिए – *Zur Kritik* के पाण्डुलिपि रूप में पहले निरूपण के ग्रलावा, पाण्डुलिपि ३ के उपरिवर्णित भागों के ग्रलावा ग्रौर उद्धरण लिखने की विभिन्न कापियों में बिखरी कुछ विरल संक्षिप्त टिप्पणियों के ग्रलावा – सिर्फ़ निम्नलिखित सामग्री ही उपलब्ध है: १८६४-६५ की फ़ोलिग्रो ग्राकार की पाण्डुलिपि, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, जिसे लगभग उतना ही तैयार किया जा चुका है कि जितना दूसरे खंड की पाण्डु-लिपि २ को। इसके ग्रलावा १८७५ की एक नोटबुक – लाभ की दर से बेशी मूल्य की दर का सम्बन्ध – है, जिसमें विवेचन गणितीय पद्धति से (समीकरणों के रूप में) किया गया है। इस खंड को प्रकाशन के लिए तैयार करने का काम तेज़ी से चल रहा है। ग्रभी जहां तक मैं ग्रन्दाज़ लगा पाया हूं, बहुत थोड़े से, किन्तु बहुत महत्वपूर्ण ग्रंशों के ग्रलावा यहां मुख्यतः तकनीकी कठिनाइयां ही सामने ग्रायेंगी।

मैं समझता हूं कि यह उस ग्रारोप का खंडन करने का उपयुक्त ग्रवसर है, जो मार्क्स पर पहले जहां-तहां कानाफूसी के ज़रिये लगाया जाता था, लेकिन इधर उनकी मृत्यु के बाद जिसे जर्मनी के राजकीय ग्रौर पीठस्थ समाजवादियों ग्रौर उनके लगुग्रों-भगुग्रों ने स्थापित सत्य

घोषित कर दिया है। यह दावा किया जाता है कि मार्क्स ने रॉडबेर्टस के कृतित्व की साहित्यिक चोरी की है। इस सम्बन्ध में जो बातें तुरन्त कहना आवश्यक थीं, मैं पहले ही अन्यत्र[1] कह चुका हूं, लेकिन अब से पहले मैं निर्णायक प्रमाण नहीं जुटा पाया था।

जहां तक मुझे मालूम है, यह आरोप सबसे पहले मेयेर ने अपनी पुस्तक *Emancipationskampf des vierten Standes*, पृष्ठ ४३ में लगाया था। उन्होंने लिखा था, "यह साबित किया जा सकता है कि मार्क्स ने अपनी आलोचना का अधिकांश इन प्रकाशनों से लिया है", आशय है चौथे दशक के उत्तरार्ध में प्रकाशित रॉदबेर्टस की रचनाओं से। जब तक और सबूत न दिया जाये, मुझे यही मानना होगा कि इस दावे का "समस्त प्रमाण" इसके सिवा और कुछ नहीं थी कि रॉदबेर्टस ने श्री मेयेर को आश्वासन दिया था कि बात ऐसी ही है।

१८७९ में रॉदबेर्टस ख़ुद मैदान में आते हैं और अपनी पुस्तक *Zur Erkenntnis unsrer staatswirtschaftlichen Zustände* (१८४२) के बारे में त्सेलर को लिखते हैं (*Zeitschrift für die gesamte Staatswissenschaft*, त्यूबिंगन, १८७९, पृष्ठ २१९)*, "तुम देखोगे कि मार्क्स ने बड़ी ख़ूबी से इसे" (यानी पुस्तक में निरूपित विचार को) "इस्तेमाल किया है ... लेकिन इसके लिए मुझे श्रेय नहीं दिया है।" रॉडबेर्टस की कृतियों का मृत्योपरांत प्रकाशन करनेवाले प्रकाशक त० कोत्सक ने बिना किसी तक़ल्लुफ़ के वही आक्षेप दोहरा दिया है (*Das Kapital* von Rodbertus. बर्लिन, १८८४, भूमिका, पृष्ठ १५)।

और आख़िर में रू० मेयेर द्वारा १८८१ में प्रकाशित *Briefen und sozialpolitischen Aufsätzen von Dr. Rodbertus-Jagagetzow* नामक पुस्तक में रॉडबेर्टस ने सीधे मुंहफट बात कह डाली है, "आज मैं देखता हूं कि मुझे शैफ़्ले और मार्क्स ने मेरा नाम लिये बिना **लूट लिया है**" (पत्र ६०, पृष्ठ १३४)। दूसरी जगह रॉडबेर्टस का दावा और भी निश्चित रूप ग्रहण कर लेता है, "अपने तीसरे सामाजिक पत्र में मैंने **वस्तुतः मार्क्स जैसे तरीक़े से ही**, किन्तु अधिक स्पष्टता से और संक्षेप में दिखाया है कि पूंजीपति के **बेशी मूल्य का स्रोत** क्या है" (पत्र ४८, पृष्ठ १११)।

साहित्यिक "लूट" के इन आरोपों के बारे में मार्क्स ने कभी कुछ नहीं सुना था। *Emancipationskampf* की उनकी प्रति में वे ही पन्ने खोले गये थे, जिनका सम्बन्ध इण्टरनेशनल से था। बाक़ी पन्ने तब तक वैसे ही पड़े रहे कि जब मार्क्स की मृत्यु के बाद मैंने स्वयं उन्हें नहीं खोला। त्यूबिंगन से प्रकाशित *Zeitschrift* उन्होंने कभी देखी नहीं। रू० मेयेर के नाम *Briefe, etc.* भी उनकी जानकारी में नहीं आये और १८८४ में डा० मेयेर ने स्वयं कृपा करके जब तक मेरा ध्यान आकर्षित नहीं किया, तब तक "लूट" सम्बन्धी वाक्य की जानकारी मुझे भी नहीं थी। किन्तु पत्र ४८ से मार्क्स परिचित थे। डा० मेयेर ने मेहरबानी करके मार्क्स की सबसे छोटी बेटी को मूल प्रति भेंट कर दी थी। जब उनकी आलोचना के गुप्त स्रोत को

---

[1] *Das Elend der Philosophie. Antwort auf Proudhon's Philosophie des Elends* von Karl Marx. Deutsch von E. Bernstein und K. Kautsky. Stuttgart, 1885 की भूमिका में।

*रॉडबेर्टस की १८७५ में मृत्यु हो गयी। एंगेल्स द्वारा उल्लिखित त्सेलर को उनका पत्र १८७९ में प्रकाशित हुआ था।—सं०

Das Kapital.

Kritik der politischen Oekonomie.

Von

Karl Marx.

Zweiter Band.

Buch II: Der Cirkulationsprocess des Kapitals.

Zweite Auflage.

Herausgegeben von **Friedrich Engels.**

Hamburg
Verlag von Otto Meissner.
1893.

रॉदबेर्टस में पाये जाने के बारे में रहस्यमय कानाफूसी की कुछ भनक मार्क्स के कानों तक पहुंची, तब उन्होंने वह पत्र यह कहते हुए मुझे दिखाया कि ख़ुद रॉडबेर्टस जिस बात का दावा करते हैं, आखिर उसकी प्रामाणिक सूचना यहां उन्हें मिल गयी है। अगर रॉडबेर्टस का दावा इतना ही है, तो उन्हें, यानी मार्क्स को, कोई आपत्ति नहीं। उनकी तरफ़ से रॉडबेर्टस मजे में यह सोचकर ख़ुश होते रहें कि उनका बयान अधिक स्पष्ट और संक्षिप्त है। दरअसल मार्क्स के विचार में रॉडबेर्टस के इस पत्र से मामला ख़त्म हो गया था।

उनका ऐसा सोचना और भी स्वाभाविक था, क्योंकि मुझे निश्चित रूप से मालूम है कि १८५६ के आसपास तक रॉडबेर्टस की साहित्यिक गतिविधि से मार्क्स ज़रा भी परिचित नहीं थे, जब उन्होंने अपनी अर्थशास्त्र की आलोचना की मूल रूपरेखा ही नहीं, वरन इसके महत्वपूर्णतम ब्यौरे भी तैयार कर लिये थे। मार्क्स ने अपना अर्थशास्त्र सम्बन्धी अध्ययन १८४३ में पेरिस में आरम्भ किया था और शुरूआत उन्होंने महान अंग्रेज और फ़्रांसीसी अर्थशास्त्रियों से की थी। जर्मन अर्थशास्त्रियों में उन्होंने केवल राउ और लिस्ट को पढ़ा था, और उनके अलावा दूसरों को पढ़ने की उन्होंने ज़रूरत न समझी। रॉडबेर्टस के अस्तित्व के बारे में १८४८ तक न मार्क्स ने और न मैंने ही कुछ सुना था, जब बर्लिन के डेपुटी की हैसियत से उनके भाषणों और मंत्री की हैसियत से उनके कामों की आलोचना *Neue Rheinische Zeitung** में हमें करनी पड़ी थी। हम दोनों इतने अजानकार थे कि हमें राइन के डेपुटियों से पूछना पड़ा कि यह रॉडबेर्टस कौन है, जो इतना अकस्मात मंत्री बन बैठा है। किन्तु रॉडबेर्टस के अर्थशास्त्रीय लेखन के बारे में ये डेपुटी भी हमें कुछ नहीं बता पाये। इधर मार्क्स रॉडबेर्टस की सहायता के बिना भी उस समय तक इतना ही नहीं कि "पूंजीपति का बेशी मूल्य" कहां पैदा होता है, वरन यह भी जान गये थे कि कैसे पैदा होता है। यह १८४७ में प्रकाशित उनकी पुस्तक *Poverty of Philosophy*** और उसी साल ब्रसेल्स में उजरती श्रम तथा पूंजी पर दिये उनके व्याख्यानों से भी, जो १८४९ में *Neue Rheinische Zeitung* के अंक २६४-२६९ में प्रकाशित हुए थे,*** सिद्ध हो जाता है। केवल १८५९ में ही लासाल के माध्यम से मार्क्स को पता चला कि रॉडबेर्टस नाम का भी कोई अर्थशास्त्री है और तब ब्रिटिश म्यूज़ियम में जाकर उन्होंने उनका 'तीसरा सामाजिक पत्र' देखा।

वास्तविक परिस्थितियां ये थीं। अब देखना चाहिए कि वह विषय-वस्तु कौन सी है, जिसे रॉडबेर्टस के यहां से "लूटने" का मार्क्स पर आरोप लगाया गया है। रॉडबेर्टस का कथन है, "अपने तीसरे सामाजिक पत्र में मैंने वस्तुतः मार्क्स जैसे तरीक़े से ही, किन्तु अधिक स्पष्टता से और संक्षेप में, दिखाया है कि पूंजीपति के बेशी मूल्य का स्रोत क्या है।" तो बात की जड़ यही है – बेशी मूल्य का सिद्धान्त। और सचमुच यह बताना मुश्किल होगा कि मार्क्स के यहां ऐसी दूसरी कौन सी चीज़ थी कि जिसे रॉडबेर्टस अपनी मिल्कियत कहते। इस तरह

---

* *Neue Rheinische Zeitung. Organ der Demokratie* – १ जून, १८४८ से १९ मई, १८४९ तक कोलोन से मार्क्स के संपादकत्व में प्रकाशित रोज़ाना अख़बार। फ़्रेडरिक एंगेल्स, विल्हेल्म वोल्फ़, गेओर्ग वीर्थ, फ़र्दीनंद वोल्फ़, एर्न्स्त द्रोंके, फ़र्दीनंद फ़ैलिगराथ तथा हेनरिक बर्गर्स इसके संपादकों में थे। इस अख़बार का प्रकाशन प्रशाई सरकार द्वारा मार्क्स तथा अन्यों पर दमन के कारण बंद कर दिया गया। – सं०

** K. Marx, *The Poverty of Philosophy*, Moscow, 1962. – सं०

*** का० मार्क्स, 'उजरती श्रम और पूंजी', मास्को, प्रगति प्रकाशन, १९६४। – सं०

रॉड्बेर्टस यहां घोषित करते हैं कि बेशी मूल्य के सिद्धान्त के असली जन्मदाता वह हैं और उसे मार्क्स ने उनसे लूट लिया है।

हां, तो तीसरे सामाजिक पत्र में बेशी मूल्य के उद्भव के बारे में लिखा गया क्या है? केवल यह कि "किराया" – यह उन्हीं का शब्द है, जिसमें किराया ज़मीन और लाभ को नत्थी कर दिया गया है – पण्य के मूल्य में "मूल्य जोड़ने" से नहीं, बल्कि "मज़दूरी में मूल्य की कटौती से उत्पन्न होता है। दूसरे शब्दों में, चूंकि मज़दूरी उत्पाद के मूल्य का एक हिस्सा मात्र ही होती है," और यदि श्रम काफ़ी उत्पादक हो, तो यह आवश्यक नहीं है कि मज़दूरी "श्रम के उत्पादन के नैसर्गिक विनिमय मूल्य के बराबर हो, जिससे कि पूंजी के प्रतिस्थापन के लिए (!) और किराये के लिए इस मूल्य का काफ़ी हिस्सा बच जाये।" * लेकिन हमें यह नहीं बताया जाता कि उत्पाद का वह "नैसर्गिक विनिमय मूल्य" क्या है, जो "पूंजी के प्रतिस्थापन" के लिए कुछ नहीं छोड़ता, फलतः कच्चे माल और औज़ारों के छीजन के प्रतिस्थापन के लिए कुछ नहीं छोड़ता।

यह हमारा सौभाग्य है कि हम बता सकते हैं कि रॉड्बेर्टस की इस महान खोज का मार्क्स के मन पर क्या प्रभाव पड़ा। *Zur Kritik* पाण्डुलिपि, कापी १०, पृष्ठ ४४५ और आगे के पृष्ठों में लिखा है: "विषयान्तर। श्री रॉड्बेर्टस। किराया ज़मीन का नया सिद्धान्त।" मार्क्स सिर्फ़ इसी दृष्टिकोण से वहां तीसरा सामाजिक पत्र देखते हैं। रॉड्बेर्टस के बेशी मूल्य के सिद्धान्त को समूचे तौर पर एक व्यंग्योक्ति से ही ख़त्म कर दिया गया है: "श्री रॉड्बेर्टस पहले उस देश की हालत का विश्लेषण करते हैं, जहां भूगत संपत्ति और पूंजीगत संपत्ति अभी अलग-अलग नहीं हुई हैं और तब वह इस **महत्वपूर्ण** निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि किराया (जिससे उनका आशय है समस्त बेशी मूल्य से) केवल उस निर्वेतन श्रम के बराबर, अथवा उत्पाद की उस मात्रा के बराबर होता है, जिसमें वह श्रम अभिव्यक्त होता है।" **

पूंजीमना मनुष्य कई शताब्दियों से बेशी मूल्य पैदा करता आया है और अब धीरे-धीरे उस ठिकाने पहुंच गया है कि उसके उद्भव पर विचार कर सके। पहले पहल प्रस्तुत विचार-दृष्टि सीधे वाणिज्यिक कारोबार की उपज थी – बेशी मूल्य उत्पाद के मूल्य में कुछ जोड़ने से पैदा होता है। यह धारणा वाणिज्यवादियों में प्रचलित थी। लेकिन जेम्स स्टूअर्ट ने तभी यह महसूस कर लिया था कि वैसी हालत में एक आदमी जितना पायेगा, दूसरा आदमी अवश्य ही उतना खोयेगा। फिर भी यह धारणा काफ़ी समय तक रही, ख़ास तौर से समाजवादियों में। लेकिन ऐडम स्मिथ ने उसे क्लासिकी अर्थशास्त्र से निकाल बाहर किया।

Wealth of Nations, खंड १, अध्याय ६ में वह कहते हैं: "जैसे ही कुछ व्यक्तियों के पास स्टॉक का संचय हो जाता है, उनमें से कुछ व्यक्ति, स्वभावतः, उद्योगी लोगों को काम में लगाकर उसका उपयोग करते हैं, जिन्हें वे सामान और निर्वाह साधन देते हैं, ताकि उनका काम बेचकर लाभ अथवा **सामान के मूल्य में उनके श्रम द्वारा जो वृद्धि होती है, उससे लाभ कमायें**... इसलिए श्रमिक **सामान** में जिस **मूल्य** की **वृद्धि** करते हैं, वह स्वयं यहां **दो**

* Rodbertus-Jagetzow, Karl, *Soziale Briefe an von Kirchmann. Dritter Brief: Widerlegung der Ricardoschen Lehre von der Grundrente und Begründung einer neuen Rententheorie*, Berlin, 1851, S. 87. – सं०

** K. Marx, *Theorien über den Mehrwert* (Vierter Band des *Kapitals*), 2 Teil, Berlin, 1959, SS. 7-8. – सं०

हिस्सों में बंट जाता है, जिनमें से एक हिस्से **से उनकी मजदूरी** मिलती और दूसरा हिस्सा उनके **मालिक को** सामान और मजदूरी पर दिये सारे धन पर **मुनाफ़ा** देता है।"* थोड़ा और आगे चलकर वह कहते हैं: "जैसे ही किसी देश की सारी ज़मीन निजी सम्पत्ति बन जाती है, वैसे ही और सभी इन्सानों की तरह भूस्वामी भी चाहते हैं कि जहां उन्होंने कभी कुछ बोया नहीं, वहां भी फ़सल काटें और भूमि की प्राकृतिक उपज के लिए भी वे लगान मांगते हैं ... श्रमिक अपनी **मेहनत से** जो चीजें इकट्ठा करता या पैदा करता है, उनका **एक हिस्सा** उसे भूस्वामी को **देना** पड़ेगा। यह हिस्सा या उसकी क़ीमत, **किराया ज़मीन** बन जाता है।"**

Zur Kritik, etc. नाम की उक्त पाण्डुलिपि में इस कथन पर मार्क्स यह टिप्पणी (पृष्ठ २५३) करते हैं:

"इस प्रकार ऐडम स्मिथ **बेशी मूल्य** – अर्थात बेशी श्रम, सवेतन श्रम **से अलग और उसके अलावा** किये गये तथा माल में मूर्त अतिरिक्त श्रम, वह श्रम, जो मजदूरी में अपना समतुल्य प्राप्त कर चुका है – को **सामान्य संवर्ग** मानते हैं, अपने निश्चित अर्थ में लाभ और किराया ज़मीन जिसकी प्रशाखाएं मात्र हैं।"***

ऐडम स्मिथ आगे कहते हैं (खंड १, अध्याय ८): "जैसे ही ज़मीन निजी सम्पत्ति बन जाती है, श्रमिक उससे जो कुछ भी पैदा कर सकता है या इकट्ठा कर सकता है, लगभग उस सारी उपज में से भूस्वामी हिस्सा मांगता है। उसका किराया **ज़मीन पर जो श्रम किया जाता है, उसकी उपज से पहली कटौती होता है**। ऐसा बहुत कम होता है कि जो आदमी खेत जोतता है, उसके पास फ़सल काटने के समय तक के लिए निर्वाह साधन हों। आम तौर से जो मालिक या फ़ार्मर उसे काम में लगाता है, उसके धन से ही उसे निर्वाह साधन पेशगी दिये जाते हैं। **उसके श्रम की उपज में उसे हिस्सा न मिले** या दिया हुआ सामान मुनाफ़े समेत उसमें वापस न भरा जाये, तो श्रमिक को काम देने में उसे कोई दिलचस्पी न होगी। ज़मीन पर जो श्रम कराया जाता है, उसकी उपज से लाभ के रूप में यह **दूसरी कटौती** होती है। श्रम की लगभग अन्य सभी उपज से इसी तरह मुनाफ़े के लिए कटौती की जा सकती है। कला-कौशल और हस्तउद्योग के सभी धन्धों में अधिकांश मजदूरों को ऐसे ही मालिक की ज़रूरत होती है, जो उनके काम के लिए सामान, मजदूरी और गुज़र का ख़र्च पूरा होने तक पेशगी दे सके। उसे **उनके श्रम की उपज में हिस्सा मिलता है**, या उस मूल्य में हिस्सा मिलता है, जो उस दिये हुए सामान में जोड़ा गया है, जिस पर श्रम किया गया है और यह हिस्सा ही उसका लाभ है।"****

मार्क्स की टिप्पणी (पाण्डुलिपि, पृष्ठ २५६): "यहां ऐडम स्मिथ ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि किराया ज़मीन और पूंजी पर लाभ श्रमिक की उपज से अथवा उसकी उपज के मूल्य से **कटौती** मात्र हैं, जो कच्चे माल में उसके जोड़े श्रम के बराबर होता है। लेकिन

---

* A. Smith, *An Inquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations*, London, 1843, Vol. I, pp. 131-132.–सं०

** वही, पृष्ठ १३४।–सं०

*** Karl Marx, *Theories of Surplus-Value* (Volume IV of *Capital*), Moscow, 1963, Part I, pp. 80—81.–सं०

**** A. Smith, *An Inquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations*, London, 1843, Vol. I, pp. 172-173.–सं०

जैसा कि स्वयं ऐडम स्मिथ पहले व्याख्या कर चुके हैं, यह कटौती श्रम का वही भाग हो सकती है, जिसे मज़दूर कच्चे माल में उस मेहनत के अलावा जोड़ता है, जिससे उसे केवल मज़दूरी अथवा मज़दूरी का समतुल्य मिलता है। दूसरे शब्दों में यह कटौती बेशी श्रम के रूप में, श्रम के निर्वेतन भाग के रूप में होती है।"*

इस प्रकार ऐडम स्मिथ भी "पूंजीपति के बेशी मूल्य का स्रोत" जानते थे और भूस्वामी के बेशी मूल्य का स्रोत भी जानते थे। मार्क्स ने यह बात १८६१ में ही स्वीकार कर ली थी, जबकि रॉदबेर्टस और राजकीय समाजवाद की सुहावनी वासंतिक वर्षा में कुकुरमुत्तों की तरह लहलहाते उनके झुंड के झुंड के प्रशंसक यह सब भूल गये लगते हैं।

मार्क्स आगे कहते हैं: "फिर भी वह [ऐडम स्मिथ] लाभ और किराया ज़मीन में बेशी मूल्य जो विशेष रूप धारण करता है, उनसे बेशी मूल्य को एक विशेष संवर्ग के रूप में विभेदित नहीं करते हैं। यह उनके अनुसंधान में बहुत सी भूलों और अपर्याप्तताओं का स्रोत है, जो रिकार्डो के अनुसंधान में तो और भी ज़्यादा हैं।"**

यह बयान रॉदबेर्टस पर अक्षरशः सही बैठता है। उनका "किराया" मात्र किराया ज़मीन और लाभ का योग है। किराया ज़मीन के बारे में उन्होंने एक नितान्त भ्रामक सिद्धान्त रचा है और उनके पूर्ववर्ती लेखकों ने लाभ के बारे में जो कुछ कहा था, उसे जांचे बिना वैसा ही मंज़ूर कर लिया है।

इसके विपरीत मार्क्स का बेशी मूल्य मूल्य के उस योग का **सार्विक रूप** है, जिसे कोई समतुल्य दिये बिना उत्पादन साधनों के मालिक हथिया लेते हैं और जो सर्वप्रथम मार्क्स द्वारा निरूपित विशिष्ट नियमों के अनुसार किराया ज़मीन और लाभ के विशिष्ट **परिवर्तित** रूपों में विभक्त हो जाता है। इन नियमों का प्रतिपादन तीसरे खंड में किया जायेगा। हम वहां देखेंगे कि सामान्य रूप में बेशी मूल्य की समझ से उसके लाभ और किराया ज़मीन में रूपांतरण की समझ तक; दूसरे शब्दों में पूंजीपति वर्ग के भीतर बेशी मूल्य के वितरण के नियमों की समझ तक पहुंचने के लिए कई अंतर्वर्ती कड़ियां ज़रूरी हैं।

ऐडम स्मिथ की अपेक्षा रिकार्डो काफ़ी आगे बढ़ते हैं। बेशी मूल्य के बारे में उनकी धारणा का आधार मूल्य का एक नया सिद्धान्त है, जो बीज-रूप में ऐडम स्मिथ के यहां विद्यमान है, किन्तु जब उसे व्यवहार में लाने का अवसर आता है, तब रिकार्डो उसे प्रायः भुला देते हैं। मूल्य का यह सिद्धान्त समस्त उत्तरवर्ती अर्थशास्त्र का प्रारंभ बिंदु बन गया। माल के मूल्य का उसमें सन्निहित श्रम की मात्रा के आधार पर निर्धारण करके वह श्रम द्वारा कच्चे माल में जोड़े गये मूल्य की मात्रा के पूंजीपतियों और श्रमिकों में वितरण और इस मूल्य के मज़दूरी तथा लाभ (अर्थात यहां बेशी मूल्य) में विभाजन को प्रकट करते हैं। वह सिद्ध करते हैं कि इन दो हिस्सों का परस्पर अनुपात जो भी हो, मालों का मूल्य वही रहता है। उनका कहना है कि यह एक ऐसा नियम है, जिसके बहुत ही कम अपवाद हैं। मज़दूरी और बेशी मूल्य (जिसे लाभ के रूप में माना गया है) के आपसी सम्बन्धों के बारे में उन्होंने कुछ बुनियादी नियमों की स्थापना तक भी की है, यद्यपि इन्हें बहुत मोटे तौर पर व्यक्त किया गया है (Marx,

---

* Karl Marx, *Theories* of *Surplus-Value* (Volume IV of *Capital*), Moscow, 1963, Part I, p. 83. – सं०

** वही, पृ० ८१। – सं०

Das Kapital, Buch I, Kap. XV, A),* वह सिद्ध करते हैं कि किराया ज़मीन लाभ से अलग और उसके अलावा बेशी है, जो किन्हीं परिस्थितियों में पैदा नहीं होता है।

इन सारी बातों में कहीं भी रॉदबेर्टस रिकार्डो से आगे नहीं गये हैं। रिकार्डो सिद्धान्त के जिन अन्तर्विरोधों से उस धारा का पतन हुआ, उनसे वह या तो पूर्णतः अपरिचित थे या उनका अर्थशास्त्रीय समाधान ढूंढ़ने की प्रेरणा पाने के बदले वह काल्पनिक मांगें प्रस्तुत करने के फेर में पड़ गये (उनकी *Zur Erkenntnis, etc.*, पृष्ठ १३०)।

किन्तु मूल्य तथा बेशी मूल्य के रिकार्डो सिद्धान्त को समाजवादी उद्देश्यों में इस्तेमाल किये जाने के लिए रॉदबेर्टस की रचना *Zur Erkenntnis* के इंतज़ार में बैठे नहीं रहना पड़ा। पहले खंड (*Das Kapital*, दूसरा संस्करण)** के पृष्ठ ६०९ पर यह उद्धरण मिलता है, "बेशी उत्पाद अथवा पूंजी के मालिक।" इसे १८२१ में लन्दन से प्रकाशित एक पुस्तिका से लिया गया है, जिसका शीर्षक है *The Source and Remedy of the National Difficulties. A Letter to Lord John Russel.* ['राष्ट्रीय कठिनाइयों के कारण और उनका समाधान'। लॉर्ड जॉन रसेल के नाम पत्र।] ४० पन्नों की इस पुस्तिका का महत्व और किसी चीज़ से नहीं, तो "बेशी उत्पाद अथवा पूंजी" इस शब्दावली से पहचान लिया जाना चाहिए था। मार्क्स ने उसे पूरी तरह विस्मृति के गर्भ में विलीन होने से बचा लिया। उसमें हम पढ़ते हैं:

"... पूंजीपति को चाहे जो भी प्राप्य हो" (पूंजीपति के दृष्टिकोण से), "वह केवल मज़दूर का बेशी श्रम ही प्राप्त कर सकता है, क्योंकि मज़दूर को जीना है" (पृष्ठ २३)। लेकिन मज़दूर **कैसे** जीता है और इसलिए उस बेशी श्रम की मात्रा क्या होगी, जिसे पूंजीपति हड़प लेता है, ये बहुत सापेक्ष चीज़ें हैं। "पूंजी जैसे मात्रा में बढ़ती है, वैसे ही यदि वह मूल्य में घटती नहीं है, तो मज़दूर जितनी उपज से ज़िन्दा रह सकता है, उसके अलावा हर घण्टे की मेहनत की उपज को पूंजीपति मज़दूरों से वसूल करेंगे ... पूंजीपति अन्त में मज़दूर से कह सकता है, 'तुम रोटी नहीं खाओगे, क्योंकि तुम आलू और चुक़न्दर खाकर ज़िन्दा रह सकते हो।' और अब नौबत यहां तक आ पहुंची है!" (पृष्ठ २४)। "सीधी बात है कि मज़दूर को रोटी के बदले आलू खाकर ज़िन्दा रहने को मजबूर किया जा सके, तो इसमें शक ही क्या है कि उसकी मेहनत से कहीं ज़्यादा वसूल किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, रोटी खाकर अगर उसे **सोमवार और मंगल की मेहनत** ख़ुद अपने को और अपने परिवार को ज़िन्दा रखने के लिए **रखनी होती थी,** तो आलू खाकर उसे केवल **आधे सोमवार** की मेहनत की ही ज़रूरत होगी। बाक़ी आधा सोमवार और पूरे का पूरा मंगल राज्य अथवा **पूंजीपति** की सेवा के लिए **सुलभ** होंगे" (पृष्ठ २६)। "यह मानी हुई बात है कि पूंजीपतियों को जो सूद या नफ़ा दिया जाता है, वह चाहे किराये के रूप में हो, चाहे धन पर सूद के रूप में, और चाहे व्यापार के मुनाफ़े के रूप में हो, वह उन्हें दूसरों की मेहनत से निकालकर ही दिया जाता है" (पृष्ठ २३)। यहां "किराये" की बिलकुल वही धारणा है, जो रॉदबेर्टस के यहां है; अन्तर इतना ही है कि यहां "किराये" के बदले "सूद" शब्द का प्रयोग किया गया है।

इस पर मार्क्स की टिप्पणी इस प्रकार है (*Zur Kritik*, पाण्डुलिपि, पृष्ठ ८५२): "इस पुस्तिका से बहुत ही कम लोग परिचित हैं। यह उस समय छपी थी, जब मैक-कुलोच

---

* कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', हिन्दी संस्करण, खंड १, अध्याय १७, १, मास्को, १९८७।—सं०

** हिन्दी संस्करण: पृष्ठ ६५९।—सं०

नाम का वह 'अद्‌भुत मोची'* चर्चा का विषय बनने लगा था। यह पुस्तिका रिकार्डो से आगे की वास्तविक प्रगति की सूचक है। उसमें बेशी मूल्य को या रिकार्डो की भाषा में 'लाभ' (अक्सर बेशी उत्पाद भी) या पुस्तिका के लेखक के शब्दों में सूद को सीधे-सीधे बेशी श्रम, वह श्रम कहा गया है, जिसे मज़दूर पारिश्रमिक पाये बिना ही करता है, जिसे वह श्रम की उस मात्रा के अतिरिक्त करता है, जिससे उसकी श्रम शक्ति के मूल्य की प्रतिस्थापना होती है, अर्थात उसकी मज़दूरी का समतुल्य पैदा होता है। **मूल्य को श्रम के समानीत** करना जितना महत्वपूर्ण था, **बेशी उत्पाद** के रूप में प्रकट होनेवाले बेशी मूल्य को **बेशी श्रम के समानीत** करना भी उतना ही महत्वपूर्ण था। यह **ऐडम स्मिथ पहले ही बता चुके थे और यह रिकार्डो के विवेचन में एक प्रधान तत्व है।** पर उन्होंने ऐसा कहा नहीं था, न उसे निरपेक्ष रूप से कहीं स्थापित ही किया था।"** इसके आगे पाण्डुलिपि के पृष्ठ ८५९ पर हम पढ़ते हैं: "इसके अलावा लेखक पहले से चले आते अर्थशास्त्रीय संवर्गों में क़ैद है। बेशी मूल्य को मुनाफ़े से उलझा देने के कारण जैसे रिकार्डो अवांछित अन्तर्विरोधों में फंस जाते हैं, वैसे ही यह लेखक बेशी मूल्य को पूंजी के सूद की संज्ञा देकर उसी चक्कर में आ जाता है। यह सही है कि सारे बेशी मूल्य को बेशी श्रम के समानीत करनेवाला पहला व्यक्ति होने के नाते वह रिकार्डो से आगे जाता है, इसके अलावा बेशी मूल्य को पूंजी का सूद कहने के साथ ही वह इस पर ज़ोर देता है कि इस शब्दावली से उसका आशय है बेशी श्रम का सामान्य रूप, जो उसके विशेष रूपों से पृथक है, जैसे किराया, धन पर ब्याज और कारोबार का मुनाफ़ा। इस पर भी उसने सामान्य रूप के लिए इन्हीं विशेष रूपों में से एक का नाम – सूद – चुन लिया है। और यही उसे अर्थशास्त्रीय शब्दजाल में फंसाने के लिए काफ़ी साबित हुआ।"***

यह आख़िरी हिस्सा रॉडबेर्टस पर बिलकुल फ़िट बैठता है। वह भी पहले से चले आते अर्थशास्त्रीय संवर्गों के बन्दी हैं। वह भी बेशी मूल्य को उसी के एक परिवर्तित उपरूप – किराये – की संज्ञा देते हैं और उसे भी बिल्कुल अनिश्चित बना देते हैं। इन दो ग़लतियों का नतीजा यह होता है कि वह अर्थशास्त्रीय शब्दजाल में पड़ जाते हैं और रिकार्डो से आगे अपनी प्रगति को आलोचनात्मक परिणति तक नहीं ले जा पाते और इसके बजाय वह उनके अधूरे सिद्धान्त को ही, जो भ्रूणरूप में ही है, अपने यूटोपिया का आधार बनाने लगते हैं। लेकिन और हमेशा की तरह यहां भी वह बहुत पिछड़ जाते हैं। उपर्युक्त पुस्तिका १८२१ में प्रकाशित हो गयी थी और उसने रॉडबेर्टस के १८४२ के "किराये" की पूरी तरह से पूर्वकल्पना कर ली थी।

हमारी यह पुस्तिका उस समूचे साहित्य की केवल दूरतम चौकी की तरह है, जिसने तीसरे दशक में रिकार्डो के मूल्य तथा बेशी मूल्य के सिद्धान्त को पूंजीवादी उत्पादन के ख़िलाफ़ सर्वहारा के हित में मोड़ दिया था और पूंजीपतियों का सामना उनके ही अस्त्रों से किया था। ओवेन का सारा कम्युनिज़्म, जहां तक वह अर्थशास्त्रीय बहस में पड़ता है, रिकार्डो पर आधारित है। उनके अलावा और भी न जाने कितने लेखक हैं, जिनमें से कुछ को मार्क्स ने १८४७ में

---

* *Some Illustrations of Mr. M'Culloch's Principles of Political Economy* नामक पुस्तिका के लेखक द्वारा मैक-कुलोच को दिया उपनाम। यह पुस्तिका १८२६ में एडिनबरा में प्रकाशित हुई थी। लेखक का नाम एम० मुलियन दिया गया है, जो जॉन विल्सन का साहित्यिक उपनाम है। – सं०

** K. Marx, *Theorien über den Mehrwert* (Vierter Band des *Kapitals*), 3. Teil, Berlin, 1962, SS. 236-237. – सं०

*** वही, पृष्ठ २५२-२५३। – सं०

ही प्रूदों के ख़िलाफ़ उद्धृत किया था (*Misère de la Philosophie*, पृष्ठ ४६*)। इन लेखकों में हैं एडमंड्स, टॉमसन, हॉड्स्किन, इत्यादि, इत्यादि, "और इत्यादि, इत्यादि के चार पन्ने और"। लेखकों की रचनाओं के इस अम्बार से मैं एक यों ही ले लेता हूं: *An Inquiry into the Principles of Distribution of Wealth, Most Conducive to Human Happiness*, लेखक विलियम टॉमसन, नया संस्करण, लन्दन, १८५०। इसकी रचना १८२२ में हुई थी और इसका पहला संस्करण १८२७ में प्रकाशित हुआ था। ग़ैरउत्पादक वर्ग जिस सम्पत्ति को हथिया लेते हैं, उसे यहां भी सर्वत्र मज़दूर की उपज से कटौती बताया गया है और ज़रा सख़्त शब्द इस्तेमाल किये गये हैं। लेखक का कहना है, "जिसे समाज कहा गया है, उसकी कोशिश बराबर यही रही है कि उत्पादन करनेवाले मज़दूर को धोखा दे और बहलाये, डराये-धमकाये और मजबूर करे कि वह अपने ही श्रम के उत्पाद के अल्प से अल्पतम भाग के लिए भी मेहनत करे" (पृष्ठ २८)। "उसकी मेहनत का सारा का सारा उत्पाद बिना किसी कटौती के उसे क्यों न दे दिया जाये?" (पृष्ठ ३२)। "उत्पादन करनेवाले मज़दूरों से किराये या लाभ के नाम से पूंजीपति जो मुआवज़ा वसूल करते हैं, उनका दावा है कि वे ऐसा ज़मीन और दूसरे सामान के इस्तेमाल की एवज़ में करते हैं... चूंकि जिस भौतिक सामग्री पर अथवा जिसके ज़रिये उसकी उत्पादक शक्तियां उपलब्ध की जा सकती हैं, वह सारी की सारी दूसरों के हाथ में है, जिनके हित उसके हितों के विरुद्ध हैं, इसलिए वह कुछ भी काम करे, पहले उसे इन दूसरों की रज़ामन्दी लेनी होती है। तब क्या वह इसके लिए पूरी तरह पूंजीपतियों के आसरे नहीं है, और हमेशा नहीं रहेगा कि उसकी मेहनत के पारिश्रमिक के रूप में वे **उसी के श्रम फल का जो भी हिस्सा** ठीक समझें, उसे दे दें?" (पृष्ठ १२५)। "... उत्पाद के उस **हथियाये हुए भाग** के अनुपात में, जिसे चाहे मुनाफ़ा कहो, चाहे टैक्स, चाहे चोरी" (पृष्ठ १२६), इत्यादि।

मैं मानता हूं कि कुछ मानसिक कष्ट अनुभव किये बिना मैं यह सब नहीं लिख रहा हूं। मैं इस बात को नज़रंदाज़ कर सकता हूं कि इंगलैंड में, तीसरे और चौथे दशकों में जो पूंजी-वादविरोधी साहित्य लिखा गया था, उससे जर्मनी में लोग एकदम अपरिचित हैं, यद्यपि मार्क्स ने *Poverty of Philosophy* में भी इसका हवाला दिया था, और बाद में 'पूंजी' के खंड १ में उसके अंश बार-बार उद्धृत किये थे, जैसे १८२१ की पुस्तिका से, और रैवेंस्टन, हॉड्स्किन, आदि से। आधिकारिक राजनीतिक अर्थशास्त्र का पतन कितना गहरा है, यह इस बात से स्पष्ट है कि न सिर्फ़ Literatus vulgaris** ही, जो रॉडबेर्टस के दामन से बुरी तरह चिपके हुए हैं और "दरअसल जिन्होंने कुछ नहीं सीखा", किन्तु वह व्यक्ति भी, जिसे बाक़ायदा ढोल बजाकर प्रोफ़ेसर की कुर्सी पर विधिवत प्रतिष्ठित किया गया है*** और जो "अपनी विद्वत्ता की डींग हांकता है", अपना क्लासिकी राजनीतिक अर्थशास्त्र यहां तक भूल गया है कि वह मार्क्स पर रॉडबेर्टस से उन चीज़ों को लूटने का आरोप गम्भीरतापूर्वक लगाता है, जो ऐडम स्मिथ और रिकार्डो तक में मिल जाती हैं।

---

* K. Marx, *The Povetry of Philosophy*, Moscow, 1962.—सं०

** एंगेल्स का आशय रू० मेयेर से है।—सं०

*** एंगेल्स का आशय जर्मन बाज़ारू अर्थशास्त्री ऐ० वागनेर से है।—सं०

लेकिन तब बेशी मूल्य के बारे में मार्क्स ने जो कुछ कहा है, उसमें नया क्या है? क्या कारण है कि मार्क्स का बेशी मूल्य का सिद्धान्त निरभ्र आकाश से गिरनेवाली बिजली की तरह साबित हुआ और वह भी समस्त सभ्य देशों में, जब कि रॉडबेर्टस समेत उनके पूर्ववर्ती सभी समाजवादियों के सिद्धान्त कोई प्रभाव डाले बिना विलुप्त हो गये?

रसायनशास्त्र का इतिहास एक उदाहरण पेश करता है, जो इसकी व्याख्या करता है।

हम जानते हैं कि पिछली शताब्दी के अन्तिम चरण में भी फ़्लोजिस्टन सिद्धान्त का ही बोलबाला था। उसके अनुसार यह माना जाता था कि दहन क्रिया में तत्वतः यह होता था: फ़्लोजिस्टन नाम का एक निरपेक्ष रूप से दाह्य कल्पित पदार्थ जलती हुई चीज़ से अलग हो जाता था। उस समय तक जो भी रासायनिक परिघटनाएं ज्ञात थीं, उनमें अधिकांश की व्याख्या करने के लिए यह सिद्धान्त पर्याप्त था, हालांकि इसके लिए कहीं-कहीं काफ़ी खींचतान करनी पड़ती थी। लेकिन १७७४ में प्रीस्टले ने एक प्रकार की वायु प्राप्त की, "जिसे उन्होंने इतना विशुद्ध, फ़्लोजिस्टन से इतना मुक्त पाया कि उसकी तुलना में साधारण वायु अशुद्ध जान पड़ती थी।" उसे उन्होंने "फ़्लोजिस्टनविहीन वायु" की संज्ञा दी। इसके कुछ ही समय बाद स्वीडन में शेयेले ने उसी प्रकार की वायु प्राप्त की और सिद्ध किया कि वह वायुमण्डल में विद्यमान है। उन्होंने यह भी देखा कि जब इस वायु में अथवा साधारण वायु में कोई चीज़ जलायी जाती है, तब इस प्रकार की वायु लुप्त हो जाती है। इसलिए उन्होंने इसे "अग्नि वायु" की संज्ञा दी। "इन तथ्यों से उन्होंने यह परिणाम निकाला कि वायुमण्डल के एक तत्व से फ़्लोजिस्टन का मेल होने से" (अर्थात दहन से) "जो संयोग उत्पन्न होता है, वह अग्नि या ऊष्मा के अलावा और कुछ नहीं है, जो कांच से बाहर निकल जाती है।"[2]

प्रीस्टले और शेयेले ने यह जाने बिना आक्सीजन प्राप्त कर ली थी कि उनके हाथ कौन सी चीज़ लगी है। वे फ़्लोजिस्टन सम्बन्धी "पहले से चले आते हुए संवर्गों के बन्दी बने रहे।" जो तत्व समस्त फ़्लोजिस्टन सम्बन्धी धारणाओं को निर्मूल करनेवाला था और रसायनशास्त्र में क्रान्ति लानेवाला था, वह उनके यहां बेकार पड़ा रहा। लेकिन प्रीस्टले ने अपनी खोज की सूचना पेरिस में लावोइज़िए को तुरंत ही दे दी थी और लावोइज़िए ने अब इस खोज के सहारे सारे फ़्लोजिस्टन रसायन का विश्लेषण किया और इस नतीजे पर पहुंचे कि यह नई प्रकार की वायु एक नया रासायनिक तत्व है, और दहन में यह नहीं होता कि जलती हुई चीज़ से वह रहस्यमय फ़्लोजिस्टन अलग हो जाता है, वरन होता यह है कि यह नया तत्व उस चीज़ से **संयुक्त** हो जाता है। इस प्रकार उन्होंने सबसे पहले समस्त रसायनशास्त्र को ठीक-ठीक पैरों के बल खड़ा किया, जो अपने फ़्लोजिस्टनी रूप में अब तक सिर के बल खड़ा था। और यद्यपि लावोइज़िए ने उन दोनों के साथ-साथ तथा स्वतन्त्र रूप में अक्सीजन प्राप्त नहीं किया था, जैसा कि उन्होंने बाद में दावा किया, फिर भी उन दोनों के मुक़ाबले, जो उसे प्राप्त तो कर चुके थे, लेकिन यह नहीं जानते थे कि जिसे **प्राप्त** किया है, वह है **क्या**; लावोइज़िए ही आक्सीजन के वास्तविक **अन्वेषक** हैं।

प्रीस्टले और शेयेले की तुलना में जो स्थान लावोइज़िए का है, वही स्थान बेशी मूल्य के सिद्धान्त के संदर्भ में अपने पूर्ववर्तियों की तुलना में मार्क्स का है। जिसे अब हम बेशी मूल्य

---

[2] Roscoe-Schorlemmer, *Ausführliches Lehrbuch der Chemie*, Braunschweig, 1877, 1, SS. 13 und 18.

कहते हैं, उत्पाद के मूल्य के उस भाग के **अस्तित्व** का पता मार्क्स से बहुत पहले लगाया जा चुका था। यह भी बहुत कुछ सुनिश्चित रूप में कहा जा चुका था कि बेशी मूल्य श्रम की वह उपज है, जिसका उसे हथिया लेनेवाला कोई समतुल्य नहीं देता। लेकिन गाड़ी इसके आगे नहीं बढ़ी थी। कुछ लोग, जैसे कि क्लासिकी बूर्जुआ अर्थशास्त्री, अधिक से अधिक इस बात की छानबीन करते थे कि उत्पादन साधनों के मालिक और मजदूर के बीच श्रम के उत्पाद का जो बंटवारा होता है, उसमें अनुपात क्या रहता है। दूसरे लोगों, जैसे कि समाजवादियों, ने देखा कि यह बंटवारा अन्यायपूर्ण है और इस अन्याय को मिटाने के लिए वे यूटोपियाई साधन तलाश करने लगे। वे सभी पहले से चले आते आर्थिक संवर्गों के क़ैदी बने रहे।

तभी रंगमंच पर मार्क्स का प्रादुर्भाव हुआ। और उन्होंने अपने समस्त पूर्ववर्तियों से बिल्कुल उलटा दृष्टिकोण अपनाया। वे लोग जिसे **समाधान** मानते थे, उसे उन्होंने केवल **समस्या** माना। वह समझ गये कि जिस बात का विवेचन करना है, वह न फ़्लोजिस्टनविहीन वायु है, न अग्नि-वायु है, वरन ऑक्सीजन है और यह कोई आर्थिक तथ्य का वर्णन करने अथवा इस तथ्य और शाश्वत न्याय तथा सच्ची नैतिकता के बीच अन्तर्विरोध दिखलाने की बात नहीं थी। बात थी एक ऐसे तथ्य की व्याख्या करने की, जिससे समस्त अर्थशास्त्र में आमूल परिवर्तन होना निश्चित था और जो उनके हाथ में, जो यह जानते थे कि उसे किस तरह इस्तेमाल करना चाहिए, समस्त पूंजीवादी उत्पादन को समझने की कुंजी देता था। जिस तरह लावोइज़िए ने ऑक्सीजन से शुरू करके उस समय फ़्लोजिस्टन रसायन में प्रचलित संवर्गों का परीक्षण किया था, उसी तरह मार्क्स ने इस तथ्य को प्रारंभ बिंदु बनाकर उस समय प्रचलित सभी अर्थशास्त्रीय संवर्गों का परीक्षण किया। बेशी मूल्य क्या है, यह जानने के वास्ते मार्क्स के लिए यह जानना आवश्यक था कि मूल्य क्या है। सर्वोपरि उन्हें रिकार्डो के मूल्य सिद्धान्त की आलोचना करनी थी। इसलिए उन्होंने श्रम के मूल्य उत्पादक गुणधर्म का विश्लेषण किया। वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इसका पता लगाया कि वह **कौन सा** श्रम है, जो मूल्य उत्पन्न करता है, और यह काम वह क्यों और कैसे करता है। उन्होंने पता लगाया कि मूल्य **इस प्रकार** के घनीभूत श्रम के अलावा और कुछ नहीं है, और यही वह बात है, जो रॉदबेर्टस की समझ में मरते दम तक नहीं आयी थी। फिर मार्क्स ने द्रव्य से माल* के सम्बन्ध की छानबीन की और दिखाया कि माल में जो मूल्य का गुणधर्म निहित है, उसके कारण माल और माल विनिमय क्यों और कैसे माल और द्रव्य के विरोध को अनिवार्यतः जन्म देते हैं। इस आधार पर उन्होंने जो द्रव्य सिद्धान्त स्थापित किया, वह इस प्रकार का पहला सम्पूर्ण सिद्धान्त है, जिसने सर्वत्र मौन स्वीकृति प्राप्त कर ली है। द्रव्य कैसे पूंजी में रूपांतरित होता है, उन्होंने इसकी छानबीन की और यह दिखाया कि यह रूपांतरण श्रम शक्ति के क्रय-विक्रय पर आधारित है। उन्होंने श्रम की जगह श्रम शक्ति – मूल्य उत्पादक गुणधर्म – प्रतिष्ठित करके एक झटके से उस एक कठिनाई को दूर कर दिया, जो रिकार्डो धारा के पतन का कारण बनी थी। कठिनाई यह थी कि रिकार्डो के श्रम द्वारा मूल्य निर्धारण नियम से पूंजी और श्रम के परस्पर विनिमय का तालमेल बिठाना असम्भव था। स्थिर और परिवर्ती पूंजी में भेद स्थापित करने से उनके लिए बेशी मूल्य के निर्माण की प्रक्रिया के वास्तविक मार्ग का सूक्ष्मतम ब्यौरे के साथ अनुरेखण करना और इस प्रकार उसकी व्याख्या करना संभव हो गया, जो एक ऐसा महाकार्य था कि

---

*माल के लिए जिंस और पण्य वस्तु का भी प्रयोग किया गया है। – सं०

जिसे उनके पूर्ववर्तियों में कोई भी संपन्न नहीं कर पाया था। उन्होंने स्वयं पूंजी के अन्दर विभेद स्थापित किया, जिसके साथ क्या करें, इसकी न तो रॉडबेर्टस और न बूर्जुआ अर्थशास्त्रियों को ही कुछ भी समझ थी। लेकिन अर्थशास्त्र की सबसे पेचीदा समस्याओं की कुंजी यही है, जैसा कि 'पूंजी' के खंड २ से बड़े उजागर ढंग से साबित होता है तथा खंड ३ से और भी साबित हो जायेगा। उन्होंने बेशी मूल्य का और आगे विश्लेषण किया और उसके दो रूपों, निरपेक्ष और सापेक्ष बेशी मूल्य, का पता लगाया। उन्होंने यह भी दिखाया कि पूंजीवादी उत्पादन के ऐतिहासिक विकास में इन दोनों रूपों ने अलग-अलग और हर बार निर्णायक भूमिकाएं अदा की थीं। बेशी मूल्य के आधार पर उन्होंने मजदूरी का वह प्रथम बुद्धिसंगत सिद्धान्त विकसित किया, जो हमें सुलभ है और पहली बार उन्होंने पूंजीवादी संचय के इतिहास और उसकी ऐतिहासिक प्रवृत्तियों की रूपरेखा तैयार की।

और रॉडबेर्टस? इतना पढ़ने के बाद सदा से एक पूर्वाग्रहग्रस्त अर्थशास्त्री होने के नाते वह इसे "समाज पर आक्रमण"* समझते हैं और समझते हैं कि बेशी मूल्य का उद्गम कहां से होता है, इसे वह स्वयं कहीं अधिक स्पष्टता से और संक्षेप में कह चुके हैं और अन्त में घोषित करते हैं कि यह सब "पूंजी के वर्तमान रूप" पर तो जरूर लागू होता है, अर्थात उस पूंजी पर कि जो ऐतिहासिक रूप से अस्तित्वमान है, लेकिन "पूंजी की अवधारणा" पर लागू नहीं होता, यानी पूंजी के बारे में उस यूटोपियाई अवधारणा पर लागू नहीं होता, जो श्री रॉदबेर्टस के मन में है। बिलकुल बूढ़े प्रीस्टले की तरह ही, जो आख़िरी दम तक फ़्लोजिस्टन पर विश्वास करते रहे और आक्सीजन से कोई वास्ता रखने से इन्कार करते रहे। अकेली बात यह है कि प्रीस्टले ने सबसे पहले वास्तव में आक्सीजन प्राप्त किया था, जब कि रॉदबेर्टस ने तो अपने बेशी मूल्य में, ठीक से कहें, तो अपने "किराये" में महज़ एक आम बात का ही फिर से पता लगाया था और लावोइज़िए के विपरीत मार्क्स ने यह दावा करना तिरस्करणीय समझा कि बेशी मूल्य के अस्तित्व सम्बन्धी तथ्य का पता सबसे पहले उन्होंने लगाया।

रॉड्बेर्टस के दूसरे अर्थशास्त्रीय कारनामे भी लगभग इसी स्तर के हैं। बेशी मूल्य से उन्होंने जो यूटोपिया रचा था, उसकी आलोचना अनचाहे ही मार्क्स ने *Poverty of Philosophy* में कर दी है। उसके बारे में और जो कुछ कहा जा सकता था, वह उस ग्रन्थ के जर्मन संस्करण की भूमिका में मैं कह चुका हूं।** रॉडबेर्टस की वाणिज्यिक संकटों की यह व्याख्या कि वे मजदूर वर्ग के अल्पोपभोग के परिणाम होते हैं, सीसमांडी की पुस्तक *Nouveaux Principes de l'Économie Politique*, खण्ड ४, अध्याय ४ में[3] पहले ही की जा चुकी है। किन्तु सीसमांडी का ध्यान हमेशा विश्व बाजार पर था, रॉडबेर्टस का विचार-क्षितिज प्रशा की सीमाओं के पार नहीं फैल पाता। मजदूरी का स्रोत पूंजी है या आय, इस बारे में उनकी अटकलें वितंडावादियों जैसी

---

* K. Rodbertus-Jagetzow, *Briefe und sozialpolitische Aufsätze.* Herausgegeben von Dr. R. Meyer. Berlin, 1881, Bd. 1, S. 111. –सं०

** K. Marx, *The Poverty of Philosophy*, Moscow, 1962. –सं०

[3] "इस प्रकार मुट्ठी भर मालिकों के हाथ में सम्पत्ति के इकट्ठा हो जाने से घरेलू बाजार अधिकाधिक संकुचित होता जाता है और अपने माल को ठिकाने लगाने के लिए उद्योग को अधिकाधिक विदेशी बाजारों को तलाशना पड़ता है, जहां उसे जबरदस्त उथलपुथलों का ख़तरा है" (अर्थात १८१७ का संकट, जिसका वर्णन इसके तुरंत बाद ही किया गया है)। *Nouveaux Principes*, १८१६, १, पृष्ठ ३३६।

हैं और 'पूंजी' के इस दूसरे खंड के तीसरे भाग में इस सब को निश्चित रूप से सुलटा दिया गया है। उनका किराया सिद्धान्त अब तक एकमात्र उन्हीं की निधि बना हुआ है और जब तक मार्क्स की वह पाण्डुलिपि* प्रकाशित नहीं होती, जिसमें उसकी आलोचना की गयी है, वह निर्विघ्न पड़ा रह सकता है। अन्ततः प्रशा के पुराने भूस्वामित्व को पूंजी के उत्पीड़न से मुक्त करने के लिए दिये उनके सुझाव भी पूरी तरह यूटोपियाई हैं। इस सम्बन्ध में केवल एक व्यावहारिक प्रश्न सामने आया था, जिसे इन सुझावों में नजरंदाज किया गया है और वह था पुराना प्रशाई भूसामंत क़र्ज़ में पड़े बिना कैसे २० हज़ार मार्क सालाना कमाकर ३० हज़ार मार्क सालाना ख़र्च कर सकता है?

१८३० के आसपास बेशी मूल्य के सिद्धान्त से टकराकर रिकार्डो धारा की नैया डूब गयी। जिस समस्या को यह हल नहीं कर पायी, वह इसके बाद आनेवाले बाजारू अर्थशास्त्र के लिए तो और भी असमाधेय रही। इसे असफल करनेवाले दो कारक थे:

१. श्रम मूल्य का मापदण्ड है। फिर भी पूंजी से विनिमय करते हुए सजीव श्रम का मूल्य उस मूर्त श्रम से कम होता है, जिससे उसका विनिमय होता है। मजदूरी, सजीव श्रम की एक निश्चित माता का मूल्य, सजीव श्रम की उसी माता द्वारा उत्पादित वस्तु या उत्पाद का जो मूल्य होता है अथवा जिसमें यह श्रम सन्निहित होता है, उससे हमेशा कम होती है। प्रश्न इस रूप में प्रस्तुत किया जाये, तो सचमुच उसका समाधान हो ही नहीं सकता। मार्क्स ने उसे सही ढंग से प्रस्तुत किया था, और इस प्रकार उसका समाधान भी पेश कर दिया था। यह श्रम नहीं है, जिसका मूल्य होता है। श्रम एक तरह की क्रिया है, जो मूल्यों का सृजन करती है। उसका कोई अपना विशेष मूल्य नहीं हो सकता, जैसे गुरुत्वाकर्षण का अपना कोई विशेष वजन नहीं होता, ऊष्मा का अपना कोई विशेष ताप नहीं होता, और बिजली में धारा की अपनी कोई विशेष प्रबलता नहीं होती। माल के रूप में जो चीज बेची और ख़रीदी जाती है, वह श्रम नहीं है, वरन **श्रम शक्ति** है। जैसे ही श्रम शक्ति माल बन जाती है, उसका मूल्य उस श्रम द्वारा निर्धारित होता है, जो सामाजिक उत्पाद की हैसियत से इस माल में सन्निहित है। यह मूल्य उस श्रम के बराबर होता है, जो इस माल के उत्पादन और पुनरुत्पादन के लिए सामाजिक रूप से आवश्यक होता है। उसके मूल्य की जो व्याख्या इस तरह की गयी है, उसके आधार पर श्रम शक्ति का क्रय-विक्रय मूल्य के आर्थिक नियम से तनिक भी असंगत नहीं है।

२. रिकार्डो के मूल्य नियम के अनुसार दो पूंजियां यदि सजीव श्रम की समान मात्राओं से काम लें और उन्हें समान पारिश्रमिक दें, तो शेष सभी परिस्थितियां यथावत रहने पर वे दोनों समान अवधि में समान मूल्य के माल का उत्पादन करेंगी, और इसी प्रकार बेशी मूल्य अथवा लाभ भी समान माता में उत्पन्न करेंगी। किन्तु वे यदि सजीव श्रम की असमान मात्राओं से काम लें, तो वे समान बेशी मूल्य, अथवा जैसा कि रिकार्डोपंथी कहते हैं, समान लाभ उत्पन्न नहीं कर सकतीं। पर यथार्थ में होता इसका उलटा है। हक़ीक़त है कि समान पूंजियां समान अवधियों में समान औसत लाभों का सृजन करती हैं; उन्होंने सजीव श्रम की कितनी ज्यादा या कम माता काम में लगायी है, इससे कुछ भी सरोकार नहीं होता। अतः यहां मूल्य

---

*यहां इशारा उस पाण्डुलिपि की ओर है जो आगे चलकर *Theorien über den Mehrwert* के नाम से प्रकाशित हुई। देखें: K. Marx, *Theorien über den Mehrwert* (Vierter Band des *Kapitals*), 2. Teil, Berlin, 1959, SS. 7-151. – सं०

के नियम की असंगति होती है, जिसे स्वयं रिकार्डो ने पहचाना था, पर जिसका समाधान उनकी धारा भी नहीं कर सकी। इस असंगति पर रॉडबेर्टस की निगाह भी पड़े बिना न रही। किन्तु उसका समाधान प्रस्तुत करने के बदले उन्होंने उसे अपनी यूटोपिया का प्रारम्भ बिन्दु बना लिया (*Zur Erkenntnis*, पृष्ठ १३१)। *Zur Kritik** की पाण्डुलिपि में मार्क्स इस असंगति का समाधान पहले ही प्रस्तुत कर चुके थे। 'पूंजी' की योजना के अनुसार यह समाधान तीसरे खंड में दिया जायेगा।** उसके प्रकाशित होने के पहले महीनों गुज़र जायेंगे। इसलिए जो अर्थशास्त्री यह दावा करते हैं कि उन्हें रॉदबेर्टस में मार्क्स के विचारों का गुप्त स्रोत और श्रेष्ठतर पूर्ववर्ती मिल गया है, उनके सामने अब यह दिखा देने का अवसर है कि रॉडबेर्टस जैसों का अर्थशास्त्र क्या-क्या सम्पन्न कर सकता है। यदि वे दिखा दें कि मूल्य के नियम का उल्लंघन किये बिना ही नहीं, वरन उसके आधार पर ही किस प्रकार लाभ की औसत दर पैदा हो सकती है, और उसे पैदा होना ही चाहिए, तो इस मसले पर उनसे और आगे बातचीत करने को मैं तैयार हो जाऊंगा। लेकिन उन्हें ज़रा जल्दी करनी चाहिए। जिन क्षेत्रों में अभी तक प्रायः किसी ने पैर नहीं रखा, प्रस्तुत दूसरे खंड में उनका विलक्षण अनुसंधान और उसके नितान्त नवीन परिणाम तो तीसरे खंड की विषय-वस्तु की भूमिका मात्र हैं, जिसमें पूंजीवादी आधार पर सामाजिक पुनरुत्पादन प्रक्रिया के मार्क्स के विश्लेषण के अन्तिम निष्कर्षों को विकसित किया गया है। जब यह तीसरा खंड प्रकाशित होगा, तब रॉदबेर्टस नाम के अर्थशास्त्री का उल्लेख करना भी लोग भूल जायेंगे।

जैसा कि मार्क्स ने अनेक बार कहा था, 'पूंजी' के दूसरे और तीसरे खंड उनकी पत्नी को समर्पित किये जाने हैं।

फ़्रेडरिक एंगेल्स

लन्दन, मार्क्स का
जन्म दिवस, ५ मई,
१८८५

दूसरे संस्करण की भूमिका***

वर्तमान दूसरा संस्करण कुल मिलाकर पहले संस्करण का ही ज्यों का त्यों पुनर्मुद्रित रूप है। छापे की भूलें सुधार दी गयी हैं, कुछ शैलीगत दोष दूर कर दिये गये हैं, और कुछ छोटे-छोटे पैराग्राफ़, जिनमें सिर्फ़ पुनरुक्तियां थीं, काट दिये गये हैं।

---

* K. Marx, *Theorien über den Mehrwert* (Vierter Band des *Kapitals*), 2. Teil, Berlin, 1959. – सं०

** अंग्रेज़ी संस्करण: Karl Marx, *Capital*, Vol. III, Part I and Part II, Moscow, 1959. – सं०

*** सम्पादक द्वारा दिया गया शीर्षक। – सं०

तीसरा खंड, जिसने कुछ अप्रत्याशित कठिनाइयां पेश कर दी थीं, पाण्डुलिपि के रूप में लगभग तैयार है। मेरे स्वास्थ्य ने साथ दिया, तो इस वर्ष शरद तक वह प्रेस के लिए तैयार हो जायेगा।

फ़ेडरिक एंगेल्स

लंदन, १५ जुलाई, १८९३

सुविधा के लिए पाण्डुलिपियों के अंशों की संक्षिप्त सूची दी जा रही है। प्रत्येक अंश के साथ उस पाण्डुलिपि (२-८) का, जिससे सामग्री ली गयी है, उल्लेख कर दिया गया है।

भाग १

पृष्ठ २३-२४ पाण्डु० २ से; पृष्ठ २४-३४ पाण्डु० ७ से; पृष्ठ ३४-३८ पाण्डु० ६ से; पृष्ठ ३८-११७ पाण्डु० ५ से; पृष्ठ ११७-१२० पुस्तकों से संकलित सामग्री की कापी में टिप्पणी; पृष्ठ १२१ से अन्त तक पाण्डु० ४ से; किन्तु पृष्ठ १२९-१३०, पाण्डु० ८ का अंश शामिल किया गया है; पृष्ठ १३४ तथा १४०-१४१ पाण्डु० २ की टिप्पणियां।

भाग २

प्रारम्भिक अंश, पृष्ठ १५३-१६३ पाण्डु० ४ का अन्तिम भाग है। यहां से इस भाग के अन्त तक, पृष्ठ १६३-३५० की कुल सामग्री पाण्डु० २ से है।

भाग ३

अध्याय १८ – (पृष्ठ ३५१-३५८) पाण्डु० २ से।

अध्याय १९ – परिच्छेद १ और २ (पृष्ठ ३५९-३८९) पाण्डु० ८ से; परिच्छेद ३, पृष्ठ ३८९-३९१ पाण्डु० २ से।

अध्याय २० – परिच्छेद १ (पृष्ठ ३९२-३९४) पाण्डु० २ से, केवल अन्तिम पैराग्राफ़ पाण्डु० ८ से।

परिच्छेद २ (पृष्ठ ३९५-३९८) मुख्यतः पाण्डु० २ से।

परिच्छेद ३, ४, ५ (पृष्ठ ३९८-४२१) पाण्डु० ८ से।

परिच्छेद ६, ७, ८, ९ (पृष्ठ ४२२-४३७) पाण्डु० २ से।

परिच्छेद १०, ११, १२ (पृष्ठ ४३७-४८०) पाण्डु० ८ से।

परिच्छेद १३ (पृष्ठ ४८०-४८८) पाण्डु० २ से।

अध्याय २१ – (पृष्ठ ४८९-५२२) सम्पूर्णतः पाण्डु० ८ से।

दूसरी पुस्तक

पूंजी के परिचलन की प्रक्रिया

भाग १

पूंजी के रूपान्तरण और उनके परिपथ

अध्याय १

द्रव्य पूंजी का परिपथ

पूंजी की वृत्तीय गति[1] तीन मंजिलों में होती है, जो पहले खंड में किये प्रस्तुतीकरण के अनुसार निम्नलिखित शृंखलाएं बनाती हैं:

पहली मंजिल: माल और श्रम के बाजार में पूंजीपति ख़रीदार के रूप में प्रकट होता है। उसका द्रव्य माल के रूप में बदल जाता है अथवा वह द्र — मा की परिचलन क्रिया पूरी करता है।

दूसरी मंजिल: पूंजीपति द्वारा ख़रीदे हुए माल का उत्पादक उपभोग। वह मालों के पूंजीवादी उत्पादक का काम करता है; उसकी पूंजी उत्पादन क्रिया से गुजरती है। इसका परिणाम उत्पादन में प्रवेश करनेवाले तत्वों के मूल्य से अधिक मूल्य का माल होता है।

तीसरी मंजिल: पूंजीपति विक्रेता की हैसियत से बाजार में वापस आता है। उसका माल द्रव्य में रूपान्तरित होता है, अथवा मा — द्र परिचलन प्रक्रिया से गुजरता है।

इसलिए द्रव्य पूंजी के परिपथ का सूत्र है: द्र — मा . . . उ . . . मा' — द्र'। बीच की बिन्दियां यह दिखाती हैं कि परिचलन क्रिया भंग हो गयी है; द्र' और मा' यह दिखाते हैं कि बेशी मूल्य द्वारा द्र और मा में वृद्धि हुई है।

पहले खंड में पहली और तीसरी मंजिलों का विवेचन केवल उस हद तक किया गया था, जिस हद तक दूसरी मंजिल यानी पूंजी की उत्पादन प्रक्रिया को समझने के लिए वह आवश्यक था। इस कारण विभिन्न मंजिलों में पूंजी जो रूप धारण करती है, और अपना परिपथ दोहराते हुए जो रूप वह कभी धारण करती है और कभी उतारती है, उनका विवेचन नहीं किया गया था। अब ये रूप हमारे अध्ययन का प्रत्यक्ष विषय हैं।

अपनी विशुद्ध अवस्था में ये रूप क्या हैं, यह पहचानने के लिए सबसे पहले अपने मन से उन सब बातों को निकाल देना चाहिए, जिनका स्वयं रूपों के निर्माण या परिवर्तन से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए हम यहां यह मानकर चलते हैं कि न केवल माल अपने मूल्यों के अनुसार बेचे जाते हैं, बल्कि यह भी कि यह शुरू से आख़िर तक समान परिस्थितियों में ही होता है। इसी तरह परिपथों में गति के समय मूल्य में यदि कोई परिवर्तन हो, तो उस पर भी ध्यान नहीं दिया गया है।

---

[1] पाण्डुलिपि २ से। — फ़े० एं०

१. पहली मंज़िल। द्र — मा [2]

द्र — मा से आशय यह है कि द्रव्य की एक मात्रा माल की एक मात्रा में परिवर्तित हुई है। ख़रीदार अपना द्रव्य माल में रूपांतरित करता है, बेचनेवाला अपना माल द्रव्य में रूपांतरित करता है। जिस चीज़ से मालों का यह सामान्य परिचलन साथ ही कार्यतः किसी वैयक्तिक पूंजी के स्वतंत्र परिपथ का विशेष अनुभाग बन जाता है, वह परिचलन क्रिया का रूप नहीं, वरन उसकी भौतिक अंतर्वस्तु है, मालों का विशेष उपयोग लक्षण है, जो द्रव्य से स्थानांतरण करते हैं। ये माल एक ओर तो उत्पादन साधन हैं, दूसरी ओर श्रम शक्ति, माल उत्पादन के भौतिक और व्यक्तिगत उपादान हैं, जिनकी विशिष्ट प्रकृति निस्संदेह बनायी जानेवाली वस्तुओं के अनुरूप होनी चाहिए। यदि श्रम शक्ति को हम **श्र**, उत्पादन साधन को **उ सा** कहें, तब मालों की जो मात्रा ख़रीदनी है, वह **मा** बराबर होगी **श्र + उ सा** के अथवा और संक्षेप में: $\text{मा} <^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$। अतः जब हम **द्र — मा** के आंतरिक सारतत्व पर विचार करते हैं, तब हम उसे यों प्रकट करते हैं: $\text{द्र} - \text{मा} <^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$, अर्थात **द्र — मा** में **द्र — श्र** तथा **द्र — उ सा** समाहित हैं। द्रव्य की मात्रा **द्र** दो हिस्सों में बंट जाती है। एक हिस्सा श्रम शक्ति ख़रीदने के लिए होता है, दूसरा हिस्सा उत्पादन साधन ख़रीदने के लिए। ख़रीदारी की इन दो श्रृंखलाओं का सम्बन्ध दो बिलकुल भिन्न बाज़ारों से है। एक का सम्बन्ध वास्तविक पण्य बाज़ार से है, और दूसरे का श्रम बाज़ार से है।

द्र मालों की जिस मात्रा में रूपांतरित होता है, उसके इस गुणात्मक विभाजन के अलावा $\text{द्र} - \text{मा} <^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$ सूत्र एक अत्यंत विशिष्ट परिमाणात्मक सम्बन्ध का भी द्योतक है।

हम जानते हैं कि जिस श्रम शक्ति को माल रूप में बेचने के लिए पेश किया जाता है, उसका मूल्य या क़ीमत मज़दूरी के रूप में उसके मालिक को दी जाती है, यानी श्रम की एक मात्रा की क़ीमत के रूप में दी जाती है, जिसमें बेशी श्रम भी निहित है। उदाहरण के लिए, यदि श्रम शक्ति का दैनिक मूल्य पांच घण्टे की मेहनत के उत्पाद के बराबर है, जो तीन शिलिंग का है, तो ख़रीदार और विक्रेता के बीच इक़रार में यह धन — मान लीजिये — दस घंटे के श्रम की क़ीमत या मज़दूरी के रूप में प्रकट होता है। उदाहरण के लिए, यदि ऐसा इक़रार ५० मज़दूरों के साथ होता है, तो माना जाता है कि ख़रीदार के लिए वे प्रतिदिन कुल मिलाकर ५०० घंटे काम करेंगे। इसका आधा समय, यानी २५० घंटे, जो १० घंटे प्रतिदिन के हिसाब से काम के २५ दिन के बराबर हैं, बेशी श्रम के अलावा और कुछ नहीं हैं। उत्पादन साधनों की जो मात्रा और उनका जो परिमाण ख़रीदना है, वह इस श्रम के उपयोग के लिए पर्याप्त होना चाहिए।

इस प्रकार $\text{द्र} - \text{मा} <^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$ सूत्र गुणात्मक सम्बन्ध ही नहीं ज़ाहिर करता है,

---

[2] पाण्डुलिपि ७ की शुरूआत, जिसका प्रारम्भ २ जुलाई, १८७८ को हुआ था। — फ़्रे० एं०

जिससे पता चलता है कि एक निश्चित धनराशि, मान लीजिये ४२२ पाउंड उसी के अनुरूप श्रम शक्ति और उत्पादन साधनों के लिए विनिमय में दी गयी है, बल्कि यह सूत्र उस परिमाणात्मक सम्बन्ध को भी जाहिर करता है, जो श्र, अर्थात श्रम शक्ति के लिए ख़र्च किये हुए द्रव्य के अंश और उ सा, अर्थात उत्पादन साधनों के लिए ख़र्च किये हुए द्रव्य के अंश के बीच पाया जाता है। यह सम्बन्ध आरम्भ से ही मजदूरों की एक निश्चित संख्या द्वारा व्यय किये जानेवाले फालतू श्रम के, बेशी श्रम के परिमाण द्वारा निर्धारित होता है।

उदाहरण के लिए, यदि किसी कताई मिल में उसके ५० मजदूरों की साप्ताहिक मजदूरी ५० पाउंड हो, तो उत्पादन साधनों पर ३७२ पाउंड ख़र्च करने होंगे, अगर उत्पादन साधनों का यही मूल्य हो, जिन्हें ३,००० घंटे का साप्ताहिक श्रम, जिनमें १,५०० घंटे बेशी श्रम के हैं, सूत में तबदील करता हो।

यहां यह बात बिलकुल महत्वपूर्ण नहीं है कि अतिरिक्त श्रम का उपयोग करने से विभिन्न उद्योग धंधों में उत्पादन साधनों के रूप में कितने अतिरिक्त मूल्य की आवश्यकता होगी। यहां बात केवल यह है कि द्र — उ सा के दौरान जो उत्पादन साधन ख़रीदे गये हैं, उनके लिए द्रव्य का जो अंश ख़र्च किया गया है, वह पूर्णतया पर्याप्त होना चाहिए, अर्थात प्रारम्भ मे ही इनके दृष्टिगत आंक लिया जाना चाहिए और तदनुसार हासिल किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में उत्पादन साधनों का परिमाण इतना होना चाहिए कि वह श्रम की उस मात्रा को खपा सके, जो उन उत्पादन साधनों द्वारा उत्पाद में परिवर्तित की जायेगी। अगर उपलब्ध उत्पादन साधन नाकाफ़ी हुए, तो ख़रीदार के पास जो अतिरिक्त श्रम मौजूद है, उसका उपयोग न हो पायेगा; उसका उपयोग करने का जो अधिकार उसके पास है, वह निरर्थक रहेगा। अगर उपलब्ध श्रम की तुलना में उत्पादन साधन अधिक हैं, तो उन पर पूरा श्रम न लगाया जा सकेगा, उन्हें उत्पाद में परिवर्तित न किया जा सकेगा।

$$\text{द्र} - \text{मा} < \begin{matrix} \text{श्र} \\ \text{उ सा} \end{matrix}$$ पूरा होने के साथ ख़रीदार को किसी उपयोगी वस्तु मात्र के उत्पादन के लिए आवश्यक उत्पादन साधन और श्रम शक्ति ही नहीं उपलब्ध होते। उसके पास श्रम शक्ति को गतिमान करने के लिए अधिक क्षमता होती है अथवा इस श्रम शक्ति के मूल्य के प्रतिस्थापन के लिए श्रम की जो मात्रा आवश्यक है, उससे ज्यादा श्रम की मात्रा होती है। इसके साथ ही उसके पास श्रम की इस मात्रा के सिद्धिकरण अथवा मूर्तीकरण के लिए आवश्यक उत्पादन साधन भी हैं। दूसरे शब्दों में उसके पास ऐसी चीजों का उत्पादन कर सकने के उपादान हैं, जिनका मूल्य उत्पादन के तत्वों के मूल्य से अधिक हो; उसके पास मालों की ऐसी राशि के उत्पादन के उपादान मौजूद हैं, जिनमें बेशी मूल्य भी समाहित हो। जो मूल्य उसने द्रव्य रूप में पेशगी दिया था, उसने अब भौतिक रूप ग्रहण कर लिया है, जिसमें वह बेशी मूल्य (माल के रूप में) का सृजन करनेवाला मूल्य बनकर अवतरित हो सकता है। संक्षेप में मूल्य यहां **उत्पादक पूंजी** के रूप या अवस्था में विद्यमान है, जो मूल्य तथा बेशी मूल्य का सृजन कर सकता है। इस रूप में पूंजी को हम यहां उ कहेंगे।

अब उ का मूल्य बराबर है श्र + उ सा के, यानी श्र और उ सा के विनिमय में दिये जानेवाले द्र के बराबर है। द्र वही पूंजी मूल्य है, जो उ है। अन्तर इतना है कि वह

दूसरे रूप में विद्यमान है; वह द्रव्य रूप या अवस्था में पूंजी मूल्य है — **द्रव्य पूंजी** है।

द्र — मा < श्र / उ सा अथवा उसका सामान्य रूप द्र — मा मालों की ख़रीदों का जोड़ है, वह सामान्य माल परिचलन की एक क्रिया है। साथ ही, पूंजी के स्वतंत्र परिपथ की एक मंज़िल के रूप में, वह पूंजी मूल्य का उसके द्रव्य रूप से उत्पादक रूप में रूपान्तरण भी है। और संक्षेप में, यह **द्रव्य पूंजी का उत्पादक पूंजी में रूपान्तरण है।** परिपथ के जिस आरेख का विवेचन हम यहां कर रहे हैं, उसमें द्रव्य पूंजी मूल्य का प्रथम निक्षेप बनकर सामने आता है, और इसलिए जिस रूप में पूंजी पेशगी लगायी जाती है, वह रूप द्रव्य पूंजी द्वारा व्यक्त होता है।

द्रव्य पूंजी के रूप में पूंजी ऐसी अवस्था में होती है, जिसमें वह द्रव्य के कार्य, इस मामले में ख़रीदारी के एक सार्विक साधन तथा भुगतान के सार्विक साधन के कार्य पूरे कर सके। (भुगतान की बात उस हद तक कि यद्यपि श्रम शक्ति पहले ख़रीद ली जाती है, फिर भी उसका भुगतान तब तक नहीं होता, जब तक उसे काम में न लगाया जाये। जिस हद तक उत्पादन साधन बाज़ार में तैयार नहीं मिल जाते, वरन उनके लिए पहले से आदेश करना होता है, उस हद तक द्र — उ सा क्रिया में द्रव्य भी भुगतान के साधन के रूप में काम आता है।) यह क्षमता इस कारण नहीं होती कि द्रव्य पूंजी पूंजी है, वरन इसलिए होती है कि वह द्रव्य है।

दूसरी ओर द्रव्य के रूप में पूंजी मूल्य द्रव्य के कार्यों के अलावा और कोई कार्य नहीं कर सकता। जो बात द्रव्य के कार्यों को पूंजी के कार्यों में बदल देती है, वह पूंजी के संचरण में उनकी निश्चित भूमिका और इसलिए पूंजी के परिपथ की जिस मंज़िल में ये कार्य सम्पन्न होते हैं, उसका दूसरी मंज़िलों से अंतःसम्बन्ध भी है। यहां हम जिस प्रसंग का विवेचन कर रहे हैं, उसी को उदाहरणस्वरूप ले लीजिये। द्रव्य यहां मालों में परिवर्तित किया जाता है, जिनका संयोग उत्पादक पूंजी का भौतिक रूप प्रस्तुत करता है, और इस रूप में पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया का परिणाम अभी से अंतर्हित और सम्भाव्य रूप में विद्यमान होता है।

द्र — मा < श्र / उ सा में द्रव्य का एक अंश, जो द्रव्य पूंजी का कार्य करता है, परिचलन की यह क्रिया संपन्न करके एक ऐसा कार्य ग्रहण कर लेता है, जिसमें इसके पूंजीगत लक्षण का लोप हो जाता है, पर द्रव्यगत लक्षण बना रहता है। द्रव्य पूंजी द्र का परिचलन द्र — उ सा तथा द्र — श्र में विभक्त होता है, अर्थात उत्पादन साधनों की ख़रीद और श्रम शक्ति की ख़रीद में। आइये, स्वयं इस आख़िरी प्रक्रिया पर ही विचार करें। द्र — श्र का अर्थ पूंजीपति द्वारा श्रम शक्ति की ख़रीद है। श्रम शक्ति के मालिक, मज़दूर द्वारा यह श्रम शक्ति की बिक्री भी है; यहां हम कह सकते हैं कि श्रम की बिक्री भी है, क्योंकि मज़दूरी के रूप की पूर्वकल्पना कर ली गयी है। ख़रीदार के लिए जो द्र — मा (= द्र — श्र) है, वह, और प्रत्येक बिक्री की तरह, बेचनेवाले (मज़दूर) के लिए श्र — द्र (= मा — द्र) है। यह उसकी श्रम शक्ति की बिक्री है। यह परिचलन की पहली मंज़िल अथवा माल का पहला रूपान्तरण है (Buch I, Kap. III, 2a)।* श्रम के विक्रेता के लिए यह उसके माल

* हिन्दी संस्करण: अध्याय ३, २ क। — सं०

का द्रव्य में रूपांतरण है। इस तरह से पाया हुआ द्रव्य मजदूर धीरे-धीरे उन मालों को ख़रीदने के लिए व्यय करता है, जो उसकी जरूरतें पूरी करने के लिए दरकार होते हैं, वह उसे उपभोग की वस्तुएं ख़रीदने में ख़र्च करता है। इसलिए उस के माल का पूर्ण परिचलन श्र — द्र — मा के रूप में प्रकट होता है, अर्थात प्रथमत: श्र — द्र (= मा — द्र) और फिर द्र — मा के रूप में; इस कारण वह मा — द्र — मा के माल के सरल परिचलन के सामान्य रूप में प्रकट होता है। इस प्रसंग में द्रव्य परिचलन का एक अस्थायी साधन मात्र है, वह एक माल से दूसरे माल का विनिमय करने का माध्यम मात्र है।

द्र — श्र द्रव्य पूंजी के उत्पादक पूंजी में रूपांतरण का अभिलाक्षणिक क्षण है, क्योंकि यह द्रव्य रूप में पेशगी दिये गये मूल्य के पूंजी में वास्तविक रूपान्तरण की, बेशी मूल्य का सृजन करनेवाले मूल्य में रूपांतरण की अनिवार्य शर्त है। द्र — उ सा केवल द्र — श्र में ख़रीदी गयी श्रम की मात्रा का सिद्धिकरण करने के लिए ही आवश्यक है, जिसका इस दृष्टिकोण से 'मुद्रा का पूंजी में रूपान्तरण' शीर्षक से खंड १, भाग २ में विवेचन किया गया था। यहां हमें इस बात पर एक दूसरे दृष्टिकोण से भी विचार करना होगा, जिसका संबंध विशेषकर द्रव्य पूंजी के उस रूप से है जिसमें पूंजी अपने को व्यक्त करती है।

द्र — श्र को सामान्यत: पूंजीवादी उत्पादन पद्धति का अभिलक्षक माना जाता है। लेकिन ऐसा ऊपर दिये इस कारण से क़तई नहीं माना जाता कि श्रम शक्ति की ख़रीदारी कोई ऐसा क्रय संबंधी इक़रार है, जिसमें माना गया हो कि श्रम शक्ति की क़ीमत के, मजदूरी के, प्रतिस्थापन के लिए श्रम की जितनी मात्रा आवश्यक है, उससे अधिक श्रम की मात्रा दी जायेगी, अत: बेशी श्रम दिया जायेगा जो पेशगी मूल्य के पूंजीकरण की बुनियादी शर्त है, अथवा — जो एक ही बात है — बेशी मूल्य के उत्पादन की बुनियादी शर्त है। इसके विपरीत ऐसा उसके रूप के कारण माना जाता है, क्योंकि मजदूरी के रूप में श्रम द्रव्य द्वारा ख़रीदा जाता है और वह द्रव्य व्यवस्था की अभिलाक्षणिक विशेषता है।

और न रूप की असंगति को ही अभिलक्षक माना जाता है। इसके विपरीत असंगति को अनदेखा ही किया जाता है। असंगति यह है कि श्रम का, जो मूल्य का सृजन करनेवाला तत्व है, कोई मूल्य नहीं हो सकता। इसलिए श्रम की किसी निश्चित मात्रा का ऐसा मूल्य नहीं हो सकता, जो उसकी क़ीमत के रूप में, उसी के समतुल्य द्रव्य की निश्चित मात्रा के रूप में प्रकट हो सके। लेकिन हम जानते हैं कि मजदूरी एक प्रच्छन्न रूप ही है, ऐसा रूप है, जिसमें, उदाहरण के लिए, एक दिन की श्रम शक्ति की क़ीमत अपने आपको इस श्रम शक्ति द्वारा एक दिन में गतिमान किये गये श्रम की क़ीमत की तरह प्रकट करती है। इस श्रम शक्ति ने, मान लीजिये, छ: घंटों के श्रम से जो मूल्य पैदा किया है, वह इस प्रकार श्रम शक्ति के बारह घंटों के कार्यरत रहने या कार्य के मूल्य के रूप में प्रकट होता है।

द्र — श्र तथाकथित द्रव्य व्यवस्था का मुख्य लक्षण, उसकी प्रमुख विशेषता इसलिए माना जाता है कि वहां श्रम उसके मालिक के माल के रूप में प्रकट होता है और इसलिए द्रव्य ख़रीदार के रूप में सामने आता है — द्रव्य सम्बन्ध (अर्थात मानवीय कार्यकलाप के क्रय-विक्रय) के कारण माना जाता है। किन्तु द्र के द्रव्य पूंजी में रूपांतरण के बिना और आर्थिक

व्यवस्था के सामान्य स्वरूप में कोई तबदीली हुए बिना बहुत पहले ही द्रव्य तथाकथित सेवाओं के ग्राहक के रूप में प्रकट हो जाता है।

द्रव्य के लिए इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि वह किस तरह के माल में रूपांतरित होता है। वह सभी मालों का सार्विक समतुल्य है। और कुछ नहीं, तो अपनी क़ीमतों के जरिये ही ये माल अमूर्त रूप में द्रव्य की एक निश्चित मात्रा का प्रतिनिधित्व करते हैं, अपने द्रव्य में रूपांतरण की प्रत्याशा करते हैं, और द्रव्य का स्थान लिये बिना अपने मालिकों के लिए वे वह रूप प्राप्त नहीं कर सकते, जिसमें उन्हें उपयोग मूल्यों में तबदील किया जा सके। एक बार जब अपने मालिक के बिकाऊ माल के रूप में श्रम शक्ति बाज़ार में आ जाती है और उसकी बिक्री श्रम के भुगतान का रूप ले लेती है, मजदूरी का रूप ग्रहण कर लेती है, तब उसका क्रय-विक्रय वैसे ही किसी अचंभे की बात नहीं रहती कि जैसे और किसी बिकाऊ माल का क्रय-विक्रय नहीं होता। विशेष लक्षण यह नहीं है कि श्रम शक्ति नाम का माल ख़रीदा जा सकता है, वरन यह है कि श्रम शक्ति माल बनकर सामने आती है।

$\text{द्र} - \text{मा} < \begin{matrix}\text{श्र} \\ \text{उ सा}\end{matrix}$ द्वारा, द्रव्य पूंजी के उत्पादक पूंजी में रूपान्तरण द्वारा पूंजीपति उत्पादन के वस्तुगत और व्यक्तिगत उपादानों का उस हद तक संयोग स्थापित करता है, जिस हद तक वे माल हैं। यदि द्रव्य का उत्पादक पूंजी में रूपान्तरण पहली बार हुआ है अथवा यदि अपने स्वामी के लिए द्रव्य पूंजी का कार्य वह पहली बार कर रहा है, तो श्रम शक्ति ख़रीदने से पहले पूंजीपति के लिए पहले इमारतें, मशीनें आदि उत्पादन साधन ख़रीदना आवश्यक होगा। कारण यह कि जैसे ही वह श्रम शक्ति को अपने आदेश पर काम करने को बाध्य करेगा, वैसे ही उसके पास उत्पादन के वे साधन होने चाहिए, जिन पर वह श्रम शक्ति के रूप में उसे लगा सके।

यह पूंजीपति द्वारा मामला प्रस्तुत करने का ढंग है।

श्रमिक का ढंग इस प्रकार है: जब तक उसकी श्रम शक्ति की बिक्री सम्पन्न नहीं होती और उत्पादन साधनों के सम्पर्क में नहीं आती, तब तक उसका उत्पादक ढंग से उपयोग नहीं किया जा सकता। अतः बिकने से पहले श्रम शक्ति उत्पादन साधनों से, उसे काम में लाने की भौतिक परिस्थितियों से अलग विद्यमान रहती है। अलगाव की इस दशा में उसे अपने मालिक के लिए सीधे-सीधे उपयोग मूल्यों के उत्पादन के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता, न मालों के उत्पादन के लिए काम में लाया जा सकता है, जिन्हें बेचकर वह निर्वाह कर सके। पर जिस क्षण बेचे जाने के फलस्वरूप उत्पादन साधनों से उसका सम्पर्क हो जाता है, उस क्षण से उत्पादन साधनों की ही तरह वह ख़रीदार की उत्पादक पूंजी का अंश बन जाती है।

सचमुच द्र — श्र क्रम में द्रव्य का मालिक और श्रम शक्ति का मालिक, ये दोनों ग्राहक और विक्रेता का ही सम्बन्ध क़ायम करते हैं, वे एक दूसरे के सामने द्रव्य के स्वामी और माल के स्वामी के रूपों में ही आते हैं। इस पहलू से उनके बीच केवल द्रव्य सम्बन्ध क़ायम होता है। पर इसके साथ ही ग्राहक, आरम्भ से ही, उत्पादन साधनों के मालिक की हैसियत से भी सामने आता है। उत्पादन साधन वे भौतिक उपादान हैं, जिनसे श्रम शक्ति का मालिक उसको उत्पादक ढंग से व्यय करता है। दूसरे शब्दों में ये उत्पादन साधन दूसरे की सम्पत्ति होने के नाते श्रम शक्ति के मालिक के विरोध में खड़े होते हैं। दूसरी ओर श्रम विक्रेता के सामने

ग्राहक दूसरे की श्रम शक्ति को ख़रीदनेवाले के रूप में आता है, जिसे वह अपने हुक्म पर चलायेगा, अपनी पूंजी में समाकलित कर लेगा, जिससे कि वह वस्तुतः उत्पादक पूंजी बन सके। इसलिए पूंजीपति और उजरती मजदूर में वर्ग सम्बन्ध अस्तित्वमान होता है, उसी क्षण से पूर्वकल्पित होता है कि जैसे ही द्र – श्र (जो मजदूर के लिए श्र – द्र है) क्रम में वे एक दूसरे के सामने आते हैं। यह क्रय-विक्रय का, द्रव्य का सम्बन्ध है, पर ऐसा क्रय-विक्रय है, जिसमें माना गया है कि ग्राहक तो पूंजीपति होगा और विक्रेता उजरती मजदूर। यह सम्बन्ध इस बात से पैदा होता है कि श्रम शक्ति के सिद्धिकरण के लिए जो उपादान आवश्यक हैं, यानी जो निर्वाह साधन और उत्पादन साधन आवश्यक हैं, वे दूसरे की सम्पत्ति होने के कारण श्रम शक्ति के मालिक से वियुक्त हो गये हैं।

हमें यहां इस वियोजन के मूल कारण से सरोकार नहीं है। जैसे ही द्र – श्र क्रम चालू होता है, यह अस्तित्वमान हो जाता है। जिस बात से हमें यहां सरोकार है, वह यह है: यदि द्र – श्र यहां द्रव्य पूंजी के कार्य के रूप में अथवा द्रव्य पूंजी के अस्तित्व के रूप में पेश आता है, तो ऐसा केवल इस कारण से नहीं होता कि द्रव्य यहां एक उपयोगी मानवीय कार्य-कलाप अथवा सेवा के भुगतान की भूमिका ग्रहण कर लेता है, इसके फलस्वरूप नहीं होता कि द्रव्य भुगतान के साधन का कार्य करता है। द्रव्य इस रूप में केवल इसलिए ख़र्च किया जा सकता है कि श्रम शक्ति स्वयं को उत्पादन साधनों से वियोजन की अवस्था में पाती है (इनमें निर्वाह साधन भी शामिल हैं, जो स्वयं श्रम शक्ति के उत्पादन साधन भी हैं), और इसलिए कि इस वियोजन को ख़त्म करने का सिर्फ़ एक यही उपाय है कि श्रम शक्ति उत्पादन साधनों के मालिक के हाथ बेची जाये; और फलतः इसलिए कि श्रम शक्ति के कार्य से, जो श्रम की उस मात्रा तक कदापि सीमित नहीं रहता, जो उसकी अपनी क़ीमत के पुनरुत्पादन के लिए दरकार है, श्रम शक्ति के ग्राहक को भी सरोकार होता है। उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान पूंजी सम्बन्ध केवल इसलिए उत्पन्न होता है कि वह परिचलन क्रिया में, उन विभिन्न मूल आर्थिक परिस्थितियों में अंतर्निहित होता है, जिनके अन्तर्गत ग्राहक और विक्रेता एक दूसरे के सामने आते हैं, वह उनके वर्ग सम्बन्ध में अंतर्निहित होता है। यह द्रव्य नहीं है कि जो अपनी प्रकृति से ही इस सम्बन्ध को उत्पन्न करता है; प्रत्युत यह इस सम्बन्ध के होने के कारण है कि कोरे द्रव्यगत कार्य का पूंजीगत कार्य में रूपान्तरण संभव हो जाता है।

द्रव्य पूंजी सम्बन्धी अवधारणा में (फ़िलहाल जिस विशेष कार्य में वह हमारे सामने आती है, उसकी परिधि को ध्यान में रखते हुए हम उसी का विवेचन करेंगे) दो भ्रान्तियां साथ-साथ चलती हैं अथवा एक दूसरे का रास्ता काटती हैं। पहले तो यह कि द्रव्य पूंजी की हैसियत से पूंजी मूल्य जो कार्य सम्पन्न करता है और जिन्हें वह द्रव्य रूप में होने के कारण ही सम्पन्न कर सकता है – उनका उद्भव भ्रान्तिपूर्वक उसकी पूंजीगत विशेषता के कारण माना जाता है। वास्तव में उनका उद्भव पूंजी मूल्य के द्रव्य रूप से ही होता है, उसके द्रव्य में व्यक्त होने के कारण होता है। दूसरी बात यह कि इसके विपरीत द्रव्यगत कार्य के विशिष्ट सारतत्व का कारण द्रव्य की प्रकृति को माना जाता है, जो द्रव्यगत कार्य के साथ-साथ उसे पूंजीगत कार्य भी बना देती है (यहां द्रव्य को पूंजी समझ लिया जाता है), जब कि द्रव्यगत कार्य सामाजिक परि-स्थितियों की पूर्वापेक्षा करता है जैसी यहां द्र – श्र क्रम से इंगित होती हैं, जो मात्र मालों के परिचलन में और तदनुरूप द्रव्य परिचलन में क़तई विद्यमान नहीं होतीं।

गुलामों का क्रय-विक्रय औपचारिक दृष्टि से माल का क्रय-विक्रय भी है। लेकिन दासता के अस्तित्व के बिना द्रव्य यह कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता। अगर दासता का वजूद है, तो धन गुलामों की ख़रीद में लगाया जा सकता है। इसके विपरीत मात्र धन का स्वामित्व ही दासप्रथा को सम्भव नहीं बना देता है।

किसी व्यक्ति की अपनी श्रम शक्ति की बिक्री (वह चाहे स्वयं अपने श्रम की बिक्री के रूप में हो, चाहे मजदूरी के रूप में) एक अलग-थलग परिघटना न रहकर माल उत्पादन के लिए सामाजिक रूप में निर्णायक पूर्वाधार बन जाये, अतः सामाजिक पैमाने पर द्रव्य पूंजी $\text{द्र} - \text{मा} <^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$ का ऊपर विवेचित कार्य करे, इसके लिए ऐसी ऐतिहासिक प्रक्रियाओं की कल्पना की जाती है, जिनके कारण श्रम शक्ति से उत्पादन साधनों का मूल सम्बन्ध विच्छिन्न हुआ था। इन प्रक्रियाओं के फलस्वरूप जनसमूह, यानी सम्पत्तिहीन श्रमिक समूह, उन ग़ैरश्रमिक जनों के सामने आ खड़ा होता है, जो इन उत्पादन साधनों के स्वामी हैं। यहां इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि विच्छिन्न होने से पहले वह मूल सम्बन्ध किस रूप में था – श्रमिक स्वयं उत्पादन का एक साधन होने के नाते उत्पादन के अन्य साधनों के अन्तर्गत था या वह उनका मालिक था।

$\text{द्र} - \text{मा} <^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$ की पृष्ठभूमि में जो चीज़ विद्यमान है, वह वितरण है। वह वैसा वितरण नहीं है, जिसका साधारण अर्थ होता है उपभोग वस्तुओं का वितरण। वह स्वयं उत्पादन के तत्वों का वितरण है, जिसके भौतिक उपादान एक ओर संकेंद्रित हो जाते हैं, और श्रम शक्ति पृथक होकर दूसरी ओर।

अतः जब उत्पादन साधन, उत्पादक पूंजी के भौतिक अंश मजदूर के ही सामने इस रूप में, अर्थात पूंजी के रूप में आयेंगे, तब जाकर ही द्र – श्र क्रम सार्विक और सामाजिक बन सकता है।

हम पहले यह देख चुके हैं* कि एक बार स्थापित हो जाने पर पूंजीवादी उत्पादन अपने अगले विकास में इस अलगाव की पुनरुत्पत्ति ही नहीं करता, वरन अपना दायरा लगातार तब तक बढ़ाता जाता है, जब तक कि वह प्रचलित सामाजिक परिस्थिति नहीं बन जाता। लेकिन इस समस्या का एक पक्ष और भी है। पूंजी का अभ्युदय हो सके और वह उत्पादन की बागडोर संभाल सके, इसके लिए व्यापार के विकास की एक निश्चित मंज़िल की पूर्वापेक्षा की जाती है। अतः यह बात माल परिचलन पर और इसलिए माल उत्पादन पर भी लागू होती है। कारण यह है कि मालों के रूप में किन्हीं भी चीज़ों का परिचलन में आना तब तक सम्भव नहीं है, जब तक वे बिक्री के लिए न पैदा की जायें, यानी मालों के रूप में न उत्पादित की जायें। किन्तु माल उत्पादन तब तक उत्पादन का सामान्य रूप, उसका प्रमुख रूप नहीं होता, जब तक कि पूंजीवादी उत्पादन उसका आधार नहीं बन जाता।

रूस में किसानों के तथाकथित उद्धार के बाद ज़मींदारों को भूदासों की बेगार के बदले अब उजरती मजदूरों से खेती करानी पड़ती है। ये ज़मींदार दो बातों की शिकायत करते हैं।

---

*कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', हिन्दी संस्करण, खण्ड १, भाग ७, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९८७। – सं०

पहली है द्रव्य पूंजी के अभाव की। उदाहरण के लिए, वे कहते हैं कि फ़सल बेचने से पहले उजरती मजदूरों को अपेक्षाकृत बड़ी रक़म देनी होती है, और तभी नक़द पैसे की, यानी सर्वप्रमुख पूर्वापेक्षा की कमी पड़ जाती है। उत्पादन पूंजीवादी ढंग से चलाया जाये, इसके लिए द्रव्य रूप में पूंजी हमेशा सुलभ होनी चाहिए, ख़ासकर मजदूरी के भुगतान के लिए। लेकिन जमींदार आस लगाये बैठे रह सकते हैं। सब्र का फल मीठा होता है, और वक़्त आने पर, औद्योगिक पूंजीपति को न केवल अपना, वरन दूसरों का भी धन उपलब्ध हो जायेगा।

दूसरी शिकायत अधिक लाक्षणिक है। शिकायत यह है कि पास में पैसा हो, तो भी हर वक़्त जितने मजदूर चाहिए, नहीं मिल पाते हैं। कारण यह है कि रूसी खेत मजदूर ग्राम-समुदाय में जमीन पर सामुदायिक अधिकार होने के कारण अभी अपने उत्पादन साधनों से पूरी तरह अलग नहीं किया गया है, और इसलिए अभी सही मानी में "आज़ाद उजरती मजदूर" पूरी तरह नहीं बन पाया है। किन्तु सामाजिक पैमाने पर ऐसे मज़दूर का अस्तित्व में आना द्रव्य पूंजी के उत्पादक पूंजी में रूपान्तरण को व्यक्त करने के लिए द्र — मा क्रम की, माल के रूप में द्रव्य के परिवर्तन की अपरिहार्य पूर्वापेक्षा है।

इसलिए यह बिल्कुल स्पष्ट है कि द्रव्य पूंजी के परिपथ का सूत्र : द्र — मा . . . उ . . . मा′ — — द्र′, विकसित पूंजीवादी उत्पादन के आधार पर ही पूंजी के परिपथ का सहज सामान्य रूप बनता है, क्योंकि वह सामाजिक पैमाने पर उजरती मजदूरों के वर्ग के अस्तित्व की पूर्वकल्पना कर लेता है। हम देख चुके हैं कि पूंजीवादी उत्पादन केवल माल और बेशी मूल्य का सृजन ही नहीं करता, वरन उजरती मजदूरों के वर्ग का अधिकाधिक बड़े पैमाने पर पुनरुत्पादन भी करता जाता है और प्रत्यक्ष उत्पादकों के विशाल बहुसंख्यक भाग को उजरती मजदूर बनाता जाता है। द्र — मा . . . उ . . . मा′ — द्र′ क्रम सिद्ध हो, इसके लिए पहली शर्त यह है कि उजरती मजदूरों का वर्ग स्थायी रूप से अस्तित्व में आ गया हो। इसलिए यह सूत्र उत्पादक पूंजी के रूप में पूंजी की और इस प्रकार उत्पादक पूंजी के परिपथ के रूप की भी पूर्वकल्पना करता है।

२. दूसरी मंज़िल। उत्पादक पूंजी का कार्य

पूंजी के जिस परिपथ पर हमने यहां विचार किया है, उसकी शुरूआत परिचलन क्रिया द्र — मा से, द्रव्य के माल में परिवर्तन से, अर्थात ख़रीदारी से होती है। अतः परिचलन क्रिया के पूरक रूप में एक विरोधी रूपान्तरण मा — द्र, मालों का द्रव्य में रूपान्तरण, अर्थात उनकी बिक्री होनी चाहिए। किन्तु द्र — मा < अ / उ सा का प्रत्यक्ष परिणाम यह होता है कि द्रव्य रूप में जो पूंजी मूल्य पेशगी दिया गया है, उसके परिचलन में बाधा पड़ती है। द्रव्य पूंजी के उत्पादक पूंजी में रूपान्तरित होने से पूंजी मूल्य ऐसा भौतिक रूप प्राप्त कर लेता है, जिसमें उसका परिचलन जारी नहीं रह सकता, वरन उसे उपभोग के क्षेत्र में, अर्थात उत्पादक उपभोग के क्षेत्र में, प्रवेश करना होता है। श्रम शक्ति का उपयोग, श्रम, केवल श्रम प्रक्रिया में ही मूर्त रूप धारण कर सकता है। पूंजीपति बिकाऊ माल की तरह मजदूर को

बेच नहीं सकता, क्योंकि वह उसका ग़ुलाम नहीं है और पूंजीपति ने एक निश्चित अवधि के लिए उसकी श्रम शक्ति के उपयोग के अलावा और कुछ नहीं ख़रीदा है। दूसरी ओर वह इस श्रम शक्ति का उपयोग उसकी सहायता से उत्पादन साधनों को इस्तेमाल करके माल का निर्माण करने के अलावा और किसी तरह नहीं कर सकता। इसलिए पहली मंजिल का परिणाम है दूसरी मंज़िल में, पूंजी की उत्पादक मंज़िल में प्रवेश।

यह गति $\text{द्र} - \text{मा} <^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$ . . . उ सूत्र द्वारा व्यक्त होती है। यहां बिन्दियां यह प्रकट करती हैं कि पूंजी के परिचलन में बाधा पड़ी है, पर उसकी वृत्तीय गति चालू है, क्योंकि माल परिचलन क्षेत्र से निकलकर वह उत्पादन क्षेत्र में पहुंच जाती है। इसलिए पहली मंज़िल, द्रव्य पूंजी के उत्पादक पूंजी में रूपान्तरण की मंज़िल, दूसरी मंज़िल की, उत्पादक पूंजी के कार्यरत होने की सूचक तथा परिचायक अवस्था मात्र है।

$\text{द्र} - \text{मा} <^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$ सूत्र में यह पूर्वकल्पना निहित है कि इस क्रिया को करनेवाले के पास इस्तेमाल के लिए जो मूल्य हैं, वे केवल उपयोग रूप में ही नहीं, बल्कि वे उसके पास द्रव्य रूप में भी मौजूद हैं, वह द्रव्य का स्वामी है। किन्तु चूंकि इस क्रिया का अर्थ ही दूसरे को द्रव्य देना है, इसलिए वह व्यक्ति द्रव्य का स्वामी वहीं तक बना रह सकता है कि जहां तक धन देने का मतलब धन का वापस आना भी हो। लेकिन धन उसके पास वापस आ सकता है केवल माल को बेचने से। इसलिए उपर्युक्त क्रिया में यह पूर्वापेक्षा निहित है कि वह व्यक्ति माल उत्पादक है।

द्र — श्र। उजरती मज़दूर अपनी श्रम शक्ति की बिक्री के द्वारा ही ज़िन्दा रहता है। श्रम शक्ति का परिरक्षण, उसका आत्मपरिरक्षण, दैनिक उपभोग की अपेक्षा करता है। इसलिए अपेक्षाकृत थोड़े-थोड़े समय पर उसके भुगतान की निरन्तर आवृत्ति आवश्यक होगी, जिससे कि वह श्र — द्र — मा अथवा मा — द्र — मा क्रमों की आवृत्ति कर सके, आत्मपरिरक्षण के लिए आवश्यक ख़रीदारियों को दोहरा सके। इस कारण पूंजीपति को उजरती मज़दूर के सामने हमेशा द्रव्य पूंजीपति की हैसियत से और उसकी पूंजी को द्रव्य पूंजी के रूप में आना होता है। दूसरी ओर यदि उजरती मज़दूरों को, प्रत्यक्ष उत्पादकों के समुदाय को, श्र — द्र — मा क्रम पूरा करना है, तो यह आवश्यक है कि उनके सामने निर्वाह साधन क्रेय रूप में, अर्थात माल के रूप में हों। यह स्थिति उत्पादों के माल के रूप में परिचलन के उच्च विकास को और फलतः माल उत्पादन के परिमाण के भी उच्च विकास को आवश्यक बना देती है। जब उजरती श्रम द्वारा किया जानेवाला उत्पादन सार्विक हो जाता है, तब माल उत्पादन का ही उत्पादन का सामान्य रूप बन जाना अनिवार्य होता है। उत्पादन की इस पद्धति को एक बार सामान्य मान लेने से उसके साथ-साथ सामाजिक श्रम का निरन्तर अधिकाधिक विभाजन होता जाता है। दूसरे शब्दों में पूंजीपति द्वारा माल के रूप में उत्पादित उत्पाद का विभेदन निरन्तर बढ़ता जाता है, उत्पादन की पूरक प्रक्रियाओं का स्वतन्त्र प्रक्रियाओं के रूप में और भी अधिक विभाजन होता जाता है। इसलिए द्र — उ सा का विकास उसी सीमा तक होता है, जिस सीमा तक द्र — श्र का होता है, अर्थात उत्पादन साधनों के उत्पादन का उस सीमा तक माल के उत्पादन से वियोजन होता है, जिनके उत्पादन के वे साधन हैं। अब ये उत्पादन

साधन माल की हैसियत से मालों के हर उत्पादक के विरोध में आ जाते हैं, जो इन साधनों को स्वयं पैदा नहीं करता, वरन उत्पादन की अपनी विशेष प्रक्रिया के लिए उन्हें ख़रीदता है। ये उत्पादन की उन शाखाओं से आते हैं, जो स्वतंत्र रूप से कार्यशील हैं, उसकी अपनी शाखा से पूर्णतः वियुक्त हैं, उसकी अपनी शाखा में माल के रूप में प्रवेश करते हैं और इसलिए उन्हें ख़रीदना होता है। माल उत्पादन की भौतिक परिस्थितियां उसके सामने अधिकाधिक दूसरे माल उत्पादकों के बनाये हुए माल के रूप में आती हैं। उसी हद तक पूंजीपति को द्रव्य पूंजीपति की भूमिका निबाहना होती है। दूसरे शब्दों में जिस पैमाने पर उसकी पूंजी को द्रव्य पूंजी के कार्य ग्रहण करने होते हैं, उसमें वृद्धि होती है।

दूसरी ओर जो परिस्थितियां पूंजीवादी उत्पादन के लिए आधारभूत स्थिति – उजरती मजदूरों के एक वर्ग के अस्तित्व – को उत्पन्न करती हैं, वे सारे माल उत्पादन के पूंजीवादी माल उत्पादन में संक्रमण में सहायक होती हैं। पूंजीवादी उत्पादन विकसित होने के साथ-साथ उत्पादन के उन सभी पुराने रूपों पर विघटनकारी और वियोजनकारी प्रभाव डालता है, जिनकी रचना मुख्यतः उत्पादक की प्रत्यक्ष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुई थी और जो केवल अतिरिक्त उपज को बिकाऊ माल का रूप देते थे। पूंजीवादी उत्पादन का प्रधान लक्ष्य होता है उत्पादित वस्तुओं की बिक्री। ऊपर से देखने पर लगता है कि शुरू में स्वयं उत्पादन की पद्धति पर इसका कोई असर नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए, चीन, भारत, अरब, आदि राष्ट्रों पर पूंजीवादी विश्व व्यापार का पहला प्रभाव ऐसा ही था। लेकिन जहां भी पूंजीवादी उत्पादन अपनी जड़ जमा लेता है, वहां वह माल उत्पादन के उन सभी रूपों को निर्मूल कर देता है, जिनका आधार उत्पादकों का अपना श्रम या अतिरिक्त उपज को ही माल के रूप में बेचना है। पूंजीवादी उत्पादन पहले माल उत्पादन को सार्विक बना देता है, और फिर क्रमशः सभी प्रकार के माल उत्पादन को पूंजीवादी माल उत्पादन में तबदील कर देता है।[3]

उत्पादन का सामाजिक रूप कोई भी हो, श्रमिक और उत्पादन साधन हमेशा ही उसके उपादान रहते हैं। किन्तु एक दूसरे से जुदा होने की स्थिति में दोनों में से कोई भी केवल संभाव्य रूप में ऐसे उपादान हो सकते हैं। उत्पादन के जारी रहने के लिए उन सबका संयुक्त होना आवश्यक है। जिस विशिष्ट पद्धति से यह संयोग सम्पन्न होता है, उसी के अनुसार सामाजिक ढांचे के विभिन्न आर्थिक युग अलग-अलग पहचाने जाते हैं। प्रस्तुत प्रसंग में हमारा प्रारंभ बिन्दु स्वाधीन श्रमिक का उत्पादन साधनों से वियोजन है और हम देख चुके हैं कि कैसे और किन परिस्थितियों में ये दोनों तत्व पूंजीपति के हाथों में संयुक्त होते हैं, अर्थात उसकी पूंजी के अस्तित्व के उत्पादक रूप में एक हो जाते हैं। अतः इस प्रकार मिलाये जाने पर माल के व्यक्तिगत और भौतिक निर्माता जिस वास्तविक प्रक्रिया में, उत्पादन प्रक्रिया में, प्रवेश करते हैं, वह स्वयं पूंजी का एक कार्य बन जाती है, उत्पादन की पूंजीवादी प्रक्रिया बन जाती है। उसकी प्रकृति का सम्पूर्ण विश्लेषण इस कृति के पहले खंड में किया जा चुका है। जो भी उद्यम माल उत्पादन करता है, वह साथ ही श्रम शक्ति का शोषण करनेवाला उद्यम भी बन जाता है। किन्तु केवल पूंजीवादी माल उत्पादन इस तरह के शोषण की युगप्रवर्तक पद्धति बन गया है, जिसने अपने ऐतिहासिक विकास क्रम में श्रम प्रक्रिया के संगठन और तकनीक के अपार सुधार द्वारा समाज के समस्त आर्थिक ढांचे में ऐसा आमूल परिवर्तन कर दिया है कि उसके सामने पहले के और सभी युग फीके पड़ गये हैं।

---

[3] पाण्डुलिपि ७ का अंत। पाण्डुलिपि ६ की शुरूआत। – फ़े० एं०

उत्पादन साधन और श्रम शक्ति जिस हद तक पेशगी पूंजी मूल्य के अस्तित्व के रूप हैं, उस हद तक मूल्य के निर्माण में, अतः बेशी मूल्य के भी निर्माण में, वे उत्पादन प्रक्रिया के दौरान जो विभिन्न भूमिकाएं निबाहते हैं, उनके अनुसार स्थिर और परिवर्ती पूंजी के रूपों में पहचाने जाते हैं। उत्पादक पूंजी के विभिन्न घटक होने के कारण उनकी अलग-अलग पहचान इस बात से भी होती है कि उत्पादन साधन, जिन पर पूंजीपति का अधिकार होता है, उत्पादन प्रक्रिया के बाहर भी उसकी पूंजी बने रहते हैं, किन्तु श्रम शक्ति इस प्रक्रिया के भीतर ही किसी वैयक्तिक पूंजी के अस्तित्व का रूप ग्रहण करती है। श्रम शक्ति अपने विक्रेता, उजरती मजदूर के हाथों में ही बिकाऊ माल बनती है, उधर वह उसके ग्राहक के हाथों में, उसके अस्थायी उपयोग का अधिकार पानेवाले पूंजीपति के हाथों में ही पूंजी का रूप धारण करती है। उत्पादन साधन उत्पादक पूंजी के भौतिक रूप तब तक नहीं बनते, उत्पादक पूंजी तब तक नहीं बनते, जब तक श्रम शक्ति, उत्पादक पूंजी के अस्तित्व का व्यक्तिगत रूप, उनमें समाविष्ट होने के योग्य नहीं हो जाती। मनुष्य की श्रम शक्ति अपनी प्रकृति से वैसे ही पूंजी नहीं है, जैसे उत्पादन साधन भी नहीं हैं। वे किन्हीं निश्चित, ऐतिहासिक रूप से विकसित परिस्थितियों में ही यह विशिष्ट सामाजिक स्वरूप अर्जित करते हैं, जैसे कि इस प्रकार की परिस्थितियों में ही मूल्यवान धातुओं पर द्रव्य का स्वरूप अंकित होता है अथवा द्रव्य पर द्रव्य पूंजी का स्वरूप अंकित होता है।

उत्पादक पूंजी अपने कार्य सम्पन्न करते हुए अपने ही घटकों का उपभोग करती है, जिससे कि उनका अधिक मूल्यवाले उत्पादों की राशि में रूपान्तर हो जाये। चूंकि श्रम शक्ति उत्पादक पूंजी के मात्र एक अंग के रूप में काम करती है, इसलिए उत्पादक पूंजी के संघटक तत्वों के मूल्य के अलावा, उसके बेशी श्रम से उत्पाद के मूल्य में जो अतिरेक उत्पन्न होता है, वह भी पूंजी का फल होता है। श्रम शक्ति का बेशी श्रम पूंजी के लिए किया गया मुफ़्त श्रम है और इसलिए इससे पूंजीपति के लिए बेशी मूल्य का निर्माण होता है, जो एक ऐसा मूल्य है, जिसके बदले में उसे कोई समतुल्य नहीं देना होता है। इसलिए उत्पाद केवल माल नहीं होता, वरन ऐसा माल होता है, जो अपने गर्भ में बेशी मूल्य धारण किये होता है। उसका मूल्य उ+बे के बराबर है। दूसरे शब्दों में माल के उत्पादन में जो उत्पादक पूंजी उ ख़र्च हुई है, और उसने जिस बेशी मूल्य बे का सृजन किया है, उसका मूल्य इन दोनों के जोड़ के बराबर होता है। मान लीजिये कि यह माल १०,००० पाउंड सूत है और इतना सूत तैयार करने में ३७२ पाउंड के उत्पादन साधन और ५० पाउंड की श्रम शक्ति की खपत हुई है। कताई के दौरान कातनेवालों ने अपने श्रम से उत्पादन साधनों का ३७२ पाउंड मूल्य खपाया, जिसे उन्होंने सूत में निविष्ट कर दिया; इसके साथ ही जो श्रम शक्ति उन्होंने ख़र्च की, उसके अनुपात में उन्होंने नये मूल्य का सृजन भी किया, जो मान लीजिये १२८ पाउंड है। इसलिए अब १०,००० पाउंड सूत का जो मूल्य बनता है, वह ५०० पाउंड के बराबर है।

३. तीसरी मंज़िल। मा' — द्र'

जो पूंजी मूल्य पहले ही बेशी मूल्य पैदा कर चुका है, उसके अस्तित्व का एक कार्यमूलक रूप है **माल पूंजी** [या जिंस पूंजी अथवा पण्य पूंजी। – सं०], जिसका उदय उत्पादन प्रक्रिया से ही होता है। यदि पूरे समाज में माल उत्पादन पूंजीवादी ढंग से ही होता हो, तो सभी माल

प्रारम्भ से ही माल पूंजी के तत्व होंगे, चाहे वे कच्चा लोहा हों, ब्रसेल्स लेस हों, गंधक का तेजाब हों या चुरुट हों। मालों की जो अपार संख्या सुलभ है, उनमें से कितनी क़िस्में स्वभावतः पूंजी का दर्जा पायेंगी, और कौन सी क़िस्में सामान्य पण्य वस्तुएं ही बनी रहेंगी, यह समस्या पांडित्यवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की स्वनिर्मित मोहक बुराइयों में एक है।

जो पूंजी माल के रूप में है, उसे माल के कार्य सम्पन्न करने होते हैं। पूंजी जिन चीज़ों से बनती है, वे ख़ास तौर पर बाज़ार के लिए निर्मित की जाती हैं और उन्हें बाज़ार में बेचना होता है, द्रव्य में रूपान्तरित करना होता है, इसलिए उन्हें **मा — द्र** क्रम से गुज़रना होता है।

मान लीजिये कि पूंजीपति के पास जो माल है, वह १०,००० पाउंड सूत है। कताई के दौरान उत्पादन साधनों का जो मूल्य ख़र्च हुआ, वह ३७२ पाउंड हो, और जिस नये मूल्य का निर्माण हुआ, वह १२८ पाउंड हो, तो सूत का मूल्य हुआ ५०० पाउंड, और यह मूल्य इतनी ही रक़म की उसकी क़ीमत के रूप में प्रकट होता है। आगे मान लीजिये कि यह क़ीमत बिक्री **मा — द्र** द्वारा वसूल की जाती है। वह कौन सी चीज़ है, जो सभी प्रकार के माल परिचलन की इस सीधी क्रिया को साथ ही साथ पूंजी कार्य भी बना देती है? उसके भीतर कोई परिवर्तन नहीं होता। ग्राहक के हाथ में उपयोग के उद्देश्य से जानेवाले माल के उपयोग.स्वरूप में कोई तबदीली नहीं होती। न उसके मूल्य में कोई परिवर्तन हुआ है, क्योंकि इस मूल्य के परिमाण में कोई तबदीली नहीं हुई, तबदीली हुई है केवल उसके रूप में। पहले वह सूत के रूप में विद्यमान था, अब वह द्रव्य के रूप में है। इस प्रकार **द्र — मा** की पहली मंज़िल और **मा — द्र** की आख़िरी मंज़िल के बीच का तात्विक भेद स्पष्ट है। वहां पेशगी द्रव्य द्रव्य पूंजी के रूप में कार्य करता है, क्योंकि परिचलन द्वारा वह एक निश्चित उपयोग मूल्य के माल में परिवर्तित हो जाता है। यहां माल पूंजी के रूप में उसी सीमा तक कार्य कर सकता है, जहां तक अपने परिचलन की शुरूआत होने से पहले ही वह उत्पादन प्रक्रिया से अपना यह स्वरूप अपने साथ लाता है। कताई प्रक्रिया के दौरान कातनेवाले १२८ पाउंड की राशि का सूत मूल्य सृजन करते हैं। इस रक़म में से, मान लीजिये, श्रम शक्ति पर पूंजीपति ने जो धन लगाया है, उसके लिए ५० पाउंड की रक़म उसका समतुल्य मात्र है, जब कि श्रम शक्ति का शोषण १५६ प्रतिशत होने पर ७८ पाउंड का बेशी मूल्य बनता है। इस प्रकार १०,००० पाउंड सूत के मूल्य में पहले तो उपभुक्त उत्पादक पूंजी **उ** का मूल्य निहित है। इस उत्पादक पूंजी का स्थिर अंश ३७२ पाउंड है और परिवर्ती अंश ५० पाउंड। इनका जोड़ हुआ ४२२ पाउंड, जो ८,४४० पाउंड सूत के बराबर है। अब उत्पादक पूंजी **उ** का मूल्य **मा** के बराबर है, उसके घटकों के मूल्य के बारबर है। **द्र — मा** की मंज़िल में ये तत्व उनके विक्रेताओं के हाथों में बिकाऊ माल बनकर पूंजीपति के सामने आ चुके हैं।

लेकिन दूसरी बात यह है कि सूत के मूल्य में ७८ पाउंड का बेशी मूल्य निहित है, जो १,५६० पाउंड सूत के बराबर है। अतः १०,००० पाउंड सूत के मूल्य को प्रकट करनेवाला **मा** बराबर है **मा** + △ **मा** के अथवा **मा** + **मा** की वृद्धि के (जो ७८ पाउंड के बराबर है)। इसे हम मा कहेंगे, क्योंकि इसका अस्तित्व भी उसी माल रूप में है, जिसमें अब मूल मूल्य का **मा** है। इसलिए १०,००० पाउंड सूत का मूल्य, जो ५०० पाउंड

के बराबर है, इस प्रकार प्रकट किया जाता है: मा + मा = मा′। १०,००० पाउंड सूत के मूल्य को व्यंजित करनेवाले मा को जो चीज़ मा′ में बदल देती है, वह उसके मूल्य (५०० पाउंड) का निरपेक्ष परिमाण नहीं है। कारण यह कि अन्य किसी भी मा की तरह, जो किसी अन्य माल राशि का मूल्य व्यंजित करता है, मूल्य का यह परिमाण भी श्रम की उस मात्रा द्वारा निर्धारित होता है, जो उसमें मूर्त होती है। जो चीज़ मा को मा′ में बदलती है, वह उसका सापेक्ष मूल्य परिमाण, उसके उत्पादन में ख़र्च हुई उत्पादक पूंजी उ की तुलना में उसका मूल्य परिमाण है। उत्पादक पूंजी द्वारा प्रदत्त बेशी मूल्य के साथ यह मूल्य मा′ में निहित होता है। इसका मूल्य अधिक होता है, पूंजी मूल्य से वह बेशी मूल्य मा भर अधिक होता है। १०,००० पाउंड सूत अब विस्तारित, इस बेशी मूल्य द्वारा समृद्ध किये पूंजी मूल्य का वाहक इसलिए है कि वह उत्पादन की पूंजीवादी प्रक्रिया की उपज है। मा′ मूल्य सम्बन्ध – मालों के उत्पादन पर ख़र्च की गई पूंजी तथा उनके मूल्य का सम्बन्ध – व्यंजित करता है। दूसरे शब्दों में वह यह तथ्य प्रकट करता है कि मा′ का मूल्य दो चीज़ों से मिलकर बना है: एक तो पूंजी मूल्य, दूसरा बेशी मूल्य। १०,००० पाउंड सूत माल पूंजी मा′ केवल इसलिए है कि वह उत्पादक पूंजी उ का परिवर्तित रूप है, उस प्रसंग में है, जो मूलतः केवल इस वैयक्तिक पूंजी के परिपथ में विद्यमान है अथवा जो केवल उस पूंजीपति के लिए है, जिसने अपनी पूंजी की सहायता से इस सूत का निर्माण किया था। हम कह सकते हैं कि यह कोई बाह्य सम्बन्ध नहीं, वरन केवल आन्तरिक सम्बन्ध है, जो १०,००० पाउंड सूत को मूल्य के वाहक की हैसियत में माल पूंजी में परिवर्तित कर देता है। इस सूत का पूंजीवादी जन्मचिह्न उसके मूल्य के निरपेक्ष परिमाण में नहीं, बल्कि उसके सापेक्ष परिमाण में दिखायी देता है; माल के रूप में परिवर्तित होने से पहले इस सूत में निहित उत्पादक पूंजी के मूल्य की तुलना में सूत के मूल्य के परिमाण में दिखायी देता है। अब अगर यह १०,००० पाउंड सूत अपने ५०० पाउंड मूल्य पर बेचा जाये, तो यह परिचलन क्रिया, अपने आप में मा – द्र के बिल्कुल समान होगी। यह एक अपरिवर्तनशील मूल्य का माल रूप से द्रव्य रूप में परिवर्तन मात्र होगा। लेकिन वैयक्तिक पूंजी के परिपथ की एक विशेष मंज़िल के रूप में यही क्रिया माल में निहित ४२२ पाउंड की रक़म के पूंजी मूल्य और उसके साथ उसमें इसी प्रकार निहित ७८ पाउंड बेशी मूल्य का सिद्धिकरण होगी। दूसरे शब्दों में यह क्रिया मा′ – द्र′ क्रम प्रकट करती है, माल रूप से द्रव्य रूप में माल पूंजी का परिवर्तन प्रकट करती है।[4]

मा′ का कार्य अब यही हो जाता है, जो सब मालों का होता है यानी द्रव्य के रूप में परिवर्तित होना, बेचा जाना, मा – द्र के परिचलन की मंज़िल से गुज़रना। पूंजी, जो अब विस्तारित हो चुकी है, जब तक माल पूंजी के रूप में रहती है, बाज़ार में अचल रहती है, तब तक उत्पादन प्रक्रिया ठप रहती है। माल पूंजी न तो माल का सृजन कर पाती है,

[4] पाण्डुलिपि ६ का अन्त। पाण्डुलिपि ५ की शुरूआत। – फ़े० एं०

न मूल्य का निर्माण। एक नियत पूंजी मूल्य काफ़ी भिन्न-भिन्न अंशों में उत्पाद और मूल्य के सर्जक का काम कर सकता है और पुनरुत्पादन का पैमाना उस विशेष रफ़्तार के अनुरूप, जिससे पूंजी अपना माल रूप त्यागती है और द्रव्य रूप धारण करती है अथवा बिक्री की गति के अनुरूप घटता-बढ़ता रहता है। पहले खंड में यह दिखाया जा चुका है कि नियत पूंजी की कार्य-कुशलता की मात्रा उत्पादक प्रक्रियाओं की संभाव्यता पर निर्भर होती है, जो किसी हद तक स्वयं अपने ही मूल्य के परिमाण से स्वतन्त्र होती है।* यहां यह आभास होता है कि परिचलन प्रक्रिया ऐसी नई शक्तियों को चालू कर देती है, जो पूंजी के मूल्य परिमाण से स्वतन्त्र होती हैं और वे उसकी कार्य-कुशलता की मात्रा, उसका प्रसार तथा संकुचन निर्धारित करती हैं।

इसके अलावा विस्तारित पूंजी का निक्षेप होने के नाते माल राशि मा' को समग्रत: मा' — द्र' के रूपान्तरण से गुज़रना होगा। यहां बेची हुई मात्रा मुख्य निर्धारक है। अलग-अलग माल समष्टिगत माल राशि के अभिन्न अंग के रूप में ही सामने आता है। ५०० पाउंड मूल्य १०,००० पाउंड सूत में विद्यमान है। यदि पूंजीपति केवल ७,४४० पाउंड सूत उसके ३७२ पाउंड मूल्य पर बेच पाये, तो वह अपनी स्थिर पूंजी का मूल्य, ख़र्च हुए उत्पादन साधनों का मूल्य ही बहाल कर सकेगा। अगर वह ८,४४० पाउंड सूत बेचे, तो उसने जो कुल पूंजी पेशगी लगाई थी, उसका मूल्य ही वापस पा सकेगा। कुछ बेशी मूल्य वसूल करने के लिए उसे और अधिक सूत बेचना होगा। ७८ पाउंड का समूचा बेशी मूल्य वसूलने के लिए (जो १,५६० पाउंड सूत के बराबर है) उसे सारा का सारा १०,००० पाउंड सूत बेचना होगा। द्रव्य रूप में उसे ५०० पाउंड केवल बेचे हुए माल का समतुल्य प्राप्त होता है। परिचलन के भीतर उसका कारोबार केवल मा — द्र है। अगर उसने ५० पाउंड के बदले अपने मज़दूरों को मज़दूरी में ६४ पाउंड दिये होते, तो उसका बेशी मूल्य ७८ पाउंड के बदले केवल ६४ पाउंड होता, और तब शोषण की मात्रा १५६ के बदले १०० प्रतिशत ही होती। किन्तु सूत का मूल्य नहीं बदलता, केवल उसके घटकों का आन्तरिक सम्बन्ध भिन्न होता। मा — द्र परिचलन क्रिया अब भी ५०० पाउंड मूल्य पर १०,००० पाउंड सूत की बिक्री ज़ाहिर करेगी।

मा' बराबर है मा + मा के (अथवा ४२२ पाउंड + ७८ पाउंड के)। मा उत्पादक पूंजी उ के मूल्य के बराबर है और यह द्र के मूल्य के बराबर होता है, जो द्र — मा क्रिया में पेशगी दिया गया था। इसमें उत्पादन के तत्व ख़रीदे गये थे और हमारे उदाहरण में यह रक़म ४२२ पाउंड है। यदि समूची माल राशि अपने मूल्य पर बेची जाये, तो मा बराबर होगा ४२२ पाउंड के और मा बराबर होगा ७८ पाउंड के, जो १,५६० पाउंड सूत के बेशी उत्पाद का मूल्य है। द्रव्य रूप में इसे व्यक्त करते हुए यदि हम मा को द्र कहें, तो मा' — द्र' = (मा + मा) — (द्र + द्र)। और इसलिए अपने विस्तारित रूप में द्र — मा ... उ ... मा' — द्र' का परिपथ इस तरह व्यक्त होगा : द्र — मा <श्र/उ सा ... उ ... (मा + मा) — (द्र + द्र)।

---

*कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', हिन्दी संस्करण, खण्ड १, पृष्ठ ६७५-६८२। — सं०

पहली मंजिल में पूंजीपति वास्तविक पण्य बाज़ार से और श्रम बाज़ार से उपभोग वस्तुएं लेता है। तीसरी मंजिल में वह मालों को वापस करता है, लेकिन एक ही बाज़ार में, जो वास्तविक पण्य बाज़ार है। लेकिन यदि अपने माल के ज़रिये वह बाज़ार में पहले डाले हुए मूल्य की तुलना में अधिक मूल्य प्राप्त करता है, तो ऐसा केवल इस कारण है कि उस बाज़ार से जितना माल मूल्य उसने पहले लिया था, उससे ज्यादा अब वहां वापस डालता है। उसने बाज़ार में द्र मूल्य डाला और उसका समतुल्य मा उससे निकाला। वह उसमें मा+ मा डालता है और उसका समतुल्य द्र + द्र उससे निकालता है।

हमारे उदाहरण में द्र ८,४४० पाउंड सूत के मूल्य के बराबर था। लेकिन वह बाज़ार में १०,००० पाउंड सूत डालता है, फलस्वरूप उसने जितना मूल्य लिया था, उससे ज़्यादा मूल्य वापस करता है। दूसरी ओर, उसने बाज़ार में यह बढ़ा हुआ मूल्य केवल इसलिए डाला था कि उत्पादन प्रक्रिया के दौरान श्रम शक्ति का शोषण करके उसने बेशी मूल्य का निर्माण कर लिया था (जो उत्पाद का संखंड मात्र होता है और बेशी उत्पाद के रूप में व्यक्त होता है)। उत्पादन प्रक्रिया की उपज होने के कारण ही मालों की राशि माल पूंजी बन जाती है, जो बढ़े हुए पूंजी मूल्य का वाहक होती है। मा′ — द्र′ क्रिया पूरा करने से पेशगी पूंजी मूल्य और बेशी मूल्य का भी सिद्धिकरण होता है। बिक्री की अनेक क्रियाएं पूरी करने पर अथवा समूची माल राशि की थोक बिक्री करने पर दोनों का सिद्धिकरण एक ही साथ होता है। बिक्री की यह क्रिया मा′ — द्र′ द्वारा व्यक्त होती है। किन्तु मा′ — द्र′ की वही परिचलन क्रिया पूंजी मूल्य तथा बेशी मूल्य के लिए भिन्न-भिन्न होती है, क्योंकि वह इनमें प्रत्येक के लिए उनके परिचलन की भिन्न मंज़िलें, रूपान्तरण क्रमों का एक भिन्न अंश प्रकट करती है, जिससे होकर उन्हें परिचलन के दायरे में गुज़रना होगा। बेशी मूल्य मा का जन्म उत्पादन प्रक्रिया के दौरान ही हुआ है। सबसे पहले उसकी अवतारणा माल रूप में माल बाज़ार में हुई। यह उसके परिचलन का पहला रूप है। इसलिए मा — द्र क्रिया उसकी प्रथम परिचलन क्रिया है अथवा उसका प्रथम रूपान्तरण है, जिसकी पूर्ति परिचलन की प्रतिपक्षी क्रिया अथवा उलटे रूपान्तरण द्र — मा से आगे होगी।[5]

पूंजी मूल्य मा उसी परिचलन क्रिया मा′ — द्र′ में जो परिचलन क्रम पूरा करता है, वह इससे भिन्न है। पूंजी मूल्य के लिए यह क्रम मा — द्र की परिचलन क्रिया है, जहां मा बराबर है उ के, बराबर है मूलतः लगाये द्र के। पूंजी मूल्य ने द्र के रूप में, द्रव्य पूंजी के रूप में, अपनी पहली परिचलन क्रिया शुरू की है, और मा — द्र क्रिया द्वारा वह उसी रूप में फिर वापस आता है। इसलिए वह परिचलन की दो परस्पर प्रतिपक्षी मंज़िलों से गुज़रता है। पहली मंज़िल है द्र — मा, दूसरी है मा — द्र; और एक बार फिर वह अपने

---

[5] पूंजी मूल्य और बेशी मूल्य को हम चाहे जिस ढंग से अलग करें, यह बात सही उतरेगी। १०,००० पाउंड सूत में १,५६० पाउंड का बेशी मूल्य, अथवा ७८ पाउंड का बेशी मूल्य निहित होता है। इसी प्रकार एक पाउंड सूत में, अथवा एक शिलिंग दाम के सूत में २,४९६ आउंस का बेशी मूल्य या १,८७२ पेन्स का बेशी मूल्य निहित होता है।

को उस रूप में पाता है, जिसमें वह नये सिरे से पुनः अपनी वृत्तीय गति आरम्भ कर सके। बेशी मूल्य के लिए जो माल रूप का द्रव्य में पहला रूपान्तरण है, वह पूंजी मूल्य के लिए उसका अपने मूल द्रव्य रूप में प्रत्यावर्तन अथवा पुनःरूपान्तरण है।

द्र – मा < श्र / उ सा के द्वारा द्रव्य पूंजी समतुल्य मूल्य की माल राशि में, श्र तथा उ सा में, रूपान्तरित होती है। ये माल अब पण्य वस्तुओं का, बिकाऊ माल का, कार्य नहीं करते। उनका मूल्य अब उन्हें ख़रीदनेवाले पूंजीपति के हाथ में है। वे अब उसकी उत्पादक पूंजी उ का मूल्य प्रकट करते हैं। उ के कार्य में, उत्पादक उपभोग में, वे एक प्रकार के नये माल में, सूत में, रूपान्तरित होते हैं, जो उत्पादन साधनों से तत्वतः भिन्न है। इस नये रूप में उनका मूल्य क़ायम ही नहीं रहता, वरन ४२२ पाउंड से बढ़कर ५०० पाउंड हो जाता है। इस वास्तविक रूपान्तरण द्वारा द्र – मा की पहली मंज़िल में जो माल बाज़ार से लिये जाते हैं, उनकी जगह भिन्न सारतत्व और मूल्य का माल प्रतिस्थापित होता है, जिसे अब माल के रूप में कार्य करना होगा, बिकना होगा और द्रव्य में रूपान्तरित होना होगा। इसलिए उत्पादन प्रक्रिया पूंजी मूल्य की परिचलन प्रक्रिया में आया हुआ व्यवधान मात्र जान पड़ती है, जिसका उस समय तक पहला दौर द्र – मा ही पूरा हो पाया है। वह दूसरे और अन्तिम दौर मा – द्र को तब पूरा करता है, जब मा तत्वतः और मूल्यतः बदल जाता है। लेकिन जहां तक पूंजी मूल्य का सम्बन्ध है, यदि उस पर अलग से विचार करें, तो देखेंगे कि उत्पादन प्रक्रिया में केवल उसके उपयोग रूप में तबदीली हुई है। पहले वह ४२२ पाउंड मूल्य के श्र और उ सा के रूप में विद्यमान था, लेकिन अब वह ४२२ पाउंड मूल्य के अथवा ८,४४० पाउंड सूत के रूप में विद्यमान है। इसलिए यदि हम पूंजी मूल्य के परिचलन के केवल इन दो दौरों पर विचार करें, और उसके बेशी मूल्य को अलग रखें, तो हम देखेंगे कि वह १) द्र – मा और २) मा – द्र क्रमों से गुज़रता है। वहां दूसरे मा का उपयोग मूल्य भिन्न है, पर उसका मूल्य वही है, जो पहले मा का है। इसलिए पूंजी मूल्य द्र – मा – द्र क्रम से गुज़रता है। यह परिचलन का ऐसा रूप है कि जो द्रव्य रूप में पेशगी मूल्य की उसके द्रव्य रूप में वापसी को, द्रव्य में उसके पुनःपरिवर्तन को आवश्यक बना देता है, क्योंकि यहां माल दो बार, और विपरीत दिशा में स्थान परिवर्तन करता है – पहले द्रव्य से माल का रूप धारण करता है और फिर माल से द्रव्य का।

द्रव्य रूप में पेशगी पूंजी मूल्य अपना दूसरा और अन्तिम रूपान्तरण जिस परिचलन क्रिया मा′ – द्र′ से पूरा करता है, द्रव्य रूप में लौट आता है, वह माल पूंजी द्वारा वाहित और साथ ही द्रव्य रूप में उसके परिवर्तन द्वारा सिद्धिकृत बेशी मूल्य के लिए उसके पहले रूपान्तरण को प्रकट करती है, जब वह माल रूप से द्रव्य रूप में, मा – द्र उसके प्रथम परिचलन के दौर में बदलता है।

इसलिए हमें यहां दो बातें देखनी हैं। पहली यह कि पूंजी मूल्य का अपने मूल द्रव्य रूप में अन्तिम रूपान्तरण माल पूंजी का कार्य है। दूसरी यह कि इस कार्य में बेशी मूल्य का अपने मूल रूप से द्रव्य रूप में पहला रूपान्तरण शामिल है। इस तरह यहां द्रव्य रूप दोहरी भूमिका

निबाहता है। एक ओर यह वह रूप है, जिसमें मूलतः द्रव्य में पेशगी दिया मूल्य वापस आता है। यह वापसी मूल्य के उस रूप में होती है, जिससे प्रक्रिया की शुरूआत हुई थी। दूसरी ओर, यह उस मूल्य का पहला परिवर्तित रूप है, जो मूलतः माल रूप में परिचलन में प्रवेश करता है। जिन मालों से माल पूंजी का निर्माण हुआ है, यदि वे अपने मूल्यों के अनुसार बेचे जाते हैं, जैसा कि हमने मान लिया है, तो मा + मा समतुल्य द्र + द्र में बदल जाता है। सिद्धिकृत माल पूंजी अब पूंजीपति के हाथ में इस रूप में होती है: द्र + द्र (४२२ पाउंड + + ७८ पाउंड = ५०० पाउंड)। अब पूंजी मूल्य और बेशी मूल्य माल रूप में विद्यमान हैं, जो सार्विक समतुल्य का रूप है।

इसलिए प्रकिया के पूरे होने पर पूंजी मूल्य ने वह रूप फिर प्राप्त कर लिया है, जिसमें उसने इस प्रकिया में प्रवेश किया था। द्रव्य पूंजी की हैसियत से वह एक नई प्रक्रिया शुरू कर सकता है और उससे गुज़र सकता है। इस प्रक्रिया के प्रारम्भिक और अन्तिम रूप द्रव्य पूंजी द्र के हैं, इसीलिए हम परिचलन प्रक्रिया के इस रूप को द्रव्य पूंजी परिपथ कहते हैं। उसके पूरा होने पर जो चीज़ बदलती है, वह पेशगी मूल्य का रूप नहीं है, केवल उसका परिमाण है।

द्र + द्र एक निश्चित परिमाण की द्रव्य राशि के अलावा और कुछ नहीं है। हमारे उदाहरण में यह राशि ५०० पाउंड है। पूंजी के परिचलन के फलस्वरूप सिद्धिकृत माल पूंजी की हैसियत से इस द्रव्य राशि में पूंजी मूल्य और बेशी मूल्य भी होते हैं। और ये मूल्य अब उस तरह अभिन्न रूप से संयुक्त नहीं होते कि जैसे पहले सूत के रूप में संयुक्त थे। अब वे अग़ल-बग़ल पड़े हुए दिखाई देते हैं। दोनों बेचे गये हैं, इससे दोनों को स्वतन्त्र द्रव्य रूप मिल गया है। इस धन का २११/२५० भाग ४२२ पाउंड पूंजी मूल्य है और उसका ३९/२५० भाग ७८ पाउंड बेशी मूल्य है। माल पूंजी के सिद्धिकरण से संपन्न इस वियोजन क्रिया का मात्र औपचारिक महत्व ही नहीं है, जिसकी चर्चा हम अभी आगे करेंगे। पूंजी की पुनरुत्पादन प्रक्रिया में भी वह महत्वपूर्ण हो जाती है, और यह इस पर निर्भर है कि द्र के साथ द्र पूर्णतः या अंशतः एक राशि बनता है या एक राशि बनता ही नहीं, यानी यह इस पर निर्भर है कि वह पेशगी पूंजी मूल्य के संघटक अंश के रूप में कार्य करता रहता है या नहीं। द्र और द्र दोनों ही परिचलन की नितान्त भिन्न प्रक्रियाओं से गुज़र सकते हैं।

द्र′ के रूप में पूंजी ने अपना मूल रूप द्र फिर से पा लिया है, अपने द्रव्य रूप में वह लौट आई है। परन्तु यह ऐसा रूप है, जिसमें वह पूंजी की हैसियत से भौतिक रूप ग्रहण करती है।

सबसे पहले तो परिमाण का ही अन्तर है। यह द्र था – ४२२ पाउंड। अब द्र′ – ५०० पाउंड है और यह अन्तर द्र . . . द्र′ से प्रकट होता है, जो परिपथ के परिमाणात्मक रूप से भिन्न दो चरम बिन्दु हैं, जिसकी गति केवल तीन बिन्दुओं से प्रकट की जाती है। द्र′ > द्र और द्र′ वियुत द्र = बे, बेशी मूल्य। किन्तु द्र . . . द्र′ की इस वृत्तीय गति के फलस्वरूप अब केवल द्र′ विद्यमान है। यह वह उत्पाद है, जिसमें उसकी निर्माण प्रक्रिया विलुप्त हो चुकी है। द्र′ का अब पृथक, उसे अस्तित्व में लानेवाली गति से स्वतन्त्र अस्तित्व है। वह गति समाप्त हो चुकी है, उसके स्थान पर अब द्र′ है।

किन्तु द्र' बराबर है द्र + द्र के, ५०० पाउंड के, जिसमें ४२२ पाउंड की पेशगी पूंजी है और उसके साथ उसकी ७८ पाउंड की वृद्धि भी है। इस प्रकार द्र एक गुणात्मक सम्बन्ध भी प्रकट करता है। चूंकि यह गुणात्मक सम्बन्ध एक ही धनराशि के अंशों के बीच सम्बन्धों के रूप में विद्यमान होता है, इसलिए वह परिमाणात्मक सम्बन्ध भी होता है। पेशगी पूंजी द्र, जो एक बार फिर अपने मूल रूप (४२२ पाउंड) में सामने आती है, सिद्धिकृत पूंजी की हैसियत से विद्यमान है। उसने स्वयं को क़ायम ही नहीं रखा है, वरन पूंजी के रूप में अपने को सिद्धिकृत भी किया है, क्योंकि पूंजी के रूप में वह द्र (७८ पाउंड) से भिन्न पहचानी जाती है। इस द्र से उसका वही सम्बन्ध है जो **स्वयं अपनी** वृद्धि से, **स्वयं अपने** फल से होगा, उस बढ़ती से होगा, जिसका सृजन स्वयं उसने किया है। वह पूंजी रूप में इस कारण सिद्धिकृत हुई है कि वह उस मूल्य के रूप में सिद्धिकृत हो चुकी है, जिसने मूल्य का सृजन किया है। द्र' पूंजी सम्बन्ध के रूप में विद्यमान होता है। द्र अब केवल द्रव्य नहीं रहता, वरन द्रव्य पूंजी की भूमिका स्पष्टतः निबाहता है, जो स्वप्रसारित मूल्य के रूप में व्यक्त होती है। इसलिए उसमें स्वप्रसार का, उसका स्वयं जो मूल्य है, उससे और बड़ा मूल्य पैदा करने का, गुण होता है। द्र' के दूसरे भाग से अपने सम्बन्ध की बदौलत द्र पूंजी बना है, जिसको द्र ने जन्म दिया है, कारण बनकर उसे कार्यरूप दिया है, जो आधार के नाते उसका परिणाम है। इस प्रकार द्र' अपने भीतर विभेदित, कार्यात्मक (संकल्पनात्मक) रूप से विशिष्ट, पूंजी सम्बन्ध व्यक्त करनेवाले मूल्यों की राशि के रूप में प्रकट होता है।

किन्तु यह परिणाम के रूप में ही, जिस प्रक्रिया का वह परिणाम है, उसके दख़ल के बिना व्यक्त होता है।

मूल्य के अंश स्वयं एक दूसरे से सिवा इसके गुणात्मक भिन्नता नहीं प्रकट करते कि वे अलग-अलग वस्तुओं, मूर्त पदार्थों के और इसलिए विभिन्न उपयोग रूपों और इस कारण विभिन्न मालों के मूल्यों के रूप में प्रकट होते हैं। यह अन्तर मूल्य के अंश मात्र होने के नाते स्वयं उनके साथ नहीं पैदा होता है। द्रव्य के अन्तर्गत मालों के सभी परस्पर भेद लुप्त हो जाते हैं, क्योंकि वह उन सभी का सामान्य समतुल्य रूप है। ५०० पाउंड की धनराशि में एक-एक पाउंड के समान तत्व ही होते हैं। चूंकि उसके उद्गम की मध्यवर्ती कड़ियां इस धनराशि के मात्र अस्तित्व में होने से मिट गई हैं और उत्पादन प्रक्रिया के दौरान पूंजी के विभिन्न संघटक अंशों का विशिष्ट भेद पूरी तरह मिट गया है, इसलिए अब एक ओर तो पेशगी पूंजी, ४२२ पाउंड के बराबर मूल धन, और दूसरी ओर ७८ पाउंड के अतिरिक्त मूल्य के बीच का संकल्पनात्मक भेद ही रह गया है। मान लीजिये द्र' बराबर है ११० पाउंड के, जिसमें १०० पाउंड बराबर हैं मूल धन द्र के, और १० बराबर हैं बे, बेशी मूल्य के। ११० पाउंड की धनराशि के दोनों संघटक अंगों में पूर्ण सामंजस्य है, संकल्पनात्मक भेदों का अभाव है। इस धनराशि का कोई भी १० पाउंड अंश सदा ११० पाउंड की पूरी धनराशि का १/११ ही होगा, फिर चाहे वह १०० पाउंड के अग्रिम मूल धन का १/१० हो, अथवा उसके ऊपर १० पाउंड का अतिरेक हो। इसलिए मूल धन और अतिरिक्त धन, पूंजी और बेशी राशि, सम्पूर्ण धनराशि के भिन्नांशों के रूप में व्यक्त किये जा सकते हैं। हमारे उदाहरण में मूल धन या पूंजी है १०/११, और बेशी

राशि है १/११। इसलिए अपनी प्रक्रिया के अन्त में सिद्धिकृत पूंजी अपनी द्रव्यरूप व्यंजना में, पूंजी सम्बन्ध की असंगत अभिव्यंजना की तरह प्रकट होती है।

ठीक है कि यह बात मा′ (मा + मा) पर भी लागू होती है। लेकिन उसमें यह अन्तर है कि मा′ जिसमें मा और मा एक ही समजातीय राशि के सानुपातिक अंश मात्र हैं, अपने उद्गम उ को दर्शाता है। वह इस उ की सीधी उपज है, किन्तु द्र′ एक ऐसा रूप है, जिसका उद्भव सीधे परिचलन से हुआ है और इसलिए उ से द्र′ का प्रत्यक्ष सम्बन्ध मिट गया है।

मूल धन और वृद्धि की धनराशि का असंगत भेद, जो द्र′ में, जहां तक वह द्र . . . द्र′ की गति का परिणाम व्यक्त करता है, निहित होता है, उसके फिर सक्रिय रूप से द्रव्य पूंजी का कार्य करने लगने पर और इस कारण विस्तारित औद्योगिक पूंजी की द्रव्य व्यंजना के रूप में स्थिर न रहने पर लुप्त हो जाता है। द्रव्य पूंजी के परिपथ की शुरूआत कभी द्र′ से नहीं हो सकती (यद्यपि द्र′ अब द्र का कार्य कर रहा है)। उसकी शुरूआत केवल द्र से हो सकती है। दूसरे शब्दों में पूंजी सम्बन्ध की व्यंजना के रूप में उसकी शुरूआत कभी नहीं हो सकती, बल्कि केवल पूंजी मूल्य की पेशगी के रूप की तरह ही हो सकती है। बे को फिर पैदा करने के लिए जैसे ही पूंजी रूप में ५०० पाउंड की रक़म फिर पेशगी दी जाती है, वैसे ही वह प्रस्थान का बिन्दु बन जाती है, प्रत्यावर्तन का नहीं। ४२२ पाउंड की पूंजी के बदले अब ५०० पाउंड की पूंजी पेशगी दी गई है। पहले की अपेक्षा यह अधिक द्रव्य ह, अधिक पूंजी मूल्य है, लेकिन उसके दोनों संघटक अंगों का परस्पर सम्बन्ध लुप्त हो गया है। दरअसल ४२२ पाउंड के बदले ५०० पाउंड की रक़म शुरू में ही पूंजी का काम कर सकती थी।

द्र′ की हैसियत से प्रकट होना द्रव्य पूंजी का सक्रिय कार्य नहीं है, बल्कि द्र′ की हैसियत से सामने आना मा′ का कार्य है। मालों के साधारण परिचलन में भी, पहले $मा_1$ — द्र में, फिर द्र — $मा_2$ में, द्र दूसरी क्रिया द्र — $मा_2$ के होने तक सक्रिय रूप में नहीं आता है। द्र के रूप में वह पहली क्रिया के फलस्वरूप ही प्रकट होता है, जिसके कारण वह केवल तब $मा_1$ के परिवर्तित रूप में प्रकट होता है। ठीक है कि द्र′ में निहित पूंजी सम्बन्ध, पूंजी मूल्य के रूप में उसके एक अंश का मूल्य वृद्धि के रूप में उसके दूसरे अंश से सम्बन्ध यहां तक कार्यात्मक महत्व प्राप्त कर लेता है कि द्र . . . द्र′ के परिपथ के निरन्तर आवर्तन से द्र′ दो परिचलनों — एक पूंजी का और दूसरा बेशी मूल्य का परिचलन — में विभाजित हो जाता है। फलत: ये दोनों अंश केवल परिमाणात्मक रूप से ही नहीं, वरन गुणात्मक रूप से भी, भिन्न कार्य करते हैं। द्र के कार्य द्र के कार्यों से भिन्न हैं। किन्तु अलग से लें, तो स्वयं द्र . . . द्र′ रूप में वह नहीं आता, जिसका पूंजीपति उपयोग करता है, वरन स्पष्टत: केवल स्वप्रसार और संचय ही शामिल होता है, जहां तक कि यह संचय अपने आपको सबसे बढ़कर द्रव्य पूंजी की निरंतर नयी पेशगियों की आवधिक संवृद्धि के रूप में प्रकट करता है।

यद्यपि द्र′ जो द्र + द्र के बराबर है, पूंजी का असंगत रूप है, पर साथ ही वह अपने

सिद्धिकृत रूप में, द्रव्य के उस रूप में, जिसने द्रव्य का सृजन किया है, द्रव्य पूंजी ही है। किन्तु यह पहली मंजिल में द्रव्य पूंजी के कार्य $\text{द्र} - \text{मा} < {}^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$ से भिन्न है। इस पहली मंजिल में द्र का द्रव्य की हैसियत से परिचलन होता है। वह द्रव्य पूंजी के कार्य ग्रहण कर लेता है, क्योंकि अपनी द्रव्य अवस्था में ही वह द्रव्य कार्य सम्पन्न कर सकता है, अपने को उ के तत्वों में, श्र और उ सा में, परिवर्तित कर सकता है, जो मालों की हैसियत से उसके सामने होते हैं। इस परिचलन क्रिया में वह केवल द्रव्य की हैसियत से कार्य करता है। किन्तु चूंकि यह क्रिया पूंजी मूल्य की प्रक्रिया में पहली मंजिल है, इसलिए खरीदे गये मालों श्र और उ सा के विशिष्ट उपयोग रूप के कारण वह साथ ही द्रव्य पूंजी का कार्य भी करती है। दूसरी ओर द्र', जिसके संघटक हैं पूंजी मूल्य द्र और उसके द्वारा सृजित बेशी मूल्य द्र, स्वविस्तारित पूंजी मूल्य को, पूंजी के सम्पूर्ण परिपथ के उद्देश्य और परिणाम, उसके कार्य को प्रकट करता है। वह इस परिणाम को द्रव्य रूप में, सिद्धिकृत द्रव्य पूंजी के रूप में, इसलिए नहीं प्रकट करता कि वह पूंजी का द्रव्य रूप है, **द्रव्य** पूंजी है; इसके विपरीत, वह उसे इसलिए प्रकट करता है कि वह द्रव्य **पूंजी** है, द्रव्य के रूप में पूंजी है, इसलिए कि पूंजी ने इस रूप में प्रक्रिया की शुरूआत कर दी है, इसलिए कि वह द्रव्य रूप में पेशगी दी गई थी। जैसा कि हम देख चुके हैं, द्रव्य रूप में उसका पुनःपरिवर्तन माल पूंजी मा' का कार्य है, द्रव्य पूंजी का नहीं। जहां तक द्र और द्र' के बीच अन्तर का सम्बन्ध है, वह (द्र) केवल मा का द्रव्य रूप है, मा की वृद्धि है। द्र' द्र + द्र के इसलिए बराबर है कि मा' मा + मा के बराबर था। इसलिए मा' में यह अन्तर और पूंजी मूल्य का उसके द्वारा जनित बेशी मूल्य से सम्बन्ध इन दोनों के द्र' में, एक ऐसी धनराशि में परिवर्तित होने के कि जिसमें मूल्य के दोनों अंश स्वतन्त्र रूप में एक दूसरे के सामने आते हैं और इस कारण पृथक तथा भिन्न कार्यों में लगाये जा सकते हैं, पहले से विद्यमान रहते हैं।

द्र' मा' के सिद्धिकरण का परिणाम मात्र है। द्र' और मा' दोनों केवल स्वविस्तारित पूंजी मूल्य के विभिन्न रूप हैं, जिनमें एक उसका माल रूप और दूसरा द्रव्य रूप है। दोनों में सामान्य बात यह है कि वे स्वविस्तारित पूंजी मूल्य हैं। दोनों ही मूर्त पूंजी हैं, क्योंकि यहां पूंजी मूल्य स्वयं उसी रूप में बेशी मूल्य के साथ अस्तित्वमान है, जो उसी के माध्यम से प्राप्त किया हुआ फल है और उससे भिन्न भी है, यद्यपि यह सम्बन्ध माल मूल्य के, अथवा धनराशि के दो अंशों के सम्बन्ध के असंगत रूप में ही प्रकट होता है। किन्तु पूंजी द्वारा उत्पादित बेशी मूल्य के सम्बन्ध में और उसके व्यतिरेक में पूंजी की ही और इसलिए स्वप्रसारित मूल्य की भी अभिव्यंजना होने के नाते द्र' और मा' दोनों एक ही हैं और एक ही चीज़ केवल विभिन्न रूपों में प्रकट करते हैं। वे एक दूसरे से द्रव्य पूंजी और माल पूंजी की हैसियत से नहीं, वरन द्रव्य और माल की हैसियत से भिन्न हैं। जहां तक वे स्वप्रसारित मूल्य के, उस पूंजी के अभिव्यंजक हैं, जिसने पूंजी की हैसियत से काम किया है, वहां तक वे केवल उत्पादक पूंजी की कार्यशीलता का परिणाम ही प्रकट करते हैं, जो वह एकमात्र कार्य है, जिसमें पूंजी मूल्य मूल्य का सृजन करता है। इन दोनों में जो चीज़ सामान्य है, वह यह है कि द्रव्य पूंजी और

माल पूंजी दोनों ही पूंजी के अस्तित्व की विधाएं हैं। एक द्रव्य रूप में पूंजी है, दूसरी माल रूप में। इसलिए जिन विशिष्ट कार्यों से उनकी भिन्नता सूचित होती है, वे द्रव्य और माल के कार्यों की भिन्नता के अलावा और कुछ नहीं हो सकते। उत्पादन की पूंजीवादी प्रक्रिया की सीधी उपज माल पूंजी उसके उद्भव की सूचक है और इसलिए रूप में वह द्रव्य पूंजी की अपेक्षा अधिक संगत और कम दुरूह है। द्रव्य पूंजी में उत्पादन प्रक्रिया का कोई भी चिह्न शेष नहीं रहता, क्योंकि सामान्यतः मालों के सभी विशेष उपयोग रूप द्रव्य रूप में विलुप्त हो जाते हैं। इसलिए जब स्वयं द्र' माल पूंजी की हैसियत से कार्य करता है, जब वह उत्पादक प्रक्रिया की सीधी उपज, न कि इस उपज का परिवर्तित रूप होता है, तभी उसके विलक्षण रूप का लोप होता है, अर्थात स्वयं द्रव्य सामग्री के उत्पादन में उसका लोप होता है। उदाहरण के लिए, सोने के उत्पादन में सूत्र होगा : $\text{द्र} - \text{मा} <^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}} \ldots \text{उ} \ldots \text{द्र}' (\text{द्र} + \text{द्र})$, जहां द्र′ माल उत्पाद के रूप में सामने आयेगा, क्योंकि सोने के उत्पादन के तत्वों के लिए प्रथम द्र में, द्रव्य पूंजी में जितना सोना पेशगी दिया गया था, उसकी तुलना में उ अधिक सोना देता है। इस प्रसंग में द्र ... द्र′ (द्र + द्र) अभिव्यंजना की असंगत प्रकृति लुप्त हो जाती है, जहां धनराशि का एक अंश उसी धनराशि के दूसरे अंश की जननी बनकर प्रकट होता है।

४. समग्र रूप में परिपथ

हम देख चुके हैं कि परिचलन प्रक्रिया में उसके पहले दौर का अन्त होने पर व्याघात उत्पन्न होता है। पहला दौर है $\text{द्र} - \text{मा} <^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$ और अवरोध उत्पन्न करता है उत्पादन उ, जिसमें बाज़ार में ख़रीदे गये माल श्र और उ सा उत्पादक पूंजी के भौतिक और मूल्यगत संघटकों के रूप में खपते हैं। इस खपत की उपज एक नया माल मा′ है, जिसका सार और मूल्य परिवर्तित हो चुके होते हैं। अवरुद्ध परिचलन प्रक्रिया, द्र — मा को अब मा — द्र द्वारा पूरा करना होगा। परिचलन के इस दूसरे और अन्तिम दौर का वाहक है मा′, जो मूल मा से सार और मूल्य की दृष्टि से भिन्न है। अतः परिचलन श्रृंखला इस तरह प्रकट होती है: १) $\text{द्र} - \text{मा}_{१}$; २) $\text{मा}_{२} - \text{द्र}'$। यहां पहले माल, $\text{मा}'_{१}$, के दूसरे दौर में एक अधिक मूल्य का और भिन्न उपयोग रूप का माल, $\text{मा}'_{२}$, प्रक्रिया में अवरोध के समय उ के कार्य से उत्पन्न होता है, जो मा के तत्वों से, जो उत्पादक पूंजी उ के अस्तित्व के रूप हैं, मा′ के उत्पादन से पैदा हुआ। तथापि पूंजी अपने जिस प्रथम रूप में हमारे सामने प्रकट हुई थी (खंड १, अध्याय ४, १),* अर्थात द्र — मा — द्र′ (विस्तारित रूप: १) $\text{द्र} - \text{मा}_{१}$;

* हिन्दी संस्करण : अध्याय ४। — सं०

२) $\text{मा}_२$ — द्र′) वह उसी माल को दो बार दिखाता है। दोनों बार वह एक ही माल होता है, जिसमें द्रव्य पहले दौर में परिवर्तित होता है, और दूसरे दौर में वह अधिक द्रव्य में पुनः-परिवर्तित होता है। इस तात्विक भेद के बावजूद दोनों परिचलनों में यह सामान्यता है कि उनके पहले दौर में द्रव्य माल में परिवर्तित होता है, और दूसरे दौर में माल द्रव्य में परिवर्तित होता है, और यह कि पहले दौर में ख़र्च किया हुआ द्रव्य दूसरे दौर में वापस आ जाता है। एक ओर दोनों में यह सामान्यता है कि द्रव्य अपने प्रारंभ बिन्दु तक फिर वापस आ जाता है और दूसरी ओर यह कि वापस आनेवाला द्रव्य पेशगी दिये धन से अधिक होता है। इस हद तक द्र — मा ... मा′ — द्र′ सूत्र द्र — मा — द्र′ के सामान्य सूत्र में समाविष्ट होता है।

इससे यह निष्कर्ष भी निकलता है कि परिचलन के द्र — मा और मा′ — द्र′ के दोनों रूपान्तरणों में प्रति बार मूल्यों के एकसाथ विद्यमान समान परिमाण एक दूसरे के सामने आते हैं और एक दूसरे को प्रतिस्थापित करते हैं। मूल्य परिवर्तन का सम्बन्ध केवल रूपान्तरण उ से, उत्पादन प्रक्रिया से होता है, जो इस प्रकार परिचलन के केवल रूपात्मक रूपान्तरण की तुलना में पूंजी का वास्तविक रूपान्तरण जान पड़ता है।

आइये, अब हम सम्पूर्ण गति द्र — मा ... उ ... मा′ — द्र′, अथवा उसके और विस्तारित रूप द्र — मा $<^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$ ... उ ... मा′ (मा + मा) — द्र′ (द्र + द्र) को लेते हैं। यहां पूंजी एक ऐसे मूल्य के रूप में प्रकट होती है, जो परस्पर सम्बद्ध और परस्पर निर्भर रूपान्तरणों की शृंखला से गुज़रता है; इस शृंखला के ये रूपान्तरण सम्पूर्ण प्रक्रिया के उतने ही दौर अथवा मंज़िलें हैं। इनमें से दो दौर परिचलन क्षेत्र के अन्तर्गत हैं और एक उत्पादन क्षेत्र के अन्तर्गत। इनमें से प्रत्येक दौर में पूंजी मूल्य का एक भिन्न रूप होता है और उसी के अनुरूप उसका भिन्न, विशेष कार्य होता है। इस गति की परिधि में पेशगी दिया मूल्य अपने को क़ायम ही नहीं रखता, वरन वृद्धि करता है, परिमाण में बढ़ता है। अन्त में वह आख़िरी मंजिल में उसी रूप को पुनः प्राप्त करता है, जो समूचे तौर पर प्रक्रिया के आरम्भ में उसे प्राप्त था। अतः अपनी सम्पूर्णता में यह प्रक्रिया परिपथों में गति की प्रक्रिया है।

अपने परिचलन की विभिन्न मंजिलों में पूंजी मूल्य जो दो रूप धारण करता है, वे **द्रव्य पूंजी तथा माल पूंजी** के रूप हैं। जिस रूप का सम्बन्ध उत्पादन की मंज़िल से है, वह **उत्पादक पूंजी** का रूप है। जो पूंजी अपने सम्पूर्ण परिपथ के दौरान ये रूप धारण करती है और फिर उन्हें उतार देती है और प्रत्येक रूप धारण करने की अवधि में उस रूप विशेष के अनुसार कार्य करती है, वह **औद्योगिक पूंजी** है। यहां औद्योगिक शब्द इस अर्थ में लिया गया है कि पूंजीवादी आधार पर चलनेवाली प्रत्येक उद्योग शाखा उसके अन्तर्गत है।

इसलिए द्रव्य पूंजी, माल पूंजी और उत्पादक पूंजी ऐसी संज्ञाएं नहीं हैं, जिनसे पूंजी की स्वतन्त्र कोटियों का बोध होता हो, जिनके कार्य उसी तरह भिन्न और स्वतन्त्र उद्योग शाखाओं के भी कार्य होते हों। वे केवल औद्योगिक पूंजी के विशेष कार्यात्मक रूप प्रकट करते हैं जो इन तीनों रूपों को बारी-बारी से धारण करती है।

पूंजी अपना परिपथ सामान्य रूप में तभी तक पूरा करती है कि जब तक उसके विभिन्न दौर किसी अवरोध के बिना एक दौर से दूसरे में प्रवेश करते जाते हैं। यदि पूंजी के पहले

दौर द्र – मा में उसकी गति रुक जाये, तो द्रव्य पूंजी अपसंचय का जड़ रूप धारण कर लेगी। यदि उत्पादन के दौर में उसकी गति रुक जाये, तो एक ओर उत्पादन साधनों की कार्यशीलता ठप हो जायेगी, दूसरी ओर श्रम शक्ति भी बेकार पड़ी रहेगी। यदि पूंजी के अन्तिम दौर मा' – द्र' में उसकी गति रुक जाये, तो अनबिके माल का ढेर लग जायेगा और वह परिचलन प्रवाह को अवरुद्ध कर देगा।

किन्तु सारी प्रक्रिया का नैसर्गिक रूप ही ऐसा होता है कि स्वयं परिपथ पूंजी के विभिन्न दौरों में किन्हीं निश्चित अवधियों के लिए पूंजी की स्थिरता को अनिवार्य कर देता है। अपने प्रत्येक दौर में औद्योगिक पूंजी किसी एक निश्चित रूप से – द्रव्य पूंजी, उत्पादक पूंजी और माल पूंजी के रूप से बंधी होती है। नये रूपान्तरण के दौर में प्रविष्ट हो पाने के लिए जो रूप दरकार है, उसे वह तब तक प्राप्त नहीं कर सकती कि जब तक कि वह प्रत्येक रूप विशेष के अनुसार कार्य विशेष सम्पन्न न कर ले। यह स्पष्ट करने के लिए अपने उदाहरण में हमने यह मान लिया है कि उत्पादन की मंज़िल में माल का जो परिमाण निर्मित होता है, उसका पूंजी मूल्य उस समस्त मूल्य राशि के बराबर होता है, जो प्रारम्भ में द्रव्य रूप में पेशगी दी गई थी। दूसरे शब्दों में द्रव्य रूप में पेशगी दिया हुआ समस्त पूंजी मूल्य थोक रूप में एक मंज़िल पार करके दूसरी में पहुंच जाता है। लेकिन हम देख चुके हैं (खंड १, अध्याय ६)* कि स्थिर पूंजी का एक अंश, वास्तविक श्रम उपकरण (जैसे कि मशीनें), उत्पादन की प्रक्रियाओं को अनेकानेक बार दोहराते हुए निरन्तर नये सिरे से काम में आते हैं। इस कारण वे अपना मूल्य उत्पाद में अंशतः स्थानान्तरित करते हैं। हम आगे देखेंगे कि यह बात किस हद तक पूंजी की वृत्तीय गति को बदलती है। यहां केवल इतना कहना काफ़ी है: हमारे उदाहरण में ४२२ पाउंड रक़म की उत्पादक पूंजी के मूल्य में कारख़ाने की इमारतों, मशीनों, आदि की औसत छीजन ही शामिल की गई है। दूसरे शब्दों में मूल्य का केवल वह भाग शामिल किया गया है, जिसे उन्होंने, १०,६०० पाउंड कपास को १०,००० पाउंड सूत में बदलते हुए – और यह एक हफ़्ते की ६० घण्टे की कताई की उपज है – सूत में स्थानान्तरित किया था। उत्पादन के जिन साधनों में पेशगी दी ३७२ पाउंड की स्थिर पूंजी रूपान्तरित हुई थी, वे श्रम उपकरण, इमारतें, मशीनें, आदि यों सामने आये थे, मानो उन्हें बाज़ार से हफ़्तावार दर से किराये पर लिया गया हो। लेकिन इससे सारतत्व में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। किसी एक हफ़्ते में जितना सूत तैयार किया गया है, उससे, अर्थात १०,००० पाउंड सूत से कुछ वर्षों में सन्निहित हफ़्तों की संख्या को गुणा करें, तो हम श्रम के उन औज़ारों का समूचा मूल्य सूत में स्थानान्तरित कर देंगे, जो इस अवधि में ख़रीदे गये और खपे हैं। तो यह स्पष्ट है कि इसके पहले कि पेशगी दी द्रव्य पूंजी उत्पादक पूंजी उ का कार्य करे, उसे इन उपकरणों में रूपान्तरित होना होगा; अतः द्र – मा का पहला दौर पूरा कर डालना होगा। हमारे उदाहरण में यह भी स्पष्ट है कि ४२२ पाउंड का जो पूंजी मूल्य उत्पादन प्रक्रिया के दौरान सूत में मूर्त होता है, वह १०,००० पाउंड सूत के मूल्य का अंश तब तक नहीं बन सकता, मा' – द्र' के परिचलन दौर में प्रवेश नहीं कर सकता कि जब तक वह तैयार न हो जाये। जब तक वह काता नहीं जाता, तब तक बेचा नहीं जा सकता।

---

* हिन्दी संस्करण: अध्याय ८। – सं०

सामान्य सूत्र में उ का उत्पाद ऐसा भौतिक पदार्थ माना गया है, जो उत्पादक पूंजी के तत्वों से भिन्न है – एक ऐसी चीज़, जो उत्पादन प्रक्रिया से अलग विद्यमान है और जिसका उपयोग रूप उत्पादन तत्वों के उपयोग रूप से भिन्न है। उत्पादन प्रक्रिया का परिणाम जब किसी वस्तु का रूप धारण करता है, तब सदा ही ऐसा होता है; जब उत्पाद का एक अंश पुनः प्रारम्भ उत्पादन के एक तत्व की हैसियत से उसमें पुनः प्रवेश करता है, तब भी ऐसा होता है। उदाहरण के लिए, अनाज अपने ही उत्पादन के लिए बीज का काम करता है, लेकिन उपज केवल अनाज ही होती है। इसलिए श्रम शक्ति, औज़ारों, खाद जैसे सम्बद्ध तत्वों के रूपों से उसका रूप भिन्न होता है। लेकिन उद्योग की कुछ स्वतन्त्र शाखाएं होती हैं, जिनमें उत्पादन प्रक्रिया का उत्पाद कोई नई भौतिक वस्तु नहीं होता, कोई माल नहीं होता। इनमें आर्थिक दृष्टि से केवल संचार उद्योग महत्वपूर्ण है, फिर वह चाहे सामान और लोगों को ढोने के अपने विशेष परिवहन कार्य में लगा हो, चाहे चिट्ठियां, तार, संदेश, वग़ैरह पहुंचाने भर का काम कर रहा हो।

इस विषय पर अ० चुप्रोव[8] ने लिखा है: "कारख़ानेदार चाहे तो पहले माल तैयार कर ले और फिर उपभोक्ताओं की तलाश करे" [तैयार होने पर उसका उत्पाद उत्पादन प्रक्रिया से निकल जाता है और उससे पृथक माल के रूप में परिचलन में प्रवेश करता है]; "उत्पादन और उपभोग ऐसी दो क्रियाएं हैं, जो देश-काल में एक दूसरे से अलग हैं। परिवहन उद्योग किसी नये उत्पाद का निर्माण नहीं करता, केवल चीज़ों और लोगों को स्थानान्तरित करता है। वहां ये दोनों क्रियाएं एक साथ होती जाती हैं। इसकी सेवाओं का" [स्थानान्तरण का] "जैसे ही उत्पादन होता है, वैसे ही उनका उपभोग भी हो जाता है। इस कारण रेलें जिस परिधि में अपनी सेवाएं बेच सकती हैं, वह रेलवे लाइन के आसपास, बहुत से बहुत, ५० वेर्स्ता (५३ किलोमीटर) तक होती है।"

चाहे लोगों का परिवहन हो, चाहे सामान का, परिणाम उनका स्थान परिवर्तन ही होता है। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि सूत अब इंगलैण्ड में न हो, जहां उसका उत्पादन हुआ था, बल्कि भारत में हो।

किन्तु परिवहन उद्योग जो चीज़ बेचता है, वह स्थान परिवर्तन ही है। उसका उपयोगी परिणाम परिवहन प्रक्रिया से, अर्थात परिवहन उद्योग की उत्पादक प्रक्रिया से, अभिन्न रूप में जुड़ा हुआ है। लोग और सामान परिवहन के साधनों के साथ-साथ यात्रा करते हैं और यह यात्रा कार्य, यह चलन, उत्पादन की वह प्रक्रिया है, जो परिवहन साधनों से सम्पन्न होती है। उपयोगी परिणाम का उपभोग उत्पादन प्रक्रिया के दौरान ही किया जा सकता है। इस प्रक्रिया से भिन्न किसी उपयोगिता की हैसियत से वह विद्यमान नहीं रहता। वह उपयोग में आनेवाली 'ऐसी चीज़ नहीं है कि जो जब तक उत्पादित न कर ली जाये, तब तक व्यापार की चीज़ न बनेगी, वस्तु के रूप में जिसका परिचलन न होगा। किसी अन्य माल के समान इस उपयोगी परिणाम का विनिमय मूल्य भी उन उत्पादन तत्वों (श्रम शक्ति और उत्पादन साधनों) के मूल्य द्वारा निर्धारित होता है, जो उसमें उपभुक्त हुए हैं, और इसके साथ उस बेशी मूल्य द्वारा निर्धारित होता है, जिसका सृजन परिवहन में लगे हुए श्रमिकों के बेशी श्रम ने किया है। उपभोग से यह उपयोगी परिणाम वही सम्बन्ध रखता है, जो अन्य पण्य वस्तुएं रखती हैं।

---

[8] अ० चुप्रोव, 'रेल-उद्योग', मास्को, १८७५; पृष्ठ ६९-७० [रूसी में। – सं०]।

यदि उसका उपभोग अलग, अकेले किया जाता है, तो उसका मूल्य उसके उपभोग के दौरान ग़ायब हो जाता है। यदि उसका उपभोग उत्पादक ढंग से किया जाये, जिससे वह परिवाहित किये जानेवाले मालों के उत्पादन की ख़ुद एक मंज़िल बन जाती है तो उसका मूल्य, अतिरिक्त मूल्य की हैसियत से स्वयं माल में स्थानान्तरित हो जाता है। इसलिए परिवहन उद्योग के लिए सूत्र यह होगा: $\text{द्र} - \text{मा} <^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}} \ldots \text{उ} - \text{द्र}'$, क्योंकि जिसके लिए पैसा दिया जाता है और जिसका उपभोग किया जाता है, वह उत्पादन प्रक्रिया ही है, न कि उससे अलग और भिन्न कोई उत्पाद। इसलिए इस सूत्र का लगभग वही रूप होता है, जो बहुमूल्य धातुओं के उत्पादन के सूत्र का होता है। अन्तर केवल इतना है कि इस प्रसंग में द्र' उत्पादन प्रक्रिया के दौरान सृजित उपयोगी परिणाम का परिवर्तित रूप है और इस प्रक्रिया में उत्पादित और उससे उत्सारित सोने-चांदी का भौतिक रूप नहीं है।

औद्योगिक पूंजी पूंजी के अस्तित्व का वह एकमात्र रूप है जिसमें बेशी मूल्य अथवा बेशी उत्पाद को हस्तगत करना ही पूंजी का कार्य नहीं है, वरन इसके साथ-साथ उसका निर्माण भी है। अतः उसके लिए उत्पादन का पूंजीवादी स्वरूप अनिवार्य है। उसका अस्तित्व पूंजीपतियों और उजरती मजदूरों के वर्ग विरोध का सूचक है। जिस सीमा तक वह सामाजिक उत्पादन पर नियंत्रण स्थापित कर लेती है, उस सीमा तक तकनीक और श्रम प्रक्रिया के सामाजिक गठन में और इनके साथ समाज के आर्थिक-ऐतिहासिक ढांचे में भी आमूल परिवर्तन आ जाता है। पूंजी के अन्य प्रकार, जो औद्योगिक पूंजी से पहले सामाजिक उत्पादन की ऐसी परिस्थितियों में उदित हुए थे कि जो अतीत में विलीन हो गई हैं, या अब विलीन हो रही हैं, न केवल वे सब उसके अधीन ही हो जाते हैं और उसी के अनुरूप उनके कार्यों की क्रियाविधि भी परिवर्तित हो जाती है, बल्कि वे उसी को अपना एकमात्र आधार बनाकर आगे बढ़ते हैं और इस आधार के साथ ही उनका जीवन और मरण, उत्थान और पतन होता है। द्रव्य पूंजी और माल पूंजी जहां तक व्यवसाय की विशेष शाखाओं की वाहक बनकर औद्योगिक पूंजी के साथ-साथ कार्य करती हैं, औद्योगिक पूंजी के उन विभिन्न कार्यात्मक रूपों के अस्तित्व के ढंगों के अलावा और कुछ नहीं हैं, जिन्हें परिचलन क्षेत्र में वह कभी धारण करती है, तो कभी त्याग देती है और जिन्होंने श्रम के सामाजिक विभाजन के कारण स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त कर लिया है और जो एकांगी रूप में विकसित हुए हैं।

द्र . . . द्र' परिपथ एक ओर माल के सामान्य परिचलन में घुल-मिल जाता है, उसी का अंश बनकर उससे व्युत्पन्न होता है और उसमें वापस लौट जाता है। दूसरी ओर वैयक्तिक पूंजीपति के लिए वह पूंजी मूल्य की स्वतंत्र गति का निर्माण करता है, जो अंशतः मालों के सामान्य परिचलन की परिधि में सम्पन्न होती है, और अंशतः उसके बाहर, लेकिन जो हमेशा अपना स्वतंत्र स्वरूप बनाये रहती है। इसका पहला कारण यह है कि उसके दो दौर, द्र — मा और मा' — द्र', जो परिचलन की परिधि में सम्पन्न होते हैं, पूंजी की गति के ही दौर हैं, इसलिए कार्यात्मक रूप में उनके निश्चित स्वरूप होते हैं। द्र — मा में मा भौतिक रूप में श्रम शक्ति और उत्पादन साधनों की शक्ल में सामने आता है; मा' — द्र' में पूंजी मूल्य का और उसके साथ बेशी मूल्य का भी सिद्धिकरण होता है। दूसरा कारण यह है कि

उत्पादन प्रक्रिया उ में उत्पादक उपभोग समाहित है। तीसरा कारण यह है कि द्रव्य अपने प्रारम्भ बिन्दु पर लौट आता है, और इससे द्र ... द्र' की गति एक परिपथ बन जाती है, जो अपने में पूर्ण होता है।

इसलिए प्रत्येक वैयक्तिक पूंजी अपने दो परिचलनार्धों, द्र — मा और मा' — द्र' में एक ओर मालों के सामान्य परिचलन की कर्ता होती है, जिसमें या तो वह द्रव्य अथवा माल के रूप में कार्य करती हैं, या शृंखलित पड़ी रहती है और इस प्रकार मालों की दुनिया में जो रूपान्तरण होते रहते हैं, उनकी सामान्य शृंखला की एक कड़ी बन जाती है। दूसरी ओर सामान्य परिचलन की परिधि में वह अपना स्वतन्त्र परिपथ पूरा करती है, जिसमें उत्पादन का क्षेत्र एक संक्रमण की मंजिल होता है और जिसमें पूंजी अपने प्रारंभ बिन्दु पर उसी रूप में लौट आती है, जिस रूप में वहां से चली थी। स्वयं अपने परिपथ के भीतर, जिसमें उत्पादन प्रक्रिया के दौरान उसका वास्तविक रूपान्तरण शामिल है, पूंजी इसके साथ ही अपने मूल्य का परिमाण भी बदल देती है। वह मात्र द्रव्य मूल्य के रूप में वापस नहीं आती, वरन संवर्धित और परिवर्धित द्रव्य मूल्य के रूप में लौटती है।

अन्त में हम अन्य रूपों के साथ, जिनका विश्लेषण हम आगे करेंगे, पूंजी की वृत्तीय गति के एक विशेष रूप द्र — मा ... उ ... मा' — द्र' पर विचार करेंगे। हम देखेंगे कि निम्नलिखित लक्षण इसकी विशिष्टता दर्शाते हैं:

१. यह रूप **द्रव्य पूंजी का परिपथ** बनकर आता है क्योंकि औद्योगिक पूंजी अपने द्रव्य रूप में द्रव्य पूंजी की हैसियत से सम्पूर्ण प्रक्रिया का प्रारम्भ बिन्दु और प्रत्यावर्त्तन बिन्दु बनती है। यह सूत्र खुद यह तथ्य प्रकट करता है कि द्रव्य यहां द्रव्य के रूप में व्यय नहीं किया जाता, वरन केवल पेशगी दिया जाता है, इसलिए वह पूंजी का द्रव्य रूप मात्र है, द्रव्य पूंजी है। फिर यह सूत्र यह भी प्रकट करता है कि इस गति का निर्धारक लक्ष्य विनिमय मूल्य है, न कि उपयोग मूल्य। चूंकि मूल्य का द्रव्य रूप ही वह स्वतन्त्र और साकार रूप है, जिसमें मूल्य प्रकट होता है, इसलिए परिचलन का रूप द्र ... द्र' जिसके प्रारम्भ और प्रत्यावर्त्तन बिन्दु वास्तविक द्रव्य हैं, अत्यन्त सजीव ढंग से यह प्रकट करता है कि पूंजीवादी उत्पादन का अप्रतिरोध्य प्रेरक हेतु धनोपार्जन है। उत्पादन प्रक्रिया धनोपार्जन के उद्देश्य में मात्र एक अपरिहार्य मध्यवर्ती कड़ी बनकर एक अनिवार्य बुराई के रूप में ही सामने आती है। इसलिए जिन राष्ट्रों में पूंजीवादी उत्पादन पद्धति का चलन है, वे सभी समय-समय पर उत्पादन प्रक्रिया के बीच में आये बिना ही धनोपार्जन की बेतहाशा कोशिश की पकड़ में आते रहते हैं।

२. इस परिपथ में उत्पादन की मंजिल, उ का कार्य परिचलन के दो दौरों द्र — मा ... मा' — द्र' के बीच व्याघात बनकर आता है। अपनी बारी में यह दौर द्र — मा — द्र' के साधारण परिचलन में मध्यवर्ती कड़ी बनकर आता है। उत्पादन की प्रक्रिया परिपथ निर्मात्री प्रक्रिया के रूप में, औपचारिकतः और स्पष्टतः वह पूंजीवादी उत्पादन पद्धति में जैसी है, वैसे ही रूप में सामने आती है। वह पेशगी दिये मूल्य के प्रसार का साधन मात्र है और इसलिए स्वयं समृद्धिकरण ही उत्पादन का उद्देश्य है।

३. दौरों की इस शृंखला की शुरूआत द्र — मा से होती है, इसलिए परिचलन की

दूसरी कड़ी मा′ — द्र′ है। दूसरे शब्दों में प्रारम्भ बिन्दु द्र द्रव्य पूंजी है, जिसे स्वविस्तारित होना है। इसका अंतिम बिन्दु द्र′, स्वविस्तारित द्रव्य पूंजी द्र + द्र है, जहां अपनी सन्तान द्र के साथ द्र सिद्धिकृत पूंजी बनकर सामने आता है। यह बात उ और मा′ के अन्य दो परिपथों से द्र के इस परिपथ की भिन्नता सूचित करती है, और वह भी दो तरह से। एक ओर तो दोनों चरमों के द्रव्य रूप द्वारा। और द्रव्य मूल्य के अस्तित्व का स्वतंत्र और साकार रूप है; वह उत्पाद का ऐसा मूल्य है, जो उसके स्वतंत्र मूल्य रूप में प्रकट होता है, जिसमें माल के उपयोग मूल्य का चिह्न भी शेष नहीं रहा है। दूसरी ओर उ . . . उ का रूप अनिवार्यत: उ . . . उ′(उ + उ) नहीं बन जाता, और मा′ . . . मा′ रूप में, दोनों चरमों के बीच मूल्य में कुछ भी अन्तर दिखाई नहीं देता। इसलिए द्र — द्र′ सूत्र की यह विशिष्टता है कि एक तरफ़ पूंजी मूल्य उसका प्रारम्भ बिन्दु है और विस्तारित पूंजी मूल्य उसका प्रत्यावर्त्तन बिन्दु है; जिससे पूंजी मूल्य का पेशगी दिया जाना इस समूची क्रिया का साधन और विस्तारित पूंजी मूल्य उसका साध्य प्रतीत होता है। दूसरी तरफ़ यह सम्बन्ध द्रव्य रूप में, स्वतंत्र मूल्य रूप में प्रकट होता है; इसलिए द्रव्य पूंजी द्रव्यप्रसू द्रव्य की तरह प्रकट होती है। मूल्य द्वारा बेशी मूल्य का सृजन इस प्रक्रिया के अथ और इति के रूप में ही नहीं, बल्कि दमकते धन के रूप में स्पष्टत: व्यक्त होता है।

४. चूंकि द्र — मा के पूरक तथा अंतिम दौर मा′ — द्र′ के परिणामस्वरूप प्राप्त द्रव्य पूंजी द्र′ का रूप पूर्णत: वही होता है, जिसमें उसने अपना पहला परिपथ शुरू किया था, इसलिए इस परिपथ से निकलने के साथ वह संवर्धित (संचित) द्रव्य पूंजी के रूप में उसी परिपथ को फिर से शुरू कर सकती है, यानी द्र′ = द्र + द्र और कम से कम वह द्र . . . द्र′ रूप में व्यक्त नहीं होती है, जिसमें परिपथ की पुनरावृत्ति में द्र का परिचलन द्र के परिचलन से अलग हो जाता है। अत: उसके एक कालिक रूप में लेने पर द्रव्य पूंजी का परिपथ औपचारिक रूप में केवल स्वविस्तार तथा संचय की प्रक्रिया को ही व्यक्त करता है। उसमें उपभोग केवल उत्पादक उपभोग के रूप में, द्र — मा $<^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$ द्वारा अभिव्यक्त होता है, और वैयक्तिक पूंजी के इस परिपथ में केवल यही उपभोग सम्मिलित किया जाता है। द्र — श्र श्रमिक के लिए श्र — द्र अथवा मा — द्र होता है। इसलिए परिचलन का पहला दौर ही उसका वैयक्तिक उपभोग श्र — द्र — मा (निर्वाह साधन) संपन्न करता है। दूसरा दौर द्र — मा अब वैयक्तिक पूंजी के परिपथ में नहीं आता, वरन यह उसकी प्रवर्तक और उसकी आधारिका बन जाती है, क्योंकि श्रमिक को और बातें दरकिनार, पहले जिन्दा रहना होता है, इसलिए व्यक्तिगत उपभोग द्वारा उसे अपने को बनाये रखना होता है, ताकि वह बाज़ार में ऐसी सामग्री के रूप में हमेशा रहे, जिसका शोषण पूंजीपति कर सकता है। पर यह व्यक्तिगत उपभोग स्वयं यहां केवल पूंजी द्वारा श्रम शक्ति के उत्पादक उपभोग की एक शर्त के रूप, और इसलिए केवल उसी सीमा तक माना गया है कि जहां तक मज़दूर अपने व्यक्तिगत उपभोग द्वारा स्वयं को श्रम शक्ति के तौर पर बनाये रखता है और स्वयं को

पुनरुत्पादित करता है। किन्तु उ सा, वास्तविक माल, जो पूंजी के परिपथ में प्रवेश करते हैं, उत्पादक उपभोग के पोषाहार मात्र होते हैं। श्र – द्र क्रिया श्रमिक के व्यक्तिगत उपभोग का संवर्धन करती है, निर्वाह साधनों को उसके रक्त-मांस में परिवर्तित होने देती है। ठीक है कि पूंजीपति का होना भी ज़रूरी है, उसका भी जीवित रहना और उपभोग करना ज़रूरी है, जिससे कि वह पूंजीपति का कार्य कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दरअसल उसे उतना ही उपभोग करना होता है, जितना श्रमिक करता है, और परिचलन प्रक्रिया के इस रूप में इतनी सी बात ही पूर्वानुमानित है। किन्तु यह बात भी औपचारिक रूप में व्यक्त नहीं की जाती, क्योंकि द्र' से सूत्र पूरा हो जाता है, अर्थात ऐसी परिणति से कि जो संवर्धित द्रव्य पूंजी के रूप में अपना कार्य तुरंत ही फिर शुरू कर सकता है।

मा' – द्र' में मा' की बिक्री प्रत्यक्षत: सम्मिलित होती है, किन्तु मा' – द्र' एक पक्ष के लिए बिक्री है, और दूसरे पक्ष के लिए द्र – मा है, ख़रीदारी है। अन्ततोगत्वा माल अपने उपयोग मूल्य के लिए ही उपभोग प्रक्रिया में प्रवेश करने के लिए ही ख़रीदा जाता है (बिक्री की मध्यवर्ती क्रियाओं पर ध्यान दिये बिना) और यह उपभोग चाहे व्यक्तिगत हो, चाहे उत्पादक, वह ख़रीदी हुई वस्तु की प्रकृति के अनुरूप होता है। पर यह उपभोग वैयक्तिक पूंजी के परिपथ में प्रवेश नहीं करता, जिसका उत्पाद मा' है। इस उत्पाद को परिपथ से ठीक इसी कारण निकाल दिया जाता है कि वह बिक्री का माल है। मा' स्पष्टत: उसके उत्पादक के नहीं, दूसरों के उपभोग के लिए है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वाणिज्य व्यवस्था (जो द्र – मा ... उ ... मा' – द्र' सूत्र पर आधारित है) के कुछ व्याख्याता इस आशय के लंबे-लंबे प्रवचन देते हैं कि अलग-अलग पूंजीपति को उतना ही उपभोग करना चाहिए, जितना श्रमिक करता है, और पूंजीपतियों के राष्ट्र को ख़ुद अपने मालों का उपभोग और सामान्यत: सारी उपभोग प्रक्रिया दूसरे कम बुद्धिमान राष्ट्रों के लिए छोड़ देना चाहिए और स्वयं उन्हें उत्पादक उपभोग को अपना जीवन-कर्तव्य बनाना चाहिए। रूप और विषय की दृष्टि से ये प्रवचन चर्च के पादरियों के तदनुरूप संयम सम्बन्धी प्रवचनों की याद दिलाते हैं।

पूंजी की परिपथीय गति परिचलन और उत्पादन की एकता है। द्र – मा और मा' – द्र' ये दोनों दौर परिचलन क्रियाएं हैं, इसलिए पूंजी का परिचलन मालों के सामान्य परिचलन का अंग है। किन्तु चूंकि कार्यत: वे पूंजी के परिपथ के निश्चित अनुभाग हैं, उसकी मंज़िलें हैं (पूंजी के इस परिपथ का सम्बन्ध परिचलन क्षेत्र से ही नहीं है, वरन उत्पादन क्षेत्र से भी है), इसलिए मालों के सामान्य परिचलन में पूंजी स्वयं अपने परिपथ से गुज़रती है। पहली मंज़िल में मालों का सामान्य परिचलन पूंजी के लिए ऐसा आकार ग्रहण करने के साधन का काम देता है, जिसमें वह उत्पादक पूंजी का कार्य कर सकती है। दूसरी मंज़िल में वह उस माल रूप को उतारने के काम आता है, जिसमें पूंजी अपने परिपथ को नये सिरे से चालू नहीं कर सकती। इसके साथ ही वह पूंजी के लिए यह सम्भावना उत्पन्न कर देता है कि उसमें जो बेशी मूल्य जुड़ गया है, उसके परिचलन से वह ख़ुद अपने परिपथ को अलग कर ले।

इसलिए द्रव्य पूंजी द्वारा निष्पन्न परिपथ अत्यधिक एकांगी होता है, और इस प्रकार वह औद्योगिक पूंजी के परिपथ के प्रकट होने का सबसे स्पष्ट और अभिलक्षक रूप है। वह पूंजी, जिसका अनिवार्य प्रेरक हेतु और उद्देश्य – मूल्य का स्वविस्तार, धनोपार्जन और संचय – इस प्रकार स्पष्ट रूप में प्रकट हो जाता है (महंगे दाम बेचने के लिए सस्ता ख़रीदना)। इस कारण कि पहला दौर द्र – मा है, यह तथ्य भी प्रकट हो जाता है कि उत्पादक पूंजी के संघटक अंगों का उद्भव माल बाज़ार में होता है और पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया आम तौर से परिचलन पर, व्यापार पर निर्भर होती है। द्रव्य पूंजी का परिपथ मात्र माल उत्पादन ही नहीं है; यह स्वयं केवल परिचलन के द्वारा सम्भव होता है और उसकी पूर्वापेक्षा करता है। यह बात स्पष्ट है और किसी तथ्य से नहीं, तो इसी से कि परिचलन के अन्तर्गत द्र रूप पेशगी दिये पूंजी मूल्य का प्रथम और विशुद्ध रूप बनकर प्रकट होता है और ऐसा अन्य दोनों परिपथ रूपों में नहीं होता।

द्रव्य पूंजी का परिपथ हमेशा औद्योगिक पूंजी की सामान्य अभिव्यंजना बना रहता है, क्योंकि उसमें पेशगी मूल्य का स्वविस्तार सदा ही समाहित होता है। उ ... उ में पूंजी की द्रव्य अभिव्यंजना केवल उत्पादन तत्वों की क़ीमत के रूप में ही और इस तरह लेखा मुद्रा में व्यक्त मूल्य के रूप में ही प्रकट होती है और इसी रूप में बहीखाते में नियत की जाती है।

जब यह नवसक्रिय पूंजी मुद्रा रूप में पहले पहल पेशगी दी जाती है और फिर उसी रूप में वापस ले ली जाती है, यह काम चाहे उद्योग की एक शाखा से दूसरी शाखा में जाने से होता हो, या किसी व्यवसाय से औद्योगिक पूंजी के वापस लेने से होता हो, तब द्र ... द्र' औद्योगिक पूंजी के परिपथ का एक विशेष रूप बन जाता है। इसमें पूंजी की हैसियत से उस बेशी मूल्य की कार्यशीलता शामिल है, जो पहले द्रव्य रूप में पेशगी दिया गया था। यह बात तब सर्वाधिक स्पष्ट हो जाती है, जब बेशी मूल्य उस व्यवसाय से भिन्न, जहां उसकी उत्पत्ति हुई थी, किसी दूसरे व्यवसाय में कार्यशील होता है। सम्भव है कि द्र ... द्र' किसी पूंजी का पहला परिपथ हो; सम्भव है कि वह उसका अन्तिम परिपथ हो; हो सकता है कि उसे समग्र सामाजिक पूंजी का रूप माना जाये। वह पूंजी का ऐसा रूप है, जिसे व्यवसाय में नये सिरे से लगाया गया है, फिर चाहे उसे अभी हाल में द्रव्य रूप में संचित पूंजी की हैसियत से लगाया जाये या किसी पुरानी पूंजी की हैसियत से, जिसे उद्योग की एक शाखा से दूसरी में स्थानान्तरित करने के लिए पूर्णतः द्रव्य में रूपान्तरित किया गया है।

ऐसा रूप होने के कारण, जो सभी परिपथों में सदैव समाहित होता है, द्रव्य पूंजी यह परिपथ निश्चित रूप से पूंजी के केवल उसी अंश के लिए पूरा करती है, जो बेशी मूल्य, अर्थात परिवर्ती पूंजी पैदा करता है। पेशगी मज़दूरी देने का साधारण रूप है द्रव्य में अदायगी। इस प्रक्रिया को अपेक्षाकृत थोड़ी-थोड़ी अवधि के बाद नये सिरे से चालू करना होता है, क्योंकि मज़दूर को तो रोज़ कुआं खोदना और रोज़ पानी पीना होता है। इसलिए पूंजीपति हमेशा ही मज़दूर के सामने द्रव्य पूंजीपति की हैसियत से आयेगा और उसकी पूंजी द्रव्य पूंजी बनकर आयेगी। यहां वैसा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष लेखा-संतुलन सम्भव नहीं है, जैसा हम उत्पादन साधनों की ख़रीदारी और उत्पादित माल की बिक्री में देखते हैं (जिससे द्रव्य पूंजी का अधिकांश दरअसल माल के रूप में ही सामने आता है तथा द्रव्य केवल लेखा मुद्रा के रूप में और अन्त में लेखा-संतुलन के दौरान ही नक़दी के रूप में)। दूसरी ओर परिवर्ती पूंजी से

उत्पन्न होनेवाले बेशी मूल्य का एक अंश पूंजीपति अपने व्यक्तिगत उपभोग पर खर्च करता है, जिसका सम्बन्ध खुदरा व्यापार से होता है और रास्ता चाहे जितना चक्करदार हो, बेशी मूल्य का यह अंश हमेशा नक़द, बेशी मूल्य के द्रव्य रूप में खर्च किया जाता है। इससे कुछ नहीं आता-जाता कि बेशी मूल्य का यह अंश कितना बड़ा या छोटा है। परिवर्ती पूंजी हमेशा नये सिरे से द्रव्य पूंजी बनकर प्रकट होती है, जिसे मजदूरी में लगाया जाता है (द्र – श्र) और द्र बेशी मूल्य बनकर आता है, जिसे पूंजीपति के व्यक्तिगत उपभोग की क़ीमत चुकाने पर व्यय किया जाता है। इसलिए द्र पेशगी दिये परिवर्ती पूंजी मूल्य और उसकी वृद्धि द्र को द्रव्य रूप में व्यय किये जाने के लिए अनिवार्यतः इसी रूप में रखा जाता है।

द्र – मा ... उ ... मा′ – द्र′ का सूत्र अपने परिणाम द्र′ = द्र + द्र के साथ बाह्य रूप में भ्रामक है, उसका यह स्वरूप प्रवंचना है। इसका कारण है पेशगी दिये और स्वविस्तारित मूल्य का अपने समतुल्य – द्रव्य – में विद्यमान होना। यहां जोर मूल्य के स्वविस्तार पर नहीं, वरन इस प्रक्रिया के **द्रव्य रूप** पर, इस तथ्य पर है कि मूलतः परिचलन को द्रव्य रूप में जितना मूल्य पेशगी दिया गया था, अन्त में उससे अधिक वापस लिया जाता है। इसलिए जोर इस बात पर है कि पूंजीपति का सोना-चांदी दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता जाता है। तथाकथित मुद्रा व्यवस्था द्र – मा – द्र′ के असंगत रूप की अभिव्यंजना मात्र है। वह ऐसी गति है कि जो केवल परिचलन में सम्पन्न होती है और इसलिए द्र – मा और मा – द्र′ की दोनों क्रियाओं की व्याख्या वह सिवा इसके और किसी प्रकार कर ही नहीं सकती कि दूसरी क्रिया में मा की बिक्री अपने मूल्य से ऊपर है और इसलिए परिचलन में मा के क्रय में जितना धन डाला गया था, उससे ज्यादा अब निकाला जा रहा है। दूसरी ओर एकान्तिक रूप में नियत द्र – मा ... उ ... मा′ – द्र′ अधिक विकसित वाणिज्य प्रणाली का आधार बन जाता है, जहां मालों का परिचलन ही नहीं, वरन उनका उत्पादन भी आवश्यक तत्व बनकर सामने आता है।

द्र – मा ... उ ... मा′ – द्र′ सूत्र का भ्रामक स्वरूप और उसी के अनुरूप भ्रामक व्याख्या वहां विद्यमान होगी, जहां भी इस रूप को एक बार घटित होनेवाला, न कि प्रवहमान और निरन्तर पुनर्नवीन होनेवाला माना जायेगा। इसलिए जहां भी यह रूप परिपथ के अनेक रूपों में एक न माना जाकर उसका एकमात्र रूप माना जायेगा, वहां भ्रम उत्पन्न होगा। किन्तु वह स्वयं दूसरे रूपों की ओर इंगित करता है।

पहली बात तो यही है कि इस समग्र परिपथ का पूर्वाधार उत्पादन प्रक्रिया का पूंजीवादी स्वरूप है और इसलिए इस प्रक्रिया को उसके द्वारा लाई हुई आधारभूत विशिष्ट सामाजिक परिस्थितियों के साथ देखता है। द्र–मा = द्र – मा $<^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$; किन्तु द्र – श्र के लिए माना जायेगा कि उजरती मजदूर पहले से मौजूद है और इसलिए उत्पादन साधन उत्पादक पूंजी के अंश हैं। अतएव यह माना जायेगा कि श्रम और स्वविस्तार की प्रक्रिया, उत्पादन की प्रक्रिया, पूंजी का कार्य है।

दूसरे, यदि द्र ... द्र′ की आवृत्ति हो, तो द्रव्य रूप में वापसी वैसे ही क्षणभंगुर जान पड़ती है, जैसे पहली मंजिल में द्रव्य रूप जान पड़ता था। उ के वास्ते जगह ख़ाली करने के

लिए द्र — मा ग़ायब हो जाता है। द्रव्य रूप में निरन्तर आवर्त्तनशील पेशगी और द्रव्य रूप में उसकी निरन्तर वापसी परिपथ में निमिष मात्र जैसे लगते हैं।

तीसरे,

द्र — मा ... उ ... मा′ — द्र । द्र — मा ... उ ... मा′ — द्र′ । द्र — मा ... उ ... आदि।

परिपथ की दूसरी आवृत्ति से चलने पर द्र के दूसरे परिपथ के पूरे होने के पहले ही उ . . . मा′ — द्र′ । द्र — मा . . . उ परिपथ प्रकट हो जाता है। इस प्रकार बादवाले सभी परिपथ उ . . . मा′ — द्र — मा . . . उ के रूप के अन्तर्गत विवेचित हो सकते हैं। फलतः प्रथम परिपथ का पहला दौर होने के नाते द्र — मा उत्पादक पूंजी के निरन्तर आवर्तित परिपथ के लिए प्रासंगिक तैयारी मात्र है। और दरअसल द्रव्य पूंजी के रूप में पहली बार लगाई औद्योगिक पूंजी के साथ यही होता है।

दूसरी ओर इसके पहले कि उ का दूसरा परिपथ पूरा हो, पहला, माल पूंजी का परिपथ मा′ — द्र′ । द्र — मा . . . उ . . . मा′ (संक्षेप में मा′ . . . मा′) पूरा हो चुकता है। इस तरह प्रथम रूप में अन्य दो रूप पहले से ही समाहित होते हैं, और इस प्रकार द्रव्य रूप, जहां तक कि वह मूल्य की अभिव्यंजना मात्र नहीं है, वरन समतुल्य रूप में, द्रव्य में, मूल्य की अभिव्यंजना है, विलुप्त हो जाता है।

अन्त में यदि हम नव निवेशित वैयक्तिक पूंजी को लें, जो पहली बार द्र — मा . . . उ . . . मा′ — द्र′ परिपथ पूरा कर रही है, तो द्र — मा प्रारंभिक दौर, उत्पादन की पहली प्रक्रिया का पेशवा होता है, जिससे यह पूजी गुज़रेगी। फलतः द्र — मा का यह दौर पूर्वानुमानित नहीं होता, वरन उत्पादन प्रक्रिया द्वारा अपेक्षित अथवा आवश्यक बनाया जाता है। किन्तु यह बात केवल इस वैयक्तिक पूंजी पर लागू होती है। जब भी पूंजीवादी उत्पादन पद्धति विद्यमान मानी हुई होती है, अत: पूंजीवादी उत्पादन द्वारा निर्धारित सामाजिक परिस्थितियों में औद्योगिक पूंजी के परिपथ का सामान्य रूप द्रव्य पूंजी का परिपथ ही होता है। इसलिए पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया को नवनिवेशित औद्योगिक पूंजी की द्रव्य पूंजी के पहले परिपथ में नहीं, तो उसके बाहर पूर्वापेक्षा के रूप में मान लिया जाता है। इस उत्पादन प्रक्रिया का सातत्य निरन्तर नवीकृत उ . . . उ परिपथ की पूर्वापेक्षा करता है। पहली मंज़िल, द्र — मा $<^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$ में भी यह पूर्वापेक्षा अपनी भूमिका अदा करती है, क्योंकि इसमें एक ओर उजरती मजदूरों के वर्ग का अस्तित्व पूर्वकल्पित होता है और तब दूसरी ओर यह कि उत्पादन साधनों के ग्राहक के लिए जो द्र — मा पहली मंज़िल है, वह उनके विक्रेता के लिए मा′ — द्र′ है। इसलिए मा′ माल पूंजी के अस्तित्व की और इस प्रकार पूंजीवादी उत्पादन के फलस्वरूप स्वयं माल के अस्तित्व की और इस प्रकार उत्पादक पूंजी के कार्य की पूर्वापेक्षा करता है।

अध्याय २

उत्पादक पूंजी का परिपथ

उत्पादक पूंजी के परिपथ का सामान्य सूत्र उ ... मा' — द्र' — मा ... उ है। यह उत्पादक पूंजी की कार्यशीलता के नियतकालिक नवीकरण का, अतः उसके पुनरुत्पादन अथवा पुनरुत्पादन प्रक्रिया के रूप में उसकी मूल्य के स्वविस्तार की ओर लक्षित उत्पादन प्रक्रिया का द्योतक है। यह बेशी मूल्य के न सिर्फ़ उत्पादन, बल्कि नियतकालिक पुनरुत्पादन का भी द्योतक है। यह औद्योगिक पूंजी के उसके उत्पादक रूप में कार्य का द्योतक है और यह कार्य एक बार ही सम्पन्न नहीं होता, वरन उसकी नियतकालिक आवृत्ति होती है जिससे नवीकरण का निर्धारण प्रारम्भ बिन्दु द्वारा होता है। मा' का एक अंश (कुछ मामलों में औद्योगिक पूंजी के निवेश की विभिन्न शाखाओं में) उत्पादन साधनों की हैसियत से उसी श्रम प्रक्रिया में सीधे प्रवेश कर सकता है, जिससे वह माल के रूप में बाहर निकला था। इससे केवल इस अंश के मूल्य का वास्तविक द्रव्य में अथवा प्रतीक द्रव्य में रूपान्तरण बच जाता है, अन्यथा माल अपनी स्वतंत्र अभिव्यंजना केवल लेखा द्रव्य के रूप में पाता है। मूल्य का यह अंश परिचलन में प्रवेश नहीं करता। इस प्रकार उत्पादन प्रक्रिया में वे मूल्य प्रवेश करते हैं, जिनका प्रवेश परिचलन प्रक्रिया में नहीं होता। यही बात मा' के उस अंश के लिए सही है, जिसका उपभोग बेशी उत्पाद के अंश की हैसियत से वस्तुरूप में पूंजीपति करता है। किन्तु पूंजीवादी उत्पादन के लिए इसका कुछ भी महत्व नहीं है। यदि वह कहीं विचारणीय है, तो केवल कृषि में ही।

इस रूप में दो बातें एकदम अत्यंत स्पष्ट उभरकर सामने आती हैं।

पहली यह कि प्रथम रूप द्र ... द्र' में उत्पादन प्रक्रिया, उ का कार्य द्रव्य पूंजी के परिचलन में अंतरायण या व्याघात उत्पन्न करता है और उसके द्र — मा और मा' — द्र' के दोनों दौरों के बीच केवल मध्यस्थ का काम करता है, यहां औद्योगिक पूंजी की समस्त परिचलन प्रक्रिया, परिचलन के दौर में उसकी समग्र गति एक अंतरायण मात्र है। फलतः वह उस उत्पादक पूंजी के, जो पहले छोर की हैसियत से परिपथ का आरंभ और उस उत्पादक पूंजी के बीच मात्र संयोजक कड़ी है, जो दूसरे छोर की हैसियत से उसी रूप में, अर्थात जिस रूप में वह फिर चलना शुरू करती है, इस परिपथ का अंत करती है। स्वयं परिचलन नियत अवधि पर नवीकृत पुनरुत्पादन को प्रेरित करनेवाले साधन के रूप में प्रकट होता है, जो नवीकरण द्वारा निरन्तर बन जाता है।

दूसरी बात यह कि समग्र परिचलन स्वयं को ऐसे रूप में प्रस्तुत करता है, जो द्रव्य पूंजी के परिपथ में उसके रूप का उलटा होता है। मूल्य निर्धारण को छोड़कर वहां यह रूप था: द्र — मा — द्र (द्र — मा। मा — द्र); यहां — मूल्य निर्धारण के बिना ही — यह रूप मा — द्र — मा (मा — द्र। द्र — मा), अर्थात पण्य वस्तुओं के साधारण परिचलन का रूप है।

१. साधारण पुनरुत्पादन

पहले हम मा′ — द्र′ — मा प्रक्रिया पर विचार करें, जो परिचलन क्षेत्र में उ ... उ के दो छोरों के बीच घटित होती है।

इस परिचलन का प्रारम्भ बिन्दु है माल पूंजी: मा′ = मा + मा = उ + मा। माल पूंजी के कार्य मा′ — द्र′ की छानबीन परिपथ के पहले रूप में की गई थी (इसमें समाहित पूंजी मूल्य का सिद्धिकृत रूप उ के बराबर है, जो अब माल मा′ के मा अंश के और उसमें समाहित बेशी मूल्य के भी रूप में विद्यमान है; यह बेशी मूल्य मालों के उसी परिमाण के संघटक अंश के रूप में विद्यमान है और इसका मूल्य मा है)। किन्तु वहां यह कार्य अंतरायित परिचलन का दूसरा दौर और संपूर्ण परिपथ का अन्तिम दौर होता है। यहां यह परिपथ का दूसरा, किन्तु परिचलन का पहला दौर होता है। पहले परिपथ की समाप्ति द्र′ से होती है। चूंकि द्र′ और मूल द्र भी द्रव्य पूंजी की हैसियत से दूसरे परिपथ को पुनः आरम्भ कर सकते हैं, इसलिए पहले यह देखना आवश्यक नहीं था कि द्र′ में समाहित द्र और द्र (बेशी मूल्य) अपना रास्ता साथ-साथ तय करते हैं अथवा दोनों अपने अलग-अलग रास्ते पकड़ते हैं। यह तभी आवश्यक होता कि जब हम पहले परिपथ के नवीकृत मार्ग में आगे उसकी गति का अनुगमन करते। किन्तु इस बात का निर्णय उत्पादक पूंजी के परिपथ में होना चाहिए, क्योंकि उसके पहले ही परिपथ का निर्धारण इस पर निर्भर होता है और क्योंकि इसमें मा′ — द्र′ परिचलन के पहले दौर के रूप में प्रकट होता है, जिसकी पूर्ति द्र — मा द्वारा करनी होती है। इस निर्णय पर यह निर्भर करता है कि यह सूत्र साधारण पुनरुत्पादन का सूचक है या विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन का। जो भी निर्णय किया जाये, उसके अनुसार परिपथ का स्वरूप बदल जाता है।

इसलिए हम पहले उत्पादक पूंजी के साधारण पुनरुत्पादन पर विचार करेंगे और पहले अध्याय की तरह यहां भी यह मान लेंगे कि परिस्थितियां अपरिवर्तनीय रहती हैं और माल अपने मूल्यों पर ख़रीदे और बेचे जाते हैं। यह मान लेने पर समूचा बेशी मूल्य पूंजीपति के व्यक्तिगत उपभोग में प्रवेश कर जाता है। माल पूंजी मा′ का द्रव्य में रूपान्तरण होने के साथ द्रव्य का वह भाग, जो पूंजी मूल्य का प्रतिनिधित्व करता है, औद्योगिक पूंजी के परिपथ में अपना परिचलन जारी रखता है। दूसरा भाग, जो द्रव्य में रूपांतरित बेशी मूल्य है, मालों के सामान्य परिचलन में प्रवेश कर जाता है। वह द्रव्य का ऐसा परिचलन है, जिसका उद्भव पूंजीपति के यहां होता है, किन्तु जो उसकी वैयक्तिक पूंजी के परिचलन के बाहर सम्पन्न होता है।

अपने उदाहरण में हमारे पास १०,००० पाउंड सूत की माल पूंजी **मा′** थी, जिसका मूल्य ५०० पाउंड था, जिसमें से ४२२ पाउंड उत्पादक पूंजी का मूल्य है और वह ८,४४० पाउंड सूत के द्रव्य रूप की हैसियत से **मा′** द्वारा शुरू किये हुए पूंजी परिचलन को जारी रखता है, जबकि ७८ पाउंड बेशी मूल्य, जो १,५६० पाउंड सूत का द्रव्य रूप, माल उत्पाद का आधिक्य है, इस परिचलन को छोड़ देता है और माल के सामान्य परिचलन के अन्तर्गत एक भिन्न मार्ग अपनाता है।

$$\text{मा}'\begin{pmatrix} \text{मा} \\ + \\ \text{मा} \end{pmatrix} - \text{द्र}' \begin{pmatrix} \text{द्र} \\ + \\ \text{द्र} \end{pmatrix} \begin{matrix} - \text{मा} < \begin{matrix} \text{श्र} \\ \text{उ सा} \end{matrix} \\ \\ - \text{मा} \end{matrix}$$

द्र – मा उस द्रव्य के माध्यम से ख़रीदारियों की शृंखला का द्योतक है, जिसे पूंजीपति या तो स्वयं मालों पर, या अपने प्रिय व्यक्तित्व अथवा परिवार की निजी सेवाओं पर ख़र्च करता है। ये ख़रीदारियां समय-समय पर थोड़ी-थोड़ी करके की जाती हैं। इसलिए द्रव्य अस्थायी रूप से पूर्ति अथवा अपसंचय के रूप में विद्यमान रहता है, जिसका चालू उपभोग होना है, क्योंकि जिस द्रव्य के परिचलन में व्याघात या अंतरायण उत्पन्न हो जाता है, वह अपसंचय का रूप धारण कर लेता है। परिचलन के माध्यम के नाते उसका कार्य, जिसमें उसका अपसंचय की हैसियत से अस्थायी रूप भी सम्मिलित है, पूंजी के उसके द्रव्य रूप द्र में परिचलन में प्रवेश नहीं करता। यहां द्रव्य पेशगी नहीं दिया जाता, वरन व्यय किया जाता है।

हमने यह माना है कि समग्र पेशगी पूंजी सदैव पूर्णतः अपने एक दौर से निकलकर दूसरे में प्रवेश करती है। इसलिए यहां भी हम यह मान लेते हैं कि उ द्वारा उत्पादित माल उत्पादक पूंजी उ के समग्र मूल्य के बराबर हैं अथवा ४२२ पाउंड तथा उत्पादन प्रक्रिया के दौरान सृजित ७८ पाउंड बेशी मूल्य के बराबर हैं। अपने उदाहरण में, जिसका सम्बन्ध एक विविक्त माल से है, बेशी मूल्य १,५६० पाउंड सूत के रूप में विद्यमान है। यदि १ पाउंड सूत के आधार पर हिसाब लगाया जाये, तो वह २,४९६ आउंस सूत के रूप में विद्यमान होगा। किन्तु यदि, उदाहरण के लिए, माल ५०० पाउंड मूल्य की और उसी मूल्य संरचना की मशीन हो, तो इस मशीन के मूल्य का एक अंश ७८ पाउंड पूरी की पूरी मशीन में ही विद्यमान होंगे। यह मशीन तोड़कर टुकड़े किये बिना और इस तरह उसके उपयोग मूल्य के साथ उसके मूल्य को भी नष्ट किये बिना पूंजी मूल्य और बेशी मूल्य में विभाजित नहीं की जा सकती। इस कारण मूल्य के ये दो घटक माल के घटकों की तरह काल्पनिक रूप में ही व्यक्त किये जा सकते हैं। वे माल **मा′** के स्वतन्त्र तत्वों के रूप में, सूत के किसी पाउंड की तरह प्रकट नहीं हो सकते, जो १०,००० पाउंड माल का अलग किया जा सकनेवाला स्वतंत्र तत्व है। पहले प्रसंग में, इसके पहले कि द्र अपने अलग परिचलन में प्रवेश करे, कुल जमा माल को, माल पूंजी को, मशीन को, अपनी समग्रता में बिकना होगा। दूसरी ओर, जब पूंजीपति ८,४४० पाउंड सूत बेच चुकता है, तब शेष १,५६० पाउंड सूत की बिक्री बेशी मूल्य के पूर्णतः पृथक परिचलन की परिचायक होगी। इसका रूप यह होता है: मा (१,५६० पाउंड सूत) – द्र (७८ पाउंड) – मा (उपभोग की वस्तुएं)। किन्तु उत्पाद के, १०,००० पाउंड सूत के प्रत्येक पृथक भाग के मूल्य के तत्व उत्पाद के अंशों

द्वारा और समग्र उत्पाद द्वारा भी प्रकट किये जा सकते हैं। जैसे इस कुल उत्पाद १०,००० पाउंड सूत का विभाजन यों हो सकता है: स्थिर पूंजी मूल्य (स) – ३७२ पाउंड क़ीमत का ७,४४० पाउंड सूत; परिवर्ती पूंजी मूल्य (प) – ५० पाउंड का १,००० पाउंड सूत, और बेशी मूल्य (बे) – ७८ पाउंड का १,५६० पाउंड सूत; वैसे ही प्रत्येक पाउंड सूत यों विभाजित हो सकता है: स – ८,९२८ पेन्स का ११,९०४ आउंस सूत, प – १,२०० पेन्स का १,६०० आउंस सूत, और बे – १,८७२ पेन्स का २,४९६ आउंस सूत। पूंजीपति १०,००० पाउंड सूत के विभिन्न अंश क्रमशः बेच भी सकता है और उनमें समाहित बेशी मूल्य के तत्वों के क्रमिक अंशों का क्रमशः उपभोग कर सकता है और इस प्रकार वह क्रमशः ही स + प की रक़म का सिद्धिकरण करता है। किन्तु अन्ततोगत्वा यह क्रिया भी यह पूर्वापेक्षा करती है कि १०,००० पाउंड सूत की समूची राशि बेची जायेगी और इसलिए ८,४४० पाउंड सूत की बिक्री द्वारा स और प के मूल्य की प्रतिस्थापना हो जायेगी (Buch I, Kap. VII, 2.) *।

जो भी हो, मा′ – द्र′ के माध्यम से मा′ में समाहित पूंजी मूल्य तथा बेशी मूल्य – दोनों – वियोज्य अस्तित्व, द्रव्य की विभिन्न राशियों का अस्तित्व प्राप्त कर लेते हैं। दोनों ही प्रसंगों में द्र और द्र दरअसल उस मूल्य का परिवर्तित रूप हैं, जिसे मूलतः मा′ में माल की क़ीमत की हैसियत से केवल एक अपनी काल्पनिक अभिव्यंजना प्राप्त थी।

मा – द्र – मा मालों का साधारण परिचलन है, जिसका पहला दौर मा – द्र माल पूंजी के परिचलन मा′ – द्र′ में सम्मिलित है, अर्थात पूंजी के परिपथ में सम्मिलित है। इसके विपरीत इसका पूरक दौर द्र – मा इस परिपथ के बाहर पड़ता है, क्योंकि वह मालों के साधारण परिचलन के अन्तर्गत एक पृथक क्रिया होता है। मा और मा का परिचलन, पूंजी मूल्य और बेशी मूल्य का परिचलन मा′ के द्र′ में रूपान्तरित होने पर विभाजित हो जाता है। अतः परिणाम यह निकलता है:

पहले, जहां मा′ – द्र′ = मा′ – (द्र + द्र) क्रिया द्वारा माल पूंजी का सिद्धिकरण हो जाता है, वहां पूंजी मूल्य और बेशी मूल्य की गति जो मा′ – द्र′ में अभी संयुक्त रहती है और मालों की एक ही राशि द्वारा सम्पन्न होती है, वह वियोज्य हो जाती है और अब वे दोनों गतियां द्रव्य की भिन्न राशियों की हैसियत से स्वतंत्र रूपोंवाली बन जाती हैं।

दूसरे, यदि यह वियोजन होता है, तो द्र पूंजीपति की आमदनी के रूप में व्यय किया जाता है, जब कि पूंजी मूल्य के कार्यशील रूप की हैसियत से द्र परिपथ द्वारा निर्धारित मार्ग पर चलता रहता है। बादवाली क्रियाओं, द्र – मा और द्र – मा के सम्बन्ध में पहली क्रिया मा′ – द्र′ दो विभिन्न परिचलनों मा – द्र – मा और मा – द्र – मा के रूपों में प्रकट की जा सकती है। और ये दोनों शृंखलाएं, जहां तक इनके सामान्य रूप का सम्बन्ध है, मालों के साधारण परिचलन में आती हैं।

प्रसंगतः अविछिन्न, अविभाज्य मालों के मामले में मूल्य के घटकों को काल्पनिक रूप में अलग कर लेने का रिवाज है। उदाहरण के लिए, लन्दन के निर्माण व्यवसाय में, जो मुख्यतः

---

* हिन्दी संस्करण: अध्याय ६, २। – सं०

उधार पर चलता है, ठेकेदार को निर्माण-कार्य जिस मंजिल तक पहुंचा है, उसके अनुसार पेशगी धन मिलता रहता है। इनमें से कोई भी मंजिल भवन नहीं है, वह एक भावी भवन का यथार्थतः विद्यमान संघटक अंश है। इसलिए अपनी यथार्थता के बावजूद वह समग्र भवन का केवल काल्पनिक अंश है, पर इतना यथार्थ अवश्य है कि उसे प्रतिभूति मानकर ठेकेदार को पेशगी रक़म दी जा सके (इस विषय पर आगे अध्याय १२ देखें*)।

तीसरे, पूंजी मूल्य और बेशी मूल्य की जो गति **मा** और द्र में संयुक्त रूप में चालू रहती है, वह यदि केवल आंशिक रूप में विच्छिन्न हो जाये (बेशी मूल्य का एक अंश आय के रूप में ख़र्च न किया जाये) अथवा विच्छिन्न हो ही नहीं, तो स्वयं पूंजी मूल्य में उसके परिपथ के अन्तर्गत ही उसके पहले कि वह पूरा हो, एक परिवर्तन होता है। हमारे उदाहरण में उत्पादक पूंजी का मूल्य ४२२ पाउंड के बराबर था। यदि वह पूंजी, उदाहरण के लिए, ४८० या ५०० पाउंड के रूप में **द्र — मा** क्रम जारी रखे, तो अपने परिपथ की बादवाली मंज़िलों में वह अपने प्रारम्भिक मूल्य के ऊपर ५८ या ७८ पाउंड की वृद्धि साथ लिये आगे बढ़ेगी। इसके साथ-साथ पूंजी के मूल्य के गठन में भी परिवर्तन आ सकता है।

मा′ — द्र′ परिचलन की दूसरी मंज़िल और परिपथ १ (द्र . . . द्र′) की आख़िरी मंज़िल है। हमारे परिपथ में वह दूसरी और मालों के परिचलन में पहली मंज़िल है। जहां तक परिचलन का सम्बन्ध है, द्र′ — **मा′** द्वारा **मा′ — द्र′** की पूर्ति करना आवश्यक है। किन्तु न केवल यह कि **मा′ — द्र′** स्वविस्तार की प्रक्रिया (इस प्रसंग में उ, पहली मंज़िल का कार्य) को अपने पीछे छोड़ चुका होता है, बल्कि उसका फल, माल **मा′** भी सिद्धिकृत हो चुका है, इसलिए पूंजी के स्वविस्तार की प्रक्रिया और विस्तारित पूंजी मूल्य को व्यक्त करनेवाले मालों के सिद्धिकरण की पूर्ति **मा′ — द्र′** में होती हैं।

इस प्रकार हमने साधारण पुनरुत्पादन की पूर्वकल्पना कर ली है, अर्थात यह माना है कि द्र — मा पूर्णतः **द्र — मा** से विच्छिन्न हो जाता है। मा — द्र — मा तथा **मा — द्र — मा**, ये दोनों ही परिचलन, जहां तक कि उनके सामान्य रूप का सम्बन्ध है, मालों के परिचलन के अन्तर्गत हैं (और इस कारण वे अपने छोरों में कोई मूल्य भेद प्रकट नहीं करते)। अतः अनगढ़ अर्थशास्त्र के ढंग पर यह मान लेना आसान है कि पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया मालों का; उपयोग मूल्यों का उत्पादन मात्र है, जो किसी न किसी प्रकार के उपभोग के लिए हैं और इन मालों को पूंजीपति केवल इस उद्देश्य से उत्पादित करता है कि उनके स्थान पर भिन्न उपयोग मूल्योंवाले माल प्राप्त हों, अथवा जैसा कि अनगढ़ अर्थशास्त्र भ्रान्तिपूर्वक कहता है, ऐसे मालों से उनका विनिमय कर ले।

आरम्भ से ही **मा′** माल पूंजी की हैसियत से काम करता है और समूची प्रक्रिया का उद्देश्य — धनोपार्जन (बेशी मूल्य का उत्पादन) किसी भी प्रकार पूंजीपति के बेशी मूल्य (और इसलिए उसकी पूंजी) में वृद्धि के साथ-साथ उसकी खपत में वृद्धि का अपवर्जन नहीं करता, इसके विपरीत उस उद्देश्य में वह सुस्पष्टतः शामिल ही है।

दरअसल पूंजीपति की आय के परिचलन में उत्पादित माल मा (अथवा उत्पादित माल

---

*इस पुस्तक के पृष्ठ २११-२१२ देखें। — सं०

मा′ का कल्पित अनुरूप अंश) उसे केवल रूपान्तरित ही करता है – पहले द्रव्य में और द्रव्य से फिर कुछ अन्य मालों में, जो वैयक्तिक उपभोग में काम आते हैं। लेकिन यहां हमें एक छोटी सी बात नज़रन्दाज़ न कर देनी चाहिए कि मा माल मूल्य है, जिसके लिए पूंजीपति को कुछ भी ख़र्च नहीं करना पड़ा, वह बेशी श्रम का साकार रूप है, और इसी कारण वह मूलतः माल पूंजी मा′ के संघटक अंश के रूप में मंच पर प्रकट हुआ था। यह मा अपने अस्तित्व के स्वरूप से ही प्रक्रियाधीन पूंजी मूल्य के परिपथ से बंधा रहता है। यदि यह परिपथ अवरुद्ध होने लगे या उसमें कोई विघ्न आ जाये, तो मा का उपभोग ही नहीं, वरन मा का स्थान लेनेवाले मालों की श्रृंखला का निपटान भी सीमित या पूर्णतः समाप्त हो जाता है। यही स्थिति तब भी उत्पन्न होती है, जब मा′ – द्र′ की परिणति विफलता में होती है अथवा जब मा′ का केवल एक भाग बेचा जा सकता है।

हम देख चुके हैं कि पूंजीपति की आय के परिचलन को प्रकट करनेवाला मा – द्र – मा क्रम तभी तक पूंजी के परिचलन में प्रवेश करता है कि जब तक मा मा′ के मूल्य का, माल पूंजी के कार्यशील रूप में पूंजी का एक भाग होता है। किन्तु जैसे ही वह द्र – मा के माध्यम से, और इस लिए मा – द्र – मा रूप के समूचे दौर में स्वतंत्रता प्राप्त करता है, उस आय के परिचलन का पूंजीपति द्वारा पेशगी पूंजी की गति में प्रवेश बंद हो जाता है, यद्यपि उसका उद्भव वहीं से होता है। यह परिचलन पेशगी पूंजी की गति से सम्बन्धित है, क्योंकि इसके पहले कि पूंजी हो, पूंजीपति का अस्तित्व ज़रूरी है, और उसका अस्तित्व उसके द्वारा बेशी मूल्य के उपभोग पर निर्भर है।

सामान्य परिचलन के अन्तर्गत मा′, उदाहरण के लिए, सूत केवल माल की हैसियत से ही कार्य करता है। किन्तु पूंजी के परिचलन के अन्तर्गत एक तत्व की हैसियत से वह **माल पूंजी** का कार्य करता है, जो एक ऐसा रूप है, जिसे पूंजी मूल्य बारी-बारी से धारण करता और तज देता है। सौदागर के हाथ बिक जाने पर वह सूत पूंजी की उस वृत्तीय गति से निकाल दिया जाता है, जिसका वह उत्पाद है। फिर भी एक माल की हैसियत से वह सदैव सामान्य परिचलन की परिधि में गतिशील रहता है। मालों की उसी एक मात्रा का परिचलन जारी रहता है, बावजूद इस तथ्य के कि कातनेवाले की पूंजी के स्वतंत्र परिपथ में अब यह एक दौर की हैसियत से नहीं रह गयी है। अतः पूंजीपति मालों की जिस मात्रा को परिचलन में डालता है, उनका वस्तुतः निश्चायक रूपान्तरण, मा – द्र, उपभोग में उनकी आख़िरी निकासी, देश-काल के विचार से उस रूपान्तरण से पूर्णतः विच्छिन्न हो सकती है, जिसके अन्तर्गत मालों की यह मात्रा उसकी माल पूंजी की हैसियत से कार्य करती है। पूंजी के परिचलन में जो रूपान्तरण सम्पन्न हो चुका है, उसी को सामान्य परिचलन के क्षेत्र में सम्पन्न करना अभी शेष रहता है।

यदि यह सूत किसी अन्य औद्योगिक पूंजी के परिपथ में प्रवेश करे, तो इस स्थिति में तनिक भी अन्तर न आयेगा। सामान्य परिचलन में सामाजिक पूंजी के विभिन्न स्वाधीन अंशों के परिपथ आपस में वैसे ही गुंथे हुए होते हैं, अर्थात इस परिचलन में अलग-अलग पूंजियों की समग्रता वैसे ही होती है, जैसे उन मूल्यों के परिचलन में, जो बाज़ार में पूंजी की हैसियत से नहीं डाले जाते, वरन व्यक्तिगत उपभोग में प्रवेश करते हैं।

पूंजी के एक ऐसे परिपथ, जो सामान्य परिचलन का अंग है और एक ऐसे परिपथ के बीच, जिसकी कड़ियां किसी अन्य स्वाधीन परिपथ में हों, सम्बन्ध आगे चलकर प्रकट होता है, जब हम द्र′ के परिचलन की परीक्षा करते हैं, जो द्र+द्र के बराबर है। द्रव्य पूंजी की हैसियत से द्र पूंजी का परिपथ जारी रखता है। आय की हैसियत से ख़र्च किये जाने पर (द्र – मा), द्र सामान्य परिचलन में प्रवेश करता है, पर वह पूंजी के परिपथ से फ़ौरन बाहर आ जाता है। बादवाले परिपथ में केवल वही अंश प्रवेश करता है, जो अतिरिक्त द्रव्य पूंजी का कार्य करता है। मा – द्र – मा में द्रव्य केवल सिक्के का काम करता है। इस परिचलन का उद्देश्य पूंजीपति का व्यक्तिगत उपभोग है। अनगढ़ अर्थशास्त्र की जड़ता यहां बहुत साफ़ ज़ाहिर हो जाती है, जब वह इस परिचलन को, जो पूंजी के परिपथ में प्रवेश नहीं करता – उत्पादित मूल्य के उस भाग के परिचलन को, जिसका उपयोग आय की हैसियत से होता है – पूंजी का लाक्षणिक परिपथ बताता है।

दूसरे दौर, द्र – मा में, पूंजी मूल्य द्र पुनः विद्यमान होता है, जो बराबर है उ के (उत्पादक पूंजी का वह मूल्य, जो इस बिन्दु पर औद्योगिक पंजी के परिपथ को शुरू करता है)। द्र अपने बेशी मूल्य से रहित हो चुका है और इसलिए उसका वही मूल्य परिमाण होता है, जो द्रव्य पूंजी के परिपथ की पहली मंज़िल द्र – मा में था। स्थान भेद होने पर भी जिस द्रव्य पूंजी में माल पूंजी अब रूपान्तरित हो गई है, उसका कार्य वही बना रहता है: उसका उ सा तथा श्र में, उत्पादन साधनों और श्रम शक्ति में, रूपान्तरण।

फलतः माल पूंजी के कार्य में, मा′ – द्र′ में, मा – द्र के साथ ही साथ पूंजी मूल्य भी मा – द्र के दौर से गुज़र चुका होता है, और अब वह पूरक दौर द्र – मा < श्र / उ सा में प्रवेश करता है। इसलिए उसका सम्पूर्ण परिचलन यह होता है: मा – द्र – मा < श्र / उ सा।

पहले, द्रव्य पूंजी द्र रूप १ (परिपथ द्र . . . द्र′) में, उस मूल रूप में प्रकट हुई, जिसमें पूंजी मूल्य पेशगी दिया जाता है। प्रारम्भ से ही यहां वह उस द्रव्य राशि के भाग के रूप में प्रकट होती है जिसमें माल पूंजी परिचलन के पहले दौर मा′ – द्र′ में रूपान्तरित हुई थी। इसलिए वह प्रारम्भ से ही मालों की बिक्री के माध्यम से द्रव्य रूप में उत्पादक पूंजी उ का रूपान्तरण बनकर प्रकट होती है। यहां प्रारम्भ से द्रव्य पूंजी पूंजी मूल्य के उस रूप की हैसियत से विद्यमान होती है, जो न तो उसका मूल रूप और न ही उसका अन्तिम रूप है, क्योंकि द्र – मा दौर, जो मा – द्र दौर को निष्पन्न करता है, द्रव्य रूप को पुनः तजने पर ही सम्पन्न किया जा सकता है। इसलिए द्र – मा का वह भाग, जो साथ ही द्र – श्र भी है, अब श्रम शक्ति की ख़रीदारी में पेशगी दिया द्रव्य मात्र नहीं रह जाता, वरन वह ऐसी पेशगी होता है, जिसके माध्यम से वही ५० पाउंड का १,००० पाउंड सूत, जो श्रम शक्ति द्वारा निर्मित माल मूल्य का अंग है, श्रम शक्ति को द्रव्य रूप में पेशगी दिया जाता है। श्रमिक को जो द्रव्य यहां पेशगी दिया जाता है, वह स्वयं उसके द्वारा उत्पादित माल मूल्य के एक भाग का परिवर्तित समतुल्य है। और यदि अन्य किसी कारण नहीं, तो

इस कारण जहां तक द्र — मा क्रिया का अर्थ द्र — श्र है, वह द्रव्य रूप में किसी माल की जगह उपयोग रूप में माल का प्रतिस्थापन मात्र नहीं है, वरन उसमें अन्य तत्व भी सम्मिलित हैं, जो स्वयं सामान्य माल परिचलन की परिधि से स्वतंत्र हैं।

द्र′ मा′ का परिवर्तित रूप है। यह मा′ स्वयं उ के पूर्व कार्य, उत्पादन प्रक्रिया, की उपज है। अतः समस्त द्रव्य राशि द्र′ पूर्व श्रम की द्रव्य अभिव्यंजना है। हमारे उदाहरण में ५०० पाउंड का १०,००० पाउंड सूत कताई प्रक्रिया की उपज है। इसमें से ७,४४० पाउंड सूत पेशगी दी ३७२ पाउंड स्थिर पूंजी स के बराबर है; १,००० पाउंड सूत पेशगी दी ५० पाउंड परिवर्ती पूंजी प के बराबर है; और १,५६० पाउंड सूत ७८ पाउंड बेशी मूल्य बे के बराबर है। यदि द्र′ से ४२२ पाउंड की मूल पूंजी ही फिर पेशगी दी जाये और शेष परिस्थितियां यथावत रहें, तो श्रमिक को अगले सप्ताह, द्र — श्र में, उस सप्ताह में उत्पादित १०,००० पाउंड सूत का केवल एक अंश पेशगी दिया जाता है (१,००० पाउंड सूत का द्रव्य मूल्य)। मा — द्र के फलस्वरूप द्रव्य सदैव पूर्व श्रम की अभिव्यंजना होता है। यदि माल बाज़ार में द्र — मा की पूरक क्रिया तुरंत सम्पन्न हो जाये, अर्थात बाज़ार में प्राप्त मालों के बदले द्रव्य द्र दे दिया जाये, तो यह फिर पूर्व श्रम का रूपान्तरण है, एक रूप (द्रव्य) का दूसरे रूप (माल) में परिवर्तन है। किन्तु द्र — मा समय की दृष्टि से मा — द्र से भिन्न है। अपवादस्वरूप दोनों क्रम एक ही समय घटित हो सकते हैं; उदाहरण के लिए, जब दो पूंजीपति एक दूसरे के पास अपना माल एक ही समय रवाना करते हैं, इनमें एक पूंजीपति द्र — मा सम्पन्न करता है, और दूसरे पूंजीपति के लिए इस का अर्थ होता है मा — द्र और द्र केवल संतुलन बैठाने के लिए प्रयुक्त होता है। मा — द्र और द्र — मा क्रियाएं सम्पन्न करने के बीच का अन्तराल न्यूनाधिक काफ़ी हो सकता है, यद्यपि मा — द्र के फलस्वरूप द्र पूर्व श्रम प्रकट करता है, फिर भी द्र — मा क्रिया में वह उन मालों का परिवर्तित रूप प्रकट कर सकता है, जो अभी बाज़ार में नहीं हैं, किन्तु भविष्य में उसमें डाले जायेंगे। कारण यह कि द्र — मा के लिए तब तक सम्पन्न होना आवश्यक नहीं है कि जब तक मा नये सिरे से उत्पादित न हो जाये। इसी प्रकार द्र उन मालों का प्रतिनिधित्व कर सकता है, जो मा के साथ ही उत्पादित किये जाते हैं और जिनकी वह द्रव्य अभिव्यंजना है। उदाहरण के लिए, द्र — मा के विनिमय में (उत्पादन साधनों की ख़रीदारी में) हो सकता है कि खान से निकाले जाने के पहले ही कोयला ख़रीद लिया जाये। जहां तक द्र द्रव्य संचय के रूप में सामने आता है, और आय के रूप में ख़र्च नहीं किया जाता, वहां तक वह उस कपास का स्थानापन्न हो सकता है, जिसका उत्पादन अगले वर्ष तक न होगा। यह बात पूंजीपति की आय के व्यय, द्र — मा, के बारे में भी सही है। वह मजदूरी पर, श्र = ५० पाउंड पर भी लागू होती है। यह द्रव्य श्रमिक के पूर्व श्रम का द्रव्य रूप ही नहीं है, वरन इसके साथ अभी या भविष्य में किये जानेवाले श्रम पर ड्राफ़्ट या धनादेश भी है, जिसकी अभी सिद्धि की जा रही है अथवा भविष्य में की जायेगी। अपनी मजदूरी से श्रमिक एक कोट ख़रीद सकता है, जो अगले हफ़्ते तक

बनाया न जायेगा। यह बात ख़ास तौर से उन अनेक आवश्यक निर्वाह साधनों पर लागू होती है, जिनका उपभोग बरबादी को रोकने के लिए लगभग उत्पादन होने के साथ कर डालना आवश्यक होता है। इस प्रकार द्रव्य रूप में श्रमिक जो मजदूरी पाता है, वह उसी के अथवा अन्य मजदूरों के भावी श्रम का परिवर्तित रूप है। श्रमिक को उसके पूर्व श्रम का ही एक भाग देकर पूंजीपति उसके भावी श्रम के लिए ड्राफ़्ट देता है। मजदूर का श्रम ही, जिसे चाहे वह अभी करे, चाहे भविष्य में, वह पूर्ति है, जिसका अभी अस्तित्व नहीं है, किन्तु जिसमें से पूर्व श्रम के लिए उसे पैसा दिया जायेगा। इस प्रसंग में अपसंचय की धारणा पूर्णतः लुप्त हो जाती है।*

दूसरे, मा — द्र — मा < श्र / उ सा के परिचलन में वही द्रव्य अपना स्थान दो बार बदलता है। पूंजीपति पहले उसे विक्रेता की हैसियत से प्राप्त करता है और क्रेता की हैसियत से दे देता है। द्रव्य रूप में मालों का रूपान्तरण केवल द्रव्य रूप से माल रूप में उसका पुनः-रूपान्तरण करने का कार्य करता है। अतः पूंजी का द्रव्य रूप, द्रव्य पूंजी की हैसियत से उसका अस्तित्व इस गति का क्षणिक दौर मात्र है; अथवा गति में जहां तक प्रवाह है, द्रव्य पूंजी केवल परिचलन के माध्यम रूप में प्रकट होती है, जब वह ख़रीदारी के साधन रूप में काम आती है। वह ख़ास तौर पर अदायगी के माध्यम के रूप में काम करती है, जब पूंजीपति एक दूसरे से माल ख़रीदते हैं, और इसलिए जब उन्हें केवल अपना हिसाब-किताब बराबर करना होता है।

तीसरे, द्रव्य पूंजी चाहे परिचलन का माध्यम हो, चाहे अदायगी का, उसका कार्य मा की जगह श्र और उ सा की प्रतिस्थापना सम्पन्न करना ही है, अर्थात सूत की जगह, उस माल की जगह, जो उत्पादक पूंजी का परिणाम है (उस बेशी मूल्य को घटाने के बाद, जो आय के रूप में इस्तेमाल किया जायेगा), उसके उत्पादन तत्वों की प्रतिस्थापना करना है। दूसरे शब्दों में द्रव्य पूंजी का कार्य माल रूप से इस माल को बनानेवाले तत्वों के रूप में पूंजी मूल्य का पुनःरूपान्तरण सम्पन्न करना है। अन्ततोगत्वा द्रव्य पूंजी का कार्य उत्पादक पूंजी में माल पूंजी के पुनःरूपान्तरण का ही संवर्धन करता है।

परिपथ अपनी सामान्य गति से पूरा हो जाये, इसके लिए आवश्यक है कि मा′ को उसके मूल्य पर बेचा जाये और उसकी समग्रता में बेचा जाये। इसके अलावा मा — द्र — मा में एक माल की जगह दूसरे माल की प्रतिस्थापना ही सम्मिलित नहीं है, वरन ऐसी प्रतिस्थापना सम्मिलित है, जहां मूल्य सम्बन्ध पूर्ववत बने रहते हैं। हम मान लेते हैं कि यहां भी ऐसा ही होता है। किन्तु वास्तव में उत्पादन साधनों के मूल्य भिन्न होते हैं। पूंजीवादी उत्पादन ही ऐसा उत्पादन है, जिसकी विशेषता है मूल्य सम्बन्धों में निरन्तर परिवर्तन; किसी और कारण से नहीं, तो इसलिए कि श्रम की उत्पादिता निरन्तर परिवर्तनशील है, जो इस उत्पादन पद्धति का लक्षण है। उत्पादन तत्वों के मूल्य में इस परिवर्तन का विवेचन आगे किया जायेगा,**

---

* यहां मार्क्स ने पाण्डुलिपि में यह लिखा था: “किन्तु यह सब दूसरे खंड के अंतिम भाग का अंग है।” – सं०

** इस पुस्तक के अध्याय १५ का पांचवां परिच्छेद देखें। – सं०

हम यहां उसका उल्लेख मात्र करते हैं। उत्पादन तत्वों का माल में रूपान्तरण, उ का मा′ में रूपान्तरण उत्पादन क्षेत्र में सम्पन्न होता है, जब कि मा′ से उ में पुनःरूपान्तरण परिचलन क्षेत्र में घटित होता है। यह क्रिया मालों के साधारण रूपान्तरण से सम्पन्न होती है, किन्तु उसका सारतत्व समग्र रूप में पुनरुत्पादन प्रक्रिया का एक ही दौर है। पूंजी के परिचलन का रूप होने के नाते मा — द्र — मा में सामग्री का कार्य की दृष्टि से निर्धारित विनिमय सन्निहित होता है। इसके अलावा मा — द्र — मा के रूपान्तरण के लिए यह भी आवश्यक है कि मा, माल प्रमात्रा मा′ के उत्पादन तत्वों के बराबर हो और ये तत्व अपने मौलिक पारस्परिक मूल्य सम्बन्ध बनाये रखें। इसलिए यह मान लिया गया है कि माल अपने-अपने मूल्य के अनुसार ख़रीदे ही नहीं गये हैं, वरन वृत्तीय गति के दौरान उनके मूल्य में भी कोई परिवर्तन नहीं होता। वरना यह प्रक्रिया अपनी सामान्य गति से पूरी नहीं हो सकती।

द्र . . . द्र′ में द्र पूंजी मूल्य का वह मूल रूप है, जिसे त्यागने के साथ फिर से धारण कर लिया जाता है। उ . . . मा′ — द्र — मा . . . उ में द्र ऐसा रूप है, जो प्रक्रिया के समाप्त होने से पहले ही त्याग दिया जाता है। यहां द्रव्य रूप पूंजी मूल्य के क्षणिक स्वतन्त्र रूप की हैसियत से ही प्रकट होता है। मा′ रूप में द्रव्य रूप धारण करने को पूंजी उतना ही उत्सुक होती है कि जितना द्र′ रूप में उसे त्यागने को। इस वेश को धारण करते ही वह अपने को पुनः उत्पादक पूंजी में रूपान्तरित कर लेती है। जब तक वह द्रव्य रूप में रहती है, तब तक वह पूंजी की हैसियत से कार्य नहीं करती और इस कारण उसके मूल्य में विस्तार नहीं होता। पूंजी परती पड़ी रहती है। द्र यहां परिचलन माध्यम का काम करता है, किन्तु पूंजी के परिचलन माध्यम का।* अपने परिपथ के पहले रूप में (द्रव्य पूंजी के रूप में), पूंजी मूल्य का द्रव्य रूप जिस स्वतन्त्रता का आभास देता है, वह इस दूसरे रूप में विलुप्त हो जाती है। इस प्रकार यह रूप १ की समीक्षा है और उसे केवल एक रूप विशेष में परिणत कर देती है। यदि द्र′ — मा के दूसरे रूपान्तरण में कोई अड़चन पैदा हो, उदाहरण के लिए, यदि बाज़ार में उत्पादन साधन न हों, तो परिपथ में, पुनरुत्पादन प्रक्रिया के प्रवाह में उतना ही व्याघात उत्पन्न होता है कि जितना तब, जब माल पूंजी के रूप में पूंजी को जकड़े रखा जाता है। लेकिन यहां फ़र्क़ यह है कि पूंजी माल के अस्थायी रूप में जितनी देर रह सकती है, उससे अधिक देर द्रव्य रूप में रह सकती है। यदि वह द्रव्य पूंजी के कार्य न करे, तो इससे उसका द्रव्य होना समाप्त नहीं हो जाता। किन्तु यदि अपना माल पूंजी का कार्य सम्पन्न करने में उसे बहुत विलम्ब हो जाये, तो उसका माल होना अथवा सामान्य रूप से उपयोग मूल्य होना अवश्य समाप्त हो जाता है। इसके अलावा अपने द्रव्य रूप में उसमें उत्पादक पूंजी के अपने पहले रूप के स्थान पर दूसरा रूप धारण करने की क्षमता होती है, किन्तु यदि वह मा′ के रूप में जकड़ी रखी जाये, तो वह हिल भी नहीं सकती।

---

*यहां मार्क्स ने पाण्डुलिपि में यह लिखा था: "टूक के विपरीत।" — सं०

मा′ — द्र′ — मा में मा′ के लिए केवल उसके रूप के अनुरूप परिचलन क्रियाएं सम्मिलित हैं, जो उसके पुनरुत्पादन के दौर हैं। किन्तु मा′ — द्र′ — मा सम्पन्न करने के लिए जिस मा में मा′ का रूपान्तरण होता है, उसका वास्तविक पुनरुत्पादन आवश्यक होता है। लेकिन यह पुनरुत्पादन की उन प्रक्रियाओं पर निर्भर होता है, जो मा′ द्वारा व्यंजित वैयक्तिक पूंजी की पुनरुत्पादन प्रक्रिया से बाहर होती हैं।

रूप १ में $\text{द्र} - \text{मा} < \begin{matrix}\text{श्र}\\ \text{उ सा}\end{matrix}$ क्रिया द्रव्य पूंजी के उत्पादक पूंजी में प्रथम रूपान्तरण की तैयारी मात्र करती है। रूप २ में वह उसके माल पूंजी से उत्पादक पूंजी में पुनःरूपान्तरण की तैयारी करती है; दूसरे शब्दों में जहां तक कि औद्योगिक पूंजी का निवेश यथावत रहता है, माल पूंजी का यह पुनःरूपान्तरण उत्पादन के उन्हीं तत्वों में होता है, जिनसे उसका उद्भव हुआ था। फलतः वह क्रिया यहां और रूप १ में भी उत्पादन प्रक्रिया की तैयारी के दौर के रूप में प्रकट होती है, किन्तु वह उसे प्रत्यावर्तन के रूप में, उसके नवीकरण के रूप में, अतः पुनरुत्पादन प्रक्रिया के पूर्वगामी के रूप में और इस कारण मूल्य के स्वविस्तार की प्रक्रिया की पुनरावृत्ति की तरह प्रकट होती है।

इस बात पर फिर ध्यान देना चाहिए कि द्र — श्र मालों का साधारण विनिमय नहीं है, वरन माल श्र की ख़रीद है। जैसे द्र — उ सा केवल एक कार्य-पद्धति है, जो बेशी मूल्य के उत्पादन के लिए भौतिक रूप में अनिवार्य है, वैसे ही श्र की ख़रीद इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक आवश्यक काम है।

$\text{द्र} - \text{मा} < \begin{matrix}\text{श्र}\\ \text{उ सा}\end{matrix}$ क्रम पूरा होने पर द्र उत्पादक पूंजी उ में पुनः परिवर्तित हो जाता है और परिपथ नये सिरे से शुरू हो जाता है।

अतः उ . . . मा′ — द्र′ — मा . . . उ का विस्तारित रूप इस प्रकार है:

$$\text{उ} \ldots \text{मा}' \begin{pmatrix}\text{मा}\\ +\\ \text{मा}\end{pmatrix} \begin{matrix}-\\ \\ -\end{matrix} \begin{pmatrix}\text{द्र}\\ +\\ \text{द्र}\end{pmatrix} \begin{matrix}- \text{मा} < \begin{matrix}\text{श्र}\\ \text{उ सा}\end{matrix} \ldots \text{उ}\\ \\ - \text{मा}\end{matrix}$$

उत्पादक पूंजी में द्रव्य पूंजी के रूपान्तरण का अर्थ है मालों के उत्पादन के लिए मालों की ख़रीद। स्वयं पूंजी के परिपथ के भीतर उपभोग उसी सीमा तक आता है, जिस सीमा तक वह उत्पादक उपभोग होता है। उसकी पूर्वापेक्षा यह है कि इस प्रकार उपभुक्त मालों द्वारा बेशी मूल्य का उत्पादन होता है। और यह बात उत्पादन से, यहां तक कि माल उत्पादन से भी, जिसका उद्देश्य उत्पादक का अस्तित्व होता है, बहुत भिन्न है। माल की जगह माल का ऐसा प्रतिस्थापन, जो बेशी मूल्य के उत्पादन के अधीन हो, उत्पाद के विशुद्ध विनिमय मात्र से नितान्त भिन्न है, जो केवल द्रव्य द्वारा सम्पादित होता है। किन्तु अर्थशास्त्री इसे इसका प्रमाण मान लेते हैं कि अत्युत्पादन सम्भव नहीं है।

द्र के, जो श्र और उ सा में रूपान्तरित होता है, उत्पादक उपभोग के अलावा परिपथ

में प्रथम तत्व द्र — श्र समाहित होता है, जिसका श्रमिक के लिए अर्थ है श्र — द्र जो मा — द्र के बराबर होता है। श्रमिक के परिचलन श्र — द्र — मा में उसका उपभोग भी सम्मिलित होता है। इस परिचलन से द्र — श्र के फलस्वरूप केवल पहला तत्व पूंजी के परिपथ के भीतर आता है। द्र — मा की दूसरी क्रिया वैयक्तिक पूंजी के परिचलन के भीतर नहीं आती, यद्यपि उसका उद्भव उसी से होता है। किन्तु पूंजीपति वर्ग के लिए मज़दूर वर्ग का निरन्तर अस्तित्व आवश्यक है और इसलिए श्रमिक का उपभोग भी आवश्यक है, जो द्र — मा द्वारा सम्भव होता है।

मा′ — द्र′ क्रिया की एक ही शर्त होती है, जिससे पूंजी मूल्य अपना परिपथ जारी रख सके और पूंजीपति बेशी मूल्य का उपभोग कर सके। वह शर्त यह है कि मा′ द्रव्य में परिवर्तित कर दिया जाये, उसे बेच दिया जाये। बेशक मा′ केवल इसलिए ख़रीदा जाता है कि यह वस्तु उपयोग मूल्य है, इसलिए किसी भी तरह के उपभोग के काम आ सकती है, उपभोग चाहे उत्पादक हो चाहे व्यक्तिगत। किन्तु यदि, मिसाल के लिए, मा′ का परिचलन उस सौदागर के हाथों में होता है, जिसने सूत ख़रीदा था, तो उसका पहले उस वैयक्तिक पूंजी के परिपथ के चालू रहने पर ज़रा भी असर नहीं पड़ता, जिसने सूत पैदा किया था और उसे सौदागर के हाथ बेचा था। सारी प्रक्रिया चलती रहती है और उसके साथ उसके द्वारा आवश्यक बनाया पूंजीपति और श्रमिक का व्यक्तिगत उपभोग भी चालू रहता है। संकटों के विवेचन के लिए यह बात महत्वपूर्ण है।

जैसे ही मा′ को बेचा जाता है, द्रव्य में परिवर्तित किया जाता है, वैसे ही श्रम प्रक्रिया और इस प्रकार पुनरुत्पादन प्रक्रिया के वास्तविक उपादानों के रूप में उसे पुनःपरिवर्तित किया जा सकता है। मा′ को अन्त में उपभोक्ता ख़रीदता है अथवा फिर बेचने के लिए कोई सौदागर ख़रीदता है, इससे मामले पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पूंजीवादी उत्पादन मालों की जो विराट मात्रा निर्मित करता है, वह इस उत्पादन के पैमाने पर निर्भर करती है, और इस उत्पादन को निरन्तर विस्तार देते रहने की आवश्यकता पर निर्भर करती है, वह मांग और पूर्ति के किसी पूर्वनिर्धारित चक्र पर कदापि निर्भर नहीं करती, उन आवश्यकताओं पर निर्भर नहीं करती, जिन्हें तुष्ट करना होता है। अन्य औद्योगिक पूंजीपतियों के अलावा, थोक विक्रेता के सिवा बड़े पैमाने पर उत्पादन का और कोई प्रत्यक्ष ग्राहक नहीं हो सकता। कुछ सीमाओं के भीतर पुनरुत्पादन की प्रक्रिया उसी पैमाने पर अथवा बढ़े हुए पैमाने पर उस हालत में भी सम्पन्न हो सकती है, जब उसके द्वारा निःसृत मालों ने दरअसल व्यक्तिगत अथवा उत्पादक उपभोग में प्रवेश न किया हो। मालों का उपभोग पूंजी के उस परिपथ में सम्मिलित नहीं किया जाता, जिससे उनका उद्भव हुआ था। उदाहरण के लिए, जैसे ही सूत बेच दिया जाता है, वैसे ही इस की चिन्ता के बिना कि इसके बाद बेचे हुए सूत का क्या होगा, पूंजी मूल्य, जो सूत के रूप में है, नये सिरे से अपना परिपथ शुरू कर सकता है। जब तक उत्पाद बिकता रहता है, तब तक पूंजीवादी उत्पादक के दृष्टिकोण से हर चीज़ अपने ढर्रे पर चल रही होती है। पूंजी मूल्य के जिस परिपथ से उसका नाता है, उसमें व्याघात नहीं पड़ता। और यदि इस प्रक्रिया को विस्तार दिया जाये — जिसमें उत्पादन साधनों का बढ़ा हुआ उत्पादक उपभोग शामिल

है – तो पूंजी के इस पुनरुत्पादन के साथ श्रमिकों का और बढ़ा हुआ व्यक्तिगत उपभोग भी चल सकता है (और इसलिए बढ़ी हुई मांग भी), क्योंकि यह प्रक्रिया उत्पादक उपभोग द्वारा आरम्भ तथा क्रियान्वित की जाती है। इस प्रकार यह सम्भव है कि बेशी मूल्य के उत्पादन में बढ़ती हो, और उसके साथ पूंजीपति के व्यक्तिगत उपभोग में बढ़ती हो, पुनरुत्पादन की सारी प्रक्रिया विकासशील अवस्था में हो, फिर भी मालों का एक बड़ा भाग केवल ऊपरी तौर पर उपभोग के दायरे में आया हो, जब कि यथार्थ में वे विक्रेताओं के यहां अनबेचे पड़े हों, दरअसल बाज़ार में अब भी रखे हुए हों। अब मालों के एक प्रवाह के बाद दूसरा प्रवाह आता है, और अन्त में पता चलता है कि पहलेवाला प्रवाह केवल ऊपरी तौर पर ही उपभोग में समाया हुआ है। माल पूंजियां बाज़ार में जगह पाने के लिए एक दूसरे से होड़ करती हैं। बाद में आनेवालियों को बिकना है, तो उन्हें कम क़ीमत पर बिकना होगा। पहलेवाले प्रवाहों का निपटारा नहीं हुआ, लेकिन उनकी अदायगी का समय आ पहुंचा। उनके मालिक अपने दिवालियेपन की घोषणा करें या अपना दायित्व पूरा करने के लिए उन्हें किसी भी भाव बेच दें। मांग की वास्तविक स्थिति से इस बिक्री का कोई भी सम्बन्ध नहीं होता। इसका सम्बन्ध केवल **अदायगी की मांग** से होता है, इस तीव्र आवश्यकता से होता है कि मालों को द्रव्य में रूपान्तरित किया जाये। तब संकट फूट पड़ता है। वह उपभोक्ता मांग की प्रत्यक्ष घटती के रूप में, व्यक्तिगत उपभोग की मांग की प्रत्यक्ष घटती में दिखायी नहीं देता, वरन पूंजी से पूंजी के विनिमय की घटती के रूप में, पूंजी की पुनरुत्पादन प्रक्रिया की घटती के रूप में दिखाई देता है।

द्र अपना द्रव्य पूंजी का कार्य करने के लिए, उस पूंजी मूल्य का कार्य करने के लिए, जिसका उत्पादक पूंजी में पुनःरूपांतरण पूर्वनिश्चित है, उ सा और श्र मालों में रूपांतरित होता है। यदि इन मालों को अलग-अलग शर्तों पर ख़रीदा जाये या उनकी अदायगी की जाये, जिससे द्र – मा क्रय और अदायगी की क्रमबद्ध क्रियाओं की शृंखला बन जाती है, तो द्र का एक अंश द्र – मा क्रिया पूरी करता है, जब कि दूसरा भाग द्रव्य रूप में बना रहता है और द्र – मा की सहकालिक अथवा क्रमिक क्रियाएं तब तक संपन्न नहीं करता कि जब तक स्वयं इस प्रक्रिया की परिस्थितियां ही यह निर्धारित न करें। इस भाग को केवल अस्थायी तौर पर ही परिचलन में आने से रोका रखा जाता है, ताकि वह उचित समय पर क्रियाशील हो और अपना कार्य संपन्न करे। इस प्रकार उसका यह संचयन अपनी बारी में ऐसा कार्य है, जो उसके परिचलन द्वारा निर्धारित होता है और परिचलन के लिए ही उद्दिष्ट होता है। क्रय और अदायगी की निधि के रूप में उसका अस्तित्व, उसकी गति का निलंबन, उसके परिचलन की अंतरित अवस्था – ये सब ऐसी अवस्था बन जाते हैं, जिसमें द्रव्य अपना एक कार्य द्रव्य पूंजी की हैसियत से संपन्न करता है। द्रव्य पूंजी की हैसियत से, क्योंकि इस प्रसंग में अस्थायी तौर पर भी निश्चल द्रव्य स्वयं द्रव्य पूंजी द्र (द्र′ – द्र = द्र) का, माल पूंजी के मूल्य के उस अंश का भाग है, जो उ के, उत्पादक पूंजी के मूल्य के बराबर है, जिससे परिपथ आरम्भ होता है। दूसरी ओर परिचलन से बाहर निकाले हुए समस्त द्रव्य का रूप अपसंचय का होता है। इसलिए द्रव्य का अपसंचय के रूप में होना यहां द्रव्य पूंजी का एक कार्य बन जाता है, वैसे ही, जैसे द्र – मा में ख़रीदारी या अदायगी के साधन के रूप में द्रव्य का कार्य द्रव्य पूंजी का

कार्य हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि पूंजी मूल्य यहां द्रव्य रूप में विद्यमान होता है, द्रव्य अवस्था यहां ऐसी अवस्था होती है, जिसमें औद्योगिक पूंजी स्वयं को अपनी एक मंज़िल में पाती है और जो परिपथ के भीतर आंतरिक संबंधों द्वारा निर्धारित होती है। साथ ही यह बात यहां एक बार फिर सत्य सिद्ध होती है कि औद्योगिक पूंजी के परिपथ में द्रव्य पूंजी द्रव्य के कार्यों के अलावा और कोई कार्य नहीं करती और द्रव्य के ये कार्य परिपथ की दूसरी मंज़िलों से अपने अंतःसम्बन्धों के बल पर ही पूंजी कार्यों का महत्व प्राप्त करते हैं।

द्र′ को यों प्रस्तुत करना कि वह द्र से द्र का सम्बन्ध है, एक पूंजी सम्बन्ध है प्रत्यक्ष रूप में द्रव्य पूंजी का कार्य नहीं है, वरन माल पूंजी मा′ का कार्य है। यह मा′ अपनी बारी में, मा से मा के सम्बन्ध की हैसियत से उत्पादन प्रक्रिया का फल ही, उसके भीतर सम्पन्न होनेवाले पूंजी मूल्य के स्वविस्तार को ही प्रकट करता है।

यदि परिचलन प्रक्रिया को जारी रखने में अड़चन पड़े, जिससे कि द्र को अपना द्र — मा कार्य बाह्य परिस्थितियों के कारण, जैसे कि बाज़ार की परिस्थितियों, आदि के कारण रोकना पड़े, और इससे यदि उसे न्यूनाधिक समय के लिए द्रव्य रूप में रहना पड़े, तो हमारे सामने द्रव्य फिर अपसंचय के रूप में आ जाता है। साधारण माल परिचलन में भी जब भी वहां मा — द्र से द्र — मा तक संक्रमण में बाह्य परिस्थितियां बाधा डालती हैं, ऐसा ही होता है। यह अपसंचय का अनैच्छिक निर्माण है। वर्तमान प्रसंग में द्रव्य का रूप परती पड़ी हुई, अंतर्हित, द्रव्य पूंजी का रूप है। किन्तु हम अभी इस बात की अधिक चर्चा नहीं करेंगे।

पर दोनों में कोई भी स्थिति हो, द्रव्य पूंजी का द्रव्य अवस्था में लगातार बने रहना अंतरायित गति का परिणाम ही होता है, और इससे कुछ आता-जाता नहीं है यह अंतरायित गति अनुकूल है या प्रतिकूल, ऐच्छिक है या अनैच्छिक, द्रव्य पूंजी के कार्यों के अनुसार है या उनके विपरीत है।

२. विस्तारित पैमाने पर संचय और पुनरुत्पादन

उत्पादक प्रक्रिया अपने प्रसार का परिमाण मनमाने ढंग से क़ायम नहीं कर लेती, वरन वह प्रौद्योगिकी द्वारा निर्धारित होता है। इस कारण यद्यपि सिद्धिकृत बेशी मूल्य पूंजीकरण के लिए उद्दिष्ट होता है, तथापि वह बहुधा अनेक क्रमिक परिपथ पूरा करने पर ही ऐसा आकार ग्रहण कर पाता है (और तब तक उसे संचयित होना पड़ेगा), जो अतिरिक्त पूंजी के प्रभावी कार्य के लिए पर्याप्त हो अथवा जो कार्यशील पूंजी मूल्य के परिपथ में प्रवेश के लिए पर्याप्त हो। इस प्रकार बेशी मूल्य अपसंचय के रूप में जड़ हो जाता है, और इस रूप में वह गुप्त या अंतर्हित द्रव्य पूंजी बन जाता है – अंतर्हित इसलिए कि वह पूंजी की हैसियत से तब तक काम नहीं कर सकता, जब तक वह द्रव्य रूप में बना रहता है।[6a] इस प्रकार अपसंचय का निर्माण यहां

[6a] "गुप्त" शब्द भौतिकी में गुप्त ऊष्मा की धारणा से लिया गया है। अब इस धारणा का स्थान लगभग पूरी तरह ऊर्जा रूपांतरण के सिद्धान्त ने ले लिया है। इसलिए मार्क्स ने तीसरे भाग में (बाद के पाठान्तर में) दूसरा शब्द इस्तेमाल किया है, जो स्थितिज ऊर्जा की धारणा से लिया गया है। यह शब्द है "स्थितिज" अथवा "आभासी पूंजी" जो द'एलंबेर के आभासी वेग के सदृश्य है। – फ़े० एं०

ऐसा उपादान बनकर प्रकट होता है, जो पूंजीवादी संचय प्रक्रिया के अन्तर्गत, उसके साथ-साथ सम्पन्न होता है, किन्तु जो फिर भी तत्वतः उससे भिन्न है। कारण यह है कि पुनरुत्पादन प्रक्रिया अंतर्हित द्रव्य पूंजी के निर्माण से विस्तार नहीं पाती। इसके विपरीत अंतर्हित द्रव्य पूंजी यहां निर्मित इसलिए होती है कि पूंजीवादी उत्पादक अपने उत्पादन के पैमाने को सीधे विस्तार नहीं दे सकता। यदि वह अपना बेशी उत्पाद सोने या चांदी के उत्पादक के हाथ बेच देता है, जो नया सोना या चांदी परिचलन में डाल देता है अथवा – जो एक ही बात है – यदि वह अपना बेशी उत्पाद किसी सौदागर को बेच देता है, जो राष्ट्रीय बेशी उत्पाद का एक भाग देकर विदेश से और अधिक सोने या चांदी का आयात करता है, तब उसकी अंतर्हित द्रव्य पूंजी सोने या चांदी के राष्ट्रीय अपसंचय में वृद्धि बन जाती है। अन्य सभी प्रसंगों में, उदाहरण के लिए, ७८ पाउंड, जो ग्राहक के हाथ में परिचलन का माध्यम थे, पूंजीपति के हाथ में केवल अपसंचय का रूप ग्रहण करते हैं। इसलिए जो कुछ हुआ है, वह केवल सोने या चांदी के राष्ट्रीय अपसंचय का एक भिन्न वितरण है।

हमारे पूंजीपति के कारबार में यदि द्रव्य भुगतान साधन का काम करता है (ग्राहक को छोटी-बड़ी अवधि पर मालों की क़ीमत चुकाना होता है), तब जो बेशी उत्पाद पूंजीकरण के लिए उद्दिष्ट था, वह द्रव्य में रूपान्तरित नहीं होता, बल्कि लेनदार के दावों में, ऐसे समतुल्य पर स्वामित्व के अधिकार में परिवर्तित होता है, जो ग्राहक के पास पहले से हो सकता है या जिसके होने की वह आशा कर सकता है। वह परिपथ की पुनरुत्पादन प्रक्रिया में वैसे ही प्रवेश नहीं करता जैसे सब्याज प्रतिभूतियों, आदि पर लगाया हुआ धन, यद्यपि वह अन्य वैयक्तिक औद्योगिक पूंजियों के परिपथों में प्रवेश कर सकता है।

पूंजीवादी उत्पादन का सारा स्वरूप पेशगी दिये पूंजी मूल्य के स्वविस्तार द्वारा निर्धारित होता है; दूसरे शब्दों में सबसे पहले जितना बेशी मूल्य पैदा किया जा सके, उससे। दूसरे, वह पूंजी के उत्पादन से, अतः पूंजी में बेशी मूल्य के रूपान्तरण से निर्धारित होता है (देखिये Buch I, Kap. XXII)*। संचय अथवा विस्तारित पैमाने पर उत्पादन, जो बेशी मूल्य के निरन्तर अधिकाधिक प्रसारित उत्पादन का, और इसलिए पूंजीपति के व्यक्तिगत लक्ष्य के रूप में उसके सम्पन्नीकरण का साधन बनकर प्रकट होता है और जो पूंजीवादी उत्पादन की सामान्य प्रवृत्ति में समाहित होता है, लेकिन जैसा कि प्रथम खंड में दिखाया जा चुका है, आगे चलकर अपने विकास के कारण प्रत्येक पृथक पूंजीपति के लिए आवश्यकता बन जाता है। अपनी पूंजी की सतत संवृद्धि उसे बनाये रखने की शर्त बन जाती है। किन्तु जिस बात का पहले ही विवेचन हो चुका है, उसकी फिर से अधिक विस्तार से व्याख्या करना आवश्यक नहीं है।

हमने पहले यह मानते हुए साधारण पुनरुत्पादन पर विचार किया था कि सारा बेशी मूल्य आय के रूप में ख़र्च किया जाता है। वास्तव में सामान्य परिस्थितियों में बेशी मूल्य के एक भाग को हमेशा आय के रूप में ख़र्च करना होगा और दूसरे भाग का पूंजीकरण होगा। और इस बात का कुछ भी महत्व नहीं है कि किसी अवधि विशेष में उत्पादित कोई बेशी मूल्य पूरी तरह ख़र्च कर दिया जाता है या पूरी तरह पूंजीकृत किया जाता है। औसत रूप में दोनों बातें होती हैं – और जो सामान्य सूत्र है, वह औसत गति ही व्यक्त कर सकता है। किन्तु इस सूत्र को उलझायें नहीं, इसलिए यह मान लेना ज्यादा अच्छा है कि सारे बेशी मूल्य का

---

*हिन्दी संस्करण: अध्याय २४। – सं०

संचय कर लिया जाता है। उ ... मा′ – द्र′ – मा′ $<^{\text{अ}}_{\text{उ}}$ सा ... उ′ यह सूत्र उस उत्पादक पूंजी की व्यंजना करता है, जो विस्तारित पैमाने पर और अधिक मूल्य के साथ पुनरुत्पादित होती है और जो परिवर्धित उत्पादक पूंजी की हैसियत से अपना दूसरा परिपथ शुरू करती है अथवा – जो एक ही बात है – अपने पहले परिपथ को फिर से चालू करती है। जैसे ही यह दूसरा परिपथ शुरू होता है, उ फिर हमारे सामने प्रारम्भ बिन्दु के रूप में आता है; केवल यह उ पहले उ की अपेक्षा अधिक बड़ी उत्पादक पूंजी है। इसलिए यदि द्र ... द्र′ सूत्र में दूसरा परिपथ द्र′ से शुरू होता है, तो यह द्र′, द्र के समान, निश्चित परिमाण की पेशगी द्रव्य पूंजी के समान कार्य करता है। पहली वृत्तीय गति जिस द्रव्य पूंजी से शुरू की गई थी, उससे यह द्रव्य पूंजी बड़ी होती है; किन्तु जैसे ही वह पेशगी दी द्रव्य पूंजी का कार्य अपना लेती है, वैसे ही बेशी मूल्य के पूंजीकरण द्वारा उसकी वृद्धि की सारी चर्चा समाप्त हो जाती है। यह उद्भव उसके परिपथ को शुरू करनेवाली द्रव्य पूंजी के रूप में निर्मूल हो जाता है। जैसे ही उ′ नये परिपथ के प्रारम्भ बिन्दु के रूप में कार्य करने लगता है, यह बात उस पर भी लागू हो जाती है।

अगर हम उ ... उ′ की तुलना द्र ... द्र′ से अथवा पहले परिपथ से करें, तो हम देखते हैं कि उनका अर्थ एक जैसा बिल्कुल नहीं है। द्र ... द्र′ को एक अलग-थलग परिपथ के रूप में देखें, तो हम पायेंगे कि वह यही प्रकट करता है कि द्रव्य पूंजी द्र (अथवा द्रव्य पूंजी के रूप में अपना परिपथ पूरा करनेवाली औद्योगिक पूंजी), द्रव्य उत्पन्न करनेवाला द्रव्य, मूल्य उत्पन्न करनेवाला मूल्य है। दूसरे शब्दों में वह बेशी मूल्य उत्पन्न करता है। किन्तु उ परिपथ में बेशी मूल्य उत्पादित करने की प्रक्रिया पहली मंज़िल की समाप्ति पर, उत्पादन प्रक्रिया की समाप्ति पर पूरी हो चुकी होती है। दूसरी मंज़िल म′ – द्र′ (परिचलन की पहली मंज़िल) पार करने पर पूंजी मूल्य + बेशी मूल्य पहले ही सिद्धिकृत द्रव्य पूंजी के रूप में, द्र′ के रूप में – जो पहले परिपथ के अन्तिम चरम के रूप में प्रकट हुआ था – अस्तित्व में आ चुके होते हैं। बेशी मूल्य उत्पन्न किया जा चुका है, यह बात उ ... उ सूत्र में हमारे पूर्वविवेचित मा – द्र – मा सूत्र द्वारा व्यंजित होती है (देखें विस्तारित सूत्र, पृष्ठ ४७)* जो अपनी दूसरी मंज़िल में पूंजी परिचलन के बाहर जा पड़ता है और बेशी मूल्य के परिचलन को आय के रूप में व्यंजित करता है। अतः इस रूप में, जहां सारी गति उ ... उ द्वारा प्रकट की जाती है और फलतः जहां दोनों चरमों के बीच मूल्यगत भेद नहीं होता, पेशगी मूल्य का स्वप्रसार, बेशी मूल्य का उत्पादन उसी प्रकार व्यंजित होता है, जिस प्रकार द्र ... द्र′ में। अन्तर केवल यह है कि मा′ – द्र′ की क्रिया, जो द्र ... द्र′ में आख़िरी मंज़िल और परिपथ की दूसरी मंज़िल बनकर आती है, वह उ ... उ में परिचलन की पहली मंज़िल का काम करती है।

---

*इस पुस्तक का पृष्ठ ७५ देखें। – सं०

उ . . . उ′ में उ′ इसका द्योतक नहीं है कि बेशी मूल्य उत्पन्न किया जा चुका है, वरन इसका है कि उत्पन्न किये हुए बेशी मूल्य का पूंजीकरण हो गया है। अतः वह इसका द्योतक है कि पूंजी संचित हो चुकी है और इसलिए उ के विपरीत उ′ में मूल पूंजी मूल्य तथा पूंजी मूल्य की गति के कारण पूंजी का संचित मूल्य समाहित हैं।

यदि हम द्र′ को द्र . . . द्र′ की सादी समाप्ति के रूप में और मा′ को भी, जैसा वह इन सभी परिपथों में प्रकट होता है, अलग से देखें, तो हम पायेंगे कि वे गति नहीं, उसका परिणाम – माल या द्रव्य के रूप में सिद्धिकृत पूंजी मूल्य के स्वप्रसार को और इसलिए पूंजी मूल्य को द्र + द्र अथवा मा + मा के रूप में, पूंजी मूल्य को उसके बेशी मूल्य के सम्बन्ध के रूप में, उसकी सन्तान के रूप में व्यंजित करते हैं। वे यह परिणाम स्वप्रसारित पूंजी मूल्य के विभिन्न परिचलन रूपों की हैसियत से प्रकट करते हैं। किन्तु जो स्वप्रसार हो चुका है, वह न तो मा′ के रूप में और न ही द्र′ के रूप में स्वयं द्रव्य पूंजी अथवा माल पूंजी का कार्य होता है। औद्योगिक पूंजी के विशेष कार्यों के अनुरूप विशेष, विभेदित रूपों, अस्तित्व के रूपों की हैसियत से द्रव्य पूंजी केवल द्रव्य कार्यों और माल पूंजी केवल माल कार्यों को सम्पन्न कर सकती है। इन दोनों में जो अन्तर है, वह केवल द्रव्य और माल का अन्तर है। इसी प्रकार उत्पादक पूंजी के रूप में औद्योगिक पूंजी उन्हीं तत्वों को अपने भीतर समाहित कर सकती है, जो उत्पादों का सृजन करनेवाली अन्य किसी भी श्रम प्रक्रिया में समाहित होते हैं: एक ओर श्रम की वस्तुगत परिस्थितियां (उत्पादन साधन), दूसरी ओर उत्पादक (उद्देश्यनिष्ठ) ढंग से कार्यशील श्रम शक्ति। जैसे उत्पादन क्षेत्र में औद्योगिक पूंजी केवल ऐसे संयोग में ही विद्यमान रह सकती है, जो आम तौर से उत्पादन प्रक्रिया की, और इस प्रकार ग़ैरपूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया की आवश्यकताएं पूरा करता हो, वैसे ही परिचलन क्षेत्र में वह उसके अनुरूप केवल दो रूपों में विद्यमान रह सकती है, माल के रूप में और द्रव्य के रूप में। लेकिन चूंकि उत्पादन के तत्वों की समग्रता प्रारम्भ में ही अपने को उत्पादक पूंजी के रूप में प्रकट कर देती है, क्योंकि श्रम शक्ति ऐसी श्रम शक्ति है, जो दूसरों की है, और उसके मालिकों से पूंजीपति ने उसे वैसे ही ख़रीदा है, जैसे दूसरे माल स्वामियों से उसने उत्पादन साधन ख़रीदे हैं, इसलिए स्वयं उत्पादन प्रक्रिया यों प्रकट होती है, मानो वह औद्योगिक पूंजी का उत्पादक कार्य हो। वैसे ही द्रव्य और माल उसी औद्योगिक पूंजी के परिचलन रूपों की हैसियत से प्रकट होते हैं। इसलिए द्रव्य और माल के कार्य इस पूंजी के परिचलन के कार्यों की तरह प्रकट होते हैं। परिचलन के ये कार्य या तो उत्पादक पूंजी के कार्यों को शुरू करते हैं या फिर ख़ुद उनसे उत्पन्न होते हैं। यहां द्रव्य कार्य और माल कार्य साथ-साथ द्रव्य पूंजी और माल पूंजी के कार्य भी हैं। ऐसा केवल इसलिए होता है कि वे उन कार्यों के रूपों की हैसियत से परस्पर सम्बद्ध हैं, जिन्हें अपने परिपथ की विभिन्न मंजिलों में औद्योगिक पूंजी को सम्पन्न करना पड़ता है। इसलिए द्रव्य रूपों में द्रव्य के, और माल रूपों में माल के जो अपने गुणधर्म और कार्य होते हैं, उन्हें पूंजी रूप में उनके गुण से निकालने की कोशिश करना ग़लत है और इसके विपरीत उत्पादक पूंजी के गुणधर्मों को उत्पादन साधनों में उसके अस्तित्व की पद्धति से निकालना भी उतना ही ग़लत है।

जैसे ही द्र′ अथवा मा′ द्र + द्र अथवा मा + मा के रूप में, अर्थात पूंजी मूल्य और

उसकी सन्तान बेशी मूल्य के बीच सम्बन्ध के रूप में स्थिर होते हैं, यह सम्बन्ध दोनों में – पहले तो द्रव्य रूप में और दूसरे, माल रूप में – प्रकट हो जाता है। इससे स्थिति में जरा भी अन्तर नहीं आता। फलतः इस सम्बन्ध का मूल द्रव्य में उसके द्रव्य होने के कारण या माल में उसके माल होने के कारण निहित किन्हीं गुणधर्मों या कार्यों में नहीं होता। दोनों ही स्थितियों में पूंजी का अपना विशेष गुण, यह गुण कि वह मूल्य उत्पन्न करनेवाला मूल्य है, केवल परिणाम के रूप में व्यंजित होता है। मा′ सदा ही उ के कार्य का उत्पाद होता है, और द्र′ सदा ही मा′ का मात्र औद्योगिक पूंजी के परिपथ में बदला हुआ रूप होता है। इसलिए जैसे ही सिद्धिकृत द्रव्य पूंजी अपना द्रव्य पूंजी का विशेष कार्य फिर अपनाती है, वैसे ही वह द्र′ = द्र + द्र में समाहित पूंजी सम्बन्ध की व्यंजना करना बन्द कर देती है। द्र ... द्र′ का दौर जब पार हो चुकता है और द्र′ नये सिरे से परिपथ आरम्भ करता है, तब वह द्र′ रूप में नहीं, वरन द्र रूप में सामने आता है, फिर चाहे द्र′ में समाहित समस्त बेशी मूल्य पूंजीकृत हो चुका हो। हमारे उदाहरण में पहले परिपथ की ४२२ पाउंड द्रव्य पूंजी के बदले दूसरा परिपथ ५०० पाउंड की द्रव्य पूंजी से शुरू होता है। जिस द्रव्य पूंजी से परिपथ शुरू होता है, वह पहले की अपेक्षा ७८ पाउंड अधिक है। यह अन्तर तब अस्तित्व में आता है, जब एक परिपथ से दूसरे की तुलना की जाती है, किन्तु ऐसी तुलना प्रत्येक परिपथ विशेष के भीतर नहीं की जा सकती। द्रव्य पूंजी के रूप में पेशगी दिये गये ५०० पाउंड, जिनमें ७८ पाउंड पहले बेशी मूल्य के रूप में विद्यमान थे, उनकी उसके अलावा और कोई भूमिका नहीं होती कि जैसी किन्हीं अन्य ५०० पाउंड की होगी, जिनसे कोई दूसरा पूंजीपति अपने पहले परिपथ की शुरूआत करता है। यही बात उत्पादक पूंजी के परिपथ में घटित होती है। संवर्धित उ′ फिर से काम शुरू करने पर उ की हैसियत से वैसे ही क्रियाशील होता है, जैसे साधारण पुनरुत्पादन उ ... उ में उ हुआ था।

द्र′ – मा′ < (श्र / उ सा) की मंज़िल में संवर्धित परिमाण केवल मा′ द्वारा ही सूचित होता है, श्र′ द्वारा अथवा उ सा′ द्वारा नहीं। चूंकि मा श्र और उ सा का जोड़ है, इसलिए मा′ इस बात को अच्छी तरह प्रकट कर देता है कि उसमें समाहित श्र और उ सा का जोड़ मूल उ से अधिक है। दूसरे, श्र′ और उ सा′ पदों का प्रयोग ग़लत होगा, क्योंकि हम जानते हैं कि पूंजी की वृद्धि का अर्थ होता है उसके मूल्य की संरचना में परिवर्तन, और जैसे-जैसे यह परिवर्तन प्रगति करता है, वैसे-वैसे उ सा के मूल्य में वृद्धि होती है, और श्र के मूल्य में, सापेक्ष रूप में और बहुधा निरपेक्ष रूप में भी ह्रास होता है।

३. द्रव्य का संचय

द्र, जो द्रव्य रूप में परिवर्तित बेशी मूल्य है, तुरंत ही उस पूंजी मूल्य में, जो प्रक्रिया के अन्तर्गत है, जोड़ा जाता है कि नहीं, और इस प्रकार पूंजी द्र के साथ, जिसका परिमाण अब द्र′ है, परिपथ में प्रवेश पा सकता है या नहीं, यह उन परिस्थितियों पर निर्भर है, जो

द्र के अस्तित्व मात्र से स्वतन्त्र हैं। यदि द्र को द्रव्य पूंजी के रूप में किसी दूसरे स्वतन्त्र व्यवसाय में काम करना है, जो पहले के साथ-साथ चलाया जायेगा, तो यह स्पष्ट है कि उसका इस उद्देश्य के लिए तब तक उपयोग नहीं किया जा सकता कि जब तक उसने इसके लिए आवश्यक न्यूनतम आकार न प्राप्त कर लिया हो। और यदि मूल व्यवसाय के प्रसार के लिए उसे काम में लाना उद्दिष्ट है, तो उ के भौतिक उपादान तथा उनके मूल्य सम्बन्धों के परस्पर सम्बन्ध भी यह मांग करते हैं कि द्र का न्यूनतम परिमाण हो। इस व्यवसाय में उपयुक्त समस्त उत्पादन साधनों का एक दूसरे से गुणात्मक ही नहीं, एक निश्चित परिमाणात्मक सम्बन्ध भी होता है, परिमाण के लिहाज़ से वे यथानुपात होते हैं। ये भौतिक सम्बन्ध तथा उत्पादक पूंजी में प्रवेश करनेवाले उपादानों के प्रासंगिक मूल्य सम्बन्ध भी द्र का वह न्यूनतम परिमाण निर्धारित करते हैं, जिसे प्राप्त करके वह उत्पादन के अतिरिक्त साधनों और अतिरिक्त श्रम शक्ति में अथवा केवल उत्पादन साधनों में, उत्पादक पूंजी में वृद्धि के रूप में रूपांतरित होने के योग्य बनता है। इस प्रकार कताई मिल का मालिक अपने तकुओं की संख्या तब तक नहीं बढ़ा सकता कि जब तक अनुरूप संख्या में धुनने और पूनी बनाने की मशीनें भी न ख़रीदे। व्यावसायिक अपेक्षाओं के इस प्रसार से कपास और मज़दूरी पर होनेवाले व्यय की वृद्धि इसके अलावा है। इसलिए यह सब करने के लिए बेशी मूल्य का काफ़ी बड़ा आकार प्राप्त कर लेना आवश्यक होता है (जिसे सामान्यत: एक पाउंड प्रति नया तकुआ माना जाता है)। यदि द्र यह न्यूनतम आकार प्राप्त नहीं करता, तो पूंजी के परिपथ को तब तक दोहराना होगा कि उसके द्वारा उत्तरोत्तर उत्पादित द्र की राशि द्र के साथ कार्य कर सके, अतः द्र′ — मा′ < $\genfrac{}{}{0pt}{}{\text{श्र}}{\text{उ सा}}$।

छोटी-मोटी चीज़ों में तबदीली करने के लिए भी, उदाहरण के लिए, अधिक उत्पादक बनाने के लिए कताई मशीनों में, कताई के सामान पर, पूनी बनाने की मशीनों, आदि पर अधिक व्यय आवश्यक होता है। इस बीच द्र संचित होता रहता है। उसका यह संचय उसका अपना कार्य नहीं है, वरन वह उ . . . उ की पुन: आवृत्ति का फल है। उसका अपना कार्य इसमें निहित है कि वह तब तक द्रव्य की अवस्था में बना रहे कि जब तक पुनरावर्तित बेशी मूल्य सृजक परिपथों से – अर्थात बाहर से – पर्याप्त वृद्धि न प्राप्त कर ले, ताकि वह अपने सक्रिय कार्य के लिए आवश्यक न्यूनतम परिमाण को हासिल कर ले। इस परिमाण में ही वह वस्तुत: द्रव्य पूंजी की हैसियत से द्र के कार्य में प्रवेश पा सकता है। प्रस्तुत प्रसंग में यह कार्यशील द्रव्य पूंजी द्र का संचित भाग है। किन्तु इस बीच वह संचित होता रहता है और निर्माण की, वृद्धि की प्रक्रिया में अपसंचय के रूप में ही अस्तित्वमान रहता है। इसलिए द्रव्य का संचय, उसकी जमाख़ोरी यहां ऐसी प्रक्रिया के रूप में सामने आता है, जो अस्थाई तौर पर वास्तविक संचय के साथ, औद्योगिक पूंजी के कार्य के विस्तार के साथ चलता है। अस्थाई तौर पर इसलिए कि अपसंचय जब तक अपसंचय की अवस्था में बना रहता है, तब तक वह पूंजी रूप में कार्य नहीं करता, बेशी मूल्य की सृजन प्रक्रिया में भाग नहीं लेता, ऐसी धनराशि बना रहता है, जो केवल इसलिए बढ़ती रहती है कि उसके कुछ किये बिना प्राप्त धन भी उसी तिजोरी में डाल दिया जाता है।

अपसंचय का रूप द्रव्य का ही वह रूप है, जो परिचलन में नहीं है, उस द्रव्य का रूप है, जिसका परिचलन विच्छिन्न हो गया है और जो इस कारण द्रव्य रूप में स्थिर हो गया

है। जहां तक जमाख़ोरी की प्रक्रिया का सम्बन्ध है, वह सभी प्रकार के माल उत्पादन में होती है और इस उत्पादन के अविकसित, प्राक्-पूंजीवादी रूपों में ही स्वयं एक साध्य के रूप में प्रकट होती है। किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में द्रव्य चूंकि और जहां तक **अंतर्हित द्रव्य पूंजी** की हैसियत में आता है, इसलिए अपसंचय द्रव्य पूंजी के एक रूप की तरह और अपसंचय का निर्माण एक प्रक्रिया की तरह प्रकट होता है, जो पूंजी के संचय के साथ-साथ अस्थायी तौर पर चलती है। कारण यह है कि अपसंचय का निर्माण, अपसंचय होने की अवस्था, जिसमें द्रव्य रूप में विद्यमान बेशी मूल्य अपने आपको पाता है, एक कार्यतः निर्धारित उपक्रमात्मक मंज़िल है, जिससे पूंजी निर्मित परिपथ के बाहर गुज़रती है और जो बेशी मूल्य के वस्तुतः कार्यशील पूंजी में रूपांतरण के लिए आवश्यक होती है। इसलिए अपने लक्षण के लिहाज़ से यह अंतर्हित द्रव्य पूंजी है। इसी लिए प्रक्रिया में हिस्सा लेने से पहले उसके लिए जो आकार ग्रहण करना आवश्यक होता है, वह प्रत्येक प्रसंग में उत्पादक पूंजी के मूल्य गठन द्वारा निर्धारित होता है। किन्तु जब तक वह अपसंचय की अवस्था में रहता है, तब तक वह द्रव्य पूंजी के कार्य नहीं करता, वरन निष्क्रिय द्रव्य पूंजी ही बना रहता है, ऐसी द्रव्य पूंजी नहीं कि जिसका कार्य अंतरित हो गया है, जैसा कि पहले प्रसंग में था, वरन ऐसी द्रव्य पूंजी, जो अभी उसे करने के योग्य नहीं है।

हम यहां द्रव्य के वास्तविक अपसंचय के मूल यथार्थ रूप में द्रव्य संचय का विवेचन कर रहे हैं। वह मात्र बक़ाया द्रव्य के, मा′ बेच चुकनेवाले पूंजीपतियों के क़र्ज़दारों पर दावों के रूप में भी विद्यमान हो सकता है। जहां तक उन अन्य रूपों की बात है, जिनमें यह अंतर्हित द्रव्य पूंजी बीच की अवधि में द्रव्यप्रसू द्रव्य के रूप में भी अस्तित्वमान रह सकती है, बैंक में जमा सब्याज धन, हुंडियां अथवा किसी भी प्रकार की प्रतिभूतियां – वे इस प्रसंग के बाहर हैं। ऐसे मामलों में द्रव्य रूप में सिद्धिकृत बेशी मूल्य औद्योगिक पूंजी द्वारा निर्मित परिपथ के, जिसने उसे उत्पन्न किया था, बाहर विशेष पूंजी कार्य संपन्न करता है। इन कार्यों का एक ओर तो स्वयं उस परिपथ के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं होता, लेकिन दूसरी ओर जो ऐसे पूंजी कार्यों की पूर्वकल्पना करते हैं, जो औद्योगिक पूंजी के कार्यों से भिन्न हैं और जिन्हें अभी यहां विस्तार से नहीं लिया गया है।

४. आरक्षित निधि

हमने अभी जिस रूप में अपसंचय का विवेचन किया है, जिस रूप में बेशी मूल्य विद्यमान होता है, वह द्रव्य के संचय के लिए एक निधि है, वह पूंजी संचय द्वारा अस्थाई तौर पर धारण किया द्रव्य रूप है और उस सीमा तक वह इस संचय की एक शर्त है। किन्तु यह संचय निधि गौण कोटि की विशेष सेवाएं भी कर सकती है, अर्थात वह परिपथों में पूंजी की गति में यों प्रवेश कर सकती है कि यह प्रक्रिया उ . . . उ′ का रूप धारण न करे और इसलिए पूंजीवादी पुनरुत्पादन का प्रसार न हो।

यदि मा′ – द्र′ की प्रक्रिया को उसकी सामान्य अवधि से और आगे चलाया जाये, अतः यदि द्रव्य रूप में माल पूंजी का रूपान्तरण असामान्यतः विलम्बित हो जाये अथवा यदि, उदाहरण के लिए, इस रूपान्तरण के पूरा होने पर उन उत्पादन साधनों की, जिनमें द्रव्य

पूंजी को परिवर्तित होना है, क़ीमत उस स्तर से ऊपर चढ़ जाये, जो परिपथ की शुरूआत के समय प्रचलित था, तो संचय निधि के रूप में कार्यशील अपसंचय द्रव्य पूंजी के अथवा उसके अंश के स्थान पर इस्तेमाल किया जा सकता है। इस प्रकार द्रव्य संचय निधि परिपथ में गड़बड़ियों का प्रतिसंतुलन करने के लिए एक आरक्षित निधि का काम करती है।

आरक्षित निधि ख़ास उस निधि से भिन्न है, जो ख़रीदारी और अदायगी के माध्यम का काम करती है, जिसका विवेचन उ . . . उ परिपथ में हो चुका है। ये माध्यम कार्यशील द्रव्य पूंजी का अंश हैं (अतः सामान्यरूपेण प्रक्रिया से गुज़रनेवाले पूंजी मूल्य के अंश के अस्तित्व के रूप हैं), जिसके हिस्से भिन्न-भिन्न समय पर ही क्रमशः अपने कार्य आरम्भ करते हैं। उत्पादन की निरन्तर प्रक्रिया में आरक्षित द्रव्य पूंजी का सदैव निर्माण होता रहता है, क्योंकि एक दिन पैसा आता है और अदायगियां कुछ समय बाद ही करनी होती हैं, तो एक दिन ढेर का ढेर माल बेच दिया जाता है, जब कि और बड़ी ख़रीदारियां काफ़ी समय बाद ही करनी होती हैं। इन अन्तरालों में प्रचल पूंजी का एक हिस्सा निरन्तर द्रव्य रूप में बना रहता है। दूसरी ओर आरक्षित निधि पहले से कार्यरत पूंजी का संघटक अंश नहीं है, अथवा और निश्चित शब्दों में कहें, तो वह द्रव्य पूंजी का संघटक अंश नहीं है। कहना चाहिए कि वह संचय की प्रारम्भिक मंज़िल में पूंजी का, अभी सक्रिय पूंजी में रूपान्तरित नहीं हुए बेशी मूल्य का अंश है। जहां तक शेष बातों का प्रश्न है, यह समझाना आवश्यक नहीं है कि आर्थिक तंगी में पड़ने पर पूंजीपति यह विचार करने नहीं बैठता कि उसके पास जो द्रव्य है, उसके विशेष कार्य क्या हैं। वह सीधे-सीधे अपनी पूंजी को प्रचल बनाये रखने के लिए पास में जो भी द्रव्य होता है, उसे काम में लाता है। इस तरह हमारे उदाहरण में द्र ४२२ पाउंड के बराबर है, द्र′ ५०० पाउंड के। यदि ४२२ पाउंड की पूंजी का एक हिस्सा ऐसी निधि के रूप में विद्यमान हो, जो ख़रीदारी और अदायगी के साधनों का काम दे, जो आरक्षित द्रव्य हो, तो – अन्य परिस्थितियों के समान रहने पर – इरादा यह होता है कि वह परिपथ में पूरी तरह प्रवेश करे और इसके अलावा इस प्रयोजन के लिए पर्याप्त हो। किन्तु आरक्षित निधि ७८ पाउंड बेशी मूल्य का एक अंश है। ४२२ पाउंड पूंजी के परिपथ में वह उसी सीमा तक प्रवेश कर सकती है कि यह परिपथ ऐसी परिस्थितियों में घटित होता है, जो पहले जैसी नहीं रहतीं, क्योंकि वह संचय निधि का अंश है और यहां पुनरुत्पादन के पैमाने में किसी विस्तार के बिना सामने आता है।

द्रव्य संचय निधि का अर्थ है अंतर्हित द्रव्य पूंजी का अस्तित्व, अतः द्रव्य का द्रव्य पूंजी में रूपान्तरण।

उत्पादक पूंजी के परिपथ के लिए सामान्य सूत्र निम्नलिखित है। इसमें साधारण पुनरुत्पादन और उत्तरोत्तर विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन दोनों शामिल हैं:

$$\text{उ} \ldots \overbrace{\text{मा}' - \text{द्र}'}^{१} \;।\; \overbrace{\text{द्र} - \text{मा}}^{२} < {\text{अ} \atop \text{उ सा}} \ldots \text{उ}(\text{उ}')$$

यदि उ उ के बराबर हो, तो द्र २) में द्र′ वियुत द्र के बराबर है। यदि उ उ′ के बराबर होता है, तो द्र २) में द्र′ वियुत द्र से अधिक होता है। दूसरे शब्दों में द्र पूर्णतः अथवा अंशतः द्रव्य पूंजी में रूपान्तरित हो जाता है।

उत्पादक पूंजी का परिपथ वह रूप है, जिसमें क्लासिकी राजनीतिक अर्थशास्त्र औद्योगिक पूंजी की वृत्तीय गति का परीक्षण करता है।

अध्याय ३

माल पूंजी का परिपथ

माल पूंजी के परिपथ का सामान्य सूत्र है:

मा′ – द्र′ – मा . . . उ . . . मा′

मा′ दो पूर्व परिपथों के उत्पाद ही नहीं, उनके पूर्वाधार की हैसियत से भी प्रकट होता है। कारण यह है कि जो एक पूंजी के लिए द्र – मा है, वही दूसरी पूंजी के लिए मा′ – द्र′ है, क्योंकि उत्पादन साधनों का कम से कम एक भाग स्वयं, अपने परिपथों का निर्माण करनेवाली अलग-अलग पूंजियों का माल उत्पाद है। प्रस्तुत प्रसंग में, उदाहरण के लिए, कोयला, मशीनें, आदि खान के मालिक की, पूंजीवादी मशीन निर्माता, आदि की माल पूंजी हैं। इसके अलावा हम अध्याय १, परिच्छेद ४ में दिखा चुके हैं कि द्र . . . द्र′ की पहली आवृत्ति के समय ही न केवल उ . . . उ परिपथ की, वरन मा′ . . . मा′ परिपथ की भी – द्रव्य पूंजी के इस दूसरे परिपथ के पूरा होने के पहले – पूर्वकल्पना की जाती है।

यदि पुनरुत्पादन विस्तृत पैमाने पर हो, तो अन्तिम मा′ प्रारम्भिक मा′ से बड़ा होता है और इसलिए उसे यहां मा″ कहना चाहिए।

पहले दो रूपों और तीसरे रूप में अन्तर इस प्रकार है: पहले, इस प्रसंग में सम्पूर्ण परिचलन अपने दो परस्पर विरोधी दौरों के साथ परिपथ को शुरू करता है, जब कि रूप १ में उत्पादन प्रक्रिया द्वारा परिचलन अन्तरायित होता है और रूप २ में अपने दो परस्पर पूरक दौरों के साथ संपूर्ण परिचलन मात्र पुनरुत्पादन प्रक्रिया सम्पन्न करने के साधन रूप में प्रकट होता है और इसलिए वह उ . . . उ के बीच मध्यस्थता करनेवाली गति होता है। द्र . . . द्र′ के प्रसंग में परिचलन का रूप होता है: द्र – मा . . . मा′ – द्र′ = द्र – मा – द्र। उ . . . उ के प्रसंग में इसका उलटा रूप होता है: मा′ – द्र′। द्र – मा = मा – द्र – मा। मा′ – मा′ के प्रसंग में भी उसका यही बादवाला रूप होता है।

दूसरे, जब १ और २ परिपथों की आवृत्ति होती है, तब भले ही द्र′ और उ′ नवीकृत परिपथ के प्रारम्भ बिन्दु हों, जिस रूप में द्र′ और उ′ उत्पन्न हुए हैं, वह विलुप्त हो जाता

है। द्र′ = द्र + द्र, और उ′ = उ + उ द्र और उ के रूप में नयी प्रक्रिया शुरू करते हैं। रूप ३ में प्रारम्भ बिन्दु मा को मा′ कहना चाहिए, भले ही परिपथ उसी पैमाने पर नवीकृत किया गया हो। इसका कारण यह है कि रूप १ में द्र′ अपने में नया परिपथ शुरू करने के साथ द्रव्य पूंजी द्र का, उस पूंजी मूल्य के पेशगी द्रव्य रूप का कार्य करता है, जिसे बेशी मूल्य पैदा करना है। पेशगी द्रव्य पूंजी का आकार प्रथम परिपथ के दौरान उपलब्ध संचय द्वारा परिवर्धित होकर बढ़ जाता है। किन्तु पेशगी द्रव्य पूंजी का आकार चाहे ४२२ पाउंड हो या ५०० पाउंड हो, उससे इस तथ्य में अन्तर नहीं पड़ता कि वह सादे पूंजी मूल्य के रूप में प्रकट होती है। द्र′ अब स्वप्रसारित पूंजी अथवा बेशी मूल्य से परिपूर्ण पूंजी के रूप में, पूंजी सम्बन्ध के रूप में विद्यमान नहीं होता। वस्तुतः वह अब केवल अपनी प्रक्रिया के दौरान ही स्वयं को प्रसारित करेगा। यही बात उ . . . उ′ के बारे में सही है; उ′ को उ के रूप में, उस पूंजी मूल्य के रूप में निरन्तर कार्य करते जाना होगा, जो बेशी मूल्य का उत्पादन करेगा और अपना परिपथ नये सिरे से शुरू करना होगा।

इसके विपरीत माल पूंजी का परिपथ पूंजी मूल्य मात्र के साथ उद्घाटित नहीं होता, वरन ऐसे पूंजी मूल्य के साथ उद्घाटित होता है, जो माल रूप में परिवर्धित हो चुका है। अतः आरम्भ से ही उसमें न केवल माल रूप में विद्यमान पूंजी मूल्य का ही, वरन बेशी मूल्य का परिपथ भी समाहित होता है। फलतः यदि साधारण पुनरुत्पादन इस रूप में होता है, तो अन्तस्थ बिन्दु पर मा′ प्रारम्भ बिन्दु पर मा′ के आकार के बराबर होता है। यदि बेशी मूल्य का एक भाग पूंजी परिपथ में प्रवेश करे, तो यद्यपि अंत में मा′ के बदले मा″, परिवर्धित मा′, प्रकट होता है, फिर भी इसके बादवाला परिपथ फिर मा′ द्वारा उद्घाटित होता है। पूर्ववर्ती परिपथ के मा′ की अपेक्षा यह मा′ केवल अधिक बड़ा होता है, इसमें संचित पूंजी मूल्य अधिक बड़ा होता है। अतः वह अपना नया परिपथ अपेक्षाकृत अधिक बड़े, नवसृजित बेशी मूल्य से आरम्भ करता है। कुछ भी हो, मा′ सदैव माल पूंजी की हैसियत से परिपथ का उद्घाटन करता है, जो पूंजी मूल्य + बेशी मूल्य के बराबर होती है।

मा की हैसियत से मा′ किसी वैयक्तिक औद्योगिक पूंजी के परिपथ में उस पूंजी का एक रूप बनकर नहीं, वरन जहां तक उत्पादन साधन किसी दूसरी औद्योगिक पूंजी का उत्पाद हैं, इस दूसरी पूंजी का एक रूप बनकर प्रकट होता है। पहली पूंजी की द्र — मा (अर्थात द्र — उ सा) क्रिया इस दूसरी पूंजी के लिए मा′ — द्र′ होती है।

परिचलन क्रिया द्र — मा < श्र / उ सा में श्र और उ सा के सम्बन्ध एक से होते हैं, क्योंकि वे अपने विक्रेताओं के हाथ में पण्य वस्तुएं हैं — एक ओर श्रमिक हैं, जो अपनी श्रम शक्ति बेचते हैं, दूसरी ओर उत्पादन साधनों का मालिक है, जो इन्हें बेचता है। ग्राहक के लिए, जिसका धन यहां द्रव्य पूंजी का कार्य करता है, श्र और उ सा केवल तब तक माल का कार्य करते हैं, जब तक कि वह उन्हें ख़रीद नहीं लेता, अर्थात जब तक वे द्रव्य रूप में विद्यमान उसकी पूंजी के सामने दूसरों के माल की हैसियत से रहते हैं। यहां उ सा और

श्र में केवल यही भेद है कि उ सा अपने विक्रेता के हाथ में मा′ होता है, अतः पूंजी हो सकता है, क्योंकि उ सा उसकी पूंजी का माल रूप हैं, जब कि श्र श्रमिक के लिए माल के अलावा और कुछ नहीं होता और वह अपने ख़रीदार के हाथ में ही उ के संघटक अंश की हैसियत से पूंजी बनता है।

इस कारण मात्र मा की हैसियत से, मात्र पूंजी मूल्य के माल रूप की हैसियत से मा′ कोई परिपथ शुरू नहीं कर सकता। माल पूंजी की हैसियत से वह सदा द्विधा होता है। उपयोग मूल्य के विचार से वह उ की कार्यशीलता का उत्पाद, प्रस्तुत प्रसंग में सूत है। इस उ के परिचलन क्षेत्र से मालों के रूप में आनेवाले तत्व श्र और उ सा इस उत्पाद के सृजन में केवल उपादानों की हैसियत से कार्य कर चुके होते हैं। दूसरे, मूल्य के विचार से वह पूंजी मूल्य उ+बेशी मूल्य बे–जो उ की कार्यशीलता से उत्पन्न होता है–का उत्पाद है।

स्वयं मा′ जिस परिपथ को निर्मित करता है, केवल उसी में मा, जो उ के बराबर है और पूंजी मूल्य के बराबर है, मा′ के उस भाग से अलग हो सकता है, और उसे अलग होना चाहिए, जिसमें बेशी मूल्य विद्यमान होता है, उस बेशी उत्पाद से अलग हो सकता है और होना चाहिए, जिसमें बेशी मूल्य रहता है। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि ये दोनों चीज़ें वस्तुतः अलग की जा सकती हैं, जैसे सूत के मामले में या नहीं की जा सकतीं, जैसे कि मशीन के मामले में। जैसे ही मा′ द्र′ में रूपान्तरित होता है, वैसे ही वे सदैव वियोज्य हो जाते हैं।

यदि समग्र माल उत्पाद को स्वतंत्र समरूप आंशिक उत्पादों में विभाजित किया जा सके, यथा हमारे १०,००० पाउंड सूत के प्रसंग में, और इसलिए यदि मा′–द्र′ क्रिया अनेक क्रमिक विक्रय क्रियाओं के रूप में प्रस्तुत की जा सके, तो इससे पहले कि बेशी मूल्य सिद्धिकृत किया जाये, अतः इसके पहले कि मा′ का अपनी समग्रता में सिद्धिकरण किया जाये, माल रूप में पूंजी मूल्य मा की हैसियत से कार्य कर सकता है, मा′ से अलग किया जा सकता है।

५०० पाउंड के १०,००० पाउंड सूत में ८,४४० पाउंड सूत का मूल्य ४२२ पाउंड के बराबर है, बेशी मूल्य निकले पूंजी मूल्य के बराबर है। यदि पूंजीपति पहले ८,४४० पाउंड सूत ४२२ पाउंड पर बेचता है, तो यह ८,४४० पाउंड सूत मा है, पण्य रूप में पूंजी मूल्य है। १,५६० पाउंड सूत का बेशी उत्पाद, जो उसी प्रकार मा′ में समाहित है और ७८ पाउंड के बेशी मूल्य के बराबर है, बाद में जाकर ही परिचलित होता है। पूंजीपति बेशी उत्पाद का परिचलन मा–द्र–मा सम्पन्न होने के पहले ही मा – द्र – मा $<$ श्र / उ सा के दौर से गुज़र सकता है।

अथवा यदि पहले वह ३७२ पाउंड का ७,४४० पाउंड सूत बेच देता है, और फिर ५० पाउंड का १,००० पाउंड सूत बेचता है, तो वह उत्पादन साधनों (स्थिर पूंजी स) की मा के पहले भाग से और परिवर्ती पूंजी प की, श्रम शक्ति की मा के दूसरे भाग से प्रतिस्थापना कर सकता है, और फिर पूर्ववत अग्रसर हो सकता है।

किन्तु यदि ये अनुवर्ती बिक्रियां होती हैं और परिपथ की परिस्थितियां होने देती हैं, तो पूंजीपति मा′ को स+प+बे में अलग करने के बदले मा′ के अशेषभाजक खंडों का भी ऐसे ही वियोजन कर सकता है।

उदाहरण के लिए, ३७२ पाउंड के ७,४४० पाउंड सूत को, जो मा′ (५०० पाउंड के १०,००० पाउंड सूत) के खंडों की हैसियत से पूंजी का स्थिर भाग सूचित करता है, स्वयं भी इस तरह वियोजित किया जा सकता है: २७६.७६८ पाउंड का ५,५३५.३६० पाउंड सूत, जो केवल स्थिर भाग प्रतिस्थापित करता है और ७,४४० पाउंड सूत पैदा करने में प्रयुक्त उत्पादन साधनों का मूल्य है; ३७,२०० पाउंड का ७४४ पाउंड सूत, जो केवल परिवर्ती पूंजी प्रतिस्थापित करता है; और ५८.०३२ पाउंड का १,१६०.६४० पाउंड सूत, जो बेशी उत्पाद होने के कारण बेशी मूल्य का निधान है। फलत: ७,४४० पाउंड सूत बेचने पर वह उसमें समाहित पूंजी मूल्य की ३१३.६६८ पाउंड क़ीमत पर ६,२७९.३६० पाउंड सूत की बिक्री करके प्रतिस्थापना कर सकता है और १,१६०.६४० पाउंड सूत के बेशी उत्पाद के मूल्य अथवा ५८.०३२ पाउंड को अपनी आय के तौर पर ख़र्च कर सकता है।

इसी तरह वह ५० पाउंड परिवर्ती पूंजी मूल्य के और १,००० पाउंड सूत को भी विभाजित कर सकता है और उसे तदनुसार बेच सकता है: ३७.२०० पाउंड, जो १,००० पाउंड सूत में समाहित स्थिर पूंजी है, का ७४४ पाउंड सूत; ५,००० पाउंड, जो इसी १,००० पाउंड सूत में निहित परिवर्ती पूंजी मूल्य है, का १०० पाउंड सूत; अत: ४२.२०० पाउंड, जो सूत में समाहित पूंजी मूल्य का प्रतिस्थापन है, का ८४४ पाउंड सूत; अन्त में ७.८०० पाउंड का १५६ पाउंड सूत, जो उसमें समाहित बेशी उत्पाद सूचित करता है, जिसे इसी रूप में उपभोग में लाया जा सकता है।

आख़िरकार वह ७८ पाउंड का शेष १,५६० पाउंड सूत इस तरह विभाजित कर सकता है – बशर्ते कि वह उसे बेचने में सफल हो – कि ५८.०३२ पाउंड के १,१६०.६४० पाउंड सूत की बिक्री से उत्पादन साधनों का वह मूल्य प्रतिस्थापित हो जाये, जो उस १,५६० पाउंड सूत में समाहित है और यह कि ७.८०० पाउंड का १५६ पाउंड सूत परिवर्ती पूंजी मूल्य प्रतिस्थापित करे; कुल मिलाकर ६५.८३२ पाउंड का १,३१६.६४० पाउंड सूत कुल पूंजी मूल्य का प्रतिस्थापक है; अन्त में १२.१६८ पाउंड का २४३.३६० पाउंड सूत बेशी उत्पाद है, और आय के रूप में ख़र्च किये जाने के लिए बच रहता है।

सूत में समाहित सभी तत्व – स, प और बे – उन्हीं संघटक अंशों में विभाज्य हैं, और इसी प्रकार प्रत्येक पृथक एक पाउंड सूत, जो १ शिलिंग या १२ पेन्स का है, भी विभाज्य है।

स = ०.७४४ पाउंड सूत = ८.९२८ पेन्स
प = ०.१०० पाउंड सूत = १.२०० पेन्स
बे = ०.१५६ पाउंड सूत = १.८७२ पेन्स

स+प+बे = १ पाउंड सूत = १२ पेन्स

यदि हम ऊपर की तीनों आंशिक बिक्रियों के फल जोड़ दें, तो वही नतीजा हासिल होगा, जो १०,००० पाउंड सूत की समूची राशि एकबारगी बेचने पर प्राप्त होगा।

हमारे पास स्थिर पूंजी इस प्रकार है:

पहली बिक्री पर :	५,५३५.३६० पाउंड सूत =	२७६.७६८ पाउंड
दूसरी बिक्री पर :	७४४.००० पाउंड सूत =	३७.२०० पाउंड
तीसरी बिक्री पर :	१,१६०.६४० पाउंड सूत =	५८.०३२ पाउंड
योग ...	७,४४० पाउंड सूत =	३७२ पाउंड

परिवर्ती पूंजी इस प्रकार है :

पहली बिक्री पर :	७४४.००० पाउंड सूत =	३७.२०० पाउंड
दूसरी बिक्री पर :	१००.००० पाउंड सूत =	५.००० पाउंड
तीसरी बिक्री पर :	१५६.००० पाउड सूत =	७.८०० पाउंड
योग ...	१,००० पाउंड सूत =	५० पाउंड

बेशी मूल्य इस प्रकार है :

पहली बिक्री पर :	१,१६०.६४० पाउंड सूत =	५८.०३२ पाउंड
दूसरी बिक्री पर :	१५६.००० पाउंड सूत =	७.८०० पाउंड
तीसरी बिक्री पर :	२४३.३६० पाउंड सूत =	१२.१६८ पाउंड
योग ...	१,५६० पाउंड सूत =	७८ पाउंड

कुल योग :

स्थिर पूंजी	७,४४० पाउंड सूत =	३७२ पाउंड
परिवर्ती पूंजी	१,००० पाउंड सूत =	५० पाउंड
बेशी मूल्य	१,५६० पाउंड सूत =	७८ पाउंड
योग ...	१०,००० पाउंड सूत =	५०० पाउंड

मा' — द्र' अपने आप में १०,००० पाउंड सूत की बिक्री मात्र का सूचक है। और सभी सूत की तरह यह १०,००० पाउंड सूत भी पण्य वस्तु है। ग्राहक की दिलचस्पी १ शिलिंग प्रति पाउंड सूत अथवा ५०० पाउंड के १०,००० पाउंड सूत के भाव में है। सौदा तय करते समय अगर वह सूत के मूल्य गठन की छानबीन करता भी है, तो वह ऐसा केवल धूर्त्ततापूर्ण इरादे से यह सिद्ध करने के लिए करता है कि सूत १ शिलिंग प्रति पाउंड से कम भी बेचा जा सकता है और विक्रेता के लिए तब भी वह अच्छा सौदा होगा। किन्तु वह जितनी मात्रा ख़रीदता है, वह उसकी आवश्यकताओं पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, यदि वह किसी बुनाई मिल का मालिक है, तो वह मात्रा इस उद्यम में कार्यशील उसकी अपनी पूंजी के गठन पर निर्भर होती है, न कि कातनेवाले की पूंजी के गठन पर, जिससे वह सूत ख़रीदता है। मा' को एक ओर जिस अनुपात में अपने उत्पादन में प्रयुक्त पूंजी को (अथवा इस पूंजी के विभिन्न संघटक अंशों को) प्रतिस्थापित करना होता है, और दूसरी ओर जिस अनुपात में या तो बेशी मूल्य को व्यय करने के लिए या पूंजी संचय के लिए बेशी उत्पाद का काम करना होता है, वह केवल उस पूंजी के परिपथ में विद्यमान है, जिसका अपना जिंस रूप १०,००० पाउंड सूत है। इस अनुपात का स्वयं बिक्री से कोई भी सम्बन्ध नहीं होता। वर्तमान प्रसंग में यह भी मान लिया गया है कि मा' को उसके मूल्य पर बेचा गया है, जिससे कि प्रश्न

केवल उसके जिंस रूप से द्रव्य रूप में रूपान्तरण का है। बेशक मा′ के प्रसंग में जो इस वैयक्तिक पूंजी के परिपथ में कार्यशील रूप है, जिसमें से उत्पादक पूंजी की प्रतिस्थापना की जानी है, यह बात निर्णायक महत्व की है कि बिक्री में क़ीमत और मूल्य के बीच अगर कोई विषमता है, तो वह कितनी है। किन्तु यहां केवल रूप भेदों के विवेचन में इससे हमें सरोकार नहीं है। रूप १ में, अथवा द्र . . . द्र′ में, उत्पादन प्रक्रिया पूंजी परिचलन के दो पूरक और परस्पर विरोधी दौरों के बीच आधी राह में दख़ल देती है। यह समापन दौर मा′ – द्र′ के शुरू होने के पहले ही ख़त्म हो चुकी होती है। द्रव्य पूंजी के रूप में दिया जाता है; पहले वह उत्पादन तत्वों में रूपान्तरित होता है और फिर उनसे माल उत्पाद में रूपान्तरित होता है; और यह माल उत्पाद अपनी बारी में फिर द्रव्य में परिवर्तित हो जाता है। व्यवसाय का यह एक पूरा और परिपूर्ण चक्र है, जिसकी परिणति है द्रव्य, जिसे हर कोई हर किसी चीज़ के लिए इस्तेमाल कर सकता है। इसलिए एक नयी शुरूआत सम्भावना मात्र होती है। द्र . . . उ . . . द्र′ या तो अन्तिम परिपथ हो सकता है, जो व्यवसाय से निकाली जाती किसी वैयक्तिक पूंजी की कार्यशीलता को समाप्त करता है अथवा अपना कार्य आरम्भ करनेवाली किसी नयी पूंजी का प्रथम परिपथ हो सकता है। यहां सामान्य गति है द्र . . . द्र′, द्रव्य से अधिक द्रव्य की ओर।

रूप २ में, उ . . . मा′ – द्र′ – मा . . . उ (उ′) में, सारी परिचलन प्रक्रिया प्रथम उ का अनुगमन तथा दूसरे उ का पूर्वगमन करती है; किन्तु उसका क्रम रूप १ से उलटा होता है। प्रथम उ उत्पादक पूंजी है और उसका कार्य उत्पादक प्रक्रिया है, जो अनुवर्ती परिचलन प्रक्रिया की पूर्वावश्यकता है। दूसरी ओर, अन्तिम उ उत्पादक प्रक्रिया नहीं है; वह अपने उत्पादक पूंजी के रूप में औद्योगिक पूंजी का नवीकृत अस्तित्व मात्र है। और वह ऐसा परिचलन के अन्तिम दौर में पूंजी मूल्य के श्र + उ सा में रूपान्तरण के, उन आत्मगत और वस्तुगत उपादानों में रूपान्तरण के फलस्वरूप है, जो संयुक्त होकर उत्पादक पूंजी के अस्तित्व का रूप गठित करते हैं। पूंजी चाहे उ हो, चाहे उ′, वह अन्त में फिर ऐसे रूप में विद्यमान होती है, जिसमें उसे नये सिरे से उत्पादक पूंजी की हैसियत से कार्य करना होगा, फिर से उत्पादन प्रक्रिया सम्पन्न करनी होगी। उ . . . उ गति का सामान्य रूप पुनरुत्पादन का रूप है और द्र . . . द्र′ के विपरीत प्रक्रिया के उद्देश्य के रूप में मूल्य का स्वप्रसार सूचित नहीं करता। इसलिए यह रूप क्लासिकी राजनीतिक अर्थशास्त्र के लिए उत्पादन प्रक्रिया के निश्चित पूंजीवादी रूप को अनदेखा कर देना और यह दर्शाना बिल्कुल आसान बना देता है कि प्रक्रिया का उद्देश्य उत्पादन ही है, अर्थात जितना बन सके, और जितने सस्ते ढंग से बन सके, उतना माल पैदा किया जाना चाहिए, और उत्पाद का विनिमय अवश्यमेव अन्य अधिकाधिक प्रकारों के उत्पाद से अंशतः उत्पादन के नवीकरण (द्र – मा) और अंशतः उपभोग (द्र – मा) के लिए किया जाना चाहिए। चूंकि द्र और द्र यहां परिचलन के अस्थायी माध्यमों के रूप में ही प्रकट होते हैं, इसलिए द्रव्य और द्रव्य पूंजी की विशेषताओं को अनदेखा कर देना संभव हो जाता है। सारी प्रक्रिया सादी और सहज जान पड़ती है, अर्थात उसमें सतही बुद्धिवाद की सहजता होती है।

इसी प्रकार माल पूंजी में जब-तब मुनाफ़े को भुला दिया जाता है, और वह केवल तब ही माल रूप में सामने आती है कि जब उत्पादन परिपथ का समूचे तौर पर विवेचन किया जाता है। किन्तु जैसे ही मूल्य के संघटक अंशों पर विवाद होता है, तो वह माल पूंजी के रूप में आ जाती है। बेशक संचय को भी उसी रोशनी में देखा जाता है कि जिसमें उत्पादन को।

रूप ३ में, मा' — द्र'— मा . . . उ . . . मा' में, परिचलन प्रक्रिया के दोनों दौर परिपथ उद्घाटित करते हैं, और उसी क्रम से करते हैं, जो रूप २, उ . . . उ में था। उसके बाद उ अपने कार्य, उत्पादक प्रक्रिया के साथ वैसे ही आता है, जैसे रूप १ में। उत्पादन प्रक्रिया के फल, मा', के साथ परिपथ समाप्त होता है। ठीक जैसे रूप २ में परिपथ उ के साथ समाप्त होता है, जो उत्पादक पूंजी का नवीकृत अस्तित्व मात्र है, वैसे ही यहां वह मा' के साथ समाप्त होता है, जो माल पूंजी का नवीकृत अस्तित्व है। ठीक जैसे कि रूप २ में पूंजी को अपने समापक रूप उ में उत्पादन प्रक्रिया की हैसियत से प्रक्रिया फिर से शुरू करनी होती है, वैसे ही यहां माल पूंजी के रूप में औद्योगिक पूंजी का पुनः आविर्भाव होने पर परिपथ के लिए परिचलन दौर मा' — द्र' से फिर से शुरू होना होता है। परिपथ के दोनों रूप अपूर्ण हैं, क्योंकि उनकी समाप्ति द्र' से नहीं होती, जो द्रव्य में पुनःरूपान्तरित स्वविस्तारित पूंजी मूल्य है। अतः दोनों का चालू रहना और फलतः दोनों में पुनरुत्पादन का समाहित होना आवश्यक है। रूप ३ में सम्पूर्ण परिपथ मा' . . . मा' होता है।

पहले दोनों रूपों से तीसरे रूप का भेद इस बात में है कि यही वह परिपथ है, जिसमें स्वविस्तारित पूंजी मूल्य — मूल नहीं, वह पूंजी मूल्य नहीं, जिसे अभी बेशी मूल्य उत्पादित करना है — अपने स्वविस्तार के प्रारम्भ बिन्दु की हैसियत से प्रकट होता है। पूंजी सम्बन्ध की हैसियत से यहां मा' प्रारम्भ बिन्दु है। इस सम्बन्ध के नाते उसका निर्णयात्मक प्रभाव सम्पूर्ण परिपथ पर पड़ता है, क्योंकि उसमें पूंजी मूल्य का परिपथ तथा अपने पहले दौर में विद्यमान बेशी मूल्य का परिपथ समाहित हैं, और अगर प्रत्येक परिपथ में नहीं, तो औसत रूप में, बेशी मूल्य का अंशतः आय की हैसियत से ख़र्च किया जाना, मा — द्र — मा परिचलन से गुज़रना और अंशतः पूंजी संचय के तत्व का कार्य सम्पन्न करना आवश्यक होता है।

मा' . . . मा' रूप में समग्र माल उत्पाद के उपभोग को स्वयं पूंजी के परिपथ की सामान्य गति की शर्त मान लिया जाता है। श्रमिक का व्यक्तिगत उपभोग और बेशी उत्पाद के असंचित भाग का व्यक्तिगत उपभोग मिलकर समग्र व्यक्तिगत उपभोग का निर्माण करते हैं। अतः अपनी समग्रता में उपभोग — व्यक्तिगत तथा उत्पादक — मा' परिपथ में उसकी शर्त की हैसियत से प्रवेश करता है। प्रत्येक वैयक्तिक पूंजी उत्पादक उपभोग की क्रिया सम्पन्न करती है (इस उत्पादक उपभोग में तत्वतः श्रमिक का व्यक्तिगत उपभोग समाहित रहता है, क्योंकि श्रम शक्ति कुछ निश्चित सीमाओं के भीतर श्रमिक के व्यक्तिगत उपभोग का निरन्तर उत्पाद है)। वैयक्तिक पूंजीपति के अस्तित्व के लिए जो उपभोग आवश्यक है, उसके अलावा व्यक्तिगत उपभोग को यहां केवल एक सामाजिक क्रिया माना गया है, लेकिन उसे वैयक्तिक पूंजीपति की क्रिया कदापि नहीं माना गया है।

रूप १ तथा २ में समग्र गति पेशगी पूंजी मूल्य की गति की तरह प्रकट होती है। रूप

३ में स्वविस्तारित पूंजी सम्पूर्ण माल उत्पाद के आकार में प्रारम्भ बिन्दु बनती है और उसका रूप गतिमान पूंजी का, माल पूंजी का होता है। जब तक द्रव्य में उसका रूपान्तरण नहीं हो जाता, तब तक यह गति पूंजी की गति और आय की गति में विभक्त नहीं होती। इस रूप में पूंजी के परिपथ में समग्र सामाजिक उत्पाद का वितरण तथा प्रत्येक पृथक माल पूंजी के लिए उत्पाद का एक ओर व्यक्तिगत उपभोग निधि में और दूसरी ओर पुनरुत्पादन निधि में विशेष वितरण भी सम्मिलित होता है।

द्र ... द्र' में परिपथ का सम्भाव्य परिवर्धन समाहित होता है, जो नवीकृत परिपथ में प्रवेश करनेवाले द्र के परिमाण पर निर्भर करता है।

उ ... उ में उ द्वारा उसी मूल्य अथवा सम्भवतः उससे भी कम मूल्य के साथ नया परिपथ शुरू किया जा सकता है। फिर भी वह विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन का सूचक बन सकता है, उदाहरण के लिए, जब श्रम की वर्धित उत्पादिता के कारण मालों के कुछ तत्व और सस्ते हो जाते हैं। विलोमतः, वह उत्पादक पूंजी, जो अपने मूल्य में परिवर्धित हो चुकी है, विपरीत प्रसंग में, भौतिक रूप में संकुचित पैमाने पर पुनरुत्पादन को सूचित कर सकती है, उदाहरण के लिए, जब उत्पादन के तत्व महंगे हो गये हों। यही बात मा' ... मा' के लिए सही है।

मा' ... मा' में माल रूप में पूंजी उत्पादन का पूर्वाधार है। इस परिपथ के भीतर वह दूसरे मा में पूर्वाधार की तरह पुनः प्रकट होती है। यदि यह मा अभी तक उत्पादित अथवा पुनरुत्पादित न हुआ हो, तो परिपथ अवरुद्ध हो जाता है। इस मा के अधिकांश भाग का किसी अन्य औद्योगिक पूंजी के मा' की तरह पुनरुत्पादन आवश्यक होता है। इस परिपथ में मा' गति का प्रारम्भ बिन्दु, संक्रमण बिन्दु और समापन बिन्दु होता है, अतः वह वहां सदैव विद्यमान रहता है। पुनरुत्पादन प्रक्रिया की वह एक स्थाई शर्त है।

रूप १ और २ से मा' ... मा' की भिन्नता को एक और लक्षण भी दर्शाता है। तीनों परिपथों में यह सामान्यता है कि पूंजी अपना वृत्तीय पथ उसी रूप में समाप्त करती है, जिसमें वह उसे आरम्भ करती है और इस प्रकार स्वयं को उस प्रारम्भिक रूप में पाती है, जिसमें वह नये सिरे से परिपथ शुरू करती है। द्र, उ अथवा मा' का प्रारम्भिक रूप सदैव वह होता है, जिसमें पूंजी मूल्य (रूप ३ में अपने बेशी मूल्य द्वारा परिवर्धित) पेशगी दिया जाता है। दूसरे शब्दों में परिपथ के संदर्भ में यह उसका मूल रूप है। समापन रूप, द्र', उ अथवा मा' सदैव उस कार्यशील रूप का परिवर्तित रूप होता है, जो परिपथ में पहले आया था और जो मूल रूप नहीं है।

इस प्रकार रूप १ में द्र' मा' का परिवर्तित रूप है, रूप २ में अन्तिम उ द्र का परिवर्तित रूप है (१ तथा २ रूपों में यह रूपान्तरण माल परिचलन की सादी क्रिया द्वारा, माल तथा द्रव्य के औपचारिक स्थान परिवर्तन द्वारा सम्पन्न होता है)। रूप ३ में मा' उत्पादक पूंजी उ का परिवर्तित रूप है। किन्तु यहां, रूप ३ में, रूपान्तरण का सम्बन्ध पहले तो पूंजी के कार्यशील रूप से ही नहीं, वरन उसके मूल्य के परिमाण से भी है; और दूसरे, रूपान्तरण परिचलन प्रक्रिया से सम्बद्ध केवल औपचारिक स्थान परिवर्तन का ही नहीं, वरन

उत्पादन प्रक्रिया में उत्पादक पूंजी के माल घटकों के उपयोग रूप तथा मूल्य द्वारा अनुभूत वास्तविक रूपान्तरण का परिणाम भी है।

प्रारम्भिक छोर द्र, उ अथवा मा′ का रूप तदनुरूप परिपथ १, २ अथवा ३ का पूर्वाधार है। अन्तिम छोर में वापस आनेवाला रूप स्वयं परिपथ के रूपान्तरणों की एक शृंखला द्वारा पूर्वापेक्षित और फलतः अस्तित्व में लाया जाता है। वैयक्तिक औद्योगिक पूंजी के परिपथ के अंतस्थ बिंदु की हैसियत से मा′ केवल उसी औद्योगिक पूंजी के अपरिचलन रूप उ की पूर्वकल्पना करता है, जिसका वह उत्पाद है। रूप १ के अंतस्थ बिंदु की हैसियत से, मा′ (मा′ — द्र′) के परिवर्तित रूप की हैसियत से द्र′ यह पूर्वकल्पना करता है कि द्र ग्राहक के हाथ में है, द्र . . . द्र′ परिपथ के बाहर है, और मा′ की बिक्री द्वारा ही वह उसके भीतर लाया जाता और स्वयं उसका अंतस्थ रूप बन जाता है। इस प्रकार रूप २ में अंतस्थ उ यह पूर्वकल्पना करता है कि श्र तथा उ सा (मा) उसके बाहर विद्यमान हैं और द्र — मा द्वारा उसके अंतस्थ रूप की तरह उसमें समाविष्ट किये जाते हैं। किंतु अंतिम छोर के अलावा वैयक्तिक द्रव्य पूंजी का परिपथ सामान्य रूप में द्रव्य पूंजी के अस्तित्व की पूर्वकल्पना नहीं करता; न वैयक्तिक उत्पादक पूंजी का परिपथ ही उत्पादक पूंजी के परिपथों के अस्तित्व की पूर्वकल्पना करता है। रूप १ में द्र प्रथम द्रव्य पूंजी हो सकता है; रूप २ में उ ऐतिहासिक रंगमंच पर प्रकट होनेवाली प्रथम उत्पादक पूंजी हो सकता है। किंतु रूप ३ में

द्र — मा < (श्र / उ सा) . . . उ . . . मा′
मा′ { मा —
— द्र′
मा — | द्र — मा }

मा परिपथ के बाहर दो बार पूर्वकल्पित है। पहली बार परिपथ मा′ — द्र′ — मा < (श्र / उ सा) में। यह मा, जहां तक उसमें उ सा समाहित हैं, विक्रेता के हाथ में माल है। जहां तक वह उत्पादन की पूंजीवादी प्रक्रिया का उत्पाद है, वह स्वयं माल पूंजी है; और यदि वह न भी हो, तो भी सौदागर के हाथ में वह माल पूंजी की हैसियत से प्रकट होता है। दूसरी बार मा — द्र — मा के दूसरे मा में, जिसका भी माल की हैसियत से सुलभ होना आवश्यक होता है, ताकि उसे ख़रीदा जा सके। जो भी हो, श्र और उ सा माल पूंजी हों, या न हों, वे उतने ही माल हैं, जितना मा′ है, और आपस में उनका माल का संबंध होता है। यही बात मा — द्र — मा के दूसरे मा के बारे में भी सही है। इसलिए चूंकि मा′ बराबर है मा (श्र + उ सा) के, अतः उसके पास स्वयं अपने उत्पादन के लिए तत्वों के रूप में पण्य वस्तुएं होती हैं और परिचलन में उन्हीं पण्य वस्तुओं द्वारा उसकी प्रतिस्थापना होना आवश्यक है। इसी प्रकार मा — द्र — मा में दूसरे मा की भी परिचलन में समान पण्य वस्तुओं से प्रतिस्थापना होनी चाहिए।

इस आधार पर कि उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति ही प्रचलित पद्धति है, विक्रेता के हाथ में मौजूद सभी पण्य वस्तुएं साथ ही माल पूंजी भी होती हैं। यदि वे पहले ऐसी नहीं थीं, तो वे सौदागर के हाथ में ऐसी हो जाती हैं, अथवा ऐसी ही बनी रहती हैं। अथवा उन्हें ऐसे माल होना होगा — यथा आयातित सामान — जो मूल माल पूंजी को प्रतिस्थापित करते हैं और इस प्रकार उसे अस्तित्व का एक दूसरा रूप मात्र दे देते हैं।

उत्पादक पूंजी उ के अस्तित्व के रूपों की हैसियत से माल तत्व श्र और उ सा, जिनसे उत्पादक पूंजी उ बनती है, वैसे ही रूप के नहीं होते, जैसा विभिन्न माल बाजारों में होता है, जहां वे लिये जाते हैं। वे अब संयुक्त हो जाते हैं और इस प्रकार संयुक्त होकर वे उत्पादक पूंजी के कार्य कर सकते हैं।

मा का केवल इस रूप ३ में ही स्वयं परिपथ के भीतर मा के पूर्वाधार की हैसियत से प्रकट होने का कारण माल रूप में पूंजी का उसका प्रारंभ बिंदु होना है। परिपथ का समारंभ मा′ के उन मालों में रूपांतरण द्वारा होता है, जो उसके उत्पादन तत्व हैं (जिस हद तक इसका लिहाज किये बिना कि वह बेशी मूल्य के योग से परिवर्धित हुआ है या नहीं, वह पूंजी मूल्य की तरह कार्य करता है)। किंतु इस रूपांतरण में परिचलन की सारी प्रक्रिया मा – द्र – मा (= श्र + उ सा) समाहित है और वह उसका परिणाम है। मा यहां दोनों छोरों पर स्थित है; किंतु दूसरा छोर, जो अपना मा रूप द्र – मा द्वारा बाहर से, माल बाज़ार से प्राप्त करता है, परिपथ का अंतिम छोर नही है, वरन उसकी केवल उन दो पहली मंज़िलों का छोर है, जो परिचलन प्रक्रिया में समाविष्ट हैं। उसका परिणाम उ है, जो इसके बाद अपना कार्य, उत्पादन की प्रक्रिया, संपन्न करता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप ही, अतः परिचलन प्रक्रिया के फलस्वरूप नहीं, मा′ परिपथ के अंतस्थ बिंदु की तरह और उसी रूप में प्रकट होता है, जिसमें प्रारंभ बिंदु मा′ था। दूसरी ओर, द्र . . . द्र′ और उ . . . उ में अंतिम छोर द्र′ और उ परिचलन प्रक्रिया के सीधे परिणाम हैं। इसलिए यहां केवल अंत में यह पूर्वकल्पना की जाती है कि कभी द्र′ और कभी उ दूसरों के हाथों में विद्यमान होते हैं। चूंकि यह परिपथ छोरों के बीच बनता है, इसलिए न तो एक प्रसंग में द्र, और न दूसरे प्रसंग में उ – द्र का दूसरे व्यक्ति के द्रव्य और उ का दूसरी पूंजी की उत्पादन प्रक्रिया की हैसियत से अस्तित्व – इन परिपथों के पूर्वाधार की तरह प्रकट होता है। इसके विपरीत मा′ . . . मा′ दूसरों के हाथ में दूसरों के माल की हैसियत से मा (= श्र + उ सा) के अस्तित्व की पूर्वकल्पना करता है। ये माल प्रारंभिक परिचलन प्रक्रिया द्वारा परिपथ में खिंच आते हैं और उत्पादक पूंजी में रूपांतरित हो जाते हैं, जिसके कार्य के फलस्वरूप मा′ फिर परिपथ का समापक रूप बन जाता है।

लेकिन ठीक इसीलिए कि मा . . . मा′ परिपथ अपनी परिधि में मा (= श्र + उ सा) के रूप में दूसरी औद्योगिक पूंजी के अस्तित्व की पूर्वकल्पना करता है – और उ सा में अन्य विभिन्न पूंजियां समाहित होती हैं, उदाहरण के लिए, हमारे प्रसंग में मशीनें, कोयला, तेल, इत्यादि – वह इसका तक़ाज़ा करता है कि उसे परिपथ का **सामान्य**, अर्थात वह सामाजिक रूप ही न माना जाये, जिसमें प्रत्येक औद्योगिक पूंजी (पहली बार लगाये जाने के अलावा) की जांच की जा सकती है, अतः उसे गति का सभी वैयक्तिक औद्योगिक पूंजियों के लिए सामान्य रूप ही नहीं, वरन साथ ही वैयक्तिक पूंजियों के योग की गति का रूप और फलतः पूंजीपति वर्ग की कुल पूंजी की गति का, ऐसी गति का रूप भी माना जाये, जिसमें प्रत्येक वैयक्तिक औद्योगिक पूंजी केवल आंशिक गति की हैसियत से प्रकट होती है, जो अन्य गतियों

से घुल-मिल जाती है, और जो उनके कारण आवश्यक बनती है। उदाहरण के लिए, यदि हम किसी देश में प्रति वर्ष निर्मित पण्य वस्तुओं के समुच्चय को लें और उस गति का विश्लेषण करें, जिसके द्वारा उसका एक अंश समस्त वैयक्तिक व्यवसायों में उत्पादक पूंजी को प्रतिस्थापित करता है, जब कि दूसरा अंश विभिन्न वर्गों के वैयक्तिक उपभोग में प्रवेश करता है, तब हम मा' . . . मा' का विवेचन सामाजिक पूंजी की गति के एक रूप की तरह, और उस बेशी मूल्य अथवा बेशी उत्पाद की गति के रूप की हैसियत से भी करते हैं, जो उसके द्वारा सृजित होती है। सामाजिक पूंजी वैयक्तिक पूंजियों के योग के बराबर होती है (जिसमें संयुक्त स्टॉक पूंजी अथवा जिस हद तक सरकारें खानों, रेलों, आदि में उत्पादक उजरती श्रम को लगाती हैं और औद्योगिक पूंजीपतियों का कार्य करती हैं, राजकीय पूंजी शामिल है) और सामाजिक पूंजी की समग्र गति वैयक्तिक पूंजियों की गतियों के बीजीय योग के बराबर होती है। इस तथ्य से यह संभावना किसी प्रकार ख़त्म नहीं हो जाती कि पृथक वैयक्तिक पूंजी की गति के रूप में यह गति तब इसी गति से भिन्न परिघटना प्रस्तुत कर सकती है कि जब उस पर सामाजिक पूंजी की समग्र गति के एक भाग के दृष्टिकोण से और इसलिए उसके अन्य भागों की गतियों से उसकी परस्पर संबद्धता में विचार किया जाता है; और यह गति साथ ही उन समस्याओं को हल कर देती है, जिनके समाधान को पृथक वैयक्तिक पूंजी के परिपथ का अध्ययन करते समय ऐसे अध्ययन का परिणाम होने के बजाय कल्पित करना होता है।

मा' . . . मा' वह एकमात्र परिपथ है, जिसमें मूलतः पेशगी पूंजी मूल्य उस छोर का अंश मात्र होता है, जो गति की शुरूआत करता है, और जिसमें इस प्रकार गति प्रारंभ से ही स्वयं को औद्योगिक पूंजी की कुल गति की हैसियत से – उत्पाद के उस भाग की गति की हैसियत से, जो उत्पादक पूंजी को प्रतिस्थापित करता है, और उस भाग की गति की हैसियत से ज़ाहिर करती है, जो बेशी उत्पाद निर्मित करता है और जो औसतन अंशतः आय के रूप में ख़र्च किया जाता है और अंशतः संचय के एक तत्व की तरह काम में लाया जाता है। जिस हद तक इस परिपथ में आय की हैसियत से बेशी मूल्य का ख़र्च किया जाना शामिल है, इस हद तक उसमें वैयक्तिक उपभोग भी शामिल है। यह वैयक्तिक उपभोग इस कारण भी शामिल है कि प्रारंभ बिंदु मा, माल, किसी उपयोगिता के रूप में विद्यमान होता है। किंतु पूंजीवादी तरीक़ों से उत्पादित हर चीज़ माल पूंजी होती है; इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि उसका उपयोग रूप उसे उत्पादक उपभोग के लिए नियत करता है, या वैयक्तिक उपभोग के लिए, अथवा दोनों के लिए। द्र . . . द्र' केवल मूल्य पक्ष, पेशगी पूंजी मूल्य के स्वविस्तार, को सारी प्रक्रिया के उद्देश्य के रूप में दर्शाता है। उ . . . उ (उ') पूंजी की उत्पादन प्रक्रिया को उसी अथवा परिवर्धित परिमाण (संचय) की उत्पादक पूंजी के साथ पुनरुत्पादन की प्रक्रिया के रूप में दर्शाता है; मा' . . . मा' अपने प्रारंभिक चरम में ही अपने को पूंजीवादी माल उत्पादन के रूप में ज़ाहिर करता है। प्रारंभ से ही उसमें उत्पादक और वैयक्तिक उपभोग समाहित होता है। उसमें सम्मिलित उत्पादक उपभोग तथा मूल्य का स्वप्रसार इसकी गति की केवल एक शाखा के रूप में प्रकट होते हैं। अंत में, चूंकि मा' ऐसे उपयोग रूप में विद्यमान हो सकता है, जो किसी उत्पादन प्रक्रिया में और प्रवेश नहीं कर सकता, इसलिए आरम्भ में ही यह निर्दिष्ट कर दिया जाता है कि मा' के उत्पाद के अंशों द्वारा व्यंजित विभिन्न मूल्यगत संघटक अंशों को इसके अनुसार अब भिन्न स्थान ग्रहण करना होगा कि मा' . . . मा' को

कुल सामाजिक पूंजी की गति का रूप माना जाता है अथवा वैयक्तिक औद्योगिक पूंजी की स्वतंत्र गति का। परिपथ की ये सारी विशिष्टताएं हमें मात्र किसी वैयक्तिक पूंजी के अलग-थलग परिपथ के नाते उसकी सीमाओं के बाहर ले जाती हैं।

मा′ . . . मा′ सूत्र में माल पूंजी की गति, अर्थात पूंजीवादी ढंग से निर्मित कुल उत्पाद की गति, वैयक्तिक पूंजी के स्वतंत्र परिपथ के पूर्वाधार की हैसियत से ही नहीं, वरन उसके द्वारा अपेक्षित होने के नाते भी प्रकट होती है। इसलिए यदि इस सूत्र और उसकी विशिष्टताओं को समझ लिया जाये, तो यह बताना भर काफ़ी न रहेगा कि मा′ — द्र′ और द्र — मा रूपांतरण एक ओर पूंजी के रूपांतरण में कार्यतः निर्धारित हिस्से हैं, दूसरी ओर सामान्य माल परिचलन की कड़ियां हैं। एक वैयक्तिक पूंजी के रूपांतरणों से अन्य वैयक्तिक पूंजियों के रूपांतरणों और वैयक्तिक उपभोग के लिए उद्दिष्ट कुल उत्पाद के भाग के अंतर्ग्रथन की व्याख्या करना आवश्यक हो जाता है। इसलिए वैयक्तिक औद्योगिक पूंजी के परिपथ का विश्लेषण करने पर हम मुख्यतः प्रथम दो रूपों को अपने अध्ययन का आधार बनाते हैं।

मा′ . . . मा′ परिपथ पृथक वैयक्तिक पूंजी के रूप में प्रकट होता है, उदाहरण के लिए, खेती में, जहां फ़सल दर फ़सल हिसाब लगाया जाता है। सूत्र २ में प्रारंभ बिंदु है बुवाई, सूत्र ३ में – फ़सल कटाई अथवा प्रकृतितंत्रवादी अर्थशास्त्रियों की शब्दावली में सूत्र २ avances [पेशगियों] से और सूत्र ३ reprises [प्रत्यावर्तनों] से शुरू होता है। सूत्र ३ में पूंजी मूल्य की गति आरंभ से ही सामान्य उत्पादित माल राशि की गति के अंश की हैसियत से प्रकट होती है, जब कि १ और २ सूत्रों में मा′ की गति किसी वियुक्त पूंजी की गति का दौर मात्र होती है।

सूत्र ३ में बाज़ार में पण्य वस्तुएं उत्पादन और पुनरुत्पादन प्रक्रिया का निरंतर विद्यमान पूर्वाधार होती हैं। इसलिए यदि इस सूत्र पर ही ध्यान केंद्रित किया जाये, तो लगेगा कि उत्पादन प्रक्रिया के सभी तत्वों का उद्‌गम माल परिचलन है, और उनमें केवल पण्य वस्तुएं ही समाविष्ट होती हैं। यह एकांगी धारणा उत्पादन प्रक्रिया के उन तत्वों को अनदेखा कर देती है, जो माल तत्वों से स्वतंत्र हैं।

चूंकि मा′ . . . मा′ में प्रारंभ बिंदु समग्र उत्पाद (समग्र मूल्य) है, इसलिए ऐसा होता है कि (यदि विदेश व्यापार पर ध्यान न दें, तो) उत्पादिता के स्थिर बने रहने पर विस्तृत पैमाने पर पुनरुत्पादन केवल तभी हो सकता है कि जब बेशी उत्पाद के पूंजीकृत किये जानेवाले अंश में अतिरिक्त उत्पादक पूंजी के भौतिक तत्व पहले से समाहित हों। इसलिए जहां एक वर्ष का उत्पादन अगले साल के उत्पादन के लिए पूर्वाधार का काम करता है अथवा जहां तक ऐसा साधारण पुनरुत्पादन की प्रक्रिया के साथ-साथ ही हो सकता है, बेशी उत्पाद एकसाथ ऐसे रूप में निर्मित होता है, जो उसे अतिरिक्त पूंजी के कार्य करने के योग्य बना देता है। परिवर्धित उत्पादिता पूंजी का सारतत्व ही परिवर्धित कर सकती है, उसका मूल्य नहीं; किंतु इसके साथ वह उस मूल्य के स्वप्रसार के लिए अतिरिक्त सामग्री सृजित कर देती है।

केने की *Tableau économique* [आर्थिक सारणियों] की आधारभूमि मा′ . . . मा′ है। केने ने द्र . . . द्र′ (वाणिज्यवाद के वियुक्त और दृढ़तापूर्वक सुरक्षित जड़ रूप) के मुक़ाबले यह रूप चुना, और उ . . . उ को नहीं चुना, यह उनके महान और यथार्थ विवेक का सूचक है।

अध्याय ४

परिपथ के तीन सूत्र

"कुल परिचलन प्रक्रिया" के लिए कु प का प्रयोग करते हुए तीनों सूत्र इस प्रकार प्रस्तुत किये जा सकते हैं:

१. द्र — मा ... उ ... मा′ — द्र′

२. उ ... कु प ... उ

३. कु प ... उ (मा′)

यदि हम तीनों रूपों को संयुक्त करें, तो प्रक्रिया के सभी पूर्वाधार उसके परिणाम की तरह, स्वयं उसके द्वारा उत्पन्न पूर्वाधार की तरह प्रकट होते हैं। प्रत्येक तत्व प्रस्थान बिंदु, संक्रमण बिंदु और प्रत्यावर्तन बिंदु की तरह प्रकट होता है। कुल प्रक्रिया स्वयं को उत्पादन तथा परिचलन प्रक्रियाओं की एकान्विति के रूप में प्रस्तुत करती है। उत्पादन प्रक्रिया परिचलन प्रक्रिया का माध्यम बन जाती है, और इसी प्रकार परिचलन प्रक्रिया उत्पादन प्रक्रिया का।

तीनों परिपथों में यह सामान्यता होती है: मूल्य का स्वप्रसार निर्धारक उद्देश्य, प्रेरक हेतु होता है। सूत्र १ में यह बात उसके रूप में व्यंजित होती है। सूत्र २ उ से शुरू होता है, जो बेशी मूल्य के सर्जन की ही प्रक्रिया है। सूत्र ३ में परिपथ की शुरूआत स्वप्रसारित मूल्य से और समाप्ति नये स्वप्रसारित मूल्य से होती है, भले ही गति की आवृत्ति उसी पैमाने पर हो।

चूंकि ग्राहक के लिए मा — द्र का अर्थ द्र — मा और विक्रेता के लिए द्र — मा का अर्थ मा — द्र होता है, इसलिए पूंजी का परिचलन पण्य वस्तुओं के केवल साधारण रूपांतरण को प्रस्तुत करता है और उससे संबंधित प्रचल द्रव्य की राशि पर विकसित किये गये नियम (Buch I, Kap. III, 2)* यहां भी लागू होते हैं। किंतु यदि हम इस औपचारिक पक्ष से ही चिपके न रहें, वरन विभिन्न वैयक्तिक पूंजियों के रूपांतरणों के वास्तविक संबंध पर विचार करें, दूसरे शब्दों में, यदि हम समग्र सामाजिक पूंजी की पुनरुत्पादन प्रक्रिया की आंशिक गतियों की हैसियत से वैयक्तिक पूंजियों के परिपथों के आंतरिक संबंध का अध्ययन करें, तो द्रव्य और माल का रूप परिवर्तन मात्र इस संबंध की व्याख्या न कर सकेगा।

---

* हिन्दी संस्करण: अध्याय ३, २। — सं०

निरंतर घूमते हुए चक्र में प्रत्येक बिंदु एक ही साथ प्रस्थान बिंदु होता है और प्रत्यावर्तन बिन्दु भी। यदि हम उसके घूर्णन को अवरुद्ध कर दें, तो प्रत्येक प्रस्थान बिंदु प्रत्यावर्तन बिंदु नहीं रहता। इस प्रकार हम देख चुके हैं कि प्रत्येक पृथक परिपथ केवल अन्य परिपथों को पूर्वकल्पित (implicite) ही नहीं करता, वरन एक रूप में परिपथ की पुनरावृत्ति में अन्य रूपों में परिपथ सन्निहित रहता है। इस प्रकार सारा भेद मात्र औपचारिक भेद की तरह अथवा ऐसे आत्मगत भेद की तरह ही प्रकट होता है कि जो केवल प्रेक्षक के लिए ही होता है।

चूंकि इन में से प्रत्येक परिपथ उस गति का विशेष रूप माना जाता है, जिसमें विभिन्न औद्योगिक वैयक्तिक पूंजियां लगी होती हैं, अतः यह भेद सदैव वैयक्तिक भेद के रूप में ही विद्यमान होता है। किन्तु वास्तव में प्रत्येक औद्योगिक वैयक्तिक पूंजी साथ-साथ सभी तीनों परिपथों में एक ही समय विद्यमान होती है। ये तीनों परिपथ, जो पूंजी के तीनों रूपों द्वारा अपनाये हुए पुनरुत्पादन के रूप हैं, निरंतर एकसाथ संपन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, पूंजी मूल्य का एक अंश, जो अब माल पूंजी का कार्य करता है, द्रव्य पूंजी में रूपांतरित हो जाता है; किंतु इसके साथ ही दूसरा अंश उत्पादन प्रक्रिया से जुदा हो जाता है और नई माल पूंजी की हैसियत से परिचलन में प्रवेश करता है। इस प्रकार परिपथ रूप मा'...मा' निरंतर संपन्न होता रहता है; और इसी प्रकार अन्य दोनों रूप भी। पूंजी के पुनरुत्पादन में, उसके प्रत्येक रूप में और प्रत्येक मंजिल में वैसी ही निरंतरता होती है, जैसी इन रूपों के रूपांतरण में और तीनों मंजिलों से क्रमिक अंतरण में इस प्रकार वास्तव में सारा परिपथ अपने तीनों रूपों की एकान्विति है।

अपने विश्लेषण में हमने यह माना था कि अपने समग्र परिमाण में पूंजी मूल्य या तो द्रव्य पूंजी की हैसियत से या उत्पादक पूंजी या माल पूंजी की हैसियत से काम करता है। उदाहरण के लिए, हमारे पास वे ४२२ पाउंड पहले पूर्णतः द्रव्य पूंजी की हैसियत से थे, फिर हमने उन्हें पूर्णतः उत्पादक पूंजी में और अंत में माल पूंजी – ५०० पाउंड के सूत में (जिसमें ७८ पाउंड बेशी मूल्य शामिल है), रूपांतरित कर दिया। यहां ये विभिन्न मंजिलें उतने ही अंतरायण हैं। उदाहरण के लिए, जब तक वे ४२२ पाउंड अपना द्रव्य रूप बनाये रखते हैं, अर्थात जब तक द्र – मा (श्र + उ सा) ख़रीद नहीं होती, तब तक समग्र पूंजी केवल द्रव्य पूंजी की हैसियत से विद्यमान रहती और कार्य करती है। उत्पादक पूंजी में रूपांतरित होने के साथ वह न तो द्रव्य पूंजी के कार्य करती है न माल पूंजी के। उसकी सारी परिचलन प्रक्रिया में अंतरायण आ जाता है, ठीक वैसे ही, जैसे जब वह दूसरी ओर अपनी दो परिचलन मंजिलों में से एक में द्र की अथवा मा' की हैसियत से कार्य करती है, तब उसकी समग्र उत्पादन प्रक्रिया अंतरायित हो जाती है। फलतः उ ... उ परिपथ न केवल उत्पादक पूंजी के नियतकालिक नवीकरण को, वरन उसके कार्य में, उत्पादन प्रक्रिया में परिचलन प्रक्रिया के पूरे होने तक आनेवाले अंतरायण को भी दर्शायेगा। निरंतर चलते रहने के बदले उत्पादन झटकों में होगा और परिचलन प्रक्रिया की दोनों मंजिलें जल्दी-जल्दी पार की जाती हैं या धीरे-धीरे इसके अनुसार केवल आकस्मिक कालावधियों में नवीकृत होगा। उदाहरण के लिए, यह बात उस चीनी दस्तकार पर लागू होगी, जो केवल वैयक्तिक ग्राहकों के लिए काम करता है, और जिसकी उत्पादन प्रक्रियाएं तब तक बंद रहती हैं कि जब तक उसे नया आर्डर नहीं मिलता।

वस्तुतः यह बात पूंजी के प्रत्येक गतिशील अंश के बारे में सही है और पूंजी के सभी अंश एक-एक करके इस गति से गुजरते हैं। मान लीजिये, १०,००० पाउंड सूत किसी कातनेवाले का साप्ताहिक उत्पाद है। यह १०,००० पाउंड सूत उत्पादन क्षेत्र से पूरी तरह निकल आता है और परिचलन क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है। उसमें समाहित पूंजी मूल्य को पूर्णतः द्रव्य पूंजी में रूपांतरित होना होगा, और जब तक यह मूल्य द्रव्य पूंजी के रूप में बना रहता है, तब तक वह नये सिरे से उत्पादन प्रक्रिया में प्रवेश नहीं कर सकता। उसे पहले परिचलन में प्रवेश करना होगा और उत्पादक पूंजी के तत्वों में, श्र + उ सा में, पुनःपरिवर्तित होना होगा। पूंजी की परिपथ निर्माण प्रक्रिया का अर्थ है लगातार अंतरायण, एक मंज़िल का त्याग और अगली मंज़िल में प्रवेश, एक रूप का उतारा और दूसरे का अपनाया जाना। इनमें से प्रत्येक मंज़िल अगली मंज़िल को पूर्वकल्पित ही नहीं करती है, वरन उसे अलग भी करती है।

किंतु निरंतरता पूंजीवादी उत्पादन की लाक्षणिकता है, जिसकी अनिवार्यता उसके प्राविधिक आधार से उत्पन्न होती है, यद्यपि वह सदैव निरपेक्षतः प्राप्य नहीं होती। इसलिए हमें यह देखना चाहिए कि हक़ीक़त में होता क्या है। उदाहरण के लिए, जब तक १०,००० पाउंड सूत माल पूंजी की हैसियत से बाजार में आता है और द्रव्य में रूपांतरित होता है (वह चाहे भुगतान का माध्यम है या ख़रीदारी का अथवा केवल लेखा द्रव्य है), तब तक नई कपास, कोयला, वग़ैरह उत्पादन प्रक्रिया में सूत की जगह ले लेते हैं। अतः वे द्रव्य रूप और माल रूप से उत्पादक पूंजी में पहले ही पुनःपरिवर्तित हो चुके होते हैं और इसी तरह से काम करना भी शुरू कर देते हैं। जिस समय यह १०,००० पाउंड सूत द्रव्य में रूपांतरित हो रहा है, उसी समय पहलेवाला १०,००० पाउंड सूत अपने परिचलन की दूसरी मंज़िल से गुज़र रहा है और द्रव्य से उत्पादक पूंजी के तत्वों में पुनःपरिवर्तित हो रहा है। पूंजी के सभी अंश क्रमशः परिपथ से गुज़रते हैं, एक ही समय उसकी विभिन्न मंज़िलों में होते हैं। इस प्रकार अपनी कक्षा में निरंतर चलती औद्योगिक पूंजी साथ-साथ अपनी सारी मंज़िलों में और उनके अनुरूप विभिन्न कार्य रूपों में भी विद्यमान रहती है। औद्योगिक पूंजी का वह भाग, जो माल पूंजी से द्रव्य में पहली बार परिवर्तित होता है, मा′ . . . मा′ का परिपथ शुरू करता है, जब कि गतिशील समग्रता के रूप में औद्योगिक पूंजी उस परिपथ को पहले ही पार कर चुकी होती है। एक हाथ द्रव्य देता है, दूसरा उसे ग्रहण कर लेता है। एक स्थान पर द्र . . . द्र′ परिपथ का समारंभ दूसरे स्थान पर द्रव्य के प्रत्यावर्तन के समान होता है। यही बात उत्पादक पूंजी के बारे में भी सही है।

अतः अपनी निरंतरता में औद्योगिक पूंजी का वास्तविक परिपथ परिचलन और उत्पादन प्रक्रियाओं की एकान्विति ही नहीं, वरन उसके सभी तीनों परिपथों की एकान्विति भी है। किंतु वह ऐसी एकान्विति तभी हो सकता है कि जब पूंजी के सभी विभिन्न अंश परिपथ की क्रमिक मंज़िलों से गुज़र सकें, एक दौर से, एक कार्यशील रूप से दूसरे में पहुंच सकें, जिससे कि औद्योगिक पूंजी, जो इन सभी अंशों का साकल्य है, अपने विभिन्न दौरों और कार्यों में एक ही समय विद्यमान रहे और इस प्रकार एक ही समय तीनों परिपथ संपन्न करे। इन अंशों का अनुक्रमण (das Nacheinander) यहां उनके सहअस्तित्व (das Nebeneinander) द्वारा, अर्थात पूंजी के विभाजन द्वारा, निर्धारित होता है। बहुशाखी कारख़ाना प्रणाली में उत्पादित होनेवाली चीज़ अपनी निर्माण प्रक्रियाओं की विभिन्न मंज़िलों में लगातार विद्यमान रहती

है और लगातार उत्पादन के एक दौर से दूसरे दौर में पहुंचती है। चूंकि औद्योगिक वैयक्तिक पूंजी का एक निश्चित आकार होता है, जो पूंजीपति के साधनों पर निर्भर होता है और जिसका उद्योग की प्रत्येक शाखा के लिए एक निश्चित न्यूनतम परिमाण होता है, अतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उसका विभाजन निश्चित अनुपात में होना चाहिए। उपलब्ध पूंजी का परिमाण उत्पादन प्रक्रिया का आयाम निर्धारित करता है और अपनी बारी में यह माल पूंजी और द्रव्य पूंजी के आयाम निर्धारित करता है, क्योंकि वे अपने कार्य उत्पादन प्रक्रिया के साथ ही साथ संपन्न करते हैं। फिर भी, जिस सहअस्तित्व द्वारा उत्पादन की निरंतरता निर्धारित होती है, वह केवल पूंजी के उन अंशों की गति के कारण संभव होता है, जिनमें वे क्रमशः अपनी विभिन्न मंज़िलों से गुज़रते हैं। सहअस्तित्व स्वयं केवल अनुक्रमण का परिणाम है। उदाहरण के लिए, यदि मा′ — द्र′ एक अंश के लिहाज़ से गतिरुद्ध हो जाये, यदि माल बेचा न जा सके, तब इस अंश का परिपथ अंतरायित हो जाता है और उसके उत्पादन साधनों द्वारा उसका कोई प्रतिस्थापन नहीं होता; अनुवर्ती अंश, जो मा′ के रूप में उत्पादन प्रक्रिया से निकलकर आते हैं, अपने पूर्ववर्तियों द्वारा अपने कार्यों के परिवर्तन को अवरुद्ध हुआ पाते हैं। यदि यह स्थिति कुछ समय तक बनी रहे, तो उत्पादन सीमित हो जाता है और समूची प्रक्रिया ठप हो जाती है। अनुक्रमण में प्रत्येक गतिरोध सहअस्तित्व में अव्यवस्था उत्पन्न करता है; किसी भी मंज़िल पर गतिरोध न्यूनाधिक मात्रा में केवल पूंजी के गतिरुद्ध अंश के समूचे परिपथ में ही नहीं, वरन कुल वैयक्तिक पूंजी के समूचे परिपथ में भी अवरोध उत्पन्न करता है।

यह प्रक्रिया अपने को अब जिस रूप में प्रकट करती है, वह दौरों के अनुक्रम का है, जिससे एक दौर से पूंजी के निकलने से उसका नये दौर में संक्रमण आवश्यक बन जाता है। इसलिए प्रत्येक पृथक परिपथ का अपने प्रस्थान बिंदु और प्रत्यावर्तन बिंदु की शक्ल में पूंजी का एक कार्य रूप होता है। दूसरी ओर समग्र प्रक्रिया वास्तव में तीनों परिपथों की एकान्विति होती है, जो वे विभिन्न रूप हैं, जिनके द्वारा प्रक्रिया की निरंतरता स्वयं को व्यंजित करती है। समग्र परिपथ पूंजी के प्रत्येक कार्य रूप के सामने उसके अपने विशिष्ट परिपथ की हैसियत से आता है और इनमें से प्रत्येक परिपथ समूची प्रक्रिया की निरंतरता की शर्त होता है। प्रत्येक कार्य रूप का चक्र दूसरों पर निर्भर होता है। उत्पादन की समग्र प्रक्रिया के लिए, विशेषतः सामाजिक पूंजी के लिए यह अनिवार्य पूर्वापेक्षा है कि वह साथ ही पुनरुत्पादन प्रक्रिया भी हो और इसलिए उसके तत्वों में से प्रत्येक का परिपथ भी हो। पूंजी के विविध भिन्नांश क्रमशः विविध मंज़िलों और कार्य रूपों से गुज़रते हैं। इसके फलस्वरूप प्रत्येक कार्य रूप दूसरों के साथ-साथ एक ही समय अपने परिपथ से भी गुज़रता है, यद्यपि पूंजी का एक भिन्नांश सदैव उसमें व्यंजित होता है। पूंजी का एक निरंतर परिवर्तित, निरंतर पुनरुत्पादित भाग माल पूंजी की हैसियत से, जो द्रव्य में बदलती है; दूसरा भाग द्रव्य पूंजी की हैसियत से, जो उत्पादक पूंजी में रूपांतरित होती है; और तीसरा भाग उत्पादक पूंजी की हैसियत से, जो माल पूंजी में बदलती है, विद्यमान होता है। इन्हीं तीनों दौरों से गुज़रते हुए समग्र पूंजी जो परिपथ बनाती है, उससे इन तीनों रूपों की निरंतर विद्यमानता संभव होती है।

अतः पूंजी अपनी समग्रता में, स्थानिक रूप में एक ही समय अपने विभिन्न दौरों में साथ-साथ विद्यमान होती है। किंतु प्रत्येक भाग एक दौर से, एक कार्य रूप से निरंतर और क्रमशः अगले दौर और अगले कार्य रूप में संक्रमित होता रहता है और इस प्रकार बारी-बारी से उन सभी में कार्यशील होता है। अतः उसके रूप अस्थायी होते हैं और उनके अनुक्रमण द्वारा उनकी

समक्षणिकता संभव हो जाती है। प्रत्येक रूप दूसरे का अनुवर्ती और पूर्ववर्ती भी होता है, जिससे पूंजी का एक भाग जब किसी रूप में वापस आता है, तो किसी अन्य भाग का किसी अन्य रूप में आना भी अनिवार्य हो जाता है। प्रत्येक भाग निरंतर अपना ही चक्र सम्पन्न करता है, किंतु वह इस रूप में पूंजी का सदैव अन्य भाग ही होता है, और ये विशेष चक्र समग्र प्रक्रिया के समक्षणिक तथा आनुक्रमिक तत्व मात्र होते हैं।

उपरिवर्णित अंतरायण के स्थान पर समग्र प्रक्रिया की निरंतरता तीनों परिपथों की एकान्विति द्वारा ही उपलब्ध होती है। समग्र सामाजिक पूंजी में यह निरंतरता सदैव होती है और उसकी प्रक्रिया सदैव तीनों परिपथों की एकान्विति प्रदर्शित करती है।

जहां तक वैयक्तिक पूंजियों का संबंध है, पुनरुत्पादन की निरंतरता न्यूनाधिक मात्रा में यदा-कदा भंग हो जाती है। एक तो विभिन्न कालावधियों में मूल्य राशियां विभिन्न मंजिलों और कार्य रूपों के दौरान बहुधा असमान भागों में वितरित होती हैं। दूसरे, ये भाग उत्पादित माल के स्वरूप के अनुसार, अतः उत्पादन के उस विशेष क्षेत्र के अनुसार, जिसमें पूंजी लगाई गई है, भिन्नरूपेण वितरित किये जा सकते हैं। तीसरे, न्यूनाधिक मात्रा में उत्पादन की उन शाखाओं में निरंतरता भंग हो सकती है, जो – प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण (खेती, मछली पकड़ना, वग़ैरह) अथवा परिपाटिक परिस्थितियों के कारण, जैसे कि तथाकथित मौसमी काम – ऋतुओं पर निर्भर होते हैं। खानों और कल-कारख़ानों में यह प्रक्रिया नितांत नियमित ढंग से और एकरूपता के साथ चलती है। किंतु उत्पादन की विभिन्न शाखाओं के इस भेद से परिपथ प्रक्रिया के सामान्य रूपों में कोई भेद उत्पन्न नहीं होता।

स्वविस्तारमान मूल्य की हैसियत से पूंजी अपनी परिधि में केवल **वर्ग सम्बन्ध**, उजरती श्रम के रूप में श्रम के अस्तित्व पर प्रतिष्ठित एक निश्चित स्वरूप के समाज को ही नहीं लाती। वह एक गति, विभिन्न मंज़िलों से गुज़रनेवाली परिपथीय प्रक्रिया है, स्वयं जिसमें परिपथीय प्रक्रिया के तीन विभिन्न रूप समाहित होते हैं। अतः उसका बोध गति रूप में ही हो सकता है, स्थिर पदार्थ के रूप में नहीं। जो लोग समझते हैं कि मूल्य द्वारा स्वतंत्र अस्तित्व की उपलब्धि एक अमूर्त धारणा मात्र है, यह भूल जाते हैं कि औद्योगिक पूंजी की गति in actu [क्रिया रूप में] यह अमूर्त धारणा ही है। यहां मूल्य उन अनेक रूपों से, अनेक गतियों से गुज़रता है, जिनमें वह अपने को क़ायम रखता है और साथ ही प्रसारित और परिवर्धित होता है। यहां हमें चूंकि मूलतः इस गति के रूप मात्र से सरोकार है, इसलिए हम उन परिक्रमणों पर विचार नहीं करेंगे, जिन्हें अपने परिपथ के दौरान पूंजी मूल्य सम्पन्न कर सकता है। किंतु यह स्पष्ट है कि मूल्य के समस्त आमूल परिवर्तनों के बावजूद पूंजीवादी उत्पादन का अस्तित्व और टिक पाना तभी तक संभव है कि जब तक पूंजी मूल्य से बेशी मूल्य की उत्पत्ति कराई जा सकती है, अर्थात जब तक वह अपना परिपथ उस मूल्य की हैसियत से सम्पन्न करता है, जिसने अपनी स्वतंत्रता हासिल कर ली है, अतः जब तक मूल्य के आमूल परिवर्तन किसी प्रकार वशीभूत कर लिये और साम्यावस्था में ले आये जाते हैं। पूंजी की गतियां किसी वैयक्तिक औद्योगिक पूंजीपति की क्रियाएं लगती हैं, जो माल और श्रम के ग्राहक के, मालों के विक्रेता और उत्पादक पूंजी के स्वामी के कार्य करता है, अतः जो अपनी क्रियाशीलता द्वारा परिपथ को प्रेरित करता है। यदि सामाजिक पूंजी मूल्य में आमूल परिवर्तन का अनुभव करे, तो यह संभव है कि वैयक्तिक पूंजीपति की पूंजी उससे पराभूत हो जाये और विफल हो जाये, इसलिए कि मूल्यों की इस गति की परिस्थितियों के अनुरूप वह स्वयं को नहीं ढाल सकती। मूल्य में

ऐसे ग्रामूल परिवर्तन जितने ही अधिक तीव्र और प्रायिक होते जाते हैं, अब स्वतंत्र मूल्य की स्वतःचालित गति वैयक्तिक पूंजीपति की दूरंदेशी और उसके अनुमान के ख़िलाफ़ नैसर्गिक प्रक्रिया की तात्विक शक्ति के साथ उतनी ही अधिक चलती है, उतना ही सामान्य उत्पादन का सिलसिला असामान्य अटकलबाज़ी के अधीन होता जाता है और वैयक्तिक पूंजियों के अस्तित्व के लिए ख़तरा उतना ही बढ़ता जाता है। अतः मूल्य के ये आवधिक ग्रामूल परिवर्तन उस बात की पुष्टि करते हैं, जिसका खंडन करने की उनसें अपेक्षा की जाती है और वह यह कि पूंजी के रूप में मूल्य स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त कर लेता है, जिसे वह अपनी गति द्वारा क़ायम रखता है और व्यक्त करता है।

प्रक्रिया के दौरान पूंजी के रूपांतरणों के इस अनुक्रमण में ग्राद्य मूल्य के साथ परिपथ में आये पूंजी के मूल्य के परिमाण में परिवर्तन की निरंतर तुलना समाहित है। यदि मूल्य द्वारा मूल्य सर्जक शक्ति से, श्रम शक्ति से स्वाधीनता की प्राप्ति द्र – श्र क्रिया (श्रम शक्ति की ख़रीद) द्वारा शुरू होती है और उत्पादन प्रक्रिया के दौरान श्रम शक्ति के शोषण के रूप में चरितार्थ होती है, तो मूल्य द्वारा यह स्वाधीनता प्राप्ति उस परिपथ में पुनः प्रकट नहीं होती, जिसमें द्रव्य, माल और उत्पादन तत्व प्रक्रिया के अंतर्गत पूंजी मूल्य के प्रत्यावर्ती रूप मात्र होते हैं और मूल्य के पूर्वपरिमाण की तुलना पूंजी के वर्तमान परिवर्तित मूल्य परिमाण से की जाती है।

बेली मूल्य द्वारा स्वाधीनता प्राप्ति का, जो पूंजीवादी उत्पादन पद्धति की विशेषता है और जिसे वह कुछ अर्थशास्त्रियों का विभ्रम मानते हैं, विरोध करते हुए कहते हैं, "मूल्य समकालिक पण्य वस्तुओं के बीच संबंध है, क्योंकि ऐसे माल एक दूसरे से विनिमय किया जाना ही स्वीकार करते हैं।"* यह बात वह विभिन्न युगों के माल मूल्यों की तुलना के विरोध में कहते हैं, जो एक बार प्रत्येक कालावधि के लिए द्रव्य मूल्य निश्चित कर लेने के बाद एक ही प्रकार के मालों के उत्पादन के लिए विभिन्न कालावधियों में आवश्यक श्रम की तुलना करने जैसी ही होती है। यह निष्कर्ष उनकी सामान्य भ्रान्ति से पैदा होता है, क्योंकि उनके विचार में विनिमय मूल्य मूल्य के बराबर है, मूल्य का रूप स्वयं मूल्य है; फलतः अगर माल मूल्य सक्रिय विनिमय मूल्यों की हैसियत से कार्य न करें, और इस प्रकार वास्तव में उनका एक दूसरे से विनिमय न किया जा सके, तो माल मूल्यों की तुलना भी नहीं की जा सकेगी। उन्हें इस तथ्य का तनिक भी आभास नहीं है कि मूल्य पूंजी मूल्य अथवा पूंजी की हैसियत से तभी कार्य करता है, जब वह अपने परिपथ के विभिन्न दौरों में – जो "समकालिक" क़तई नहीं होते, वरन एक दूसरे के बाद आते हैं – अपने से तद्रूपता बनाये रखता है और उसकी अपने से ही तुलना की जाती है।

परिपथ के सूत्र का विशुद्ध रूप में अध्ययन करने के लिए यह मान लेना पर्याप्त नहीं है कि पण्य वस्तुएं अपने मूल्य पर बेची जाती हैं; यह भी मानना होगा कि ऐसा और सभी परिस्थितियों के यथावत रहने पर होता है। उदाहरण के लिए, उ ... उ रूप लें। उत्पादन

---

* Bailey, Samuel, *A Critical Dissertation on the Nature, Measures and Causes of Value; Chiefly in Reference to the Writings of Mr. Ricardo and His Followers. By the Author of Essays on the Formation and Publication of Opinions*, London, 1825, p. 72. – सं०

प्रक्रिया के भीतर उन तमाम प्राविधिक क्रान्तियों को नज़रअंदाज़ करते हुए, जिनके द्वारा किसी पूंजीपति की उत्पादक पूंजी का मूल्य ह्रास हो सकता है; इसके अलावा उत्पादक पूंजी के मूल्य के तत्वों में परिवर्तन होने से विद्यमान माल पूंजी के मूल्य में जो प्रतिक्रिया हो सकती है, जो भण्डार सुलभ होने पर बढ़ अथवा घट सकता है, को भी नज़रअंदाज़ करते हुए उ . . . उ रूप को तो लीजिये। मान लीजिये, १०,००० पाउंड सूत, मा' अपने ५०० पाउंड मूल्य पर बेच दिया गया है; मा' में समाहित पूंजी मूल्य की ४२२ पाउंड का ८,४४० पाउंड सूत प्रतिस्थापना करता है। किंतु यदि कपास, कोयले, आदि का मूल्य बढ़ गया हो (हम मात्र भाव के उतार-चढ़ाव पर ध्यान नहीं देते), तो संभव है कि उत्पादक पूंजी के तत्वों के पूर्ण प्रतिस्थापन के लिए ये ४२२ पाउंड पर्याप्त न हों; अतिरिक्त द्रव्य पूंजी दरकार होगी – द्रव्य पूंजी बंध जाती है। जब ये भाव गिरते हैं, तब इसका उलटा होता है। द्रव्य पूंजी मुक्त हो जाती है। यह प्रक्रिया पूर्णतः सामान्य मार्ग तभी पकड़ती है, जब मूल्य संबंध स्थिर बने रहते हैं और जब तक परिपथ की आवृत्तियों के दौरान आनेवाले व्यवधान एक दूसरे को संतुलित किये रहते हैं, तब तक वह व्यवहारतः सामान्य बना रहता है। किंतु ये व्यवधान जितने अधिक होंगे, औद्योगिक पूंजीपति के पास पुनःव्यवस्थापन काल को पार करने के लिए उतनी ही अधिक द्रव्य पूंजी का होना आवश्यक होगा। चूंकि पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया में प्रत्येक पृथक उत्पादन प्रक्रिया का पैमाना और उसके साथ पेशगी दी जानेवाली पूंजी का न्यूनतम आकार बढ़ता है, अतः यहां उन परिस्थितियों में एक परिस्थिति और जुड़ जाती है, जो औद्योगिक पूंजीपति के कार्य को अधिकाधिक बड़े द्रव्य पूंजीपतियों के एकाधिकार में परिवर्तित करती जाती हैं, जो पृथक अथवा संघ रूप में काम कर सकते हैं।

यहां हम प्रसंगवश यह भी कह देते हैं कि उत्पादन तत्वों के मूल्य में यदि परिवर्तन हो, तो एक ओर द्र . . . द्र' के रूप में, और दूसरी ओर उ . . . उ तथा मा' . . . मा' के रूप में भी भेद उत्पन्न हो जाता है।

द्र . . . द्र' में उस नई लगाई पूंजी के सूत्र में, जो पहले द्रव्य पूंजी की हैसियत से प्रकट होती है, उत्पादन साधनों, यथा कच्चा माल, सहायक सामग्री, इत्यादि, के मूल्य में गिरावट आने से पहले की अपेक्षा एक निश्चित आकार का व्यवसाय आरंभ करने के लिए द्रव्य पूंजी का न्यूनतर व्यय संभव हो जायेगा, क्योंकि उत्पादन प्रक्रिया का पैमाना (उत्पादक शक्ति का विकास एक सा बना रहे, तो) उत्पादन साधनों की उस राशि और परिमाण पर निर्भर होता है, जिसे श्रम शक्ति की एक नियत मात्रा व्यवहार में ला सकती है; किंतु वह इन उत्पादन साधनों के मूल्य पर निर्भर नहीं होता, न श्रम शक्ति के मूल्य पर निर्भर होता है (श्रम शक्ति का मूल्य केवल स्वप्रसार के परिमाण को प्रभावित करता है)। अब इससे उलटी स्थिति लें। यदि मालों के उत्पादन के उन तत्वों के मूल्य में वृद्धि हो, जो उत्पादक पूंजी के तत्व हैं, तो निश्चित परिमाण के व्यवसाय की स्थापना के लिए और ज़्यादा द्रव्य पूंजी आवश्यक होगी। दोनों ही स्थितियों में नये निवेश के लिए आवश्यक द्रव्य पूंजी की राशि ही प्रभावित होगी। पहली स्थिति में द्रव्य पूंजी अतिरिक्त बन जाती है, और दूसरी स्थिति में वह बंध जाती है, बशर्ते कि उत्पादन की नियत शाखा में नई वैयक्तिक औद्योगिक पूंजी की सामान्य रूप में अनुवृद्धि होती रहे।

उ . . . उ तथा मा' . . . मा' परिपथ अपने को उसी हद तक द्र . . . द्र' के रूप में

प्रस्तुत करते हैं, जिस हद तक उ और मा′ की गति साथ ही संचय भी होता है, अतः जिस हद तक द्रव्य, अतिरिक्त द्र, द्रव्य पूंजी में परिवर्तित होता है। इसके अलावा उत्पादक पूंजी के तत्वों के मूल्य में परिवर्तन से वे द्र . . . द्र′ की अपेक्षा भिन्न रूप में प्रभावित होते हैं। यहां भी मूल्य में ऐसे परिवर्तनों का जो प्रभाव उत्पादन प्रक्रिया में लगे हुए पूंजी के संघटक अंशों पर पड़ता है, उस पर हम ध्यान नहीं देते। यहां सीधे मूल व्यय प्रभावित नहीं होता, वरन वह औद्योगिक पूंजी प्रभावित होती है, जो अपनी पुनरुत्पादन प्रक्रिया में लगी हुई है और अपने प्रथम परिपथ में नहीं है; अर्थात $\text{मा}' \ldots \text{मा} < {}^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$, माल पूंजी का अपने उत्पादन तत्वों में – जहां तक कि वे माल से संरचित हैं – पुनःपरिवर्तन प्रभावित होता है। जब मूल्यों (अथवा क़ीमतों) में गिरावट आती है, तब तीन स्थितियां संभव हैं: पुनरुत्पादन प्रक्रिया उसी पैमाने पर चालू रहे; वैसा होने पर अब तक विद्यमान द्रव्य पूंजी का एक भाग मुक्त हो जाता है और द्रव्य पूंजी संचित होती है, यद्यपि पहले कोई वास्तविक संचय (विस्तारित पैमाने पर उत्पादन) अथवा बे (बेशी मूल्य) का ऐसे संचय का समारंभ करने और उसके साथ-साथ चलनेवाली संचय निधि में रूपांतरण नहीं हुआ है। अथवा पुनरुत्पादन प्रक्रिया, सामान्यतः जो पैमाना होता, उसकी अपेक्षा अधिक विस्तृत पैमाने पर संपन्न की जाती है, बशर्ते कि प्राविधिक अनुपात ऐसा होने दें। अथवा, अंत में, कच्चे माल, आदि का अधिक बड़ा भंडार रह जाता है।

माल पूंजी के प्रतिस्थापन तत्वों का मूल्य यदि बढ़ जाये, तो इसका उलटा होता है। उस हालत में पुनरुत्पादन अपने सामान्य पैमाने के अनुसार होना बंद कर देता है (उदाहरण के लिए, श्रम दिवस छोटा हो जाता है); अथवा काम का पुराना परिमाण बनाये रखने के लिए अतिरिक्त द्रव्य पूंजी उपयोग में लानी होती है (द्रव्य पूंजी बंध जाती है); अथवा संचय के लिए यदि द्रव्य निधि हो, तो पुनरुत्पादन प्रक्रिया का विस्तार करने के बजाय उसे पुराने पैमाने पर चालू रखने के लिए पूर्णतः अथवा अंशतः उपयोग में लाया जाता है। यह भी द्रव्य पूंजी को बांधना है, सिवा इसके कि अतिरिक्त द्रव्य पूंजी बाहर से, द्रव्य बाज़ार से नहीं आती, वरन स्वयं औद्योगिक पूंजीपति के साधनों से आती है।

फिर भी उ . . .उ और मा′ . . . मा′ में रूपांतरकारी परिस्थितियां हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, यदि हमारे कताई मिल मालिक के पास कपास का बड़ा भंडार (उसकी उत्पादक पूंजी का एक बड़ा परिमाण कपास भंडार के रूप में) हो, तो कपास की क़ीमत गिरने से उसकी उत्पादक पूंजी के एक भाग का मूल्य ह्रास होता है; किंतु इसके विपरीत, यदि यह क़ीमत चढ़ जाये, तो उसकी उत्पादक पूंजी के इस भाग की मूल्य वृद्धि हो जाती है। दूसरी ओर, यदि उसने माल पूंजी के रूप में, मसलन सूती धागे की बड़ी राशि बांध ली है, तो कपास का भाव गिरने या चढ़ने से उसकी माल पूंजी के एक भाग और इसलिए सामान्यतः उसकी परिपथ निर्मात्री पूंजी का मूल्य ह्रास होगा अथवा उसकी मूल्य वृद्धि होगी। अंत में $\text{मा}' - \text{द्र} - \text{मा} < {}^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$ प्रक्रिया ले लीजिये। यदि मा के तत्वों के मूल्य में परिवर्तन होने से पहले माल पूंजी का सिद्धिकरण मा′ – द्र हो जाये, तो पूंजी केवल पहली स्थिति में वर्णित ढंग से ही प्रभावित होगी, अर्थात परिचलन की दूसरी क्रिया, $\text{द्र} - \text{मा} < {}^{\text{श्र}}_{\text{उ सा}}$ में; किंतु

यदि **मा′ — द्र** होने से पहले ऐसा परिवर्तन हो जाये, तो अन्य परिस्थितियों के यथावत् रहने पर कपास की क़ीमत गिरने से उसी के अनुरूप सूत का भाव भी गिरेगा। इसके विपरीत कपास की क़ीमत के बढ़ने का अर्थ होगा सूत का भाव चढ़ना। उत्पादन की एक ही शाखा में जिन विविध वैयक्तिक पूंजियों का निवेश हुआ है, उन पर वे जिन परिस्थितियों में हैं, उसके अनुसार पड़नेवाले इस प्रभाव में बड़ी भिन्नता हो सकती है।

परिचलन प्रक्रिया की अवधि में अंतर पड़ने, अतः परिचलन की रफ़्तार में अंतर पड़ने से भी, द्रव्य पूंजी बंध सकती अथवा मुक्त हो सकती है। पर यह सब आवर्त संबंधी विवेचन में आता है। यहां हमारा केवल उस वास्तविक भेद से सरोकार है, जो उत्पादक पूंजी के तत्वों के मूल्यों के परिवर्तन के सिलसिले में **द्र . . . द्र′** तथा अन्य दो परिपथ रूपों के बीच प्रत्यक्ष होता है।

उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति के विकसित हो चुकने और इसलिए प्रचलित पद्धति बन चुकने के युग में परिचलन खंड $\text{द्र} - \text{मा} < \begin{matrix}\text{श्र}\\ \text{उ सा}\end{matrix}$ में उ सा, उत्पादन साधनों, में समाहित मालों का एक बड़ा भाग स्वयं किसी दूसरे की माल पूंजी की हैसियत से कार्य करता होता है। अतः विक्रेता के दृष्टिकोण से **मा′ — द्र′**, माल पूंजी का द्रव्य पूंजी में रूपांतरण होता है। किंतु यह निरपेक्ष नियम नहीं है। असलियत इसके विपरीत ही है। अपनी परिचलन प्रक्रिया के भीतर, जिसमें औद्योगिक पूंजी या तो द्रव्य की या मालों की तरह कार्य करती है, औद्योगिक पूंजी का परिपथ, चाहे द्रव्य पूंजी की, और चाहे माल पूंजी की हैसियत से, सामाजिक उत्पादन की – जहां तक वे पण्य वस्तुएं उत्पादित करती हैं – नितांत भिन्न पद्धतियों के माल परिचलन को पार कर जाता है। पण्य वस्तुएं जिस उत्पादन की देन हैं, वह चाहे दास प्रथा पर आधारित हो, चाहे कृषक उत्पादन हो (चीनी, हिंदुस्तानी रैयत), चाहे सामुदायिक हो (डच ईस्ट इंडीज़), चाहे राजकीय व्यवसाय हो (जैसा कि रूसी इतिहास के पूर्व युगों में भूदास प्रथा के आधार पर था) अथवा चाहे अर्द्धवन्य, आखेटक क़बीलों, आदि का हो – पण्य वस्तुओं और द्रव्य की हैसियत से वे उस द्रव्य और उन पण्य वस्तुओं के सामने आती हैं, जिनमें औद्योगिक पूंजी अपने को प्रस्तुत करती है और वे उसके परिपथ में वैसे ही प्रवेश करती हैं, जैसे माल पूंजी में वाहित बेशी मूल्य के परिपथ में, बशर्ते कि बेशी मूल्य को आय की तरह ख़र्च किया जाये। इस प्रकार वे माल पूंजी के परिचलन की दोनों शाखाओं में प्रवेश करती हैं। जिस उत्पादन प्रक्रिया से उनका उद्भव हुआ है, उसका स्वरूप कोई महत्व का नहीं। बाज़ार में वे मालों की हैसियत से कार्य करती हैं, और मालों की हैसियत से ही वे औद्योगिक पूंजी के परिपथ में तथा उसमें समाविष्ट बेशी मूल्य के परिचलन में प्रवेश करती हैं। अतः औद्योगिक पूंजी की परिचलन प्रक्रिया की विशेषता मालों के उद्भव के सार्विक स्वरूप से, विश्व बाज़ार के रूप में बाज़ार के अस्तित्व से सूचित होती है। जो बात दूसरों के माल के बारे में सही है, वह दूसरों के द्रव्य के बारे में भी सही है। जैसे माल पूंजी सिर्फ़ पण्य वस्तुओं की तरह ही द्रव्य के सामने आती है, वैसे ही माल पूंजी के मुक़ाबले यह द्रव्य केवल द्रव्य पूंजी की तरह ही काम करता है। यहां द्रव्य विश्व द्रव्य के कार्य करता है।

किंतु यहां दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

पहले, जैसे ही द्र — उ सा क्रिया पूरी होती है, माल (उ सा) इसी रूप में नहीं रह जाते ; वे उत्पादक पूंजी, उसके उ के कार्य रूप में औद्योगिक पूंजी के अस्तित्व की एक पद्धति बन जाते हैं। किंतु इससे उनका मूल विलुप्त हो जाता है। अब से वे औद्योगिक पूंजी के अस्तित्व के रूपों की तरह ही विद्यमान होते हैं, उसमें समाविष्ट होते हैं। फिर भी यह बात सच बनी रहती है कि उन्हें प्रतिस्थापित करने के लिए उन्हें पुनरुत्पादित किया जाना होता है और इस हद तक उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति उत्पादन की उन पद्धतियों से प्रतिबद्ध है, जो उसके विकास की अपनी मंजिल के बाहर हैं। किंतु उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति की यह प्रवृत्ति है कि जहां तक बन पड़े, सारे उत्पादन को माल उत्पादन में बदल दे। जिस मुख्य उपकरण द्वारा यह संपन्न किया जाता है, वह पूंजीवादी परिचलन प्रक्रिया में समस्त उत्पादन का समेट लिया जाना ही है। और विकसित माल उत्पादन स्वयं पूंजीवादी माल उत्पादन है। औद्योगिक पूंजी का हस्तक्षेप इस रूपांतरण का हर जगह संवर्धन करता है, किंतु इसके साथ सारे प्रत्यक्ष उत्पादकों के उजरती श्रमिकों में रूपांतरण को भी बढ़ावा देता है।

दूसरे, औद्योगिक पूंजी की परिचलन प्रक्रिया में प्रवेश करनेवाले माल (आवश्यक निर्वाह साधनों सहित, जिनमें परिवर्ती पूंजी श्रमिकों को चुकाये जाने के बाद उनकी श्रम शक्ति का पुनरुत्पादन करने के लिए रूपांतरित होती है), चाहे उनका उद्भव कोई भी हो और उन्हें अस्तित्व में लानेवाली उत्पादक प्रक्रिया का सामाजिक रूप कोई भी हो, पहले ही माल पूंजी के रूप में माल विक्रेता अथवा व्यापारी की पूंजी के रूप में विद्यमान स्वयं औद्योगिक पूंजी के सामने आते और व्यापारी की पूंजी में उसकी प्रकृति से ही उत्पादन की सभी पद्धतियों के माल समाहित होते हैं।

उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति बड़े पैमाने पर उत्पादन की ही नहीं, वरन अनिवार्यतः बड़े पैमाने पर बिक्री की भी और इसलिए अलग-अलग उपभोक्ता के हाथ नहीं, बल्कि व्यापारी के हाथ बिक्री की भी पूर्वकल्पना करती है। यदि यह उपभोक्ता स्वयं उत्पादक उपभोक्ता और इसलिए औद्योगिक पूंजीपति हो, अर्थात यदि उत्पादन की एक शाखा की औद्योगिक पूंजी उद्योग की किसी दूसरी शाखा को उत्पादन साधन देती हो, तो एक औद्योगिक पूंजीपति द्वारा दूसरों को प्रत्यक्ष बिक्री (आर्डर, आदि के रूप में) संपन्न होती है। इस सीमा तक प्रत्येक औद्योगिक पूंजीपति प्रत्यक्ष विक्रेता होता है और स्वयं अपना ही व्यापारी होता है, जो वह प्रसंगतः तब भी होता है कि जब वह किसी व्यापारी को माल बेचता है।

व्यापारी की पूंजी के कार्य की हैसियत से मालों का व्यापार पूंजीवादी उत्पादन का एक पूर्वाधार है और इस तरह के उत्पादन के विकास के दौरान वह अधिकाधिक विकसित होता जाता है। अतः पूंजीवादी परिचलन प्रक्रिया के विशेष पक्षों को दर्शाने के लिए हम उसके अस्तित्व को कभी-कभी मान लेते हैं। किंतु इस प्रक्रिया के सामान्य विश्लेषण में हम प्रत्यक्ष बिक्री कल्पित करते हैं, जहां व्यापारी का हस्तक्षेप नहीं होता, क्योंकि यह हस्तक्षेप गति के विभिन्न पहलुओं को अस्पष्ट बना देता है।

इसकी सीसमांडी से तुलना करें, जो बात को जरा भोलेपन से प्रस्तुत करते हैं :

"वाणिज्य काफ़ी पूंजी उपयोग में लाता है, जो पहली निगाह में उस पूंजी का भाग नहीं जान पड़ती, जिसकी गति का वर्णन हम कर चुके हैं। कपड़ा व्यापारी के गोदामों में जमा कपड़े का मूल्य पहली निगाह में वार्षिक उत्पादन के उस भाग से पूर्णतः भिन्न प्रतीत होता है, जिसे धनी आदमी ग़रीब को मजदूरी के रूप में इसलिए देता है कि वह काम करे। किंतु इस पूंजी

ने महज़ उस दूसरी पूंजी को प्रतिस्थापित ही किया है, जिसका हम उल्लेख कर चुके हैं। धन की प्रगति साफ़-साफ़ समझने के लिए हमने शुरूआत उसके सृजन से की है और उसके उपभोग तक उसका अनुसरण किया है। तब, उदाहरण के लिए, कपड़ा बनाने में लगाई गई पूंजी हमें सदा वैसी ही दिखाई देती थी और जब उपभोक्ता की आय से उसका विनिमय हुआ, तब वह केवल दो हिस्सों में बंटी थी, जिनमें से एक मुनाफ़े के रूप में निर्माता की आय बन गया था और दूसरा हिस्सा मजदूरी के रूप में श्रमिकों की उतने समय की आय था, जिसमें वे नया कपड़ा बना रहे थे।

"किंतु शीघ्र ही पता चला कि यदि इस पूंजी के विभिन्न भाग एक दूसरे को प्रतिस्थापित कर दें और यदि निर्माता और उपभोक्ता के बीच समस्त परिचलन के लिए १,००,००० एकू काफ़ी हों, तो उन्हें निर्माता, थोक व्यापारी और खुदरा व्यापारी के बीच बराबर-बराबर बांट दिया जाना सभी के लिए लाभदायी रहेगा। इस पूंजी के एक तिहाई हिस्से से पहले निर्माता ने तब वही काम किया, जो पहले उसने समूची पूंजी से किया था, क्योंकि जैसे ही उसका कपड़ा बनाने का काम ख़त्म हुआ, तो उसने देखा कि उससे उपभोक्ता नहीं, बल्कि व्यापारी ही ख़रीद करेगा। दूसरी ओर, थोक व्यापारी की पूंजी खुदरा व्यापारी की पूंजी से कहीं जल्दी प्रतिस्थापित हो गई ... मज़दूरी के लिए पेशगी दी गई रक़म और अंतिम उपभोक्ता द्वारा चुकाये क्रय मूल्य के अंतर को इन पूंजियों का मुनाफ़ा मान लिया गया था। वह निर्माता, थोक व्यापारी और खुदरा व्यापारी के बीच उसी क्षण से बंट गया था, जब से उन्होंने अपने कार्य आपस में बांट लिये थे, और किया गया काम एक ही था, यद्यपि उसके लिए एक की जगह तीन व्यक्ति और पूंजी के तीन हिस्से आवश्यक हुए थे" (*Nouveaux Principes*, १, पृष्ठ १३९ और १४०)।

"उन सभी [व्यापारियों] ने उत्पादन में अप्रत्यक्ष योगदान किया था। चूंकि उसका लक्ष्य उपभोग है, इसलिए उत्पादन तब तक पूर्ण हुआ नहीं माना जा सकता, जब तक उत्पादित वस्तु उपभोक्ता की पहुंच के भीतर न पहुंचा दी जाये" (वही, पृष्ठ १३७)।

परिपथ के सामान्य रूपों के विवेचन में, और सामान्यतः समूचे दूसरे खंड में हमने द्रव्य को, प्रतीक मुद्रा; जो कुछेक राज्यों में विशिष्ट उपभोग के लिए उद्दिष्ट मूल्य के प्रतीक मात्र होते हैं, और साख द्रव्य, जो अभी विकसित नहीं हुआ है, को छोड़कर धातु मुद्रा के अर्थ में लिया है। पहली बात तो यही है कि यह ऐतिहासिक क्रम है; पूंजीवादी उत्पादन के प्रथम युग में साख द्रव्य की भूमिका अत्यल्प होती है अथवा होती ही नहीं। दूसरे, सैद्धांतिक रूप में इस क्रम की आवश्यकता इस तथ्य से प्रदर्शित होती है कि टूक, आदि साख द्रव्य के परिचलन के बारे में अब तक आलोचनात्मक ढंग से जो कुछ भी कहते आये थे, उसने उन्हें बारबार इसी प्रश्न की तरफ़ ध्यान देने के लिए विवश किया कि यदि परिचलन में धातु मुद्रा के अलावा और कुछ न हो, तो स्थिति कैसी होगी। किंतु यह न भूलना चाहिए कि धातु मुद्रा ख़रीद के और भुगतान के माध्यम का भी काम कर सकती है। सरलता के लिए इस दूसरे खंड में हम आम तौर से उसके प्रथम कार्य रूप को लेकर ही उस पर विचार करते हैं।

औद्योगिक पूंजी के परिचलन की प्रक्रिया, जो उसके वैयक्तिक परिपथ का अंश मात्र है, पूर्ववर्णित सामान्य नियमों द्वारा निर्धारित होती है (Buch I, Kap. III)*, जहां तक कि वह मालों के सामान्य परिचलन के अंतर्गत क्रियाओं की शृंखला मात्र है। द्रव्य की गति जितनी तीव्र होती है और इसलिए जितनी तेज़ी से प्रत्येक वैयक्तिक पूंजी अपने माल अथवा द्रव्य

* हिन्दी संस्करण: अध्याय ३।—सं०

रूपांतरणों की शृंखला से गुजरती है, एक निश्चित द्रव्य राशि, उदाहरण के लिए, ५०० पाउंड द्वारा क्रमशः परिचलन शुरू करनेवाली औद्योगिक पूंजियों (अथवा माल पूंजियों के रूप में वैयक्तिक पूंजियों) की संख्या उतनी ही अधिक होती है। इसलिए द्रव्य जितना ज्यादा भुगतान के माध्यम का काम करता है – उदाहरण के लिए, किसी माल पूंजी की उसके उत्पादन साधनों द्वारा प्रतिस्थापना में – उतना ही बस संतुलनों को दुरुस्त करना ही रह जाता है और भुगतान के लिए कालावधियां जितना ही छोटी होती हैं, यथा मजदूरी देने में, उतना ही पूंजी मूल्य की नियत राशि को अपने परिचलन के लिए कम द्रव्य की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर यह मान लेने पर कि परिचलन की रफ़्तार और अन्य सभी परिस्थितियां समान रहती हैं, द्रव्य पूंजी की हैसियत से द्रव्य की जितनी मात्रा परिचलन के लिए दरकार होती है, वह मालों की क़ीमतों के योग (मालों की मात्रा से गुणित क़ीमत) द्वारा और यदि मालों का मूल्य और परिमाण स्थिर हों, तो स्वयं द्रव्य के मूल्य द्वारा निर्धारित होती है।

किंतु मालों के सामान्य परिचलन के नियम तभी लागू होते हैं, जब पूंजी की परिचलन प्रक्रिया में परिचलन की साधारण क्रियाओं की शृंखला समाहित होती है, ये तब लागू नहीं होते, जब परिचलन की ये साधारण क्रियाएं वैयक्तिक औद्योगिक पूंजियों के परिपथ के कार्यतः निर्धारित खंड बन जाती हैं।

यह स्पष्ट करने के लिए परिचलन प्रक्रिया का उसकी अविच्छिन्न अंतर्संबद्धता में अध्ययन करना सबसे अच्छा होगा, जैसे वह इन दो निम्न रूपों में प्रकट होती है:

$$२)\ \text{उ} \ldots \text{मा}' \left\{ \begin{array}{l} \text{मा} - \\ - \text{द्र}' \\ \text{मा}\ - \end{array} \right. \left| \begin{array}{l} \text{द्र} - \text{मा} < \begin{array}{l}\text{श्र}\\ \text{उ सा}\end{array} \ldots \text{उ} (\text{उ}') \\ \\ \text{द्र} - \text{मा} \end{array} \right.$$

$$३)\ \text{मा}' \left\{ \begin{array}{l} \text{मा} - \\ - \text{द्र}' \\ \text{मा}\ - \end{array} \right. \left| \begin{array}{l} \text{द्र} - \text{मा} < \begin{array}{l}\text{श्र}\\ \text{उ सा}\end{array} \ldots \text{उ} \ldots \text{मा}' \\ \\ \text{द्र} - \text{मा} \end{array} \right.$$

सामान्य रूप में परिचलन क्रियाओं की शृंखला की हैसियत से परिचलन प्रक्रिया (चाहे मा – द्र – मा के रूप में, चाहे द्र – मा – द्र के रूप में) केवल माल रूपांतरणों की दो विरोधी शृंखलाएं व्यक्त करती है। अपनी बारी में इनमें से प्रत्येक में माल के सामने आनेवाले भिन्न माल अथवा भिन्न द्रव्य का विपरीत रूपांतरण सन्निहित होता है।

माल के मालिक के लिए जो मा – द्र है, वह ग्राहक के लिए द्र – मा है। मा – द्र में माल का पहला रूपांतरण द्र रूप में प्रकट होनेवाले माल का दूसरा रूपांतरण है। इससे उलटी बात द्र – मा पर लागू होती है। एक मंजिल में किसी माल के रूपांतरण से दूसरी मंजिल में किसी अन्य माल के रूपांतरण के अंतर्ग्रंथन के बारे में जो कुछ बताया गया है, वह पूंजी के परिचलन पर भी लागू होता है, जहां तक कि पूंजीपति मालों के ग्राहक और विक्रेता के कार्य करता है, और इस कारण उसकी पूंजी दूसरे के मालों के मुक़ाबले द्रव्य रूप में अथवा दूसरे के द्रव्य के मुक़ाबले मालों के रूप में कार्य करती है। किंतु इस अंतर्ग्रंथन को पूंजियों के रूपांतरणों का अंतर्ग्रंथन न मान लेना चाहिए।

पहली बात तो यही है कि, जैसा कि हम देख चुके हैं, द्र – मा (उ सा) विभिन्न

वैयक्तिक पूंजियों के रूपांतरणों का अंतर्ग्रंथन व्यक्त कर सकता है। उदाहरण के लिए, कताई मिल मालिक की माल पूंजी, सूत, अंशत: कोयला प्रतिस्थापित करती है। उसकी पूंजी का एक भाग द्रव्य रूप में विद्यमान रहता है और मालों के रूप में परिवर्तित होता है। उधर कोयले के पूंजीवादी उत्पादक की पूंजी माल रूप में होती है और इसलिए वह द्रव्य रूप में बदलती है। परिचलन की एक ही क्रिया इस प्रसंग में दो औद्योगिक पूंजियों (उत्पादन की भिन्न शाखाओं में) के विरोधी रूपांतरण और इस प्रकार इन पूंजियों के रूपांतरणों की शृंखलाओं का अंतर्ग्रंथन व्यक्त करती है। किंतु, जैसा कि हम देख चुके हैं, जिस उ सा में द्र परिवर्तित होता है, उसके लिए संवर्गात्मक अर्थ में माल पूंजी होना आवश्यक नहीं है, अर्थात उसके लिए औद्योगिक पूंजी का कार्य रूप होना, किसी पूंजीपति द्वारा उत्पादित होना आवश्यक नहीं है। वह एक ओर सदैव द्र — मा होता है, और दूसरी ओर मा — द्र, किंतु पूंजियों के रूपांतरणों का अंतर्ग्रंथन सदा नहीं होता। इसके अलावा श्रम शक्ति की ख़रीद द्र — श्र, पूंजियों के रूपांतरणों का अंतर्ग्रंथन कभी नहीं होती, क्योंकि यद्यपि श्रम शक्ति श्रमिक का माल होता है, फिर भी जब तक वह पूंजीपति को बेची न जाये, तब तक वह पूंजी नहीं बनती। दूसरी ओर, मा' — द्र' की प्रक्रिया में यह आवश्यक नहीं है कि द्र' परिवर्तित माल पूंजी व्यक्त करे; वह द्रव्य रूप में श्रम शक्ति माल (मज़दूरी) का अथवा किसी स्वतंत्र श्रमिक, दास, भूदास, अथवा समुदाय की उत्पाद का सिद्धिकरण हो सकता है।

लेकिन दूसरी बात यह है कि किसी वैयक्तिक पूंजी की परिचलन प्रक्रिया के भीतर होनेवाले प्रत्येक रूपांतरण द्वारा कार्यत: निर्धारित भूमिका के निष्पादन के लिए यह बिल्कुल आवश्यक नहीं है कि यह रूपांतरण दूसरी पूंजी के परिपथ में होनेवाले अनुरूप विरोधी रूपांतरण को व्यक्त करे, बशर्ते कि हम मान लें कि विश्व बाज़ार का सारा उत्पादन पूंजीवादी ढंग से चलाया जा रहा है। उदाहरण के लिए, उ . . . उ परिपथ में, जो द्र' मा' को द्रव्य में परिवर्तित करता है, वह ग्राहक के लिए द्रव्य रूप में उसके बेशी मूल्य का सिद्धिकरण मात्र हो सकता है (यदि माल उपभोग की चीज़ हो); अथवा द्र'–मा' < श्र / उ सा (अत: जहां पहले ही संचित पूंजी प्रवेश करती है) में, जहां तक उ सा के विक्रेता का संबंध है, द्र' उसकी पूंजी के परिचलन में प्रवेश करके उसकी पेशगी पूंजी को प्रतिस्थापित कर सकता है, अथवा यह भी हो सकता है कि संचालन व्यय में बदल दिये जाने से वह उसमें पुन: प्रवेश करे ही नहीं।

इसलिए समग्र सामाजिक पूंजी के विभिन्न संघटक अंश, वैयक्तिक पूंजियां जिसका स्वतंत्र रूप से कार्यशील घटक मात्र हैं, परिचलन प्रक्रिया में — पूंजी के तथा बेशी मूल्य के संदर्भ में भी — किस प्रकार एक दूसरे को प्रतिस्थापित करते हैं, इसका निश्चय मालों के परिचलन के भीतर रूपांतरणों के सादे अंतर्ग्रंथनों से, जो मालों के अन्य समस्त परिचलन की ही भांति पूंजी परिचलन की क्रियाओं में भी होते हैं, नहीं किया जाता। इसके लिए अन्वेषण का दूसरा तरीक़ा आवश्यक होता है। अभी तक ऐसे शब्दों में बातें कहकर सन्तोष किया जाता रहा है, बारीकी से देखने पर जिनमें समस्त माल परिचलन के लिए सामान्य रूपांतरणों के अंतर्ग्रंथन से लिये अनिश्चित विचारों के अलावा कुछ नहीं मिलता है।

औद्योगिक पूंजी के, और इसलिए पूंजीवादी उत्पादन के परिपथों की गति की एक बहुत स्पष्ट विशेषता यह तथ्य है कि एक ओर उत्पादक पूंजी के संघटक तत्व मालों के रूप में ख़रीद कर माल बाज़ार से प्राप्त किये जाते हैं और उनका उसी से निरंतर नवीकरण करना होता है; और दूसरी ओर श्रम प्रक्रिया का उत्पाद उसमें से माल की हैसियत से निकलता है, और उसे माल की हैसियत से ही फिर से निरंतर बेचना होता है। उदाहरण के लिए, स्कॉच लोलैंड्स के किसी आधुनिक कृषक से महाद्वीपीय यूरोप के किसी पुराने ढंग के छोटे किसान की तुलना कीजिये। पूर्वोक्त अपनी सारी उपज बेच देता है, इसलिए उसे उसके सारे तत्वों, अपने बीज तक की बाज़ार में प्रतिस्थापना करनी होती है। अंतोक्त अपनी उपज के अधिकांश का सीधा उपभोग कर डालता है, यथासंभव कम से कम बेचता और ख़रीदता है, अपने औज़ार, कपड़े, वग़ैरह, जहां तक हो पाता है, ख़ुद ही बनाता है।

अतः नैसर्गिक अर्थव्यवस्था, द्रव्य अर्थव्यवस्था और साख अर्थव्यवस्था सामाजिक उत्पादन की गति के तीन विशिष्ट आर्थिक रूप होने के नाते एक दूसरे के मुक़ाबले में देखे जा रहे हैं।

पहली बात, ये तीनों रूप विकास के तुल्य दौर व्यक्त नहीं करते। तथाकथित साख अर्थव्यवस्था द्रव्य अर्थव्यवस्था का एक रूप मात्र है, क्योंकि ये दोनों शब्द स्वयं उत्पादकों के बीच होनेवाले विनिमय कार्य अथवा विनिमय पद्धतियां व्यक्त करते हैं। विकसित पूंजीवादी उत्पादन में द्रव्य अर्थव्यवस्था साख अर्थव्यवस्था के आधार की हैसियत से ही प्रकट होती है। इस प्रकार द्रव्य अर्थव्यवस्था तथा साख अर्थव्यवस्था केवल पूंजीवादी उत्पादन के विकास की विभिन्न मंज़िलों के ही अनुरूप हैं; किंतु नैसर्गिक अर्थव्यवस्था के मुक़ाबले वे विनिमय के स्वतंत्र रूप किसी प्रकार नहीं हैं। इसी तर्क के आधार पर तो नैसर्गिक अर्थव्यवस्था के एकदम भिन्न रूपों को भी इन अर्थव्यवस्थाओं के तुल्यों की तरह रखा जा सकता है।

दूसरे, चूंकि द्रव्य अर्थव्यवस्था और साख अर्थव्यवस्था – इन दोनों संवर्गों के विशिष्ट लक्षण के रूप में जिस बात पर ज़ोर दिया गया है, वह अर्थव्यवस्था, अर्थात स्वयं उत्पादन प्रक्रिया नहीं, उस अर्थव्यवस्था के अनुरूप उत्पादन के विभिन्न कर्ताओं अथवा उत्पादकों के बीच विनिमय की पद्धति है, इसलिए यही बात पहले संवर्ग पर भी लागू होनी चाहिए। इसीलिए नैसर्गिक अर्थव्यवस्था की जगह विनिमय अर्थव्यवस्था आती है। पूर्णतः वियुक्त नैसर्गिक अर्थव्यवस्था, उदाहरणार्थ, पीरू का इंका राज्य इनमें से किसी संवर्ग के अंतर्गत न आती।

तीसरे, द्रव्य अर्थव्यवस्था समस्त माल उत्पादन के लिए लाक्षणिक है और उत्पाद सामाजिक उत्पादन के एकदम भिन्न संघटनों में माल की तरह प्रकट होता है। फलतः जो चीज़ पूंजीवादी उत्पादन की विशेषता दिखाती है, वह सिर्फ़ यही है कि उत्पाद किस सीमा तक वाणिज्य पदार्थ के, माल के रूप में बनाया जाता है और इसलिए किस सीमा तक उसके अपने संघटक तत्व उस अर्थव्यवस्था में, जिससे वह उत्पन्न होता है, वाणिज्य पदार्थ के, माल के रूप में अनिवार्यतः पुनः प्रवेश करेंगे।

वास्तव में उत्पादन के सामान्य रूप की हैसियत से पूंजीवादी उत्पादन माल उत्पादन है। किंतु वह केवल इसलिए ऐसा है और लगातार होता जाता है कि यहां स्वयं श्रम माल की हैसियत से प्रकट होता है, इसलिए कि श्रमिक अपना श्रम, अर्थात अपनी श्रम शक्ति को कार्य बेचता है, और हमारी पूर्वकल्पना यह है कि वह उसे उसके मूल्य पर बेचता है, जो उसकी पुनरुत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है। वह श्रम जिस सीमा तक उजरती श्रम बन जाता है, उस सीमा तक उत्पादक औद्योगिक पूंजीपति बन जाता है। इसीलिए पूंजीवादी उत्पादन

(और इसलिए माल उत्पादन भी) अपनी क्षमता का पूर्ण विकास तब तक नहीं कर पाता कि जब तक प्रत्यक्ष कृषि उत्पादक उजरती श्रमिक नहीं बन जाता। पूंजीपति और उजरती श्रमिक के संबंध में द्रव्य सम्बन्ध ग्राहक और विक्रेता का संबंध, उत्पादन में निहित संबंध बन जाता है। किंतु इस संबंध का आधार उत्पादन का सामाजिक स्वरूप ही है, विनिमय की पद्धति नहीं। वह उसके विपर्याय की तरह सामाजिक स्वरूप से उत्पन्न होती है। किंतु यह पूंजीवादी क्षितिज के पूर्णतः अनुरूप है कि हर किसी के संदिग्ध धंधों में लगे रहने के कारण उत्पादन पद्धति के स्वरूप में अनुरूप विनिमय पद्धति के आधार को नहीं, वरन उलटी चीज़ को ही देखा जाता है।[7]

पूंजीपति परिचलन से द्रव्य रूप में जितना मूल्य निकालता है, उससे कम उसमें डालता है, क्योंकि माल रूप में उसने उससे जितना मूल्य निकाला था, उसकी तुलना में माल रूप में वह उसमें ज्यादा मूल्य डालता है। चूंकि वह मात्र पूंजी के प्रतिरूप का, औद्योगिक पूंजीपति का कार्य करता है, इसलिए माल मूल्य के लिए उसकी जितनी मांग होती है, उससे उसकी माल पूर्ति हमेशा अधिक होती है। यदि इस मामले में उसकी पूर्ति और मांग एक दूसरे के बराबर हो जायें, तो इसका मतलब यह होगा कि उसकी पूंजी ने बेशी मूल्य का सृजन किया ही नहीं, उसने उत्पादक पूंजी का कार्य किया ही नहीं, उत्पादक पूंजी ऐसी माल पूंजी में परिवर्तित हुई है कि जिसके गर्भ में बेशी मूल्य है ही नहीं, उत्पादन प्रक्रिया के दौरान उसने श्रम शक्ति से माल रूप में कोई बेशी मूल्य निकाला ही नहीं, उसने पूंजी की हैसियत से कार्य किया ही नहीं। सच है कि पूंजीपति को "जिस दाम माल ख़रीदा है, उससे महंगा बेचना होगा", किन्तु वह ऐसा करने में केवल इसलिए सफल होता है कि उसने जो माल सस्ता ख़रीदा है – सस्ता इसलिए कि उसमें कम मूल्य समाहित है – उसे वह पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया के कारण अधिक मूल्य के माल में, अतः ज्यादा महंगे माल में रूपांतरित कर सकता है। वह महंगा बेचता है इसलिए नहीं कि अपने माल को मूल्य के ऊपर बेचता है, वरन इसलिए कि उसके माल में अब उससे अधिक मूल्य समाहित है, जितना उसके उत्पादन घटकों में मूल्य समाहित था।

पूंजीपति की पूर्ति और उसकी मांग में अंतर जितना ही अधिक होता है, अर्थात जितने माल मूल्य की वह मांग करता है, उससे उसके द्वारा पूर्ति किये जानेवाले माल मूल्य का आधिक्य जितना ही अधिक होता है, अर्थात जितने माल मूल्य की वह मांग करता है, उससे उसके द्वारा पूर्ति किये जानेवाले माल मूल्य का आधिक्य जितना ही ज़्यादा होगा, उतना ही पूंजीपति की अपनी पूंजी के मूल्य का प्रसार करने की दर तेज़ होती है। उसका लक्ष्य पूर्ति और मांग को बराबर कर देना नहीं, वरन उनके बीच की असमानता को, अपनी मांग की तुलना में अपनी पूर्ति के आधिक्य को यथासंभव अधिक से अधिक कर देना होता है।

जो बात वैयक्तिक पूंजीपति के लिए सही है, वह पूंजीपति वर्ग पर भी लागू होती है।

जिस हद तक पूंजीपति औद्योगिक पूंजी का प्रतिरूपण मात्र करता है, उसकी अपनी मांग

---

[7] पाण्डुलिपि ५ का अंत। अध्याय के अंत तक का शेष भाग एक टिप्पणी है, जो १८७७ या १८७८ की कापी में विभिन्न पुस्तकों के उद्धरणों के बीच मे लिखी हुई है। – फ़्रे० एं०

उत्पादन साधनों और श्रम शक्ति तक सीमित रहती है। मूल्य के विचार से उसकी उ सा की मांग उसकी पेशगी पूंजी से न्यून होती है; वह जो उत्पादन साधन ख़रीदता है, उनका मूल्य उसकी पूंजी के मूल्य से कम होता है और इसलिए जिस माल पूंजी से वह पूर्ति करता है, उसके मूल्य से उत्पादन साधनों का मूल्य और भी कम होता है।

जहां तक उसकी श्रम शक्ति की मांग का प्रश्न है, मूल्य के विचार से वह उसकी संपूर्ण पूंजी से उसकी परिवर्ती पूंजी के संबंध द्वारा निर्धारित होती है, अतः प : पूं के बराबर होती है। इसलिए पूंजीवादी उत्पादन में उत्पादन साधनों की उसकी मांग की तुलना में यह मांग अपेक्षाकृत न्यून होती जाती है। उसकी श्र की ख़रीद के मुक़ाबले उसकी उ सा की ख़रीद लगातार बढ़ती जाती है।

चूंकि श्रमिक सामान्यतः अपनी मजदूरी को निर्वाह साधनों में और उसके अत्यधिक बड़े भाग को अत्यावश्यक वस्तुओं में परिवर्तित कर लेता है, अतः पूंजीपति की श्रम शक्ति की मांग अप्रत्यक्ष रूप में उन उपभोग वस्तुओं की मांग भी है, जो मजदूर वर्ग के लिए अनिवार्य होती हैं। किंतु यह मांग प के बराबर होती है और उससे रत्ती भर भी अधिक नहीं होती (यदि श्रमिक अपनी मजदूरी का एक हिस्सा बचा लेता है – यहां हम सभी साख संबंधों को अनिवार्यतः छोड़ देते हैं – तो वह अपनी मजदूरी के एक हिस्से को अपसंचय में बदल लेता है, और उस हद तक दाम लगानेवाले की, ग्राहक की हैसियत से काम नहीं करता)। पूंजीपति की मांग की ऊपरी सीमा है पूं, जो स + प के बराबर है; किंतु उसकी पूर्ति स + प + बे है। फलतः यदि उसकी माल पूंजी का गठन $८०_{स} + २०_{प} + २०_{बे}$ हो, तो उसकी मांग $८०_{स} + २०_{प}$ के बराबर होगी; अतः उसमें समाहित मूल्य के विचार से उसकी पूर्ति मांग का पंचमांश कम होती है। उसके द्वारा उत्पादित बेशी मूल्य की राशि की प्रतिशतता (उसकी मुनाफ़े की दर) जितना ही ज्यादा होगी, उसकी पूर्ति की तुलना में उतना ही उसकी मांग कम होती जायेगी। यद्यपि उत्पादन के और अधिक विकास के साथ-साथ पूंजीपति की उत्पादन साधनों की मांग की तुलना में उसकी श्रम शक्ति की मांग और इसलिए अप्रत्यक्ष रूप में आवश्यक साधनों की मांग लगातार कम होती जाती है, फिर भी दूसरी ओर यह न भूलना चाहिए कि उसकी पूंजी की अपेक्षा उ सा के लिए उसकी मांग हमेशा कम होती है। अतः उसकी मांग मूल्य में उस पूंजीपति के माल उत्पाद से हमेशा कम होगी, जो समान मूल्य की पूंजी से समान परिस्थितियों में काम करते हुए उसे वे उत्पादन साधन मुहैया करता है। मुहैया करने का यह काम केवल एक पूंजीपति नहीं, अनेक करते हैं, इससे स्थिति बदल नहीं जाती। मान लीजिये, उसकी पूंजी १,००० पाउंड है, और उसका स्थिर भाग ८०० पाउंड है; तब इन सभी पूंजीपतियों से उसकी मांग ८०० पाउंड के बराबर होगी। यह मान लेने पर कि लाभ की दर वही बनी रहती है, वे सब मिलकर प्रत्येक १,००० पाउंड के बदले १,२०० पाउंड के उत्पादन साधन जुटाते हैं (इसका ख़याल किये बिना कि प्रत्येक १,००० पाउंड में उनमें से हरेक का हिस्सा कितना आता है और उनमें से प्रत्येक का हिस्सा उसकी संपूर्ण पूंजी का कौन सा अंश व्यक्त करता है)। फलतः उसकी मांग उनकी पूर्ति का २/३ ही होती है, जब कि मूल्य के माप में उसकी अपनी संपूर्ण मांग उसकी पूर्ति के ४/५ के बराबर ही होती है।

प्रसंगतः, आवर्त की छानबीन करना अभी हमारे लिए बाक़ी ही है। मान लीजिये कि

पूंजीपति की सम्पूर्ण पूंजी ५,००० पाउंड है; इसमें ४,००० पाउंड स्थायी पूंजी हैं, और १,००० पाउंड प्रचल पूंजी हैं। मान लीजिये, ये १,००० पाउंड $८००_{स} + २००_{प}$ द्वारा गठित हैं, जैसे ऊपर माना गया था। उसकी संपूर्ण पूंजी का साल में एक आवर्त होने के लिए उसकी प्रचल पूंजी का पांच बार आवर्त होना चाहिए। तब उसका माल उत्पाद ६,००० पाउंड के बराबर, अर्थात पेशगी पूंजी से १,००० पाउंड अधिक होगा। इससे बेशी मूल्य का वही अनुपात बनता है, जो ऊपर बताया गया था :

$$५,००० \text{ पूं} : १,०००_{बे} = १०० _{(स + प)} : २०_{बे}$$

अतः यह आवर्त उसकी संपूर्ण पूर्ति से उसकी संपूर्ण मांग के अनुपात में कोई अंतर नहीं डालता। उसकी संपूर्ण पूर्ति की तुलना में उसकी संपूर्ण मांग उसका पंचमांश कम बनी रहती है।

मान लीजिये, उसकी स्थायी पूंजी का नवीकरण दस साल में होना है। तब पूंजीपति हर साल दशमांश अथवा ४०० पाउंड निक्षेप निधि में डालता जायेगा; इस प्रकार उसके पास स्थायी पूंजी के रूप में ३,६०० पाउंड का मूल्य + ४०० पाउंड द्रव्य ही बच रहेगा। अगर मरम्मत जरूरी हो और औसत से ज्यादा दरकार न हो तो यह बाद में लगाई जानेवाली पूंजी के अलावा और कुछ नहीं है। इस बात को हम उसी तरह देख सकते हैं मानो उसने अपनी निवेश पूंजी के मूल्य का आकलन करते समय जहां तक वह उसके वार्षिक माल उत्पाद में सम्मिलित होती है, मरम्मत की लागत की पहले ही गुंजाइश रख दी थी, जिससे कि वह निक्षेप निधि के उस दशमांश भुगतान में शामिल हो जाती है। (यदि उसकी मरम्मत की जरूरत औसत से कम हो, तो उतना द्रव्य उसके हाथ में आ जाता है, और यदि औसत से ऊपर है, तो बात उलटी होगी। किंतु उद्योग की एक ही शाखा में संलग्न पूंजीपतियों के समस्त वर्ग के लिए यह बराबर ही बैठती है।) जो भी हो, यद्यपि उसकी वार्षिक मांग अब भी ५,००० पाउंड ही है, जो उसके द्वारा पेशगी दिये मूल पूंजी मूल्य के बराबर है (यह मान लेने पर कि उसकी संपूर्ण पूंजी का आवर्त साल में एक बार होता है), पूंजी के प्रचल भाग के संदर्भ में यह मांग बढ़ती जाती है, जब कि उसके स्थायी भाग के संदर्भ में वह लगातार घटती जाती है।

अब हम पुनरुत्पादन पर आ जाते हैं। हम यह मान लें कि पूंजीपति समस्त बेशी मूल्य बे का उपभोग करता है और मूल परिमाण की पूंजी पूं को ही उत्पादक पूंजी में पुनःपरिवर्तित करता है। तब पूंजीपति की मांग मूल्य में उसकी पूर्ति के बराबर होती है, किंतु यह बात उसकी पूंजी की गति के बारे में नहीं है। पूंजीपति की हैसियत से वह अपनी पूर्ति के ४/५ भाग के लिए ही (मूल्य के अर्थों में) मांग का प्रयोग करता है। १/५ भाग का उपयोग वह गैरपूंजीपति की हैसियत से, पूंजीपति के रूप में अपने कार्य के लिए नहीं, वरन अपनी निजी आवश्यकताओं अथवा इच्छाओं के लिए करता है।

उसका आकलन प्रतिशत रूप में इस प्रकार व्यंजित होता है :

पंजीपति की हैसियत से मांग . . .	१००, पूर्ति १२०
शहरी आदमी की हैसियत से मांग . .	२०, पूर्ति –
कुल मांग	१२०, पूर्ति १२०

यह कल्पना यह मान लेने जैसी है कि पूंजीवादी उत्पादन का अस्तित्व नहीं है, और इसलिए स्वयं औद्योगिक पूंजीपति का अस्तित्व नहीं है। कारण यह कि मात्र यही कल्पना करके पूंजीवाद को समूल ख़त्म कर दिया जाता है कि प्रेरक हेतु निजी उपयोग है, न कि पैसा बटोरना।

ऐसी कल्पना प्राविधिक दृष्टि से भी असंभव है। पूंजीपति के लिए यही आवश्यक नहीं होता कि वह आरक्षित पूंजी का निर्माण करे, ताकि भाव के उतार-चढ़ाव के झटके सहे जा सकें और वह क्रय-विक्रय के लिए अनुकूलतम परिस्थितियों की राह देख सके। उसके लिए पूंजी का संचय करना भी आवश्यक है, जिससे कि अपने उत्पादन को विस्तार दे सके और अपने उत्पादन तंत्र में प्राविधिक प्रगति का समावेश कर सके।

पूंजी संचय के लिए आवश्यक है कि वह पहले परिचलन से द्रव्य रूप में बेशी मूल्य का एक भाग निकाल ले, जिसे उसने उस परिचलन से प्राप्त किया था और उसे तब तक अपसंचित किये रहे कि जब तक वह इतना परिवर्धित न हो जाये कि उसके पुराने व्यवसाय को विस्तार देने अथवा कोई सहायक उद्यम शुरू करने के लिए काफ़ी हो जाये। जब तक संचय का निर्माण चालू रहता है, तब तक वह पूंजीपति की मांग में वृद्धि नहीं करता। द्रव्य गतिहीन हो जाता है। वह माल बाज़ार से पूर्ति माल के लिए निकाले गये तुल्य द्रव्य के बदले कोई तुल्य माल नहीं निकालता।

यहां साख पर विचार नहीं किया गया है। और साख में, उदाहरण के लिए, पूंजीपति द्वारा बैंक के चालू खाते में ब्याज पर जमा किया हुआ संचयमान द्रव्य शामिल होता है।

अध्याय ५

परिचलन काल[8]

हम देख चुके हैं कि उत्पादन क्षेत्र में और परिचलन क्षेत्र की दो अवस्थाओं में पूंजी की गति कालावधियों की शृंखला में होती है। उत्पादन क्षेत्र में उसके ठहराव की अवधि उसका उत्पादन काल और परिचलन क्षेत्र में बने रहने की अवधि उसका परिचलन काल होती है। अतः अपना परिपथ पूरा करने की उसकी कुल अवधि उसके उत्पादन काल तथा उसके परिचलन काल का योग होती है।

उत्पादन काल में स्वाभाविकतया श्रम प्रक्रिया की अवधि समाविष्ट होती है, किंतु वह उसमें स्वयं समाविष्ट नहीं होता। सबसे पहले यह स्मरणीय है कि स्थिर पूंजी का एक भाग श्रम के उपकरणों, जैसे मशीनों, इमारतों, आदि के रूप में विद्यमान रहता है। ये उपकरण उन्हीं, लगातार दोहराई जानेवाली श्रम प्रक्रियाओं के काम आते हैं, जब तक कि वे छीज नहीं जाते। श्रम प्रक्रिया में आनेवाले आवधिक व्यवधान, उदाहरण के लिए, रात्रि, श्रम के इन उपकरणों की कार्यशीलता विच्छिन्न करते रहते हैं, किंतु उत्पादन स्थल पर उनके बने रहने में बाधा नहीं डालते। वे जब कार्यरत होते हैं, तब, और जब कार्यरत नहीं, तब भी इसी स्थान के होते हैं। दूसरी ओर, पूंजीपति के पास कच्चे माल तथा सहायक सामग्री की एक निश्चित पूर्ति का तैयार रहना आवश्यक है, जिससे कि उत्पादन प्रक्रिया कम या अधिक समय तक बाजार से दैनिक पूर्ति की आकस्मिकताओं पर निर्भर रहे बिना पूर्वनिर्धारित पैमाने पर होती रहे। कच्चे माल, आदि की यह पूर्ति उत्पादक ढंग से क्रमशः ही उपभुक्त होती है। अतः उसके उत्पादन काल[9] में और उसकी कार्यशीलता की अवधि में अंतर होता है। इसलिए सामान्यतः उत्पादन साधनों के उत्पादन काल में ये तत्व होते हैं: १) वह समय, जिसके दौरान वे उत्पादन साधनों की तरह कार्य करते हैं और इसलिए उत्पादन प्रक्रिया में काम करते हैं; २) वे व्यवधान, जब उत्पादन प्रक्रिया विच्छिन्न हो जाती है और इस प्रकार उस प्रक्रिया में निहित उत्पादन साधनों की कार्यशीलता भी विच्छिन्न हो जाती है; ३) वह समय, जिसके दौरान वे इस प्रक्रिया की पूर्वावश्यकताओं के रूप में तैयार रखे जाते हैं, अतः वे उत्पादक पूंजी बन चुके होते हैं, किंतु उत्पादन प्रक्रिया में अभी प्रविष्ट नहीं हुए होते हैं।

---

[8] पाण्डुलिपि ४ का आरंभ। – फ़े० एं०

[9] उत्पादन काल का प्रयोग यहां सक्रिय अर्थ में है: इस प्रसंग में उत्पादन साधनों का उत्पादन काल उनके उत्पादन के लिए आवश्यक समय नहीं, वरन वह समय प्रकट करता है, जिसके दौरान किसी माल की उत्पादन प्रक्रिया में वे भाग लेते हैं। – फ़े० एं०

अभी तक जिस अंतर पर विचार किया गया है, वह प्रत्येक मामले में उत्पादक पूंजी के उत्पादन क्षेत्र में रहने और उत्पादन प्रक्रिया में रहने की कालावधियों का अंतर है। किंतु उत्पादन प्रक्रिया स्वयं श्रम प्रक्रिया में व्यवधानों का, अतः श्रम काल में व्यवधानों का कारण हो सकती है, जिन अंतरालों में श्रम का विषय मानव श्रम के और हस्तक्षेप के बिना भौतिक प्रक्रियाओं की क्रिया के अधीन रहता है। इन मामलों में उत्पादन प्रक्रिया और इस प्रकार उत्पादन साधनों की कार्यशीलता जारी रहती है, यद्यपि श्रम प्रक्रिया और इस प्रकार श्रम उपकरणों की हैसियत से उत्पादन साधनों की कार्यशीलता विच्छिन्न हो जाती है। उदाहरण के लिए, यह बात बोये जाने के बाद अनाज पर, सुरागार में किण्वित होती शराब पर, बहुत से कारखानों – जैसे चर्मशोधन कारखानों – की श्रम सामग्री पर लागू होती है, जहां यह सामग्री रासायनिक प्रक्रियाओं की क्रिया के अधीन रहती है। यहां उत्पादन काल श्रम काल से दीर्घ होता है। दोनों में अंतर श्रम काल की अपेक्षा उत्पादन काल के आधिक्य का होता है। यह आधिक्य सदैव उत्पादन क्षेत्र में उत्पादक पूंजी के अंतर्हित अस्तित्व से उत्पन्न होता है, जब वह स्वयं उत्पादन प्रक्रिया में कार्यशील नहीं होती अथवा श्रम प्रक्रिया में भाग लिये बिना उत्पादक प्रक्रिया में कार्यशील होती है।

अंतर्हित उत्पादक पूंजी का जो भाग उत्पादक प्रक्रिया की पूर्वावश्यकता के रूप में – जैसे कताई मिल में कपास, कोयला, वग़ैरह – तैयार रखा जाता है, वह न तो उत्पाद के, और न मूल्य के निर्माता की हैसियत से काम करता है। वह परती पड़ी पूंजी है, यद्यपि उसका यों परती पड़े रहना उत्पादन प्रक्रिया के अविच्छिन्न प्रवाह के लिए अनिवार्य होता है। उत्पादक पूर्ति (अंतर्हित पूंजी) के भंडारण के लिए जरूरी इमारतें, साजसामान, वग़ैरह उत्पादन प्रक्रिया के लिए आवश्यक परिस्थितियां होती हैं और इसलिए वे पेशगी उत्पादक पूंजी के संघटक अंश होती हैं। प्राथमिक मंजिल में वे अपना कार्य उत्पादक पूंजी के संघटक अंशों के संरक्षकों के रूप में करती हैं। चूंकि इस मंजिल में श्रम प्रक्रियाएं जरूरी होती हैं, इसलिए उनसे कच्चे माल, आदि के ख़र्च में इज़ाफ़ा होता है; किंतु वे उत्पादक श्रम हैं और बेशी मूल्य उत्पादित करती हैं, क्योंकि अन्य सभी उजरती श्रम की तरह श्रम के इस एक भाग के लिए पैसा नहीं दिया जाता है। समूची उत्पादन प्रक्रिया के सामान्य व्यवधान, जिन अंतरालों में उत्पादक पूंजी कार्यशील नहीं होती, न तो मूल्य निर्मित करते हैं और न बेशी मूल्य। इसलिए रात में भी काम चालू रखने की इच्छा उत्पन्न होती है (Buch I, Kap. VIII, 4)*।

श्रम के विषय को स्वयं उत्पादन प्रक्रिया के दौरान श्रम काल के जिन व्यवधानों को झेलना होता है, वे न तो मूल्य और न बेशी मूल्य निर्मित करते हैं। किंतु वे उत्पाद को आगे बढ़ाते हैं, उसके जीवन का एक भाग, ऐसी प्रक्रिया बन जाते हैं, जिससे उसे गुजरना होगा। यंत्र-सज्जा, आदि का मूल्य उस समग्र काल के अनुपात में उत्पाद में अंतरित होता है, जिसके दौरान वे अपना कार्य करते हैं। उत्पाद को इस मंजिल तक श्रम द्वारा ही लाया जाता है और इस यंत्र-सज्जा का उपयोग उत्पादन की वैसी ही शर्त है, जैसी कि कपास के एक हिस्से का धूल में बदल जाना, जो उत्पाद में प्रवेश नहीं करता, किंतु फिर भी अपना मूल्य उत्पाद में अंतरित कर देता है। अंतर्हित पूंजी का दूसरा भाग, यथा इमारतें, मशीनें, आदि, अर्थात श्रम उपकरण, जिनकी कार्यशीलता उत्पादक प्रक्रिया में नियमित विरामों द्वारा ही विच्छिन्न

---

* हिंदी संस्करण: अध्याय १०, ४। – सं०

होती है—उत्पादन पर रोक, संकटों आदि से जनित अनियमित व्यवधान पूर्ण हानि होते हैं–उत्पाद के निर्माण में शामिल हुए बिना मूल्य वृद्धि करता है। पूंजी का यह भाग उत्पाद में जिस कुल मूल्य की वृद्धि करता है, वह उसके औसत टिकाऊपन द्वारा निर्धारित होता है, जब वह अपने कार्य करता होता है और जब नहीं भी करता होता है, वह अपना मूल्य गंवाता रहता है, क्योंकि उसके उपयोग मूल्य का लोप होता है।

अंत में पूंजी के स्थिर भाग का मूल्य, जो श्रम प्रक्रिया के विच्छिन्न होने पर भी उत्पादक प्रक्रिया में बना रहता है, उत्पादक प्रक्रिया के परिणाम में फिर प्रकट होता है। स्वयं श्रम ने उत्पादन साधनों को यहां ऐसी परिस्थितियों में डाल दिया है, जिनके अंतर्गत वे ख़ुद ही कुछ नैसर्गिक प्रक्रियाओं से गुज़रते हैं, जिसका नतीजा कोई निश्चित उपयोगी परिणाम अथवा उनके उपयोग मूल्य के रूप में परिवर्तन होता है। जिस सीमा तक श्रम दरअसल उत्पादन साधनों का उपयुक्त ढंग से उपभोग करता है, वह सदैव उनका मूल्य उत्पाद में अंतरित करता है। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि यह परिणाम उत्पन्न करने के लिए श्रम को लगातार अपने विषय को श्रम उपकरणों द्वारा प्रभावित करना होता है, अथवा उत्पादन साधन जुटाकर उसे ऐसी परिस्थितियों में केवल पहली प्रेरणा देनी होती है, जिनके अंतर्गत श्रम की और सहायता के बिना नैसर्गिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप उनमें स्वतः ही उद्दिष्ट परिवर्तन संपन्न हो जाता है।

श्रम काल की तुलना में उत्पादन काल के आधिक्य का कारण जो भी हो—चाहे यह परिस्थिति हो कि उत्पादन साधन केवल अंतर्हित उत्पादक पूंजी होते हैं और इसलिए वास्तविक उत्पादक प्रक्रिया के शुरू होने से पहले की मंज़िल में होते हैं अथवा यह कि उत्पादन प्रक्रिया में उसके विरामों द्वारा उनकी स्वयं अपनी कार्यशीलता में व्यवधान पड़ता है, अथवा अंत में यह कि उत्पादन प्रक्रिया स्वयं इसे आवश्यक बना देती है कि श्रम प्रक्रिया में व्यवधान पड़ें–इनमें किसी भी स्थिति में उत्पादन साधन यों कार्य नहीं करते कि वे श्रम को आत्मसात कर लें। और यदि वे श्रम को आत्मसात नहीं करते, तो वे बेशी श्रम को भी आत्मसात नहीं करते। इसलिए उत्पादक पूंजी मूल्य का प्रसार तब तक नहीं होता, जब तक वह उत्पादन काल के उस खंड में बना रहता है, जो श्रम काल से आधिक्य में होता है, स्वप्रसार प्रक्रिया को चालू रखना इन विरामों से कितना ही अवियोज्य क्यों न हो। यह स्पष्ट है कि उत्पादन काल और श्रम काल जितना ही एक दूसरे पर फैले होते हैं, उतना ही किसी निश्चित काल खंड में, किसी निश्चित उत्पादक पूंजी का स्वप्रसार, और उसकी उत्पादिता उतना ही अधिक होती है। इसीलिए पूंजीवादी उत्पादन की यह प्रवृत्ति होती है कि श्रम काल से उत्पादन काल के आधिक्य को यथासंभव कम करे। किंतु यद्यपि किसी पूंजी का उत्पादन काल उसके श्रम काल से भिन्न हो सकता है, तथापि वह सदा उस श्रम काल को समाविष्ट करता है, और यह आधिक्य स्वयं उत्पादन प्रक्रिया की एक शर्त होता है। इसलिए उत्पादन काल सदैव वह काल होता है, जिसमें कोई पूंजी उपयोग मूल्य निर्मित करती और विस्तार पाती है, अतः उत्पादक पूंजी की हैसियत से कार्य करती है, यद्यपि उसमें वह समय भी शामिल होता है, जिसमें वह या तो अंतर्हित रहती है अथवा अपने मूल्य का प्रसार किये बिना उत्पादन करती है।

परिचलन क्षेत्र में पूंजी माल पूंजी तथा द्रव्य पूंजी की हैसियत से विद्यमान होती है। उसके परिचलन की दोनों प्रक्रियाएं उसका माल रूप से द्रव्य रूप में और द्रव्य रूप से माल रूप में रूपांतरण हैं। इस बात से कि यहां माल का द्रव्य में रूपांतरण साथ ही माल में निहित बेशी मूल्य का सिद्धिकरण भी है और द्रव्य का माल में रूपांतरण साथ ही पूंजी मूल्य का उसके

उत्पादन तत्वों के रूप में परिवर्तन अथवा पुनःपरिवर्तन है, इस में ज़रा भी अंतर नहीं आता कि ये प्रक्रियाएं परिचलन प्रक्रियाओं की हैसियत से मालों के साधारण रूपांतरण की प्रक्रियाएं हैं।

परिचलन काल और उत्पादन काल के दायरे एक दूसरे से अलग होते हैं। अपने परिचलन काल में पूंजी उत्पादक पूंजी के कार्य नहीं करती और इसलिए न माल निर्मित करती है और न ही बेशी मूल्य। यदि हम इस परिपथ का सबसे साधारण रूप लेकर उसका अध्ययन करें, यथा जब कि समग्र पूंजी मूल्य एकसाथ एक अवस्था से दूसरी में संक्रमण करता है, तो यह बात बहुत स्पष्ट दिखाई देने लगती है कि उत्पादन प्रक्रिया और इसलिए पूंजी मूल्य का स्व-प्रसार भी तब तक विच्छिन्न रहता है, जब तक उसका परिचलन काल जारी रहता है, और यह भी कि उत्पादन प्रक्रिया के नवीकरण की गति परिचलन काल की अवधि के अनुसार तीव्र अथवा मंद होगी। किंतु इसके विपरीत, यदि पूंजी के विभिन्न अंश एक के बाद एक परिपथ से गुज़रते हैं, जिससे कि समग्र पूंजी मूल्य का परिपथ उसके विभिन्न संघटक अंशों के परिपथों में क्रमशः होता है, तो यह स्पष्ट है कि उसके अशेषभाजक अंश (संखंड) जितना ही देर तक परिचलन क्षेत्र में बने रहेंगे, उतना ही उत्पादन क्षेत्र में कार्यरत भाग छोटा होगा। अतः परिचलन काल का प्रसार और संकुचन वे नकारात्मक सीमाएं हैं, जो उत्पादन काल के संकुचन अथवा उस सीमा को निर्धारित करती हैं, जिस तक किसी नियत परिमाण की पूंजी उत्पादक हैसियत से कार्य करती है। किसी पूंजी के परिचलन के रूपांतरण जितना ही अधिक केवल अधिकल्पित होते हैं, अर्थात परिचलन काल जितना ही अधिक शून्य के बराबर अथवा शून्य के निकट होता है, उतना ही पूंजी अधिक कार्यशील होती है, उतना ही उसकी उत्पादिता और उसके मूल्य के स्वप्रसार में वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई पूंजीपति ऐसा आर्डर पूरा करता है, जिसकी शर्तों के अनुसार उत्पादित माल देने पर भुगतान उसी के उत्पादन साधनों के रूप में होता है, तो परिचलन काल शून्य के निकट पहुंच जाता है।

अतः सामान्य रूप से कह सकते हैं कि पंजी का परिचलन काल उसके उत्पादन काल को और इसलिए बेशी मूल्य उत्पन्न करने की प्रक्रिया को भी सीमित करता है। और वह इस प्रक्रिया को स्वयं अपनी अवधि के अनुपात में सीमित करता है। यह अवधि काफ़ी हद तक घट-बढ़ सकती है, इसलिए वह पूंजी के उत्पादन काल को अत्यंत विभिन्न अंशों में प्रतिबंधित कर सकती है। पर राजनीतिक अर्थशास्त्र उसी चीज़ को देखता है, जो **आभासी** है, अर्थात पूंजी की सामान्यतः बेशी मूल्य का सृजन करने वाली प्रक्रिया पर परिचलन काल का प्रभाव। वह इस नकारात्मक प्रभाव को सकारात्मक मानता है, क्योंकि उसके परिणाम सकारात्मक होते हैं। वह इस आभास को इसलिए और भी मज़बूती से जकड़ लेता है कि वह इसका प्रमाण प्रदान करता प्रतीत होता है कि पूंजी के पास स्वप्रसार का एक रहस्यमय स्रोत होता है, जो उसकी उत्पादन प्रक्रिया से और इसलिए श्रम के शोषण से भी स्वतंत्र होता है। वह ऐसा स्रोत है, जो परिचलन क्षेत्र से प्रवाहित होकर उस तक आता है। हम आगे चलकर देखेंगे कि वैज्ञानिक राजनीतिक अर्थशास्त्र भी घटनाओं के इस आभासी स्वरूप से धोखे में आता रहा है। पता चलेगा कि तरह-तरह की परिघटनाएं इस आभास की पुष्टि सी करती हैं: १) लाभ के आकलन का पूंजीवादी तरीक़ा, जिसमें नकारात्मक कारण सकारात्मक बनकर आता है, क्योंकि पूंजियों के विभिन्न निवेश क्षेत्रों में होने से, जिसमें केवल परिचलन काल भिन्न-भिन्न

होते हैं, परिचलन का दीर्घतर काल क़ीमतों को बढ़ा देता है, संक्षेप में वह लाभ बराबर करने का एक कारण बन जाता है। २) परिचलन काल आवर्त काल का एक दौर मात्र होता है, किंतु इस आवर्त काल में उत्पादन काल अथवा पुनरुत्पादन काल समाविष्ट रहता है। जो बात वस्तुतः उत्पादन काल अथवा पुनरुत्पादन काल के कारण होती है, वह परिचलन काल के कारण होती जान पड़ती है। ३) मालों का परिवर्ती पूंजी (मजदूरी) में परिवर्तन उनके द्रव्य में पूर्ववर्ती परिवर्तन के कारण आवश्यक हो जाता है। अतः पूंजी के संचय में अतिरिक्त परिवर्ती पूंजी में परिवर्तन परिचलन क्षेत्र में अथवा परिचलन काल में होता है। फलतः ऐसा लगता है कि इस प्रकार प्राप्त संचय परिचलन काल के कारण ही हुआ है।

परिचलन क्षेत्र में पूंजी **मा — द्र** तथा **द्र — मा** की दो विरोधी अवस्थाओं से गुज़रती है; यह महत्वहीन है कि किस क्रम से। अतः उसका परिचलन काल भी दो हिस्सों में बंटा होता है, अर्थात माल से द्रव्य में परिवर्तन के लिए आवश्यक समय और द्रव्य से माल में परिवर्तन के लिए आवश्यक समय। माल के साधारण परिचलन के विश्लेषण से (Buch I, Kap. III)* हम पहले ही यह जान चुके हैं कि **मा — द्र**, बेचने की क्रिया, उसके रूपांतरण का सबसे कठिन भाग है, और इसलिए साधारण परिस्थितियों में वह उसके परिचलन काल का अधिकांश ले लेती है। द्रव्य की हैसियत से मूल्य सदा परिवर्तनीय रूप में विद्यमान होता है। माल की हैसियत से उसे पहले द्रव्य में परिवर्तित करना होगा, इसके पहले कि वह प्रत्यक्ष परिवर्तनीयता का यह रूप और इसलिए क्रिया के लिए निरंतर तैयार रहने का रूप धारण कर सके। फिर भी पूंजी की परिचलन प्रक्रिया में उसके **द्र — मा** दौर का संबंध उसके मालों में परिवर्तित होने से होता है, जो किसी दिये हुए उद्यम में उत्पादक पूंजी के निश्चित तत्व बन जाते हैं। हो सकता है कि बाज़ार में उत्पादन साधन सुलभ न हों और पहले उनका उत्पादन ज़रूरी हो, अथवा दूर के बाज़ारों से उन्हें प्राप्त करना हो अथवा उनकी सामान्य पूर्ति अनियमित हो गई हो या भाव बदल गया हो, संक्षेप में ये ऐसी ढेरों परिस्थितियां हैं, जो **द्र — मा** के साधारण रूप परिवर्तन में लक्षित नहीं होतीं, किंतु फिर भी उनके लिए परिचलन अवस्था के इस भाग में कभी कम, कभी ज्यादा समय दरकार होता है। **मा — द्र** और **द्र — मा** एक दूसरे से कालगत ही नहीं, स्थानिक दृष्टि से भी अलग हो सकते हैं। संभव है कि ख़रीदने के बाज़ार से बेचने का बाज़ार अलग हो। उदाहरण के लिए, कारख़ानों के मामले में, ग्राहक और विक्रेता अक्सर भिन्न व्यक्ति होते हैं। माल उत्पादन में परिचलन उतना ही आवश्यक होता है, जितना स्वयं उत्पादन; अतः परिचलन अभिकर्ता उतने ही आवश्यक होते हैं कि जितने उत्पादन अभिकर्ता। पुनरुत्पादन प्रक्रिया में पूंजी के दोनों कार्य शामिल होते हैं; इसलिए उसमें यह आवश्यकता शामिल होती है कि इन कार्यों के प्रतिनिधि या तो स्वयं पूंजीपति के रूप में अथवा उसके अभिकर्ताओं, उजरती श्रमिकों के रूप में मौजूद हों। लेकिन इससे इसका कोई आधार नहीं मिल जाता कि परिचलन अभिकर्ताओं को उत्पादन के अभिकर्ताओं के साथ उलझा दिया जाये, जैसे कि इसका भी कोई आधार नहीं मिल जाता कि माल पूंजी और द्रव्य पूंजी के कार्यों को उत्पादक पूंजी के कार्यों के साथ उलझा दिया जाये। परिचलन अभिकर्ताओं की

---

*हिंदी संस्करण: अध्याय ३।—सं०

अदायगी उत्पादन अभिकर्ताओं को ही करनी होगी, किंतु यदि पूंजीपति, जो एक दूसरे से ख़रीद-बिक्री करते हैं, इन क्रियाओं से न तो मूल्यों का, और न उत्पाद का सृजन करें, तो यह स्थिति तब नहीं बदल जायेगी कि अगर अपने व्यवसाय के परिमाण के कारण वे इस कार्य को दूसरों पर डालने के लिए समर्थ अथवा विवश हो जायें। कुछ व्यवसायों में ग्राहकों और विक्रेताओं को मुनाफ़ों पर सैकड़ेवारी भुगतान किया जाता है। इस तरह की बातों से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि भुगतान उपभोक्ता करता है। उपभोक्ता केवल इस हद तक अदायगी कर सकते हैं कि वे उत्पादन के अभिकर्ताओं की हैसियत से अपने लिए माल के रूप में समतुल्य उत्पादित करते हैं अथवा उत्पादन अभिकर्ताओं से किसी क़ानूनी अधिकार द्वारा (जैसे कि उनके सहभागीदार, आदि होने से) या व्यक्तिगत सेवाओं द्वारा वह समतुल्य प्राप्त कर लेते हैं।

मा — द्र और **द्र — मा** में एक अंतर है, जिसका माल और द्रव्य के रूपों के भेद से कोई संबंध नहीं है, वरन जो उत्पादन के पूंजीवादी स्वरूप से उत्पन्न होता है। तात्विक दृष्टि से **मा — द्र** तथा **द्र — मा** दोनों ही प्रदत्त मूल्यों का एक रूप से दूसरे में परिवर्तन मात्र हैं। किंतु **मा′ — द्र′** साथ ही उस बेशी मूल्य का सिद्धिकरण भी है, जो **मा′** में निहित है। लेकिन **द्र — मा** यह नहीं है। इसलिए ख़रीदने से बेचना ज्यादा महत्वपूर्ण है। सामान्य परिस्थितियों में **द्र — मा** ऐसी क्रिया है, जो द्र में व्यंजित मूल्य के स्वप्रसार के लिए आवश्यक है, किंतु वह बेशी मूल्य का सिद्धिकरण नहीं है; वह उसके उत्पादन की भूमिका है, उसका उपसंहार नहीं है।

माल जिस रूप में अस्तित्वमान होते हैं, उपयोग मूल्य की हैसियत से उनका अस्तित्व माल पूंजी के परिचलन **मा′ — द्र′** को निश्चित सीमाओं में बांध देता है। उपयोग मूल्य स्वभाव से ही नश्वर होते हैं। इस कारण एक निश्चित अवधि में यदि उनका उत्पादक अथवा व्यक्तिगत ढंग से उपयोग न कर लिया जाये—और यह इस पर निर्भर है कि वे किसके लिए उद्दिष्ट हैं,—दूसरे शब्दों में एक निश्चित समय के भीतर यदि उन्हें बेच न दिया जाये, तो वे क्षीण हो जाते हैं और उनके उपयोग मूल्य के साथ उनकी विनिमय मूल्य के वाहक बनने की क्षमता भी नष्ट हो जाती है। उनमें समाहित पूंजी मूल्य की, अतः उसमें परिवर्धित बेशी मूल्य की भी क्षति होती है। उपयोग मूल्य निरंतर स्वप्रसारवान पूंजी मूल्य के वाहक तब तक नहीं होते, जब तक उनका निरंतर नवीकरण और पुनरुत्पादन न हो, उनकी उसी अथवा किसी अन्य कोटि के नये उपयोग मूल्यों द्वारा प्रतिस्थापना न हो। किंतु तैयार माल के रूप में उपयोग मूल्यों की बिक्री और इस प्रकार इस बिक्री द्वारा संपन्न उत्पादक अथवा व्यक्तिगत उपयोग में उनका प्रवेश उनके पुनरुत्पादन की नित्य प्रत्यावर्ती शर्त है। नये उपयोग रूप में अपना अस्तित्व चालू रखने के लिए उन्हें निश्चित समय के भीतर अपना पुराना उपयोग रूप बदलना होगा। विनिमय मूल्य अपने ढांचे के इस निरंतर नवीकरण द्वारा ही अपने को बनाये रखता है। विभिन्न मालों के उपयोग मूल्य देर सबेर क्षीण हो जाते हैं; इसलिए उनके उत्पादन और उपभोग का अंतराल अपेक्षाकृत अल्प अथवा दीर्घ हो सकता है; इसलिए वे क्षीण हुए बिना परिचलन की अवस्था **मा — द्र** में अल्पाधिक अवधि तक माल पूंजी के रूप में बने रह सकते हैं, मालों की हैसियत से परिचलन के अल्पाधिक काल को झेल सकते हैं। माल के ढांचे के क्षीण होने से माल पूंजी के परिचलन काल पर लगनेवाली सीमा परिचलन काल के इस भाग की अथवा

स्वयं माल पूंजी के ही परिचलन काल की निरपेक्ष सीमा है। कोई माल जितना ही नाशवान होता है और इसलिए उत्पादन के बाद जितना ही जल्दी उसका उपभोग, अतः उसकी बिक्री करना आवश्यक होता है, उतना ही उसके उत्पादन स्थल से उसके हटाये जाने की क्षमता सीमित होती है; अतः उसके परिचलन का स्थानिक दायरा जितना ही संकुचित होता है, उसके बेचे जा सकनेवाले बाज़ार भी उतने ही स्थानबद्ध होते हैं। इस कारण कोई माल जितना ही नाशवान होता है, और उसकी भौतिक विशेषताओं के कारण पण्य वस्तु की हैसियत से उसके परिचलन काल पर निरपेक्ष परिसीमन जितना ही अधिक होता है, उतना ही पूंजीवादी उत्पादन का विषय बनने की उसकी अनुकूलता कम होती है। ऐसा माल घनी आबादीवाले इलाक़ों में ही अथवा परिवहन की सुविधाएं जहां तक दूरी को कम कर देती हों, वहीं तक पूंजीवादी उत्पादन की सीमाओं में आता है। किसी भी पण्य वस्तु के उत्पादन का कुछ ही लोगों के हाथों में और किसी घनी आबादीवाले इलाक़े में संकेन्द्रण ऐसी चीज़ों, जैसे कि शराब के बड़े कारख़ानों, बड़ी डेयरियों, आदि के उत्पादों के लिए भी अपेक्षाकृत बड़ा बाज़ार पैदा कर सकता है।

अध्याय ६

परिचलन की लागत

१. परिचलन की विशुद्ध लागत

१) क्रय-विक्रय काल

माल से द्रव्य रूप में और द्रव्य से माल रूप में पूंजी के रूप परिवर्तन साथ ही पूंजीपति के सौदे, क्रय-विक्रय की क्रियाएं भी होते हैं। रूपों के ये परिवर्तन जितने समय में घटित होते हैं, वह आत्मगत दृष्टि से, पूंजीपति के दृष्टिकोण से क्रय-विक्रय काल होता है। यह वह समय होता है, जिसके दौरान वह बाज़ार में ग्राहक और विक्रेता के कार्य करता है। ठीक जैसे पूंजी का परिचलन काल उसके पुनरुत्पादन काल का एक आवश्यक खंड होता है, वैसे ही जितने समय में पूंजीपति क्रय-विक्रय करता है और बाज़ार छानता है, वह समय उस काल का आवश्यक खंड होता है, जिसमें वह पूंजीपति की, अर्थात साकार पूंजी की हैसियत से कार्य करता है। यह उसके व्यवसाय काल का एक हिस्सा है।

[चूंकि हमने यह मान लिया है कि मालों का क्रय-विक्रय उनके मूल्यों पर ही होता है, इसलिए ये क्रियाएं किसी मूल्य का एक रूप से दूसरे रूप में, माल रूप से द्रव्य रूप में, अथवा द्रव्य रूप से माल रूप में परिवर्तन मात्र हैं – उनके अस्तित्व की अवस्था में एक परिवर्तन हैं। माल अपने मूल्य पर बेचे जायें, तो ग्राहक और विक्रेता के हाथ में मूल्य परिमाण अपरिवर्तित रहते हैं। केवल मूल्य के अस्तित्व का रूप बदलता है। यदि माल अपने मूल्य पर न बेचे जायें, तो बदले हुए मूल्यों का योग अपरिवर्तित रहता है, एक तरफ़ जो जोड़ा जाता है, वह दूसरी तरफ़ घटा दिया जाता है।

मा – द्र और द्र – मा के रूपान्तरण ग्राहकों और विक्रेताओं के बीच के लेन-देन हैं। सौदा करने के लिए उन्हें वक़्त चाहिए, इसलिए और भी कि एक संघर्ष जारी रहता है, जिसमें प्रत्येक दूसरे से बाज़ी मारने की कोशिश करता है और यहां व्यवसायी लोग ही एक दूसरे के मुक़ाबले में होते हैं, और "जब यूनानी यूनानी के सामने आता है, तो रस्साकशी शुरू हो जाती है"*। अस्तित्व की अवस्था बदलने में समय लगता है और श्रम शक्ति लगती है, किन्तु यह सब मूल्य निर्माण के लिए नहीं होता, वरन मूल्य को एक रूप से दूसरे में बदलने के लिए होता है। इस अवसर पर इस मूल्य का एक अतिरिक्त टुकड़ा हथिया लेने के परस्पर प्रयत्न से स्थिति में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। दोनों ही पक्षों की कुटिल योजनाओं से बढ़ा यह श्रम किसी

---

* नेथिनियेल ली कृत सत्रहवीं शताब्दी के दुखांतक नाटक *The Rival Queens, or the Death of Alexander the Great* से लिये शब्दों का पदान्वय । – सं०

मूल्य का सृजन नहीं करता, जैसे अदालती कार्रवाई के दौरान जो कुछ किया जाता है, उससे मुक़दमे के विषय का मूल्य नहीं बढ़ जाता। इस श्रम की, जो समूचे तौर पर पूंजीवादी उत्पादन का आवश्यक तत्व होता है, जिसमें परिचलन भी सम्मिलित होता है, अथवा वह स्वयं उसमें समाविष्ट होता है, स्थिति वैसी ही होती है, जैसे ऊष्मा उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त किसी पदार्थ के दहन के कार्य की होती है। दहन का यह कार्य कोई ऊष्मा उत्पन्न नहीं करता, यद्यपि दहन की प्रक्रिया में वह एक आवश्यक तत्व है। यथा ईंधन के रूप में कोयले का उपयोग करने के लिए मुझे उसका आक्सीजन से संयोग कराना होगा और इसके लिए ठोस अवस्था से गैस अवस्था में उसे बदलना होगा (क्योंकि कार्बोनिक अम्ल गैस में, जो दहन का परिणाम है, कोयला गैसीय अवस्था में होता है)। फलतः मुझे उसके अस्तित्व के रूप में अथवा उसके अस्तित्व की अवस्था में भौतिक परिवर्तन लाना होगा। नये संयोग से पहले ठोस संहति में संयुक्त कार्बन अणुओं का वियोजन और इन अणुओं का उनके पृथक परमाणुओं में विदारण होना आवश्यक है और इसके लिए ऊर्जा का एक निश्चित व्यय आवश्यक है, जो इस प्रकार ऊष्मा में परिवर्तित नहीं होती, वरन उससे ली जाती है। इसलिए यदि मालों के मालिक पूंजीपति न हों, वरन स्वतंत्र प्रत्यक्ष उत्पादक हों, तो क्रय-विक्रय में जो वक़्त ख़र्च होता है, वह उनके श्रम काल का ह्रास है और इस कारण (प्राचीन तथा मध्यकाल में भी) ऐसे लेन-देन छुट्टियों में करने के लिए मुल्तवी कर दिये जाते थे।

निस्संदेह पूंजीपतियों के हाथों में माल परिवर्तन द्वारा गृहीत आयाम इस श्रम को – जो किसी मूल्य का सृजन नहीं करता, वरन मूल्य के रूप परिवर्तन का साधन मात्र है – मूल्य उत्पादक श्रम में नहीं बदल सकता। तत्वांतरण का यह चमत्कार स्थानान्तरण द्वारा, यानी इस बात से भी नहीं हो सकता कि औद्योगिक पूंजीपति अपने इस "दहन कार्य" को ख़ुद करने के बदले उसे पूर्णतः अन्य व्यक्तियों का व्यवसाय बना दें, जिन्हें वे इसके लिए पैसा देते हैं। बेशक ये अन्य व्यक्ति पूंजीपतियों से केवल प्रेम होने के कारण उन्हें अपनी श्रम शक्ति अर्पित न कर देंगे। स्थावर संपदा के मालिक के किराया वसूलनेवाले अथवा बैंक के हरकारे के लिए यह बात क़तई दिलचस्पी की नहीं है कि उसके श्रम से किराये में अथवा दूसरे बैंक को थैलों में भर ले जाये जानेवाले सोने के टुकड़ों में रत्ती भर भी वृद्धि नहीं होती है।][10]

पूंजीपति के लिए, जो दूसरों से काम कराता है, क्रय-विक्रय प्राथमिक कार्य बन जाता है। चूंकि वह बड़े सामाजिक पैमाने पर बहुतों के उत्पाद को हस्तगत करता है, इसलिए उसके वास्ते उसे उसी पैमाने पर बेचना और फिर द्रव्य से उत्पादन तत्वों में पुनःपरिवर्तित करना ज़रूरी होता है। पहले की तरह यहां भी न तो क्रय काल से किसी मूल्य का निर्माण होता है, न विक्रय काल से। व्यापारी की पूंजी के कार्य से एक भ्रांति पैदा हो जाती है। किंतु यहां इस पर विस्तार से विचार किये बिना इतना तो शुरू से स्पष्ट है: यदि श्रम विभाजन से कोई कार्य, जो स्वयं में अनुत्पादक है, यद्यपि पुनरुत्पादन का आवश्यक तत्व है, इस तरह बदल जाता है कि वह बहुतों का प्रासंगिक व्यवसाय न रहकर कुछ लोगों का विशिष्ट व्यवसाय, उनका अपना विशेष कारोबार बन जाये, तो इससे स्वयं उस कार्य की प्रकृति नहीं बदल जाती। एक व्यापारी (जिसे यहां अभिकर्ता मात्र माना गया है, जो मालों का रूप परिवर्तन

[10] कोष्ठकों के भीतर का भाग एक टिप्पणी से लिया गया है, जो पाण्डुलिपि ८ के अन्त में है। – फ़्रे० एं०

कराता है, मात्र ग्राहक और विक्रेता है) अपनी कार्यवाही से बहुत से उत्पादकों के लिए क्रय-विक्रय काल घटा सकता है। ऐसे प्रसंग में उसे एक मशीन माना जाना चाहिए, जो ऊर्जा का अपव्यय घटाती है, अथवा उत्पादन काल को मुक्त करने में सहायक होती है।[11]

विषय को सरल रूप देने के लिए (क्योंकि हम व्यापारी पर पूंजीपति की हैसियत से और व्यापारी पूंजी पर आगे चलकर विचार करेंगे) हम यह मान लेंगे कि यह क्रय-विक्रय अभिकर्ता ऐसा आदमी है, जो अपना श्रम बेचता है। वह अपनी श्रम शक्ति और श्रम काल **मा — द्र** और **द्र — मा** क्रियाओं में व्यय करता है। और वह इसी तरह अपनी रोजी कमाता है, जैसे कोई दूसरा आदमी कताई करके या गोलियां बनाकर अपनी रोजी कमाता है। वह एक आवश्यक कार्य सम्पन्न करता है, क्योंकि स्वयं पुनरुत्पादन प्रक्रिया में अनुत्पादक कार्य सम्मिलित होते हैं। वह वैसे ही काम करता है, जैसे कोई और आदमी काम करता है, किन्तु तत्वतः उसका श्रम न तो मूल्य का सृजन करता है, और न उत्पाद का। वह स्वयं उत्पादन के faux frais [अनुत्पादक व्यय] का अंश होता है। उसकी उपयोगिता एक अनुत्पादक कार्य को उत्पादक कार्य में या अनुत्पादक श्रम को उत्पादक श्रम में परिणत करना नहीं है। यदि ऐसा रूपान्तरण केवल कार्य के बदलने से सम्पन्न हो जाये, तो यह एक चमत्कार होगा। बल्कि उसकी उपयोगिता इसमें है कि इस अनुत्पादक कार्य में समाज की श्रम शक्ति और श्रम काल का अपेक्षाकृत अल्प भाग ही लगा रहता है। यही नहीं। हम मान लेंगे कि वह केवल उजरती श्रमिक है, बल्कि अच्छी मजदूरी पानेवालों में ही है, क्योंकि इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। उसकी मजदूरी जो भी हो, उजरती श्रमिक की हैसियत से वह अपने समय के एक अंश में जो काम करता है, उसके लिए उसे कुछ भी नहीं मिलता। वह प्रतिदिन आठ कार्य घण्टे के उत्पाद का मूल्य पा सकता है, फिर भी वह कार्य दस घण्टे ही करता है। किन्तु बेशी श्रम के दो घण्टों में वह जो कुछ करता है, उससे वैसे ही किसी मूल्य का निर्माण नहीं होता, जैसे आवश्यक श्रम के उसके आठ घण्टों के काम से, यद्यपि आठ घण्टों के काम के द्वारा सामाजिक उत्पाद का एक हिस्सा उसे अंतरित हो जाता है। पहली बात, सामाजिक दृष्टिकोण से इस पर विचार करें, तो श्रम शक्ति अब भी पहले की तरह दस घण्टे केवल परिचलन कार्य में प्रयुक्त होती है। वह किसी और चीज के लिए, उत्पादक श्रम के

---

[11] "यद्यपि व्यापार की लागत आवश्यक होती है, फिर भी उसे दुःसह परिव्यय ही समझना चाहिए।" (Quesnay, *Analyse du Tableau Economique*, in Daire, *Physiocrates*, Part I, Paris, 1846, p. 71.) केने के अनुसार व्यापारियों की आपसी होड़ जो "मुनाफ़ा" पैदा करती है, क्योंकि वह उन्हें "कुछ कम पुरस्कार या फ़ायदे से सन्तोष" करने के लिए बाध्य करती है, वह "सही अर्थों में प्रत्यक्षतः विक्रेता के लिए तथा ग्राहक उपभोक्ता के लिए **हानि निवारण** (*privation de perte*) के अलावा और कुछ नहीं है। लेकिन वाणिज्य की लागत में हानि का निवारण अगर उसे केवल विनिमय के रूप में — परिवहन की लागत सहित या उसके बिना — देखा जाये, तो वह कोई **विशुद्ध उत्पाद** या वाणिज्य द्वारा धन की वृद्धि नहीं है" (पृष्ठ १४५ और १४६)। "वाणिज्य की लागत हमेशा वे लोग चुकाते हैं, जो उत्पाद बेचते हैं और — अगर मध्यवर्ती ख़र्च न हों, तो — जो उनके लिए ग्राहकों द्वारा दी पूरी क़ीमतों का उपभोग करेंगे" (पृष्ठ १६३)। मालिक और उत्पादक "*salariants*" (भृतिदाता) हैं, व्यापारी "*salariés*" (भृतिआदाता) हैं। (P. 164, Quesnay, *Dialogues sur le Commerce et sur les Travaux des Artisans*. In Daire, *Physiocrates*, Part I, Paris, 1846.)

लिए प्रयुक्त नहीं हो सकती। दूसरे, समाज बेशी श्रम के इन दो घण्टों के लिए भुगतान नहीं करता, हालांकि इस श्रम को करनेवाला व्यक्ति यह समय ख़र्च करता है। इससे समाज किसी अतिरिक्त उत्पाद अथवा अतिरिक्त मूल्य को हस्तगत नहीं करता। किन्तु परिचलन की जो लागत श्रमिक व्यक्त करता है, वह पंचमांश कम हो जाती है, दस से घटकर आठ घण्टे हो जाती है। समाज परिचलन के सक्रिय काल के इस पंचमांश का, जिसका वह अभिकर्ता है, कोई समतुल्य नहीं देता। किन्तु यदि इस व्यक्ति से कोई पूंजीपति काम कराता हो, तो इन दो घण्टों के लिए भुगतान न करने से उसकी पूंजी की परिचलन लागत कम हो जायेगी, जो उसकी आमदनी में कटौती है। पूंजीपति के लिए यह निश्चित फ़ायदा है, क्योंकि उसके पूंजी मूल्य के स्वप्रसार की नकारात्मक सीमा इस तरह घट जाती है। जब तक मालों के छोटे स्वतन्त्र उत्पादक अपने ही समय का एक हिस्सा क्रय-विक्रय में ख़र्च करते हैं, तब तक यह उनके उत्पादक कार्य के बीच अन्तरालों में ख़र्च किये जानेवाले समय अथवा उनके उत्पादन काल के ह्रासन के अलावा और कुछ नहीं होता।

जो भी हो, इस प्रयोजन के लिए जो भी समय व्यय होता है, वह परिचलन की लागत में आता है, जिससे परिवर्तित मूल्यों में कोई वृद्धि नहीं होती। यह उन्हें माल रूप से द्रव्य रूप में परिवर्तित करने की लागत है। परिचलन अभिकर्ता की हैसियत से काम करनेवाला मालों का पूंजीवादी उत्पादक मालों के प्रत्यक्ष उत्पादक से केवल इस बात में भिन्न होता है कि वह बेचने-ख़रीदने का काम और बड़े पैमाने पर करता है और इसलिए ऐसे अभिकर्ता की हैसियत से उसके कार्य के आयाम और बड़े हो जाते हैं। यदि उसके व्यवसाय का परिमाण उसे बाध्य करे या इसके योग्य बना दे कि वह अपने ही परिचलन अभिकर्ता ख़रीद (पारिश्रमिक पर रख) सके, तो इससे मामले के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। श्रम शक्ति और श्रम काल की कुछ मात्रा परिचलन प्रक्रिया में ख़र्च करनी ही होगी (जहां तक कि यह प्रक्रिया रूप का परिवर्तन मात्र है)। किन्तु अब यह पूंजी के अतिरिक्त निवेश के रूप में प्रकट होती है। परिवर्ती पूंजी का एक भाग इस श्रम शक्ति को ख़रीदने में लगाना ही होगा, जो केवल परिचलन में कार्यशील होती है। पूंजी की इस पेशगी से न तो उत्पाद का निर्माण होता है, न मूल्य का। जिन आयामों में पेशगी पूंजी उत्पादक रूप से कार्य करती है, उन्हें वह pro tanto [तत्प्रमाणे] घटा देती है। ऐसा होता है, मानो उत्पाद का एक हिस्सा मशीन में बदल गया हो, जो शेष उत्पाद को बेचती और ख़रीदती हो। यह मशीन उत्पाद में कमी लाती है। वह उत्पादक प्रक्रिया में भाग नहीं लेती, यद्यपि परिचलन में व्यय होनेवाली श्रम शक्ति, आदि में वह कमी कर सकती है। वह परिचलन की लागत का अंश मात्र होती है।

२) लेखाकरण

वास्तविक क्रय-विक्रय के अलावा श्रम काल लेखाकरण के काम में ख़र्च होता है, जिसमें इसके अलावा क़लम, स्याही, काग़ज़, मेज़, दफ़्तरी साजसामान जैसे श्रम के मूर्त रूप भी खपते हैं। अतः यह कार्य एक ओर श्रम शक्ति का व्यय आवश्यक बनाता है और दूसरी ओर उत्पादन साधनों का। यह स्थिति वैसी ही है, जैसी क्रय-विक्रय काल के प्रसंग में देखी जाती है।

अपने परिपथों की एकान्विति की हैसियत से, गतिशील मूल्य की हैसियत से – फिर वह चाहे उत्पादन के क्षेत्र में हो, चाहे परिचलन क्षेत्र की किसी एक अवस्था में हो – अधिकल्पित

रूप में पूंजी केवल लेखा मुद्रा के रूप में मुख्यत: मालों के उत्पादक के, मालों के पूंजीवादी उत्पादक के मन में ही अस्तित्वमान होती है। यह गति लेखाकरण द्वारा नियत तथा नियन्त्रित की जाती है, जिसमें क़ीमतों का निर्धारण अथवा मालों की क़ीमतों का आकलन शामिल होता है। उत्पादन की गति, विशेषत: बेशी मूल्य के उत्पादन की गति – जिसमें, माल मूल्य के निधान की तरह, चीज़ों के नामों की तरह ही सामने आते हैं, जिनका मूल्यों की हैसियत से अधिकल्पित अस्तित्व लेखा मुद्रा के रूप में मूर्त होता है, – इस प्रकार प्रतीकरूपेण कल्पना में प्रतिबिम्बित होती है। जब तक मालों का वैयक्तिक उत्पादक हिसाब-किताब अपने मन में ही रखता है (उदाहरण के लिए, किसान; पूंजीवादी कृषि के अभ्युदय से पहले खाता रखनेवाले असामी-काश्तकार का जन्म नहीं हुआ था) अथवा अपने ख़र्चों, प्राप्तियों, अदायगी की तारीख़ों, आदि का हिसाब वह अपने उत्पादन काल के बाहर, केवल प्रासंगिक रूप में रखता है, यह एकदम स्पष्ट है कि यह कार्य, और उसके द्वारा उपभुक्त श्रम के उपकरण, जैसे काग़ज़ आदि, श्रम काल और उपकरणों का अतिरिक्त उपभोग प्रकट करते हैं, जो आवश्यक तो हैं, किन्तु जो उत्पादक उपभोग के लिए उपलब्ध समय और उन श्रम उपकरणों में भी कटौती प्रकट करते हैं, जो उत्पादन की वास्तविक प्रक्रिया में कार्य करते हैं, उत्पाद और मूल्य के सृजन में शामिल होते हैं।[12] इस कार्य के स्वरूप में परिवर्तन नहीं होता – न तो स्वयं पूंजीवादी उत्पादक के हाथों में केन्द्रित होने से उसके द्वारा ग्रहण किये आयाम से और न इस बात से कि बहुत से छोटे माल उत्पादकों के कार्य की हैसियत से प्रकट होने के बदले वह एक पूंजीपति के कार्य की हैसियत से, बड़े पैमाने के उत्पादन की प्रक्रिया के भीतर कार्य की हैसियत से प्रकट होता है; न उन उत्पादक कार्यों से, जिनका वह उपांग था, अलग होने पर और न ही उसके विशेष अभिकर्ताओं के, जिन्हें वह अनन्य रूप में सौंपा गया है, स्वतंत्र कार्य में बदल जाने से उसके स्वरूप में परिवर्तन आता है।

श्रम के विभाजन से और स्वतंत्र हो जाने से कोई कार्य उत्पाद और मूल्य का निर्माता नहीं हो जाता, बशर्ते कि वह आन्तरिक रूप में पहले से, अत: स्वतंत्र होने के पहले से ऐसा न रहा हो। अगर पूंजीपति अपनी पूंजी नये सिरे से लगाता है, तो उसका एक हिस्सा उसे भाड़े पर लेखापाल, आदि रखने के लिए और लेखाकरण के साधनों पर लगाना होगा। अगर उसकी पूंजी पहले से कार्यशील हो, स्वयं के निरन्तर पुनरुत्पादन की प्रक्रिया में संलग्न हो, तो उसे लगातार अपने उत्पाद के एक हिस्से को लेखापाल, क्लर्क, वग़ैरह के रूप में उस भाग को द्रव्य में बदलकर पुन:परिवर्तित करना होगा। उसकी पूंजी का वह भाग उत्पादन

---

[12] मध्यकाल में कृषि का हिसाब रखने की प्रथा केवल मठों में देखने में आती है। लेकिन हम देख चुके हैं (Buch I, p. 343 [हिन्दी संस्करण: पृष्ठ ४०४। – सं०]) कि आदिम भारतीय समुदायों के युग में भी कृषि का हिसाब रखने ही के लिए पटवारी होता था। वहां हिसाब का काम एक सामुदायिक कर्मचारी का स्वतंत्र और अनन्य कार्य बना दिया गया है। श्रम के इस विभाजन से समय, श्रम और धन की बचत होती है, किन्तु उत्पादन क्षेत्र में उत्पादन और लेखाकरण वैसे ही दो भिन्न चीज़ें रहते हैं, जैसे जहाज़ पर लदा माल और लदाई का बिल। पटवारी के रूप में समुदाय की श्रम शक्ति का एक भाग उत्पादन से खींच लिया जाता है, और उसके कार्य की लागत की पूर्ति उसके अपने श्रम से नहीं, वरन सामुदायिक उत्पाद में कटौती से की जाती है। भारतीय समुदाय के पटवारी के बारे में जो बात सही है, वह पूंजीपति के लेखापाल के लिए भी mutatis mutandis [यथापरिवर्तनसहित] सही है। (पाण्डुलिपि २ से।)

प्रक्रिया से निकाल लिया जाता है और परिचलन लागत में कुल प्राप्ति से कटौती (जिसमें स्वयं वह श्रम शक्ति भी शामिल है, जो इसी कार्य के लिए व्यय की जाती है) में आ जाता है।

लेकिन एक ओर लेखाकरण की प्रासंगिक लागत अथवा श्रम काल के अनुत्पादक व्यय, और दूसरी ओर क्रय-विक्रय काल मात्र की लागत में कुछ फ़र्क़ है। अंतोक्त उत्पादन प्रक्रिया के निश्चित सामाजिक रूप से, इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि वह मालों के उत्पादन की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का नियामक और अधिकल्पित संश्लेषण होने के कारण लेखाकरण उतना ही अधिक आवश्यक होता जाता है, जितना यह प्रक्रिया सामाजिक पैमाना ग्रहण करती जाती है और अपना विशुद्ध वैयक्तिक स्वरूप गंवाती जाती है। इसलिए वह कृषक अर्थतंत्र और दस्तकारी के बिखरे हुए उत्पादन की अपेक्षा पूंजीवादी उत्पादन में और पूंजीवादी उत्पादन की अपेक्षा सामाजिक उत्पादन में और भी आवश्यक है। पर जैसे-जैसे उत्पादन का केन्द्रीकरण होता है और लेखाकरण कार्य सामाजिक होता जाता है, वैसे-वैसे लेखाकरण की लागत भी कम होती जाती है।

यहां हमारा सिर्फ़ परिचलन लागत के सामान्य स्वरूप से ही सरोकार है, जो केवल रूपों के परिवर्तन से उत्पन्न होती है। यहां उसके सभी रूपों पर विस्तार से विचार करना अनावश्यक है। किन्तु ऐसे रूप, जो मूल्य रूप के विशुद्ध परिवर्तनों के क्षेत्र से सम्बद्ध हैं और इसलिए जो उत्पादन प्रक्रिया के विशिष्ट सामाजिक रूप से उत्पन्न होते हैं, जो वैयक्तिक माल उत्पादक के मामले में केवल अस्थायी, कठिनाई से बोधगम्य तत्व होते हैं, और उसके उत्पादक कार्यों के साथ-साथ चलते हैं या उनके साथ अंतर्ग्रंथित हो जाते हैं, – ये परिचलन की भारी लागतों की तरह क्योंकर दिखाई दे सकते हैं, यह सब उस समय लिये गये और चुकाये गये धन से ही देखा जा सकता है, जब ये क्रियाएं स्वतंत्र और बैंकों, आदि के अथवा पृथक व्यवसायों में ख़ज़ांचियों के अनन्य कार्य के रूप में संकेंद्रित हो चुकी होती हैं। पर यह बात ध्यान में जमाकर रखनी चाहिए कि परिचलन की इस लागत का स्वरूप उसकी बाह्याकृति के परिवर्तन से बदल नहीं जाता।

३) द्रव्य

किसी उत्पाद का निर्माण माल के रूप में हो या न हो, वह सदा धन का एक भौतिक रूप, वैयक्तिक अथवा उत्पादक उपभोग के लिए उद्दिष्ट एक उपयोग मूल्य होता है। माल की हैसियत से उसका मूल्य अधिकल्पित रूप में उसकी क़ीमत में प्रकट होता है, जो उसके वास्तविक उपयोग रूप में ज़रा भी परिवर्तन नहीं करती। किन्तु यह तथ्य कि सोना और चांदी जैसे कुछ माल द्रव्य का काम करते हैं और इस हैसियत से वे अनन्यतः परिचलन प्रक्रिया में ही रहते हैं (अपसंचय, आरक्षित निधि, आदि के रूप में भी वे परिचलन क्षेत्र में ही रहते हैं, यद्यपि अंतर्हित रूप में), उत्पादन प्रक्रिया के, मालों की उत्पादन प्रक्रिया के एक विशेष सामाजिक रूप का विशुद्ध उत्पाद है। पूंजीवादी उत्पादन में चूंकि उत्पाद मालों का सामान्य रूप धरते हैं और उत्पादों के विपुल बहुलांश का निर्माण माल रूप में होता है और इसलिए उन्हें द्रव्य रूप ग्रहण करना होता है और चूंकि मालों का बहुलांश, सामाजिक संपदा का माल रूप में कार्यशील भाग निरन्तर बढ़ता जाता है, इसलिए परिचलन साधनों, भुगतान के माध्यम,

आरक्षित निधि, आदि के रूप में कार्यशील सोने-चांदी की मात्रा भी इसी प्रकार बढ़ती जाती है। द्रव्य का कार्य करनेवाले ये माल न तो वैयक्तिक और न उत्पादक उपभोग में प्रवेश करते हैं। वे ऐसे रूप में स्थिर सामाजिक श्रम व्यक्त करते हैं, जिसमें वह केवल परिचलन यंत्र का काम करता है। इस बात के अलावा कि सामाजिक संपदा के एक भाग के लिए यह अनुत्पादक रूप धारण करना नियत हो गया है, द्रव्य की घिसाई उसका निरन्तर प्रतिस्थापित अथवा उत्पाद के रूप में और अधिक सामाजिक श्रम के और अधिक सोने-चांदी में परिवर्तित किया जाना आवश्यक बना देती है। पूंजीवादी दृष्टि .से विकसित राष्ट्रों में ऐसी प्रतिस्थापन लागत काफ़ी बड़ी है, क्योंकि सामान्यतः संपदा का वह भाग, जो द्रव्य रूप में बंध जाता है, बहुत विशाल होता है। द्रव्य माल की हैसियत से समाज के लिए सोने-चांदी का अर्थ है परिचलन लागत, जो एकमात्र उत्पादन के सामाजिक रूप से उत्पन्न होती है। यह सामान्य माल उत्पादन का faux frais [अनुत्पादक व्यय] है, और इस उत्पादन के विकास के साथ, ख़ास तौर से पूंजीवादी उत्पादन के विकास के साथ उसमें वृद्धि होती जाती है। वह सामाजिक संपदा का ऐसा भाग व्यक्त करती है, जिसे परिचलन प्रक्रिया के लिए बलि करना होता है।[13]

२. भंडारण लागत

अधिकल्पित रूप में लेने पर मूल्य के रूप परिवर्तन मात्र से परिचलन में पैदा होनेवाली परिचलन लागत मालों के मूल्य में शामिल नहीं होती। जहां तक पूंजीपति का सम्बन्ध है, पूंजी के ऐसी लागत के रूप में ख़र्च किये गये भाग उत्पादक ढंग से व्यय की गई पूंजी से कटौती मात्र होते हैं। परिचलन की जिस लागत पर हम अब विचार करेंगे, उसका स्वरूप दूसरा है। वह उत्पादन की ऐसी प्रक्रियाओं से उत्पन्न हो सकती है, जो परिचलन में जारी रहती हैं, इसलिए जिनका उत्पादक स्वरूप परिचलन रूप द्वारा आच्छादित मात्र रहता है। दूसरी ओर, समाज के दृष्टिकोण से वह मात्र लागत, सजीव अथवा मूर्त श्रम का अनुत्पादक व्यय हो सकती है, किन्तु इसी कारण वैयक्तिक पूंजीपति के लिए वह मूल्य की उत्पादक हो सकती है, उसके मालों के विक्रय मूल्य में वृद्धि बन सकती है। यह बात इस तथ्य के फलस्वरूप पहले ही प्रकट हो जाती है कि यह लागत उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग होती है, और जहां-तहां एक ही उत्पादन क्षेत्र में विभिन्न वैयक्तिक पूंजियों के लिए भी अलग-अलग होती है। मालों की क़ीमत में जोड़े जाने पर वह उस राशि के अनुपात में बंट जाती है, जिसे प्रत्येक वैयक्तिक पूंजीपति वहन करेगा। किन्तु वह सभी श्रम, जो मूल्य जोड़ देता है, बेशी मूल्य भी जोड़ सकता है और पूंजीवादी उत्पादन में वह सदैव बेशी मूल्य जोड़ेगा, क्योंकि श्रम निर्मित मूल्य स्वयं उस श्रम के परिमाण पर निर्भर होता है, जब कि उस श्रम द्वारा सृजित बेशी मूल्य उसके लिए पूंजीपति जहां तक पैसा देता है, उस पर निर्भर करता है। फलतः जो लागत किसी माल

---

[13] "किसी भी देश में जो मुद्रा परिचलन में होती है, वह उस देश की पूंजी का ऐसा भाग होती है, जिसे उत्पादक उद्देश्यों में पूर्णतः हटा लिया जाता है, जिससे कि शेष पूंजी की उत्पादिता सुगम हो या बढ़े। इसलिए संपदा की एक मात्रा सोने को परिचलन का माध्यम बनाने के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना कि अन्य किसी भी उत्पादन को सुगम बनाने के लिए किसी मशीन का बनाया जाना।" (*Economist*, खंड ५, पृष्ठ ५२०।)

का उपयोग मूल्य बढ़ाये बिना उसकी क़ीमत बढ़ाती है, इसलिए जिसे जहां तक समाज का सम्बन्ध है, faux frais की कोटि में रखना होगा, वह किसी अलग पूंजीपति के लिए समृद्धि का स्रोत हो सकती है। दूसरी ओर, चूंकि माल की क़ीमत में यह वृद्धि परिचलन लागत महज़ बराबर बांट देती है, इसलिए उसका अनुत्पादक स्वरूप ख़त्म नहीं हो जाता। उदाहरण के लिए, बीमा कम्पनियां अलग-अलग पूंजीपतियों का घाटा पूंजीपति वर्ग में बांट देती हैं। किन्तु समान रूप में बांटे जाने से ऐसा नहीं हो जाता कि जहां तक कुल सामाजिक पूंजी का सम्बन्ध है, उसे घाटा न माना जाये।

१) पूर्ति का सामान्यतः निर्माण

माल पूंजी के रूप में अपने अस्तित्व काल में अथवा बाज़ार में बने रहने की अवधि में, दूसरे शब्दों में, जिस उत्पादन प्रक्रिया से वह निकलती है और जिस उपभोग प्रक्रिया में वह प्रवेश करती है, इन दोनों के अन्तराल में उत्पाद माल पूर्ति रहता है। बाज़ार में माल की तरह और इसलिए पूर्ति की शकल में माल पूंजी प्रत्येक परिपथ में दोहरी हैसियत से प्रकट होती है – एक बार उस पूंजी के माल उत्पाद की तरह जो प्रक्रिया में है और जिसके परिपथ का परीक्षण किया जा रहा है; किन्तु दूसरी बार किसी अन्य पूंजी के माल उत्पाद की तरह, जिसे बाज़ार में ख़रीदे जाने और उत्पादक पूंजी में परिवर्तित किये जा सकने के लिए उपलब्ध होना चाहिए। वस्तुतः यह सम्भव है कि यह अंतोक्त माल पूंजी तब तक निर्मित न हो, जब तक इसके लिए आर्डर न दिया जाये। उस हालत में उसका उत्पादन किये जाने तक एक व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। किन्तु उत्पादन और पुनरुत्पादन प्रक्रिया का प्रवाह यह अपेक्षा करता है कि मालों की एक राशि (उत्पादन साधन) हमेशा बाज़ार में रहे और इस प्रकार पूर्ति का निर्माण करे। इसी तरह उत्पादक पूंजी में श्रम शक्ति की ख़रीद समाहित होती है और यहां द्रव्य रूप उन निर्वाह साधनों का मूल्य रूप मात्र है, जिनका अधिकांश मज़दूर को बाज़ार में तत्काल सुलभ होना चाहिए। हम इसका इसी पैराग्राफ़ में आगे अधिक विस्तार से विवेचन करेंगे। किन्तु निम्नलिखित बात अभी भी स्पष्ट हो चुकी है। जहां तक प्रक्रियांतर्गत पूंजी मूल्य का सम्बन्ध है, जो माल में परिवर्तित हो चुका है और जिसे अब बेचना अथवा द्रव्य में पुनः-परिवर्तित करना होगा, अतः जो इस समय बाज़ार में माल पूंजी का कार्य कर रहा है, जिस अवस्था में वह पूर्ति बनता है, उसे वहां असमीचीन, अनैच्छिक प्रवास ही कहना होगा। विक्रय जितना ही जल्दी संपन्न होता है, उतना ही पुनरुत्पादन प्रक्रिया आसानी से बढ़ चलती है। मा′ – द्र′ के रूप परिवर्तन में विलम्ब से उस वास्तविक माल विनिमय में बाधा पड़ती है, जिसे पूंजी के परिपथ में होना चाहिए और उसके उत्पादक पूंजी की हैसियत से आगे कार्यशील होने में भी बाधा पड़ती है। दूसरी ओर, जहां तक द्र – मा का सम्बन्ध है, बाज़ार में मालों की निरन्तर विद्यमानता, माल पूर्ति, माल पुनरुत्पादन प्रक्रिया के प्रवाह के लिए और नई अथवा अतिरिक्त पूंजी के निवेश के लिए ज़रूरी शर्त की तरह प्रकट होती है।

बाज़ार में माल पूर्ति की हैसियत से माल पूंजी बनी रहे, इसके लिए इमारतें, भण्डार, गोदाम, कोठियां दरकार होती हैं, दूसरे शब्दों में स्थायी पूंजी का व्यय दरकार होता है; फिर मालों को गोदाम में रखने के लिए श्रम शक्ति को पैसा देना होता है। इसके अलावा माल बर्बाद होते हैं और उन पर प्राकृतिक कारकों का हानिकर प्रभाव भी पड़ता है। मालों को इस

सबसे बचाने के लिए अंशतः श्रम उपकरणों में – भौतिक रूप में – और अंशतः श्रम शक्ति में अतिरिक्त पूंजी लगाना जरूरी होता है।[14]

इस प्रकार पूंजी का अपने माल पूंजी के रूप में और इसलिए माल पूर्ति के रूप में अस्तित्व ऐसी लागत को जन्म देता है, जिसे परिचलन लागत की कोटि में रखना होगा, क्योंकि वह उत्पादन क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आती है। यह लागत परिच्छेद १ में उल्लिखित परिचलन लागत से इस बात में भिन्न है कि वह एक हद तक मालों के मूल्य में शामिल होती है, अर्थात वह मालों की क़ीमत में वृद्धि करती है। जो भी हो, माल पूर्ति को सुरक्षित रखने और भंडारित करने के लिए आवश्यक पूंजी और श्रम शक्ति उत्पादन प्रक्रिया से निकाल ली जाती हैं। दूसरी ओर, इस तरह प्रयुक्त पूंजियों को, जिनमें पूंजी के संघटक अंश के रूप में श्रम शक्ति शामिल है, सामाजिक उत्पाद में से एक भाग देकर प्रतिस्थापित करना होता है। इसलिए उनका व्यय श्रम की उत्पादक शक्ति पर ह्रासकारी प्रभाव डालता है, फलतः कोई विशेष उपयोगी परिणाम प्राप्त करने के लिए पूंजी और श्रम की और बड़ी राशि दरकार होती है। ये सब **अनुत्पादक लागत** हैं।

चूंकि माल पूर्ति के निर्माण से आवश्यक बनी परिचलन लागत केवल विद्यमान मूल्यों को माल रूप से द्रव्य रूप में बदलने के लिए जरूरी समय के कारण ही और इसलिए उत्पादन प्रक्रिया के किसी विशेष सामाजिक रूप के कारण ही होती है (अर्थात केवल इस तथ्य के कारण होती है कि उत्पाद माल के रूप में सामने लाया जाता है और इसलिए उसे द्रव्य रूप में रूपांतरण से गुज़रना होता है), इसलिए इस लागत का स्वरूप परिच्छेद १ में उल्लिखित परिचलन लागत के स्वरूप से पूरी तरह से मेल खाता है। दूसरी ओर मालों का मूल्य यहां केवल इसलिए सुरक्षित रहता या बढ़ता है कि उपयोग मूल्य, स्वयं उत्पाद सुनिश्चित भौतिक परिस्थितियों में रखा जाता है, जिनके लिए पूंजी व्यय करना होता है और उस पर ऐसी क्रियाएं की जाती हैं, जिससे अतिरिक्त श्रम उपयोग मूल्यों पर प्रभाव डालता है। किन्तु मालों के मूल्यों का अभिकलन, इस प्रक्रिया के साथ-साथ चलनेवाला लेखाकर्म, क्रय-विक्रय के सौदे उपयोग मूल्य को प्रभावित नहीं करते, जिसमें माल मूल्य विद्यमान होता है। इन सब का केवल माल मूल्य के रूप से सरोकार होता है। यद्यपि प्रस्तुत प्रसंग में* पूर्ति निर्माण की लागत (जो यहां अनैच्छिक रूप से किया गया है) केवल रूप परिवर्तन में विलम्ब से और इसकी आवश्यकता से उत्पन्न होती है, फिर भी यह लागत परिच्छेद १ में उल्लिखित लागत से इस बात में भिन्न है कि उसका उद्देश्य मूल्य का रूप परिवर्तन नहीं है, वरन उत्पाद की हैसियत से माल में विद्यमान

---

[14] १८४१ में कॉर्बेट ने हिसाब लगाया था कि नौ महीने की अवधि के लिए गेहूं को गोदाम में रखने की लागत इस प्रकार आती है: मात्र हानि १/२ प्रतिशत, गेहूं की क़ीमत पर ब्याज ३ प्रतिशत, गोदाम का भाड़ा २ प्रतिशत, गेहूं को छानने और ढोने पर १ प्रतिशत, सुपुर्दगी पर १/२ प्रतिशत; ७ प्रतिशत अथवा ५० शिलिंग प्रति क्वार्टर की क़ीमत पर ३ शिलिंग ६ पेंस। (Th. Corbet, *An Inquiry into the Causes and Modes of the Wealth of Individuals etc.*, London, 1841.) रेलवे आयोग के सामने लिवरपूल के व्यापारियों के बयान के अनुसार १८६५ में गोदाम में ग़ल्ला रखने की (ख़ालिस) लागत प्रति मास प्रति क्वार्टर लगभग २ पेंस अथवा प्रति टन ६ या १० पेंस, आई थी (Royal Commission on Railways, 1867. Evidence, p. 19, No. 331)।

*अर्थात पादटिप्पणी १४ में दिया कॉर्बेट का हिसाब। – सं०

मूल्य को, जो एक उपयोगिता है, बनाये रखना है, और जो उत्पाद को, स्वयं उपयोग मूल्य को बनाये रखे बिना अन्य किसी प्रकार से सुरक्षित नहीं रखी जा सकती। यहां उपयोग मूल्य न तो चढ़ाया जाता है, न बढ़ाया ; इसके विपरीत वह घटता है। किन्तु उसका ह्रास नियन्त्रित होता है और वह बना रहता है। न माल में निविष्ट पेशगी मूल्य ही यहां बढ़ता है, किन्तु नया – सजीव और मूर्त श्रम उसमें जुड़ जाता है।

अब हमें आगे इसका अनुसंधान करना है कि वह लागत किस सीमा तक सामान्यतः माल उत्पादन के विशेष स्वरूप से, और साधारण तथा निरपेक्ष रूप के माल उत्पादन से, यानी पूंजीवादी माल उत्पादन से उत्पन्न होती है ; और दूसरी ओर किस सीमा तक वह सभी सामाजिक उत्पादन के लिए सामान्य है और पूंजीवादी उत्पादन में केवल एक विशेष आकृति, प्रतीति का विशेष रूप धारण करती है।

ऐडम स्मिथ यह शानदार ख़याल रखते थे कि पूर्ति का निर्माण ऐसी परिघटना है, जो पूंजीवादी उत्पादन की ही विशिष्टता है।[15] इधर हाल के अर्थशास्त्रियों, जैसे लैलोर ने इसके विपरीत इस पर ज़ोर दिया है कि पूंजीवादी उत्पादन के विकास के साथ उसका ह्रास होता है।* सीसमांडी तो यहां तक मानते हैं कि यह पूंजीवादी उत्पादन की एक कमी है।**

वास्तविकता यह है कि पूर्ति तीन रूपों में विद्यमान होती है : उत्पादक पूंजी के रूप में, वैयक्तिक उपभोग के लिए निधि के रूप में, और माल पूर्ति अथवा माल पूंजी के रूप में। किसी एक रूप में पूर्ति बढ़ती है, तो दूसरे रूप में वह अपेक्षाकृत घटती है, यद्यपि तीनों रूपों में एकसाथ उसके परिमाण की निरपेक्ष वृद्धि हो सकती है।

यह स्वतःस्पष्ट है कि जहां उत्पादन उत्पादक की आवश्यकताओं की प्रत्यक्ष पुष्टि के लिए किया जाता है और विनिमय अथवा विक्रय के लिए अल्प सीमा तक ही किया जाता है, इसलिए जहां सामाजिक उत्पाद माल रूप धारण ही नहीं करता अथवा अल्पांश में ही करता है, वहां मालों के रूप में पूर्ति अथवा माल पूर्ति धन का अल्प अथवा तुच्छ भाग ही बन पाती है। किन्तु यहां उपभोग निधि, विशेषतः वास्तविक निर्वाह साधन निधि, अपेक्षाकृत बड़ी है। इसके लिए पुराने ढंग की कृषक अर्थव्यवस्था पर दृष्टिपात करना ही पर्याप्त होगा। वहां उत्पाद का भारी बहुलांश माल पूर्ति बने बिना उत्पादन साधनों अथवा निर्वाह साधनों की पूर्तियों में प्रत्यक्ष परिवर्तित हो जाता है और इसका कारण यही होता है कि वह अपने मालिक के हाथ में बना रहता है। वह माल पूर्ति का रूप धारण नहीं करता और इसलिए ऐडम स्मिथ घोषित करते हैं कि उत्पादन की इस पद्धति पर आधारित समाजों में पूर्ति होती ही नहीं। वह पूर्ति के रूप को स्वयं पूर्ति से उलझा देते हैं और विश्वास करते हैं कि अब तक समाज रोज कुआं खोदकर पानी पीता आया है अथवा भावी का भरोसा करता है।[16] यह एक भोली भ्रान्ति है।

---

[15] खंड २, भूमिका। [A. Smith, *An Inquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations. A new edition in four volumes*, London, 1843, Vol. II, pp. 249-52. – सं०]

* J. Lalor, *Money and Morals: a Book for the Times*, London, 1852, pp. 43, 44. – सं०

** J. G. L. Sismonde de Sismondi, *Etudes sur l'économie politique*, Tome I. Bruxelles, 1837, p. 49, etc. – सं०

[16] ऐडम स्मिथ की इस भ्रांत कल्पना के विपरीत कि उत्पाद के माल में परिवर्तित होने

उत्पादक पूंजी के रूप में पूर्ति उत्पादन साधनों की शकल में विद्यमान रहती है, जो पहले से ही उत्पादन प्रक्रिया अथवा कम से कम उत्पादक के हाथ में होते हैं, अतः अंतर्हित रूप में पहले ही उत्पादन प्रक्रिया में होते हैं। हम पहले देख चुके हैं कि श्रम की उत्पादिता के बढ़ने और इसलिए पूंजीवादी उत्पादन पद्धति के विकास – जो अन्य सभी पूर्ववर्ती उत्पादन पद्धतियों की अपेक्षा श्रम की सामाजिक उत्पादक शक्ति को अधिक विकसित करती है – के साथ उत्पादन साधनों की राशि में (इमारतों, मशीनों, आदि में) सतत वृद्धि होती है, जो श्रम उपकरणों के रूप में सदा के लिए उत्पादन प्रक्रिया में समाविष्ट हो जाते हैं और न्यूनाधिक काल के लिए सतत आवृत्ति के साथ अपने कार्य सम्पन्न करते हैं। हमने यह भी देखा था कि यह वृद्धि साथ ही श्रम की सामाजिक उत्पादक शक्ति के विकास का पूर्वाधार और परिणाम भी है। इस रूप में धन की निरपेक्ष ही नहीं, सापेक्ष वृद्धि भी, सर्वोपरि पूंजीवादी उत्पादन पद्धति की विशेषता है (Buch I, Kap. XXIII, 2* से मिलाइये)। स्थिर पूंजी के अस्तित्व के भौतिक रूपों, उत्पादन साधनों में केवल श्रम के उक्त उपकरण ही नहीं, वरन प्रक्रिया की विभिन्न मंज़िलों से गुज़रती हुई श्रम की सामग्री और सहायक सामग्री भी आते हैं। उत्पादन के पैमाने के विस्तार के साथ और सहकारिता, श्रम विभाजन, मशीनों, आदि के द्वारा श्रम की उत्पादक शक्ति की वृद्धि के साथ पुनरुत्पादन की दैनिक प्रक्रिया में शामिल होनेवाले कच्चे माल, सहायक सामग्री, आदि का परिमाण भी बढ़ता है। ये तत्व उत्पादन स्थल पर तत्काल सुलभ होने चाहिए। अतः उत्पादक पूंजी के रूप में विद्यमान इस पूर्ति के परिमाण की निरपेक्ष वृद्धि होती है। इसके लिए कि यह प्रक्रिया जारी रहे – इसके अलावा कि इस पूर्ति का नवीकरण नित्य किया जा सकता है या केवल नियत अवधियों पर – उत्पादन स्थल पर तत्काल सुलभ जितने कच्चे माल, आदि की प्रति दिन अथवा प्रति सप्ताह खपत हो सकती है, उससे अधिक का संचय सदा रहना चाहिए। प्रक्रिया की निरंतरता के लिए यह ज़रूरी है कि उसकी शर्तों की विद्यमानता नित्य ख़रीदारी करने में संभव व्यवधानों से ख़तरे में न आये और न इस पर निर्भर करे कि उत्पाद की बिक्री रोज़ाना होती है या हफ़्तेवार और इसलिए अपने उत्पादन तत्वों में अनियमित रूप से ही पुनःपरिवर्तित हो सकती है। पर यह स्पष्ट है कि उत्पादक पूंजी नितान्त भिन्न परिमाण

और उपभोग पूर्ति के माल पूर्ति में बदलने से ही पूर्ति उत्पन्न होती है, यह रूप परिवर्तन उत्पादकों की अर्थव्यवस्था में अपनी आवश्यकताओं के लिए किये जानेवाले उत्पादन से माल उत्पादन में संक्रमण के समय अति विकट संकट उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए, हिन्दुस्तान में अभी कल तक "ख़ासकर अनाज की, जिसके लिए अच्छी फ़सल के वर्षों में बहुत कम प्राप्ति हो सकती है, जमाख़ोरी करने की प्रवृत्ति" देखने में आती थी। (Return. Bengal and Orissa Famine. H. of C., 1867, I, pp. 230-31, No. 74.) अमरीकी गृहयुद्ध के कारण कपास, पटसन, वग़ैरह की मांग के अचानक बढ़ जाने के कारण हिन्दुस्तान के बहुत से हिस्सों में धान की खेती में ज़बर्दस्त कमी आई, चावल की क़ीमत बढ़ गई और उत्पादकों के पास जमा पुराना चावल बिक गया। इसके साथ १८६४-१८६६ के बाद आस्ट्रेलिया, मदागास्कार, आदि को चावल के अभूतपूर्व निर्यात को भी ध्यान में रखना चाहिए। यही १८६६ के अकाल की भीषणता का कारण था, जिससे अकेले उड़ीसा ज़िले में दस लाख आदमियों की जानें गईं (loc. cit., 174, 175, 213, 214 and III : Papers relating to the Famine in Behar, pp. 32, 33, जहां इस पर ज़ोर दिया गया है कि अकाल का एक कारण "पुराने भण्डारों का ख़ाली हो जाना है")। (पाण्डुलिपि २ से।)

*हिन्दी संस्करण : अध्याय २५, २। – सं०

में अंतर्हित हो सकती है, अथवा पूर्ति का निर्माण कर सकती है। मिसाल के लिए, इस बात से बड़ा फ़र्क़ पड़ता है कि कताई मिल-मालिक को कपास या कोयले की पूर्ति तीन महीने के लिए तत्काल सुलभ है या एक महीने के लिए। ज़ाहिर है, यह पूर्ति जहां निरपेक्ष रूप में बढ़ती है, वहां सापेक्ष रूप में घट भी सकती है।

यह सब विभिन्न शर्तों पर निर्भर करता है, और व्यवहारतः इन सभी का आशय कच्चे माल की आवश्यक मात्रा का अधिक शीघ्रतापूर्वक, नियमिततापूर्वक और विश्वसनीयतापूर्वक जुटाया जाना है, जिससे कि व्यवधान कभी न पड़े। इन शर्तों को जितना ही कम पूरा किया जायेगा – अतः पूर्ति जितना ही कम शीघ्रतापूर्वक, नियमिततापूर्वक और विश्वसनीयतापूर्वक जुटाई जायेगी – उतना ही उत्पादक पूंजी का अंतर्हित भाग बड़ा होगा, अर्थात उत्पादक के हाथ में कच्चे माल, आदि की पूर्ति, जो उपयोग में लाये जाने के लिए पड़ी है, अधिक होगी। ये शर्तें पूंजीवादी उत्पादन के, अतः सामाजिक श्रम की उत्पादक शक्ति के विकास स्तर के व्युत्क्रमानुपात में होती हैं। इसलिए इस रूप में पूर्ति पर भी यही बात लागू होती है।

फिर भी जो चीज़ यहां पूर्ति की घटती जान पड़ती है (यथा, लैलोर की कृति में), वह अंशतः केवल माल पूंजी के रूप में पूर्ति की अथवा वास्तविक माल पूर्ति की घटती है; फलतः वह उसी पूर्ति का रूप परिवर्तन मात्र है। उदाहरण के लिए, यदि किसी देश में नित्य उत्पादित कोयले की मात्रा, और इसलिए कोयला उद्योग को चलाने के कार्य का पैमाना और ओजस्विता अधिक हैं, तो कताई मिल-मालिक के लिए अपने उत्पादन की निरंतरता को बनाये रखने के वास्ते कोयले का बड़ा भंडार रखना ज़रूरी नहीं है। कोयला पूर्ति का सतत और निश्चित नवीकरण इसे अनावश्यक बना देता है। दूसरी बात यह कि उत्पादन साधनों की हैसियत से एक प्रक्रिया का उत्पाद दूसरी प्रक्रिया में कितनी जल्दी स्थानान्तरित किया जाता है, यह परिवहन और संचार की सुविधाओं के विकास पर निर्भर है। इस मामले में परिवहन का सस्ता होना बहुत महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, खान से कताई मिल तक कोयले का निरंतर नवीकृत परिवहन कोयले की उस समय ज़्यादा वक़्त के लिए पूर्ति जमा कर लेने की बनिस्बत महंगा होगा कि जब परिवहन अपेक्षाकृत सस्ता है। अब तक विवेचित ये दोनों शर्तें स्वयं उत्पादन प्रक्रिया से उत्पन्न होती हैं। तीसरी बात यह कि उधार पद्धति का विकास भी काफ़ी प्रभाव डालता है। कताई मिल-मालिक कपास, कोयला, आदि की अपनी पूर्ति के नवीकरण के लिए अपने सूत की प्रत्यक्ष बिक्री पर जितना ही कम निर्भर होगा – और यह प्रत्यक्ष निर्भरता उतना ही कम होगी, जितना उधार पद्धति विकसित होगी – उनकी ये पूर्तियां उतना ही अपेक्षाकृत अल्प होंगी और फिर भी एक दिये हुए पैमाने पर सूत का निरन्तर उत्पादन, सूत की बिक्री में जोखिमों से स्वतंत्र उत्पादन सुनिश्चित कर सकेंगी। लेकिन चौथी बात यह है कि बहुत से कच्चे मालों, अधतैयार सामानों, वग़ैरह के उत्पादन के लिए ज़रा लम्बे वक़्त की ज़रूरत होती है। कृषि द्वारा प्रदत्त सभी कच्चे मालों पर यह बात ख़ास तौर से लागू होती है। यदि उत्पादन प्रक्रिया में कोई व्यवधान नहीं आना है, तो कच्चे माल की एक निश्चित मात्रा उस समूची अवधि के लिए पास होनी चाहिए, जिसमें कोई नया उत्पाद पुराने उत्पाद का स्थान नहीं ले सकता। यदि यह पूर्ति औद्योगिक पूंजीपति के हाथ में घटती है, तो इससे यही साबित होता है कि माल पूर्ति के रूप में वह व्यापारी के हाथ में बढ़ी है। उदाहरण के लिए, परिवहन का विकास यह सम्भव बना देता है कि मान लीजिये – लिवरपूल के आयात-गोदामों में पड़ी कपास को शीघ्रता से मैनचेस्टर पहुंचा दिया जाये, जिससे कि कारख़ानेदार ज़रूरत पड़ने

पर अपेक्षाकृत अल्प भागों में अपनी पूर्ति का नवीकरण कर सके। किन्तु उस हालत में लिवरपूल के व्यापारियों के हाथ में कपास माल पूर्ति की हैसियत से उतने ही बड़े परिमाण में पड़ी होगी। इसलिए यह पूर्ति का रूप परिवर्तन मात्र है, और लैलोर, आदि ने इसे नजरअंदाज कर दिया है। और यदि सामाजिक पूंजी पर विचार किया जाये, तो दोनों ही मामलों में उत्पाद का वही परिमाण पूर्ति रूप में विद्यमान होता है। किसी एक देश को, मसलन साल भर के लिए जितना परिमाण चाहिए, वह परिवहन की उन्नति के साथ घटता जाता है। यदि अमरीका और इंगलैण्ड के बीच बादबानी जहाज़ और स्टीमर बड़ी संख्या में चलने लगें, तो कपास की पूर्ति के नवीकरण के लिए इंगलैण्ड को ज्यादा अवसर मिलेगा, जब कि उसके गोदामों में जमा रखी जानेवाली कपास का औसत परिमाण घट जायेगा। विश्व बाज़ार के विकास से और फलतः एक ही तिजारती माल की पूर्ति के स्रोतों के कई गुना बढ़ जाने से भी यही परिणाम उत्पन्न होता है। सामान की विभिन्न देशों से थोड़ी-थोड़ी करके और विभिन्न अन्तरालों पर पूर्ति हो जाती है।

२) वास्तविक माल पूर्ति

हम पहले ही देख चुके हैं कि पूंजीवादी उत्पादन में उत्पाद माल का सामान्य रूप धारण करता है, और ऐसा जितना ही ज्यादा होता है, उतना ही उत्पादन आकार और विस्तार में बढ़ता है। फलतः यदि उत्पादन का परिमाण उतना ही बना रहे, तो भी उत्पादन की पूर्ववर्ती पद्धतियों की अथवा पूंजीवादी उत्पादन पद्धति की अल्पविकसित मंज़िल की तुलना में उत्पाद का कहीं बड़ा भाग माल रूप में विद्यमान रहता है। और प्रत्येक माल – अतः प्रत्येक माल पूंजी भी, जो असल में माल ही होती है, पर पूंजी मूल्य के अस्तित्व रूप का काम देनेवाले माल – माल पूर्ति का एक तत्व होती है, बशर्ते कि वह अपने उत्पादन क्षेत्र से निकलकर तुरंत उत्पादक अथवा वैयक्तिक उपभोग में दाख़िल न हो जाये, अर्थात इस बीच बाज़ार में न पड़ी रहे। अतः यदि उत्पादन का परिमाण उतना ही बना रहता है, तो माल पूर्ति (अर्थात उत्पाद के माल रूप का यह वियोजन और स्थिरीकरण) पूंजीवादी उत्पादन के साथ-साथ स्वतः बढ़ती जाती है। ऊपर हम देख चुके हैं कि यह केवल पूर्ति का रूप परिवर्तन ही है; दूसरे शब्दों में एक ओर मालों के रूप में पूर्ति बढ़ती है, क्योंकि दूसरी ओर उत्पादन अथवा उपभोग के लिए प्रत्यक्षतः उद्दिष्ट रूप में पूर्ति घटती है। यह केवल पूर्ति का परिवर्तित सामाजिक रूप है। यदि इसके साथ कुल सामाजिक उत्पाद की तुलना में माल पूर्ति का सापेक्ष परिमाण ही नहीं, वरन उसका निरपेक्ष परिमाण भी बढ़ता है, तो इसलिए कि पूंजीवादी उत्पादन के बढ़ने के साथ कुल उत्पाद की राशि भी बढ़ती है।

पूंजीवादी उत्पादन के विकास के साथ-साथ उत्पादन का पैमाना उत्पाद की प्रत्यक्ष मांग से कम और वैयक्तिक पूंजीपति के हाथों में उपलभ्य पूंजी की राशि से, उसकी पूंजी में निहित स्वप्रसार की प्रवृत्ति से और उत्पादन प्रक्रिया के प्रसार और उसे लगातार चालू रखने की आवश्यकता से अधिकाधिक निर्धारित होता जाता है। इस प्रकार उत्पादन की प्रत्येक शाखा विशेष में बाज़ार में माल रूप में उपलभ्य, अर्थात ग्राहकों की खोज में, उत्पादों की राशि में अनिवार्य वृद्धि होती है। पूंजी की न्यूनाधिक अवधि के लिए माल पूंजी के रूप में नियत की गयी राशि भी बढ़ती है। इसलिए माल पूर्ति भी बढ़ती है।

अंततोगत्वा समाज के सदस्यों का बहुसंख्यक भाग उजरती मजदूरों में, रोज कुआं खोदकर पानी पीनेवाले लोगों में बदल जाता है, जिन्हें मज़दूरी हफ़्तावार मिलती है, पर जिसे ख़र्च वे रोज़ाना करते हैं, इसलिए जिनको अपनी रोटी-रोजी के साधन पूर्ति के रूप में सुलभ होने चाहिए। यद्यपि इस पूर्ति के अलग-अलग तत्वों का निरन्तर प्रवाह बना रह सकता है, किन्तु उनका एक भाग हमेशा गतिरुद्ध होता ही है, जिससे समूचे तौर पर पूर्ति अस्थिरता की अवस्था में बनी रहती है।

इन सारी विशेषताओं का उद्गम उत्पादन के रूप में और रूप के प्रासंगिक परिवर्तन में है, जिसमें होकर परिचलन प्रक्रिया के अन्तर्गत उत्पाद को अवश्य गुज़रना होता है।

उत्पादों की पूर्ति का सामाजिक रूप जो भी हो, उसके परिरक्षण के लिए इमारतों, बरतनों, आदि के लिए, जो उत्पाद के भंडारण के साधन हैं, परिव्यय चाहिए; उत्पादन और श्रम के उन साधनों के लिए भी पूंजी परिव्यय चाहिए, जिन्हें उत्पाद के स्वरूप के अनुसार हानिकर प्रभावों की रोकथाम के लिए न्यूनाधिक मात्रा में ख़र्च करना होता है। सामाजिक रूप से पूर्ति जितना ही संकेन्द्रित होती है, उतना ही उसकी लागत अपेक्षाकृत कम होती है। यह परिव्यय हमेशा मूर्त अथवा सजीव रूप में सामाजिक श्रम का एक अंश होता है – अतः उत्पादन के पूंजीवादी रूप में यह पूंजी का परिव्यय होता है। यह परिव्यय स्वयं उत्पाद के निर्माण में शामिल नहीं होता और इस प्रकार वह उत्पाद से कटौती होता है। सामाजिक धन का यह अनुत्पादक व्यय आवश्यक है। यह परिव्यय सामाजिक उत्पाद के परिरक्षण की लागत होता है, चाहे माल पूर्ति के तत्व की हैसियत से उसका अस्तित्व केवल उत्पादन के सामाजिक रूप के कारण, अतः माल रूप और उसके अनिवार्य रूप परिवर्तन के कारण हो अथवा चाहे हम माल पूर्ति को उत्पाद की पूर्ति का एक विशेष रूप भर मान लें, जो सभी समाजों के लिए सामान्य है, यद्यपि माल पूर्ति के रूप में नहीं, क्योंकि उत्पाद पूर्ति का यह रूप परिचलन प्रक्रिया में आता है।

अब यह पूछा जा सकता है कि यह लागत मालों के मूल्यों को कहां तक बढ़ाती है।

अगर पूंजीपति श्रम शक्ति और उत्पादन साधनों के रूप में पेशगी दी अपनी पूंजी को उत्पाद में, बिक्री के लिए तैयार माल की निश्चित मात्रा में बदल लेता है, और ये माल गोदाम में अनबिके पड़े रहते हैं, तो हमारे सामने केवल इस अवधि में उसके पूंजी मूल्य की स्वप्रसार प्रक्रिया के अवरुद्ध रहने का मामला ही नहीं होगा। इस पूर्ति को इमारतों में परिरक्षित रखने की, अतिरिक्त श्रम की लागत, वग़ैरह का मतलब निश्चित घाटा होगा। आख़िर उसे जो ग्राहक मिले, उससे यदि वह कहे: "मैं छः महीने अपना माल बेच नहीं पाया, और इस बीच उसे बनाये रखने के लिए मेरी इतनी-इतनी पूंजी बेकार ही नहीं पड़ी रही, बल्कि इतना-इतना ख़र्च भी मुझे ऊपर से उठाना पड़ा," तो ग्राहक हंसकर कहेगा, "Tant pis pour vous!*, आपके पड़ोस में ही दूसरा दूकानदार है, जिसका माल अभी परसों ही तैयार हुआ है। आपकी चीज़ें दूकान में रखे-रखे पुरानी पड़ गई हैं और समय के प्रभाव से वे कमोबेश ख़राब भी हो गई हैं। इसलिए आपको अपने प्रतिस्पर्धी के मुक़ाबले सस्ता बेचना पड़ेगा।"

माल जिन परिस्थितियों में रहता है, उन पर इसका ज़रा भी प्रभाव नहीं पड़ता कि उसका निर्माता वास्तविक निर्माता है अथवा पूंजीवादी निर्माता और इसलिए दरअसल

---

*आपके लिए ही बुरा है! – सं०

वास्तविक निर्माता का प्रतिनिधि मात्र है। उसे अपना उत्पाद द्रव्य में बदलना होता है। उत्पाद के माल रूप में स्थिरीकरण के कारण वह जो कुछ ख़र्च करता है, वह उसकी व्यक्तिगत अटकलबाजियों का हिस्सा है, जिससे मालों के ग्राहक को कोई सरोकार नहीं। वह उसे मालों के परिचलन में लगनेवाले समय के लिए पैसे नहीं देता। मूल्यों की वास्तविक अथवा अपेक्षित उथल-पुथल के समय भी, जब पूंजीपति जानबूझकर अपना माल बाज़ार के बाहर रखता है, तब भी यह मूल्यों की इस उथल-पुथल के होने पर यह उसकी अटकलों की यथातथ्यता अथवा अयथातथ्यता पर निर्भर करता है कि वह अपनी अतिरिक्त लागत वसूल कर पायेगा या नहीं। किन्तु मूल्यों में उथल-पुथल उसकी अतिरिक्त लागत के परिणामस्वरूप नहीं उत्पन्न होती है। अतः जहां तक पूर्ति निर्माण में परिचलन का गतिरोधन सन्निहित होता है, इस कारण होनेवाले व्यय से मालों के मूल्य में वृद्धि नहीं होती। दूसरी ओर परिचलन क्षेत्र में ठहराव के बिना, पूंजी के अपने माल रूप में न्यूनाधिक समय के लिए ठहरे बिना पूर्ति नहीं हो सकती, इसलिए जैसे द्रव्य निधि के निर्माण के बिना द्रव्य परिचलन नहीं हो सकता, वैसे ही परिचलन के गतिरोधन के बिना पूर्ति नहीं हो सकती। अतएव माल पूर्ति के बिना माल परिचलन भी सम्भव नहीं है। यदि मा′ — द्र′ के दौरान पूंजीपति के सामने यह ज़रूरत पेश न हो, तो वह उसके सामने द्र — मा के दौरान आयेगी ; यदि उसकी अपनी माल पूंजी के सिलसिले में नहीं, तो दूसरे पूंजीपतियों की माल पूंजी के सिलसिले में, जो उसके लिए उत्पादन साधन और उसके श्रमिकों के लिए निर्वाह साधन उत्पन्न करते हैं।

ऐसा लगता है कि यह तथ्य इस मामले पर कोई तात्विक प्रभाव नहीं डाल सकता कि पूर्ति निर्माण इच्छित है या अनिच्छित, दूसरे शब्दों में माल उत्पादक जानबूझकर पूर्ति रखता है या उसके उत्पाद स्वयं परिचलन प्रक्रिया की परिस्थितियों से बिक्री में पैदा होनेवाली रुकावट के कारण पूर्ति बन जाते हैं। किन्तु इस समस्या के समाधान के लिए यह जानना उपयोगी होगा कि इच्छित और अनिच्छित पूर्ति निर्माण में भेद क्या है। अनिच्छित पूर्ति निर्माण परिचलन के ऐसे गतिरोध से उत्पन्न होता है या उसका समरूप होता है, जो माल उत्पादक की जानकारी से स्वतंत्र होता है और उसकी इच्छा के आड़े आता है। और इच्छित पूर्ति निर्माण का लक्षण क्या है? दोनों ही स्थितियों में विक्रेता अपने माल से जल्दी से जल्दी छुटकारा पाना चाहता है। वह सदैव अपना उत्पाद माल की हैसियत से बिक्री के लिए पेश करता है। यदि वह उसे बिक्री से खींच ले, तो वह माल पूर्ति का केवल संभाव्य (δυνάμει) तत्व होगी, वास्तविक (ἐνεργείᾳ) तत्व नहीं। उसके लिए माल स्वयं हमेशा जैसा ही विनिमय मूल्य का निधान है और इस हैसियत से वह अपना माल रूप तजने और द्रव्य रूप धारण करने पर और इसके फलस्वरूप ही क्रियाशील हो सकता है।

किसी दी हुई अवधि में मांग की तुष्टि करने के लिए माल पूर्ति का एक निश्चित परिमाण का होना आवश्यक है। ग्राहक समुदाय के निरन्तर बढ़ने पर निर्भर किया जाता है। मसलन, एक दिन बने रहने के लिए यह ज़रूरी है कि बाज़ार में मालों का एक हिस्सा निरन्तर माल रूप में रहे, जब कि शेष भाग प्रवाहमान रहता और द्रव्य में परिवर्तित हो जाता है। यह सही है कि जब शेष भाग प्रवाहमान होता है, तब गतिरुद्ध भाग बराबर घटता जाता है, जैसे सारी पूर्ति जब तक बिक न जाये, तब तक स्वयं उसका आकार घटता जाता है। इस प्रकार मालों की यह गतिहीनता उनकी बिक्री की ज़रूरी शर्त मानी जाती है। इसके अलावा

उसका परिमाण औसत बिक्री या औसत मांग की अपेक्षा बड़ा होना चाहिए, अन्यथा इन औसतों के ऊपर जो आधिक्य होगा, उसकी तुष्टि न की जा सकेगी। दूसरी ओर पूर्ति का निरन्तर नवीकरण होते रहना चाहिए, क्योंकि उससे निरन्तर माल निकाला जा रहा है। अन्ततोगत्वा यह नवीकरण और कहीं से नहीं, उत्पादन से ही मालों की पूर्ति से सम्पन्न किया जायेगा। यह महत्वहीन है कि यह नवीकरण विदेश से पूरा होता है या नहीं। यह नवीकरण मालों के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक कालावधियों पर निर्भर होता है। माल पूर्ति इस सारे समय क़ायम रहनी चाहिए। इस तथ्य से कि माल पूर्ति मूल उत्पादक के हाथ में नहीं रहती, वरन विभिन्न आगारों से होकर थोक व्यापारी से खुदरा व्यापारी तक गुज़रती है, उसकी बाह्याकृति ही बदलती है, प्रकृति नहीं। समाज के दृष्टिकोण से जब तक माल उत्पादक अथवा वैयक्तिक उपभोग में प्रवेश नहीं करते, तब तक दोनों ही स्थितियों में पूंजी का एक भाग माल पूर्ति का रूप लिये रहता है। उत्पादक अपने पास अपनी औसत मांग के अनुरूप भंडार रखने का प्रयत्न करता है, जिससे उसे सीधे उत्पादन पर निर्भर न रहना पड़े और नियमित ग्राहक समुदाय सुनिश्चित रहे। उत्पादन अवधियों के अनुरूप क्रय अवधियां बना ली जाती हैं, और माल तब तक न्यूनाधिक समय के लिए पूर्ति का काम करते हैं कि जब तक उनका उसी तरह के नये माल द्वारा प्रतिस्थापन न हो जाये। परिचलन प्रक्रिया का, इसलिए पुनरुत्पादन प्रक्रिया का भी, जिसमें परिचलन प्रक्रिया शामिल है, स्थायित्व और सातत्य इस प्रकार की पूर्ति के निर्माण द्वारा ही सुरक्षित रहते हैं।

यह याद रखना चाहिए कि सम्भव है कि **मा** के उत्पादक के लिए **मा′—द्र′** सम्पन्न हो चुका हो, भले ही **मा** अब भी बाजार में हो। यदि उत्पादक अपने ही माल को तब तक जमा रखे कि वह अन्तिम उपभोक्ता के हाथ बिक न जाये, तो उसे दो पूंजियों को गतिशील करना होगा – एक पूंजी माल उत्पादक की हैसियत से और दूसरी व्यापारी की हैसियत से। जहां तक स्वयं माल का सम्बन्ध है, हम चाहे उसे अलग माल मानें, चाहे सामाजिक पूंजी का संघटक अंश, इससे कुछ आता-जाता नहीं कि पूर्ति निर्माण की लागत का वहन उसका उत्पादक करेगा या **अ** से लेकर **ह** तक व्यापारियों की पूरी श्रृंखला।

चूंकि माल पूर्ति उत्पाद के माल रूप के अलावा और कुछ नहीं है, जो सामाजिक उत्पादन के किसी ख़ास स्तर पर या तो उत्पादक पूर्ति (अंतर्हित उत्पादन निधि) की हैसियत से, या उपभोग निधि (उपभोग साधनों की आरक्षित निधि) की हैसियत से – यदि वह पहले माल पूर्ति की तरह विद्यमान न रही हो, तो – विद्यमान होती है, इसके परिरक्षण पर होने-वाला व्यय अर्थात पूर्ति निर्माण की लागत – यानी इस प्रयोजन पर ख़र्च मूर्त अथवा सजीव श्रम – केवल उत्पादन की सामाजिक निधि को बनाये रखने के लिए या उपभोग की सामाजिक निधि को बनाये रखने के लिए किया गया ख़र्च होता है। इस ख़र्च से मालों के मूल्य में आई वृद्धि इस लागत को विभिन्न मालों में pro rata [यथानुपात] बांट देती है, क्योंकि विभिन्न प्रकारों के मालों के अनुरूप लागत भिन्न-भिन्न होती है और पूर्ति निर्माण की लागत सामाजिक धन से हमेशा की तरह ही कटौती होती है, यद्यपि यह उसके अस्तित्व की एक शर्त होती है।

इस तरह की गतिहीनता केवल उसी सीमा तक सामान्य होती है कि जिस सीमा तक माल पूर्ति माल परिचलन का पूर्वाधार होती है और स्वयं माल परिचलन से अनिवार्यतः

उत्पन्न होती है, अतः जिस सीमा तक यह आभासी गतिहीनता स्वयं गति का एक रूप होती है, बिल्कुल जैसे द्रव्य निधि का निर्माण द्रव्य परिचलन का पूर्वाधार होता है। किन्तु जैसे ही परिचलन आगारों में पड़े हुए माल उत्पादन की तेज़ी से आती दूसरी लहर के लिए जगह ख़ाली करना बंद कर देते हैं, जिससे आगारों में अतिसंचय हो जाता है, तब गतिहीनता के परिणामस्वरूप माल पूर्ति बढ़ जाती है, ठीक जैसे द्रव्य परिचलन के अवरुद्ध होने पर अपसंचय बढ़ जाते हैं। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि यह अवरोध औद्योगिक पूंजीपति की कोठियों में होता है या व्यापारी के गोदामों में। उस स्थिति में माल पूर्ति अविछिन्न विक्रय की पूर्वापेक्षा नहीं है, वरन माल को बेचने की असंभाव्यता का परिणाम है। लागत वही है किन्तु चूंकि अब वह केवल रूप से ही, अर्थात मालों को द्रव्य में परिवर्तित करने की जरूरत से और इस रूपान्तरण से गुज़रने की कठिनाई से उत्पन्न होती है, इसलिए वह मालों के मूल्य में दाख़िल नहीं होती, वरन कटौती बन जाती है, मूल्य के सिद्धिकरण में मूल्य ह्रास बन जाती है। चूंकि पूर्ति के सामान्य और असामान्य रूपों में रूप का भेद नहीं होता और दोनों ही परिचलन को अवरुद्ध करते हैं, इसलिए इन परिघटनाओं को ग़लत समझा जा सकता है, और वे स्वयं उत्पादन के अभिकर्ता को धोखे में डाल सकती हैं, इसलिए और भी कि उत्पादक के लिए उसकी पूंजी की परिचलन प्रक्रिया चालू रह सकती है, जबकि उसके मालों की, जो एक हाथ से दूसरे हाथ में पहुंच गये हैं और अब व्यापारियों के हैं, परिचलन प्रक्रिया रुद्ध हो सकती है। यदि उत्पादन और उपभोग बढ़ते जायें, तो शेष परिस्थितियां समान होने पर माल पूर्ति में भी इस प्रकार वृद्धि होगी। उसका नवीकरण और नियोजन उतनी ही जल्दी होता है, किन्तु उसका आकार और बड़ा होता है। इसलिए माल पूर्ति के विस्फरित आकार को, जिसके लिए अवरुद्ध परिचलन ज़िम्मेदार है, भ्रमवश पुनरुत्पादन प्रक्रिया के प्रसार का लक्षण माना जा सकता है, ख़ास पौर से तब, जब उधार पद्धति का विकास वास्तविक गति को रहस्यावरण में छिपाना संभव बना देता है।

पूर्ति निर्माण की लागत में इनका समावेश होता है: १) उत्पाद की राशि में (उदाहरण के लिए, आटे की पूर्ति के प्रसंग में) परिमाणात्मक ह्रास; २) गुणता का अपकर्ष; ३) पूर्ति के परिरक्षण के लिए आवश्यक मूर्त और सजीव श्रम।

३. परिवहन लागत

यहां परिचलन लागत की सभी तफ़सीलों, जैसे छंटाई, पैकिंग, आदि, में जाना ज़रूरी नहीं है। सामान्य नियम यह है कि **परिचलन की वह सारी लागत, जो मालों के रूप परिवर्तन से उत्पन्न होती है, उनको मूल्य वृद्धि नहीं करती है**। वह केवल मूल्य के सिद्धिकरण के लिए अथवा उसे एक रूप से दूसरे में बदलने के लिए किया जानेवाला ख़र्च है। इस लागत को पूरा करने के लिए ख़र्च की जानेवाली पूंजी (जिसमें उसके अधीन किया हुआ श्रम भी शामिल है) पूंजीवादी उत्पादन के faux frais के अन्तर्गत आती है। उसे बेशी उत्पाद से प्रतिस्थापित करना होता है और जहां तक समूचे पूंजीपति वर्ग का सम्बन्ध है, वह बेशी मूल्य से अथवा बेशी उत्पाद से कटौती होती है, ठीक जैसे मज़दूर को अपने निर्वाह साधन ख़रीदने पर जो समय ख़र्च करना होता है, वह नष्ट समय होता है। किन्तु परिवहन लागत की भूमिका इतनी महत्वपूर्ण है कि उस पर संक्षेप में कुछ कहे बिना आगे नहीं जाया जा सकता।

पूंजी के परिपथ और मालों के रूपान्तरण में, जो उसी परिपथ का अंग होता है, सामाजिक श्रम के दौरान सामग्री का अंतर्विनिमय होता है। यह अंतर्विनिमय उत्पादों का स्थान परिवर्तन, उनकी एक स्थान से दूसरे स्थान तक वास्तविक गति को आवश्यक बना सकता है। फिर भी मालों का परिचलन उनके द्वारा भौतिक गति के बिना भी हो सकता है, और माल परिचलन के बिना और उत्पादों के प्रत्यक्ष विनिमय के बिना भी उत्पादों का परिवहन हो सकता है। क द्वारा ख को बेचा गया मकान एक जगह से दूसरी जगह तक नहीं भटकता, यद्यपि वह माल रूप में परिचालित होता है। कपास या कच्चे लोहे जैसे चल माल मूल्य दर्जनों परिचलन प्रक्रियाओं से गुज़रते, सट्टेबाज़ों द्वारा ख़रीदे और फिर बेचे जाते समय भी उसी गोदाम में पड़े रह सकते हैं।[17] दरअसल जो चीज़ यहां गति करती है, वह माल पर मिल्कियत का हक़ है, न कि ख़ुद माल। दूसरी ओर, इंका लोगों के देश में परिवहन की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी, यद्यपि सामाजिक उत्पाद न तो माल रूप में परिचलन करता था, न विनिमय द्वारा वितरित होता था।

फलतः पूंजीवादी उत्पादन पर आधारित परिवहन उद्योग परिवहन लागत का कारण तो प्रतीत होता है, किन्तु बाह्याकृति का यह विशेष रूप स्थिति को ज़रा भी नहीं बदलता।

परिवहन से उत्पादों की मात्रा में वृद्धि नहीं होती। न कुछ अपवादों को छोड़कर परिवहन द्वारा उनके नैसर्गिक गुणों में लाया गया कोई संभव परिवर्तन अभिप्रेत उपयोगी प्रभाव ही होता है, बल्कि वह अपरिहार्य दोष ही होता है। किन्तु चीज़ों का उपयोग मूल्य उनके उपभोग में ही मूर्त होता है, और उनका उपभोग इन चीज़ों का स्थान परिवार्तन आवश्यक बना सकता है, अतः परिवहन उद्योग में एक अतिरिक्त उत्पादन प्रक्रिया आवश्यक हो सकती है। इस उद्योग में लगाई गई उत्पादक पूंजी अंशतः परिवहन साधनों से मूल्य स्थानान्तरित करके और अंशतः परिवहन में किये हुए श्रम के ज़रिये मूल्य वृद्धि करके परिवाहित उत्पादों को मूल्य प्रदान करती है। समस्त पूंजीवादी उत्पादन की तरह यह अन्तिम मूल्य वृद्धि भी मज़दूरी के प्रतिस्थापन और बेशी मूल्य से बनती है।

प्रत्येक उत्पादन प्रक्रिया में श्रम वस्तु और आवश्यक श्रम उपकरणों तथा श्रम शक्ति का स्थानपरिवर्तन बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निबाहता है, जैसे कताई खाते तक ले जायी गयी कपास अथवा खान कूपक से सतह पर लाया गया कोयला। तैयार उत्पाद का तैयार सामान की तरह एक स्वतंत्र उत्पादन स्थल से दूर स्थित अन्य स्थान तक पारगमन इसी परिघटना को केवल और बड़े पैमाने पर दर्शाता है। इसके अलावा एक उत्पादक प्रतिष्ठान से दूसरे तक उत्पादों के परिवहन के बाद एक दूसरी क्रिया होती है: तैयार उत्पादों का उत्पादन क्षेत्र से उपभोग क्षेत्र में पहुंचना। जब तक उत्पाद ये सारी गतियां पूरी न कर ले, तब तक वह उपभोग के लिए तैयार नहीं होता।

जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है, माल उत्पादन का सामान्य नियम कहता है: श्रम की उत्पादिता उसके द्वारा सृजित मूल्य के व्युत्क्रमानुपात में होती है। अन्य किसी उद्योग की तरह यह बात परिवहन उद्योग के बारे में भी सही है। किसी निश्चित दूरी तक माल परिवहन के

[17] श्तोर्ख़ इसे "circulation factice" [मिथ्या परिचलन] कहते हैं।

लिए मृत और सजीव श्रम की आवश्यक मात्रा जितना ही कम होती है, उतना ही श्रम की उत्पादक शक्ति अधिक होती है।[18]

परिवहन माल में मूल्य के जिस निरपेक्ष परिमाण की वृद्धि करता है, वह अन्य परिस्थितियां यथावत रहने पर परिवहन उद्योग की उत्पादक शक्ति के व्युत्क्रमानुपात में और तय किये गये फ़ासले के अनुक्रमानुपात में होता है।

परिवहन लागत से मालों की क़ीमत में जिस मूल्यांश की वृद्धि होती है, वह अन्य परिस्थितियों के यथावत रहने पर उनकी घनीय अन्तर्वस्तु और वज़न के अनुक्रमानुपात में तथा उनके मूल्य के व्युत्क्रमानुपात में होता है। किन्तु कई रूपांतरक घटक भी हैं। उदाहरणतः, परिवहन न्यूनाधिक महत्वपूर्ण पूर्वोपायों की और इसलिए इस बात के अनुसार कि चीज़ें कितनी भंगुर, नाशवान, विस्फोटक, आदि हैं, श्रम तथा श्रम उपकरणों के न्यूनाधिक व्यय की भी अपेक्षा करता है। यहां रेल सम्राट विलक्षण ज्ञातों का आविष्कार करने में अपनी चतुराई से प्राणिशास्त्रियों और वनस्पतिशास्त्रियों को भी मात करते हैं। उदाहरण के लिए, ब्रिटिश रेलवे पर मालों के वर्गीकरण से पोथे के पोथे भरे हुए हैं और वह सिद्धान्ततः इस सामान्य प्रवृत्ति पर आधारित है कि माल के विविध नैसर्गिक गुणों को उतने ही परिवहन दोषों में, धोखाधड़ी से भाड़ा वसूल करने के रोज़मर्रा के बहानों में बदल दिया जाये। "कांच के निर्माण में आये सुधारों के बाद और उस पर से महसूल हटा लेने के बाद, जो कांच पहले ११ पाउंड फ़ी क्रेट था, वह अब केवल २ पाउंड है, किन्तु परिवहन भाड़ा पहले जैसा ही है और जब उसे नहर के ज़रिये ले जाते थे, तब से वह और ऊंचा है। कारख़ानेदारों ने मुझे बताया है कि बर्मिंघम के ५० मील के दायरे में पहले उन्हें नलसाज़ों के काम के लिए १० शिलिंग फ़ी टन के हिसाब से कांच और कांच के सामान की ढुलाई देनी होती थी। इस समय माल की टूट-फूट की जोखिम के हरजाने की दर, जो हमें कदाचित ही दिया जाता है, पहले से तीन गुना ज़्यादा है। माल की टूट-फूट के हरजाने के हर दावे का रेल कम्पनियां हमेशा विरोध करती हैं।"[19] इसके अलावा, यह तथ्य कि परिवहन लागत से वस्तु में जिस मूल्यांश की वृद्धि होती है, वह उसके मूल्य के व्युत्क्रमानुपात में होता है, रेल सम्राटों को वस्तु पर

---

[18] रिकार्डो सेय को उद्धृत करते हैं, जिनके अनुसार यह तिजारत की एक नियामत यह है कि वह परिवहन लागत के ज़रिये उत्पादों की क़ीमत या उनका मूल्य बढ़ा देती है। सेय लिखते हैं: "वाणिज्य हमारे लिए माल जिस जगह प्राप्य है, वहां से प्राप्त करना और दूसरी जगह, जहां वह उपयोज्य है, पहुंचाना संभव बना देता है। इसलिए वह पहली जगह उसकी जो क़ीमत है और दूसरी जगह जो क़ीमत है, इन दोनों के समूचे अन्तर द्वारा हमें माल मूल्य में वृद्धि करने की शक्ति दे देता है।" [J. B. Say, *Traité d'économie politique*, Troisième édition, Paris, 1817, Tome II, p. 433. – सं०] रिकार्डो इसके प्रसंग में कहते हैं, "सही है, लेकिन यह अतिरिक्त मूल्य उसे दिया कैसे जाता है? उत्पादन लागत में एक तो परिवहन का ख़र्च, दूसरे व्यापारी द्वारा पेशगी दी हुई पूंजी पर मुनाफ़े को जोड़ने से। माल केवल इसी कारण से अधिक मूल्यवान हो जाता है, जिससे कोई भी माल अधिक मूल्यवान हो सकता है, और वह यह कि उसके उत्पादन और परिवहन पर उपभोक्ता द्वारा उसके ख़रीदे जाने के पहले अधिक श्रम ख़र्च किया जाता है। उसे वाणिज्य का एक लाभ नहीं कहना चाहिए" (Ricardo, *Principles of Political Economy*, 3rd ed., London, 1821, pp. 309, 310)।

[19] Royal Commission on Railways, p. 31, No. 630.

उसके मूल्य के अनुक्रमानुपात में कर लगाने का विशेष आधार प्रदान कर देता है। इस बात को लेकर उद्योगपतियों और व्यापारियों की शिकायतों से उद्धृत रिपोर्ट में बयानों का प्रत्येक पृष्ठ भरा पड़ा है।

पूंजीवादी उत्पादन पद्धति, परिवहन तथा संचार साधनों के विकास द्वारा तथा परिवहन के केन्द्रीकरण – उसके बढ़ते हुए पैमाने – के द्वारा, पृथक-पृथक मालों के परिवहन की लागत घटाती है। माल परिवहन पर जो सजीव और मूर्त सामाजिक श्रम ख़र्च किया जाता है, वह एक तो समस्त उत्पाद के बहुलांश को मालों में बदलकर और दूसरे, स्थानीय बाजारों की जगह दूर के बाज़ार क़ायम करके उस श्रम के अंश को बढ़ाती है।

परिचलन, अर्थात मालों का यथार्थ देशगत गमन, स्वयं को माल परिवहन में परिणत कर लेता है। परिवहन उद्योग एक ओर उद्योग की स्वतंत्र शाखा और इस प्रकार उत्पादक पूंजी निवेश का पृथक क्षेत्र बन जाता है। दूसरी ओर उसका विशेष लक्षण यह है कि वह परिचलन प्रक्रिया **के भीतर** और परिचलन प्रक्रिया **के वास्ते** उत्पादन प्रक्रिया के सातत्य की तरह प्रकट होता है।

भाग २

पूंजी का आवर्त

अध्याय ७

आवर्त काल तथा आवर्त संख्या

हम देख चुके हैं कि किसी नियत पूंजी का समग्र आवर्त काल उसके परिचलन काल तथा उसके उत्पादन काल के योग के बराबर होता है। यह एक निश्चित रूप में पूंजी मूल्य पेशगी दिये जाने के क्षण से लेकर उसी रूप में कार्यशील पूंजी मूल्य की वापसी तक का समय है।

पूंजीवादी उत्पादन का अनिवार्य प्रेरक हेतु सदा पेशगी मूल्य द्वारा बेशी मूल्य का सृजन होता है, चाहे यह मूल्य अपने स्वतंत्र रूप में, अर्थात द्रव्य रूप में पेशगी दिया जाये या माल रूप में, जब उसका मूल्य रूप पेशगी दिये हुए माल की क़ीमत में केवल अधिकल्पित स्वतंत्रता रखता है। दोनों ही स्थितियों में अपनी वृत्तीय गति के दौरान यह पूंजी मूल्य अपने अस्तित्व के विभिन्न रूपों से होकर गुज़रता है। अपने से उसकी एकरूपता पूंजीपतियों के बही-खातों में अथवा लेखा द्रव्य के रूप में स्थिर की जाती है।

चाहे हम द्र ... द्र' रूप लें, चाहे उ ... उ रूप लें, निहितार्थ यही है कि १) पेशगी मूल्य पूंजी मूल्य का कार्य करता है, और बेशी मूल्य का सृजन कर चुका है; २) अपनी प्रक्रिया पूरी करने पर वह उसी रूप में लौट आया है, जिसमें उसने इसकी शुरूआत की थी। पेशगी मूल्य द्र का स्वप्रसार, और साथ ही इस रूप (द्रव्य रूप) में पूंजी की वापसी द्र ... द्र' में स्पष्ट दिखाई देती है। किन्तु वही बात दूसरे रूप में भी होती है। कारण यह है कि उ का प्रारम्भ बिन्दु उत्पादन तत्वों का, दत्त मूल्यों के मालों का अस्तित्व है। इस मूल्य (मा' और द्र') का स्वप्रसार और मूल रूप में उसका प्रत्यावर्तन इस रूप में शामिल है, क्योंकि दूसरे उ में पेशगी मूल्य फिर वही उत्पादन तत्वों का रूप हो जाता है, जिसमें वह मूलतः पेशगी दिया गया था।

हम पहले देख चुके हैं: "यदि उत्पादन का रूप पूंजीवादी है, तो पुनरुत्पादन का रूप भी वही होगा। जिस प्रकार पूंजीवादी उत्पादन में श्रम प्रक्रिया पूंजी के स्वविस्तार का एक साधन मात्र होती है, उसी प्रकार पूंजीवादी पुनरुत्पादन में वह पेशगी लगाये गये मूल्य का पूंजी के रूप में, अर्थात स्वयं अपना विस्तार करनेवाले मूल्य के रूप में पुनरुत्पादन का साधन मात्र होती है" (Buch I, Kap. XXI, S. 588)*।

---

* हिन्दी संस्करण: अध्याय २३, पृष्ठ ६३७। – सं०

१) द्र . . . द्र', २) उ . . . उ तथा ३) मा' . . . मा' – ये तीन रूप निम्नलिखित भेद प्रकट करते हैं : दूसरे रूप (उ . . . उ) में प्रक्रिया का नवीकरण, पुनरुत्पादन प्रक्रिया, वास्तविकता के रूप में प्रकट होती है, जब कि पहले रूप में केवल सम्भाव्यता के रूप में, किन्तु दोनों तीसरे रूप से इस बात में भिन्न हैं कि पेशगी दिया हुआ पूंजी मूल्य – वह चाहे द्रव्य रूप में दिया गया हो, चाहे उत्पादन के भौतिक तत्वों के रूप में – प्रारम्भ बिन्दु होता है और इसलिए प्रत्यावर्तन बिन्दु भी होता है। द्र – द्र' में प्रत्यावर्तन द्र' = द्र + द्र द्वारा व्यंजित होता है। यदि प्रक्रिया का नवीकरण उसी पैमाने पर हो, तो द्र फिर प्रारम्भ बिन्दु हो जाता है, और द्र उसमें प्रवेश नहीं करता, वरन केवल यह दिखाता है कि द्र पूंजी के रूप में स्वसारित हुआ है और इसलिए उसने बेशी मूल्य, बे, का सृजन किया है, पर उसे त्याग दिया है। उ . . . उ रूप में इसी तरह उत्पादन तत्वों के रूप में पेशगी दिया गया पूंजी मूल्य उ भी प्रारम्भ बिन्दु है। इस रूप में उसका स्वप्रसार भी शामिल है। यदि साधारण पुनरुत्पादन होता है, तो वही पूंजी मूल्य उसी उ रूप में उसी प्रक्रिया का नवीकरण करता है। यदि संचय होता है, तो उ' (मूल्य परिमाण में द्र' के बराबर, जो मा' के बराबर है), प्रसारित पूंजी मूल्य के रूप में प्रक्रिया को पुनः शुरू कर देता है। किन्तु प्रक्रिया फिर पेशगी पूंजी मूल्य के मूल रूप में शुरू होती है, यद्यपि यह पूंजी मूल्य पहले से बड़ा होता है। इसके विपरीत तीसरे रूप में पूंजी मूल्य प्रक्रिया को पेशगी रूप में नहीं, वरन पहले से विस्तारित मूल्य की हैसियत से, माल रूप में विद्यमान समग्र धन की हैसियत से पेशगी पूंजी मूल्य जिसका अंश मात्र है, आरम्भ करता है। यह अन्तिम रूप तीसरे भाग के लिए महत्वपूर्ण है, जहां अलग-अलग पूंजियों की गति का कुल सामाजिक पूंजी की गति के सिलसिले में विवेचन किया गया है। किन्तु इसका उपयोग पूंजी के आवर्त के सिलसिले में नहीं करना है, जो हमेशा पूंजी मूल्य के पेशगी दिये जाने से शुरू होता है – चाहे यह द्रव्य रूप में हो, चाहे माल रूप में – और जो चक्रावर्ती पूंजी मूल्य के लिए जिस रूप में वह पेशगी दिया गया था, उसी रूप में वापस आना आवश्यक बना देता है। पहले और दूसरे परिपथों में से पहला मूलतः बेशी मूल्य के निर्माण पर आवर्त के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए तथा दूसरा उत्पाद के निर्माण पर उसके प्रभाव का अध्ययन करने के लिए उपयोगी है।

अर्थशास्त्रियों ने परिपथों के विभिन्न रूपों में बहुत कम भेद किया है, न उन्होंने पूंजी के आवर्त के सिलसिले में उनका अलग-अलग परीक्षण ही किया है। साधारणतः वे द्र . . . द्र' रूप पर विचार करते हैं, क्योंकि वह वैयक्तिक पूंजीपति पर हावी रहता है और उसके परिकलनों में सहायता करता है, फिर चाहे धन लेखा द्रव्य के रूप में ही प्रारम्भ बिन्दु हो। दूसरे लोग उत्पादन तत्वों के रूप में परिव्यय से शुरू करके प्रतिफलों की प्राप्ति के बिन्दु तक आते हैं, पर प्रतिफलों के रूप का – वह माल रूप में होता है या द्रव्य रूप में – उल्लेख भी नहीं करते। उदाहरण के लिए, "परिव्यय किये जाने के समय से लेकर प्रतिफल प्राप्ति तक उत्पादन का सारा दौर... आर्थिक चक्र है। कृषि में बुआई का समय उसका आरम्भ है और फ़सल कटाई उसका अवसान।" एस० पी० न्यूमैन : *Elements of Political Economy*, एंडोवर और न्यूयार्क, पृष्ठ ८१। अन्य लोग मा' (तीसरे रूप) से शुरू करते हैं।

टॉमस चामर्स अपनी पुस्तक *On Political Economy*, दूसरा संस्करण, ग्लासगो, १८३२, पृष्ठ ८५ तथा आगे, में कहते हैं, "व्यापार जगत की उसमें घूमते रहने की कल्पना की जा सकती है, जिसे हम आर्थिक चक्र कहेंगे, जो व्यवसाय द्वारा एक घूर्णन पूरा करता है और अपनी क्रमिक कार्यवाहियों द्वारा वह वहीं लौट आता है, जहां से उसने चलना शुरू किया था। उसकी शुरूआत उस बिंदु से मानी जा सकती है, जिस पर पूंजीपति को वह प्रतिफल मिल चुका होता है, जिसके द्वारा उसकी पूंजी की उसे प्रतिस्थापना हो जाती है, जिसके बाद वह अपने मजदूरों को फिर से काम में लगाना, उनमें मजदूरी के रूप में जीविका का अथवा यों कहें कि उसे पाने की शक्ति का वितरण करना; वह जिन चीजों का विशेषकर लेन-देन करता है, उन्हें तैयार माल के रूप में उनसे प्राप्त करना; इन चीजों को बाजार में लाना और विक्रय संपन्न करके और उसकी आय में इस अवधि के समूचे परिव्यय का प्रतिफल प्राप्त करके गति शृंखला के एक चक्र को ख़त्म करना शुरू करता है।"

उत्पादन की किसी भी शाखा में किसी वैयक्तिक पूंजीपति द्वारा लगाया हुआ समग्र पूंजी मूल्य अपना परिपथ पूरा करने के साथ स्वयं को एक बार फिर अपने प्रारम्भिक रूप में पाता है और अब वह उसी प्रक्रिया को दोहरा सकता है। यदि मूल्य को पूंजी मूल्य के रूप में स्वयं को क़ायम रखना है और बेशी मूल्य का सृजन करना है, तो उसे प्रक्रिया दोहरानी ही होगी। पृथक परिपथ पूंजी के जीवन में लगातार दोहराया जानेवाला भाग मात्र और इसलिए एक नियत कालावधि होता है। द्र ... द्र' अवधि के अन्त में पूंजी एक बार फिर द्रव्य पूंजी के रूप में आ जाती है। यह द्रव्य पूंजी नये सिरे से उन रूप परिवर्तनों की शृंखला से गुजरती है, जिनमें उसकी पुनरुत्पादन अथवा स्वप्रसार की प्रक्रिया शामिल है। उ ... उ अवधि के अन्त में पूंजी उन उत्पादन तत्वों के रूप में फिर आ जाती है, जो उसके परिपथ के नवीकरण की पूर्वावश्यकताएं हैं। पूंजी द्वारा सम्पन्न परिपथ को, जो किसी पृथक क्रिया नहीं, बल्कि एक नियतकालिक प्रक्रिया है, आवर्त कहते हैं। इस आवर्त की मीयाद उसके उत्पादन काल तथा उसके परिचलन काल के योग द्वारा निर्धारित होती है। समय का यह योग पूंजी का आवर्त काल होता है। यह समग्र पूंजी मूल्य के एक परिपथ की अवधि से अगले परिपथ की अवधि तक के अन्तराल को, पूंजी की जीवन प्रक्रिया की आवर्तिता को, या, कह लीजिये, उस एक ही पूंजी मूल्य के स्वप्रसार अथवा उत्पादन प्रक्रिया के नवीकरण का, उसकी आवृत्ति का समय मापता है।

वैयक्तिक सट्टेबाजियों के अलावा, जो कुछ पूंजियों के आवर्त काल को बढ़ा या घटा सकती हैं, भिन्न-भिन्न निवेश क्षेत्रों में यह कालावधि अलग-अलग होती है।

जिस प्रकार श्रम शक्ति के कार्य को मापने की स्वाभाविक इकाई कार्य दिवस है, इसी प्रकार वर्ष कार्यशील पूंजी के आवर्तों को मापने की स्वाभाविक इकाई है। इस इकाई का नैसर्गिक आधार यह तथ्य है कि शीतोष्ण कटिबंध की, जो पूंजीवादी उत्पादन की मातृभूमि है, सबसे महत्वपूर्ण फ़सलें वार्षिक उपज ही हैं।

आवर्त काल मापने की इकाई वर्ष को यदि हम का, किसी दत्त पूंजी के आवर्त काल को का और उसके आवर्तों की संख्या को सं की संज्ञा दें, तो $\text{सं} = \frac{\text{का}}{\text{का}}$। उदाहरण के

लिए, अगर आवर्त काल का तीन महीने है, तो सं बराबर है १२/३ अथवा ४ के। पूंजी प्रति वर्ष चार बार आवर्त करती है। यदि का = १८ महीने, तो सं = १२/१८ = २/३ अथवा पूंजी वर्ष में अपना केवल दो तिहाई आवर्त पूरा करती है। यदि उसका आवर्त काल कई वर्ष हो, तो उसका अभिकलन वर्ष के गुणजों में किया जाता है।

पूंजीपति के दृष्टिकोण से उसकी पूंजी का आवर्त काल वह समय है, जिसके लिए वह अपनी पूंजी द्वारा बेशी मूल्य के सृजन हेतु अपनी पूंजी पेशगी देता है, और उसे मूल रूप में वापस पाता है।

उत्पादन और स्वप्रसार की प्रक्रियाओं पर आवर्त के प्रभाव की अधिक ध्यानपूर्वक छानबीन करने से पहले हमें दो नये रूपों की जांच करनी चाहिए, जो परिचलन प्रक्रिया से पूंजी को प्राप्त होते हैं और उसके आवर्त के रूप को प्रभावित करते हैं।

अध्याय ८

स्थायी पूंजी तथा प्रचल पूंजी

१. रूप भेद

हम देख चुके हैं (Buch I, Kap. VI)* कि उस उत्पाद के सिलसिले में, जिसके निर्माण में स्थिर पूंजी भाग लेती है, उसका एक अंश वह निश्चित उपयोग रूप क़ायम रखता है, जिसमें वह उत्पादन प्रक्रिया में दाख़िल हुआ था। इसलिए निरन्तर दोहराई जानेवाली श्रम प्रक्रियाओं में वह अंश न्यूनाधिक काल तक उन्हीं कार्यों को सम्पन्न करता है। मिसाल के लिए, यह बात औद्योगिक इमारतों, मशीनों, आदि पर, संक्षेप में सभी चीज़ों पर लागू होती है, जिन्हें हम **श्रम के उपकरण** मानते हैं। स्थिर पूंजी का यह अंश उसी अनुपात में उत्पाद को मूल्य प्रदान करता है, जिसमें वह अपने उपयोग मूल्य के साथ अपना विनिमय मूल्य खोता है। यह मूल्य वितरण अथवा उत्पादन साधनों के मूल्य का उस उत्पाद में यह संक्रमण, जिसके निर्माण में वे सहायता देते हैं, औसतों के परिकलन द्वारा निर्धारित किया जाता है। इसे अपने कार्य की औसत मीयाद के ज़रिये मापा जाता है, जो उस क्षण से शुरू होती है, जब उत्पादन साधन उत्पादन प्रक्रिया में दाख़िल होते हैं और उस क्षण समाप्त होती है, जब वे पूर्णतः व्यय तथा लुप्त हो चुकते हैं और उनका उसी तरह के नये नमूने से प्रतिस्थापित होना अथवा पुनरुत्पादित होना आवश्यक हो जाता है।

इस प्रकार स्थिर पूंजी के इस अंश की, वास्तविक श्रम उपकरणों की विशेषता यह है:

पूंजी का एक अंश स्थिर पूंजी के रूप में, अर्थात उत्पादन साधनों के रूप में, पेशगी दिया गया है, जो श्रम प्रक्रिया के उपादानों के रूप में तब तक कार्य करते हैं, जब तक वे अपना वह स्वतंत्र उपयोग रूप क़ायम रखते हैं, जिसमें वे इस प्रक्रिया में दाख़िल होते हैं। तैयार उत्पाद और इसलिए उस उत्पाद के निर्माताओं को भी, जहां तक वे उत्पाद में रूपान्तरित हो चुके हैं, उत्पादन प्रक्रिया से निष्कासित कर दिया जाता है और वह उत्पादन क्षेत्र से निकलकर माल के रूप में परिचलन क्षेत्र में चला जाता है। किन्तु उत्पादन क्षेत्र में प्रवेश करने के बाद श्रम उपकरण उसे कभी नहीं छोड़ते। उनका कार्य उन्हें वहां रोके रखता है। पेशगी पूंजी मूल्य का एक अंश प्रक्रिया में श्रम उपकरणों के कार्य द्वारा निर्धारित इस रूप में **नियत** हो जाता है। इस कार्य के निष्पादन में और इस प्रकार श्रम उपकरणों की टूट-फूट में उनके मूल्य का एक हिस्सा उत्पाद में पहुंच जाता है, जब कि दूसरा हिस्सा श्रम उपकरणों में, और इस प्रकार उत्पादन प्रक्रिया में नियत रहता है। इस प्रकार नियत मूल्य श्रम उपकरण के

---

* हिन्दी संस्करण: अध्याय ८।—सं०

पूर्णतः घिस जाने तक बराबर घटता जाता है; उसका मूल्य न्यूनाधिक काल में निरन्तर दोहराई जानेवाली श्रम प्रक्रियाओं की शृंखला से पैदा होनेवाले उत्पादों की राशि में वितरित होता है। किन्तु जब तक वे श्रम उपकरण की हैसियत से काम लायक़ बने रहते हैं, और उनकी उसी तरह के नये उपकरणों से प्रतिस्थापना करना ज़रूरी नहीं होता, तब तक स्थिर पूंजी मूल्य की एक राशि उनमें नियत रहती है, जब कि मूल्य का दूसरा भाग, जो मूलतः उनमें नियत किया गया था, उत्पाद में स्थानान्तरित हो जाता है और इसलिए माल पूर्ति के संघटक अंश के रूप में परिचालित होता है। श्रम उपकरण जितना अधिक चलते, जितना धीरे-धीरे छीजते हैं, उतना ही उनका स्थिर पूंजी मूल्य इस उपयोग रूप में नियत रहेगा। किन्तु उनकी मीयाद जो भी हो, उनके मूल्य उत्पन्न करने का अनुपात सदा उसके कार्यशील रहने के समग्र काल का प्रतिलोम होता है। यदि समान मूल्य की दो मशीनों में एक पांच साल में और दूसरी दस साल में छीजती है, तो उतने ही काल में दूसरी की अपेक्षा पहली दुगना मूल्य उत्पन्न करेगी।

श्रम उपकरणों में नियत पूंजी मूल्य का यह भाग उसके किसी भी अन्य भाग की तरह ही परिचलन करता है। हम सामान्यरूपेण देख चुके हैं कि सारा पूंजी मूल्य निरन्तर परिचलन में रहता है और इस दृष्टि से सभी पूंजी प्रचल पूंजी होती है। किन्तु पूंजी के जिस भाग के परिचलन का अध्ययन हम यहां कर रहे हैं, वह विशिष्ट है। पहली बात यह कि वह अपने उपयोग रूप में परिचलन नहीं करती, बल्कि केवल उसका मूल्य परिचलन करता है और यह सब क्रमशः, थोड़ा-थोड़ा करके और उस अनुपात में होता है, जिसमें वह उससे उत्पाद में पहुंचता है, जो माल के रूप में परिचलन करता है। उसकी कार्यशीलता की समग्र अवधि में उसके मूल्य का एक भाग उन मालों से निरपेक्ष रूप में उसमें सदैव नियत रहता है, जिनके निर्माण में वह सहायता देता है। यही वह विशेषता है, जो स्थिर पूंजी के इस भाग को **स्थायी पूंजी** का रूप देती है। पूंजी के अन्य सभी भौतिक अंश, जो उत्पादन प्रक्रिया में पेशगी दिये जाते हैं, इसकी तुलना में **प्रचल** अथवा **अस्थिर पूंजी** होते हैं।

उत्पादन के कुछ साधन भौतिक रूप में उत्पाद में दाख़िल नहीं होते। श्रम उपकरणों द्वारा अपने कार्य के निष्पादन में उपभुक्त सहायक सामग्रियां, जैसे वाष्प इंजन द्वारा उपभुक्त कोयला या मात्र क्रिया में सहायता देनेवाली सहायक सामग्रियां, जैसे रोशनी करने के लिए गैस, आदि इसी तरह के साधन हैं। केवल उनका मूल्य ही उत्पाद के मूल्य का अंश बनता है। उत्पाद स्वयं अपने परिचलन में इन उत्पादन साधनों के मूल्य को भी परिचालित करता है। उनमें और स्थायी पूंजी में यह लक्षण सामान्य है। किन्तु वे जिस भी श्रम प्रक्रिया में दाख़िल होते हैं, उसमें पूरी तरह खप जाते हैं और इसलिए प्रत्येक नई श्रम प्रक्रिया में उनकी उसी प्रकार के नये उत्पादन साधनों से प्रतिस्थापना करना ज़रूरी होता है। अपना कार्य करते हुए वे अपना स्वतंत्र उपयोग रूप नहीं बनाये रखते। इसलिए जब तक वे कार्यरत रहते हैं, तब तक उनके पुराने उपयोग रूप में, उनके भौतिक रूप में पूंजी मूल्य का कोई अंश भी नियत नहीं रहता। इस परिस्थिति ने कि सहायक सामग्री का यह अंश भौतिक रूप में उत्पाद में नहीं बदलता, वरन उत्पाद के मूल्य में स्वयं अपने मूल्य के अनुसार ही उस मूल्य के एक अंश की हैसियत से दाख़िल होता है और इसी के साथ-साथ इस बात ने भी कि इन पदार्थों का कार्य केवल उत्पादन क्षेत्र तक ही सीमित रहता है, रैमज़े जैसे अर्थशास्त्रियों को उन्हें स्थायी पूंजी

की तरह वर्गीकृत करने के भ्रम में डाल दिया है (जिन्होंने साथ ही स्थायी पूंजी को स्थिर पूंजी के साथ उलझा दिया था)।*

इस प्रकार उत्पादन साधनों का जो भाग भौतिक रूप में उत्पाद में दाखिल होता है, अर्थात कच्चा माल, वग़ैरह, वह अंशतः ऐसे रूप धारण करता है, जिनसे वह आगे चलकर उपयोग वस्तुओं की हैसियत से उपभोग में दाखिल हो सकता है। सही अर्थों में श्रम उपकरण स्थायी पूंजी के भौतिक वाहक केवल उत्पादक ढंग से उपभुक्त होते हैं और वैयक्तिक उपभोग में प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि वे उस उत्पाद अथवा उपयोग मूल्य में दाख़िल नहीं होते, जिसके निर्माण में वे सहायक होते हैं, वरन उसके संबंध में पूरी तरह छीज जाने तक अपना स्वतंत्र रूप बनाये रखते हैं। परिवहन साधन इस नियम का अपवाद हैं। अपना उत्पादक कार्य करते हुए, अतः उत्पादन क्षेत्र में बने रहने के दौरान वे जो उपयोगी प्रभाव उत्पन्न करते हैं, वह – स्थान परिवर्तन – साथ ही वैयक्तिक उपभोग में, उदाहरण के लिए, यात्री के उपयोग में पहुंच जाता है। वह उनके उपयोग के लिए वैसे ही पैसा देता है, जैसे दूसरी चीज़ों के उपयोग के लिए। हम देख चुके हैं** कि मिसाल के लिए रसायन- उद्योग में कच्ची और सहायक सामग्री घुल-मिल जाती है। यही बात श्रम उपकरणों तथा सहायक और कच्ची सामग्री पर लागू होती है। इसी प्रकार खेती में मिट्टी के सुधार के लिए मिलाये गये पदार्थ अंशतः उगाये गये पौधों में पहुंच जाते हैं और उत्पाद बनाने में सहायता देते हैं। दूसरी ओर उनका प्रभाव दीर्घ अवधि तक, जैसे चार-पांच साल तक बना रहता है। अतः उनका एक अंश भौतिक रूप में उत्पाद में पहुंच जाता है और इस प्रकार अपना मूल्य उत्पाद में अंतरित कर देता है, जब कि उसका दूसरा अंश अपने पुराने उपयोग रूप में बंधा रहता है और अपना मूल्य बनाये रखता है। वह उत्पादन साधनों की तरह अपना अस्तित्व बनाये रखता है और फलतः स्थायी पूंजी का रूप बनाये रखता है। जांगर जानवर की हैसियत से बैल स्थायी पूंजी है। यदि वह खा डाला जाये, तो वह न श्रम साधन की तरह और न ही स्थायी पूंजी की तरह ही काम करेगा।

इसका कि उत्पादन साधनों में निविष्ट पूंजी मूल्य का एक भाग स्थायी पूंजी के लक्षण से युक्त है, निर्धारण अनन्य रूप से मूल्य के परिचलन करने के ढंग से किया जाता है। परिचलन का यह विशिष्ट ढंग उस विशिष्ट ढंग से उत्पन्न होता है, जिससे श्रम उपकरण अपना मूल्य उत्पाद को संचारित करता है अथवा उत्पादन प्रक्रिया के दौरान मूल्य निर्माता की तरह आचरण करता है। इसके अलावा यह ढंग उस विशेष तरीक़े से उत्पन्न होता है, जिसमें श्रम उपकरण श्रम प्रक्रिया में कार्य करते हैं।

हम जानते हैं कि जो उपयोग मूल्य एक श्रम प्रक्रिया से उत्पाद की तरह निकलता है, वह दूसरी श्रम प्रक्रिया में उत्पादन साधन की तरह से प्रवेश करता है।*** उत्पादन प्रक्रिया के दौरान उत्पाद का श्रम उपकरण की तरह कार्य ही उसे स्थायी पूंजी बनाता है। किन्तु जिस समय वह स्वयं प्रक्रिया से निकलकर आता ही है, उस समय वह किसी भी प्रकार स्थायी पूंजी नहीं होता। उदाहरण के लिए, मशीन निर्माता के उत्पाद अथवा माल के रूप में मशीन उसकी माल पूंजी में आती है। वह तब तक स्थायी पूंजी नहीं बन सकती कि जब तक उसके

---

* Karl Marx, *Theorien über den Mehrwert* (Vierter Band des *Kapitals*), 3. Teil, Berlin, 1962, SS. 323-25. – सं०

** कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', हिन्दी संस्करण, खण्ड १, पृष्ठ २०५-२०७। – सं०

*** कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', हिन्दी संस्करण, खण्ड १, पृष्ठ २०७। – सं०

ख़रीदार पूंजीपति द्वारा उसे उत्पादक ढंग से उपयोग में नहीं लाया जाता।

अन्य परिस्थितियां समान हों, तो स्थायित्व की मात्रा श्रम उपकरण के टिकाऊपन के साथ बढ़ती है। यह टिकाऊपन ही श्रम उपकरणों में नियत पूंजी मूल्य और उसके मूल्य के उस भाग के बीच, जो वह बारंबार आवर्तित श्रम प्रक्रियाओं के दौरान उत्पाद को देता है, अन्तर के परिमाण को निर्धारित करता है। यह मूल्य जितना ही धीरे दिया जाता है – और श्रम प्रक्रिया की प्रत्येक आवृत्ति में श्रम उपकरण मूल्य देते हैं – उतना ही स्थायी पूंजी बड़ी होती है और उत्पादन प्रक्रिया में लगी हुई पूंजी तथा उसमें खपनेवाली पूंजी का अन्तर अधिक होता है। इस अन्तर के समाप्त हो जाने के साथ श्रम उपकरण की उपयोगिता ख़त्म हो चुकी होती है और वह अपने उपयोग मूल्य के साथ अपने मूल्य को भी खो चुका होता है। वह अब मूल्य का निधान नहीं रह जाता है। स्थिर पूंजी के किसी भी अन्य भौतिक वाहक के समान श्रम उपकरण भी उत्पाद में अपना मूल्य उसी सीमा तक पहुंचाता है, जिस सीमा तक वह उपयोग मूल्य के साथ-साथ अपना मूल्य भी खोता जाता है, अतः यह स्पष्ट है कि वह जितना ही धीरे अपना उपयोग मूल्य गंवाता है, उतना ही अधिक समय तक वह उत्पादन प्रक्रिया में बना रहता है, उतना ही अधिक समय तक स्थिर पूंजी मूल्य उसमें नियत रहता है।

यदि ऐसा उत्पादन साधन, जो सही अर्थ में श्रम उपकरण नहीं है, जैसे सहायक सामग्री, कच्चा माल, अधतैयार माल, वग़ैरह, किन्तु मूल्य देने के और इसलिए अपने मूल्य परिचलन के ढंग के सिलसिले में श्रम उपकरणों जैसा ही आचरण करे, तो वह भी उसी तरह स्थायी पूंजी का भौतिक निधान, उसके अस्तित्व का एक रूप होता है। पूर्वोक्त मिट्टी के सुधारों के साथ ऐसी ही बात है, जिसमें भूमि में रासायनिक पदार्थ डाले जाते हैं, जिनका प्रभाव उत्पादन की अनेक नियतकालिक अवधियों अथवा वर्षों पर फैला होता है। यहां मूल्य का एक अंश उत्पाद के साथ-साथ अपने स्वतंत्र रूप में अथवा स्थायी पूंजी के रूप में विद्यमान रहता है, जब कि दूसरा अंश उत्पाद को अंतरित कर दिया गया है और इसलिए उसके साथ परिचलन करता है। इस मामले में उत्पाद में स्थायी पूंजी के मूल्य का एक अंश ही नहीं, वरन उपयोग मूल्य भी, वह पदार्थ, जिसमें मूल्य का यह अंश विद्यमान है, दाख़िल होता है।

बुनियादी ग़लती – "स्थायी" तथा "प्रचल पूंजी" संवर्गों को "स्थिर" तथा "परिवर्ती पूंजी" संवर्गों के साथ उलझाने – के अलावा धारणाओं की परिभाषा में अब तक अर्थशास्त्रियों की उलझन के मूल आधार ये हैं:

श्रम उपकरणों में भौतिक रूप से अन्तर्निहित कुछेक गुणों को स्थायी पूंजी के प्रत्यक्ष गुणों में बदल दिया जाता है; यथा कहिये कि किसी घर की भौतिक निश्चलता। लेकिन इस तरह के मामलों में यह साबित करना हमेशा आसान होता है कि श्रम के अन्य उपकरणों में, जो उसी तरह स्थायी पूंजी हैं, विपरीत गुण मौजूद हैं; जैसे जहाज़ की भौतिक गतिशीलता।

अथवा मूल्य के परिचलन से रूप की जो आर्थिक निश्चयात्मकता उत्पन्न होती है, उसे वस्तुगत गुण से उलझा दिया जाता है; मानो जो वस्तुएं स्वयं पूंजी हैं ही नहीं, वरन किन्हीं निश्चित सामाजिक परिस्थितियों में ही पूंजी बनती हैं, वे किसी निश्चित – स्थायी अथवा प्रचल पूंजी – के रूप में **अपने आपसे**, अपनी प्रकृति से ही पूंजी बन सकती हों। हम देख चुके हैं (Buch I, Kap. V)* कि प्रत्येक श्रम प्रक्रिया में, चाहे वह कैसी भी सामाजिक परिस्थितियों

---

* हिन्दी संस्करण: अध्याय ७। – सं०

में होती हो, उत्पादन साधन श्रम उपकरणों तथा श्रम वस्तुओं में विभाजित होते हैं। किन्तु वे दोनों उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति के अन्तर्गत ही पूंजी बनते हैं, जब वे, जैसा कि पिछले भाग में दिखाया जा चुका है, "उत्पादक पूंजी" बनते हैं। इस प्रकार श्रम प्रक्रिया के स्वरूप पर आधारित श्रम उपकरणों तथा श्रम वस्तु का अन्तर एक नये – स्थायी पूंजी और प्रचल पूंजी के – भेद के रूप में प्रतिबिम्बित होता है। तभी जो चीज़ श्रम उपकरण का कार्य करती है, वह स्थायी पूंजी बन जाती है। अपने भौतिक गुणों के कारण यदि उसमें श्रम उपकरण के अलावा अन्य कार्यों की क्षमता भी हो, तो वह अपने द्वारा किये जानेवाले विशिष्ट कार्य के अनुसार स्थायी पूंजी हो सकती है अथवा नहीं हो सकती है। जांगर पशुओं के रूप में जानवर स्थायी पूंजी है; खाद्य पशु के रूप में वे कच्चा माल हैं, जो अन्ततः उत्पाद की हैसियत से परिचलन में प्रवेश करता है; अतः वे प्रचल पूंजी हैं, स्थायी पूंजी नहीं।

किसी उत्पादन साधन का ख़ासी लंबी समयावधि के लिए पुनरावृत्त श्रम प्रक्रियाओं में, जो सम्बद्ध और अविच्छिन्न होती हैं और इसलिए उत्पादन काल का, अर्थात किसी उत्पाद को तैयार करने के लिए आवश्यक समयावधि का निर्माण करती हैं, मात्र नियतन ही पूंजीपति को – बिल्कुल स्थायी पूंजी की तरह ही – अपना धन न्यूनाधिक काल के लिए पेशगी देने के लिए मजबूर कर देता है, किन्तु उससे उसकी पूंजी स्थायी पूंजी नहीं बन जाती। मिसाल के लिए, बीज स्थायी पूंजी नहीं, वरन केवल कच्चा माल होते हैं, जिसे लगभग एक साल तक उत्पादन प्रक्रिया में रोके रखा जाता है। सभी पूंजी तब तक उत्पादन प्रक्रिया में रुकी रहती है, जब तक वह उत्पादक पूंजी की तरह काम करती है और इसलिए उत्पादक पूंजी के सब तत्व भी रुके रहते हैं, चाहे उनके भौतिक रूप, उनके कार्य, और उनके मूल्यों के परिचलन के ढंग कैसे भी क्यों न हों। नियतन काल लंबा है या छोटा – जो संबद्ध उत्पादन प्रक्रिया या उद्दिष्ट उपयोगी प्रभाव पर निर्भर करता है – इसका स्थायी तथा प्रचल पूंजी के भेद पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता।[20]

श्रम उपकरणों का एक भाग, जिसमें श्रम की सामान्य परिस्थितियां भी शामिल हैं, उत्पादन प्रक्रिया में श्रम उपकरण की तरह प्रवेश करने, अर्थात अपने उत्पादक कार्य के लिए प्रस्तुत किये जाने के साथ या तो स्थानबद्ध कर दिया जाता है, जैसे मशीनें अथवा प्रारम्भ से ही अपने निश्चल, स्थानबद्ध रूप में पैदा किया जाता है, यथा मिट्टी का सुधार, कारख़ानों की इमारतें, भट्ठियां, नहरें, रेलें, वग़ैरह। जिस उत्पादन प्रक्रिया में श्रम उपकरण को कार्य करना है, उससे उसका निरन्तर संसर्ग यहां उसके अस्तित्व के भौतिक रूप के कारण भी है। दूसरी ओर श्रम उपकरण अपने भौतिक रूप में निरन्तर स्थान परिवर्तन कर सकता है, चल-फिर सकता है, फिर भी उत्पादन प्रक्रिया में लगातार बना रह सकता है; यथा रेल इंजन, जहाज़, लद्दू जानवर, इत्यादि। एक मामले में निश्चलता उसे स्थायी पूंजी का स्वरूप प्रदान नहीं करती, न दूसरे में गतिशीलता उससे यह स्वरूप छीन ही लेती है। किन्तु यह तथ्य कि कुछ श्रम उपकरण स्थानबद्ध होते हैं, ज़मीन में उनकी जड़ जमी होती है, स्थायी पूंजी के इस भाग को राष्ट्रों के अर्थतंत्र में एक असामान्य भूमिका प्रदान कर देता है। उन्हें विदेश नहीं भेजा जा सकता, मालों की हैसियत से वे विश्व बाज़ार में परिचलन नहीं कर सकते। इस स्थायी पूंजी पर स्वत्व

[20] कौन सी पूंजी स्थायी है और कौन सी प्रचल, यह तय कर पाने की कठिनाई के कारण श्री लोरेंज़ स्टेइन सोचते हैं कि यह भेद केवल विषय विवेचन की सुविधा के लिए किया गया है।

बदल सकता है, उसे बेचा श्रौर ख़रीदा जा सकता है, श्रौर इस सीमा तक वह श्रधिकल्पित रूप में परिचलन कर सकती है। ये स्वत्वाधिकार विदेशी बाज़ारों में भी परिचालित हो सकते हैं, यथा, उदाहरण के लिए, शेयरों या श्रंशों [स्टॉक] के रूप में। किन्तु स्थायी पूंजी के इस वर्ग के मालिकों में व्यक्तियों के बदलने से राष्ट्रीय संपदा के श्रचल श्रौर भौतिक रूप से स्थायी भाग तथा उसके चल भाग के बीच का संबंध नहीं बदल जाता।[21]

स्थायी पूंजी के श्रसामान्य परिचलन का परिणाम होता है श्रसामान्य श्रावर्त। स्थायी पूंजी श्रपने भौतिक रूप में मूल्य का जो भाग छीजन में खोती है, वह उत्पाद के मूल्यांश के रूप में परिचलन करता है। श्रपने परिचलन द्वारा उत्पाद श्रपने को माल से द्रव्य में परिवर्तित कर लेता है, इसलिए यही बात श्रम उपकरण के उस मूल्यांश पर भी लागू होती है, जो उत्पाद द्वारा परिचालित होता है श्रौर यह मूल्यांश द्रव्य रूप में परिचलन प्रक्रिया से उसी श्रनुपात में निकलता रहता है, जिसमें यह श्रम उपकरण उत्पादन प्रक्रिया में मूल्य का निधान नहीं रहता है। इस प्रकार इसका मूल्य दोहरा श्रस्तित्व प्राप्त कर लेता है। उसका एक भाग उत्पादन प्रक्रिया में उसके उपयोग रूप श्रथवा भौतिक रूप से जुड़ा रहता है। दूसरा भाग द्रव्य की शक्ल में उससे जुदा हो जाता है। श्रम उपकरण का वह मूल्यांश, जो भौतिक रूप में विद्यमान रहता है, श्रपना कार्य करते हुए निरन्तर घटता जाता है, जब कि द्रव्य में परिवर्तित मूल्यांश लगातार तब तक बढ़ता जाता है कि श्रम उपकरण श्रन्ततः निःशेष हो जाता है श्रौर उसका समस्त मूल्य उसके काय से जुदा होकर द्रव्य में परिवर्तित हो जाता है। यहां उत्पादक पूंजी के इस तत्व के श्रावर्त की श्रसामान्यता स्पष्ट हो जाती है। उसके मूल्य का द्रव्य में रूपान्तरण उसी गति से होता है, जिससे इस मूल्य के वाहक का द्रव्य में प्यूपीकरण या कोषीकरण होता है। किन्तु द्रव्य रूप से उसका उपयोग रूप में पुनःपरिवर्तन मालों के उनके श्रन्य उत्पादन तत्वों में पुनःपरिवर्तन से श्रलग सम्पन्न होता है श्रौर उसका निर्धारण स्वयं श्रपने पुनरुत्पादन काल, श्रर्थात उस समय द्वारा होता है, जिसके दौरान श्रम उपकरण क्षय होता है श्रौर उसकी वैसे ही दूसरे उपकरण से प्रतिस्थापना करना ज़रूरी हो जाता है। मान लीजिये, १०,००० पाउंड की मशीन दस साल काम देती है; तब उसके लिए मूलतः पेशगी दिये मूल्य का श्रावर्त काल दस वर्ष होगा। इस काल के समाप्त होने तक उसका नवीकरण श्रावश्यक न होगा श्रौर वह श्रपने भौतिक रूप में कार्य करती रहेगी। इस बीच उसका मूल्य उन मालों के मूल्यांश के रूप में थोड़ा-थोड़ा करके परिचालित होता रहता है, जिनके निरन्तर उत्पादन का वह काम करती श्रौर इस प्रकार वह धीरे-धीरे द्रव्य में बदलती जाती है, यहां तक कि दस वर्ष समाप्त होने पर वह श्रन्ततः पूरी तरह द्रव्य रूप धारण कर लेती है श्रौर फिर द्रव्य से मशीन में पुनःपरिवर्तित की जाती है, दूसरे शब्दों में श्रपना श्रावर्त पूरा कर चुकती है। जब तक यह पुनरुत्पादन काल नहीं श्राता, तब तक उसका मूल्य धीरे-धीरे श्रारक्षित द्रव्य निधि के रूप में संचित होता रहता है।

उत्पादक पूंजी के शेष तत्व श्रंशतः स्थिर पूंजी के वे तत्व होते हैं, जो सहायक सामग्री श्रौर कच्चे माल की तरह विद्यमान होते हैं, श्रौर श्रंशतः उस परिवर्ती पूंजी के तत्व होते हैं, जो श्रम शक्ति में लगाई गई है।

---

[21] पाण्डुलिपि ४ का श्रन्त, पाण्डुलिपि २ का प्रारम्भ।—फ़े० एं०

श्रम प्रक्रिया तथा बेशी मूल्य की उत्पादन प्रक्रिया के विश्लेषण (Buch I, Kap. V)* ने दिखाया था कि पूंजी के ये विभिन्न संघटक उत्पाद के सृजकों तथा मूल्यों के सृजकों के रूप में नितान्त भिन्न आचरण करते हैं। स्थिर पूंजी के उस भाग का मूल्य, जिसमें सहायक सामग्री और कच्चा माल समाहित होते हैं, मात्र अंतरित मूल्य की तरह ही उत्पाद के मूल्य में पुनः प्रकट होता है, जैसे उस भाग का मूल्य, जिसमें श्रम उपकरण समाहित होते हैं, जब कि श्रम शक्ति श्रम प्रक्रिया के माध्यम से अपने मूल्य का समतुल्य उत्पाद में जोड़ देती है; दूसरे शब्दों में यथार्थतः अपने मूल्य का पुनरुत्पादन करती है। इसके अलावा सहायक सामग्री का एक भाग – ईंधन, रोशनी की गैस, वग़ैरह – भौतिक रूप से उत्पाद में दाख़िल हुए बिना श्रम प्रक्रिया के दौरान खप जाता है, जब कि दूसरा भाग भौतिक रूप से उत्पाद में प्रवेश करता है और उसका भौतिक सार तत्व बन जाता है। किन्तु जहां तक परिचलन का, और इसलिए आवर्त विधि का सम्बन्ध है, ये सब भेद महत्वहीन हैं। चूंकि उत्पाद के निर्माण में सहायक सामग्री और कच्चा माल पूरी तरह खप जाते हैं, इसलिए वे अपना मूल्य पूरी तरह उत्पाद को अंतरित कर देते हैं। अतः यह मूल्य समग्रतः उत्पाद द्वारा परिचालित होता है, अपने को द्रव्य में और द्रव्य से फिर माल के उत्पादन तत्वों में रूपांतरित करता है। उसके आवर्त में व्यवधान नहीं पड़ता, जैसे स्थायी पूंजी के आवर्त में पड़ता है, वरन वह अपने रूपों के समूचे परिपथ से निर्बाध गुज़र जाता है, जिससे उत्पादक पूंजी के ये तत्व वस्तुरूप में निरन्तर नवीकृत होते रहते हैं।

जहां तक श्रम शक्ति में निविष्ट उत्पादक पूंजी के परिवर्ती घटक का सम्बन्ध है, इस पर ध्यान देना चाहिए कि श्रम शक्ति एक निश्चित अवधि के लिए ख़रीदी जाती है। जैसे ही पूंजीपति उसे ख़रीदता है और उत्पादन प्रक्रिया में समाविष्ट करता है, वह उसकी पूंजी का एक संघटक अंश, उसका परिवर्ती संघटक अंश बन जाती है। एक कालावधि में श्रम शक्ति प्रति दिन कार्य करती है, जिसमें वह उत्पाद में अपना दिन भर का मूल्य ही नहीं, वरन उसके ऊपर बेशी मूल्य भी जोड़ती है। यहां अभी हम इस बेशी मूल्य पर विचार नहीं करेंगे। जब श्रम शक्ति ख़रीदी जा चुकी होती है और अपना कार्य, मसलन, हफ़्ते भर के लिए सम्पन्न कर चुकी होती है, तब हस्बमामूल, एक मीयाद के भीतर उसकी ख़रीद का लगातार नवीकरण ज़रूरी होता है। उसके मूल्य के समतुल्य को, जिसे श्रम शक्ति अपने कार्य के दौरान उत्पाद में जोड़ती है और जो उत्पाद के परिचलन के फलस्वरूप द्रव्य में रूपान्तरित होता है द्रव्य से श्रम शक्ति में लगातार पुनःपरिवर्तित किया जाना चाहिए अथवा अपने रूपों के पूरे परिपथ से गुज़रना चाहिए, अर्थात यदि निरन्तर उत्पादन के परिपथ में व्यवधान नहीं डालना है, तो उसका आवर्त होना चाहिए।

इसलिए उत्पादक पूंजी के मूल्य का वह भाग, जो श्रम शक्ति के लिए पेशगी दिया जाता है, पूर्णतः उत्पाद को अंतरित हो जाता है (हम यहां बेशी मूल्य के प्रश्न का विवेचन लगातार छोड़ रहे हैं), उसके साथ परिचलन क्षेत्र से सम्बद्ध दोनों रूपान्तरणों से गुज़रता है और इस निरन्तर नवीकरण के फलस्वरूप उत्पादन प्रक्रिया में सदा समाविष्ट रहता है। इसलिए जहां तक मूल्य सृजन का प्रश्न है, श्रम शक्ति तथा स्थिर पूंजी के उन संघटक अंशों का, जो **स्थायी पूंजी के अंगीभूत नहीं होते**, संबंध अन्यथा चाहे जितना भिन्न हो, स्थायी पूंजी के विपरीत

* हिन्दी संस्करण: अध्याय ७। – सं०

उसके मूल्य के इस प्रकार के आवर्त में श्रम शक्ति की उनसे समानता है। उत्पादक पूंजी के ये घटक – श्रम शक्ति और उत्पादन साधनों में निविष्ट उसके मूल्य के अंश, जो स्थायी पूंजी के अंगीभूत नहीं होते – अपनी सामान्य आवर्त विशेषताओं के कारण स्थायी पूंजी के सामने **प्रचल** अथवा **अस्थिर** पूंजी के रूप में आते हैं।

हम पहले ही दिखा चुके हैं* कि श्रमिक को उसकी श्रम शक्ति के उपयोग के लिए पूंजीपति जो पैसा देता है, वह श्रमिक के आवश्यक निर्वाह साधनों के सामान्य समतुल्य रूप के अलावा और कुछ नहीं है। इस सीमा तक परिवर्ती पूंजी भी तत्वतः निर्वाह साधन होती है। किन्तु इस प्रसंग में, जहां हम आवर्त पर विचार कर रहे हैं, प्रश्न रूप का है। पूंजीपति श्रमिक के निर्वाह साधन नहीं, उसकी श्रम शक्ति ख़रीदता है। जो चीज़ उसकी पूंजी के परिवर्ती भाग का निर्माण करती है, वह श्रमिक के निर्वाह साधन नहीं, उसकी कार्यरत श्रम शक्ति है। श्रम प्रक्रिया में पूंजीपति जिस चीज़ की उत्पादक खपत करता है, वह स्वयं श्रम शक्ति है, श्रमिक के निर्वाह साधन नहीं। स्वयं श्रमिक ही अपनी श्रम शक्ति के लिए प्राप्त धन को निर्वाह साधनों में परिवर्तित करता है, ताकि उन्हें जीवित रहने के लिए श्रम शक्ति में पुनःपरिवर्तित कर सके, ठीक जैसे, उदाहरणतः, पूंजीपति पैसा लेकर जो माल बेचता है, उनके बेशी मूल्य के एक भाग को वह अपने निर्वाह साधनों में बदल लेता है और इसके लिए इस कथन को प्रमाणित नहीं करना होता कि उसके मालों का ख़रीदार उसे उसके निर्वाह साधन देता है। यदि श्रमिक को उसकी मजदूरी का एक भाग निर्वाह साधनों के रूप में, वस्तुरूप में भी दिया जाये, तो आज के लिहाज़ से यह दूसरा लेन-देन ही होगा। वह अपनी श्रम शक्ति एक निश्चित क़ीमत पर यह समझकर बेचता है कि इस क़ीमत का एक भाग उसे निर्वाह साधनों के रूप में मिलेगा। इससे केवल अदायगी का रूप बदलता है, यह तथ्य नहीं कि दरअसल वह जो कुछ बेच रहा है, वह उसकी श्रम शक्ति है। यह दूसरा लेन-देन है, जो श्रमिक और पूंजीपति के बीच नहीं, बल्कि मालों के ग्राहक के रूप में श्रमिक और मालों के विक्रेता के रूप में पूंजीपति के बीच होता है, जब कि पहले लेन-देन में श्रमिक एक माल (अपनी श्रम शक्ति) का विक्रेता और पूंजीपति उसका ग्राहक होता है। यह बात ठीक वैसी ही है, जैसे कोई पूंजीपति अपना कोई माल, मसलन मशीन, लोहा कारख़ाने को बेचने के बाद उसे किसी दूसरे माल, मसलन, लोहे से प्रतिस्थापित कर लेता है। इसलिए स्थायी पूंजी के विरुद्ध प्रचल पूंजी का निश्चित स्वरूप श्रमिक के निर्वाह साधन नहीं ग्रहण करते, न उसकी श्रम शक्ति ही, बल्कि उत्पादक पूंजी का वह मूल्यांश करता है, जो श्रम शक्ति में लगाया जाता है और जो अपने आवर्त के रूप के कारण स्थिर पूंजी के कुछ संघटक अंशों के समान और कुछ के विपरीत यह स्वरूप प्राप्त करता है।

श्रम शक्ति में तथा उत्पादन साधनों में प्रचल पूंजी का मूल्य उसी अवधि के लिए जिसके दौरान उत्पाद उत्पादन प्रक्रिया में होता है और स्थायी पूंजी के परिमाण द्वारा निर्धारित उत्पादन के पमाने के अनुपात में पेशगी दिया जाता है। यह मूल्य उत्पाद में पूर्णतः प्रवेश करता है, अतः उसकी बिक्री से वह परिचलन क्षेत्र से पूर्णतः वापस आ जाता है, और उसे नये सिरे से पेशगी दिया जा सकता है। पूंजी का प्रचल घटक जिस श्रम शक्ति और जिन उत्पादन साधनों में विद्यमान होता है, वे तैयार उत्पाद के निर्माण और उसकी बिक्री के लिए आवश्यक सीमा

* कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', हिन्दी संस्करण, खंड १, अध्याय ६, पृष्ठ १९०-२००। – सं०

तक परिचलन से निकाल लिये जाते हैं, किन्तु उन्हें वापस ख़रीदकर, द्रव्य रूप से उत्पादन तत्वों में पुन:परिवर्तित करके निरंतर प्रतिस्थापित और नवीकृत करते रहना होता है। उन्हें बाजार से एक बार में स्थायी पूंजी के तत्वों के मुक़ाबले थोड़ी मात्रा में निकाला जाता है; किन्तु उन्हें बाजार से इतनी ही ज्यादा प्रायिकता से निकालना और उनमें निवेशित पेशगी पूंजी को अल्पतर अन्तरालों के बाद नवीकृत करना होता है। यह निरन्तर नवीकरण उनके समग्र मूल्य को परिचालित करनेवाले उत्पाद के सतत परिवर्तन द्वारा सम्पन्न किया जाता है। और अन्ततः वे न केवल अपने मूल्य ही, वरन भौतिक रूप में भी रूपान्तरणों के समूचे परिपथ से गुजर जाते हैं। वे मालों से उन्हीं मालों के उत्पादन तत्वों में निरन्तर पुन:परिवर्तित होते हैं।

श्रम शक्ति अपने मूल्य के साथ उत्पाद में बेशी मूल्य जोड़ती है – साकार निर्वेतन श्रम। तैयार उत्पाद द्वारा यह निरन्तर परिचालित होता और उसके मूल्य के अन्य तत्वों की ही तरह द्रव्य में परिवर्तित होता रहता है। किन्तु यहां, जहां हमारा मुख्यतः पूंजी मूल्य के आवर्त से ही सरोकार है और उसी के साथ होनेवाले बेशी मूल्य के आवर्त से नहीं, हम फ़िलहाल उसकी चर्चा नहीं करेंगे।

इस विवेचन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं:

१. स्थायी तथा प्रचल पूंजी के रूपों की निश्चयात्मकता केवल उत्पादन प्रक्रिया में कार्यशील पूंजी मूल्य के विभिन्न आवर्तों अथवा **उत्पादक पूंजी** के विभिन्न आवर्तों से उत्पन्न होती है। अपनी बारी में आवर्त का यह अन्तर उत्पादक पूंजी के विभिन्न घटकों द्वारा अपना मूल्य उत्पाद को अंतरित करने के ढंग से उत्पन्न होता है, यह न तो उत्पाद के मूल्य सृजन में इन घटकों की भिन्न-भिन्न भूमिका के कारण होता है और न स्वप्रसार प्रक्रिया में उनके अपने विशेष आचरण के कारण ही। अन्ततः उत्पाद को मूल्य पहुंचाने में अन्तर और इसलिए उत्पाद द्वारा इस मूल्य को परिचालित करने और उत्पाद के रूपांतरणों द्वारा अपने मूल भौतिक रूप में नवीकरण करने के ढंगों का अन्तर उत्पादक पूंजी के अस्तित्व के आकारों के अन्तर से उत्पन्न होता है, जहां उसका एक भाग किसी अलग उत्पाद की रचना के दौरान पूरी तरह खप जाता है और दूसरा केवल धीरे-धीरे उपयोग में आता है। इसलिए सिर्फ़ उत्पादक पूंजी को ही स्थायी और प्रचल पूंजी में विभाजित किया जा सकता है। किन्तु यह विपर्यय औद्योगिक पूंजी के अस्तित्व के अन्य दो रूपों, अर्थात माल पूंजी और द्रव्य पूंजी पर लागू नहीं होता, न ही वह उत्पादक पूंजी के प्रति इन दोनों रूपों के विपर्यय की तरह विद्यमान रहता है। वह केवल **उत्पादक पूंजी के लिए और उसकी परिधि के भीतर** ही विद्यमान रहता है। द्रव्य पूंजी और माल पूंजी की कितनी ही मात्रा पूंजी रूप में कार्यशील हो और उनके परिचलन में चाहे जितना प्रवाह हो, वे उत्पादक पूंजी के प्रचल घटकों में परिवर्तित हुए बिना स्थायी पूंजी से भिन्न प्रचल पूंजी नहीं बन सकतीं। किन्तु चूंकि पूंजी के ये दोनों रूप परिचलन क्षेत्र में रहते हैं, इसलिए जैसा कि हम देखेंगे, ऐडम स्मिथ के जमाने से ही राजनीतिक अर्थशास्त्र को उन्हें उत्पादक पूंजी के प्रचल भाग के समान समझने और उन्हें प्रचल पूंजी के संवर्ग में रखने की भ्रांति में डाला जाता रहा है। उत्पादक पूंजी के मुक़ाबले वे सचमुच प्रचल पूंजी हैं, किन्तु स्थायी पूंजी के मुक़ाबले वे प्रचल पूंजी नहीं हैं।

२. पूंजी के स्थायी संघटक अंश के आवर्त में, अतः उसके लिए आवश्यक आवर्त काल में भी पूंजी के प्रचल संघटक अंशों के अनेक आवर्त समाहित होते हैं। जिस अवधि में स्थायी पूंजी एक आवर्त करती है, उसमें प्रचल पूंजी कई बार आवर्त कर लेती है। उत्पादक पूंजी के

मूल्य का एक संघटक अंश स्थायी पूंजी के रूप की स्पष्टता सिर्फ़ तभी प्राप्त करता है कि जब वे उत्पादन साधन, जिनमें वह विद्यमान है, उत्पाद निर्माण के लिए और माल के रूप में उत्पादन प्रक्रिया से उसके निष्कासन की आवश्यक अवधि में पूरी तरह से छीज नहीं जाते। उनके मूल्य का एक भाग अब भी परिरक्षित पुराने उपयोग रूप में बंधा रहेगा, जब कि दूसरा भाग तैयार उत्पाद द्वारा परिचालित होगा और दूसरी तरफ़ यह परिचलन पूंजी के अस्थिर संघटक अंशों के समग्र मूल्य को एक साथ परिचालित करता है।

३. उत्पादक पूंजी का मूल्यांश, स्थायी पूंजी में निवेशित अंश, उस समूची अवधि के लिए इकमुश्त पेशगी दिया जाता है, जिसमें उत्पादन साधनों का वह अंश प्रयुक्त होता है, जिसमें स्थायी पूंजी समाहित होती है। इसलिए पूंजीपति यह सारा मूल्य एकबारगी परिचलन में डाल देता है। किन्तु इसे परिचलन से उन मूल्यांशों के सिद्धिकरण द्वारा, जिन्हें स्थायी पूंजी मालों में थोड़ा-थोड़ा करके जोड़ती है, केवल क्रमशः और थोड़ा-थोड़ा करके ही निकाला जाता है। दूसरी ओर स्वयं उत्पादन साधन, जिनमें उत्पादक पूंजी का एक संघटक अंश नियत हो जाता है, परिचलन से सब एकबारगी निकाल लिये जाते हैं और उन्हें उत्पादन प्रक्रिया में उनके कार्यशील रहने के सारे समय के लिए समाविष्ट कर लिया जाता है। किन्तु उन्हें इस अवधि में उसी प्रकार के नये नमूनों द्वारा प्रतिस्थापना की जरूरत नहीं होती, न पुनरुत्पदन की ही जरूरत होती है। स्वयं अपने नवीकरण के तत्वों को परिचलन से निकाले बिना वे परिचलन में डाले माल के निर्माण में न्यूनाधिक काल तक योगदान करते रहते हैं। अतः उनके लिए यह आवश्यक नहीं होता कि इस अवधि में पूंजीपति अपनी पेशगी का नवीकरण करे। अन्ततः स्थायी पूंजी में निवेशित पूंजी मूल्य उन उत्पादन साधनों की, जिनमें यह पूंजी मूल्य अस्तित्वमान होता है, कार्यशीलता की अवधि में अपने रूपों के परिपथ से भौतिक रूप में नहीं गुज़रता, वरन केवल अपने मूल्य के संदर्भ में ही गुज़रता है और वह भी केवल थोड़ा-थोड़ा करके और क्रमशः ही। दूसरे शब्दों में उसके मूल्य का एक भाग द्रव्य से अपने मूल भौतिक रूप में पुनःपरिवर्तित हुए बिना निरन्तर परिचालित होता और मालों के मूल्यांश के रूप में द्रव्य में परिवर्तित होता रहता है। उत्पादन साधनों के भौतिक रूप में द्रव्य का यह पुनःपरिवर्तन उसकी कार्यशीलता की अवधि के समाप्त होने तक सम्पन्न नहीं होता, जब उत्पादन साधन पूरी तरह उपयुक्त हो चुके होते हैं।

४. उत्पादन प्रक्रिया को अविच्छिन्न बना रहना हो, तो उसमें प्रचल पूंजी के तत्व उतने ही स्थायी रूप में नियत होते हैं, जितने स्थायी पूंजी के तत्व। किन्तु प्रचल पूंजी के इस प्रकार नियत तत्वों का वस्तुरूप में निरन्तर नवीकरण होता रहता है (उत्पादन साधनों का उसी प्रकार के नये उत्पादों द्वारा, श्रम शक्ति का निरन्तर नयी ख़रीदों द्वारा), जब कि स्थायी पूंजी के मामले में न तो उसके तत्व स्वयं नवीकृत होते हैं और न जब तक वे बने रहते हैं, तब तक उनकी ख़रीद का नवीकरण आवश्यक होता है। उत्पादन प्रक्रिया में कच्चा माल और सहायक सामग्री सदा ही विद्यमान रहते हैं, परन्तु तैयार उत्पाद के निर्माण में पुराने तत्वों के खप चुकने पर हमेशा उसी प्रकार के नये उत्पाद ही होते हैं। इसी तरह श्रम शक्ति भी उत्पादन प्रक्रिया में निरन्तर रहती है, लेकिन हमेशा नई ख़रीदों के ज़रिये ही, जिसमें अवसर व्यक्तियों का बदलना सन्निहित रहता है। किन्तु बिल्कुल वही इमारतें, मशीनें, वग़ैरह प्रचल पूंजी के पुनरावृत्त आवर्तों के दौरान उत्पादन की पुनरावृत्त प्रक्रियाओं में कार्य करती रहती हैं।

२. स्थायी पूंजी के संघटक अंश, प्रतिस्थापना, मरम्मत तथा संचय

पूंजी के किसी भी निवेश में स्थायी पूंजी के पृथक तत्वों का जीवन काल भिन्न-भिन्न होता है, अतः उनका आवर्त काल भी भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरण के लिए, रेलवे में, रेल की पटरियों, स्लीपरों, धुस्सों, स्टेशनों, पुलों, सुरंगों, इंजनों और डिब्बों की कार्य अवधि तथा उनके पुनरुत्पादन काल और इसलिए उनके लिए पेशगी दी पूंजी के आवर्त काल भी भिन्न-भिन्न होते हैं। बहुत साल तक इमारतों, प्लैटफ़ार्मों, टंकियों, मार्ग सेतुओं, सुरंगों, कटानों, बांधों – संक्षेप में उन सब चीजों को जिन्हें इंगलैंड के रेल उद्यम में "works of art" कहा जाता है, किसी तरह के नवीकरण की दरकार नहीं होती। जो चीजें सबसे ज्यादा छीजती हैं, वे रेल की पटरियां और चल स्टॉक – गाड़ियां – हैं।

शुरू में आधुनिक रेलमार्गों में प्रचलित और प्रमुखतम व्यवहारकुशल इंजीनियरों द्वारा पोषित धारणा यह थी कि एक रेलमार्ग एक शताब्दी चलेगा और पटरियों की टूट-फूट इतनी सूक्ष्म होगी कि सभी वित्तीय तथा अन्य व्यावहारिक मामलों में उसे नज़रअंदाज़ किया जा सकता था; पटरियों का जीवन काल सौ से डेढ़ सौ साल माना जाता था। किन्तु जल्दी ही पता चला कि रेलमार्ग की जिन्दगी, जो स्वभावतः इंजनों की रफ़्तार, रेलगाड़ियों की संख्या और उनके वज़न, पटरियों के व्यास और ऐसी ही बहुत सी अन्य सम्बद्ध परिस्थितियों पर निर्भर करती है, औसतन बीस साल से ज्यादा नहीं होती। कुछ रेलवे जंक्शनों, यातायात के बड़े केन्द्रों में पटरियां हर साल ही छीज जाती हैं। १८६७ के आसपास इस्पात की पटरियों का चलन शुरू हुआ। इनकी लागत लोहे की पटरियों से दुगनी थी, लेकिन वे उनसे दुगना चलती भी थीं। लकड़ी के स्लीपरों का जीवन काल बारह से पन्द्रह साल तक था। चल स्टॉक के बारे में भी पता चला कि मुसाफ़िर गाड़ियों की अपेक्षा माल गाड़ी के डिब्बे ज्यादा जल्दी छीजते हैं। १८६७ में एक इंजन का जीवन काल दस से बारह साल तक आंका गया था।

टूट-फूट सबसे पहले इस्तेमाल का नतीजा होता है। साधारणतः "पटरियों की छीजन गाड़ियों की संख्या के अनुपात में होती है" (आर० सी०, क्रमांक १७६४५)।[22] गति की बढ़ती के साथ, रेलमार्ग की छीजन गति के वर्गफल की अपेक्षा उच्चतर अनुपात में बढ़ती है, अर्थात यदि इंजन की रफ़्तार दुगनी कर दी जाये, तो रेलमार्ग की छीजन चौगुने से ज्यादा बढ़ जायेगी (आर० सी०, क्रमांक १७०४६)।

इसके अलावा प्राकृतिक शक्तियों के प्रभाव से भी टूट-फूट होती है। मिसाल के लिए, स्लीपर वास्तव में छिजाई से ही नहीं, सड़ने से भी नष्ट होते हैं। "रेलमार्ग के रख-रखाव की लागत उस पर से गुज़रनेवाले यातायात द्वारा हुई टूट-फूट पर इतना निर्भर नहीं करती, जितना वातावरण के प्रभाव में अनावृत्त लकड़ी, लोहे, ईंटों और मसाले के बढ़िया-घटिया होने पर। एक महीने की सख़्त बारिश से रेलमार्ग का जितना नुक़सान होगा, उतना साल भर के

---

[22] जिन उद्धरणों के बाद आर० सी० लिखा है वे Royal Commission on Railways. Minutes of Evidence taken before the Commissioners. Presented to both Houses of Parliament, London, 1867 – से हैं। प्रश्न और उत्तर क्रम संख्या में हैं और यहां क्रमांक दिये गये हैं।

यातायात से नहीं।" (आर० पी० विलियम्स, "On the Maintenance of Permanent Way", सिविल इंजीनियर संस्थान में पढ़ा हुआ निबन्ध, शरत, १८६७*।)

अन्त में, आधुनिक उद्योग में और सभी जगहों की तरह यहां भी, नैतिक ह्रास की भी भूमिका होती है। दस साल बीतने पर उतनी ही गाड़ियां और इंजन ३० हज़ार पाउंड में ख़रीदे जा सकते हैं, जितने पहले ४० हज़ार पाउंड में ख़रीदे जाते। चल स्टॉक के इस मूल्य ह्रास को तब भी बाज़ार भाव का २५ प्रतिशत रखना होगा, जब उसके उपयोग मूल्य में ज़रा भी ह्रास नहीं हुआ होता है। (लार्डनर, *Railway Economy*)।

"सुरंग रेल पुल अपने वर्तमान रूप में प्रतिस्थापित नहीं किये जायेंगे।" (क्योंकि अब ऐसे पुलों के बेहतर रूप सुलभ हैं।) "साधारण मरम्मत, धीरे-धीरे हटाना और प्रतिस्थापना करना व्यवहार्य नहीं हैं" (डब्ल्यू० पी० ऐडम्स, *Roads and Rails*, लन्दन, १८६२)। औद्योगिक प्रगति के साथ-साथ श्रम उपकरण लगातार बहुत कुछ परिशोधित होते रहते हैं। अतः वे अपने मूल रूप में नहीं, परिशोधित रूप में प्रतिस्थापित होते हैं। एक ओर, किसी विशेष भौतिक रूप में निवेशित और उस रूप में एक विशेष औसत जीवन काल से युक्त स्थायी पूंजी की राशि नई मशीनों, आदि के सिर्फ़ धीमी गति से ही प्रचलन का कारण होती है और इसलिए उद्योग में उन्नत श्रम उपकरणों के तेज़ी से व्यापक पैमाने पर प्रचलन में बाधा होती है। दूसरी ओर प्रतिद्वन्द्विता पुराने श्रम उपकरणों की, उनकी नैसर्गिक जिन्दगी के ख़ात्मे से पहले ही, नये उपकरणों से प्रतिस्थापना के लिए मजबूर करती है, ख़ास तौर से निर्णायक परिवर्तनों के होने पर। काफ़ी बड़े सामाजिक पैमाने पर कारख़ानों की यंत्र-सज्जा के इस तरह के समयपूर्व नवीकरण मुख्यतः विपत्तियों या संकटों के कारण करने पड़ते हैं।

टूट-फूट या छीजन (नैतिक ह्रास को छोड़कर) का अर्थ यह होता है कि मूल्य का वह भाग, जिसे स्थायी पूंजी उपयोग में लाये जाने पर उत्पाद को क्रमशः अपने उपयोग मूल्य की औसत हानि के अनुपात में अंतरित कर देती है।

यह छीजन अंशतः इस प्रकार होती है कि स्थायी पूंजी का एक ख़ास औसत टिकाऊपन रहता है। वह इस समूची अवधि के लिए इकमुश्त पेशगी दी जाती है। यह मीयाद ख़त्म होने पर उसे पूरी तरह प्रतिस्थापित करना होता है। जहां तक श्रम के जीवित उपकरणों, जैसे घोड़ों का सम्बन्ध है, उनका पुनरुत्पादन काल स्वयं प्रकृति द्वारा निर्धारित होता है। श्रम उपकरणों के नाते उनका औसत जीवन काल प्रकृति के नियमों द्वारा निश्चित किया जाता है। जैसे ही यह अवधि समाप्त होती है, उनकी नये उपकरणों से प्रतिस्थापना करना जरूरी होता है। घोड़े की थोड़ा-थोड़ा करके प्रतिस्थापना सम्भव नहीं है, उसकी दूसरे ही घोड़े से प्रतिस्थापना होगी।

स्थायी पूंजी के अन्य तत्वों का आवधिक अथवा आंशिक नवीकरण करना संभव है। इस प्रसंग में आंशिक अथवा आवधिक प्रतिस्थापना को व्यवसाय के क्रमिक विस्तार से भिन्न समझना चाहिए।

स्थायी पूंजी में अंशतः सजातीय संघटक अंश समाविष्ट होते हैं, किन्तु वे सब कुछ ही अवधि तक काम नहीं देते, वरन उन्हें विभिन्न अन्तरालों पर थोड़ा-थोड़ा करके नवीकृत किया जाता

---

*आर० पी० विलियम्स का निबन्ध २ दिसंबर, १८६७ के *Money Market Review* में प्रकाशित हुआ था।—सं०

है। उदाहरण के लिए, यह बात रेलवे स्टेशनों में पटरियों पर लागू होती है, जिन्हें शेष रेलमार्ग की पटरियों की अपेक्षा जल्दी-जल्दी प्रतिस्थापित करना होता है। यही बात स्लीपरों पर भी लागू होती है, जिन्हें बेल्जियमी रेलवे पर लार्डनर के अनुसार पांचवें दशक में सालाना आठ फ़ीसदी के हिसाब से बदलना पड़ा था, जिससे साढ़े बारह साल के भीतर सभी स्लीपरों का नवीकरण हो गया। इसलिए यहां हमारे सामने निम्न स्थिति है: एक ख़ास राशि एक विशेष प्रकार की स्थायी पूंजी की तरह, मसलन, दस साल के लिए पेशगी दी जाती है। यह ख़र्च एकबारगी किया जाता है। किन्तु इस स्थायी पूंजी का एक निश्चित भाग, जिसका मूल्य उत्पाद के मूल्य में प्रवेश कर गया है और उसके साथ द्रव्य में परिवर्तित हो गया है, प्रति वर्ष वस्तुरूप में प्रतिस्थापित होता है, जब कि उसका शेष भाग अपने मूल भौतिक रूप में बना रहता है। यह इकमुश्त पेशगी दिया जाना और भौतिक रूप में केवल आंशिक पुनरुत्पादन ही इस, स्थायी, पूंजी का प्रचल पूंजी से अंतर करते हैं।

स्थायी पूंजी के अन्य भागों में विजातीय घटक समाविष्ट होते हैं, जो असमान अवधियों में छीजते हैं और इसलिए इसी तरह उन्हें प्रतिस्थापित भी करना होता है। यह बात मशीनों पर ख़ास तौर से लागू होती है। स्थायी पूंजी के विभिन्न संघटक अंशों के विभिन्न टिकाऊपन पर हमने अभी जो कुछ कहा है, इस मामले में इस स्थायी पूंजी के हिस्से की तरह आनेवाली किसी भी मशीन के विभिन्न संघटक अंशों के टिकाऊपन पर भी लागू होता है।

जहां तक आंशिक नवीकरण के दौरान व्यवसाय के क्रमिक विस्तार का सम्बन्ध है, हम निम्न बातें कहेंगे: यद्यपि जैसा कि हम देख चुके हैं, स्थायी पूंजी उत्पादन प्रक्रिया में अपने कार्य वस्तुरूप में करती रहती है, फिर भी उसकी औसत छीजन के यथानुपात उसके मूल्य का एक भाग उत्पाद के साथ परिचालित हो चुका है, द्रव्य में परिवर्तित हो चुका है और पूंजी की – उसका वस्तुरूप में पुनरुत्पादन होने तक – प्रतिस्थापना के लिए उद्दिष्ट आरक्षित द्रव्य निधि का एक तत्व बन जाता है। द्रव्य में परिवर्तित स्थायी पूंजी का यह मूल्यांश व्यवसाय का विस्तार करने अथवा व्यवसाय की कार्य-कुशलता बढ़ाने के लिए यंत्र-सज्जा में सुधार करने का काम कर सकता है। इस प्रकार पुनरुत्पादन न्यूनाधिक अवधि में होता है और सामाजिक दृष्टिकोण से यह विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन होता है – उत्पादन क्षेत्र का विस्तार किया जाये, तो विस्तृत और यदि उत्पादन साधन की कार्य-कुशलता बढ़ाई जाये, तो गहन होता है। विस्तारित पैमाने का यह पुनरुत्पादन संचय – बेशी मूल्य के पूंजी में परिवर्तन – के फलस्वरूप नहीं, बल्कि मूल्य के पुनःरूपांतरण के फलस्वरूप होता है, जो द्रव्य के रूप में स्थायी पूंजी के काय से अलग होकर उसी प्रकार की नई स्थायी पंजी, या कम से कम अधिक कार्यक्षम स्थायी पूंजी – बन जाता है। निस्सन्देह यह अंशतः व्यवसाय के स्वरूप विशेष पर निर्भर करता है कि वह किस सीमा तक और किस अनुपात में ऐसी क्रमिक वृद्धि कर सकता है और इसलिए इस प्रकार पुनःनिवेशन के लिए कितनी आरक्षित निधि एकत्र की जानी चाहिए और इसके लिए कितना समय आवश्यक होगा। विद्यमान मशीनों के कल-पुरजों में किस हद तक सुधार किये जा सकते हैं, यह स्पष्ट ही इन सुधारों के स्वरूप पर और ख़ुद मशीन की रचना पर निर्भर करता है। रेलमार्गों के निर्माण में बिल्कुल आरम्भ में ही इस बात पर कितनी अच्छी तरह विचार किया गया था, इसे ऐडम्स दिखाते हैं: "सारा ढांचा उसी नियम पर खड़ा करना चाहिए, जो मधुमक्खियों के छत्ते को शासित करता है – असीम विस्तार की क्षमता।

ऐसे हर स्थायी और पूर्णतः सममित ढांचे से बचना चाहिए, जिसे आगे चलकर विस्तार की जरूरत होने पर गिराना पड़े" (पृष्ठ १२३)।

यह सब बहुत कुछ उपलब्ध स्थान पर निर्भर करता है। कुछ इमारतों पर अतिरिक्त मंजिलें उठाई जा सकती हैं, कुछ का बग़ली विस्तार करना होगा, इसलिए अधिक भूमि दरकार होगी। पूंजीवादी उत्पादन में, एक ओर, सामग्री की बहुत बरबादी होती है, दूसरी ओर व्यवसाय के क्रमिक प्रसार के दौरान इस तरह का बहुत सा अव्यावहारिक बग़ली विस्तार होता है (जिससे अंशतः श्रम शक्ति को क्षति पहुंचती है), क्योंकि सामाजिक योजना के अनुसार कोई भी काम नहीं उठाया जाता, बल्कि सब कुछ उन अंतहीन परिस्थितियों, साधनों, आदि पर निर्भर करता है, जिनके सहारे वैयक्तिक पूंजीपति काम करता है। इसका परिणाम उत्पादक शक्तियों की भारी बरबादी होता है।

आरक्षित द्रव्य निधि का यह खंडशः पुनर्निवेश (अर्थात द्रव्य में पुनःपरिवर्तित स्थायी पूंजी के एक भाग का) खेती में सबसे आसान होता है। एक नियत क्षेत्रफल का उत्पादन क्षेत्र यहां धीरे-धीरे लगाई गई अधिकतम पूंजी को आत्मसात कर सकता है। जहां नैसर्गिक पुनरुत्पादन होता है, वहां भी यही बात लागू होती है, यथा पशुपालन में।

स्थायी पूंजी के लिए अनुरक्षण ख़र्च जरूरी होता है। इस अनुरक्षण का एक भाग स्वयं श्रम प्रक्रिया जुटाती है – स्थायी पूंजी का उपयोग श्रम प्रक्रिया में न हो, तो वह बरबाद होती है (इस्तेमाल न होने पर मशीनों की छीजन के बारे में Buch I, Kap. VI, S. 196 और Kap. XIII, S. 423* देखें)। इसलिए किराये पर ली हुई जमीन को देश की प्रथा के अनुसार काश्त न किया जाये, तो अंग्रेजी क़ानून स्पष्टतः इसे बरबादी मानता है। (डब्ल्यू० ए० होल्ड्सवर्थ, Barrister at Law: *The Law of Landlord and Tenant*, लन्दन, १८५७, पृष्ठ ९६।) श्रम प्रक्रिया में उपयोग से उत्पन्न यह अनुरक्षण जीवित श्रम के स्वरूप में सन्निहित एक मुफ़्त उपहार है। इसके अलावा श्रम की परिरक्षी शक्ति का स्वरूप दोहरा होता है। एक ओर श्रम सामग्री के मूल्य को उत्पाद को अंतरित करके वह उसे परिरक्षित रखती है; दूसरी ओर श्रम उपकरणों के मूल्य को उत्पाद को अंतरित किये बिना, उत्पादन प्रक्रिया में उनकी क्रियाशीलता द्वारा उनके उपयोग मूल्य को परिरक्षित रखते हुए इनका मूल्य परिरक्षित रखती है।

किन्तु स्थायी पूंजी के दुरुस्त ढंग से अनुरक्षण के लिए श्रम का निरपेक्ष व्यय भी आवश्यक होता है। समय-समय पर मशीनों की सफ़ाई जरूरी होती है। यहां सवाल अतिरिक्त मेहनत का होता है, जिसके बिना मशीनें बेकार हो जाती हैं। यह प्रकृति के हानिकर प्रभावों को दूर रखने मात्र का प्रश्न है, जो उत्पादन प्रक्रिया से अवियोज्य हैं। अतः यह मशीनों को, शब्दशः, काम लायक़ बनाये रखने का सवाल है। कहना न होगा कि स्थायी पूंजी के सामान्य टिकाऊपन का परिकलन इस अनुमान पर किया जाता है कि जिन परिस्थितियों में वह अपने कार्य सामान्य रूप में कर सकती है, वे सभी उस अवधि में सुलभ होंगी, जैसे कि हम किसी आदमी की औसत उम्र तीस साल मानते हुए यह अनुमान भी करते हैं कि इस बीच वह नहाता-धोता रहेगा। यहां सवाल मशीन में समाविष्ट श्रम के प्रतिस्थापन का नहीं, वरन निरन्तर जोड़े जानेवाले अतिरिक्त श्रम का है, जो उसके उपयोग से आवश्यक हो जाता है। प्रश्न उस श्रम का नहीं है, जिसे मशीन करती है, वरन उस मशीन पर ख़र्च किये जानेवाले श्रम का

* हिन्दी संस्करण: अध्याय ८ और १५। – सं०

है, जिसमें वह उत्पादन का अभिकर्ता नहीं, कच्चा माल होता है। इस श्रम पर ख़र्च की हुई पूंजी को प्रचल पूंजी के रूप में वर्गीकृत करना होगा, यद्यपि वह उस ख़ास श्रम प्रक्रिया में दाख़िल नहीं होती, जिससे उत्पाद का अस्तित्व सम्भव होता है। इस श्रम को उत्पादन में निरन्तर ख़र्च करना होगा, इसलिए उसके मूल्य की उत्पाद के मूल्य से निरन्तर प्रतिस्थापना करनी होगी। इसमें लगाई हुई पूंजी प्रचल पूंजी के उस भाग में आती है, जिसे अनुत्पादक व्यय पूरा करना होता है और जो उत्पादित मूल्यों में सालाना औसत के हिसाब से वितरित होता है। हम देख चुके हैं* कि वास्तविक उद्योग में सफ़ाई की यह मेहनत मज़दूर मुफ़्त, विश्राम काल में करते हैं, और इसी कारण स्वयं उत्पादन प्रक्रिया के दौरान भी करते हैं और अनेक दुर्घटनाओं के मूल को इसी स्रोत में ढूंढा जा सकता है। यह श्रम उत्पाद की क़ीमत में नहीं शामिल होता। इस माने में वह उपभोक्ता को मुफ़्त मिलता है। दूसरी ओर इस प्रकार पूंजीपति अपनी मशीन का अनुरक्षण व्यय नहीं देता। उसे मज़दूर **व्यक्तिशः** देता है और यह पूंजी के आत्मरक्षण के रहस्यों में एक है, जो तथ्यतः मशीन पर मज़दूर का क़ानूनी दावा जताता है और बूर्जुआ क़ानून के दृष्टिकोण से भी वह इस के बल पर मशीन का सहस्वामी होता है। लेकिन उत्पादन की उन विभिन्न शाखाओं में, जिनमें मशीनों को सफ़ाई के लिए उत्पादन प्रक्रिया से हटाना होता है और इसलिए जहां सफ़ाई का काम बीच के समय में नहीं किया जा सकता, जैसे कि मिसाल के लिए रेल इंजनों के मामले में, यह अनुरक्षण कार्य चालू ख़र्च माना जाता है और इसलिए वह प्रचल पूंजी का तत्व होता है। मसलन मालगाड़ी के इंजन को एक दिन शेड में रखे बिना तीन दिन से ज्यादा नहीं चलाया जाना चाहिए... बायलर के ठंडा होने से पहले उसकी धुलाई का प्रयत्न अत्यन्त हानिकारक होगा (आर० सी०, क्रमांक १७८२३)।

वास्तविक मरम्मत या जोड़ाजाड़ी के लिए पूंजी और श्रम का ऐसा व्यय करना होता है, जो मूलतः पेशगी दी गई पूंजी में समाविष्ट नहीं होता और इसलिए स्थायी पूंजी के मूल्य के क्रमिक प्रतिस्थापन द्वारा उसे प्रतिस्थापित और पूरा नहीं किया जा सकता, कम से कम हमेशा ऐसा नहीं ही किया जा सकता। मिसाल के लिए अगर स्थायी पूंजी का मूल्य १०,००० पाउंड और उसका कुल जीवन काल १० साल हो, तो १० साल बीतने पर ये १०,००० पाउंड पूरी तरह द्रव्य में परिवर्तित हो चुकने पर केवल मूलतः निवेशित पूंजी के मूल्य को ही प्रतिस्थापित करेंगे, लेकिन वे इस बीच मरम्मत के लिए जोड़ी पूंजी या श्रम को प्रतिस्थापित नहीं करेंगे। यह मूल्य का एक अतिरिक्त संघटक अंश है, जो पूरा का पूरा एकसाथ पेशगी नहीं दिया जाता, वरन जब भी ज़रूरत हो, तभी दिया जाता है, और उसे पेशगी देने की बारियां स्वभावतः ही आकस्मिक होती हैं। हर तरह की स्थायी पूंजी के लिए श्रम शक्ति तथा श्रम उपकरणों का इस प्रकार का उत्तरवर्ती, थोड़ा-थोड़ा अतिरिक्त पूंजी का परिव्यय आवश्यक होता है।

मशीनों, आदि के अलग हिस्सों को होनेवाला नुक़सान स्वभावतः आकस्मिक होता है और इसलिए ज़रूरी मरम्मत भी आकस्मिक होती है। फिर भी दो तरह की मरम्मतों को आम क़िस्मों से अलग करना होगा, जो बहुत कुछ स्थिर स्वरूप की होती हैं और स्थायी पूंजी के जीवन काल की विभिन्न मीयादों के भीतर आती हैं। ये बचपन के रोग और टिकाऊपन की आधी मीयाद के बादवाले और भी अधिक संख्या के रोग हैं। उदाहरण के लिए, कोई मशीन बहुत ही चुस्त-दुरुस्त हालत में चालू की जा सकती है, लेकिन उसके वास्तविक इस्तेमाल से ख़ामियां ज़ाहिर होंगी, जिन्हें बाद की मेहनत से ही दूर करना होता है। दूसरी ओर जितना

* कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', हिन्दी संस्करण, खंड १, पृष्ठ ४८१, पादटिप्पणी २।—सं०

ही कोई मशीन अपने टिकाऊपन के मध्य बिन्दु से आगे बढ़ती है और इसलिए सामान्य छीजन जितना ही संचित होती है और जिन चीज़ों की वह बनी है, वे जितना ही जीर्ण-शीर्ण होती हैं, उसे अपने औसत टिकाऊपन की शेष अवधि में चालू रखने के लिए मरम्मत उतनी ही ज्यादा और बार-बार करनी होगी। बूढ़े आदमी के मामले में भी यही होता है, जिसे वक़्त से पहले न चल बसने के लिए नौजवान और तन्दुरुस्त आदमी की अपेक्षा दवा-दारू पर ज्यादा पैसा ख़र्च करना होता है। इसलिए अपने आकस्मिक स्वरूप के बावजूद मरम्मत का काम स्थायी पूंजी के जीवन काल की विभिन्न अवधियों में असमान रूप से बंटा हुआ होता है।

उपर्युक्त विवेचन से और मरम्मत के काम के साधारणतः आकस्मिक स्वरूप से यह निष्कर्ष निकलता है:

एक लिहाज़ से मरम्मत पर श्रम शक्ति और श्रम उपकरणों का वास्तविक व्यय आकस्मिक होता है, जैसे मरम्मत को आवश्यक बनानेवाली परिस्थितियां भी होती हैं। आवश्यक मरम्मत की मात्रा स्थायी पूंजी के जीवन काल की विभिन्न अवधियों में असमान रूप में वितरित होती है। और बातों में स्थायी पूंजी का औसत जीवन काल आंकने में यह मान लिया जाता है कि वह अंशतः सफ़ाई के (जिसमें स्थान की सफ़ाई भी शामिल है), और अंशतः जितनी जरूरत पड़े, उतनी ही मरम्मत के ज़रिये लगातार अच्छी चालू हालत में रखी जायेगी। स्थायी पूंजी की छीजन के ज़रिये रूपान्तरित मूल्य का परिकलन उसके औसत जीवन काल के आधार पर किया जाता है, किन्तु यह औसत जीवन काल स्वयं इस अनुमान पर आधारित है कि अनुरक्षण के लिए आवश्यक अतिरिक्त पूंजी लगातार पेशगी दी जाती रहेगी।

किन्तु तब यह भी स्पष्ट है कि पूंजी और श्रम के इस अतिरिक्त व्यय के कारण जो मूल्य जुड़ता है, वह उसके किये जाने के समय ही सम्बद्ध मालों की क़ीमत में दाख़िल नहीं हो सकता। मिसाल के लिए, कोई सूत निर्माता पिछले हफ़्ते की अपेक्षा इस हफ़्ते सिर्फ़ इस बिना पर अपना सूत महंगा नहीं बेच सकता कि इस हफ़्ते उसके कारख़ाने में कोई पहिया टूट गया था या कोई पट्टा फट गया था। किसी अलग कारख़ाने में इस दुर्घटना से कताई की आम लागत किसी भी तरह बदल नहीं गई। मूल्य के सभी निर्धारणों की तरह यहां भी फ़ैसला औसत के आधार पर होता है। अनुभव से ऐसी दुर्घटनाओं का औसत और व्यवसाय की किसी शाखा में लगाई स्थायी पूंजी के औसत जीवन काल में आवश्यक अनुरक्षण व मरम्मत के काम के औसत परिमाण का पता चल जाता है। यह औसत व्यय औसत जीवन काल में बांट दिया जाता है और उत्पाद के मूल्य में अनुरूप अशेषभाजक अंशों में जोड़ दिया जाता है; अतः वह अपने विक्रय द्वारा प्रतिस्थापित होता है।

इस प्रकार प्रतिस्थापित अतिरिक्त पूंजी प्रचल पूंजी में आती है, यद्यपि उसे ख़र्च करने का तरीक़ा अनियमित होता है। मशीनों में आई हर क्षति को तुरंत सुधारना परम महत्वपूर्ण काम होता है, इसलिए प्रत्येक अपेक्षाकृत बड़े कारख़ाने में नियमित कारख़ाना कर्मियों के अलावा इंजीनियर, मिस्तरी, बढ़ई, लोहार, वग़ैरह विशेष कर्मचारी भी रखे जाते हैं। उनकी मजदूरी परिवर्ती पूंजी का अंश होती है और उनके श्रम का मूल्य उत्पाद पर वितरित होता है। दूसरी ओर उत्पादन साधनों का व्यय पूर्वोक्त औसत के आधार पर आंका जाता है, जिसके अनुसार वह निरन्तर उत्पाद का मूल्यांश रहता है, यद्यपि दरअसल उसे अनियमित अंतरालों पर पेशगी दिया जाता है और इसलिए वह उत्पाद अथवा स्थायी पूंजी में अनियमित अवधि पर प्रवेश करता है। वास्तविक मरम्मत पर ख़र्च की जानेवाली यह पूंजी कई लिहाज़ से sui generis [अपने ही ढंग की] होती है। उसका वर्गीकरण न प्रचल पूंजी में हो सकता है, न स्थायी पूंजी में,

किन्तु उसे प्रचल पूंजी में रखना अधिक संगत होगा, क्योंकि वह चालू ख़र्च में सामने आती है।

निस्सन्देह लेखाकरण विधि से खाते में दर्ज वास्तविक स्थिति में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। किन्तु इस पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि बहुत से व्यवसायों में मरम्मत ख़र्चों को आम तौर से स्थायी पूंजी की वास्तविक छीजन के साथ निम्नलिखित ढंग से दिखाया जाता है: मान लीजिये, पेशगी स्थायी पूंजी १०,००० पाउंड है और उसका टिकाऊपन – जीवन काल – १५ साल है। तब सालाना छीजन ६६६ २/३ पाउंड होगी। किन्तु मूल्य ह्रास का परिकलन केवल १० साल के टिकाऊपन पर किया गया है। दूसरे शब्दों में, ६६६ २/३ पाउंड के बदले १,००० पाउंड स्थायी पूंजी की छीजन के लिए उत्पादित मालों की क़ीमत में प्रति वर्ष जोड़े जाते हैं। इस प्रकार ३३३ १/३ पाउंड मरम्मत, वग़ैरह के लिए आरक्षित रहते हैं (१० और १५ की संख्याएं केवल मिसाल के लिए ली गयी हैं)। यह रक़म मरम्मत पर औसत रूप में इस तरह ख़र्च की जाती है कि स्थायी पूंजी १५ साल चल सके। स्वभावतः इस तरह का हिसाब-किताब मरम्मत पर ख़र्च की जानेवाली अतिरिक्त पूंजी तथा स्थायी पूंजी को भिन्न संवर्गों के अन्तर्गत आने से नहीं रोक सकता। परिकलन की इस पद्धति के बल पर, उदाहरण के लिए, यह माना गया था कि वाष्प पोतों के अनुरक्षण और प्रतिस्थापन की न्यूनतम अनुमानित लागत सालाना १५ फ़ीसदी होगी, अतः पुनरुत्पादन काल ६ २/३ साल होगा। सातवें दशक में, अंग्रेज़ सरकार ने पेनिनसुलर एण्ड ओरियेंटल कम्पनी को ६ १/३ वर्षों के पुनरुत्पादन काल के अनुरूप सालाना १६ फ़ीसदी के हिसाब से क्षतिपूरण किया था। रेलमार्गों पर इंजन का औसत जीवन काल १० साल होता है, किन्तु मरम्मत के लिहाज़ से कूता मूल्य ह्रास १२ १/२ प्रतिशत माना जाता है, जिससे उसका टिकाऊपन घटकर ८ साल हो जाता है। माल और मुसाफ़िर गाड़ियों के मामले में यह अनुमान ९ प्रतिशत अथवा ११ १/९ साल का टिकाऊपन है।

मकानों और ऐसी दूसरी चीज़ों के सिलसिले में, जो अपने मालिकों के लिए स्थायी पूंजी हैं और जिन्हें इसी रूप में किराये पर दिया जाता है, क़ानून ने सभी जगह एक से ओर सामान्य मूल्य ह्रास में, जो समय बीतने से, प्राकृतिक प्रभावों से और साधारण छीजन से, और दूसरी ओर, कभी-कभी की जानेवाली उस मरम्मत में भेद किया है, जो भवन के सामान्य जीवन काल में और उसके साधारण उपयोग के दौरान रख-रखाव के लिए जब-तब ज़रूरी होती है। साधारणतया सामान्य मूल्य ह्रास मालिक के हिस्से में और समय-समय पर की जानेवाली मरम्मत किरायेदार के हिस्से में आते हैं। इसके अलावा मरम्मत दो तरह की होती है, मामूली मरम्मत और भारी मरम्मत। भारी मरम्मत अंशतः स्थायी पूंजी का उसके भौतिक रूप में नवीकरण होती है, और यह भी मालिक के हिस्से में आती है, बशर्ते कि पट्टे में स्पष्टतः दूसरी बात न कही गयी हो। मिसाल के लिए, अंग्रेज़ी क़ानून को ले लीजिये: "दूसरी ओर, किरायेदार वर्षानुवर्ष स्थान को हवा और पानी से रक्षित रखने के, जब ऐसा 'भारी' मरम्मत के बिना किया जा सकता है, और आम तौर से उचित रूप में 'मामूली' शीर्षक के अंतर्गत आनेवाली मरम्मत के अलावा और कुछ करने के लिए बाध्य नहीं है। स्थान के उन भागों के मामले में भी, जो 'मामूली' मरम्मत के विषय हैं, उसके क़ब्ज़ा लेने के समय उनकी उम्र, सामान्य दशा और अवस्था का ध्यान रखा जाना चाहिए, क्योंकि वह पुराने और घिसे-पिटे माल की नये माल से प्रतिस्थापना करने और समय और साधारण घिसने-छीजने से जनित अनिवार्य मूल्य ह्रास की बहाली करने के लिए बाध्य नहीं है।" (होल्ड्सवर्थ, *Law of Landlord and Tenant*, पृष्ठ ९० और ९१।)

छीजन और अनुरक्षण तथा मरम्मत के काम के प्रतिस्थापन से एकदम भिन्न **बीमा** है, जो असाधारण प्राकृतिक परिघटनाओं, आग, बाढ़, आदि से जनित विनाश से संबंध रखता है। इसकी क्षतिपूर्ति बेशी मूल्य से करनी होती है और उससे एक कटौती होती है। अथवा समूचे तौर पर समाज के दृष्टिकोण से विचार करें, तो निरन्तर अतिरिक्त उत्पादन, अर्थात जनसंख्या में वृद्धि दरकिनार, विद्यमान धन के साधारण प्रतिस्थापन और पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक पैमाने से अधिक बड़े पैमाने पर उत्पादन होना चाहिए, जिससे कि दुर्घटनाओं और प्राकृतिक शक्तियों से जनित असाधारण विनाश की क्षतिपूर्ति करने के लिए आवश्यक उत्पादन साधन बने रहें।

वास्तव में प्रतिस्थापन के लिए आवश्यक पूंजी का अल्पतम भाग ही आरक्षित द्रव्य निधि में आता है। उसका सबसे बड़ा हिस्सा स्वयं उत्पादन पैमाने के विस्तार में आता है, जो अंशतः वास्तविक प्रसार होता है और अंशतः स्थायी पूंजी पैदा करनेवाली उद्योग शाखाओं में उत्पादन के सामान्य परिमाण के अन्तर्गत होता है। उदाहरण के लिए, मशीन निर्माण कारख़ाने को सारा इन्तज़ाम यों करना चाहिए कि उसके ग्राहकों के कारख़ानों का वार्षिक विस्तार हो सके और उनमें से कुछ हमेशा आंशिक अथवा सम्पूर्ण पुनरुत्पादन की आवश्यकता में रहें।

सामाजिक औसत के अनुसार छीजन की मात्रा और मरम्मत ख़र्च के निर्धारण से अनिवार्यतः परिस्थितियों में और उद्योग की उसी शाखा में कार्यशील अन्य समान आकार के पूंजी निवेशों में भी बहुत बड़ी विषमता प्रकट होती है। व्यवहार में कोई मशीन, वग़ैरह एक पूंजीपति के पास औसत मीयाद से ज्यादा चलती है, तो दूसरे पूंजीपति के पास उतना नहीं चलती। एक के लिए मरम्मत ख़र्च औसत से ऊपर होता है, दूसरे के लिए उससे नीचे, इत्यादि। किन्तु छीजन से और मरम्मत ख़र्च से मालों की क़ीमत में होनेवाली वृद्धि एक सी रहती है और औसत द्वारा निर्धारित की जाती है। इसलिए एक को इस अतिरिक्त क़ीमत से वस्तुतः उससे ज्यादा मिलता है, जितना उसने वस्तुतः जोड़ा था, तो दूसरे को कम मिलता है। इस स्थिति तथा अन्य परिस्थितियों के परिणामस्वरूप, जिनसे व्यवसाय की एक ही शाखा में श्रम शक्ति के समान मात्रा में शोषण से भिन्न-भिन्न पूंजीपतियों को भिन्न-भिन्न लाभ होते हैं, बेशी मूल्य के वास्तविक स्वरूप को पहचानने की कठिनाई और बढ़ जाती है।

वास्तविक मरम्मत और प्रतिस्थापन के बीच, अनुरक्षण ख़र्च और नवीकरण लागत के बीच की सीमा-रेखा ज़रा लचीली होती है। इसी से यह शाश्वत विवाद पैदा होता है कि – मिसाल के लिए, रेल व्यवसाय में – कोई ख़र्च मरम्मत का है या प्रतिस्थापन का, उसकी अदायगी चालू व्यय से की जानी चाहिए या मूल कोष से। मरम्मत ख़र्च को आय खाते के बदले पूंजी खाते में स्थानान्तरित करना वह सुपरिचित तरीक़ा है, जिसके ज़रिये रेलों के निदेशक मंडल कृत्रिम तरीक़ों से अपने लाभांश बढ़ाते हैं। लेकिन अनुभव इसके लिए सबसे महत्वपूर्ण सुराग़ प्रदान कर चुका है। उदाहरण के लिए, लार्डनर के अनुसार किसी रेलमार्ग के प्रारम्भिक जीवन काल में आवश्यक हुए अनुवर्ती श्रम को "मरम्मत का नाम न देना चाहिए, बल्कि रेलमार्ग के निर्माण का तात्विक भाग मानना चाहिए और वित्तीय हिसाब में उसे पूंजी खाते में डालना चाहिए, न कि आय खाते में, क्योंकि यह ख़र्च छीजन के या यातायात के वाजिब काम के कारण नहीं, वरन रेलमार्ग के निर्माण की मूल और अनिवार्य अपूर्णता से उत्पन्न होता है" (लार्डनर, उप० पृष्ठ ४०)। "एकमात्र सही तरीक़ा आय के अर्जन में अनिवार्यतः हुए मूल्य ह्रास को सालाना आय से काटना है, चाहे यह रक़म सचमुच ख़र्च की गई हो, या न की गई हो" (कैप्टन फ़ित्समोरिस, Committee of Inquiry on Caledonian Railway, *Money Market Review,* १८६७, में प्रकाशित)।

स्थायी पूंजी के प्रतिस्थापन तथा अनुरक्षण को अलग करना खेती में व्यवहारतः व्यर्थ और असम्भव हो जाता है, कम से कम जहां भाप की मशीनों से खेती न होती हो। किर्कोफ़ के अनुसार (किर्कोफ़, *Handbuch der landwirtschaftlichen Betriebslehre*, ड्रेस्डेन, १८५२, पृष्ठ १३७), "जहां भी औज़ारों की (खेती के तथा अन्य औज़ारों की और हर प्रकार के कृषि साधनों की) पूर्ति पूर्ण, यद्यपि अतिशय नहीं होती, वहां विद्यमान विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार औज़ारों के सालाना रख-रखाव और छीजन को मूल कोष के १५ से २५ प्रतिशत साधारण औसत के अनुसार आंकने का रिवाज है।"

रेलमार्ग के चल स्टॉक के मामले में मरम्मत और प्रतिस्थापन को जुदा किया ही नहीं जा सकता। "हम अपने स्टॉक को संख्या के अनुसार क़ायम रखते हैं। हमारे पास इंजनों की जो भी संख्या हो, उसे हम क़ायम रखते हैं। समय बीतने पर अगर एक इंजन नष्ट हो जाये और एक नया इंजन बनाना बेहतर हो, तो हम उसे आय के ख़र्च से बनाते हैं, बेशक, जहां तक मुमकिन हो, पुराने इंजन के सामान की रक़म को जमा करते हुए ... काफ़ी सामान बचा रहता है; पहिये, धुरियां, बायलर बचे रहते हैं, और दरअसल पुराने इंजन का काफ़ी हिस्सा बचा रहता है।" (टी० गूच, Chairman of Great Western Railway Co., रेलमार्गों पर आर० सी०, पृष्ठ ८५८, क्रमांक १७३२७-१७३२९।) "... मरम्मत का अर्थ है नवीकरण; मैं प्रतिस्थापन शब्द पर विश्वास नहीं करता ...; एक बार कोई रेलवे कम्पनी गाड़ी या इंजन ख़रीद ले, तो उसकी मरम्मत करना ज़रूरी होता है, और इस तरह वह हमेशा चालू रह सकता है" (क्रमांक १७७८४)। "... इस ८ १/२ पेंस से इंजनों को हमेशा ठीकठाक रखा जाता है। हम अपने इंजनों का पुनर्निर्माण करते हैं। यदि पूरा का पूरा इंजन ख़रीदा जाये, तो इसमें ज़रूरत से ज्यादा पैसा ख़र्च होगा ... फिर भी पहियों की जोड़ी, धुरी या इंजन का कोई भी हिस्सा, हमेशा होता ही है, जो काम दे जाता है, और इसलिए उससे व्यवहारतः नया इंजन बनाने की लागत सस्ती हो जाती है" (क्रमांक १७७९०)। "इस समय मैं प्रति सप्ताह एक नया इंजन अथवा व्यवहारतः नया इंजन तैयार करता हूं, क्योंकि उसका बायलर, सिलिण्डर या ढांचा नया होता है।" (क्रमांक १७८२३, आर्चिबाल्ड स्टुर्राक, Locomotive Superintendent of Great Northern Railway, आर० सी०, १८६७ में।)

यही बात डिब्बों के बारे में भी है: "समय के साथ इंजनों और गाड़ियों के स्टॉक की लगातार मरम्मत होती रहती है। कभी नये पहिये लगाये जाते हैं, तो कभी नया ढांचा। सबसे ज्यादा छीजनेवाले विभिन्न चलनशील पुरज़ों को क्रमशः नवीकृत किया जाता है; और इंजनों और गाड़ियों को तो मरम्मत के ऐसे क्रमिक सिलसिले के अधीन माना जा सकता है कि जिससे उनमें से बहुतों में मूल सामग्री का लेश भी नहीं रह जाता है ... लेकिन इस मामले में भी डिब्बों और इंजनों का पुराना सामान न्यूनाधिक दूसरी गाड़ियों और इंजनों में काम आ जाता है और वह रेलमार्ग से पूरी तरह कभी ग़ायब नहीं होता। इसलिए माना जा सकता है कि चल पूंजी निरन्तर पुनरुत्पादन की अवस्था में रहती है और जो पुनरुत्पादन स्थायी मार्ग के मामले में किसी बिल्कुल ही अगले ज़माने में ही होगा, जब समूचा रेलमार्ग फिर बिछाया जायेगा, वह चल स्टॉक में वर्षानुवर्ष धीरे-धीरे होता रहता है। उसका अस्तित्व चिरन्तन है और वह सतत कायाकल्प की अवस्था में रहती है" (लार्डनर, उप० पृष्ठ ११५-११६)।

लार्डनर ने यहां एक रेलमार्ग के सिलसिले में जिस प्रक्रिया का वर्णन किया है, वह किसी अलग कारख़ाने के मामले पर लागू नहीं होती, किन्तु वह किसी समूची उद्योग शाखा में

अथवा सामाजिक पैमाने के विचार से समग्र उत्पादन में भी स्थायी पूंजी के मरम्मत के साथ जुड़े निरन्तर, आंशिक पुनरुत्पादन के उदाहरण का काम दे सकती है।

चालाक निदेशक मंडल लाभांश खींचने के उद्देश्य से मरम्मत और प्रतिस्थापन शब्दों के व्यवहार में किस हद तक हेरा-फेरी करते हैं, इसका सबूत यह है। आर० पी० विलियम्स के उपरिउद्धृत निबंध के अनुसार, विभिन्न अंग्रेज़ी रेल कम्पनियों ने स्थायी मार्ग और इमारतों के अनुरक्षण और मरम्मत के लिए अनेक वर्षों तक के औसत ख़र्च के रूप में (प्रति अंग्रेज़ी मील सालाना के हिसाब से), निम्नलिखित राशियां आय खाते में से बट्टे खाते में डाली थीं।

लण्डन एण्ड नार्थ वेस्टर्न	३७० पाउंड
मिडलैण्ड	२२५
लण्डन एण्ड साउथ वेस्टर्न	२५७
ग्रेट नॉर्थर्न	३६०
लंकाशायर एण्ड यॉर्कशायर	३७७
साउथ ईस्टर्न	२६३
ब्राइटन	२६६
मैनचेस्टर एण्ड शेफ़ील्ड	२००

ये अन्तर वास्तविक व्यय में अन्तर से बहुत ही अल्प मात्रा में उत्पन्न होते हैं; वे लगभग पूर्णतः इसके अनुसार कि ख़र्च की मदें पूंजी खाते में डाली जाती हैं या आय खाते में हिसाब के विभिन्न तरीक़ों के कारण ही पैदा होते हैं। विलियम्स स्पष्टतया कहते हैं कि कम ख़र्च इसलिए दर्ज किया जाता है कि वह अच्छे लाभांश के लिए ज़रूरी होता है, और ज़्यादा ख़र्च इसलिए दर्ज किया जाता है कि आय ज़्यादा होती है, जो उसे बरदाश्त कर सकती है।

कुछ स्थितियों में छीजन और इसलिए उसका प्रतिस्थापन व्यवहार में अति सूक्ष्म होता है, जिससे मरम्मत ख़र्च के अलावा और कुछ ख़र्चे में नहीं डालना पड़ता। रेल निर्माण में works of art के बारे में लार्डनर का निम्न कथन आम तौर से गोदियों, नहरों, लोहे और पत्थर के पुलों, इत्यादि जैसे सभी टिकाऊ निर्माणों पर लागू होता है। "ज़्यादा सुदृढ़ निर्माणों की समय के मंथर प्रभाव से जो छीजन होती है, उसे अल्प अवधि में देखा जाये, तो परिमाण नितान्त अगोचर होता है; किन्तु दीर्घ अवधियों, यथा शताब्दियों के पश्चात, सुदृढ़तम निर्माणों में से भी कुछ का अथवा सब का भी पुनर्निर्माण अनिवार्य हो जाता है। इन परिवर्तनों की ब्रह्मांड के विराट पिण्डों की गतियों में आनेवाली नियतकालिक तथा दीर्घकालिक असमताओं के साथ तुलना करना असमीचीन न होगा। रेलमार्गों पर पुलों, सुरंगों, मार्ग सेतुओं, इत्यादि जैसे अधिक विशालाकार works of art पर समय की क्रिया ऐसी मिसालें प्रस्तुत करती हैं, जिन्हें दीर्घकालिक छीजन कहा जा सकता है। अधिक तीव्र तथा प्रत्यक्ष अपकर्ष, जिसे अल्पकालिक अंतरालों पर मरम्मत या पुनर्निर्माण द्वारा ठीक कर लिया जाता है, नियतकालिक असमताओं के सदृश्य है। सालाना मरम्मत में यदा-कदा होनेवाली वह क्षति शामिल है, जो अधिक सुदृढ़ और टिकाऊ निर्माणों के बाहरी ढांचे को समय-समय पर होती है; किन्तु इस मरम्मत के बावजूद काल इन निर्माणों तक पर अपना प्रभाव डालता है, और वह समय चाहे जितनी दूर हो, एक दिन आयेगा ही, जब इनकी ऐसी दशा हो जायेगी कि इनका नये सिरे से निर्माण अनिवार्य हो जायेगा। वित्तीय और आर्थिक प्रयोजनों से वह समय शायद इतनी दूर

है कि व्यावहारिक परिकलन में उसे लाना ग्रावश्यक न हो, ग्रौर इसलिए यहां उसका प्रसंगवश उल्लेख मात्र पर्याप्त है।" (लार्डनर, उप०, पृष्ठ ३८, ३९।)

यह बात दीर्घकालिक स्थायित्व के इसी प्रकार के ग्रन्य सभी ढांचों पर भी लागू होती है, इसलिए इन मामलों में पेशगी पूंजी का उनकी छीजन के ग्रनुरूप क्रमशः प्रतिस्थापन ज़रूरी नहीं होता; बल्कि उत्पाद की क़ीमत में ग्रनुरक्षण ग्रौर मरम्मत की सालाना ग्रौसत लागत का ग्रंतरण ही ग्रावश्यक होता है।

यद्यपि, जैसा कि हम देख चुके हैं, स्थायी पूंजी की छीजन की प्रतिस्थापना के लिए वापस ग्रानेवाले द्रव्य का एक बड़ा भाग वर्ष भर में ग्रथवा इससे कम ग्रवधि में भी ग्रपने भौतिक रूप में, पुनःपरिवर्तित हो जाता है, फिर भी हर पूंजीपति को ग्रपनी स्थायी पूंजी के उस भाग के लिए निक्षेप निधि की ज़रूरत होती है, जिसके पुनरुत्पादन का समय ग्रनेक वर्ष बीत जाने पर ही ग्राता है, किन्तु तब जिसे पूर्णतः प्रतिस्थापित करना ज़रूरी होता है। स्थायी पूंजी का काफ़ी संघटक ग्रंश ऐसा होता है, जिसका क्रमशः पुनरुत्पादन उसकी ग्रसामान्य विशेषताग्रों के कारण सम्भव नहीं होता। इसके ग्रलावा, जहां पुनरुत्पादन थोड़ा-थोड़ा करके इस तरह होता है कि पुराने ह्रासित भंडार में ग्रलग ग्रंतरालों पर नई सामग्री जुड़ जाती है, वहां उद्योग शाखा के ग्रपने विशेष स्वरूप के ग्रनुसार न्यूनाधिक मात्रा में पहले से द्रव्य संचय ग्रावश्यक होता है – प्रतिस्थापन उसके बाद ही किया जा सकता है। इस कार्य के लिए कोई भी धनराशि उपयुक्त नहीं होगी; इसके लिए एक निश्चित राशि ग्रावश्यक होगी।

यदि हम उधार पद्धति पर ध्यान दिये बिना – जिसका विवेचन हम ग्रागे करेंगे* – इस समस्या का ग्रध्ययन द्रव्य के साधारण परिचलन के ग्राधार पर करें, तो इस गति की क्रियाविधि इस प्रकार की होगी: यह दिखाया जा चुका है (Buch I, Kap. III, 3a)** कि ग्रगर समाज में उपलब्ध द्रव्य का एक भाग ग्रपसंचय के रूप में निरन्तर परती पड़ा रहता है, जब कि उसका दूसरा भाग परिचलन के माध्यम का ग्रथवा प्रत्यक्षतः प्रचल द्रव्य की तात्कालिक ग्रारक्षण निधि के माध्यम का काम करता है, तो समग्र द्रव्य राशि के ग्रपसंचय तथा परिचलन साधनों में वितरण का ग्रनुपात लगातार बहलता रहता है। प्रस्तुत प्रसंग में जो द्रव्य ग्रपेक्षाकृत बड़े पूंजीपति के हाथ में ख़ासी बड़ी-बड़ी राशियों में ग्रपसंचय के रूप में संचित होगा, वह स्थायी पूंजी के ख़रीदे जाने पर एकबारगी परिचलन में डाल दिया जायेगा। इसके बाद वह समाज में फिर ग्रपसंचय तथा परिचलन माध्यम में बंट जायेगा। निक्षेप निधि के ज़रिये, जिसमें स्थायी पूंजी का मूल्य ग्रपनी छीजन के ग्रनुपात में ग्रपने प्रारम्भ बिन्दु पर वापस ग्राता है, प्रचल द्रव्य का एक भाग फिर न्यूनाधिक ग्रवधि के लिए उसी पूंजीपति के यहां ग्रपसंचय बन जाता है, जिसका ग्रपसंचय स्थायी पूंजी के ख़रीदे जाने पर परिचलन माध्यम में परिवर्तित हुग्रा था ग्रौर उसके हाथ से निकल गया था। यह उस ग्रपसंचय का निरन्तर परिवर्तनशील वितरण है, जो समाज में विद्यमान होता है ग्रौर बारी-बारी से पहले परिचलन माध्यम का काम करता है ग्रौर फिर ग्रपसंचय के रूप में प्रचल द्रव्य राशि से ग्रलग हो जाता है। उधार पद्धति के विकास के साथ-साथ, जो ग्रनिवार्यतः ग्राधुनिक उद्योग ग्रौर पूंजीवादी उत्पादन के विकास के समान्तर चलता है, यह द्रव्य फिर ग्रपसंचय का नहीं, पूंजी का काम करता है, किन्तु ग्रपने मालिक के हाथ में नहीं, दूसरे पूंजीपतियों के हाथ में, जिनके नियन्त्रण में वह ग्रब रख दिया गया है।

---

* पूंजीवादी उधार पद्धति का विवेचन 'पूंजी' के तीसरे खण्ड के भाग ४ तथा ५ में किया गया है। – सं०

** हिन्दी संस्करण: ग्रध्याय ३, ३ क। – सं०

अध्याय ६

पेशगी पूंजी का कुल आवर्त। आवर्त चक्र

हम देख चुके हैं कि उत्पादक पूंजी के स्थायी तथा प्रचल संघटक अंश विभिन्न अवसरों पर और विभिन्न प्रकार से आवर्तित होते हैं। हम यह भी देख चुके हैं कि किसी व्यवसाय में स्थायी पूंजी के विभिन्न संघटक अंशों का आवर्त काल उनके भिन्न टिकाऊपन और इसलिए भिन्न पुनरुत्पादन काल के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। (एक ही व्यवसाय में प्रचल पूंजी के विभिन्न घटकों के आवर्त में वास्तविक अथवा आभासी अन्तर के बारे में इस अध्याय के अन्त में ६ के अन्तर्गत देखिये।)

१. पेशगी पूंजी का कुल आवर्त उसके विभिन्न घटकों का औसत आवर्त होता है। उसके परिकलन की विधि आगे बताई गई है। चूंकि यहां प्रश्न केवल विभिन्न कालावधियों का है, इसलिए उनका औसत निकालना बहुत ही आसान है। किन्तु

२. हमारे सामने यहां परिमाणात्मक ही नहीं, गुणात्मक अन्तर भी है।

उत्पादन प्रक्रिया में आनेवाली जो प्रचल पूंजी अपना सारा मूल्य उत्पाद को अंतरित कर देती है और इसलिए उत्पादन प्रक्रिया यदि व्यवधान के बिना चालू रखनी है, तो उत्पाद की बिक्री द्वारा उसका वस्तुरूप में निरन्तर प्रतिस्थापन ज़रूरी होगा। उत्पादन प्रक्रिया में दाखिल होनेवाली स्थायी पूंजी अपने मूल्य का एक भाग (छीजन) ही उत्पाद को अन्तरित करती है और इस छीजन के बावजूद वह उत्पादन प्रक्रिया में कार्यशील बनी रहती है। इसलिए उसका विभिन्न अवधियों के अंतरालों के बीतने से पहले और कम से कम प्रचल पूंजी के समान ही बारंबार प्रतिस्थापन आवश्यक नहीं होता। प्रतिस्थापन की यह आवश्यकता, पुनरुत्पादन की यह अवधि, स्थायी पूंजी के विभिन्न घटकों के लिए परिमाण में ही भिन्न नहीं होती, वरन, जैसा कि हम देख चुके हैं, बहुवर्षी स्थायी पूंजी का एक भाग, जो अधिक समय तक बना रहता है, वार्षिक अथवा अल्पतर अंतरालों पर प्रतिस्थापित किया जा सकता है और वस्तुरूप में पुरानी स्थायी पूंजी में जोड़ा जा सकता है। भिन्न विशेषताओं की स्थायी पूंजी के मामले में प्रतिस्थापन केवल उसके स्थायित्व काल के ख़त्म होने पर एकबारगी ही हो सकता है।

इसलिए स्थायी पूंजी के विभिन्न भागों के विशिष्ट आवर्तों को एक समरूप आवर्त में परिणत करना आवश्यक होता है, जिससे कि वे केवल परिमाण की दृष्टि से, अर्थात आवर्त काल की अवधि के अनुसार भिन्न-भिन्न रहें।

यदि हम उ . . . उ को अपना प्रारम्भ बिन्दु मानें, जो उत्पादन की निरन्तर प्रक्रिया का

रूप है, तो यह गुणात्मक एकरूपता नहीं पैदा होती, क्योंकि उ के निश्चित तत्वों का वस्तुरूप में लगातार प्रतिस्थापित करना आवश्यक होता है, जब कि दूसरों का नहीं होता। फिर भी द्र ... द्र' रूप निस्सन्देह आवर्त की यह एकरूपता पैदा करता है। उदाहरण के लिए १०,००० पाउंड की मशीन ले लीजिये, जो दस साल चलती है। इसका दसवां हिस्सा अथवा १,००० पाउंड प्रति वर्ष द्रव्य में पुनःपरिवर्तित होता है। ये १,००० पाउंड एक वर्ष के भीतर द्रव्य पूंजी से उत्पादक पूंजी तथा फिर माल पूंजी में परिवर्तित हुए हैं और इससे फिर द्रव्य पूंजी में पुनःपरिवर्तित हुए हैं। वे अपने मूल रूप, द्रव्य रूप में वैसे ही लौट आये हैं, जैसे प्रचल पूंजी, यदि हम उसका इस रूप में अध्ययन करें और यहां इस बात का कोई महत्व नहीं कि एक साल बीतने पर १,००० पाउंड की यह द्रव्य पूंजी किसी मशीन के भौतिक रूप में फिर से परिवर्तित की जाती है या नहीं। इसलिए पेशगी उत्पादक पूंजी का कुल आवर्त आंकते समय हम उसके सभी तत्वों को द्रव्य रूप में नियत करते हैं, जिससे कि उस रूप में वापसी आवर्त को पूरा करे। हम यह मान लेते हैं कि मूल्य सदा द्रव्य रूप में पेशगी दिया जाता है – उत्पादन की निरन्तर प्रक्रिया में भी, जहां मूल्य का यह द्रव्य रूप केवल लेखा-मुद्रा होता है। इस प्रकार हम औसत का अभिकलन कर सकते हैं।

३. इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि पेशगी उत्पादक पूंजी का बृहत्तर भाग भी स्थायी पूंजी हो, जिसका पुनरुत्पादन काल और इसलिए आवर्त काल भी अनेक वर्षों का चक्र हो, तो भी एक वर्ष में आवर्तित पूंजी मूल्य उसी वर्ष में प्रचल पूंजी के पुनरावृत्त आवर्तों के कारण पेशगी पूंजी के कुल मूल्य से ज्यादा बड़ा हो सकता है।

मान लीजिये कि स्थायी पूंजी ८०,००० पाउंड है और उसका पुनरुत्पादन काल १० वर्ष है, जिससे उसमें से ८,००० पाउंड प्रति वर्ष अपने द्रव्य रूप में लौट आते हैं अथवा वह अपने आवर्त का दसवां हिस्सा पूरा करती है। यह भी मान लीजिये कि प्रचल पूंजी २०,००० पाउंड है और उसका आवर्त साल में पांच बार पूरा होता है। तब कुल पूंजी १,००,००० पाउंड होगी। आवर्तित स्थायी पूंजी ८,००० पाउंड है; आवर्तित प्रचल पूंजी २०,००० पाउंड का पांच गुना अथवा १,००,००० पाउंड है। तब एक वर्ष के भीतर आवर्तित पूंजी १,०८,००० पाउंड, अथवा पेशगी पूंजी से ८,००० पाउंड अधिक होगी। पूंजी के १ + २/२५ भाग आवर्तित हुए हैं।

४. इसलिए पेशगी पूंजी के **मूल्य का आवर्त काल** उसके वास्तविक पुनरुत्पादन काल से अथवा उसके घटकों के वास्तविक प्रत्यावर्तन काल से, भिन्न होता है। उदाहरण के लिए, ४,००० पाउंड की पूंजी ले लीजिये और उसे वर्ष में, मसलन, पांच बार आवर्तित होने दीजिये। आवर्तित पूंजी तब ४,००० पाउंड का पांच गुना अथवा २०,००० पाउंड होगी। किन्तु प्रत्येक आवर्त के अन्त में नये सिरे से पेशगी दिये जाने के लिए जो कुछ आवर्तित होता है, वह मूलतः ४,००० पाउंड की पेशगी पूंजी ही है। उसका परिमाण आवर्त कालों की संख्या से नहीं बदलता, जिनके दौरान वह पूंजी के नाते अपने कार्य नये सिरे से करती है (बेशी मूल्य को छोड़कर)।

इस प्रकार क्रमांक ३ के अन्तर्गत दिये गये उदाहरण में एक वर्ष के बाद जो राशि पूंजीपति के पास लौटकर आती हुई मानी गई है, वह इस प्रकार है: क) २०,००० पाउंड की मूल राशि, जिसे वह पूंजी के प्रचल घटकों में फिर लगाता है, और ख) ८,००० पाउंड की राशि, जो छीजन के कारण पेशगी स्थायी पूंजी के मूल्य से मुक्त हो गई है। इसके साथ-

साथ यही स्थायी पूंजी उत्पादन प्रक्रिया में बनी रहती है, किन्तु अब उसका मूल्य ८०,००० पाउंड से घटकर ७२,००० पाउंड रह जाता है। इससे पहले कि पेशगी स्थायी पूंजी अपनी अवधि पार कर जाये और उत्पादों और मूल्यों के सृजक के रूप में कार्य करना बंद कर दे, जिससे कि उसका प्रतिस्थापन ज़रूरी हो जाये, उत्पादन प्रक्रिया को नौ साल और चलना होगा। इस तरह पेशगी पूंजी मूल्य को आवर्तों के एक चक्र से गुज़रना होता है, जो वर्तमान प्रसंग में दस वार्षिक आवर्तों का चक्र है और यह चक्र प्रयुक्त स्थायी पूंजी के जीवन काल द्वारा, अत: उसके पुनरुत्पादन अथवा आवर्त काल द्वारा निर्धारित होता है।

चूंकि मूल्य का परिमाण और प्रयुक्त स्थायी पूंजी का टिकाऊपन पूंजीवादी उत्पादन पद्धति के विकास के साथ विकसित होते हैं, इसलिए निवेश के प्रत्येक क्षेत्र विशेष में उद्योग का तथा औद्योगिक पूंजी का जीवन काल बढ़कर अनेक वर्षों की अवधि का, मसलन, औसत रूप में दस साल का हो जाता है। जहां एक ओर स्थायी पूंजी का विकास इस जीवन काल को बढ़ाता है, वहां दूसरी ओर उत्पादन साधनों में निरन्तर परिवर्तन होने से वह घटता भी है और यह परिवर्तन पूंजीवादी उत्पादन पद्धति के विकास के साथ-साथ बराबर ज़ोर पकड़ता जाता है। इसका फल यह होता है कि नैतिक ह्रास के कारण भौतिक रूप में समाप्त होने से बहुत पहले उत्पादन साधनों का बदलना और निरन्तर प्रतिस्थापन आवश्यक हो जाता है। यह माना जा सकता है कि आधुनिक उद्योग की सर्वावश्यक शाखाओं में इस जीवन चक्र का औसत अब दस साल है। किन्तु यहां हमें यथातथ्य आंकड़ों से सरोकार नहीं है। इतना स्पष्ट है: अनेक वर्षों की अवधि में फैला हुआ परस्पर सम्बद्ध आवर्तों का चक्र, जिसमें पूंजी अपने स्थायी घटक द्वारा दृढ़तापूर्वक आबद्ध रहती है, नियतकालिक संकटों का भौतिक आधार प्रस्तुत करता है। इस चक्र के दौरान व्यवसाय मन्दी, मध्यम क्रियाशीलता, हड़बड़ाहट और संकट के क्रमिक दौरों से गुज़रता है। यह सत्य है कि जिन अवधियों में पूंजी निविष्ट की जाती है, उनमें बड़ा अन्तर होता है और समय के लिहाज़ से वे किसी भी तरह समकालिक नहीं होतीं, किन्तु संकट सदा नये और बड़े निवेश का प्रारम्भ बिन्दु बनता है। इसलिए समूचे तौर पर समाज के दृष्टिकोण से, अगले आवर्त चक्र के लिए बहुत कुछ नया भौतिक आधार प्रस्तुत हो जाता है।[22a]

५. आवर्तों का परिकलन करते हुए एक अमरीकी अर्थशास्त्री कहते हैं: "कुछ व्यवसायों में लगाई जानेवाली सारी की सारी पूंजी साल में अनेक बार आवर्तित अथवा परिचालित होती है। अन्य व्यवसायों में उसका एक भाग साल में एक से अधिक बार आवर्तित होता है और दूसरा भाग इससे कम। पूंजीपति को अपने लाभ का परिकलन इस औसत अवधि से करना होगा, जो उसकी सारी पूंजी को उसके हाथों से गुज़रने में अथवा एक परिक्रमण करने में लगती है। उदाहरण के लिए मान लीजिये कि किसी व्यवसाय विशेष में किसी व्यक्ति ने अपनी आधी पूंजी इमारतों और मशीनों में ऐसे लगा रखी है कि वह दस साल में एक बार ही आवर्त करती है और उसके औज़ारों, वग़ैरह की लागत के रूप में पूंजी का चौथाई हिस्सा दो साल में

[22a] "शहरी उत्पादन दिनों के चक्र से बंधा होता है; इसके विपरीत देहाती उत्पादन वर्षों के चक्र से बंधा होता है।" ((Adam G. Müller, *Die Elemente der Staatskunst*, Berlin, 1809, III, S. 178)) । उद्योग और कृषि के बारे में रूमानी धारा की यह सहज धारणा है।

आवर्तित होता है; और बाक़ी चौथा हिस्सा, जो मज़दूरी देने और सामग्री ख़रीदने के काम आता है, साल में दो बार आवर्तित होता है। मान लीजिये, उसकी कुल पूंजी ५०,००० डालर है। तब उसका सालाना ख़र्च यह होगा:

२५,००० डालर : १० =	२,५०० डालर
१२,५०० डालर : २ =	६,२५० डालर
१२,५०० डालर × २ =	२५,००० डालर
	३३,७५० डालर

... उसकी पूंजी के आवर्तित होने की माध्य अवधि लगभग सोलह महीने होगी* ... एक और मिसाल ले लीजिये ... मान लीजिये, समूची पूंजी का चौथाई हिस्सा दस साल में, चौथाई हिस्सा साल भर में और शेष आधा हिस्सा वर्ष में दो बार परिचलन करता है। तब सालाना ख़र्च यह होगा:

१२,५०० डालर : १० =	१,२५० डालर
१२,५०० डालर =	१२,५०० डालर
२५,००० डालर × २ =	५०,००० डालर
१ वर्ष में आवर्तित –	६३,७५० डालर

(स्क्रोप, *Pol. Econ.*, सम्पादक – अलोंज़ो पॉटर, न्यूयार्क, १८४१, पृष्ठ १४२, १४३)।**

६. पूंजी के विभिन्न भागों के आवर्त में वास्तविक और आभासी अन्तर।

वही स्क्रोप उसी अंश में कहते हैं: "कोई कारख़ानेदार, फ़ार्मर या सौदागर अपने श्रमिकों को मजदूरी देने में जो पूंजी व्यय करता है, वह सबसे अधिक तेज़ी से परिचलन करती है, क्योंकि वह सम्भवतः सप्ताह में एक बार (यदि उसके आदमियों को हफ़्तावार मजदूरी मिलती हो) उसके बिलों अथवा बिक्री की हफ़्तावार प्राप्तियों से आवर्त कर लेती है। उसकी सामग्री और हस्तगत स्टॉक में निवेशित पूंजी कम तेज़ी से परिचालित होती है, क्योंकि यदि यह मान लें कि वह समान उधार पर माल ख़रीदता और बेचता है, तो एक की ख़रीद और दूसरी की बिक्री के बीच लगे समय के अनुसार उसकी पूंजी साल में शायद दो बार या चार बार आवर्त करती है। उसकी मशीनों और उपकरणों में निवेशित पूंजी और भी धीरे परिचालित होती है, क्योंकि वह औसतन पांच या दस साल में शायद एक ही बार आवर्तित होती, अर्थात खपती और नवीकृत होती है, यद्यपि बहुत से औज़ार ऐसे होते हैं, जो क्रियाओं की एक ही शृंखला में छीज जाते हैं। जो पूंजी इमारतों, मिलों, दूकानों, कोठियों, गोदामों, सड़कों, सिंचाई,

---

* पाण्डुलिपि में मार्क्स पूंजी आवर्त काल का परिकलन करने की ऐसी विधि की भ्रामकता की ओर इंगित करते हैं। उद्धरण में ही आवर्त की माध्य अवधि (१६ महीने) ५०,००० डालर की कुल पूंजी पर ७.५ प्रतिशत के लाभ को ध्यान में रखते हुए परिकलित की गई थी। लाभ को परिकलन से निकाल दें, तो पूंजी का आवर्त काल १८ महीने हो जाता है।– सं०

** जिस किताब का हवाला दिया गया है, वह है A. Potter, *Political Economy, Its Objects, Uses, and Principles,* New York, 1840. लेखक के "विज्ञापन" के अनुसार पुस्तक का दूसरा भाग तत्वतः G. I. P. Scrope, *The Principles of Political Economy,* लन्दन, १८३३ का पुनर्मुद्रण है (जिसमें पॉटर ने बहुत तबदीलियां की हैं)।– सं०

वग़ैरह में लगाई जाती है, वह तो मुश्किल से ही परिचलन करती प्रतीत हो सकती है। किन्तु वास्तव में ये सारी चीज़ें हमारे द्वारा उल्लिखित चीज़ों की तरह ही उत्पादन में योगदान करते हुए पूर्णत: खप जाती हैं और उनका पुनरुत्पादन ज़रूरी होता है, ताकि उत्पादक अपने कामों को जारी रख सके। अन्तर केवल यह होता है कि और चीज़ों के मुक़ाबले उनका उपभोग और पुनरुत्पादन धीमी गति से होता है... और उनमें निवेशित पूंजी का आवर्त सम्भवत: हर बीस या पचास साल में ही होता है" [पृष्ठ १४१-१४२]।

स्क्रोप यहां प्रचल पूंजी के कुछ भागों के प्रवाह में वैयक्तिक पूंजीपति के लिए अदायगी की अवधियों और उधार की शर्तों से उत्पन्न अन्तर को पूंजी के स्वरूप से जनित आवर्तों में अन्तर के साथ उलझा देते हैं। वह कहते हैं कि मज़दूरी की अदायगी हफ़्तावार बिक्री या बिलों की साप्ताहिक प्राप्तियों से की जानी चाहिए। यहां सबसे पहले इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि कुछ अन्तर तो स्वयं मज़दूरी के सम्बन्ध में पैदा होते हैं और वे अदायगी की मीयाद की दीर्घता, अर्थात उस समय की दीर्घता कि जितने के लिए श्रमिक को पूंजीपति को उधार देना होता है, मज़दूरी के हर हफ़्ते, हर महीने, हर तीन महीने या हर छ: महीने, आदि दिये जाने पर निर्भर करते हैं। इस प्रसंग में पहले प्रतिपादित यह नियम सही उतरता है कि "सभी नियतकालिक भुगतानों के लिए आवश्यक अदायगी के साधनों का परिमाण" (अत: एक बार में पेशगी दी जानेवाली द्रव्य पूंजी का परिमाण) "उनकी अवधियों की दीर्घता के प्रतिलोम* अनुपात में होता है" (Buch I, Kap. III, 3b, S. 124)।**

दूसरी बात यह है कि साप्ताहिक उत्पाद में केवल हफ़्ते भर के श्रम के द्वारा उत्पादन प्रक्रिया के दौरान जोड़ा गया नया मूल्य ही पूर्णत: प्रवेश नहीं करता है, वरन साप्ताहिक उत्पाद द्वारा उपयुक्त कच्चे माल और सहायक सामग्री का मूल्य भी प्रवेश करता है। यह मूल्य उस उत्पाद के साथ परिचालित होता है, जिसमें वह समाविष्ट है। उत्पाद की बिक्री के ज़रिये वह द्रव्य रूप धारण कर लेता है और उसे उत्पादन के उन्हीं तत्वों में पुन:परिवर्तित करना होता है। यह बात श्रम शक्ति पर उतना ही लागू होती है, जितना कच्चे माल और सहायक सामग्री पर। किन्तु हम पहले ही यह देख चुके हैं (अध्याय ६, अनुभाग २,१) कि उत्पादन के नैरंतर्य के लिए उद्योग की विभिन्न शाखाओं के लिए भिन्न और व्यवसाय की एक ही शाखा के भीतर प्रचल पूंजी के इस तत्व के विभिन्न संघटक अंशों के लिए, जैसे कि कोयले और कपास के लिए, भिन्न उत्पादन साधनों की पूर्ति ज़रूरी है। अत: इस सामग्री को हमेशा नये सिरे से ख़रीदना ज़रूरी नहीं होता, यद्यपि इस सामग्री का वस्तुरूप में निरन्तर प्रतिस्थापन ज़रूरी होता है। क्रय की आवृत्ति उपलब्ध भंडार पर और उसके ख़ाली होने में लगनेवाले समय पर निर्भर करती है। श्रम शक्ति के मामले में पूर्ति का इस तरह का संग्रहण सम्भव नहीं है। श्रम शक्ति में लगाये हुए पूंजी अंश का धन में पुन:परिवर्तन कच्चे माल और सहायक सामग्री में निविष्ट पूंजी के पुन:परिवर्तन के साथ-साथ होता है। किन्तु द्रव्य का एक ओर श्रम शक्ति में तथा दूसरी ओर कच्चे माल में पुन:परिवर्तन इन दोनों घटकों के क्रय और अदायगी की विशेष अवधियों के

---

* यह स्पष्टत: लेखनी की चूक है, क्योंकि अनुपात अनुलोम होता है, न कि प्रतिलोम। – सं०
** हिन्दी संस्करण: अध्याय ३, ३ ख, पृष्ठ १६१। – सं०

कारण अलग-अलग होता है। इनमें से एक, उत्पादक पूर्ति के नाते लम्बी अवधि के लिए ख़रीदा जाता है, और दूसरा – श्रम शक्ति – अल्प अवधि, यथा सप्ताह भर के लिए ख़रीदा जाता है। दूसरी ओर पूंजीपति के लिए उत्पादन के लिए सामग्री के अतिरिक्त तैयार उत्पाद का भी जमा रहना आवश्यक होता है। बिक्री की कठिनाइयां हम एक तरफ़ छोड़ देते हैं। सामान की एक निश्चित मात्रा का उत्पादन करना ही होगा, मान लीजिये कि आर्डर पर। इधर इस सामान के अन्तिम अंश का उत्पादन हो रहा होता है, उधर आर्डर के पूर्णतः पूरा हो जाने तक तैयार उत्पाद गोदाम में पड़ा रहता है। जब भी प्रचल पूंजी के कुछ पृथक तत्वों को उत्पादन प्रक्रिया की किसी प्रारम्भिक मंज़िल में अन्य तत्वों की अपेक्षा देर तक रहना होता है (काठ को सुखाना, इत्यादि), तब उसके आवर्त में दूसरे अन्तर पैदा होते हैं।

जिस उधार व्यवस्था का हवाला यहां स्क्रोप ने दिया है, वह तथा वाणिज्यिक पूंजी भी वैयक्तिक पूंजीपति के लिए आवर्त को रूपांतरित करती है। सामाजिक पैमाने पर वह आवर्त को वहीं तक रूपांतरित करती है कि वह उत्पादन ही नहीं, उपभोग की गति को भी तीव्र करती है।

अध्याय १०

स्थायी तथा प्रचल पूंजी के सिद्धान्त। प्रकृतितंत्रवादी और ऐडम स्मिथ

केने की कृतियों में स्थायी तथा प्रचल पूंजी का भेद अपने को avances primitives [आद्य पेशगी] और avances annuelles [वार्षिक पेशगी] के भेद के रूप में प्रकट करता है। उन्होंने इस भेद को उत्पादक पूंजी में, उत्पादन प्रक्रिया में प्रत्यक्ष लगी हुई पूंजी के भीतर विद्यमान भेद के रूप में सही प्रस्तुत किया है। चूंकि वह खेती में लगाई गई पूंजी – फ़ार्मर की पूंजी – को ही एकमात्र वास्तविक उत्पादक पूंजी समझते हैं, इसलिए उन्होंने यह भेद केवल फ़ार्मर की पूंजी के लिए निरूपित किया है। यही एक पूंजी अंश के वार्षिक आवर्त काल का और दूसरे अंश के इससे अधिक (दसवर्षीय) आवर्त काल का कारण है। विकास क्रम में प्रकृतितंत्रवादियों ने चलते-चलते यह भेद अन्य प्रकार की पूंजी पर, और सामान्यतः औद्योगिक पूंजी पर भी लागू किया। वार्षिक पेशगी तथा अन्य दीर्घकालिक पेशगियों का भेद समाज के लिए इतना महत्वपूर्ण बना रहा है कि ऐडम स्मिथ के बाद भी अनेक अर्थशास्त्री इसी परिभाषा पर लौटकर आते रहते हैं।

पेशगी की इन दोनों क़िस्मों में भेद पेशगी द्रव्य के उत्पादक पूंजी के तत्वों में रूपान्तरित हो जाने तक पैदा नहीं होता। यह ऐसा भेद है, जो केवल उत्पादक पूंजी के भीतर विद्यमान होता है। इसलिए द्रव्य का वर्गीकरण मूल पेशगी अथवा वार्षिक पेशगी में करने की बात केने के दिमाग़ में कभी नहीं उठती। उत्पादन के लिए पेशगी, अर्थात उत्पादक पूंजी के नाते दोनों हो द्रव्य की और बाजार में विद्यमान मालों की भी उलटी होती हैं। इसके अलावा उत्पादक पूंजी के इन दोनों तत्वों के अन्तर को केने ने सही तौर पर उनके तैयार उत्पाद के मूल्य में दाख़िल होने के तरीक़े के भेद में, अतः उत्पाद के मूल्य के साथ उनके मूल्यों के परिचलन के तरीक़े के भेद में और इसलिए उनके प्रतिस्थापन अथवा उनके पुनरुत्पादन के तरीक़े के भेद में, जहां एक तत्व का मूल्य प्रति वर्ष पूर्णतः प्रतिस्थापित होता है, किन्तु दूसरे का अंशतः, और लम्बी अवधि के बाद होता है, बदला है।[23]

---

[23] तुलना कीजिये Quesnay, *Analyse du Tableau Economique* (*Physiocrates*, éd. Daire, I. partie, Paris, 1846)। वहां हम उदाहरण के लिए पढ़ते हैं: "वार्षिक पेशगी काश्त के श्रम पर होनेवाला वार्षिक ख़र्च है; इस पेशगी को उस मूल पेशगी से भिन्न समझना चाहिए, जो कृषि उद्यम की स्थापना की निधि का निर्माण करती है" (पृष्ठ ५९)। बाद के प्रकृतितंत्रवादियों की कृतियों में इस पेशगी को कभी-कभी सीधे पूंजी कहा जाता है:

ऐडम स्मिथ ने केवल यह प्रगति की है कि संवर्गों का सामान्यीकरण किया है। उनके यहां वह अब पूंजी के किसी रूप विशेष पर, फ़ार्मर की पूंजी पर लागू नहीं होती, वरन उत्पादक पूंजी के हर रूप पर लागू होती है। अतः इससे यह सहज निष्कर्ष निकलता है कि वार्षिक आवर्त और दो या अधिक वर्षों की अवधि के आवर्त में कृषि से उत्पन्न भेद का स्थान आवर्त की विभिन्न अवधियों में सामान्य भेद ले लेता है। स्थायी पूंजी के एक आवर्त में सदा प्रचल पूंजी का एक से अधिक आवर्त समाहित होता है, चाहे प्रचल पूंजी का आवर्त काल कुछ भी हो, चाहे वह वार्षिक हो, वार्षिक से अधिक हो या वार्षिक से कम हो। इस प्रकार ऐडम स्मिथ के यहां avances annuelles प्रचल पूंजी में और avances primitives स्थायी पूंजी में बदल जाती हैं। किन्तु ऐडम स्मिथ की प्रगति संवर्गों के सामान्यीकरण तक ही सीमित है। उनका क्रियान्वयन केने की तुलना में बहुत ही निम्न स्तर का है।

स्मिथ जिस भोंडे आनुभविक ढंग से अन्वेषण शुरू करते हैं, वह प्रारम्भ से ही स्पष्टता का अभाव उत्पन्न कर देता है: "पूंजी को दो भिन्न तरीक़ों से उपयोग में लाया जा सकता है, जिससे कि उसके उपयोगकर्ता को आमदनी या मुनाफ़े की प्राप्ति हो" ((*Wealth of Nations*, खण्ड २, अध्याय १, पृष्ठ १८९, ऐबरडीन संस्करण, १८४८*)।

मूल्य निवेश के तरीक़े, जिनसे कि मूल्य पूंजी के कार्य कर सके, अपने मालिक को बेशी मूल्य दे सके, उतने ही पृथक और विभिन्न होते हैं, जितने कि पूंजी निवेश के क्षेत्र। प्रश्न उत्पादन की विभिन्न शाखाओं का है, जिनमें पूंजी का निवेश किया जा सकता है। प्रश्न अगर यों प्रस्तुत किया जाये, तो उसका आशय और भी अधिक होता है। उसमें यह प्रश्न भी शामिल होता है कि उत्पादक पूंजी की हैसियत से मूल्य का निवेश न भी हो, तो वह अपने मालिक के लिए किस तरह पूंजी का कार्य कर सकता है, यथा ब्याज देनेवाली पूंजी का, व्यापारिक पूंजी का, इत्यादि। इस बिन्दु तक आते-आते हम विश्लेषण के वास्तविक विषय से कोसों दूर हट आये हैं। वास्तविक विषय यह प्रश्न है कि उत्पादक पूंजी का उसके विभिन्न तत्वों में विभाजन उनके विभिन्न निवेश क्षेत्रों के अलावा उनके आवर्त को कैसे प्रभावित करता है।

ऐडम स्मिथ इसके तुरंत बाद कहते हैं: "पहले तो उसका उपयोग चीज़ें उगाने, बनाने या ख़रीदने में, और उन्हें फिर मुनाफ़े पर बेचने में किया जा सकता है" [खण्ड २,

---

Capital ou avances Dupont de Nemours, *Maximes du Docteur Quesnay, ou Résumé de ses Principes d'Economie Sociale* (Daire, खण्ड १, पृष्ठ ३९१); इसके अतिरिक्त ले त्रोन लिखते हैं: "मानव श्रम की कृतियों के अल्प अथवा दीर्घ स्थायित्व के फलस्वरूप किसी भी राष्ट्र के पास उसके वार्षिक पुनरुत्पादन से स्वतंत्र धन की काफ़ी भारी निधि होती है, यह निधि ऐसी पूंजी – दीर्घ अवधि में संचित और मूलतः उत्पादों में शोधित – का निर्माण करती है, जो निरन्तर सुरक्षित रहती और परिवर्धित होती है" (Daire, खंड २, पृष्ठ ९२८-९२९)। तुर्गो ने पेशगी के लिए पूंजी शब्द का अधिक नियमित उपयोग किया है और कारख़ानेदारों की पेशगी तथा फ़ार्मरों की पेशगी की तद्रूपता को और भी अधिक स्वीकार किया है (Turgot, *Réflexions sur la Formation et la Distribution des Richesses*, 1766)।

*जहां भी मार्क्स ने स्मिथ की कृति से उद्धरण का पृष्ठ संदर्भ नहीं दिया है, वहां गुरु कोष्ठकों में *An Inquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations. A new edition in four volumes* के लंदन में १८४३ में प्रकाशित संस्करण के संपादकीय पृष्ठ संदर्भ दिये गये हैं। इस तथा बादवाले सभी उद्धरणों को इस संस्करण से मिलाया गया है। – सं०

पृष्ठ २५४]। वह यहां हमें इसके अलावा और कुछ नहीं बताते कि पूंजी खेती में, हस्तउद्योग में और व्यापार में लगाई जा सकती है। इसलिए वह केवल पूंजी निवेश के विभिन्न क्षेत्रों की बात करते हैं, जिनमें व्यापार जैसे क्षेत्र भी शामिल हैं, जहां पूंजी का उत्पादन प्रक्रिया में प्रत्यक्षतः समावेश नहीं होता, अतः जो उत्पादक पूंजी का कार्य नहीं करती। ऐसा करने में ऐडम स्मिथ उस बुनियाद को तज देते हैं, जिस पर प्रकृतितंत्रवादी उत्पादक पूंजी के भीतर के भेदों और आवर्त पर उनके प्रभाव को आधारित करते हैं। यही नहीं। उन्होंने व्यापारी पूंजी को ऐसी समस्या में उदाहरणस्वरूप चुना है, जिसका एकमात्र सम्बन्ध **उत्पादक** पूंजी के भीतर उत्पाद की और मूल्य की निर्माण प्रक्रिया के अंतर से है, और जो अपनी बारी में पूंजी के आवर्त और पुनरुत्पादन में अंतर पैदा करता है।

वह आगे कहते हैं: "इस तरह उपयुक्त पूंजी जब तक अपने मालिक के पास रहती है या उसी रूप में बनी रहती है, उसे कोई आमदनी या मुनाफ़ा नहीं देती" [खण्ड २, पृष्ठ २५४]। "इस तरह उपयुक्त पूंजी!" किन्तु स्मिथ खेती में, उद्योग में लगाई हुई पूंजी की बात करते हैं, और वह आगे हमें बताते हैं कि इस तरह उपयुक्त पूंजी स्थायी तथा प्रचल पूंजी में बंट जाती है! अतः पूंजी का इस तरह का निवेश उसे स्थायी अथवा प्रचल पूंजी नहीं बना सकता।

अथवा क्या उनका यह तात्पर्य है कि माल पैदा करने और मुनाफ़े पर उसे बेचने के लिए प्रयुक्त पूंजी को उसके माल में रूपांतरण के बाद बेचा जाना होगा और इस बिक्री के ज़रिये उसे पहले तो विक्रेता के हाथ से ग्राहक के हाथ में पहुंचना होगा, और दूसरे, अपने वस्तुरूप – माल – से बदलकर द्रव्य रूप में आना होगा, जिससे जब तक वह या तो अपने मालिक के पास रहती है या उसी रूप में बनी रहती है, उसके किसी काम की नहीं होती? उस हालत में सारी बात का निचोड़ यही होगा: जो पूंजी मूल्य पहले उत्पादक पूंजी के रूप में उत्पादन प्रक्रिया के रूप विशेष में कार्य करता था, वह अब माल पूंजी और द्रव्य पूंजी की तरह परिचलन प्रक्रिया के रूप विशेष में कार्य करता है, जहां वह अब न स्थायी पूंजी रह जाता है, न प्रचल पूंजी। और यह बात समान रूप से मूल्य के उन तत्वों पर, जो कच्चे माल और सहायक सामग्री द्वारा, अर्थात प्रचल पूंजी द्वारा जोड़े जाते हैं, और उन तत्वों पर भी लागू होती है, जो श्रम उपकरणों की छीजन द्वारा अतः स्थायी पूंजी द्वारा जोड़े जाते हैं। इस ढंग से भी हम स्थायी और प्रचल पूंजी के अंतर तक नहीं पहुंच पाते।

और आगे: "व्यापारी का माल तब तक आय या मुनाफ़ा नहीं देता, जब तक वह उसे धन के बदले में बेच नहीं लेता, और यह धन भी उसका माल से विनिमय किये जाने तक अधिक नहीं देता। उसकी पूंजी निरन्तर उसके पास से एक रूप में जाती रहती और दूसरे रूप में लौटकर आती रहती है और वह इस तरह के परिचलन अथवा क्रमिक विनिमय द्वारा ही उसे कोई मुनाफ़ा दे सकती है। अतः इस तरह की पूंजी को प्रचल पूंजी कहना बहुत मुनासिब होगा" [खण्ड २, पृष्ठ २५४]।

ऐडम स्मिथ यहां जिसे प्रचल पूंजी कहते हैं, उसे मैं **परिचलन पूंजी** कहना चाहूंगा – ऐसे रूप में पूंजी, जो परिचलन प्रक्रिया के, विनिमय के माध्यम से रूप परिवर्तन (पदार्थ और स्वामित्व का परिवर्तन) के उपयुक्त है। अतः वह माल पूंजी और द्रव्य पूंजी है, जो अपने उत्पादन प्रक्रिया के उपयुक्त रूप से उत्पादक पूंजी के रूप से भिन्न है। ये ऐसी भिन्न कोटियां नहीं हैं, जिनमें औद्योगिक पूंजीपति अपनी पूंजी बांट देता है, वरन उसी पेशगी पूंजी मूल्य के

विभिन्न रूप हैं, जिन्हें वह अपने curriculum vitae [जीवन-क्रम] में बार-बार क्रमशः धारण करता और फिर उतार देता है। ऐडम स्मिथ ने इसे उन भेद रूपों से उलझा दिया है – और प्रकृतितंत्रवादियों की तुलना में यह एक भारी पीछे क़दम है – जो पूंजी मूल्य के परिचलन क्षेत्र में, उसके क्रमिक रूपों के दौरान उसकी चक्रीय गति में उत्पन्न होते हैं, जब कि पूंजी मूल्य उत्पादक पूंजी के रूप में रहता है; और ये उत्पादक पूंजी के विभिन्न तत्वों के मूल्यों के निर्माण में भाग लेने और अपना मूल्य उत्पाद को अंतरित करने के भिन्न-भिन्न तरीक़ों से पैदा होते हैं। हम आगे देखेंगे कि एक ओर उत्पादक पूंजी और परिचलन क्षेत्र की पूंजी (माल पूंजी और द्रव्य पूंजी) तथा दूसरी ओर स्थायी और प्रचल पूंजी में इस बुनियादी उलझाव का नतीजा क्या होता है। स्थायी पूंजी में पेशगी पूंजी मूल्य उत्पाद द्वारा उतना ही परिचालित होता है, जितना प्रचल पूंजी में पेशगी मूल्य और दोनों ही समान रूप से माल पूंजी के परिचलन द्वारा द्रव्य पूंजी में परिवर्तित होते हैं। अन्तर केवल इस तथ्य से पैदा होता है कि स्थायी पूंजी का मूल्य खंडशः परिचालित होता है और इसलिए न्यूनाधिक अवधि में उसका प्रतिस्थापन भी खंडशः करना होता है, भौतिक रूप में उसका पुनरुत्पादन करना होता है।

प्रचल पूंजी से ऐडम स्मिथ का आशय परिचलन पूंजी, अर्थात परिचलन प्रक्रिया से सम्बद्ध पूंजी मूल्य के रूपों (माल पूंजी और द्रव्य पूंजी) के अलावा और किसी चीज़ से नहीं है – यह यहां उनके चुने बहुत ही भोंडे उदाहरण से प्रकट होता है। इस उद्देश्य के लिए वह इस तरह की पूंजी चुनते हैं, जो उत्पादन प्रक्रिया से सम्बद्ध है ही नहीं, वरन जो सदा परिचलन क्षेत्र में ही रहती है, जिसमें केवल परिचलन पूंजी – व्यापारी पूंजी – ही समाहित होती है।

ऐसी मिसाल से शुरूआत करना, जिसमें पूंजी पूर्णतः उत्पादक पूंजी के रूप में आती ही नहीं है, कैसा बेतुका है, यह फ़ौरन स्वयं ऐडम स्मिथ ही बताते हैं: "उदाहरण के लिए, व्यापारी की पूंजी पूर्णतः प्रचल पूंजी है" [खण्ड २, पृष्ठ २५५]। फिर भी बाद को हमें बताया जाता है कि प्रचल और स्थायी पूंजी का भेद स्वयं उत्पादक पूंजी के भीतर के तात्विक भेदों से उत्पन्न होता है। एक ओर ऐडम स्मिथ के मन में प्रकृतितंत्रवादियों द्वारा किया गया भेद है, दूसरी ओर वे विभिन्न रूप हैं, जिन्हें पूंजी मूल्य अपने परिपथ में धारण करता है। और इन दोनों को गड्डमड्ड कर दिया गया है।

किन्तु द्रव्य और मालों के रूप परिवर्तन से, इनमें एक रूप से दूसरे में मूल्य के रूपांतरण से ही मुनाफ़ा कैसे पैदा हो जायेगा, यह बताना किसी के बस की बात नहीं है। व्याख्या करना एकदम नामुमकिन हो जाता है, क्योंकि यहां उन्होंने शुरूआत व्यापारी पूंजी से की है, जो केवल परिचलन क्षेत्र में गतिशील है। इसकी चर्चा आगे हम फिर करेंगे। पहले यह सुन लें कि स्थायी पूंजी के बारे में वह क्या कहते हैं [खण्ड २, पृष्ठ २५४-२५५]।

"दूसरे, वह (पूंजी) भूमि सुधार में, उपयोगी मशीनें और व्यवसाय के अन्य उपकरण और ऐसी ही दूसरी चीज़ें ख़रीदने में प्रयुक्त की जा सकती है, जो मालिक बदले बिना अथवा और आगे परिचालित हुए बिना आय या मुनाफ़ा दे सकती हैं। अतः ऐसी पूंजी को स्थायी पूंजी कहना बहुत उपयुक्त होगा। भिन्न-भिन्न पेशों में उनमें प्रयुक्त स्थायी और प्रचल पूंजी के अत्यंत भिन्न-भिन्न अनुपातों की आवश्यकता होती है ... हर मालिक कारीगर या कारख़ानेदार की पूंजी के कुछेक हिस्से का उसके व्यवसाय के उपकरणों में नियतन आवश्यक है। किन्तु यह हिस्सा कुछ धन्धों में बहुत छोटा होता है, तो औरों में बहुत बड़ा ... किन्तु ऐसे सभी मालिक कारीगरों (जैसे कि दर्ज़ियों, मोचियों, बुनकरों) की पूंजी का बहुत बड़ा

भाग या तो उनके कारीगरों की मजदूरी के रूप में या उनकी सामग्री की क़ीमत के रूप में परिचालित होता है, और काम की क़ीमत के ज़रिये मुनाफ़े के साथ लौटता है।"

मुनाफ़े के स्रोत के अज्ञानतापूर्ण निर्धारण के अलावा उनकी कमज़ोरी और उलझन तुरंत ही निम्नलिखित बातों से स्पष्ट हो जाती है: उदाहरण के लिए, मशीन निर्माता के लिए मशीन उसका उत्पाद है, जो माल पूंजी के रूप में परिचालित होती है अथवा ऐडम स्मिथ के शब्दों में "जुदा होती है, मालिक बदलती है, आगे परिचालित होती है"। इसलिए खुद उनकी परिभाषा के अनुसार यह मशीन स्थायी नहीं, प्रचल पूंजी होगी। यह उलझाव पुनः इस तथ्य से पैदा होता है कि स्मिथ स्थायी और प्रचल पूंजी के भेद को, जो उत्पादक पूंजी के विभिन्न तत्वों के नानाविध परिचलन से उत्पन्न होता है, रूप के उन भेदों से मिला देते हैं, जिन्हें वही पूंजी धारण करती है, जो उत्पादन प्रक्रिया में **उत्पादक** पूंजी की तरह और प्रचल पूंजी की तरह अर्थात माल पूंजी अथवा द्रव्य पूंजी की हैसियत से परिचलन क्षेत्र में कार्य करती है। फलतः ऐडम स्मिथ के लिए चीज़ें स्थायी पूंजी का (श्रम उपकरणों का, उत्पादक पूंजी के तत्वों का) कार्य कर सकती हैं अथवा "प्रचल" पूंजी का, माल पूंजी का (उस उत्पाद का, जो उत्पादन क्षेत्र से निकालकर परिचलन क्षेत्र में डाल दिया गया है) कार्य कर सकती हैं; यह सब पूंजी की जीवन-प्रक्रिया में उन्हें प्राप्त उनकी स्थिति पर निर्भर है।

किन्तु ऐडम स्मिथ अचानक अपने वर्गीकरण का समूचा आधार बदल देते हैं, और कुछ ही पंक्तियों पहले उन्होंने जिस कथन से सारे विश्लेषण का प्रारम्भ किया था, उसका खंडन कर देते हैं। यह बात विशेषतः उनके इस कथन पर लागू होती है: "पूंजी को दो भिन्न तरीक़ों से उपयोग में लाया जा सकता है, जिससे कि वह अपने मालिक को आय या मुनाफ़ा दे सके" [खण्ड २, पृष्ठ २५४], अर्थात प्रचल पूंजी के अथवा स्थायी पूंजी के रूप में। अतः इस कथन के अनुसार ये एक दूसरे से स्वतंत्र, विभिन्न पूंजियों के उपयोग के विभिन्न तरीक़े हैं, जैसे ऐसी पूंजियां, जो उद्योग में अथवा कृषि में प्रयुक्त हो सकती हैं। और इसके बाद हम पढ़ते हैं [खण्ड २, पृष्ठ २२५]: "भिन्न-भिन्न पेशों में उनमें प्रयुक्त स्थायी और प्रचल पूंजी के अत्यंत भिन्न-भिन्न अनुपातों की आवश्यकता होती है।" स्थायी और प्रचल पूंजी अब पूंजी के विभिन्न, स्वतंत्र निवेश नहीं हैं, वरन एक ही उत्पादक पूंजी के विभिन्न अंश हैं, जिनसे विभिन्न निवेश क्षेत्रों में इस पूंजी के समग्र मूल्य के विभिन्न अंश बनते हैं। अतः यहां हमारे सामने स्वयं **उत्पादक** पूंजी के उपयुक्त विभाजन से उत्पन्न भेद हैं और इसलिए वे केवल उसी के संदर्भ में संगत हैं। किन्तु यह बात इस स्थिति के ख़िलाफ़ बैठती है कि व्यापारी पूंजी, केवल प्रचल पूंजी होने के कारण स्थायी पूंजी की प्रतिमुखी होती है, क्योंकि ऐडम स्मिथ स्वयं कहते हैं: "उदाहरण के लिए, व्यापारी की पूंजी पूर्णतः प्रचल पूंजी है" [खण्ड २, पृष्ठ २५५]। वह सच ही ऐसी पूंजी है, जो केवल परिचलन क्षेत्र में अपने कार्य सम्पन्न करती है और इस हैसियत से वह सामान्यतः उत्पादक पूंजी के, उत्पादन प्रक्रिया में समाविष्ट पूंजी के प्रतिमुख होती है। किन्तु इसी कारण उत्पादक पूंजी के प्रचल संघटक अंश के रूप में उसे उसके स्थायी संघटक अंश के मुक़ाबले नहीं रखा जा सकता।

स्मिथ ने जो उदाहरण दिये हैं, उनमें उन्होंने "व्यवसाय के उपकरणों" को स्थायी पूंजी की, और जो पूंजी अंश मज़दूरी में तथा सहायक सामग्री समेत कच्चे माल में व्यय होता है, उसे प्रचल पूंजी की संज्ञा दी है ("काम की क़ीमत के ज़रिये मुनाफ़े के साथ लौटता है")।

इस प्रकार वह पहले तो एक ओर श्रम प्रक्रिया के विभिन्न घटकों से: श्रम शक्ति (श्रम)

और कच्चे माल से, तथा दूसरी ओर श्रम उपकरणों से शुरूआत करते हैं। किन्तु ये पूंजी के घटक हैं, क्योंकि उनमें मूल्य की राशि का निवेश हुआ है, जिसे पूंजी की तरह कार्य करना है। इस सीमा तक वे भौतिक तत्व हैं, **उत्पादक** पूंजी के अस्तित्व के रूप, अर्थात उत्पादन प्रक्रिया में कार्यशील पूंजी के अस्तित्व के रूप हैं। किन्तु इनमें से एक भाग को स्थायी क्यों कहा जाता है? इसलिए कि "पूंजी के कुछेक हिस्से का व्यवसाय के उपकरणों में नियतन आवश्यक है [खण्ड २, पृष्ठ २५४]। किन्तु दूसरा हिस्सा भी नियत है – मजदूरी और कच्चे माल में। किन्तु मशीनें और "व्यवसाय के अन्य उपकरण ... या ऐसी ही चीज़ें मालिक बदले बिना या आगे परिचालित हुए बिना आय या मुनाफ़ा देती हैं। अतः ऐसी पूंजी को स्थायी पूंजी कहना बहुत उपयुक्त होगा" [खण्ड २, पृष्ठ २५४]।

खनन उद्योग को उदाहरण के तौर पर ले लीजिये। यहां कुछ भी कच्चा माल नहीं लगता, क्योंकि श्रम विषय, यथा तांबा, प्राकृतिक उपज है, जिसे पहले श्रम द्वारा प्राप्त करना होता है। यह तांबा, जिसे पहले प्राप्त किया जाता है, प्रक्रिया की उपज होता है, जो बाद को माल अथवा माल पूंजी के रूप में परिचालित होता है, उत्पादक पूंजी का तत्व नहीं बनता। उसके किसी भी मूल्यांश का निवेश उसमें नहीं होता। दूसरी ओर उत्पादक प्रक्रिया के दूसरे तत्व भी – श्रम शक्ति और सहायक सामग्री, यथा कोयला, पानी, इत्यादि – उत्पाद में भौतिक रूप से प्रवेश नहीं करते। कोयला पूरी तरह खप जाता है और केवल उसका मूल्य उत्पाद में दाख़िल होता है, वैसे ही जैसे मशीन, वग़ैरह के मूल्य का एक भाग उसमें दाख़िल होता है। अन्त में जहां तक उत्पाद, तांबे, का सम्बन्ध है, श्रमिक उससे उतना ही स्वतंत्र रहता है, जितना कि मशीन। अन्तर केवल यह है कि अपनी मेहनत के जरिये जो मूल्य वह पैदा करता है, वह अब तांबे के मूल्य का संघटक अंश बन जाता है। अतः इस उदाहरण में उत्पादक पूंजी का एक भी घटक "मालिक" नहीं बदलता, न उनमें से कोई घटक और आगे परिचालित होता है, क्योंकि उनमें कोई भी उत्पाद में भौतिक रूप से दाख़िल नहीं होता। इस मामले में प्रचल पूंजी का क्या होता है? ऐडम स्मिथ की अपनी ही परिभाषा के अनुसार तांबे की खान में जिस समूची पूंजी का उपयोग होता है, वह स्थायी पूंजी के अलावा और कुछ नहीं है।

इसके विपरीत एक अन्य उद्योग ले लीजिये, ऐसा, जो कच्चे माल का उपयोग करता है, जिससे उसके उत्पाद के पदार्थ का निर्माण होता है और जिसमें सहायक सामग्री का उपयोग होता है, जो भौतिक रूप में – जलाऊ कोयले की तरह केवल अमुक मात्रा के मूल्य रूप में नहीं – उत्पाद में प्रवेश करती है। उत्पाद, यथा सूत का स्वामित्व उस कच्ची सामग्री, कपास के स्वामित्व के साथ बदलता है, जिससे उसका निर्माण हुआ है और वह उत्पाद उत्पादन प्रक्रिया से उपभोग प्रक्रिया में चला जाता है। किन्तु जब तक कपास उत्पादक पूंजी के तत्व का कार्य करती है, तब तक उसका मालिक उसे बेचता नहीं है, वरन उसे प्रक्रिया में डालता है, उससे सूत बनाता है। वह उससे जुदा नहीं होता। अथवा स्मिथ की अनगढ़, भ्रांत और सतही शब्दावली का व्यवहार करें, तो वह "उससे जुदा होकर, उसके मालिक बदलने से, अथवा उसे परिचालित करने से" कोई मुनाफ़ा नहीं कमाता। वह अपनी सामग्री को वैसे ही परिचालित नहीं होने देता, जैसे अपनी मशीनों को। वह उत्पादन प्रक्रिया में वैसे ही नियत होती है, जैसे कताई की मशीनें और कारख़ाने की इमारतें। दरअसल, उत्पादक पूंजी के एक भाग का कोयले, कपास, आदि के रूप में वैसे ही निरन्तर नियतन आवश्यक है, जैसे कि श्रम उपकरणों के रूप में। अन्तर केवल यह है कि मसलन जो कपास, कोयला, वग़ैरह सूत की एक हफ़्ते की पैदावार के लिए

जरूरी होते हैं, वे साप्ताहिक उत्पाद के निर्माण में हमेशा पूरी तरह खप जाते हैं, जिससे कि उनकी जगह नये कोयले, कपास, वगैरह की पूर्ति करना आवश्यक होता है। दूसरे शब्दों में उत्पादक पूंजी के ये तत्व यद्यपि वस्तुरूप में एक से बने रहते हैं, फिर भी उनमें सदा समान प्रकार के नये नमूने समाहित होते रहते हैं, जब कि वही अलग कताई की मशीन, अथवा कारखाने की वही अलग इमारत समान प्रकार के नये नमूने द्वारा प्रतिस्थापित हुए बिना साप्ताहिक उत्पादनों की पूरी शृंखला में भाग लेने का अपना काम जारी रखती है। उत्पादक पूंजी के तत्व होने के कारण उसके सभी संघटक अंश उत्पादन प्रक्रिया में निरन्तर नियत रहते हैं, क्योंकि यह प्रक्रिया उनके बिना चल ही नहीं सकती। और उत्पादक पूंजी के सभी तत्व – वह चाहे स्थायी हो, चाहे प्रचल – उत्पादक पूंजी की हैसियत से, समान रूप में परिचलन पूंजी के, अर्थात माल पूंजी तथा द्रव्य पूंजी के सामने आते हैं।

श्रम शक्ति के साथ भी यही होता है। उत्पादक पूंजी के एक भाग का उसमें निरन्तर नियत होते रहना जरूरी है, और जिस तरह वही पूंजीपति सभी जगह एक निश्चित अवधि के लिए उन्हीं मशीनों का उपयोग करता है, उसी तरह उसी श्रम शक्ति का भी प्रयोग किया जाता है। श्रम शक्ति और मशीनों में यहां यह अन्तर नहीं है कि मशीनें एक ही बार में ख़रीद ली जाती हैं (क़िस्तों में अदायगी होने पर ऐसा नहीं होता), जब कि श्रमिक एक ही बार में नहीं ख़रीदा जाता। बल्कि अन्तर इस बात में है कि श्रमिक द्वारा व्यय किया हुआ श्रम उत्पाद के मूल्य में पूर्णतः प्रवेश करता है, जब कि मशीन का मूल्य केवल खंडशः प्रवेश करता है।

स्मिथ जब स्थायी पूंजी के प्रचल पूंजी के प्रतिमुख होने की बात करते हैं, तो वह भिन्न-भिन्न परिभाषाओं को उलझा देते हैं: "इस तरह उपयुक्त पूंजी जब तक अपने मालिक के पास रहती है या उसी रूप में बनी रहती है, उसे कोई आमदनी या मुनाफ़ा नहीं देती" [खण्ड २, पृष्ठ २५४]। वह माल के मात्र औपचारिक रूपान्तरण को, जिससे उत्पाद, माल पूंजी, को परिचलन क्षेत्र में गुजरना होता है और जिससे मालों का स्वामित्व बदलता है, भौतिक रूपांतरण के स्तर पर ही रख देते हैं, जिससे उत्पादक पूंजी के विभिन्न तत्वों को उत्पादन प्रक्रिया के दौरान गुजरना होता है। वह मालों के द्रव्य में और द्रव्य के मालों में रूपान्तरण अथवा क्रय-विक्रय को उत्पादन तत्वों के उत्पाद में रूपान्तरण के साथ अंधाधुंध गड्डमड्ड कर देते हैं। प्रचल पूंजी के लिए उन्होंने व्यापारी पूंजी को उदाहरणस्वरूप लिया है, जो मालों से द्रव्य में और द्रव्य से मालों में परिवर्तित होती है: मा – द्र – मा का रूप परिवर्तन माल परिचलन के लिए लाक्षणिक है। किन्तु क्रियारत औद्योगिक पूंजी के लिए परिचलन के भीतर यह रूप परिवर्तन इसका द्योतक है कि द्रव्य जिन मालों में पुनःपरिवर्तित होता है, वे उत्पादन के तत्व (श्रम शक्ति तथा श्रम उपकरण) हैं और इसलिए रूप परिवर्तन औद्योगिक पूंजी के कार्य को निरन्तर बना देता है, उत्पादन प्रक्रिया को निरन्तर प्रक्रिया अथवा पुनरुत्पादन प्रक्रिया बना देता है। यह सारा रूप परिवर्तन **परिचलन** के भीतर होता है। इसी रूप परिवर्तन के माध्यम से मालों का वास्तविक स्वामित्वांतरण होता है। किन्तु इसके विपरीत उत्पादन प्रक्रिया के अन्तर्गत उत्पादक पूंजी में होनेवाले रूपान्तरण केवल **श्रम प्रक्रिया** के लिए लाक्षणिक रूपान्तरण होते हैं और वे उत्पादन तत्वों को वांछित उत्पाद में बदलने के लिए आवश्यक होते हैं। ऐडम स्मिथ इसी तथ्य से चिपके रहते हैं कि उत्पादन साधनों का एक भाग (स्वयं श्रम उपकरण) अपना भौतिक रूप बदले बिना श्रम प्रक्रिया में काम करता है (जैसा कि वह भ्रान्तिपूर्ण ढंग से कहते हैं: "अपने मालिक को मुनाफ़ा देते हैं"), और क्रमशः ही छीजता

है ; जब कि दूसरा भाग, सामग्री, परिवर्तित होता है और इस परिवर्तन के ही कारण उत्पादन साधनों के रूप में अपना लक्ष्य प्राप्त करता है। श्रम प्रक्रिया में उत्पादक पूंजी के तत्वों के आचरण में यह जो भेद है, वह स्थायी और अस्थायी पूंजी का भेद नहीं, उसका प्रस्थान बिन्दु मात्र है। यह निष्कर्ष इस तथ्य से ही निकलता है कि यह भिन्न आचरण उत्पादन की सभी – पूंजीवादी या ग़ैरपूंजीवादी – पद्धतियों में समान मात्रा में होता है। किन्तु **मूल्य का** उत्पाद में **संचरण** भौतिक तत्वों के इस भिन्न आचरण के अनुरूप होता है और अपनी बारी में वह उत्पाद की बिक्री द्वारा मूल्य के प्रतिस्थापन के अनुरूप होता है। यहां जिस अंतर की बात है, वह यही है। अतः पूंजी स्थायी इसलिए नहीं कहलाती कि वह श्रम उपकरणों में नियत है, वरन इसलिए कि उसके मूल्य का एक भाग, जो श्रम उपकरणों पर ख़र्च किया जाता है, उनमें नियत रहता है, जब कि दूसरा भाग, उत्पाद के मूल्य के संघटक अंश के रूप में परिचालित होता है।

"यदि उसका (स्टॉक का) उपयोग भावी मुनाफ़ा पाने के लिए किया जाये, तो वह या तो उसके (मालिक के) पास रहते हुए यह मुनाफ़ा प्राप्त करेगा, या उससे जुदा होकर। एक मामले में वह स्थायी और दूसरे में प्रचल पूंजी है" (पृष्ठ १८९)।

जो बात सबसे पहले यहां ध्यान खींचती है, वह सामान्य पूंजीपति के दृष्टिकोण से जनित मुनाफ़े की भोंडी आनुभविक धारणा है, जो ऐडम स्मिथ की बेहतर अंतरंग समझ के पूर्णतः प्रतिकूल है। सामग्री की क़ीमत और श्रम शक्ति की क़ीमत ही उत्पाद की क़ीमत में प्रतिस्थापित नहीं होती, वरन मूल्य का वह भाग भी प्रतिस्थापित होता है, जो घिसने और छीजने के कारण श्रम उपकरणों से उत्पाद को अन्तरित होता है। किसी भी स्थिति में इस प्रतिस्थापन से मुनाफ़ा प्राप्त नहीं होता। इससे कि किसी माल के उत्पादन के लिए पेशगी दिया मूल्य पूर्णतः अथवा खंडशः, एक ही बार में अथवा क्रमशः उस माल की बिक्री द्वारा प्रतिस्थापित होता है, प्रतिस्थापन के समय और तरीक़े के अलावा और किसी चीज़ में फ़र्क़ नहीं पड़ता। किन्तु जो चीज़ दोनों में शामिल है, उसे – मूल्य के प्रतिस्थापन को – वह किसी भी स्थिति में बेशी मूल्य के निर्माण में नहीं बदल सकता। इस सब की जड़ में यही आम धारणा है कि चूंकि उत्पाद जब तक बिके नहीं, जब तक उसका परिचलन न हो, तब तक बेशी मूल्य का सिद्धिकरण नहीं होता, इसलिए उसका जन्म केवल बिक्री से, परिचलन से होता है। दरअसल मुनाफ़े की उत्पत्ति का यह भिन्न तरीक़ा इस मामले में इस तथ्य को व्यक्त करने का एक ग़लत तरीक़ा भर है कि उत्पादक पूंजी के विभिन्न तत्व भिन्न-भिन्न काम देते हैं और उत्पादक तत्वों के रूप में वे श्रम प्रक्रिया में भिन्न-भिन्न तरीक़े से काम करते हैं। अन्त में इस भेद का उद्गम श्रम प्रक्रिया अथवा स्वप्रसार में नहीं, स्वयं उत्पादक पूंजी के कार्य में नहीं देखा जाता, वरन उसे आत्मगत रूप में केवल वैयक्तिक पूंजीपति से संबद्ध माना जाता है, जिसके लिए पूंजी का एक भाग एक प्रकार से उपयोगी उद्देश्य पूरा करता है, तो दूसरा भाग यही काम दूसरे प्रकार से करता है।

दूसरी ओर केने ने इन भेदों का स्रोत पुनरुत्पादन प्रक्रिया और उसकी आवश्यकताओं में देखा है। यह प्रक्रिया निरन्तर जारी रहे, इसके लिए आवश्यक है कि सालाना पेशगी मूल्य प्रति वर्ष पूर्णतः वार्षिक उत्पाद के मूल्य से प्रतिस्थापित हो। उधर जिस पूंजी का निवेश हुआ है, उसके मूल्य को केवल खंडशः प्रतिस्थापित करना ज़रूरी होगा, जिससे उसका पूर्ण प्रतिस्थापन, अतः उसका पूर्ण पुनरुत्पादन, केवल एक अवधि में, यथा दस वर्षों में (उसी प्रकार की नई सामग्री द्वारा) आवश्यक होगा। फलतः ऐडम स्मिथ केने से भी बहुत नीचे साबित होते हैं।

इसलिए ऐडम स्मिथ के पास स्थायी पूंजी की परिभाषा देने को इसके सिवा क़तई और कुछ नहीं रह जाता कि उत्पाद के विपरीत जिसके निर्माण में श्रम उपकरण सहायक होते हैं, ये श्रम उपकरण ही स्थायी पूंजी होते हैं, जो उत्पादन प्रक्रिया में अपनी शकल नहीं बदलते और उत्पादन में छीज जाने तक काम आते रहते हैं। वह भूल जाते हैं कि उत्पादक पूंजी के सभी तत्व अपने भौतिक रूप में (श्रम उपकरणों, सामग्री तथा श्रम शक्ति की तरह) निरन्तर उत्पाद के और माल रूप में परिचालित उत्पाद के सामने रहते हैं और यह कि सामग्री तथा श्रम शक्तिवाले भाग और श्रम उपकरणोंवाले भाग में केवल यह अन्तर होता है: श्रम शक्ति के संदर्भ में यह कि उसे निरन्तर नये सिरे से ख़रीदा जाता है (श्रम उपकरणों के विपरीत जितने समय वह विद्यमान रहे, उतने समय के लिए नहीं)। सामग्री के सम्बन्ध में यह कि श्रम प्रक्रिया की संपूर्ण अवधि में बिल्कुल वही सामग्री नहीं, वरन सदा उसी प्रकार की नई सामग्री कार्यशील रहती है। साथ ही यह ग़लत धारणा बन जाती है कि स्थायी पूंजी का मूल्य परिचलन में भाग नहीं लेता, यद्यपि निस्संदेह ऐडम स्मिथ ने स्थायी पूंजी की छीजन के लिए पहले यह कैफ़ियत दी थी कि वह उत्पाद की क़ीमत का एक हिस्सा होती है।

प्रचल पूंजी को स्थायी पूंजी के प्रतिमुख रखते हुए इस तथ्य पर कोई ज़ोर नहीं दिया जाता कि यह प्रतिमुखता केवल इसलिए होती है कि यह उत्पादक पूंजी का वह घटक है, जिसे उत्पाद के मूल्य से **पूर्णतः** प्रतिस्थापित करना होता है और इसलिए जिसे उसके रूपान्तरणों में पूर्णतः भाग लेना होता है जब कि स्थायी पूंजी के साथ ऐसा नहीं होता। इसके बदले प्रचल पूंजी को उन रूपों के साथ उलझा दिया जाता है, जिन्हें पूंजी उत्पादन क्षेत्र से निकलकर परिचलन क्षेत्र में पहुंचते हुए माल पूंजी तथा द्रव्य पूंजी की हैसियत से धारण करती है। किन्तु माल पूंजी तथा द्रव्य पूंजी, ये दोनों ही रूप उत्पादक पूंजी के स्थायी और प्रचल, दोनों घटकों के वाहक हैं। दोनों ही उत्पादक पूंजी से भिन्न परिचलन पूंजी हैं, किन्तु वे स्थायी पूंजी से भिन्न प्रचल पूंजी नहीं हैं।

अन्त में, इस पूर्णतः भ्रान्त व्याख्या के कारण कि मुनाफ़ा उत्पादन प्रक्रिया में रुकनेवाली स्थायी पूंजी द्वारा और इस प्रक्रिया को त्यागने और परिचालित होनेवाली प्रचल पूंजी द्वारा कमाया जाता है तथा **आवर्त** में परिवर्ती पूंजी और स्थिर पूंजी के प्रचल घटक द्वारा अपनाये जानेवाले रूपों की एकरूपता के कारण **स्वप्रसार की प्रक्रिया** में तथा बेशी मूल्य निर्माण की प्रक्रिया में उनका तात्विक भेद छिप जाता है, जिससे पूंजीवादी उत्पादन का सारा रहस्य और भी प्रच्छन्न हो जाता है। "प्रचल पूंजी" की सामान्य संज्ञा इस तात्विक भेद को मिटा देती है। बाद में राजनीतिक अर्थशास्त्र एकमात्र और तात्विक सीमारेखा के रूप में परिवर्ती और स्थिर पूंजी के वैपरीत्य पर नहीं, बल्कि स्थायी और प्रचल पूंजी के वैपरीत्य पर जमे रहकर और भी आगे चला गया।

स्थायी और प्रचल पूंजी को पूंजी निवेश की ऐसी दो विशेष पद्धतियों की संज्ञा देने के बाद, जिनमें से प्रत्येक अपने आप मुनाफ़ा देती है, ऐडम स्मिथ कहते हैं: "प्रचल पूंजी के माध्यम के बिना कोई भी स्थायी पूंजी कोई आय नहीं दे सकती है। सबसे उपयोगी मशीनें और व्यवसाय के उपकरण भी ऐसी प्रचल पूंजी के बिना कुछ पैदा नहीं कर सकते जिसके बल पर वह सामग्री आती है, जिस पर उनका प्रयोग किया जाता है और इन मशीनों तथा उपकरणों को काम में लानेवाले मजदूरों का भरण-पोषण जुटता है" (पृष्ठ १८८)।

यहां यह स्पष्ट हो जाता है कि "आय देने", "मुनाफ़ा कमाने", आदि पूर्वप्रयुक्त शब्दों

का अर्थ क्या है। इन शब्दों का अर्थ यह है कि पूंजी के दोनों भाग उत्पाद के निर्माता का काम करते हैं।

इसके बाद ऐडम स्मिथ निम्नलिखित उदाहरण देते हैं: "फ़ार्मर की पूंजी का जो भाग कृषि उपकरणों में लगाया जाता है, वह स्थायी पूंजी होता है और जो भाग उसके कामगारों के भरण-पोषण और मज़दूरी में लगाया जाता है, वह प्रचल पूंजी होता है" (यहां स्थायी और प्रचल पूंजी का भेद सही तौर पर केवल परिचलन के भेद पर, उत्पादक पूंजी के विभिन्न घटकों के आवर्तों पर लागू किया गया है)। "एक से वह उसे अपने ही अधिकार में रखकर और दूसरे से उससे जुदा होकर मुनाफ़ा कमाता है। उसके कमकर पशुओं का दाम अथवा मूल्य वैसे ही स्थायी पूंजी है, जैसे काश्त के उपकरणों का मूल्य स्थायी पूंजी है" (यहां वह फिर सही बात कहते हैं कि यह भेद मूल्य पर लागू होता है, न कि भौतिक तत्व पर); "उनका भरण-पोषण" (कमकर पशुओं का भरण-पोषण) "वैसे ही प्रचल पूंजी है, जैसे कामगारों का भरण-पोषण है। फ़ार्मर कमकर पशुओं को अपने पास रखकर और उनके भरण-पोषण से जुदा होकर अपना मुनाफ़ा कमाता है।" (कमकर पशुओं का चारा अपने पास रखता है, उसे बेचता नहीं है। उसका वह पशुओं को खिलाने में इस्तेमाल करता है, जब कि ख़ुद पशुओं को श्रम उपकरणों की तरह इस्तेमाल करता है। अन्तर केवल इतना है: कमकर पशुओं के भरण-पोषण पर जो चारा लगता है, वह पूरी तरह खप जाता है और उसकी खेती की उपज से अथवा उपज की बिक्री से नये चारे द्वारा प्रतिस्थापना करनी होती है, स्वयं पशुओं की प्रतिस्थापना तभी होती है, जब उनमें से कोई एक काम लायक़ नहीं रह जाता।) "जिन पशुओं को ख़रीदा जाता है और जांगर के लिए नहीं, बिक्री के लिए मोटाया जाता है, उनका दाम और भरण-पोषण दोनों प्रचल पूंजी होते हैं। फ़ार्मर उनसे जुदा होकर अपना मुनाफ़ा कमाता है" [खण्ड २, पृष्ठ २५५-२५६]। (प्रत्येक माल उत्पादक, अतः इसी प्रकार पूंजीवादी उत्पादक, अपनी उत्पादन प्रक्रिया के परिणाम, उत्पाद को बेचता है, किन्तु इसी से यह उत्पाद उसकी उत्पादक पूंजी का स्थायी या प्रचल घटक नहीं बन जाता। यह उत्पाद अब उस रूप में आ जाता है, जिसमें वह उत्पादन प्रक्रिया के बाहर निकाला जाता है और अब उसे माल पूंजी की तरह काम करना होता है। मोटाये पशु उत्पादन प्रक्रिया में कच्चे माल का काम करते हैं, कमकर पशुओं की तरह श्रम उपकरणों का नहीं। अतः मोटाये पशु उपज में पदार्थ की तरह प्रवेश करते हैं, और उनका सारा मूल्य सहायक सामग्री [चारा] के मूल्य की ही तरह उसमें दाख़िल होता है। इसलिए मोटाये पशु उत्पादक पूंजी का प्रचल भाग हैं, किन्तु इसलिए नहीं कि विक्रीत माल–मोटाये पशुओं–का वही भौतिक रूप है, जो कच्चे माल–उन पशुओं–का है, जो अभी मोटाये नहीं गये हैं। यह बात आकस्मिक है। साथ ही ऐडम स्मिथ इस उदाहरण से देख सकते थे कि यह उत्पादन तत्व का भौतिक रूप नहीं, वरन उत्पादन प्रक्रिया में उसका कार्य है, जो यह निर्धारित करता है कि उसमें समाविष्ट मूल्य स्थायी है या प्रचल।) "बीज का सारा मूल्य भी यथार्थतः स्थायी पूंजी है। यद्यपि वह खेत और खलिहान के बीच आता-जाता रहता है, फिर भी वह मालिक नहीं बदलता, और इसलिए यथार्थतः परिचालित नहीं होता। फ़ार्मर उसकी बिक्री से नहीं, उसकी वृद्धि से मुनाफ़ा कमाता है" [खण्ड २ पृष्ठ २५६]।

इस स्थल पर स्मिथी भेद की सारी विवेकहीनता प्रकट हो जाती है। उनके अनुसार यदि "मालिकों की बदली" न होती, तो बीज स्थायी पूंजी हो जाता, अर्थात यदि बीज का वार्षिक उपज में से प्रत्यक्ष प्रतिस्थापन होता है, उसमें से निकाला जाता है, तो। दूसरी ओर, यदि

समूची उपज बेच दी जाती श्रौर उसके मूल्यांश से दूसरे मालिक का बीज ख़रीदा जाता, तो वह प्रचल पूंजी होता। एक स्थिति में "मालिकों की बदली" होती है, दूसरी में नहीं होती। स्मिथ यहां फिर एक बार प्रचल पूंजी श्रौर माल पूंजी को उलझा देते हैं। उत्पाद माल पूंजी का भौतिक वाहन होता है, किन्तु निस्सन्देह उसके सिर्फ़ उस भाग का, जो परिचलन में वस्तुतः प्रवेश करता है श्रौर जिस उत्पादन प्रक्रिया से वह उत्पाद के रूप में निकला था, उसमें पुनः प्रत्यक्ष प्रवेश नहीं करता।

बीज चाहे उपज से उसके श्रंश रूप में प्रत्यक्षतः निकाला जाता है, चाहे सारी उपज बेच दी जाती है श्रौर उसके मूल्य का एक भाग दूसरे श्रादमी के बीज की ख़रीद में परिवर्तित किया जाता है – किसी भी स्थिति में जो होता है; वह प्रतिस्थापन मात्र है श्रौर इस प्रतिस्थापन द्वारा कोई मुनाफ़ा नहीं कमाया जाता। एक स्थिति में बीज उपज के शेष भाग के साथ माल की हैसियत से परिचलन में प्रवेश करता है; दूसरी स्थिति में वह पेशगी पूंजी के मूल्य के घटक रूप में केवल हिसाब में सामने श्राता है। किन्तु दोनों ही स्थितियों में वह उत्पादक पूंजी का प्रचल घटक बना रहता है। उपज तैयार करने में बीज पूरी तरह खप जाता है श्रौर पुनरुत्पादन को सम्भव बनाने के लिए उसका उपज में से पूर्णतः प्रतिस्थापन करना श्रावश्यक होता है।

"इसलिए कच्चे माल श्रौर सहायक पदार्थों का वह विशिष्ट रूप जाता रहता है, जो उन्होंने श्रम प्रक्रिया में प्रवेश करते समय धारण कर रखा था। श्रम के श्रौज़ारों के साथ ऐसा नहीं होता। श्रौज़ार, मशीनें, वर्कशाप श्रौर बरतन केवल उसी वक़्त तक श्रम प्रक्रिया में काम श्राते हैं, जिस वक़्त तक कि उनका मूल रूप क़ायम रहता है श्रौर जिस वक़्त तक वे हर रोज़ सुबह को श्रपनी पहले जैसी शक्ल में ही प्रक्रिया को फिर से श्रारम्भ करने के लिए तैयार रहते हैं श्रौर जिस तरह वे श्रपने जीवन काल में, यानी उस श्रम प्रक्रिया के दौरान, जिसमें वे भाग लेते रहते हैं, श्रपनी शक्ल को पैदावार से स्वतंत्र ज्यों की त्यों क़ायम रखते हैं, उसी तरह मृत्यु के बाद भी वे श्रपनी शक्ल को क़ायम रखते हैं। मुरदा मशीनों, श्रौज़ारों, वर्कशापों, श्रादि की लाशें उस पैदावार से बिल्कुल भिन्न श्रौर श्रलग होती हैं, जिसके उत्पादन में उन्होंने मदद की है" (Buch I, Kap. VI, S. 192)*।

उत्पाद तैयार करने में उत्पादन साधनों के खपने के इन श्रलग-श्रलग तरीक़ों – उनमें से कुछ उत्पाद के संदर्भ में श्रपना स्वतंत्र रूप बनाये रखते हैं, श्रन्य उसे बदल देते हैं या पूर्णतः खो देते हैं, – स्वयं श्रम प्रक्रिया से सम्बद्ध इस श्रंतर श्रौर इसलिए केवल श्रपनी ज़रूरतें, जैसे कि बिना किसी तरह के विनिमय के, बिना माल उत्पादन के पितृतंत्रात्मक परिवार की श्रोर लक्षित श्रम प्रक्रियाश्रों से सम्बद्ध श्रंतर को भी ऐडम स्मिथ झुठलाते हैं। ऐसा वह इस प्रकार करते हैं: १) यह दावा करते हुए कि उत्पादन के कुछ साधन श्रपना रूप क़ायम रखकर श्रौर श्रन्य उसे खोकर, श्रपने मालिक को मुनाफ़ा देते हैं, यहां लाभ की नितान्त श्रप्रासंगिक परिभाषा का समावेश करके; २) उत्पादन तत्वों के एक भाग के परिवर्तनों को, जो श्रम प्रक्रिया में होते हैं, रूप के उस परिवर्तन (क्रय-विक्रय) के साथ उलझाकर जो उत्पाद के विनिमय की, माल परिचलन की विशेषता है श्रौर जिसमें इसके साथ ही परिचालित मालों के स्वामित्व का परिवर्तन सम्मिलित होता है।

श्रावर्त परिचलन द्वारा, श्रतः माल की बिक्री द्वारा, उसके द्रव्य में परिवर्तन तथा द्रव्य

---

* हिन्दी संस्करण: श्रध्याय ८, पृष्ठ २३०। – सं०

से उसके उत्पादन तत्वों में पुनःपरिवर्तन द्वारा संपन्न पुनरुत्पादन की पूर्वापेक्षा करता है। लेकिन चूंकि पूंजीवादी उत्पादक के ख़ुद अपने उत्पाद का एक भाग उत्पादन साधन के रूप में सीधे उसके काम आता है, इसलिए वह उसे स्वयं अपने को बेचता हुआ जान पड़ता है और उसके बही-खातों में सारी बात इसी तरह प्रकट होती है। उस स्थिति में पुनरुत्पादन का यह भाग परिचलन के कारण घटित नहीं होता, वरन सीधे-सीधे सम्पन्न होता है। फिर भी उत्पाद का वह भाग, जो इस प्रकार उत्पादन साधन का काम करता है, स्थायी पूंजी को नहीं, प्रचल पूंजी को प्रतिस्थापित करता है, क्योंकि १) उसका मूल्य पूर्णतः उत्पाद में चला जाता है, और २) वह स्वयं वस्तुरूप में नये उत्पाद के एक नये नमूने द्वारा प्रतिस्थापित हो चुका होता है।

अब ऐडम स्मिथ हमें बताते हैं कि प्रचल पूंजी और स्थायी पूंजी के घटक कौन से होते हैं। वह भौतिक तत्वों, पदार्थों का, जो स्थायी पूंजी के घटक हैं और उन पदार्थों का वर्णन करते हैं, जो प्रचल पूंजी के घटक होते हैं, मानो यह निश्चयात्मकता इन चीज़ों में भौतिक रूप से, नैसर्गिक रूप से अन्तर्निहित हो और पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया के भीतर उनके निश्चित कार्य से उत्पन्न न होती हो। फिर भी उसी अध्याय (खण्ड २, अध्याय १) में वह टिप्पणी करते हैं कि यद्यपि कोई चीज़, जैसे कि इमारत, जो "तात्कालिक उपभोग" के लिए "स्टॉक" की तरह आरक्षित है, "अपने स्वामी को आय दे सकती है, और इस प्रकार उसके लिए **पूंजी का कार्य** कर सकती है, किन्तु वह सर्वसाधारण को कोई आय नहीं दे सकती है, न उसके लिए पूंजी का कार्य कर सकती है और उसके द्वारा सकल जनसमुदाय की आय में रत्ती भर भी वृद्धि नहीं हो सकती है" (पृष्ठ १८६)। तो यहां ऐडम स्मिथ साफ़-साफ़ कह देते हैं कि पूंजी बनने का गुण वस्तुओं में अपने आप और हर स्थिति में अन्तर्निहित नहीं होता, बल्कि वह एक ऐसा कार्य है, जो परिस्थितियों के अनुसार, उनमें निविष्ट हो भी सकता है और नहीं भी। किन्तु जो बात सामान्यतः पूंजी के बारे में सही है, वह उसके उपविभाजनों के बारे में भी सही है।

वस्तुएं श्रम प्रक्रिया में अपने द्वारा किये जानेवाले कार्य के अनुसार प्रचल अथवा स्थायी पूंजी के घटक बनती हैं। उदाहरण के लिए एक पशु कमकर पशु (श्रम उपकरण) के नाते स्थायी पूंजी के अस्तित्व के रूप का प्रतीक होता है, जब कि मोटाये जानेवाले पशु (कच्चा माल) के नाते वह फ़ार्मर की प्रचल पूंजी का घटक होता है। दूसरी ओर एक ही वस्तु कभी उत्पादक पूंजी के घटक का कार्य कर सकती है और कभी प्रत्यक्ष उपभोग निधि का अंग हो सकती है। यथा, जब कोई मकान वर्कशॉप का काम करता है, तब वह उत्पादक पूंजी का स्थायी घटक होता है; जब वह आवास का काम देता है, तब वह पूंजी का किसी प्रकार का भी रूप नहीं होता। अनेक मामलों में श्रम के वही उपकरण उत्पादन साधनों का काम कर सकते हैं, अथवा उपभोग साधनों का।

यह ऐडम स्मिथ की इस धारणा से प्रसूत भ्रान्तियों में एक है कि स्थायी अथवा प्रचल पूंजी होने के गुण को स्वयं वस्तुओं में अन्तर्निहित माना गया था। श्रम प्रक्रिया के विश्लेषण मात्र से यह प्रकट हो जाता है (Buch I, Kap. V)* कि श्रम उपकरणों, श्रम सामग्री तथा उत्पाद की परिभाषाएं प्रक्रिया में उस एक ही वस्तु द्वारा अदा की जानेवाली विभिन्न भूमिकाओं

* हिन्दी संस्करण: अध्याय ७। – सं०

के अनुसार बदलती हैं। अपनी बारी में स्थायी और अस्थायी पूंजी की परिभाषाएं इन तत्वों द्वारा श्रम प्रक्रिया में, अतः मूल्य निर्माण प्रक्रिया में भी अदा की जानेवाली निश्चित भूमिकाओं पर आधारित हैं।

दूसरी बात यह कि स्थायी तथा अस्थायी पूंजी में सम्मिलित चीज़ों की गणना करने पर यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि स्मिथ उत्पादक पूंजी के स्थायी तथा प्रचल घटकों में भेद को, जो केवल उत्पादक पूंजी (अपने उत्पादक रूप में पूंजी) के संदर्भ में उचित और अर्थवान होता है, उत्पादक पूंजी और उन रूपों के बीच के भेद के साथ मिला देते हैं, जो पूंजी से उसकी परिचलन प्रक्रिया में, अर्थात माल पूंजी और द्रव्य पूंजी से सम्बद्ध होते हैं। वह उसी अंश में (पृष्ठ १८७, १८८) कहते हैं: "प्रचल पूंजी में... रसद, सामग्री और हर तरह का तैयार सामान होते हैं, जो अपने-अपने विक्रेताओं के हाथ में होते हैं; और प्रचल पूंजी वह द्रव्य होता है, जो उनके परिचलन और वितरण के लिए आवश्यक होता है, इत्यादि।"

दरअसल, यदि हम और ध्यानपूर्वक देखें, तो पता चलेगा कि स्मिथ के पहले के कथनों के विपरीत यहां प्रचल पूंजी को फिर माल पूंजी और द्रव्य पूंजी के, अर्थात पूंजी के उन दोनों रूपों के बराबर कर दिया गया है, जो उत्पादन प्रक्रिया से क़तई सम्बद्ध नहीं हैं, जो स्थायी पूंजी के मुक़ाबले प्रचल (अस्थिर) पूंजी नहीं बनते, वरन उत्पादक पूंजी के मुक़ाबले परिचलन पूंजी बनते हैं। उत्पादक पूंजी के सामग्री में (कच्चे माल अथवा अधतैयार उत्पाद के रूप में) पेशगी दिये गये और उत्पादन प्रक्रिया में वस्तुतः समाविष्ट घटक सिर्फ़ इनके **साथ-साथ** ही फिर कोई भूमिका अदा करते हैं। वह कहते हैं:

"... समाज का सामान्य स्टॉक जिन तीन भागों में नैसर्गिक रूप से बंट जाता है, उनमें तीसरा और आख़िरी भाग प्रचल पूंजी है, जिसकी विशेषता यह है कि यह परिचालित होकर अथवा मालिक बदलकर ही आय दे सकता है। इसमें भी उसी प्रकार चार भाग होते हैं: पहला, द्रव्य ..." (किन्तु द्रव्य उत्पादक पूंजी का, उत्पादन प्रक्रिया में कार्यरत पूंजी का रूप कभी नहीं होता, वह सदा उन रूपों में से केवल एक रूप होता है, जिन्हें पूंजी अपनी परिचलन प्रक्रिया में धारण करती है); "दूसरा, रसद का भण्डार, जो कसाई, पशुचारक, फ़ार्मर के पास, होता है ... जिसकी बिक्री से वे मुनाफ़ा कमाने की आशा करते हैं ... चौथा और आख़िरी, वह सामान, जो बन और पूरा हो चुका है, किन्तु जो अब भी व्यापारी और कारख़ानेदार के पास है। और तीसरा, वह सामग्री, जो चाहे पूरी तरह कच्ची हो, चाहे थोड़ी बहुत तैयार हो चुकी हो, वस्त्र, फ़र्नीचर तथा इमारतें, जिन्हें अभी इन तीनों में से कोई आकार नहीं दिया गया है, किन्तु जो अभी उत्पादकों, कारख़ानेदारों, रेशमफ़रोशों और बजाज़ों, काठफ़रोशों, बढ़इयों और मिस्तरियों, भट्टेवालों, वग़ैरह के पास हैं।"

२ और ४ में उन उत्पादों के अलावा और कुछ नहीं है, जिन्हें उसी रूप में उत्पादन प्रक्रिया से निकाल दिया गया है और बेचा जाना होगा, संक्षेप में, जो अब मालों का, अतः माल पूंजी का कार्य करते हैं और इसलिए जिनका रूप है और उस प्रक्रिया में एक स्थान है, जिसमें वे उत्पादक पूंजी के तत्व नहीं हैं, उनका अन्तिम लक्ष्य चाहे जो हो, अर्थात अपने उद्देश्य (उपयोग मूल्य) की पूर्ति के लिए वे चाहे निजी उपभोग में जायें, चाहे उत्पादक उपभोग में। २ में उल्लिखित उत्पाद खाद्य पदार्थ हैं, ४ में अन्य सभी तैयार उत्पाद हैं, जिनमें अपनी बारी में केवल तैयार श्रम उपकरण अथवा तैयार उपभोग वस्तुएं हैं (२ में उल्लिखित खाद्य पदार्थों के अलावा अन्य खाद्य पदार्थ)।

इस बात से कि इसके साथ ही स्मिथ व्यापारी की बात भी करते हैं उनकी उलझन प्रकट हो जाती है। उत्पादक जब अपना उत्पाद व्यापारी को बेच देता है, तो वह उसकी पूंजी का कोई रूप नहीं रह जाता। समाज के दृष्टिकोण से वह दरअसल अब भी माल पूंजी है, यद्यपि अब वह उत्पादक के पास नहीं, दूसरे के हाथ में है। किन्तु इसी कारण कि वह माल पूंजी है, वह न स्थायी पूंजी है और न प्रचल पूंजी।

हर तरह के ऐसे उत्पादन में, जो उत्पादक की प्रत्यक्ष आवश्यकताओं को तुष्ट करने के लिए नहीं है, यह ज़रूरी होता है कि उत्पाद माल रूप में परिचालित हो, अर्थात वह बेचा जाये, इसलिए नहीं कि लाभ कमाया जाये, बल्कि इसलिए कि उत्पादक जीता तो रहे। पूंजीवादी उत्पादन में इस परिस्थिति को और जोड़ना होगा कि जब कोई माल बेचा जाता है, तब उसमें निहित बेशी मूल्य का भी सिद्धिकरण होता है। उत्पाद उत्पादन प्रक्रिया से माल रूप में निकलता है और इसलिए वह इस प्रक्रिया का न तो स्थायी और न ही प्रचल तत्व है।

प्रसंगतः यहां स्मिथ अपने ही विरुद्ध तर्क करते हैं। सभी तैयार उत्पाद, उनका भौतिक रूप अथवा उपयोग मूल्य, उनका उपयोगी परिणाम चाहे जो हो, यहां माल पूंजी हैं, अतः परिचलन प्रक्रिया के लाक्षणिक रूप में पूंजी हैं। इस रूप में होने के कारण तैयार उत्पाद अपने मालिक की किसी भी उत्पादक पूंजी का घटक नहीं होते। इससे उनके बिक्री होते ही, अपने ग्राहक के हाथ में उत्पादक पूंजी का घटक – स्थायी अथवा प्रचल – **बन जाने** में ज़रा भी बाधा नहीं पड़ती। यहां यह स्पष्ट है कि उत्पादक पूंजी से भिन्न, माल पूंजी की तरह जो वस्तुएं कुछ समय के लिए बाज़ार में आती हैं, वे बाज़ार से हटाये जाने पर उत्पादक पूंजी के प्रचल अथवा स्थायी घटकों का कार्य कर सकती हैं और नहीं भी कर सकती हैं।

सूत कातनेवाले का उत्पाद, सूत, उसकी पूंजी का माल रूप है। जहां तक उसका सम्बन्ध है, वह माल पूंजी है। वह उसकी उत्पादक पूंजी के घटक के रूप में फिर काम नहीं कर सकता, न श्रम सामग्री के रूप में और न ही श्रम उपकरण के रूप में। किन्तु सूत ख़रीदनेवाले बुनकर के हाथ में वह बुनकर की उत्पादक पूंजी में, उसके एक प्रचल घटक के रूप में समाविष्ट हो जाता है। लेकिन कातनेवाले के लिए सूत उसकी स्थायी तथा प्रचल पूंजी (बेशी मूल्य के अलावा) के आंशिक मूल्य का निधान होता है। उसी प्रकार मशीन निर्माता की मशीन उसकी पूंजी का माल रूप है, उसके लिए माल पूंजी है। और जब तक वह इस रूप में बनी रहती है, वह न प्रचल पूंजी होती है, न स्थायी पूंजी। किन्तु यदि वह कारख़ानेदार के हाथ इस्तेमाल के लिए बेच दी जाये, तो वह उत्पादक पूंजी का स्थायी घटक बन जाती है। यदि अपने उपयोग रूप के कारण कोई उत्पाद उत्पादन साधन के नाते उस प्रक्रिया में अंशतः पुनः प्रवेश भी करे, जिससे उसका उद्‌भव हुआ था, जैसे कोयला कोयले के उत्पादन में प्रवेश करे, तो निश्चित रूप में कोयले के उत्पाद का वह भाग, जो बिक्री के लिए उद्दिष्ट है, न प्रचल पूंजी होता है, न स्थायी पूंजी, वरन माल पूंजी होता है।

दूसरी ओर अपने उपयोग रूप के कारण कोई उत्पाद उत्पादक पूंजी का तत्व – श्रम सामग्री अथवा श्रम उपकरण के रूप में – बनने में पूर्णतः अक्षम हो सकता है। उदाहरण के लिए, कोई निर्वाह साधन। फिर भी अपने उत्पादक के लिए उत्पाद माल पूंजी होता है, उसकी स्थायी और प्रचल पूंजी दोनों के ही मूल्य का वाहक होता है और इनमें से किसी एक का वाहक इसके अनुसार होता है कि उसके उत्पादन में जो पूंजी लगी है, वह अंशतः प्रतिस्थापित होगी अथवा पूर्णतः, उसने उत्पाद को अपना मूल्य अंशतः स्थानान्तरित किया है अथवा पूर्णतः।

स्मिथ के विवेचन में ३ के अन्तर्गत कच्चा माल (ऐसा माल जो अभी तैयार नहीं किया गया है, अर्धतैयार उत्पाद, सहायक सामग्री), एक ओर उत्पादक पूंजी में समाविष्ट घटक के रूप में नहीं, वरन वास्तव में केवल उपयोग मूल्यों की एक विशेष कोटि के रूप में, जो किसी प्रकार भी सामाजिक उत्पाद में समाहित हो सकते हैं, २ तथा ४ में उल्लिखित अन्य भौतिक घटकों, निर्वाह साधनों, आदि के साथ-साथ अस्तित्वमान मालों की विशेष कोटि के रूप में सामने आता है। दूसरी ओर इन मालों को दरअसल उत्पादक पूंजी में समाविष्ट और इसलिए उत्पादक के हाथ में उत्पादक पूंजी के तत्व बताया जाता है। उलझन इस बात से स्पष्ट है कि इन मालों को अंशतः उत्पादक के हाथ में कार्यरत माना गया है ("उत्पादकों, कारख़ानेदारों, आदि") और अंशतः व्यापारियों ("रेशमफ़रोशों, बजाज़ों, काठफ़रोशों") के हाथ में कार्यरत माना गया है, जहां वह उत्पादक पूंजी का घटक नहीं है, केवल माल पूंजी है।

वस्तुतः प्रचल पूंजी के तत्वों का वर्णन करते समय ऐडम स्मिथ यहां स्थायी और प्रचल पूंजी के भेद को – जो केवल उत्पादक पूंजी पर लागू होता है – बिल्कुल भूल जाते हैं। उन्होंने माल पूंजी और द्रव्य पूंजी को, अर्थात परिचलन प्रक्रिया के लाक्षणिक पूंजी के दोनों रूपों को उत्पादक पूंजी के मुक़ाबले ही प्रस्तुत किया है, किन्तु उन्होंने ऐसा बिल्कुल अनजाने ही किया है।

अन्त में यह बात भी मार्क की है कि प्रचल पूंजी के घटकों की गणना करते समय ऐडम स्मिथ श्रम शक्ति का नाम लेना भूल जाते हैं। इसके दो कारण हैं।

हमने अभी देखा है कि द्रव्य पूंजी के अलावा प्रचल पूंजी माल पूंजी का बस एक और नाम ही है। किन्तु जिस सीमा तक श्रम शक्ति का बाज़ार में परिचलन होता है, वह पूंजी नहीं होती, माल पूंजी का कोई रूप नहीं होती। वह पूंजी होती ही नहीं; मज़दूर पूंजीपति नहीं होता, यद्यपि वह बाज़ार में बेचने के लिए एक माल यानी अपनी ही चमड़ी लाता है। जब तक श्रम शक्ति बिक नहीं जाती, उत्पादन प्रक्रिया में समाविष्ट नहीं हो जाती, अतः जब तक माल रूप में उसका परिचलन बन्द नहीं हो जाता, वह उत्पादक पूंजी का घटक, बेशी मूल्य के स्रोत के रूप में परिवर्ती पूंजी, उसमें निविष्ट पूंजी मूल्य के आवर्त के संदर्भ में उत्पादक पूंजी का प्रचल घटक नहीं बनती। चूंकि स्मिथ यहां प्रचल पूंजी को माल पूंजी के साथ उलझा देते हैं, इसलिए वह श्रम शक्ति को प्रचल पूंजी के तहत नहीं ला सकते। अतः परिवर्ती पूंजी यहां उन मालों के रूप में प्रकट होती है, जिन्हें मज़दूर अपनी मज़दूरी से ख़रीदता है, अर्थात निर्वाह साधन। इस रूप में मज़दूरी में निविष्ट पूंजी मूल्य को प्रचल पूंजी में माना जाता है। उत्पादन प्रक्रिया में जिस चीज़ का समावेश होता है, वह श्रम शक्ति है, स्वयं श्रमिक है, निर्वाह साधन नहीं, जिनके द्वारा श्रमिक ख़ुद को ज़िन्दा रखता है। बेशक हम देख चुके हैं (Buch I, Kap. XXI)* कि समाज के दृष्टिकोण से अपने वैयक्तिक उपभोग द्वारा स्वयं श्रमिक का पुनरुत्पादन भी सामाजिक पूंजी की पुनरुत्पादन प्रक्रिया का एक अंग होता है। किन्तु यह बात उत्पादन की उस पृथक, वियुक्त प्रक्रिया पर लागू नहीं होती, जिसका हम यहां अध्ययन कर रहे हैं। स्थायी पूंजी के तहत स्मिथ जिन "अर्जित और उपयोगी क्षमताओं" (पृष्ठ १८७) का उल्लेख करते हैं, वे इसके विपरीत चल पूंजी के घटक हैं, क्योंकि वे उजरती मज़दूर की "क्षमताएं" हैं, और उसने अपना श्रम, उसकी "क्षमताओं" सहित बेचा है।

समस्त सामाजिक सम्पदा को १) तात्कालिक उपभोग निधि, २) स्थायी पूंजी और

---

* हिन्दी संस्करण: अध्याय २३। – सं०

३) प्रचल पूंजी में बांटना ऐडम स्मिथ की एक बड़ी ग़लती है। इसके अनुसार सम्पदा को इस प्रकार विभाजित करना होगा: १) उपभोग निधि, जो कार्यशील सामाजिक पूंजी का कोई भी अंश नहीं होती, यद्यपि उसके कुछ भाग पूंजी रूप में निरन्तर कार्य कर सकते हैं; और २) पूंजी। तदनुसार सम्पदा का एक भाग पूंजी का कार्य करता है और दूसरा ग़ैरपूंजी अथवा उपभोग निधि का। और यहां यह परम आवश्यकता उत्पन्न होती है कि समस्त पूंजी या तो स्थायी हो या प्रचल, यह कुछ-कुछ इस प्राकृतिक आवश्यकता जैसा ही है कि स्तनपायी जीव या तो नर हो या मादा। किन्तु हम देख चुके हैं कि स्थायी और प्रचल पूंजी का वैपरीत्य केवल उत्पादक पूंजी के तत्वों पर लागू होता है और फलतः इनके अलावा पूंजी – माल पूंजी और द्रव्य पूंजी – की एक यथेष्ट राशि ऐसे रूप में विद्यमान होती है, जो न स्थायी हो सकता है, न प्रचल।

चूंकि पूंजीवादी उत्पादन के अन्तर्गत उत्पाद के उस भाग को छोड़कर, जिसे वैयक्तिक पूंजीवादी उत्पादक क्रय-विक्रय के बिना उसके भौतिक रूप में उत्पादन साधनों की तरह पुनः प्रत्यक्ष उपयोग में ले लेते हैं, सामाजिक उत्पाद की समस्त राशि माल पूंजी की तरह बाज़ार में परिचालित होती है, इसलिए यह स्पष्ट है कि उत्पादक पूंजी के स्थायी और प्रचल तत्व ही नहीं, वरन उपभोग निधि के भी सभी तत्व माल पूंजी से प्राप्त होते हैं। यह बात इस कथन के बराबर है कि पूंजीवादी उत्पादन के आधार पर उत्पादन साधन और उपभोग वस्तुएं दोनों पहले माल पूंजी के रूप में प्रकट होती हैं, भले ही बाद को उनका उत्पादन साधनों के रूप में ही अथवा उपभोग वस्तुओं के रूप में ही उपयोग अभीष्ट हो, जैसे स्वयं श्रम शक्ति भी बाज़ार में माल रूप में पाई जाती है, यद्यपि माल पूंजी के रूप में नहीं।

यही ऐडम स्मिथ की निम्नलिखित नई उलझन का स्रोत है। वह कहते हैं:

"इन चार भागों में से" ("प्रचल" पूंजी के, अर्थात परिचलन प्रक्रिया में आनेवाली माल पूंजी और द्रव्य पूंजी के रूपों में उस पूंजी के भाग, जिसके दो भागों को ऐडम स्मिथ माल पूंजी के घटकों में भौतिक भेद करके चार बना देते हैं) "तीन भाग – रसद, सामग्री और तैयार सामान उससे नियमित रूप में या तो सालाना या न्यूनाधिक अवधि पर निकाल लिये जाते हैं, या फिर स्थायी पूंजी में या तात्कालिक उपभोग के लिए आरक्षित स्टॉक में लगा दिये जाते हैं। प्रत्येक स्थायी पूंजी मूलतः प्रचल पूंजी से प्राप्त होती है और इसके साथ ही उसे निरन्तर प्रचल पूंजी के सहारे की भी आवश्यकता होती है। सभी उपयोगी मशीनें और व्यवसाय के उपकरण मूलतः प्रचल पूंजी से प्राप्त होते हैं, जो वह सामग्री उपलब्ध कराती है, जिससे वे बनते हैं और जो उन मज़दूरों की जीविका जुटाती है, जो इनका निर्माण करते हैं। उन्हें बराबर चुस्त-दुरुस्त हालत में रखने के लिए उसी प्रकार की पूंजी भी दरकार होती है" (पृष्ठ १८८)।

उत्पाद के उस भाग को छोड़कर, जिसका उसके उत्पादक उत्पादन साधनों के रूप में निरंतर पुनः प्रत्यक्ष उपभोग करते हैं, पूंजीवादी उत्पादन पर निम्नलिखित सामान्य स्थापना लागू होती है: सारा उत्पाद माल रूप में बाज़ार पहुंचता है, अतः वह पूंजीपति के लिए उसकी पूंजी के माल रूप में, माल पूंजी के रूप में परिचालित होता है, इससे कुछ आता-जाता नहीं कि इस उत्पाद को अपने उपयोग मूल्य के अनुसार उत्पादक पूंजी के तत्वों (उत्पादन प्रक्रिया के तत्वों) की तरह, उत्पादन साधनों की तरह और इसलिए उत्पादक पूंजी के स्थायी अथवा प्रचल तत्वों की तरह अपने भौतिक रूप में काम करना होता है या कर सकता है, या वह

उत्पादक नहीं, केवल वैयक्तिक उपभोग साधनों के रूप में काम आता है। सारा उत्पाद माल के रूप में बाज़ार में डाला जाता है; अतः सभी उत्पादन अथवा उपभोग साधनों, उत्पादक और वैयक्तिक उपभोग के सभी तत्वों को बाज़ार से माल रूप में ख़रीदकर निकालना होता है। यह सामान्य उक्ति बेशक सही है। इसी कारण वह उत्पादक पूंजी के स्थायी और प्रचल, दोनों तत्वों पर, श्रम उपकरण तथा सभी रूपों में श्रम सामग्री पर लागू होती है। (इसके अलावा इसमें इस तथ्य को नजरंदाज कर दिया जाता है कि उत्पादक पूंजी के ऐसे तत्व भी होते हैं, जिन्हें प्रकृति उपलब्ध कराती है, जो उत्पाद नहीं होते।) बाज़ार में मशीन ख़रीदी जाती है, जैसे कपास ख़रीदी जाती है। किन्तु इससे यह क़तई साबित नहीं होता कि प्रत्येक स्थायी पूंजी का मूल स्रोत कोई प्रचल पूंजी होती है, यह सिर्फ़ परिचलन पूंजी के प्रचल अथवा अस्थिर पूंजी, अर्थात अस्थायी पूंजी के साथ स्मिथी उलझाव से ही पैदा होता है। इसके अलावा स्मिथ वस्तुतः स्वयं अपना खंडन करते हैं। स्वयं उनके अनुसार माल रूप में मशीनें प्रचल पूंजी के चौथे भाग का अंग होती हैं। इसलिए यह कहने का कि वे प्रचल पूंजी से आती हैं, अर्थ यही होता है कि मशीनों के रूप में कार्य करने से पहले उन्होंने माल पूंजी का कार्य किया था, किन्तु भौतिक रूप में उन्हें स्वयं उन्हीं से प्राप्त किया जाता है, जैसे किसी कताई करनेवाले की पूंजी के प्रचल तत्व के रूप में कपास, बाज़ार के कपास से प्राप्त होती है। किन्तु यदि ऐडम स्मिथ अपने आगे के विवेचन में स्थायी पूंजी को इस कारण प्रचल पूंजी से निकालते हैं कि मशीनें बनाने के लिए श्रम और कच्चे माल की ज़रूरत होती है, तो यह याद रखना चाहिए कि एक तो मशीनें बनाने के लिए श्रम उपकरण, अतः स्थायी पूंजी भी आवश्यक होती हैं, और दूसरे इसी तरह कच्चा माल बनाने के लिए स्थायी पूंजी, जैसे मशीनें, वग़ैरह की आवश्यकता होती है, क्योंकि उत्पादक पूंजी में श्रम उपकरण तो हमेशा शामिल होते हैं, किन्तु श्रम सामग्री हमेशा शामिल नहीं होती। वह ख़ुद ही फ़ौरन बाद कहते हैं: "ज़मीन, खानें और मत्स्य क्षेत्र इन सभी से पैदा करने के लिए स्थायी और प्रचल पूंजी, दोनों की ज़रूरत होती है;" (इस प्रकार वह स्वीकार करते हैं कि कच्चा माल पैदा करने के लिए प्रचल पूंजी ही नहीं, स्थायी पूंजी भी दरकार होती है) "तथा" (यहां एक नई ग़लती है) "उनकी उपज उन्हीं पूंजियों को नहीं, वरन **समाज की सभी अन्य पूंजियों** को भी मुनाफ़े सहित प्रतिस्थापित करती है" (पृष्ठ १८८)। यह बिल्कुल ग़लत है। उनकी उपज उद्योग की सभी अन्य शाखाओं के लिए कच्चा माल, सहायक सामग्री, वग़ैरह मुहैया करती है। किन्तु उनका मूल्य सभी अन्य सामाजिक पूंजियों के मूल्य को प्रतिस्थापित नहीं करता; वह केवल उनके अपने पूंजी मूल्य (बेशी मूल्य सहित) को प्रतिस्थापित करता है। यहां ऐडम स्मिथ अपनी प्रकृतितांत्रिक यादों की जकड़ में फिर आ जाते हैं।

सामाजिक दृष्टि से यह सही है कि माल पूंजी का एक भाग, जिसमें वह उत्पाद होता है, जो श्रम उपकरणों के ही काम आ सकता है, देरसबेर श्रम उपकरणों की तरह ही काम कर सकेगा, बशर्ते कि उसका उत्पादन उद्देश्यहीन न हो और वह बेचा न जाये, अर्थात उसका आधार पूंजीवादी उत्पादन होने के कारण जब यह उत्पाद माल नहीं रहता है, तो उसे सामाजिक उत्पादक पूंजी के स्थायी भाग का वास्तविक तत्व बन जाना होगा, जैसे वह पहले उसका संभाव्य तत्व था।

किन्तु यहां एक भेद है, जो उत्पाद के भौतिक रूप से उत्पन्न होता है।

उदाहरण के लिए, कताई मशीन का कोई उपयोग मूल्य नहीं होता, बशर्ते कि कताई

के लिए उसका उपयोग न किया जाये, अतः वह उत्पादन तत्व का, और फलतः पूंजीपति के दृष्टिकोण से उत्पादक पूंजी के स्थायी घटक का कार्य न करे। किन्तु कताई मशीन चल होती है। जिस देश में उसका निर्माण हुआ है, उससे उसका निर्यात किया जा सकता है और वह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में कच्चे माल, वग़ैरह के लिए या शैम्पेन के लिए विदेश में बेची जा सकती है। उस हालत में जहां उसका निर्माण हुआ था, वहां वह केवल माल पूंजी का कार्य करती है, स्थायी पूंजी का कभी नहीं, बिक जाने के बाद भी नहीं।

लेकिन जिस उत्पाद की जड़ ज़मीन में गड़ी होती है और इस कारण जो स्थानबद्ध होता है, अतः जिसका उपयोग स्थानिक ही हो सकता है, जैसे कारख़ाने की इमारतें, रेलमार्ग, पुल, सुरंगें, गोदी, वग़ैरह, भूसुधार, वग़ैरह – इन सब का भौतिक रूप में संपूर्णरूपेण निर्यात नहीं हो सकता। वे चल नहीं हैं। वे या तो बेकार होंगे या बेचे जाते ही जिस देश में उनका उत्पादन हुआ है, उसमें उन्हें स्थायी पूंजी के रूप में कार्य करना होगा। अपने पूंजीवादी उत्पादक के लिए, जो कारख़ाने बनाता है अथवा ऊंचे दामों पर बिक्री के लिए भूसुधार करता है, उसके लिए ये चीज़ें उसकी माल पूंजी का अथवा ऐडम स्मिथ के अनुसार प्रचल पूंजी का रूप हैं। किन्तु यदि इन चीज़ों को बेकार नहीं पड़े रहना है, तो सामाजिक दृष्टि से उन्हें अन्ततः उसी देश में उत्पादन की किसी स्थानीय प्रक्रिया में स्थायी पूंजी की तरह कार्य करना होगा। इससे यह नतीजा क़तई नहीं निकलता कि जो अचल है, वह स्वयमेव स्थायी पूंजी है। रिहायशी मकानों, वग़ैरह की तरह वह उपभोग निधि का अंग हो सकता है और उस हालत में वह सामाजिक पूंजी का कोई भी अंश नहीं होता, यद्यपि वह उस सामाजिक सम्पदा का एक तत्व होता है, पूंजी जिसका अंश मात्र है। ऐडम स्मिथ की शब्दावली में इन चीज़ों का उत्पादक उनकी बिक्री से मुनाफ़ा कमाता है। और इसलिए वे प्रचल पूंजी हैं! उनका व्यावहारिक उपभोक्ता, उनका अंतिम क्रेता उत्पादन प्रक्रिया में डालकर ही उनका इस्तेमाल कर सकता है। और इसलिए वे स्थायी पूंजी हैं!

सम्पत्ति के अधिकार, यथा रेलवे शेयर, प्रति दिन हस्तान्तरित हो सकते हैं और उनका स्वामी उन्हें विदेश में बेचकर भी मुनाफ़ा कमा सकता है, इस तरह सम्पत्ति के अधिकारों का निर्यात किया जा सकता है, यद्यपि स्वयं रेलवे का निर्यात सम्भव नहीं है। फिर भी या तो इन चीज़ों को उस देश में बेकार पड़े रहना होगा, जिसमें वे स्थानबद्ध हैं, या किसी उत्पादक पूंजी के स्थायी घटक के रूप में कार्य करना होगा। उसी प्रकार कारख़ानेदार **क** कारख़ानेदार **ख** को अपना कारख़ाना बेचकर मुनाफ़ा कमा सकता है, किन्तु इससे कारख़ाने के पहले की ही तरह स्थायी पूंजी की तरह कार्य करते रहने में कोई बाधा नहीं पड़ती।

इसलिए जहां श्रम के स्थानबद्ध उपकरणों को, जो ज़मीन से हटाये नहीं जा सकते, तिस पर भी बहुत करके उसी देश में स्थायी पूंजी की हैसियत से कार्य करना होगा, यद्यपि अपने उत्पादक के लिए वे माल पूंजी का कार्य कर सकते हैं और उनका **उसकी** स्थायी पूंजी के तत्व न बनना संभव है (जहां तक स्थायी पूंजी उन श्रम उपकरणों से बनती है, जो उसे इमारतों, रेलमार्गों, आदि के निर्माण के लिए दरकार होते हैं), इससे किसी तरह भी यह विपरीत निष्कर्ष न निकालना चाहिए कि स्थायी पूंजी में अनिवार्यतः अचल चीज़ें ही होती हैं। जहाज़ और रेलवे इंजन अपनी गति द्वारा ही फलदायी होते हैं; फिर भी वे जिसने उनका उत्पादन किया था, उसके लिए नहीं, वरन उसके लिए कार्य करते हैं, जो उनका स्थायी पूंजी की तरह उपयोग करता है। दूसरी ओर, जो चीज़ें उत्पादन प्रक्रिया में पूर्णतः निश्चित रूप से नियत

की जाती हैं, जो उसी में जीती हैं ग्रौर मरती हैं ग्रौर जो उसमें एक बार दाख़िल होने पर उससे फिर कभी जुदा नहीं होतीं, वे उत्पादक पूंजी के प्रचल घटक होती हैं। उदाहरण के लिए, उत्पादन प्रक्रिया में मशीन चलाने में प्रयुक्त कोयला, कारख़ाने में रोशनी के लिए प्रयुक्त गैस, ग्रादि ऐसी ही चीज़ें हैं। ये चीज़ें प्रचल पूंजी इसलिए नहीं हैं कि उत्पाद के साथ-साथ वे उत्पादन प्रक्रिया से भौतिक रूप में जुदा होती हैं ग्रौर माल रूप में परिचालित होती हैं, वरन इसलिए हैं कि उनका मूल्य उस उत्पाद के मूल्य में पूर्णतः प्रवेश कर जाता है, जिसके उत्पादन में उनका योग होता है, ग्रतः जिसे माल की बिक्री से पूर्णतः प्रतिस्थापित करना होगा।

ऐडम स्मिथ के पूर्वोद्धृत ग्रंश में इस वाक्य पर भी ध्यान देना चाहिए: "प्रचल पूंजी... जो उन मज़दूरों का भरण-पोषण जुटाती है, जो इनका निर्माण करते हैं" (मशीनों, ग्रादि का)।

प्रकृतितंत्रवादियों के यहां पूंजी का वह भाग, जो मज़दूरी के लिए पेशगी दिया जाता है, सही तौर पर avances primitives [ग्राद्य पेशगी] से भिन्न avances annuelles [वार्षिक पेशगी] के ग्रन्तर्गत रखा जाता है। दूसरी ग्रोर उनके यहां फ़ार्म द्वारा उपयुक्त उत्पादक पूंजी का घटक स्वयं श्रम शक्ति को नहीं, वरन खेत मज़दूरों को दिये जानेवाले निर्वाह साधनों (ऐडम स्मिथ की शब्दावली में मज़दूरों के भरण-पोषण) को माना जाता है। यह उनके विशिष्ट सिद्धान्त के साथ पूर्णतः संगत है। कारण यह कि उनके ग्रनुसार श्रम द्वारा उत्पाद में जोड़ा गया मूल्यांश (बहुत कुछ उस मूल्यांश की ही तरह, जो कच्चे माल, श्रम उपकरणों, ग्रादि द्वारा, संक्षेप में स्थिर पूंजी के सभी भौतिक घटकों द्वारा उत्पाद में जोड़ा जाता है), निर्वाह साधनों के उस मूल्य के ही बराबर होता है, जो मज़दूरों को दिया जाता है ग्रौर जो श्रम शक्ति के नाते ग्रपनी कार्य क्षमता बनाये रखने के लिए ग्रनिवार्यतः खप जाता है। उनका सिद्धान्त ही स्थिर ग्रौर परिवर्ती पूंजी के भेद का पता लगाने में बाधक होता है। यदि श्रम (ख़ुद ग्रपनी क़ीमत के पुनरुत्पादन के ग्रलावा) बेशी मूल्य का उत्पादन करता है, तो वह ऐसा उद्योग ग्रौर कृषि दोनों में करता है। किन्तु चूंकि उनकी पद्धति के ग्रनुसार श्रम केवल उत्पादन की एक शाखा, ग्रर्थात कृषि में ही बेशी मूल्य का सृजन करता है, ग्रतः वह श्रम से उत्पन्न नहीं होता, वरन इस शाखा में प्रकृति की विशेष क्रियाशीलता (सहायता) से उत्पन्न होता है। ग्रौर केवल इसी कारण उनके लिए श्रम के ग्रन्य प्रकारों से भिन्न कृषि श्रम उत्पादक श्रम है।

ऐडम स्मिथ श्रमिकों के निर्वाह साधनों को स्थायी पूंजी के विरुद्ध प्रचल पूंजी कहते हैं:

१) कारण यह कि वह स्थायी पूंजी से भिन्न प्रचल पूंजी को पूंजी के परिचलन क्षेत्र से सम्बद्ध रूपों से, परिचलन पूंजी से उलझा देते हैं। इस उलझन को बिना सोचे-समझे मंजूर कर लिया गया है। इसलिए वह माल पूंजी को तथा उत्पादक पूंजी के प्रचल घटक को मिला देते हैं ग्रौर उस स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि जब भी सामाजिक उत्पाद माल रूप धारण करता है, श्रमिकों ग्रौर ग़ैरश्रमिकों, दोनों के ही निर्वाह साधनों, सामग्री तथा स्वयं श्रम उपकरण को माल पूंजी में से ही जुटाना होगा।

२) किन्तु स्मिथ के विश्लेषण में प्रकृतितंत्रवादी धारणा भी कहीं ग्रपनी झलक दिखाती है, यद्यपि वह उनके विवेचन के ग्रंतरंग – वस्तुतः वैज्ञानिक – ग्रंश का खंडन करती है।

सामान्यतः पेशगी पूंजी उत्पादक पूंजी में परिवर्तित हो जाती है, ग्रर्थात वह उत्पादन के

उन तत्वों का रूप धारण कर लेती है, जो स्वयं पूर्वश्रम के उत्पाद हैं। (इनमें श्रम शक्ति भी शामिल है।) उत्पादन प्रक्रिया में पूंजी इस रूप में ही कार्य कर सकती है। अब जिस श्रम शक्ति में पूंजी का परिवर्ती भाग रूपान्तरित हो गया है, स्वयं उसके बदले यदि हम श्रमिक के निर्वाह साधन लें, तो यह स्पष्ट है कि जहां तक मूल्य निर्माण का सम्बन्ध है, ये साधन बज़ाते ख़ुद, उत्पादक पूंजी के दूसरे तत्वों, कच्चे माल तथा कमकर पशुओं की ख़ुराक से भिन्न नहीं होते। इसी आधार पर स्मिथ एक पूर्वोद्धृत अंश में प्रकृतितंत्रवादियों का अनुसरण करते हुए उन्हें उसी स्तर पर रख देते हैं। निर्वाह साधन अपने आप अपने मूल्य का प्रसार नहीं कर सकते, उसमें कोई बेशी मूल्य नहीं जोड़ सकते। उत्पादक पूंजी के अन्य तत्वों के मूल्य की ही तरह उनका मूल्य भी केवल उत्पाद के मूल्य में पुनः प्रकट हो सकता है। जितना मूल्य उनके पास है, उससे अधिक वे कुछ भी उसके मूल्य में नहीं जोड़ सकते। कच्चे माल, अधतैयार सामान, वग़ैरह की तरह वे उस स्थायी पूंजी से, जिसमें श्रम उपकरण समाहित हों, केवल इस बात में भिन्न होते हैं कि वे उत्पाद में पूर्णतः खप जाते हैं (कम से कम जहां तक उस पूंजीपति का सम्बन्ध है, जो उनके लिए पैसे देता है) और इसलिए उनके मूल्य को पूर्णतः प्रतिस्थापित करना होता है, जब कि स्थायी पूंजी के मामले में यह प्रतिस्थापन क्रमशः, खंडशः होता है। उत्पादक पूंजी का जो भाग श्रम शक्ति (अथवा श्रमिक के निर्वाह साधनों) में पेशगी दिया जाता है, वह उत्पादक पूंजी के अन्य भौतिक तत्वों से केवल भौतिक रूप में भिन्न होता है, श्रम प्रक्रिया तथा बेशी मूल्य के संदर्भ में नहीं। वह केवल वहां तक भिन्न होता है, जहां तक वह उत्पाद के वस्तुगत निर्माताओं के एक भाग के साथ (ऐडम स्मिथ इन्हें सामान्यतः "सामग्री" कहते हैं) प्रचल पूंजी के संवर्ग में आता है। यह भाग उन वस्तुगत उत्पाद निर्माताओं के दूसरे भाग से भिन्न है, जो स्थायी पूंजी के संवर्ग में आते हैं।

इस बात का कि मज़दूरी पर व्यय की जानेवाली पूंजी उत्पादक पूंजी के प्रचल भाग का अंग होती है और उत्पादक पूंजी के स्थायी घटक के विपरीत, वस्तुगत उत्पाद निर्माताओं, कच्चे माल, वग़ैरह के एक भाग के समान, उसमें अस्थिरता का गुण होता है, स्वप्रसार प्रक्रिया में पूंजी के स्थिर भाग से भिन्न उसके इस परिवर्ती भाग की भूमिका से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका सम्बन्ध केवल इस बात से है कि परिचलन द्वारा उत्पाद के मूल्य के इस भाग का प्रतिस्थापन, नवीकरण, अतः पुनरुत्पादन किस प्रकार होगा। श्रम शक्ति का क्रय और पुनः क्रय परिचलन प्रक्रिया में आते हैं। किन्तु श्रम शक्ति पर व्यय किया हुआ मूल्य केवल उत्पादन प्रक्रिया के अन्तर्गत एक निश्चित, स्थायी परिमाण से परिवर्तनशील परिमाण में परिवर्तित होता है (श्रमिक के लिए नहीं, वरन पूंजीपति के लिए) और केवल इस प्रकार पेशगी मूल्य पूंजी मूल्य में, पूंजी में, स्वप्रसारवान मूल्य में पूर्णतः परिवर्तित होता है। लेकिन स्मिथ की तरह श्रम शक्ति पर व्यय किये मूल्य को नहीं, श्रमिकों के निर्वाह साधनों पर व्यय किये मूल्य को उत्पादक पूंजी के प्रचल घटक के रूप में वर्गीकृत करने से परिवर्ती और स्थिर पूंजी के भेद को समझना और इस प्रकार सामान्यतः उत्पादन की पूंजीवादी प्रक्रिया को समझना असम्भव हो जाता है। इस बात का कि उत्पाद के वस्तुगत निर्माताओं के लिए व्यय की हुई स्थिर पूंजी के विपरीत पूंजी का यह भाग परिवर्ती पूंजी है, निर्धारण इस दूसरे निर्धारण के नीचे दफ़न हो जाता है कि श्रम शक्ति में लगाया हुआ पूंजी का अंश, जहां तक आवर्त का सम्बन्ध है, उत्पादक पूंजी के प्रचल भाग में आता है। उत्पादक पूंजी के तत्व के रूप में मज़दूर की श्रम शक्ति के बदले उसके निर्वाह साधनों के परिगणन से दफ़नाने का यह काम पूरा हो जाता है।

यह निरर्थक है कि श्रम शक्ति का मूल्य द्रव्य रूप में पेशगी दिया जाता है या प्रत्यक्षतः निर्वाह साधनों के रूप में। अलबत्ता पूंजीवादी उत्पादन के अन्तर्गत दूसरी बात अपवाद ही हो सकती है।[24]

प्रचल पूंजी की यह परिभाषा कि वह श्रम शक्ति पर व्यय किये पूंजी मूल्य की निर्धारक है – प्रकृतितंत्रवादियों के पूर्वाधार के बिना यह प्रकृतितांत्रिक परिभाषा स्थापित करके ऐडम स्मिथ ने ख़ुशक़िस्मती से अपने अनुयाइयों में इस समझ को मार दिया कि पूंजी का जो भाग श्रम शक्ति पर ख़र्च किया जाता है, वह परिवर्ती पूंजी होता है। उन्होंने अन्यत्र जिन अधिक गम्भीर और सही विचारों का विकास किया था, उनका चलन तो नहीं हुआ, किन्तु उनकी इस भ्रान्ति का अवश्य हो गया। वस्तुतः उनके बाद के अन्य लेखक तो इससे भी आगे चले गये। वे प्रचल पूंजी की इसी परिभाषा को निर्णायक मानने के लिए तैयार नहीं थे कि श्रम शक्ति में निविष्ट पूंजी अंश स्थायी पूंजी के मुक़ाबले प्रचल पूंजी होता है; उन्होंने श्रमिकों के निर्वाह साधनों में निविष्ट होने को ही प्रचल पूंजी की तात्विक परिभाषा बना दिया। इसके साथ यह सिद्धान्त भी स्वाभाविकतः ही सम्बद्ध है कि श्रम निधि* – जिसमें आवश्यक निर्वाह साधन होते हैं – का एक निश्चित परिमाण होता है, जो एक ओर सामाजिक उत्पाद में श्रमिकों के भाग को भौतिक रूप में सीमित करती है, किन्तु दूसरी ओर जिसे श्रम शक्ति की ख़रीद में पूरी तरह व्यय करना होता है।

---

[24] मूल्य की स्वप्रसार प्रक्रिया में श्रम शक्ति की भूमिका को समझने की अपनी ही राह में ऐडम स्मिथ ने कहां तक रोड़े अटकाये हैं, वह इस निम्नलिखित वाक्य से साबित होता है, जहां वह प्रकृतितंत्रवादियों की तरह मज़दूरों के श्रम को कमकर पशुओं के श्रम के साथ एक ही स्तर पर रख देते हैं: "उसके (फ़ार्मर के) कमकर नौकर ही नहीं, उसके क़मकर पशु भी उत्पादक श्रमिक हैं" (खण्ड २, अध्याय ५, पृष्ठ २४३)।

*कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', हिन्दी संस्करण, खण्ड १, पृष्ठ ६८३-६८५। – सं०

अध्याय ११

स्थायी तथा प्रचल पूंजी के सिद्धांत। रिकार्डो

रिकार्डो ने स्थायी और प्रचल पूंजी के भेद का समावेश केवल मूल्य के नियम के अपवादों, अर्थात उन प्रसंगों, जहां मजदूरी की दर क़ीमतों को प्रभावित करती है, का सोदाहरण स्पष्टीकरण करने के लिए किया है। इस बात का विवेचन खंड ३ के लिए रखा जा रहा है।*

किंतु स्पष्टता का मूल अभाव प्रारंभ में ही निम्नलिखित सारहीन सन्निधान में स्पष्ट हो जाता है: "स्थायी पूंजी के टिकाऊपन की मात्रा का यह भेद, और अनुपातों की यह विविधता, जिनमें दोनों तरह की पूंजी संयुक्त हो सकती है।"[25]

और यदि हम पूछें कि वह किन दो तरहों की पूंजी की बात कर रहे हैं, तो हमें बताया जाता है: "वे अनुपात भी, जिनमें वह पूंजी, जिसे श्रम का पोषण करना है, और वह पूंजी, जो मशीनों, औजारों और इमारतों में लगाई गई है, विविध रूपों में संयुक्त हो सकती है।"[26] दूसरे शब्दों में, स्थायी पूंजी श्रम उपकरणों के बराबर है और प्रचल पूंजी श्रम पर लगाई पूंजी के बराबर है। "वह पूंजी, जिसे श्रम का पोषण करना है" ऐडम स्मिथ से ली यह निरर्थक शब्दावली है। यहां एक ओर प्रचल पूंजी को परिवर्ती पूंजी के साथ, अर्थात उत्पादक पूंजी के उस भाग के साथ बिठा दिया गया है जो श्रम में निविष्ट की गई है। किंतु दूसरी ओर दुगुनी भ्रान्तिपूर्ण स्थापनाएं इस कारण उत्पन्न होती हैं कि वैपरीत्य का मूल मूल्य की – स्थिर तथा परिवर्ती पूंजी – स्वप्रसार प्रक्रिया से नहीं, वरन परिचलन प्रक्रिया से निकाला जाता है (ऐडम स्मिथ का पुराना उलझाव)।

पहली बात, स्थायी पूंजी के टिकाऊपन की मात्रा में भेदों और पूंजी के स्थिर तथा परिवर्ती पूंजी से बने होने के कारण उत्पन्न भेदों को समान महत्व का माना जाता है। किंतु यह बादवाला भेद बेशी मूल्य के उत्पादन में भेद को निर्धारित करता है, इसके विपरीत, पहलेवाला भेद जहां तक स्वप्रसार प्रक्रिया का संबंध है, केवल यह दिखाता है कि कोई मूल्य विशेष उत्पादन साधनों से उत्पाद में किस तरह अंतरित होता है; जहां तक परिचलन प्रक्रिया का संबंध है, यह भेद केवल व्यय की हुई पूंजी के नवीकरण की अवधि की ओर, अथवा अन्य दृष्टिकोण से, उस समय की ओर संकेत करता है, जिसके लिए वह पेशगी दी गई थी। उत्पादन की पूंजीवादी प्रक्रिया के भीतरी तंत्र को समझने के बदले, यदि केवल संपन्न

---

* कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', अंग्रेज़ी संस्करण, खंड ३, अध्याय ११, पृष्ठ १९६-२००। – सं०

[25] Ricardo, *Principles, etc*, p. 25.

[26] वही।

परिघटना पर विचार किया जाये, तो ये भेद वस्तुतः अनुरूप हो जाते हैं। उद्योग की विभिन्न शाखाओं में निवेशित विविध पूंजियों के बीच सामाजिक बेशी मूल्य के वितरण में, पूंजी के पेशगी दिये जाने की भिन्न-भिन्न अवधियों (उदाहरण के लिए स्थायी पूंजी के टिकाऊपन की विभिन्न मात्राएं) में अंतर तथा पूंजी की भिन्न-भिन्न आंगिक संरचना (और इसलिए स्थिर तथा परिवर्ती पूंजी के भिन्न परिचलन भी) समान रूप से लाभ की सामान्य दर के समीकरण में और मूल्यों को उत्पादन की क़ीमतों का रूप देने में योगदान करते हैं।

दूसरे, परिचलन प्रक्रिया के दृष्टिकोण से हमारे पास एक ओर श्रम के उपकरण – स्थायी पूंजी – और दूसरी ओर श्रम की सामग्री तथा मजदूरी – प्रचल पूंजी – हैं। किंतु श्रम प्रक्रिया और स्वप्रसार के दृष्टिकोण से हमारे पास एक ओर उत्पादन साधन (श्रम के उपकरण तथा श्रम की सामग्री) – स्थिर पूंजी – हैं; दूसरी ओर श्रम शक्ति – परिवर्ती पूंजी – है। पूंजी की आंगिक संरचना के लिए इस बात का कुछ भी महत्व नहीं है (Buch I, Kap. XXIII, 2, p. 647)* कि स्थिर पूंजी के मूल्य की एक निर्दिष्ट मात्रा में श्रम के बहुत से उपकरण और श्रम की थोड़ी ही सामग्री है अथवा बहुत सी श्रम सामग्री है और थोड़े से श्रम उपकरण हैं, जब कि हर चीज़ उत्पादन साधनों में लगाई हुई पूंजी तथा श्रम शक्ति में लगाई हुई पूंजी के आपसी अनुपात पर निर्भर करती है। इसी प्रकार इसके विपरीत परिचलन प्रक्रिया के, स्थायी और प्रचल पूंजी के भेद के दृष्टिकोण से यह उतना ही महत्वहीन है कि प्रचल पूंजी के मूल्य की कोई मात्रा विशेष श्रम सामग्री तथा मजदूरी में किस अनुपात में विभक्त होती है। इनमें से एक दृष्टिकोण से श्रम शक्ति में लगाये पूंजी मूल्य के प्रतिमुख श्रम सामग्री उसी संवर्ग में रखी जाती है, जिसमें श्रम उपकरण होते हैं; दूसरे दृष्टिकोण से श्रम शक्ति में लगाया पूंजी अंश श्रम उपकरणों में लगाये अंश के प्रतिमुख श्रम सामग्री में लगाये पूंजी अंश के साथ आता है।

इस कारण रिकार्डो के सिद्धांत में श्रम सामग्री (कच्चे माल और सहायक सामग्री) में लगाये पूंजी मूल्य का अंश दोनों में से किसी ओर प्रकट नहीं होता। वह पूर्णतः विलुप्त हो जाता है; कारण यह कि उसे स्थायी पूंजी के साथ रखा नहीं जा सकता, क्योंकि उसकी परिचलन पद्धति श्रम शक्ति में लगाये पूंजी अंश की परिचलन पद्धति के पूर्णतः अनुरूप है। दूसरी ओर उसे प्रचल पूंजी के साथ नहीं रखा जा सकता, क्योंकि उस हालत में स्थायी और प्रचल पूंजी का स्थिर और परिवर्ती पूंजी के वैपरीत्य के साथ तादात्म्य, जिसे ऐडम स्मिथ ने विरासत में दिया था और चुपचाप बनाये रखा गया है, अपने आपको मिटा देगा। रिकार्डो में इतना अधिक तार्किक सहज बोध है कि वह इसे अनुभव किये बिना नहीं रह सकते थे और इसी कारण पूंजी का वह भाग उनकी नज़रों से पूर्णतया अनदेखा रह जाता है।

यहां इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि पूंजीपति – राजनीतिक अर्थशास्त्र की अपनी विशिष्ट बोली में – मजदूरी में लगाई हुई पूंजी विभिन्न अवधियों के लिए इस बात के अनुसार पेशगी देता है कि वह यह मजदूरी हफ़्तेवार देता है, या माहवार, या तिमाही। लेकिन वास्तव में इसका उलटा ही होता है। हफ़्ते, महीने या तीन महीने के लिए मजदूर अपना श्रम पूंजीपति को पेशगी देता है और इस बात के अनुसार देता है कि उसका भुगतान हफ़्तेवार होगा या माहवार, या तिमाही। यदि पूंजीपति ने श्रम शक्ति के लिए भुगतान करने के बजाय **उसे खरीदा होता**, दूसरे शब्दों में, यदि उसने मजदूर को उसकी मजदूरी एक दिन, एक

* हिंदी संस्करण: अध्याय २५, २, पृष्ठ ६६७-६६६। – सं०

हफ़्ते, एक महीने या तीन महीने के लिए पेशगी दी होती, तो उसका यह दावा ठीक होता कि उसने इन मीयादों के लिए मज़दूरी पेशगी दी है। लेकिन चूंकि बजाय इसके कि जितने समय तक श्रम को **चालू रहना है**, उतने समय के लिए वह उसे ख़रीदे और उसके लिए भुगतान करे, वह भुगतान तब करता है, जब श्रम कई दिनों, हफ़्तों या महीनों तक **चालू रह चुका होता है**, इसलिए यह सारा व्यापार पूंजीवादी quid pro quo [तत्प्रतितत] हो जाता है : मज़दूर पूंजीपति को श्रम के रूप में जो कुछ पेशगी देता है, वह पूंजीपति द्वारा मज़दूर को दिये हुए पेशगी धन में बदल दिया जाता है। उससे इस स्थिति में ज़रा भी फ़र्क़ नहीं पड़ता कि पूंजीपति स्वयं उत्पाद या उसका मूल्य (उसमें समाविष्ट बेशी मूल्य समेत) परिचलन से वापस पा जाता है या उसे अपेक्षाकृत न्यूनाधिक अवधि के बाद ही उसके निर्माण अथवा उसके परिचलन के लिए आवश्यक भिन्न-भिन्न अवधियों के अनुसार प्राप्त करता है। माल का विक्रेता इस बात की धेला भर परवाह नहीं करता कि ग्राहक उसका क्या करेगा। पूंजीपति को मशीन इसलिए सस्ती नहीं मिल जाती कि उसे उसका सारा मूल्य एक ही बार में पेशगी देना होता है, जब कि यह मूल्य परिचलन से उसके पास केवल क्रमशः और खंडशः वापस आता है और न वह कपास के लिए ज़्यादा पैसा इस कारण देता है कि उससे जो उत्पाद बनता है, उसके मूल्य में कपास का मूल्य पूर्णतः दाख़िल हो जाता है और इसलिए वह उत्पाद की बिक्री द्वारा एकबारगी और पूर्णतः प्रतिस्थापित हो जाता है।

आइये, अब हम रिकार्डो पर लौट आते हैं।

१. परिवर्ती पूंजी का चारित्रिक लक्षण यह है कि पूंजी के एक निश्चित, दिये हुए (और इस प्रकार स्थिर) भाग का, मूल्यों की दी हुई राशि का (जिसे मूल्य में श्रम शक्ति के बराबर माना गया है, यद्यपि मज़दूरी श्रम शक्ति के मूल्य के बराबर है, उससे कम है या ज़्यादा है, यह यहां महत्वहीन है) स्वप्रसारवान, मूल्य सृजक शक्ति से, अर्थात श्रम शक्ति से विनिमय होता है, जो केवल पूंजीपति द्वारा दिये अपने मूल्य का ही पुनरुत्पादन नहीं करती, बल्कि साथ-साथ बेशी मूल्य का उत्पादन भी करती है, ऐसा मूल्य, जो पहले विद्यमान नहीं था, जिसका किसी समतुल्य द्वारा भुगतान नहीं किया गया है। जब भी मज़दूरी पर व्यय किये पूंजी अंश पर केवल परिचलन प्रक्रिया के दृष्टिकोण से विचार किया जाता है, मज़दूरी पर व्यय किये जानेवाले पूंजी अंश का यह चारित्रिक लक्षण, जो toto coelo [समग्रतः] परिवर्ती पूंजी के नाते स्थिर पूंजी से उसे अलग करता है, ग़ायब हो जाता है और इस प्रकार यह पूंजी अंश श्रम उपकरणों पर लगाई गई स्थायी पूंजी से भिन्न प्रचल पूंजी के रूप में प्रकट होता है। यह बात और किसी चीज़ से नहीं, तो इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि तब यह पूंजी अंश स्थिर पूंजी के उस घटक के साथ-साथ एक ही मद – प्रचल पूंजी – के अंतर्गत आ जाता है, जो श्रम सामग्री पर लगाया गया है और स्थिर पूंजी के उस दूसरे घटक के प्रतिमुख है, जो श्रम उपकरणों पर व्यय किया गया है। इस प्रकार बेशी मूल्य को, अतः उस परिस्थिति को ही नज़रंदाज़ कर दिया जाता है, जो मूल्य की लगाई गई राशि को पूंजी में परिवर्तित करती है। इसी तरह इस तथ्य को भी नज़रंदाज़ किया जाता है कि मज़दूरी के लिए लगाई जानेवाली पूंजी द्वारा उत्पाद में जिस मूल्यांश की वृद्धि होती है, वह नवउत्पादित होता है (और इसलिए वास्तव में पुनरुत्पादित होता है), जब कि कच्चे माल द्वारा उत्पाद में जोड़ा मूल्यांश नवउत्पादित नहीं होता, वास्तव में पुनरुत्पादित नहीं होता, वरन मात्र उत्पाद के मूल्य में क़ायम, संरक्षित रहता है और इसलिए उत्पाद के मूल्य के घटक के रूप में बस पुनः प्रकट

ही होता है। स्थायी और प्रचल पूंजी के बीच वैषम्य के दृष्टिकोण से विचार करने पर यह भेद अब केवल इस प्रकार होता है: किसी माल के उत्पादन के लिए प्रयुक्त श्रम उपकरणों का मूल्य माल के मूल्य में केवल अंशतः प्रवेश करता है और इसलिए उसकी बिक्री द्वारा अंशतः ही प्रतिस्थापित होता है, इसलिए कुल मिलाकर केवल क्रमशः और खंडशः प्रतिस्थापित होता है। दूसरी ओर किसी माल के उत्पादन में प्रयुक्त श्रम शक्ति और श्रम की वस्तुओं (कच्चा माल, आदि) का मूल्य माल में पूर्णतः प्रवेश करता है, अतः उसकी बिक्री द्वारा पूर्णतः प्रतिस्थापित होता है। जहां तक परिचलन प्रक्रिया का संबंध है, इस सिलसिले में पूंजी का एक भाग स्थायी बनकर आता है, और दूसरा भाग अस्थिर अथवा प्रचल बनकर। दोनों ही स्थितियों में यह दत्त, पेशगी मूल्यों के उत्पाद को अंतरण और उत्पाद की बिक्री द्वारा उनके प्रतिस्थापन का सवाल होता है। अब भेद केवल इस पर निर्भर करता है कि मूल्य का अंतरण, फलतः मूल्य का प्रतिस्थापन, खंडशः और क्रमशः होता है या एकसाथ। इस प्रकार परिवर्ती और स्थिर पूंजी के उस भेद को छिपा दिया जाता है, जिससे सभी कुछ निर्धारित होता है, अतः बेशी मूल्य के उत्पादन के और पूंजीवादी उत्पादन के सारे रहस्य को ही, जो उन परिस्थितियों को, जो कुछ मूल्यों को और उन चीज़ों को कि जिनमें ये मूल्य अपने आपको प्रकट करते हैं, पूंजी में रूपांतरित करती हैं, मिटा दिया जाता है। पूंजी के सभी घटकों को अब केवल उनके परिचलन के ढंगों से पहचाना जाता है (और निस्संदेह मालों के परिचलन का संबंध केवल पहले से विद्यमान मूल्यों से होता है); और मज़दूरी में लगाई गई पूंजी श्रम उपकरणों पर लगाई गई पूंजी के प्रतिमुख कच्चे माल, अर्धतैयार उत्पाद, सहायक सामग्री पर लगाये पूंजी अंश जैसा ही परिचलन का ख़ास ढंग अपना लेती है।

इसलिए यह बोधगम्य है कि बूर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्र ऐडम स्मिथ के "स्थिर और परिवर्ती पूंजी" के संवर्गों के "स्थायी और प्रचल पूंजी" के संवर्गों के उलझाव के साथ क्यों स्वभावतः चिपका रहा और क्यों वह पीढ़ी दर पीढ़ी एक शताब्दी तक आलोचना किये बिना इसकी तोता-रटंत करता रहा। बूर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्र अब मज़दूरी पर लगाये जानेवाले पूंजी अंश को कच्चे माल पर लगाये जानेवाले पूंजी अंश से ज़रा भी अलग नहीं करता और वह स्थिर पूंजी से केवल इस बात में औपचारिक रूप में भिन्न होता है कि उत्पाद द्वारा वह थोड़ा-थोड़ा करके परिचालित होता है या एकसाथ। इस प्रकार पूंजीवादी उत्पादन की, अतः पूंजीवादी शोषण की वास्तविक गति को समझने का आधार एकबारगी दफ़ना दिया जाता है। यह केवल पेशगी मूल्यों के पुनः प्रकट होने का प्रश्न रह जाता है।

रिकार्डो द्वारा स्मिथ के इस उलझाव को आंख मींचकर अपना लिया जाना बाद के पैरवीकारों की तुलना में ही नहीं, जिनमें विचारों का उलझाव कोई विशेष क्लेशजनक नहीं है, वरन स्वयं ऐडम स्मिथ की तुलना में भी अधिक क्लेशजनक है, क्योंकि ऐडम स्मिथ के विपरीत रिकार्डो मूल्य तथा बेशी मूल्य के अपने विश्लेषण में अधिक सुसंगत और प्रखर हैं और वस्तुतः वह सामान्य ऐडम स्मिथ के मुक़ाबले गूढ़ ऐडम स्मिथ का समर्थन करते हैं।

प्रकृतितंत्रवादियों के यहां ऐसा कोई उलझाव नहीं है। Avances annuelles और avances primitives का भेद केवल विभिन्न पूंजी घटकों, विशेषतः कृषि पूंजी के घटकों की विभिन्न पुनरुत्पादन अवधियों के बारे में है, जब कि बेशी मूल्य के उत्पादन के बारे में उनके विचार उनके उस सिद्धांत का अंग हैं, जो इन भेदों से स्वतंत्र है, जिस अंग को वे

अपने सिद्धांत का आधार मानते हैं। बेशी मूल्य के निर्माण का उद्भव स्वयं पूंजी को नहीं, बल्कि पूंजी के उत्पादन के एक विशेष क्षेत्र, कृषि, को माना जाता है।

२. परिवर्ती पूंजी की परिभाषा में, और इसलिए किसी भी मूल्य राशि को पूंजी में परिवर्तित करने में मुख्य बात यह है कि पूंजीपति एक निश्चित, दिये हुए (और इस अर्थ में स्थिर) मूल्य परिमाण का एक मूल्य सृजक शक्ति से मूल्य के उत्पादन, उसके स्वप्रसार के लिए एक परिमाण से विनिमय करता है। पूंजीपति मजदूर की अदायगी द्रव्य में करता है या निर्वाह साधनों में उसका इस मूल परिभाषा पर कोई भी असर नहीं पड़ता। इससे केवल पूंजीपति के दिये पेशगी मूल्य के अस्तित्व का रूप बदलता है जो एक स्थिति में द्रव्य रूप में, जिससे मज़दूर बाज़ार में अपने निर्वाह साधन ख़रीदता है और दूसरी स्थिति में निर्वाह साधनों के रूप में विद्यमान होता है, जिनका वह सीधे उपभोग करता है। वस्तुतः विकसित पूंजीवादी उत्पादन इस पूर्वकल्पना पर आधारित होता है कि मजदूर की अदायगी द्रव्य में की जायेगी, जैसे वह सामान्यतः उत्पादन प्रक्रिया के परिचलन प्रक्रिया द्वारा अस्तित्व में आने की और इसलिए मुद्रा व्यवस्था के होने की पूर्वकल्पना करता है। किंतु बेशी मूल्य के सृजन का – अतः पेशगी मूल्य राशि के पूंजीकरण का – स्रोत न तो मजदूरी का द्रव्य रूप है न वस्तुरूप में दी गई मजदूरी का रूप है और न वह श्रम शक्ति की ख़रीद पर लगाई गई पूंजी ही है। उसका स्रोत है मूल्य का मूल्य सृजक शक्ति से विनिमय, स्थिर परिमाण का परिवर्ती परिमाण में रूपांतरण।

श्रम उपकरणों की न्यूनाधिक स्थिरता उनके टिकाऊपन की मात्रा, अतः उनके भौतिक गुण पर निर्भर करती है। अन्य परिस्थितियां समान रहें, तो वे जल्दी या देर से घिस जायेंगे, अतः अपने टिकाऊपन के अनुसार स्थायी पूंजी के रूप में कम या अधिक समय तक कार्य करेंगे। किंतु ऐसा क़तई नहीं होता कि टिकाऊपन के इस भौतिक गुण के कारण ही वे स्थायी पूंजी की तरह कार्य करते हों। धातु कारख़ानों में कच्चा माल उतना ही टिकाऊ होता है, जितना वे मशीनें, जो उत्पादन में इस्तेमाल की जाती हैं और वह इन मशीनों के काठ या चमड़े जैसे बहुत से संघटक अंशों से ज़्यादा टिकाऊ होता है। फिर भी कच्चे माल का काम देनेवाली धातु प्रचल पूंजी का अंग होती है, जब कि कार्यरत श्रम उपकरण संभवतः उसी धातु के बने होने पर भी स्थायी पूंजी का अंग होते हैं। फलतः कोई धातु कभी स्थायी पूंजी के कभी प्रचल पूंजी के संवर्ग में रखी जाती है, तो ऐसा उसकी वास्तविक, भौतिक प्रकृति के कारण नहीं होता, न इस कारण होता है कि वह अपेक्षाकृत जल्दी घिसती है या देर में, बल्कि यह भेद उत्पादन प्रक्रिया में उसकी भूमिका के कारण ही होता है, जहां वह एक स्थिति में श्रम की वस्तु होती है, और दूसरी स्थिति में श्रम का उपकरण।

उत्पादन प्रक्रिया में श्रम उपकरण का कार्य यह आवश्यक बना देता है कि औसत रूप में वह उपकरण न्यूनाधिक काल तक निरंतर पुनरावृत्त श्रम प्रक्रियाओं में काम करता रहे। अतः उसका कार्य ही यह निर्धारित कर देता है कि वह जिस पदार्थ का बना हुआ है, वह कमोबेश टिकाऊ हो। किंतु वह जिस सामग्री का बना है, उसका टिकाऊपन अपने आप उसे स्थायी पूंजी नहीं बना देता। वही पदार्थ जब कच्चा माल होता है, तब प्रचल पूंजी बन जाता है और जो अर्थशास्त्री एक ओर माल पूंजी तथा उत्पादक पूंजी के भेद को प्रचल पूंजी तथा स्थायी पूंजी के भेद के साथ उलझाते हैं, उनके लिए वही पदार्थ, वही मशीन उत्पाद के नाते प्रचल पूंजी और श्रम उपकरण के नाते स्थायी पूंजी होता है।

यद्यपि श्रम उपकरण जिस पदार्थ का बना होता है, उसका टिकाऊपन उसे स्थायी पूंजी

नहीं बना देता, फिर भी ऐसे उपकरण के रूप में उसकी भूमिका उसके अपेक्षाकृत टिकाऊ पदार्थ से निर्मित होने को आवश्यक बना देती है। अतः उसकी सामग्री का टिकाऊपन श्रम उपकरण के नाते उसके कार्य की शर्त और फलतः परिचलन के उस ढंग का भौतिक आधार है, जो उसे स्थायी पूंजी बनाता है। अन्य बातें समान हों, तो जिस पदार्थ का वह बना हुआ है, उसकी छीजन की न्यूनाधिक मात्रा उस पर स्थायित्व की न्यूनाधिक मात्रा का ठप्पा लगाती है, अतः वह उसके स्थायी पूंजी होने के गुण से घनिष्ठ रूप में संबद्ध है।

श्रम शक्ति में लगाये पूंजी अंश पर यदि केवल प्रचल पूंजी के दृष्टिकोण से, अतः स्थायी पूंजी के मुक़ाबले रखकर विचार किया जाये और इसके फलस्वरूप यदि स्थिर तथा परिवर्ती पूंजी के भेद को स्थायी तथा प्रचल पूंजी के भेद के साथ मिला दिया जाये, तो – यह मानते हुए कि श्रम उपकरण की भौतिक यथार्थता उसके स्थायी पूंजी के चरित्र का एक आधार होता है, – स्थायी पूंजी की तुलना में उसके प्रचल पूंजीवाले स्वरूप के स्रोत को श्रम शक्ति में निवेशित पूंजी की भौतिक यथार्थता में देखना और इसके बाद फिर परिवर्ती पूंजी की भौतिक यथार्थता की सहायता से प्रचल पूंजी को निर्धारित करना स्वाभाविक ही होगा।

मज़दूरी पर लगाई जानेवाली पूंजी का असली तत्व स्वयं श्रम, क्रियाशील, मूल्य सृजक श्रम शक्ति, सजीव श्रम है, जिसका पूंजीपति निर्जीव, मूर्त श्रम से विनिमय करता है और अपनी पूंजी में समावेश करता है, और जो वह साधन है, एकमात्र साधन है, जिससे उसके हाथ में जो मूल्य है, वह स्वप्रसारवान मूल्य में बदल जाता है। किंतु स्वप्रसार की यह क्षमता पूंजीपति द्वारा नहीं बेची जाती। वह सदा उसकी उत्पादक पूंजी का एक घटक होती है, वैसे ही जैसे उसके श्रम उपकरण होते हैं; वह कभी उसकी माल पूंजी का घटक नहीं होती, जैसे कि, उदाहरण के लिए, तैयार उत्पाद होता है, जिसे वह बेचता है। उत्पादन प्रक्रिया में उत्पादक पूंजी के घटकों के नाते श्रम के उपकरण स्थायी पूंजी के रूप में श्रम शक्ति के प्रतिमुख नहीं होते, जैसे प्रचल पूंजी के रूप में श्रम सामग्री तथा सहायक पदार्थों की भी उससे तद्रूपता नहीं होती। श्रम शक्ति इन दोनों के सामने एक वैयक्तिक उपादान के रूप में आती है, जब कि श्रम प्रक्रिया के दृष्टिकोण से कहा जायेगा कि वे वस्तुगत उपादान हैं। मूल्य की स्वप्रसार प्रक्रिया के दृष्टिकोण से कहा जायेगा कि ये दोनों ही श्रम शक्ति के प्रतिमुख होते हैं, जैसे परिवर्ती पूंजी स्थिर पूंजी के होती है। और यदि यहां एक भौतिक अंतर का उल्लेख किया जाये, जहां तक कि वह परिचलन प्रक्रिया को प्रभावित करता है, तो वह केवल यह है: मूल्य की प्रकृति से, जो मूर्त श्रम के अलावा और कुछ नहीं होती, क्रियाशील श्रम शक्ति की प्रकृति से, जो मूर्त रूप धारण करते श्रम के अलावा और कुछ नहीं होती, यह निष्कर्ष निकलता है कि श्रम शक्ति जितने समय तक कार्य करती है, वह निरंतर मूल्य तथा बेशी मूल्य का निर्माण करती है; श्रम शक्ति के पक्ष से जो चीज़ गति, मूल्य का सृजन लगती है, वह विराम की अवस्था में उसके उत्पाद के पक्ष से निर्मित मूल्य लगती है। यदि श्रम शक्ति ने अपना कार्य कर दिया है, तो फिर पूंजी में अब एक ओर श्रम शक्ति और दूसरी ओर उत्पादन साधन समाविष्ट नहीं रह जाते। श्रम शक्ति में जो पूंजी मूल्य लगाया गया था, वह अब ऐसा मूल्य है, जो (+ बेशी मूल्य) उत्पाद में जोड़ा गया था। प्रक्रिया को दोहराने के लिए उत्पाद को बेचना होगा और जो धन प्राप्त हो, उससे लगातार नई श्रम शक्ति ख़रीदनी होगी और उत्पादक पूंजी में उसका समावेश करना होगा। यही श्रम शक्ति में निवेशित

तथा श्रम सामग्री आदि में निवेशित पूंजी अंश को श्रम उपकरणों में नियत बनी रहनेवाली पूंजी के मुक़ाबले प्रचल पूंजी का चरित्र प्रदान करता है।

इसके विपरीत, यदि प्रचल पूंजी की उस गौण परिभाषा को, जो उसके साथ-साथ स्थिर पूंजी के एक अंश (कच्चे माल और सहायक सामग्री) पर भी लागू होती है, श्रम शक्ति में लगाये हुए पूंजी अंश की मुख्य परिभाषा मान लें – यानी यह कि उसमें लगाया हुआ मूल्य उस उत्पाद को पूर्णतः अंतरित हो जाता है, जिसके सृजन में वह ख़र्च होती है, न कि स्थायी पूंजी के मामले की तरह क्रमशः और थोड़ा-थोड़ा करके और फलतः उत्पाद की बिक्री द्वारा उसका पूर्ण प्रतिस्थापन जरूरी होता है, – तो मजदूरी में लगाये हुए पूंजी अंश में भी इसी प्रकार वास्तविक रूप में क्रियाशील श्रम शक्ति नहीं, वरन वे भौतिक तत्व समाहित होने चाहिए, जिन्हें मजदूर अपनी मजदूरी से ख़रीदता है, अर्थात उसमें सामाजिक माल पूंजी का वह भाग समाहित होगा, जो श्रमिक के उपभोग में पहुंच जाता है, अर्थात निर्वाह साधन। उस हालत में स्थायी पूंजी में अपेक्षाकृत धीरे-धीरे विकारीय श्रम उपकरण समाहित होंगे और इसलिए जिनका प्रतिस्थापन अपेक्षाकृत धीरे-धीरे करना होता है और श्रम शक्ति में लगाई हुई पूंजी में निर्वाह साधन समाहित होते हैं, जिनका प्रतिस्थापन ज्यादा जल्दी-जल्दी करना होता है।

फिर भी अधिक या कम विकारीय के बीच विभेदक रेखा बहुत अस्पष्ट और धुंधली है। "श्रमिक जिन भोजन-वस्त्रों की खपत करता है, जिन इमारतों में वह काम करता है, जिन औज़ारों से उसके श्रम में सहायता मिलती है, वे सभी विकारीय प्रकृति के होते हैं। फिर भी ये विभिन्न पूंजियां जितने समय चल सकती हैं, उसमें बहुत बड़ा अंतर होता है: जहाज़ की अपेक्षा भाप इंजन ज्यादा चलेगा, जहाज़ मजदूर के कपड़ों की अपेक्षा ज्यादा चलेगा और मजदूर के कपड़े उसके द्वारा खाये जानेवाले भोजन की अपेक्षा ज्यादा चलते हैं।[27]

रिकार्डो मजदूर जिस घर में रहता है, घर के फ़र्नीचर, छुरी, कांटे, तश्तरी जैसे उपभोग साधनों, आदि का उल्लेख करना भूल जाते हैं, जिन सभी में टिकाऊपन का वही गुण होता है, जो श्रम के उपकरणों में होता है। वही चीज़ें, उसी प्रकार की चीज़ें, एक स्थान पर उपभोग वस्तुएं बन जाती हैं और दूसरे स्थान पर श्रम उपकरण।

रिकार्डो के कथनानुसार भेद इस प्रकार है: "पूंजी शीघ्र विकारीय है और बारबार पुनरुत्पादन की अपेक्षा करती है या धीरे-धीरे खपत में आती है, इसी के अनुसार उसे प्रचल पूंजी या स्थायी पूंजी के अंतर्गत रखा जाता है।"[28]

इसमें वह यह टिप्पणी देते हैं: "यह ऐसा विभाजन है, जो आवश्यक नहीं है, और जिसमें सीमांकन यथार्थतापूर्वक नहीं किया जा सकता।"[29]

इस प्रकार हम एक बार पुनः सानंद प्रकृतितंत्रवादियों के शिविर में आ पहुंचे हैं, जहां avances annuelles और avances primitives का भेद उपभोग काल को और फलतः नियोजित पूंजी के विभिन्न पुनरुत्पादन कालों को भी दर्शाता है। फ़र्क़ इतना ही है कि उनके लिए जो सामाजिक उत्पादन की एक महत्वपूर्ण परिघटना है और परिचलन प्रक्रिया के सिलसिले में जिसका वर्णन *Tableau économique* [आर्थिक सारणी] में किया जाता

[27] Ricardo, *Principles, etc.*, p. 26.

[28] वही।

[29] वही।

है, वह यहां एक आत्मगत और रिकार्डो के अपने शब्दों में ही फ़ालतू भेद बन जाता है।

चूंकि श्रम में निवेशित पूंजी अंश श्रम उपकरणों में निवेशित पूंजी अंश से मात्र पुनरुत्पादन काल और इसलिए परिचलन काल की दृष्टि से भिन्न होता है और एक भाग में निर्वाह साधनों और दूसरे में श्रम साधनों का समावेश होता है, जिससे प्रथमोक्त अन्तोक्त से केवल अपने अधिक शीघ्र विकारीय होने के कारण भिन्न होते हैं, इसलिए स्वयं पहले समूह के भीतर ही टिकाऊपन की विभिन्न मात्राएं होने की वजह से स्वाभाविक तौर पर श्रम शक्ति में निवेशित पूंजी तथा उत्पादन साधनों में निवेशित पूंजी का सारा differentia specifica [विशिष्ट भेद] मिट जाता है।

यह बात रिकार्डो के मूल्य सिद्धांत का और उसी प्रकार उनके लाभ सिद्धांत का, जो वास्तव में बेशी मूल्य का सिद्धांत है, पूर्णतः खंडन करती है। आम तौर से वह स्थायी तथा प्रचल पूंजी के भेद पर इसी सीमा तक विचार करते हैं कि जहां तक उत्पादन की विभिन्न शाखाओं में निवेशित समान रूप में बड़ी पूंजियों में दोनों के भिन्न-भिन्न परिमाण मूल्य के नियम को प्रभावित करते हैं, ख़ास तौर से जहां तक इन परिस्थितियों के फलस्वरूप मज़-दूरी के बढ़ने या घटने का असर क़ीमतों पर पड़ता है। किंतु इस सीमित अनुसंधान के दायरे में भी वह स्थायी तथा प्रचल पूंजी के स्थिर तथा परिवर्ती पूंजी के साथ अपने उलझाव के कारण बहुत गंभीर भूलें करते हैं। दरअसल वह अपनी सारी छानबीन की शुरूआत ही एकदम ग़लत आधार पर करते हैं। पहले तो जहां तक श्रम शक्ति में लगाये हुए पूंजी मूल्य के अंश को प्रचल पूंजी के अंतर्गत रखने का सवाल है, वहां स्वयं प्रचल पूंजी की परिभाषाएं ग़लत ढंग से विकसित की गयी हैं, ख़ास तौर से वे परिस्थितियां, जो श्रम में लगाये हुए पूंजी अंश को इस मद में डालती हैं। दूसरी बात यह कि यह उस परिभाषा का, जिसके अनुसार श्रम में निवेशित पूंजी अंश परिवर्ती पूंजी होता है, उस परिभाषा के साथ उलझाव है, जिसके अनुसार वह स्थायी पूंजी के प्रतिमुख प्रचल पूंजी होता है।

आरंभ से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रम शक्ति में निवेशित पूंजी की प्रचल अथवा अस्थिर पूंजी होने की परिभाषा गौण परिभाषा है, जो उत्पादन प्रक्रिया में उसके differentia specifica को पूरी तरह से मिटा देती है। कारण यह कि इस परिभाषा में एक ओर श्रम में निवेशित पूंजियों का वही महत्व है, जो कच्चे माल, वग़ैरह में निवेशित पूंजियों का है। जो वर्गीकरण स्थिर पूंजी के एक भाग को परिवर्ती पूंजी से तद्‌रूप कर देता है, वह स्थिर पूंजी के प्रतिमुख परिवर्ती पूंजी के differentia specifica से सरोकार नहीं रखता। दूसरी ओर श्रम में लगाये हुए पूंजी अंश सचमुच श्रम उपकरणों में निवेशित पूंजी अंशों के प्रतिमुख होते हैं, किंतु इस प्रसंग में ज़रा भी नहीं कि ये अंश मूल्य के उत्पादन में बिल्कुल अलग-अलग तरीक़ों से दाख़िल होते हैं, बल्कि इस प्रसंग में कि दोनों ही अपना मूल्य उत्पाद को अंतरित करते हैं, लेकिन अलग-अलग मीयादों में।

इन सभी प्रसंगों में प्रश्न यह है कि माल की उत्पादन प्रक्रिया में लगाया गया कोई भी दिया हुआ मूल्य – वह चाहे मज़दूरी हो, चाहे कच्चे माल की या श्रम उपकरणों की क़ीमत हो – **किस प्रकार** उत्पाद को अंतरित होता है, अतः **किस प्रकार** उत्पाद द्वारा परिचालित किया जाता है और उत्पाद की बिक्री द्वारा अपने प्रारंभ बिंदु पर लौटता या प्रतिस्थापित होता है। यहां एकमात्र अंतर "**किस प्रकार**" में, मूल्य के अंतरण के और इसलिए उसके परिचलन के भी ख़ास ढंग में निहित है।

प्रत्येक अलग मामले में श्रम शक्ति की अनुबंध द्वारा नियत क़ीमत चाहे नक़द अदा की जाती है या निर्वाह साधनों के रूप में, इससे उसके स्थायी क़ीमत होने के चरित्र में कुछ भी तबदीली नहीं आती। लेकिन नक़द मजदूरी के प्रसंग में यह स्पष्ट है कि स्वयं द्रव्य उस तरह उत्पादन प्रक्रिया में नहीं पहुंच जाता जैसे मूल्य और उत्पादन साधनों की सामग्री भी पहुँच जाते हैं। लेकिन इसके विपरीत मज़दूर अपनी मज़दूरी से जो निर्वाह साधन ख़रीदता है, अगर उन्हें कच्चे माल, वग़ैरह के साथ प्रचल पूंजी के भौतिक रूप की तरह सीधे एक ही संवर्ग में रख दिया जाये और वे श्रम उपकरणों के प्रतिमुख हों, तो बात दूसरी ही शक्ल ले लेती है। यदि इन चीज़ों का, उत्पादन साधनों का मूल्य श्रम प्रक्रिया के दौरान उत्पाद को अंतरित हो जाता है, तो उन दूसरी चीज़ों, निर्वाह साधनों का मूल्य उनको ख़र्च करनेवाली श्रम शक्ति में पुनः प्रकट होता है और वह भी इस शक्ति की कार्यशीलता द्वारा उत्पाद को फिर से अंतरित हो जाता है। इन दोनों ही मामलों में यह समान रूप से उत्पादन के दौरान पेशगी दिये मूल्यों के उत्पाद में पुनः प्रकट होने भर का प्रश्न है। (प्रकृतितंत्रवादी इसे महत्वपूर्ण समझते थे और इसलिए इससे इन्कार करते थे कि औद्योगिक श्रम बेशी मूल्य का निर्माण करता है।) वेलैंड से पूर्वोद्धृत अंश* इस प्रकार है: "किंतु रूप का कोई महत्व नहीं है... मनुष्य के अस्तित्व तथा सुख के लिए जिन नाना प्रकार के खाद्य पदार्थों, कपड़े और आश्रय की आवश्यकता होती है, वे भी बदल जाते हैं। उनका समय-समय पर उपभोग किया जाता है, और उनका मूल्य पुनः प्रकट होता है।" (*Elements of Political Economy*, पृष्ठ ३१, ३२।) उत्पादन साधनों तथा निर्वाह साधनों, दोनों के ही रूप में उत्पादन के लिए पेशगी किये गये पूंजी मूल्य यहां उत्पाद के मूल्य में समान रूप से पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार उत्पादन की पूंजीवादी प्रक्रिया को पूर्ण रहस्य बना देने का काम मज़े में संपन्न हो जाता है तथा उत्पाद में विद्यमान बेशी मूल्य का मूल पूर्णतः अदृश्य हो जाता है।

इसके अलावा इससे पूंजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की लाक्षणिक जड़पूजा भी परिणति पर पहुंच जाती है, वह जड़पूजा जो सामाजिक उत्पादन प्रक्रिया के दौरान चीज़ों पर अंकित हुए सामाजिक, आर्थिक चरित्र को उन चीज़ों की भौतिक प्रकृति से उद्भूत प्राकृतिक चरित्र में रूपांतरित कर देती है। उदाहरण के लिए "श्रम उपकरण स्थायी पूंजी हैं" – एक रूढ़िवादी परिभाषा है, जो उलझाव तथा अंतर्विरोध पैदा करती है। जिस प्रकार श्रम प्रक्रिया के सिल-सिले में यह दिखाया गया था (Buch I, Kap. V)** कि यह पूर्णतः इस पर निर्भर करता है कि भौतिक घटक किसी श्रम प्रक्रिया विशेष में क्या भूमिका अदा करते हैं, क्या कार्य करते हैं – आया कि श्रम उपकरणों का, या श्रम सामग्री का, या उत्पाद का – कि जिससे श्रम उपकरण उसी हालत में स्थायी पूंजी होते हैं कि अगर उत्पादन प्रक्रिया दरअसल उत्पादन की पूंजीवादी प्रक्रिया हो और इसलिए उत्पादन साधन दरअसल पूंजी हों और उनमें आर्थिक निश्चयात्मकता, पूंजी का सामाजिक स्वरूप हो। दूसरी बात यह कि वे स्थायी पूंजी उसी हालत में होते हैं कि अगर वे अपना मूल्य एक विशेष प्रकार से उत्पाद को अंतरित करते हैं। यदि ऐसा नहीं होता, तो वे स्थायी पूंजी न होकर श्रम के उपकरण बने रहेंगे। इसी तरह यदि खाद जैसी सहायक सामग्री उसी विशेष प्रकार से अपना मूल्य तजती है, जिस प्रकार

---

* कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', हिन्दी संस्करण, खंड १, पृष्ठ २३३-२३४, पादटिप्पणी ३। – सं०

** हिंदी संस्करण: अध्याय ७। – सं०

अधिकांश श्रम उपकरण करते हैं, तो वह भी स्थायी पूंजी हो जायेगी, यद्यपि वह श्रम उपकरण नहीं है। यहां प्रश्न ऐसी परिभाषाओं का नहीं है कि चीजों को जिनके अनुरूप करना ही होता है। यहां हम निश्चित कार्यों की बात कर रहे हैं जिनको निश्चित संवर्गों में व्यक्त करना आवश्यक है।

यदि यह माना जाता है कि सभी परिस्थितियों में निर्वाह साधनों का एक गुण यह है कि वे मजदूरी में लगाई हुई पूंजी होते हैं, तो इस "प्रचल" पूंजी का एक गुण "श्रम का पोषण करना" (रिकार्डो, पृष्ठ २५) भी होगा। यदि निर्वाह साधन "पूंजी" न होते, तो वे श्रम शक्ति का पोषण नहीं करते, जब कि उनका यह पूंजी का गुण ही उन्हें बाह्य श्रम द्वारा **पूंजी** का पोषण करने की क्षमता से युक्त करता है।

यदि निर्वाह साधन अपने आप में प्रचल पूंजी हों – इस पूंजी के मजदूरी में बदल दिये जाने के बाद – तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मजदूरी का परिमाण श्रमिकों की संख्या तथा प्रचल पूंजी की दी हुई राशि के बीच अनुपात पर निर्भर करता है। यह एक प्रिय आर्थिक स्थापना है। किंतु वास्तविकता यह है कि निर्वाह साधनों की जो मात्रा श्रमिक बाजार से निकालता है और पूंजीपति के उपभोग के लिए निर्वाह साधनों की जो मात्रा सुलभ होती है, ये दोनों बेशी मूल्य के श्रम की क़ीमत के साथ अनुपात पर निर्भर करती हैं।

बर्टन[29a] की तरह रिकार्डो भी हर जगह स्थिर पूंजी से परिवर्ती पूंजी के संबंध को स्थायी पूंजी के प्रचल पूंजी के संबंध के साथ गड़बड़ा देते हैं। हम आगे देखेंगे कि यह लाभ की दर की उनकी छानबीन को किस हद तक विकृत कर देता है।*

इसके अलावा आवर्त में स्थायी और प्रचल पूंजी की भिन्नता के अतिरिक्त अन्य कारणों से जो भेद उत्पन्न होते हैं, उन्हें रिकार्डो इस भिन्नता के साथ तद्रूप कर देते हैं: "यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि प्रचल पूंजी अत्यंत असमान अवधियों में परिचलन कर सकती है अथवा अपने मालिक के पास वापस आ सकती है। कोई काश्तकार बोने के लिए जो गेहूं ख़रीदता है, वह उस गेहूं की तुलना में स्थायी पूंजी है, जिसे बेकर रोटियां बनाने के लिए ख़रीदता है। पहला उसे जमीन में रहने देता है और साल भर तक वह कोई प्रतिफल नहीं प्राप्त कर सकता, दूसरा उसे पिसवाकर मैदा बना सकता है, रोटी के रूप में उसे अपने ग्राहकों को बेच सकता है और अपनी पूंजी को फिर वही काम शुरू करने या हफ़्ते भर में कोई दूसरा काम शुरू करने के लिए ख़ाली रख सकता है।"[30]

यहां यह लाक्षणिक है कि यद्यपि बोने के लिए इस्तेमाल करते समय गेहूं निर्वाह साधन का नहीं, कच्ची सामग्री का काम देता है, तो भी पहले वह प्रचल पूंजी होता है, क्योंकि वह अपने आप में निर्वाह साधन होता है, और दूसरे वह स्थायी पूंजी होता है, क्योंकि उसके प्रत्यावर्तन में साल भर से अधिक समय लगता है। किंतु उत्पादन साधन को स्थायी पूंजी बनाने का कारण केवल कमोबेश धीमे या तेज प्रत्यावर्तन ही नहीं, वरन उत्पाद में अपना मूल्य पहुंचाने का उसका निश्चित ढंग भी होता है।

[29a] Observations on the Circumstances which Influence the Condition of the Labouring Classes of Society, London, 1817. प्रसंग से संबद्ध एक अंश खंड १, पृष्ठ ६५५, पादटिप्पणी ७६ [हिंदी संस्करण, खंड १, पृष्ठ ७०७, टिप्पणी १] में उद्धृत किया गया है।

* कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', अंग्रेजी संस्करण, खंड ३, अध्याय १-३। – सं०

[30] *Principles, etc.*, p. 26 and 27.

ऐडम स्मिथ के पैदा किये उलझाव से ये नतीजे निकले हैं:

१. स्थायी और प्रचल पूंजी के भेद को उत्पादक पूंजी और माल पूंजी के भेद से उलझा दिया जाता है। उदाहरण के लिए, मशीन जब बाज़ार में माल की हैसियत से होती है, तब उसे प्रचल पूंजी और जब उत्पादन प्रक्रिया में समाविष्ट कर ली जाती है, तब स्थायी पूंजी माना जाता है। इसके अलावा यह तय करना क़तई नामुमकिन होता है कि एक तरह की पूंजी को दूसरी तरह की पूंजी के मुक़ाबले क्यों ज्यादा स्थायी अथवा ज्यादा प्रचल माना जाना चाहिए।

२. समस्त प्रचल पूंजी को मजदूरी में लगाई गई या लगाई जानेवाली पूंजी के तद्‌रूप माना जाता है। जॉन स्टुअर्ट मिल* तथा अन्य लोगों की कृतियों में ऐसा ही है।

३. पहले बर्टन, रिकार्डो, तथा अन्य लोगों ने परिवर्ती और स्थिर पूंजी के जिस भेद को ग़लती से प्रचल और स्थायी पूंजी का भेद समझ लिया था, उसे पूरी तरह से अंतोक्त भेद में ही परिणत कर दिया जाता है, उदाहरण के लिए, रैमजे की कृति में, जहां कच्चा माल, आदि सभी उत्पादन साधन तथा श्रम उपकरण भी स्थायी पूंजी हैं और केवल मजदूरी पर खर्च की जानेवाली पूंजी प्रचल है।** लेकिन चूंकि भेद को इस रूप में परिणत किया जाता है, इसलिए स्थिर और परिवर्ती पूंजी का वास्तविक भेद नहीं समझा जाता है।

४. बाद के ब्रिटिश, ख़ास तौर से स्कॉट अर्थशास्त्री, मैकलेउड***, पैटरसन****, आदि जो सभी चीज़ों को क्लर्कों जैसी वर्णनातीत संकीर्ण दृष्टि से देखते हैं, स्थायी और प्रचल पूंजी के भेद को मांग पर देय और मांग पर अदेय धन में बदल देते हैं।

---

* J. St. Mill, *Essays on Some Unsettled Questions of Political Economy*, London, 1844, p. 164.– सं०

** G. Ramsay, *An Essay on the Distribution of Wealth*, Edinburgh, 1833, pp. 21-24. – सं०

*** H. D. MacLeod. *The Elements of Political Economy*, London, 1858, pp. 76-80. – सं०

**** R. H. Patterson, *The Science of Finance. A Practical Treatise*, Edinburgh and London, 1868, pp. 129-144. – सं०

अध्याय १२

कार्य अवधि

व्यवसाय की दो शाखाएं ले लें, जिनमें कार्य दिवस की लंबाई बराबर हो, यथा दस-दस घंटे, जिनमें से एक सूत कातने की मिल है, दूसरा इंजन बनाने का कारख़ाना। इनमें एक शाखा में तैयार उत्पाद – रूई के सूत – की एक निश्चित मात्रा प्रति दिन अथवा प्रति सप्ताह निकलती है; दूसरे में तैयार उत्पाद, इंजन का निर्माण करने के लिए श्रम प्रक्रिया को शायद तीन महीने दोहराना होता है। एक प्रसंग में उत्पाद विछिन्न प्रकृति का है, और प्रति दिन अथवा प्रति सप्ताह वही श्रम फिर शुरू होता है। दूसरे प्रसंग में श्रम प्रक्रिया निरंतर है और उसकी परिधि में दैनिक श्रम प्रक्रियाओं की काफ़ी बड़ी संख्या होती है, जो अपने अंतर्संबंध से, अपने कार्य के नैरंतर्य से तैयार उत्पाद कुछ लंबी ही अवधि के बाद प्रस्तुत कर पाती है। यद्यपि दैनिक श्रम प्रक्रिया की अवधि यहां भी उतनी ही है, फिर भी उत्पादक क्रिया की अवधि में, अर्थात तैयार उत्पाद प्रस्तुत करने, माल की हैसियत से उसे बाज़ार में लाने, अतः उसे उत्पादक पूंजी से माल पूंजी में परिवर्तित करने के लिए आवश्यक पुनरावृत्त श्रम प्रक्रियाओं की अवधि में बहुत स्पष्ट भेद होता है। स्थायी और प्रचल पूंजी के भेद का इससे कोई संबंध नहीं है। उत्पादन की दोनों शाखाओं में स्थायी और प्रचल पूंजी बिल्कुल एक ही मात्रा में लगाई जाये, तब भी उल्लिखित भेद विद्यमान रहेगा।

उत्पादक क्रिया की अवधि में ये भेद केवल उत्पादन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में ही नहीं, वरन इसके अनुसार कि उत्पाद की कितनी मात्रा तैयार की जानी है, एक ही उत्पादन में भी देखे जा सकते हैं। सामान्य रिहायशी मकान बड़े कारख़ाने की अपेक्षा थोड़े समय में बन जाता है, अतः उसके लिए अपेक्षाकृत कम निरंतर श्रम प्रक्रियाओं की आवश्यकता होती है। इंजन बनाने में तीन ही महीने लगते हैं, तो बख़्तरबंद जंगी जहाज़ बनाने में साल भर या इससे ज्यादा लग जाता है। अनाज पैदा करने के लिए लगभग एक साल और बड़े ढोर पालने-पोसने में कई साल लग जाते हैं, तो वन उगाने में बारह से सौ साल तक लग जाते हैं। देहाती सड़क बनाने के लिए कुछ महीने काफ़ी होते हैं, तो रेलमार्ग बनाना वर्षों का काम है। मामूली दरी बनाने में क़रीब एक हफ़्ता ही लगता है, लेकिन गोबेलिन* बनाने में सालों लग जाते हैं, इत्यादि। इसलिए उत्पादक क्रिया संपन्न करने में जो समय लगता है, उसकी विविधता अनंत होती है।

---

* विख्यात और मूल्यवान फ़्रांसीसी दीवारदरियां। – सं०

यह स्पष्ट है कि यदि निवेशित पूंजियां बराबर हों, तो उत्पादक क्रिया की अवधि में अंतर से आवर्त वेग में भी अंतर पैदा हो जायेगा, दूसरे शब्दों में जितने समय के लिए कोई पूंजी पेशगी लगाई जाती है, उसमें अंतर उत्पन्न हो जायेगा। मान लीजिये एक कताई मिल और एक इंजन कारख़ाने में समान राशि की पूंजी लगी है, उनकी स्थिर पूंजी से उनकी परिवर्ती पूंजी का और इसी तरह पूंजियों के स्थायी तथा प्रचल भागों का अनुपात भी एक सा है, और अंततः दोनों का कार्य दिवस भी बराबर है और उसका आवश्यक तथा बेशी श्रम के बीच विभाजन भी एक सा है। इसके अलावा परिचलन प्रक्रिया से उत्पन्न होनेवाली और प्रस्तुत प्रसंग को किसी प्रकार प्रभावित न करनेवाली अन्य सभी परिस्थितियों को निराकृत करने के लिए हम यह भी मान लेते हैं कि सूत और इंजन आर्डर मिलने पर बनाये जाते हैं, और तैयार उत्पाद की सुपुर्दगी पर उनका भुगतान हो जायेगा। हफ़्ता ख़त्म होने पर तैयार सूत की सुपुर्दगी पर कताई मिल मालिक को प्रचल पूंजी पर अपनी लागत की पुनः प्राप्ति हो जाती है (यहां बेशी मूल्य विवेचन में नहीं रखा जा रहा है), और इसी तरह सूत के मूल्य में समाविष्ट स्थिर पूंजी की छीजन की भी पुनःप्राप्ति हो जाती है। इसलिए वह उसी पूंजी से उसी परिपथ को नये सिरे से शुरू कर सकता है। उसकी पूंजी ने अपना आवर्त पूरा कर लिया है। दूसरी तरफ़ इंजन निर्माता लगातार तीन महीने तक हर हफ़्ते मजदूरी और कच्चे माल पर नई-नई पूंजी लगाता रहेगा, और तीन महीने बीतने पर ही, इंजन की सुपुर्दगी पर ही प्रचल पूंजी, जो इस बीच एक ही पण्य वस्तु के निर्माण के लिए एक ही उत्पादक क्रिया में क्रमशः लगाई गई थी, फिर एक बार ऐसे रूप में आ पाती है कि अपने परिपथ को नये सिरे से शुरू कर सके। इन तीन महीनों में उसकी मशीनों की छीजन का प्रतिस्थापन भी अब जाकर ही संभव होता है। एक प्रसंग में ख़र्च हफ़्तावार है, दूसरे में ख़र्च साप्ताहिक व्यय का बारह गुना है। अन्य सभी परिस्थितियां एक जैसी मान लें, तो एक के पास जितनी प्रचल पूंजी होनी चाहिए, दूसरे के पास उसकी बारह गुनी होनी चाहिए।

लेकिन यहां यह महत्वहीन है कि प्रति सप्ताह पेशगी दी पूंजियां बराबर हैं। पेशगी पूंजी की राशि जो भी हो, एक प्रसंग में वह केवल हफ़्ते भर के लिए पेशगी दी जाती है, और दूसरे प्रसंग में बारह हफ़्ते के लिए और इसके पहले कि इस पूंजी का नई क्रिया के लिए उपयोग किया जा सके, इसके पहले कि उसके साथ वही क्रिया दोहराई जा सके अथवा कोई भिन्न क्रिया शुरू की जा सके, यह आवश्यक है कि ये दोनों काल यथाक्रम बीत जायें।

आवर्त वेग में अथवा वैयक्तिक पूंजी को जितने समय के लिए पेशगी देना होगा, जिससे कि उसी पूंजी मूल्य को नई श्रम अथवा स्वप्रसार प्रक्रिया में नियोजित किया जा सके, उसकी दीर्घता में यह भेद निम्नलिखित परिस्थितियों से उत्पन्न होता है:

मान लिया कि इंजन या कोई और मशीन बनाने में १०० कार्य दिवस लगते हैं। जहां तक सूत तैयार करने या इंजन बनाने में लगे मजदूरों का संबंध है, दोनों ही प्रसंगों में १०० कार्य दिवस एक असतत (विछिन्न) परिमाण हैं, जिनमें हमारी कल्पना के अनुसार १०० क्रमिक, दस घंटे की अलग-अलग श्रम प्रक्रियाएं सन्निहित हैं। लेकिन जहां उत्पाद – मशीन – का संबंध है, १०० कार्य दिवस एक सतत परिमाण हैं, १,००० कार्य घंटे का एक ही कार्य दिवस, उत्पादन की एक ही संबद्ध क्रिया हैं। मैं ऐसे कार्य दिवस को, जिसमें संबद्ध कार्य दिवसों का न्यूनाधिक बहुसंख्यक अनुक्रम होता है, **कार्य अवधि** कहता हूं। जब हम कार्य दिवस की बात करते हैं, तब हमारा आशय उस कार्य काल से होता है, जिसके दौरान मजदूर को रोजाना अपनी श्रम शक्ति ख़र्च करनी

होती है, दिन प्रति दिन काम करना होता है। लेकिन जब हम कार्य अवधि की बात करते हैं, तब हमारा आशय तैयार उत्पाद के निर्माण हेतु उद्योग की किसी शाखा में आवश्यक कार्य दिवसों की एक निश्चित संख्या से होता है। वर्तमान प्रसंग में प्रत्येक कार्य दिवस का उत्पाद केवल आंशिक है, जिन पर दिन प्रति दिन और काम किया जाता है और जो न्यूनाधिक कार्य काल के बीत जाने पर ही अपना तैयार रूप प्राप्त करता है, तैयार उपयोग मूल्य बनता है।

अतः सामाजिक उत्पादन की प्रक्रिया में जो अड़चनें पड़ती हैं, जो व्यवधान आते हैं, यथा संकटों के कारण, उनका विछिन्न प्रकृति के श्रम उत्पादों पर और ऐसे उत्पादों पर, जिनके उत्पादन के लिए एक दीर्घ, संबद्ध अवधि दरकार होती है, प्रभाव अत्यंत भिन्न-भिन्न होता है। एक प्रसंग में इतना ही होता है कि आज सूत, कोयले, आदि की जो मात्रा पैदा की गई है, सूत, कोयले, आदि की उसी मात्रा का कल नया उत्पादन न होगा। किंतु जहाज़ों, मकानों, रेलमार्गों, आदि के प्रसंग में ऐसा नहीं होता। यहां जो व्यवधान पड़ता है, वह केवल एक दिन के श्रम में नहीं, वरन उत्पादन की समस्त संबद्ध क्रिया में पड़ता है। यदि काम चालू न रखा जाये, तो उसके उत्पादन में श्रम और उत्पादन के जो साधन ख़र्च हो चुके हैं, वे बेकार जायेंगे। अगर उसे फिर से भी शुरू किया जाये, तो भी इस बीच अनिवार्यतः ह्रास उत्पन्न हो चुका होगा।

समूची कार्य अवधि पर स्थायी पूंजी का प्रति दिन उत्पाद को अंतरित होनेवाला मूल्यांश मानो तब तक तह पर तह इकट्ठा होता रहता है कि जब तक उत्पाद तैयार नहीं हो जाता। और यहां साथ ही स्थायी और प्रचल पूंजी का भेद अपने व्यावहारिक महत्व के साथ प्रकट होता है। स्थायी पूंजी उत्पादन प्रक्रिया में अपेक्षाकृत दीर्घ अवधि के लिए लगाई जाती है, उसका संभवतः अनेक वर्षों की अवधि बीत जाने से पहले नवीकरण करना आवश्यक न होगा। वाष्प इंजन अपना मूल्य किसी सूत को, जो विछिन्न श्रम प्रक्रिया का उत्पाद है, प्रति दिन खंडशः अंतरित करता है, अथवा किसी रेल इंजन को, जो निरंतर उत्पादन क्रिया का उत्पाद है, तीन महीने तक करता है, इसका वाष्प इंजनों को ख़रीदने के लिए आवश्यक पूंजी व्यय से कोई संबंध नहीं है। एक प्रसंग में उसका मूल्य थोड़ा-थोड़ा करके, यथा प्रति सप्ताह, तो दूसरे प्रसंग में, वह अधिक बड़ी मात्रा में, यथा हर तीसरे महीने, वापस प्रवाहित होता है। किंतु हो सकता है कि दोनों ही स्थितियों में वाष्प इंजन का नवीकरण बीस साल के बाद जाकर ही हो। उत्पाद की बिक्री द्वारा वाष्प इंजन के मूल्य के खंडशः प्रत्यावर्तन की प्रत्येक पृथक कालावधि जब तक स्वयं इंजन के जीवन काल से छोटी होती है, तब तक वह इंजन अनेक कार्य अवधियों तक उत्पादन प्रक्रिया में कार्यरत रहता है।

पेशगी पूंजी के प्रचल घटकों की स्थिति इससे भिन्न है। एक निश्चित सप्ताह के लिए ख़रीदी गयी श्रम शक्ति उसी हफ़्ते भर में ख़र्च कर दी जाती है और उत्पाद में मूर्त हो जाती है। हफ़्ते के अंत में उसका भुगतान करना होता है। श्रम शक्ति में पूंजी के इस निवेश की तीन महीने तक हर हफ़्ते आवृत्ति की जाती है, फिर भी पूंजी के इस अंश के एक हफ़्ते में ख़र्च हो जाने से पूंजीपति इस लायक़ नहीं रहता कि अगले हफ़्ते श्रम की ख़रीद का भुगतान कर सके। हर हफ़्ते श्रम शक्ति के भुगतान के लिए अतिरिक्त पूंजी ख़र्च करनी होती है, और उधार का सवाल दरकिनार पूंजीपति को इस लायक़ होना चाहिए कि तीन महीने तक मज़दूरी का ख़र्च उठाता रहे, भले ही वह उसे हफ़्तेवार मात्राओं में ही दे। यही बात

प्रचल पूंजी के दूसरे भाग, कच्चे माल और सहायक सामग्री के साथ भी है। उत्पाद पर श्रम की एक के बाद दूसरी तह जमती जाती है। उत्पादन प्रक्रिया में न सिर्फ़ ख़र्च की गई श्रम शक्ति का मूल्य, वरन बेशी मूल्य भी उत्पाद को निरंतर अंतरित होता है। किंतु यह उत्पाद अधूरा है, उसे अभी तैयार माल का रूप नहीं मिला है, अतः अभी वह परिचलन नहीं कर सकता। तह दर तह कच्चे माल और सहायक सामग्री से उत्पाद को अंतरित होनेवाले पूंजी मूल्य पर भी यही बात लागू होती है।

उत्पाद की विशिष्ट प्रकृति द्वारा अथवा उसके निर्माण से प्राप्त किये जानेवाले लाभदायी परिणाम द्वारा निर्धारित कार्य अवधि की दीर्घता के अनुसार प्रचल पूंजी (मज़दूरी, कच्चे माल और सहायक सामग्री) के निरंतर अतिरिक्त निवेश की आवश्यकता होती है, जिसका कोई भाग परिचलन करने और इसलिए उसी क्रिया के नवीकरण का संवर्धन करने में समर्थ रूप में नहीं होता है। इसके विपरीत प्रत्येक भाग जायमान उत्पाद के घटक के रूप में उत्पादन क्षेत्र में लगातार जकड़ा, उत्पादक पूंजी के रूप में बंधा पड़ा रहता है। लेकिन आवर्त काल उत्पादन काल तथा पूंजी के परिचलन काल के योग के बराबर होता है। अतः उत्पादन काल का प्रवर्धन आवर्त वेग को उसी तरह घटाता है जिस तरह परिचलन काल का प्रवर्धन। किंतु प्रस्तुत प्रसंग में निम्नलिखित दो बातों को ध्यान में रखना चाहिए:

पहली: उत्पादन क्षेत्र में देर तक बने रहना। उदाहरण के लिए, श्रम, कच्चे माल, वग़ैरह के लिए पहले हफ़्ते पेशगी दी गयी पूंजी तथा स्थायी पूंजी द्वारा उत्पाद को अंतरित मूल्यांश भी तीन महीने की समूची अवधि तक उत्पादन क्षेत्र में जकड़े रहते हैं और जायमान, अभी तक अधूरे उत्पाद में ही समाविष्ट होने के कारण वे माल की हैसियत से परिचलन में नहीं पहुंच सकते।

दूसरी: चूंकि उत्पादक क्रिया संपन्न करने के लिए आवश्यक कार्य अवधि तीन महीने चलती है, और यथार्थ में वह एक संबद्ध श्रम प्रक्रिया ही होती है, इसलिए पूर्वगत राशि में हफ़्ता दर हफ़्ता लगातार प्रचल पूंजी की नई मात्रा जोड़नी होती है। अतः कार्य अवधि की दीर्घता के अनुसार सिलसिलेवार पेशगी दी जानेवाली अतिरिक्त पूंजी का कुल योग भी बढ़ता जाता है।

हमने माना है कि कताई और मशीन निर्माण में समान आकार की पूंजियां लगाई गई हैं, इन पूंजियों में स्थिर और परिवर्ती पूंजी के, स्थायी और प्रचल पूंजी के अनुपात समान हैं, कार्य दिवसों की लंबाई एक सी है, – संक्षेप में यह कि कार्य अवधि की दीर्घता को छोड़कर और सभी परिस्थितियां समान हैं। पहले हफ़्ते में दोनों के लिए ख़र्च एक जैसा होता है, किंतु कताई मिलवाले का उत्पाद बेचा जा सकता है, और बिक्री की प्राप्ति का नई श्रम शक्ति, नया कच्चा माल, वग़ैरह ख़रीदने में उपयोग किया जा सकता है; संक्षेप में उत्पादन उसी पैमाने पर फिर चालू किया जा सकता है। दूसरी ओर मशीन निर्माता पहले हफ़्ते में ख़र्च की प्रचल पूंजी को तीन महीने बीतने के पहले, जब उसका उत्पाद तैयार होगा, धन में परिवर्तित नहीं कर सकता और उसकी सहायता से काम को फिर से शुरू नहीं कर सकता। इसलिए पहले तो निवेशित पूंजी के समान मात्राओं में प्रत्यावर्तन में ही फ़र्क़ है। लेकिन दूसरी बात यह है कि तीन महीने के दौरान कताई और मशीन निर्माण दोनों में ही उत्पादक पूंजी की समान राशियां काम में लाई जाती हैं, फिर भी सूत निर्माता के मामले में पूंजी परिव्यय का परिमाण मशीन निर्माता से नितांत भिन्न होता है। कारण यह कि एक जगह उसी पूंजी

का नवीकरण शीघ्रतापूर्वक होता है और वही क्रिया दोहराई जा सकती है, जब कि दूसरी जगह पूंजी का नवीकरण अपेक्षाकृत धीमा होता है, जिससे नवीकरण के समय तक पूंजी की नई मात्राएं पुरानी मात्रा में निरंतर जोड़ते जाना पड़ता है। फलत: पूंजी के निश्चित भागों के नवीकरण काल की दीर्घता में ही अथवा पूंजी के पेशगी दिये जाने के समय की दीर्घता में ही नहीं, वरन श्रम प्रक्रिया की अवधि के अनुसार पेशगी दी जानेवाली पूंजी की मात्रा में भी अंतर होता है (यद्यपि प्रति दिन या प्रति हफ़्ते काम में लाई जानेवाली पूंजियां बराबर हैं)। यह बात इसलिए ध्यान देने योग्य है कि जैसा कि हम अगले अध्याय में विवेचित मामलों में देखेंगे, पेशगी की अवधि बढ़ सकती है, किंतु इससे यह ज़रूरी नहीं हो जायेगा कि पूंजी की पेशगी दी जानेवाली राशि में भी तदनुसार वृद्धि की जाये। पूंजी को अधिक समय के लिए पेशगी देना होता है और पूंजी की और भी बड़ी राशि उत्पादक पूंजी के रूप में बंध जाती है।

पूंजीवादी उत्पादन की कम विकसित मंज़िलों में सड़कों, नहरों के निर्माण, आदि जैसे लंबी कार्य अवधि और इसलिए पूंजी के बड़े पैमाने पर दीर्घकालिक निवेश की अपेक्षा करनेवाले कार्यों को, ख़ास तौर से जब वे बड़े पैमाने पर ही किये जा सकते हैं, या तो पूंजीवादी आधार पर किया ही नहीं जाता, बल्कि सामुदायिक या राजकीय ख़र्च से किया जाता है (प्राचीन काल में जहां तक श्रम शक्ति का संबंध था, आम तौर पर बेगार से ही), या फिर जिन चीज़ों के उत्पादन के लिए लंबी कार्य अवधि ज़रूरी होती है, स्वयं पूंजीपति के निजी साधनों के उपयोग से उनका अल्पतम भाग ही बनाया जाता है। मिसाल के लिए, मकान बनाने में, जिस ख़ास व्यक्ति के लिए वह बनाया जाता है, वह ठेकेदार को कई आंशिक पेशगियां देता जाता है। इसलिए वह वास्तव में मकान के लिए खंडशः उत्पादक प्रक्रिया जिस अनुपात में बढ़ती जाती है, उसी अनुपात में भुगतान करता है। किंतु उन्नत पूंजीवादी युग में, जिसमें एक ओर निजी तौर पर कुछ व्यक्तियों के हाथ में विशाल पूंजियां संकेंद्रित हो गयी हैं, दूसरी ओर अलग-अलग पूंजीपति के साथ-साथ सहचारी पूंजीपति (संयुक्त पूंजी कंपनियां) प्रकट हो गया है और साथ ही उधार व्यवस्था विकसित की जा चुकी है, पूंजीवादी निर्माण ठेकेदार आपवादिक मामलों में ही अलग-अलग व्यक्तियों के आर्डरों पर निर्माण करता है। आजकल उसका व्यवसाय है बाज़ार के लिए इमारतों की पूरी-पूरी क़तारों और शहरों के पूरे महल्लों को बनाना, ठीक वैसे ही, जैसे कि ठेकेदार की हैसियत से रेलमार्गों का निर्माण करना अलग-अलग पूंजीपतियों का व्यवसाय है।

पूंजीवादी उत्पादन ने लंदन के भवन निर्माण कार्य में कैसा आमूल परिवर्तन कर दिया है, यह १८५७ में बैंकिंग समिति के सामने एक भवन निर्माता के बयान से पता चलता है। उसने बताया कि जब वह जवान था, तब आम तौर से मकान आर्डर पर बनाये जाते थे और ठेकेदार को निर्माण की अवस्थाओं के पूरा होने के साथ-साथ क़िस्तों में पैसा मिलता जाता था। सट्टेबाज़ी के आधार पर निर्माण कार्य बहुत कम होता था। ठेकेदार ऐसे कामों के लिए मुख्यत: अपने आदमियों को बराबर रोज़गार से लगाये रखने और इस तरह साथ रखने के लिए ही तैयार होते थे। पिछले चालीस साल में यह सब बदल गया है। अब आर्डर पर बहुत कम ही बनाया जाता है। जिसे नया मकान चाहिए, वह सट्टे के आधार पर बने हुए मकानों में से या जो अभी बन ही रहे हैं, उनमें से छांट लेता है। निर्माता अब अपने ग्राहकों के लिए नहीं बाज़ार के लिए बनाता है। अन्य सभी औद्योगिक पूंजीपतियों की तरह वह भी बाज़ार में तैयार माल ले जाने के लिए बाध्य है। जहां पहले कोई निर्माता एकसाथ मुश्किल से तीन-चार मकान

ही सट्टेबाज़ी से बनाता था, अब ज़रूरी है कि वह ज़मीन का बहुत बड़ा प्लाट ख़रीदे (जिसका महाद्वीपीय भाषा में मतलब है कि साधारणतः निन्यानवे वर्षों के लिए उसे भाड़े पर ले), उस पर १००-२०० मकान बनाये और इस तरह ऐसा कारोबार शुरू करे, जो उसके साधनों की सीमा के बीस से पचास गुना तक बाहर होगा। पूंजी रेहन के ज़रिये इकट्ठा की जाती है और इमारतें जैसे-जैसे बनती जाती हैं, वैसे ख़र्च के लिए ठेकेदार के पास पैसा पहुंचता जाता है। अब अगर कोई संकट आ जाये और पेशगी क़िस्तों की अदायगी में बाधा पड़ जाये, तो आम तौर से सारा कारोबार चौपट हो जाता है। बहुत हुआ, तो अच्छे दिन आने तक मकान अध-बने खड़े रहते हैं; बहुत बुरा हुआ, तो आधी लागत पर नीलाम कर दिये जाते हैं। आज सट्टेबाज़ी पर बनाये बिना, और वह भी बड़े पैमाने पर, कोई ठेकेदार अपना धंधा नहीं चला सकता। मात्र निर्माण कार्य से होनेवाला मुनाफ़ा बहुत ही कम है। मुख्य लाभ उसे किराया ज़मीन बढ़ाने से, निर्माणस्थली के सुविचारित चयन और कुशल उपयोग से हासिल होता है। मकानों की मांग का सट्टेबाज़ी से पूर्वानुमान करने के इस तरीक़े से ही लगभग सारे के सारे बेलग्रेविया तथा टाईबर्निया और लंदन के आस-पास अनगिनत हज़ारों बंगले बनाये गये हैं (Report of the Select Committee on Bank Acts का संक्षेप, भाग १, १८५७, Evidence, प्रश्न ५४१३-५४१८, ५४३५-५४३६)।

लंबी कार्य अवधि और बड़े पैमाने पर क्रियाओं की अपेक्षा करनेवाले उद्यमों का चलाना पूरी तरह पूंजीवादी उत्पादन के दायरे में तब तक नहीं आता कि जब तक पूंजी का संकेंद्रण बहुत आगे न बढ़ चुका हो और, दूसरी ओर उधार व्यवस्था का विकास पूंजीपति के लिए अपनी पूंजी के बदले दूसरों की पूंजी को पेशगी लगाने और इस तरह उसे जोखिम में डालने का सुविधाजनक विकल्प पैदा नहीं कर देता। कहना न होगा कि उत्पादन के लिए पेशगी दी जानेवाली पूंजी उसकी हो जो उसका उपयोग कर रहा है और चाहे न हो, इसका आवर्त वेग या काल पर कोई भी असर नहीं पड़ता।

सहकार्य, श्रम विभाजन, मशीनों का उपयोग, आदि जैसी परिस्थितियां अलग-अलग कार्य दिवस के उत्पाद को बढ़ाती हैं और साथ ही उत्पादन की संबद्ध क्रियाओं की कार्य अवधि को घटाती भी हैं। इस प्रकार मशीन मकान, पुल, वग़ैरह बनाने के समय को घटाती हैं; पके हुए अनाज को तैयार उपज में बदलने के लिए आवश्यक कार्य अवधि को कटाई और गाहन मशीनें कम करती हैं। जहाज़ निर्माण में तरक़्क़ी के फलस्वरूप काम की रफ़्तार में तेज़ी ने जहाज़रानी में निवेशित पूंजी के आवर्त काल को कम कर दिया है। लेकिन कार्य अवधि को और इस तरह प्रचल पूंजी के पेशगी दिये जाने के समय को घटानेवाली प्रगति के साथ-साथ आम तौर पर स्थायी पूंजी का व्यय भी बढ़ता जाता है। दूसरी तरफ़ उत्पादन की कुछ शाखाओं में सहकार्य का प्रसार होने से ही कार्य अवधि घट सकती है। मज़दूरों की विराट वाहिनियों को रेलमार्ग बनाने में लगाकर और इस तरह अनेक स्थलों पर एकसाथ काम को हाथ में लेकर उसे जल्दी पूरा किया जा सकता है। इस मामले में पेशगी पूंजी में वृद्धि से आवर्त काल घट जाता है। पूंजीपति के मातहत अधिक उत्पादन साधन और अधिक श्रम शक्ति एकजुट करना ज़रूरी होगा।

इस तरह कार्य अवधि के घटने का संबंध अधिकतर इस कम किये समय के लिए पेशगी दी पूंजी की वृद्धि से होता है। पेशगी की मीयाद जितना ही कम होती है, पेशगी पूंजी राशि उतना ही ज्यादा होती है। इसलिए यहां इस बात को याद करना ज़रूरी है कि सामाजिक पूंजी

की विद्यमान राशि चाहे जो हो, मुख्य बात वैयक्तिक पूंजीपतियों के हाथों में उत्पादन तथा निर्वाह साधनों अथवा उनके विनियोग के फैलाव या संकेंद्रण की मात्रा, दूसरे शब्दों में पूंजियों के पहले ही हो चुके संकेंद्रण की मात्रा है। चूंकि उधार पूंजी के एक हाथ में संकेंद्रण को प्रेरित करता, बढ़ाता और तेज़ करता है, इसलिए वह कार्य अवधि और इस प्रकार आवर्त काल को भी घटाने में योग देता है।

उत्पादन की जिन शाखाओं में निश्चित प्राकृतिक परिस्थितियां कार्य अवधि को निर्धारित करती हैं, फिर चाहे वह सतत हो या असतत, उनमें उपर्युक्त साधनों द्वारा किसी प्रकार की घटती नहीं हो सकती। डब्ल्यू० वाल्टर गुड अपनी पुस्तक *Political, Agricultural and Commercial Fallacies* (लंदन, १८६६, पृष्ठ ३२५) में कहते हैं: "जहां तक तेज़ प्रतिफलों का सवाल है, यह परिभाषा अनाज की फ़सलों पर लागू नहीं की जा सकती, क्योंकि साल में केवल एक ही प्रत्यावर्तन हो सकता है। पशुधन के प्रसंग में हम इतना ही पूछेंगे कि २-३ साल की भेड़ और ४-५ साल के बैल के प्रतिफल को और तेज़ कैसे किया जा सकता है।"

जितना जल्दी हो सके नक़द धन पाने की ज़रूरत (उदाहरणतः कर, किराया ज़मीन, वग़ैरह जैसे दायित्वों को पूरा करने के लिए) इस मसले को इस तरह हल कर देती है, जैसे पशुओं के आर्थिक दृष्टि से सामान्य आयु पर पहुंचने के पहले ही उन्हें बेचकर या काटकर, जिससे कृषि को बहुत नुक़सान होता है। इससे आख़िर में गोश्त का भाव भी चढ़ जाता है। "जो लोग मुख्यतः गरमियों में मिडलैंड की काउंटियों के चरागाहों और जाड़ों में पूर्वी काउंटियों के बाड़ों के लिए पशुपालन करते रहे हैं... वे अनाज की क़ीमतों की अनिश्चितता और गिरावट से ऐसे पंगु हो गये हैं कि मक्खन और पनीर की बढ़ी हुई क़ीमतों का लाभ उठाते उन्हें प्रसन्नता होती है। मक्खन वे बाज़ार में चालू ख़र्च निपटाने के लिए हर हफ़्ते ले जाते हैं और पनीर का पैसा किसी बिचौलिये से ले लेते हैं, जो उसे ले जाने लायक़ होने पर ले लेता है, और बेशक लगभग अपनी मनचाही क़ीमत पर ही लेता है। इसलिए – मगर यह ध्यान में रखते हुए कि कृषि को भी राजनीतिक अर्थशास्त्र के नियम शासित करते हैं – जो बछड़े दुग्धोद्योगप्रधान काउंटियों से पाले-पोसे जाने के लिए दक्षिण आया करते थे, उन्हें अब कभी-कभी तो हफ़्ते या दस दिन की उम्र में ही अधिकतर बरमिंघम, मैंचेस्टर, लिवरपूल और दूसरे बड़े पड़ोसी शहरों के बूचड़ख़ानों में काट दिया जाता है। लेकिन अगर माल्ट पर महसूल न होता, तो न सिर्फ़ फ़ार्मर ज्यादा लाभ कमाते और इस तरह अपना पशुधन अधिक उम्र का और ज्यादा भारी हो जाने तक रखने में समर्थ हो गये होते, बल्कि जिन लोगों के पास गायें नहीं हैं, उनके लिए वह बछड़ों का पालन करने में दूध का काम दे देता और इस तरह आज देश पर जवान ढोरों का जो भयानक अभाव छाया हुआ है, उससे बहुत कुछ बचा जा सकता था। पशुपालन के सुझावों के जवाब में ये छोटे लोग अब कहते हैं; 'हम ख़ूब जानते हैं कि दूध पर पालना लाभकारी होगा, लेकिन इसके लिए हमें पहले अपनी थैली टटोलनी होगी और हम यह कर नहीं सकते, और फिर हमें प्रतिफल दुग्धव्यवसाय द्वारा तुरंत प्राप्त करने की जगह बहुत दिन इंतज़ार करना होगा'" (वही, पृष्ठ ११ और १२)।

आवर्त काल के बढ़ने से अगर छोटे अंग्रेज़ फ़ार्मरों के सामने ऐसे नतीजे आते हैं, तो यह समझना आसान है कि इससे यूरोप के छोटे फ़ार्मरों के यहां कैसी गड़बड़ी पैदा होगी।

स्थायी पूंजी द्वारा तह दर तह उत्पाद को अंतरित मूल्यांश इकट्ठा होता रहता है। कार्य अवधि जितनी लंबी होती है और इस प्रकार परिचलन योग्य माल तैयार करने की आवश्यक अवधि जितनी लंबी होती है, इस मूल्यांश की वापसी में उतनी ही देर लगती है। किंतु इस देर के कारण स्थायी पूंजी का नये सिरे से व्यय नहीं होता। उत्पादन प्रक्रिया में मशीन अपना काम करती रहती है, द्रव्य रूप में उसकी छीजन के प्रतिस्थापन का प्रत्यावर्तन चाहे जल्दी हो, चाहे धीरे-धीरे। प्रचल पूंजी की स्थिति इससे भिन्न है। न सिर्फ़ कार्य अवधि की दीर्घता के अनुपात में पूंजी अधिक समय तक बंधी रहती है, बल्कि मजदूरी, कच्चे माल और सहायक सामग्री के रूप में निरंतर नई पूंजी पेशगी देनी होती है। अतः विलम्बित प्रत्यावर्तन का प्रभाव प्रत्येक पर भिन्न-भिन्न होता है। प्रत्यावर्तन जल्दी हो चाहे धीरे, स्थायी पूंजी कार्यशील बनी रहती है। किंतु यदि प्रत्यावर्तन में विलंब हो, यदि प्रचल पूंजी अनबिके, अधूरे और अनबिकाऊ उत्पाद के रूप में बंधी रहे, यदि उसके वस्तुरूप में नवीकरण के लिए अतिरिक्त पूंजी तत्काल सुलभ न हो, तो प्रचल पूंजी अपना कार्य नहीं कर पाती।

"किसान तो भूखों मरता है, पर उसके मवेशी फूलते-फलते हैं। देश में बार-बार वर्षा हुई थी और चारे की इफ़रात थी। हिंदू किसान के पास चाहे मोटा-ताज़ा बैल हो, लेकिन वह ख़ुद भूखों मर जायेगा। अंधविश्वासों की व्यवस्था, जो व्यक्ति के लिए क्रूर प्रतीत होती है, वह समुदाय के लिए संरक्षणशील है; कमकर पशुओं का परिरक्षण कृषि की शक्ति को और भावी जीवन और संपदा के स्रोतों को सुरक्षित करता है। यह बात कहने में कटु और दुखद जान पड़ सकती है, पर हिंदुस्तान में एक आदमी की जगह दूसरा आदमी पा जाना आसान है, पर एक बैल की जगह दूसरा बैल पाना नहीं" (Return, East India. Madras and Orissa Famine. अंक ४, पृष्ठ ४४)। इससे मानव धर्मशास्त्र, अध्याय १०, § ६२ की इस उक्ति की तुलना कीजिये: "फल की आशा किये बिना गो-ब्राह्मण की रक्षा करता हुआ अंत्यज शरीर त्याग दे... तो इससे उसे मोक्ष लाभ होगा।"*

क़ुदरती तौर पर पंचवर्षीय पशु को पांच साल बीतने से पहले हाट में पहुंचाना असंभव है। लेकिन कुछ सीमाओं के भीतर जो संभव है, वह यह कि पशुपालन का तरीक़ा बदलकर पशुओं को कम समय में गंतव्य के लिए तैयार कर दिया जाये। बेकवेल ने ठीक यही किया था। पहले, १८५५ तक भी फ़्रांसीसी भेड़ों की तरह ही अंग्रेज़ी भेड़ें भी चार-पांच साल की होने तक कसाईख़ाने के लायक़ न होती थीं। बेकवेल पद्धति के अनुसार भेड़ को साल भर की उम्र में ही मोटा किया जा सकता है और हर हालत में दूसरा साल ख़त्म होने तक वह पूरी बाढ़ पर पहुंच जाती है। डिशले ग्रेंज के फ़ार्मर बेकवेल ने कुशल वरण द्वारा भेड़ के कंकाल को घटाते-घटाते बस उतना कर दिया है कि जितना उसके जीवन के लिए ज़रूरी है। उसकी भेड़ें न्यू लीस्टर भेड़ें कहलाती हैं। "...पशुपालक पहले जितनी देर में बाज़ार के लिए एक भेड़ तैयार करता था, उतनी देर में अब तीन भेज सकता है। अगर अब वे ऊंचाई में कम हैं, तो चौड़ी और गोल-मटोल ज़्यादा हैं, और जिन हिस्सों से सबसे ज़्यादा मांस होता है, वे ज़्यादा भरे हुए हैं। हड्डियां बस उतनी ही होती हैं कि जितनी उन्हें टिकाये रखने के लिए ज़रूरी होती हैं, और

---

* मार्क्स ने अपने उद्धरण *Manava Dharma Sastra, or the Institutes of Manu According to the Gloss of Kulluka, Comprising the Indian System of Duties, Religious and Civil,* third edition, Madras, 1863, p. 281 से दिये हैं। — सं०

उनका लगभग सारा वज़न मांस ही मांस होता है" (Lavergne, *The Rural Economy of England, etc.*, १८५५, पृष्ठ २०)।

कार्य अवधि को घटानेवाले तरीक़ों का उद्योग की विभिन्न शाखाओं में अत्यंत विविध उपयोग किया जा सकता है, और वे विविध कार्य अवधियों में समय के अंतर को ख़त्म नहीं कर देते। अपना उदाहरण फिर लें, तो इंजन बनाने के लिए आवश्यक कार्य अवधि को नये मशीनी औज़ारों के इस्तेमाल से क़तई कम किया जा सकता है। किंतु यदि इसी के साथ सूती कताई मिल से रोज़ाना या हफ़्तावार उत्पादित तैयार उत्पाद में उन्नत प्रक्रियाओं द्वारा और भी तीव्र वृद्धि कर दी जाती है, तो कताई की तुलना में मशीन निर्माण की कार्य अवधि फिर भी अपेक्षाकृत बढ़ जायेगी।

अध्याय १३

उत्पादन काल

कार्य काल सदा उत्पादन काल होता है, अर्थात यह वह समय होता है, जिसमें पूंजी उत्पादन क्षेत्र में दृढ़तापूर्वक जकड़ी रहती है। किंतु इसके विपरीत जितने समय पूंजी उत्पादन प्रक्रिया में लगी रहती है, वह सारा समय अनिवार्यतः कार्य काल नहीं होता।

यहां यह श्रम प्रक्रिया के उन व्यवधानों का प्रश्न नहीं है, जो स्वयं श्रम शक्ति की नैसर्गिक सीमाओं के कारण अनिवार्य हो जाते हैं, यद्यपि हम देख चुके हैं, किस सीमा तक मात्र यह परिस्थिति कि श्रम प्रक्रिया के दौरान विराम की अवधियों में कारख़ानों की इमारतों, मशीनों, आदि के रूप में स्थायी पूंजी निष्क्रिय पड़ी रहती है,* श्रम प्रक्रिया को अस्वाभाविक रूप से बढ़ाने और दिन-रात काम चलाने की एक प्रेरक बन जाती है। हम यहां उन व्यवधानों की चर्चा कर रहे हैं, जो श्रम प्रक्रिया की दीर्घता से स्वतंत्र होते हैं, जो उत्पाद की प्रकृति से ही और उसके निर्माण से उत्पन्न होते हैं, जिसके दौरान श्रम वस्तु, न्यूनाधिक काल के लिए प्राकृतिक प्रक्रियाओं के प्रभाव में आती है और उसे भौतिक, रासायनिक और शरीरक्रियात्मक परिवर्तनों से गुज़रना पड़ता है, जिनके दौरान श्रम प्रक्रिया अंशतः अथवा पूर्णतः स्थगित रहती है।

उदाहरण के लिए, अंगूर को पेरे जाने के बाद कुछ समय किण्वित करना होता है और फिर कुछ समय तक शांत रहने देना होता है, जिससे कि वह एक निश्चित कोटि की श्रेष्ठता को प्राप्त हो सके। उद्योग की बहुत सी शाखाओं में उत्पाद को शुष्कन प्रक्रिया से गुज़रना होता है, जैसे मिट्टी के बरतन बनाने में अथवा उसके रासायनिक गुण बदलने के लिए कुछ परिस्थितियों के अधीन किया जाता है, जैसे रंग उड़ाने – विरंजन – में। शीतकालीन अनाज को तैयार होने में लगभग नौ महीने लगते हैं। बुआई और कटाई के बीच श्रम प्रक्रिया प्रायः पूर्णतः स्थगित रहती है। वनरोपण में बोने और अन्य प्रासंगिक प्रारंभिक काम समाप्त हो जाने के बाद बीज को तैयार उत्पाद में रूपांतरित होने में लगभग सौ वर्ष लगते हैं, और इस सारे वक़्त में उसे श्रम क्रिया की अपेक्षाकृत बहुत ही कम आवश्यकता होती है।

इन सभी उदाहरणों में अतिरिक्त श्रम को उत्पादन काल के काफ़ी बड़े हिस्से में यदा-कदा ही काम में लगाया जाता है। पिछले अध्याय में वर्णित वह परिस्थिति, जिसमें उत्पादन प्रक्रिया में पहले से बंधी हुई पूंजी को अतिरिक्त पूंजी और श्रम की पूर्ति करनी होती है, यहां छोटे-बड़े अंतरालों के बाद ही पायी जाती है।

---

* कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', हिन्दी संस्करण, खंड १, पृष्ठ २९२-३०१। – सं०

अतः इन सभी उदाहरणों में पेशगी पूंजी के उत्पादन काल में दो अवधियां होती हैं: पहली अवधि, जिसमें पूंजी श्रम प्रक्रिया में लगी होती है और दूसरी, जिसमें उसके अस्तित्व का रूप – अधूरे उत्पाद का रूप – प्राकृतिक प्रक्रियाओं के वशाधीन छोड़ दिया जाता है और उस समय वह श्रम प्रक्रिया में नहीं होता। और न इससे ही कुछ भी फ़र्क़ पड़ता है कि ये दोनों कालावधियां जहां-तहां एक दूसरे को लांघ जायें या एक दूसरे में घुसें। इन मामलों में कार्य अवधि और उत्पादन अवधि संपाती नहीं होतीं। श्रम अवधि की अपेक्षा उत्पादन अवधि दीर्घतर होती है। किंतु उत्पादन अवधि के पूरा होने के पहले उत्पाद तैयार नहीं होता, अधूरा रहता है, अतः उत्पादक पूंजी से माल पूंजी में परिवर्तित होने के योग्य नहीं होता। फलतः उस आवर्त काल की दीर्घता उत्पादन काल की दीर्घता के अनुपात में बढ़ जाती है, जिसमें कार्य काल समाहित नहीं होता। चूंकि कार्य काल से अतिरिक्त उत्पादन काल को ऐसे निश्चित और सार्विक प्राकृतिक नियमों द्वारा निर्धारित नहीं किया जाता, जैसे अनाज के पकने या बांज के बढ़ने, वग़ैरह को निर्धारित करते हैं, इसलिए अकसर उत्पादन काल को कृत्रिम रूप से घटाकर आवर्त काल को कमोबेश घटाया जा सकता है। ऐसी कुछ मिसालें हैं: खुले में विरंजन के बदले रासायनिक विरंजन का और अधिक कार्यक्षम शुष्कन यंत्रों का चलन। अथवा चमड़ा पकाने में, जिसमें पहले पुराने तरीक़े से टैनिक अम्ल के खाल में प्रवेश करने में छः से अठारह महीने तक लग जाते थे, जब कि नये तरीक़े से हवा भरने के पंप के ज़रिये यह काम डेढ़-दो महीने में ही पूरा हो जाता है (जॉन कूरसेल-सेनेविल, *Traité théorique et pratique des entreprises industrielles, etc.*, पेरिस, १८५७, द्वितीय संस्करण)। एकमात्र प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा लगनेवाले उत्पादन काल को कृत्रिम रूप से कम करने की सबसे शानदार मिसाल लोहा बनाने के इतिहास से, ख़ास तौर से पिछले सौ साल में कच्चे लोहे के इस्पात में रूपांतरण के १७८० के आस-पास आविष्कृत आलोडन प्रक्रिया से लेकर आधुनिक बेसमर प्रक्रिया और उसके बाद प्रवर्तित नये तरीक़ों तक के इतिहास से मिलती है। उत्पादन काल में ज़बरदस्त कमी कर दी गई है, किंतु इसके अनुपात में स्थायी पूंजी निवेश में वृद्धि भी हुई है।

कार्य काल की उत्पादन काल से भिन्नता की एक ख़ास मिसाल अमरीका में जूतों के कल-बूतों (सांचों) के निर्माण में मिलती है। इस मामले में लकड़ी को कम से कम अठारह महीने तक रखे रखना पड़ता है, जिससे कि वह सूखकर सांचा बनाने लायक़ बन सके और बाद में ऐंठे नहीं, जिससे काफ़ी अनुत्पादक ख़र्च बढ़ जाता है। इस बीच लकड़ी और किसी श्रम प्रक्रिया से नहीं गुज़रती। अतः निवेशित पूंजी के आवर्त काल को सांचे बनाने का समय ही नहीं, वरन वह समय भी निर्धारित करता है, जिसके बीच वह सूखते काठ की शक्ल में अनुत्पादक पड़ी रहती है। वास्तविक श्रम प्रक्रिया में दाख़िल होने से पहले उसे अठारह महीने उत्पादन प्रक्रिया में बने रहना होता है। इस मिसाल से यह भी पता चलता है कि कुल प्रचल पूंजी के विभिन्न भागों के आवर्त काल ऐसी परिस्थितियों के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, जो परिचलन क्षेत्र में उत्पन्न नहीं होतीं, वरन जिनका उद्‌भव उत्पादन प्रक्रिया के कारण होता है।

उत्पादन काल और कार्य काल का अंतर कृषि में ख़ास तौर से स्पष्ट हो जाता है। हमारे मृदुल जलवायु में धरती वर्ष में एक बार अनाज पैदा करती है। स्वयं उत्पादन अवधि का घटना या बढ़ना (शीतकालीन अनाज के लिए यह औसतन नौ महीने होता है) अच्छी और बुरी ऋतुओं के हेरफेर पर निर्भर करता है और इस कारण उसके घटने-बढ़ने को पहले से वैसे

सटीकतापूर्वक नियंत्रित और निर्धारित नहीं किया जा सकता, जैसे वास्तविक उद्योग में किया जा सकता है। दूध, पनीर, आदि जैसे उपोत्पाद ही अपेक्षाकृत अल्प अवधि में निश्चित गति से पैदा किये और बेचे जा सकते हैं। इसके विपरीत कार्य काल संबंधी आंकड़े इस प्रकार होते हैं: "जलवायु तथा अन्य निर्धारक परिस्थितियों का उचित ध्यान रखते हुए जर्मनी के विभिन्न प्रदेशों में तीन मुख्य कार्य अवधियों में कार्य दिवसों की संख्या अनुमानतः यह होगी: मार्च के मध्य से अथवा शुरू अप्रैल से लेकर मई के मध्य तक वसंत की अवधि में कोई ५०-६० कार्य दिवस; शुरू जून से लेकर अगस्त के आखिर तक ग्रीष्म की अवधि में ६५-८० तक; शुरू सितंबर से लेकर अक्तूबर के आखिर तक अथवा नवंबर के मध्य या अंत तक शरद की अवधि में ५५-७५ तक। शीतकाल के लिए केवल उस समय किये जानेवाले प्रथागत कामों का ही उल्लेख करना होगा, जैसे खाद, लकड़ी, बाज़ार का सामान, घर बनाने का सामान, वग़ैरह ढोकर लाना" (फ़े० किर्कोफ़, *Handbuch der landwirtschaftlichen Betriebslehre*, ड्रेस्डेन, १८५२, पृष्ठ १६०)।

जलवायु जितना ही प्रतिकूल होगा, खेती में कार्य अवधि उतना ही अधिक संकुल होगी और इसलिए पूंजी और श्रम की व्यय करने का समय भी अधिक छोटा होगा। उदाहरण के लिए, रूस को ले लीजिये। उस देश के कुछ उत्तरी ज़िलों में साल भर में सिर्फ़ १३० से १५० दिन तक खेत में काम किया जा सकता है। कल्पना की जा सकती है कि जाड़े के छः या आठ महीनों में, जब कृषि कार्य ठप पड़ा रहता है, यदि रूस की यूरोपीय आबादी के साढ़े छः करोड़ में से पांच करोड़ लोग काम के बिना रहते, तो रूस को कितना नुक़सान सहना पड़ता। रूस के १०,५०० कारख़ानों में काम करनेवाले २,००,००० किसानों के अलावा हर जगह गांवों में स्थानीय घरेलू उद्योग विकसित हो गये हैं। ऐसे गांव हैं, जहां के सारे किसान पीढ़ी दर पीढ़ी बुनकर, चमड़ा कमानेवाले, मोची, तालासाज़, छुरीसाज़, वग़ैरह होते आये हैं। यह बात ख़ास तौर से मास्को, व्लादीमिर, कलूगा, कोस्त्रोमा तथा पीटर्सबर्ग की गुबेर्नियाओं में देखी जाती है। प्रसंगवश, इस घरेलू उद्योग को अधिकाधिक पूंजीवादी उत्पादन के मातहत लाया जा रहा है। मसलन, बुनकरों को सीधे व्यापारियों या बिचौलियों द्वारा ताना-बाना दिया जाता है। (Reports by H. M. Secretaries of Embassy and Legation, on the Manufactures, Commerce, etc. से संक्षिप्त, अंक ८, १८६५, पृष्ठ ८६ और ८७।) हम यहां देखते हैं कि कार्य अवधि की उत्पादन काल से भिन्नता – क्योंकि अंतोक्त काल प्रथमोक्त का अंश मात्र है – खेती को दूसरे गौण देहाती उद्योगों से संयुक्त करने का नैसर्गिक आधार है और अपनी बारी में ये गौण उद्योग पूंजीपति के लिए सहूलियतें पैदा करते हैं, जो उनमें सबसे पहले व्यापारी के रूप में घुसपैठ करता है। आगे चलकर जब पूंजीवादी उत्पादन हस्त उद्योग को खेती से अलग कर देता है, तब ग्रामीण मज़दूर केवल समय-समय पर मिलनेवाले सहायक काम पर ही अधिकाधिक निर्भर होता जाता है, और इस तरह उसकी हालत बदतर होती जाती है। जैसा कि हम आगे देखेंगे पूंजी के लिए आवर्त के सभी अंतर बराबर हो जाते हैं। किंतु श्रमिक के लिए ऐसा नहीं होता।

उद्योग की अधिकांश शाखाओं – खनन, परिवहन, आदि में काम समगति से चलता रहता है। कार्य अवधि साल दर साल एक सी रहती है और क़ीमतों के उतार-चढ़ाव, व्यवसाय में गड़बड़ी, आदि जैसे असामान्य व्यवधानों को छोड़कर परिव्यय का परिचलन प्रक्रिया में दैनिक अंतरण समगति से होता रहता है। इसी प्रकार बाज़ार की हालत एक

सी बनी रहे, तो प्रचल पूंजी का प्रत्यावर्तन अथवा उसका नवीकरण भी पूरे साल समरूप रहता है। फिर भी, वर्ष की विभिन्न अवधियों में प्रचल पूंजी के परिव्यय में सबसे बड़ी असमानता ऐसे पूंजी निवेशों में देखी जाती है, जहां कार्य काल तो उत्पादन काल का अंश मात्र होता है, किंतु प्रत्यावर्तन केवल प्राकृतिक परिस्थितियों द्वारा निर्धारित समय पर एक साथ होता है। अगर व्यवसाय का पैमाना एक सा रहे, अर्थात पेशगी प्रचल पूंजी की राशि एक सी रहे, तो उसे सतत कार्य अवधिवाले उद्यमों के मुक़ाबले एकबारगी अधिक मात्रा में तथा अधिक लंबी अवधि के लिए पेशगी देना होता है। यहां स्थायी पूंजी के जीवन काल में तथा जितने समय में वह वस्तुतः उत्पादक ढंग से कार्य करती है, उसमें भी काफ़ी अधिक अंतर होता है। कार्य काल तथा उत्पादन काल में अंतर होने से निस्संदेह व्यवहृत स्थायी पूंजी के नियोजन काल में भी न्यूनाधिक समय तक लगातार क्रमभंग होता रहता है, जैसे खेती में कमकर मवेशियों, औज़ारों और मशीनों के मामले में। जहां तक इस पूंजी में समाहित भारवाही पशुओं का सवाल है, उनकी ख़ुराक, वग़ैरह पर जितना ख़र्च काम के समय आता है, उतना ही या लगभग उतना ही हर समय आता है। अनबिके माल के मामले में उपयोग न करने से भी एक सीमा तक मूल्य ह्रास होता है। अतः उत्पाद की क़ीमत सामान्यतः बढ़ती जाती है। कारण यह कि उसे अंतरित मूल्य का परिकलन उस समय के अनुसार नहीं, जिसके दौरान स्थायी पूंजी कार्य करती है, वरन उस समय के अनुसार किया जाता है, जिसके दौरान उसके मूल्य का ह्रास होता है। उत्पादन की ऐसी शाखाओं में स्थायी पूंजी चालू ख़र्च के साथ चाहे संयुक्त हो, चाहे न हो, उसका बेकार पड़े रहना उसके सामान्य नियोजन की वैसे ही शर्त है, जैसे, मसलन, कताई के समय रूई की एक निश्चित मात्रा की हानि। उसी तरह सामान्य तकनीकी परिस्थितियों में जो श्रम शक्ति किसी श्रम प्रक्रिया में अनुत्पादक, किंतु अनिवार्य रूप में ख़र्च की जाती है, उसका शुमार उत्पादक रूप में ख़र्च की हुई श्रम शक्ति की तरह ही होता है। जिस सुधार से भी श्रम उपकरणों, कच्चे माल और श्रम शक्ति का अनुत्पादक व्यय घटता है, उससे उत्पाद का मूल्य भी घटता है।

कृषि में अधिक लंबी कार्य अवधि और कार्य काल तथा उत्पादन काल में भारी अंतर दोनों का संयोग होता है। हॉड्स्किन ठीक ही कहते हैं: "खेती के तथा श्रम के अन्य रूपों के उत्पाद को पूरा करने में लगनेवाले समय का अंतर" (यद्यपि उन्होंने यहां कार्य काल और उत्पादन काल में भेद नहीं किया है) "कृषिकर्मियों की ज़बरदस्त पराधीनता का मुख्य कारण है। वे अपना माल साल से कम समय में बाज़ार में नहीं ला सकते। इस सारी अवधि में उन्हें मजबूरन मोची, दरज़ी, लुहार, छकड़ा बनानेवाले तथा विभिन्न अन्य कारीगरों का उधार करना पड़ता है, जिनके उत्पाद के बिना उनका काम नहीं चलता, किंतु जो कुछ दिनों या हफ़्तों में तैयार हो जाता है। इस स्वाभाविक परिस्थिति के कारण तथा कृषि के अलावा अन्य श्रम द्वारा संपदा की ज़्यादा तेज़ वृद्धि के कारण सारी ज़मीन पर अपना एकाधिकार जमा लेनेवाले – यद्यपि उन्होंने क़ानून बनाने पर भी इजारा क़ायम कर लिया है – ख़ुद को और अपने चाकरों, फ़ार्मरों को समाज में मनुष्यों का सबसे पराधीन वर्ग बनने से बचा नहीं सकते हैं" (टॉमस हॉड्स्किन, *Popular Political Economy*, लंदन, १८२७, पृष्ठ १४७, टिप्पणी)।

कृषि में वे सभी तरीक़े, जिनके द्वारा एक ओर मज़दूरी और श्रम उपकरणों पर ख़र्च को सारे वर्ष की अवधि में अधिक समरूप से वितरित किया जाता है, जब कि ज़्यादा क़िस्मों की फ़सलें उगाकर आवर्त को छोटा किया जाता है, जिससे बारहों मास विभिन्न फ़सलें संभव

हो जाती हैं, उत्पादन के लिए पेशगी दी गई और मज़दूरी, खाद, बीज, आदि में निवेशित प्रचल पूंजी में वृद्धि की अपेक्षा करते हैं। ज़मीन परती छोड़कर तिनखेतिया पद्धति से परती छोड़े बिना फ़सलों के हेरफेर की पद्धति में संक्रमण में ऐसा ही होता है। इसके अलावा यह बात फ़्लैंडर्स की cultures dérobées अवकाशवाली कृषि पर भी लागू होती है। "Cultures dérobées में कंद मूल फ़सलें उगायी जाती हैं; एक ही खेत मनुष्य की आवश्यकताओं के लिए बारी-बारी से पहले अनाज, फ़्लैक्स, कोल्ज़ा पैदा करता है और उनकी कटाई के बाद पशुओं को खिलाने के लिए कंद मूल फ़सलें बो दी जाती हैं। यह पद्धति, जिसमें मवेशियों को बाड़ों में रखा जा सकता है, काफ़ी मात्रा में खाद पैदा करती है और इस प्रकार यह फ़सलों के हेरफेर का आधार बन जाती है।

"रेतीले इलाक़ों में एक तिहाई से ज़्यादा कृषि क्षेत्र इसी cultures dérobées के अंतर्गत आता है, यह ऐसा ही है, मानो खेती की ज़मीन में एक तिहाई बढ़ती हो गई हो।" कंद मूल फ़सलों के अलावा इसी तरह तिपतिया तथा अन्य चारा पौधों का भी इस कार्य के लिए प्रयोग किया जाता है। "इस तरह कृषि ऐसी स्थिति में पहुंच जाती है कि वह उद्यान कृषि में परिणत हो जाती है और स्वाभाविक तौर पर उसके लिए काफ़ी पूंजी निवेश ज़रूरी हो जाता है। इंगलैंड में २५० फ़्रैंक प्रति हैक्टर कूती जानेवाली यह पूंजी फ़्लैंडर्स में लगभग ५०० फ़्रैंक होगी, जिसे अच्छा फ़ार्मर अपनी ज़मीन को देखते हुए निस्संदेह बहुत थोड़ा समझेगा" (एमील दे लॉवेल, *Essais sur l'économie rurale de la Belgique*, पेरिस, १८६३, पृष्ठ ४५, ४६ और ४८)।

अंत में वन उगाना ले लीजिये। "लकड़ी का उत्पादन अधिकांश अन्य उत्पादन शाखाओं से तत्वतः इस बात में भिन्न है कि यहां प्रकृति की शक्तियां स्वतंत्र रूप से काम करती हैं और नैसर्गिक वृद्धि के समय उन्हें मनुष्य की शक्ति या पूंजी दरकार नहीं होती। उन स्थानों में भी, जहां कृत्रिम रूप से जंगल उगाये जाते हैं, प्राकृतिक शक्तियों की क्रिया की तुलना में मनुष्य और पूंजी की शक्ति का व्यय नगण्य होता है। इसके अलावा जंगल ऐसी जगहों और ऐसी ज़मीन पर भी फूल-फल सकते हैं, जहां अनाज पैदा नहीं हो सकता या जहां उसकी काश्त लाभदायी नहीं रहती। फिर नियमित आर्थिक कार्यकलाप की तरह करने पर वन व्यवसाय के लिए कृषि की अपेक्षा अधिक भूमि की आवश्यकता होगी, क्योंकि छोटे भूखंड सही वनवैज्ञानिक विधियों के उपयोग के उपयुक्त नहीं होते, ज़मीन को जिन गौण उपयोगों में लाया जा सकता है, उनके उपभोग को काफ़ी हद तक रोकते हैं, वनरक्षण को अधिक कठिन बनाते हैं, इत्यादि। किंतु उत्पादन प्रक्रिया की अवधि इतनी लंबी होती है कि वह वैयक्तिक फ़ार्मों के आयोजन की सीमाएं लांघ जाती है और कुछ मामलों में तो मानव जीवन के संपूर्ण विस्तार को भी पार कर जाती है। वन भूमि की ख़रीद में निवेशित पूंजी" (सामुदायिक उत्पादन के मामले में यह पूंजी अनावश्यक हो जाती है, क्योंकि तब प्रश्न केवल यह होता है कि समाज अपनी बुआई और चराई की ज़मीन में से जंगलात के लिए कितनी भूमि छोड़ सकता है) "बहुत लंबा समय बीतने के पहले यथेष्ट प्रतिफल नहीं देगी और तब भी उसका आंशिक आवर्त ही होता है। कुछ ख़ास क़िस्मों के पेड़ पैदा करनेवाले जंगलों में पूरे आवर्त में डेढ़ सौ साल तक का समय लग जाता है। इसके अलावा स्वयं सुव्यवस्थित वनोत्पादक प्रतिष्ठान के पास वन की इतनी पूर्ति होनी चाहिए कि जो वार्षिक पैदावार की १० से ४० गुना तक होती है। इसलिए जब तक किसी के पास आय के दूसरे साधन न हों और उसके अधिकार में जंगल के जंगल

ही न हों, तब तक वह बाक़ायदा वन व्यवसाय में नहीं लग सकता" (किर्कोफ़, पृष्ठ ५८)।

दीर्घ उत्पादन काल (जिसमें अपेक्षाकृत कम कार्य काल समाहित होता है), तथा संबद्ध आवर्तों की बहुत लंबी अवधि से वन व्यवसाय निजी और इसलिए पूंजीवादी उद्यम के लिए बहुत कम आकर्षण का उद्योग बन जाता है। पूंजीवादी उद्यम तो तत्वतः निजी ही होता है, भले ही वैयक्तिक पूंजीपति का स्थान सहचारी पूंजीपति ले ले। सामान्य रूप से संस्कृति के तथा उद्योग के विकास ने अपने आपको जंगलों को ऐसे ज़ोरों के विनाश में प्रकट किया है कि उसके द्वारा दूसरी ओर उनके रख-रखाव और बहाली के लिए जो कुछ किया जाता है, वह अतितुच्छ जान पड़ता है।

किर्कोफ़ के उपरोक्त उद्धरण में निम्नलिखित अंश विशेष ध्यान देने योग्य है: "इसके अलावा, स्वयं सुव्यवस्थित वनोत्पादक प्रतिष्ठान के पास वन की इतनी पूर्ति होनी चाहिए कि जो वार्षिक पैदावार की १० से ४० गुना तक होती है।" दूसरे शब्दों में आवर्त कहीं १० से ४० साल में अथवा इससे भी अधिक वर्षों में एक बार होता है।

यही बात पशुपालन पर लागू होती है। यूथ का एक भाग (मवेशियों की पूर्ति) उत्पादन प्रक्रिया में रहता है, जब कि दूसरा उत्पाद के रूप में प्रति वर्ष बेचा जाता है। इस मामले में प्रति वर्ष पूंजी के एक भाग का ही आवर्त होता है, जैसे मशीनों, कमकर पशुओं, आदि के रूप में स्थायी पूंजी के मामले में होता है। यद्यपि यह पूंजी उत्पादन प्रक्रिया में दीर्घ काल के लिए नियत पूंजी है, और इस प्रकार वह कुल पूंजी के आवर्त को प्रवर्धित कर देती है, फिर भी वह सही मानों में स्थायी पूंजी नहीं है।

जिसे यहां पूर्ति कहा गया है—खड़े वृक्षों या पशुधन की एक निश्चित मात्रा—वह सापेक्ष रूप में उत्पादन प्रक्रिया में रहती है (श्रम उपकरणों तथा श्रम सामग्री की तरह साथ-साथ); इस पूर्ति के काफ़ी हिस्से को उचित प्रबंध के अंतर्गत अपने पुनरुत्पादन की प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुसार इस रूप में सदैव सुलभ रहना होता है।

आवर्त पर ऐसा ही प्रभाव एक दूसरी तरह की पूर्ति भी डालती है, जो केवल संभाव्य उत्पादक पूंजी ही होती है, किंतु जिसे इस आर्थिक कार्यकलाप की प्रकृति के कारण कमोबेश यथेष्ट मात्रा में संचित करना और इस तरह उत्पादन हेतु दीर्घ काल के लिए पेशगी लगाना होता ह, यद्यपि वास्तविक उत्पादन प्रक्रिया में वह धीरे-धीरे ही प्रवेश करती है। मिसाल के लिए, खेत में डाले जाने से पहले खाद इसी श्रेणी में आती है, इसके अलावा अनाज, भूसा, वग़ैरह, और पशु उत्पादन में प्रयुक्त निर्वाह साधनों की पूर्ति भी इसी श्रेणी में हैं। "कार्यशील पूंजी का काफ़ी हिस्सा फ़ार्म की पूर्ति में समाहित होता है। किंतु इस पूर्ति को यदि अच्छी हालत में बनाये रखने के लिए आवश्यक पूर्वोपायों का ठीक से पालन न किया जाये, तो उसका मूल्य न्यूनाधिक मात्रा में नष्ट हो सकता है। लापरवाही के परिणामस्वरूप फ़ार्म के उत्पादन की पूर्ति का एक भाग पूर्णतः नष्ट भी हो सकता है। इस कारण खलिहानों, सूखी घास और अनाज के गोदामों और तहख़ानों की सावधानीपूर्वक जांच-पड़ताल अनिवार्य हो जाती है, भंडार घरों को हमेशा साफ़-सुथरा, हवादार, बंद, वग़ैरह रखना चाहिए। गोदाम में रखे अनाज और अन्य फ़सलों को समय-समय पर पूरी तरह से उलटा-पलटा जाना चाहिए, आलू और चुकंदर को हिमपात, वर्षा और सड़ने से बचाना चाहिए" (किर्कोफ़, पृष्ठ २९२)। "अपनी ख़ुद की, ख़ास तौर से मवेशियों के अनुरक्षण की आवश्यकताओं का हिसाब लगाते समय वितरण प्राप्त उपज तथा उसके उद्दिष्ट उपयोग के अनुसार किया जाना चाहिए। अपनी सामान्य

जरूरतों को पूरा करने का ही ध्यान नहीं रखना चाहिए, वरन यह भी ध्यान रखना चाहिए कि असामान्य मामलों के लिए समुचित अतिरिक्त संचय हो। यदि अब यह पता चले कि केवल अपनी पैदावार से मांग पूर्णतः पूरी नहीं की जा सकती, तो पहले इस बात पर विचार करना जरूरी हो जाता है कि जो कमी रह गई है, वह दूसरी उपज (अनुकल्पों) से पूरी की जा सकती है या नहीं, अथवा कम पड़नेवाली चीजों की जगह दूसरी चीजें सस्ती मिल सकती हैं या नहीं। मसलन, सूखी घास की कमी पड़ जाये, तो उसकी कमी कंदों और भूसे के मिश्रण से दूर की जा सकती है। सामान्यतः ऐसे मामलों में विभिन्न फ़सलों के यथार्थ मूल्य और बाजार भाव को हमेशा ध्यान में रखा जाना चाहिए, और उपयोग का तदनुरूप नियमन किया जाना चाहिए। उदाहरणतः, अगर जई का भाव चढ़ा हुआ है, और उसके मुक़ाबले मटर और रई मंदी हैं, तो घोड़ों को जई के एक भाग की जगह मटर या रई देना और इस तरह बचायी जई को बेच देना लाभदायी रहेगा" (वही, पृष्ठ ३००)।

पूर्ति के निर्माण का विवेचन करते समय पहले कहा गया था* कि संभाव्य उत्पादक पूंजी की एक निश्चित, छोटी-बड़ी मात्रा की, अर्थात उत्पादन के लिए उद्दिष्ट उत्पादन साधनों की छोटी-बड़ी मात्रा की आवश्यकता होती है, जिसे उत्पादन प्रक्रिया में धीरे-धीरे शामिल होने के लिए उपलब्ध होना चाहिए। प्रसंगतः यह कहा गया था कि निश्चित परिमाण का कोई व्यवसाय या पूंजीवादी उद्यम हो, तो इस उत्पादक पूर्ति की मात्रा उसके नवीकरण की छोटी-बड़ी कठिनाइयों, पूर्ति की मंडियों की आपेक्षिक समीपता, परिवहन और संचार की सुविधाओं, आदि पर निर्भर करती है। ये सारी परिस्थितियां इसे प्रभावित करती हैं कि उत्पादक पूर्ति के रूप में जो पूंजी सुलभ होनी चाहिए, उसकी अल्पतम मात्रा क्या हो, अतः जितनी मीयाद के लिए पूंजी पेशगी दी जानी चाहिए उसे और पूंजी की जो राशि एक बार में पेशगी दी जानी चाहिए, उसे प्रभावित करती हैं। यह राशि, जिसका प्रभाव आवर्त पर भी पड़ता है, उस न्यूनाधिक अवधि द्वारा निर्धारित होती है, जिसके दौरान उत्पादक पूर्ति के रूप में प्रचल पूंजी मात्र संभाव्य उत्पादक पूंजी के रूप में बंधी रहती है। दूसरी ओर, चूंकि यह गतिहीनता द्रुत प्रतिस्थापन की न्यूनाधिक संभावना, बाजार की परिस्थितियों, आदि पर निर्भर है, इसलिए वह अपने को परिचलन काल से, परिचलन क्षेत्र से संबद्ध परिस्थितियों से बाहर निकाल लेती है। "फिर, दस्ती औजार, चलनी, टोकरी, रस्से, ओंगन, कीलें, वग़ैरह, जैसे सारे उपकरणों और सहायक साधनों को कहीं आस-पास अविलंब ख़रीदने की सुविधा जितनी कम हो, उनको तत्काल प्रतिस्थापित करना संभव होना चाहिए। आख़िरी बात यह कि औजारों की सारी पूर्ति की हर जाड़े में सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए और जो नई चीजें ख़रीदनी हों, या जिनकी मरम्मत जरूरी हो, उनका इंतजाम तुरंत किया जाना चाहिए। साजसामान की पूर्ति थोड़ी मात्रा में हो या ज्यादा में इसका फ़ैसला मुख्यतः स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार किया जाता है। जहां भी आस-पास भंडार या कारीगर न हों, वहां उन स्थानों की अपेक्षा बड़ी मात्रा में पूर्ति रखना आवश्यक होगा, जहां वे वहीं पर या आस-पास मिल जाते हैं। किंतु यदि आवश्यक पूर्ति एक बार में बड़ी मात्रा में प्राप्त की जाये, तो अन्य परिस्थितियां समान होने पर साधारणतः सस्ते दाम ख़रीदने का लाभ मिल जाता है, बशर्ते कि इसके लिए उपयुक्त समय चुना जाये। यह सही है कि इससे आवर्ती कार्यशील पूंजी

---

*इस पुस्तक के पृष्ठ १३०-१३५ देखें।—सं०

से तदनुरूप और बड़ी राशि एकबारगी निकल जाती है, और व्यवसाय में इतनी पूंजी को छोड़ना हमेशा ही संभव नहीं होता" (किर्कोफ़, पृष्ठ ३०१)।

जैसा कि हम देख चुके हैं, उत्पादन काल और कार्य काल में कई वैभिन्य हो सकते हैं। प्रचल पूंजी के लिए वह वास्तविक उत्पादन प्रक्रिया में दाख़िल होने से पहले का कार्य काल हो सकता है (जूते के सांचों का उत्पादन); अथवा वह वास्तविक श्रम प्रक्रिया गुज़र चुकने के बाद का उत्पादन काल हो सकता है (शराब, बीज धान्य); अथवा उत्पादन काल जब-तब कार्य काल द्वारा विछिन्न हो जाता है (कृषि, वृक्षोत्पादन)। परिचलन योग्य उत्पाद का काफ़ी बड़ा हिस्सा सक्रिय उत्पादन प्रक्रिया में समाविष्ट रहता है, जब कि कहीं छोटा भाग वार्षिक परिचलन में प्रवेश कर जाता है (वृक्षोत्पादन और पशुपालन)। संभाव्य उत्पादक पूंजी के रूप में प्रचल पूंजी के लगाये जाने की अवधि का न्यूनाधिक होना और इसलिए एक बार में पेशगी दी जानेवाली राशि का न्यूनाधिक होना भी अंशतः इस पर कि उत्पादक प्रक्रिया किस तरह की है (कृषि), और अंशतः बाज़ार की निकटता पर, संक्षेप में परिचलन क्षेत्र से संगत परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

हम आगे चलकर देखेंगे (खंड ३) कि कार्य काल से भिन्न उत्पादन काल का कार्य काल के साथ तादात्म्य स्थापित करने के प्रयत्न के फलस्वरूप मैक-कुलोच, जेम्स मिल, आदि कैसे बेसिरपैर के सिद्धांतों पर पहुंचे हैं। अपनी बारी में यह प्रयत्न मूल्य सिद्धांत के ग़लत प्रयोग का परिणाम है।

जिस आवर्त चक्र पर हमने ऊपर विचार किया है वह उत्पादन प्रक्रिया के लिए पेशगी स्थायी पूंजी के टिकाऊपन द्वारा निर्धारित होता है। चूंकि यह चक्र कई वर्षों तक चलता है, इसलिए उसमें या तो स्थायी पूंजी के वार्षिक आवर्तों की एक श्रृंखला या वर्ष के भीतर दोहराये जानेवाले आवर्तों की श्रृंखला समाविष्ट होती है।

कृषि में ऐसा आवर्त चक्र फ़सलों के हेरफेर की पद्धति से उत्पन्न होता है। "पट्टे की अवधि किसी भी सूरत में फ़सलों के हेरफेर की अंगीकृत पद्धति के पूरा होने के समय से कम नहीं होनी चाहिए। इसीलिए तिनखेतिया पद्धति में लोग हमेशा ३, ६, ६, वग़ैरह का हिसाब लगाते हैं। परती जमीन को ख़ाली छोड़ने की इस पद्धति में खेत को छः साल में चार बार ही काश्त किया जाता है। काश्त के सालों में उसमें जाड़ों और गरमी की फ़सलें बोयी जाती हैं और ज़मीन माफ़िक़ हुई या उसके लिए ज़रूरी हुआ, तो बारी-बारी गेहूं और रई, जौ और जई बोये जाते हैं। एक ही ज़मीन पर हर क़िस्म के धान्य की पैदावार अलग-अलग होती है, उनमें हरेक का मूल्य अलग होता है और वह अलग क़ीमत पर बेचा जाता है। इस कारण खेत की पैदावार उसे काश्त करने के हर साल भिन्न होती है और हेरफेर के प्रथमार्ध (पहले तीन वर्षों) में पैदावार उत्तरार्ध की पैदावार से भिन्न होती है। हेरफेर की एक अवधि की औसत पैदावार भी दूसरी अवधि की औसत पैदावार के बराबर नहीं होती, क्योंकि उर्वरता सिर्फ़ मिट्टी के अच्छेपन पर ही नहीं, बल्कि हर साल के मौसम पर भी निर्भर करती है, जैसे बाज़ार भाव बदलती हुई परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं। इसलिए यदि कोई पूरे छः साल की हेरफेर की अवधि की औसत उर्वरता और औसत बाज़ार भाव को ध्यान में रखकर खेत की आमदनी का हिसाब लगाये, तो उससे हेरफेर की किसी भी अवधि में साल भर की कुल आमदनी निकल

आयेगी। किंतु यदि हेरफेर के आधे समय की ही, यानी तीन साल की, पैदावार का हिसाब लगाया जाये, तो ऐसा न होगा, क्योंकि तब कुल आमदनी के आंकड़े एक जैसे न होंगे। इन सब बातों से यह नतीजा निकलता है कि जिस ज़मीन को तिनखेतिया पद्धति से काश्त करना है, उसका पट्टा कम से कम छः साल का होना चाहिए। फिर भी पट्टेदार और पट्टेदाता के लिए यह सदा वांछनीय होता है कि पट्टे की अवधि पट्टे की अवधि का गुणन खंड हो [वाह!]; इसलिए तिनखेतिया पद्धति में छः साल के बदले यह अवधि १२, १८ और इसी तरह अधिक वर्षों की होनी चाहिए, तथा सतखेतिया पद्धति में सात के बदले १४, २८ वर्षों की" (किर्कोफ़, पृष्ठ ११७, ११८)।

(इस स्थान पर पाण्डुलिपि में यह लिखा है: "फ़सलों के हेरफेर की अंग्रेजी पद्धति। यहां एक टिप्पणी देना" है।)

अध्याय १४

परिचलन काल

अभी तक विवेचित वे सभी परिस्थितियां, जो उद्योग की विभिन्न शाखाओं में निवेशित विभिन्न पूंजियों के आवर्त कालों के और इसलिए जिन कालावधियों के लिए पूंजी पेशगी दी जाती है, उनके भेदों को भी दर्शाती हैं, जैसे स्थायी और प्रचल पूंजी में भेद, कार्य अवधियों में भेद, इत्यादि, स्वयं उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पन्न होती हैं। किंतु पूंजी का आवर्त काल उसके उत्पादन काल तथा उसके परिचलन अथवा घूर्णन काल के योग के बराबर होता है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि परिचलन काल में अंतर पड़ने से आवर्त काल में और इसलिए आवर्त अवधि की दीर्घता में भी अंतर पड़ेगा। यह बात या तो ऐसे दो भिन्न पूंजी निवेशों की तुलना करने से, जिनमें परिचलन काल को छोड़कर आवर्त को बदलनेवाली सभी परिस्थितियां समान होती हैं, या स्थायी और प्रचल पूंजी के निश्चित अनुपात, निश्चित कार्य अवधि, आदि की एक निश्चित पूंजी को ले लेने से स्पष्टतम हो जाती है, जिसमें केवल परिचलन काल सापेक्षतः बदलते हैं।

परिचलन काल का एक – अपेक्षाकृत सबसे निर्णायक – खंड विक्रय काल, वह समय होता है, जिसमें पूंजी माल पूंजी की अवस्था में रहती है। परिचलन काल और इसलिए सामान्य रूप में आवर्त काल का लंबा या छोटा होना इस विक्रय काल की सापेक्ष दीर्घता पर निर्भर करता है। गोदाम ख़र्च, वग़ैरह के फलस्वरूप पूंजी का अतिरिक्त परिव्यय आवश्यक हो सकता है। यह शुरू से ही स्पष्ट है कि तैयार माल बेचने में लगनेवाला समय उद्योग की एक ही शाखा में अलग-अलग पूंजीपतियों के लिए काफ़ी भिन्न हो सकता है। अतः वह उद्योग की विभिन्न शाखाओं में निवेशित कुल पूंजियों के लिए ही नहीं, वरन उन विविध स्वतंत्र पूंजियों के लिए भी भिन्न हो सकता है, जो वास्तव में एक ही उत्पादन क्षेत्र में निवेशित कुल पूंजी के विभिन्न अंश मात्र हैं, किंतु जिन्होंने अपने को स्वतंत्र कर लिया है। अन्य परिस्थितियां समान हों, तो उसी वैयक्तिक पूंजी के लिए विक्रय काल बाज़ार के सामान्य उतार-चढ़ाव के साथ अथवा उस व्यवसाय विशेष में होनेवाले उतार-चढ़ाव के साथ बदलता रहेगा। हम इस बात का और अधिक विवेचन न करेंगे। हम बस यह सादी सी बात कह देते हैं: वे तमाम परिस्थितियां, जो सामान्यतः उद्योग की विभिन्न शाखाओं में निवेशित पूंजियों के आवर्त कालों में अंतर उत्पन्न करती हैं, वे अपने साथ उसी व्यवसाय में कार्यरत विभिन्न अलग-अलग पूंजियों के आवर्त में भी अंतर लेकर आती हैं, बशर्ते कि ये परिस्थितियां अलग-अलग कार्यरत् हों (उदाहरण के

लिए यदि एक पूंजीपति को अपने प्रतिद्वंद्वी की अपेक्षा अधिक शीघ्रतापूर्वक विक्रय करने का मौक़ा हो, यदि एक पूंजीपति दूसरे की अपेक्षा कार्य अवधि को घटाने के ज्यादा तरीक़े इस्तेमाल करता हो, इत्यादि)।

विक्रय कालों और इस प्रकार सामान्यत: आवर्त कालों में भी भेद उत्पन्न करने में स्थायी तौर पर काम करनेवाला एक कारण उस बाज़ार का फ़ासला है, जहां कोई पण्य वस्तु अपनी पैदावार की जगह से ले जाकर बेची जाती है। बाज़ार की अपनी सारी यात्रा में पूंजी स्वयं को माल पूंजी की अवस्था में बंधा हुआ पाती है। यदि माल आर्डर पर तैयार किया गया है, तो यह स्थिति सुपुर्दगी के समय तक क़ायम रहती है, और अगर आर्डर पर तैयार नहीं किया गया है, तो बाज़ार तक के सफ़र में लगे समय में माल द्वारा बाज़ार में बिकने के इंतज़ार में बिताया वक़्त और जोड़ना होगा। संचार और परिवहन साधनों में सुधार पण्य वस्तुओं की परिभ्रमण अवधि में निरपेक्ष कटौती कर देता है, किंतु विभिन्न माल पूंजियों के परिभ्रमण से उत्पन्न उनके परिचलन काल में आनेवाले सापेक्ष अंतर को वह समाप्त नहीं करता और न उसी माल पूंजी के विभिन्न हाटों को जानेवाले विभिन्न भागों के परिचलन काल के सापेक्ष अंतर को ही समाप्त करता है। उदाहरण के लिए, सुधरे हुए पालदार जहाज़ और वाष्प पोत, जो यात्रा काल को घटाते हैं, वे दूर-पास के सभी बंदरगाहों के लिए समान रूप में ऐसा करते हैं। सापेक्ष अंतर बना रहता है, यद्यपि अकसर वह घट जाता है। किंतु संचार और परिवहन साधनों के विकास के परिणामस्वरूप सापेक्ष अंतर इस तरह इधर-उधर हो सकते हैं कि जो भौगोलिक फ़ासलों के अनुरूप न हों। उदाहरण के लिए, किसी उत्पादन स्थल से देश के भीतरी भाग में स्थित आबादी के केंद्र को जानेवाला रेलमार्ग भीतरी भाग में स्थित दूसरे निकटतर स्थान के फ़ासले को, जो रेल से जुड़ा हुआ नहीं है, भौगोलिक रूप में अब अधिक दूर स्थित स्थान की तुलना में सापेक्ष अथवा निरपेक्ष रूप में बढ़ा सकता है। इसी तरह वही परिस्थितियां बड़े बाज़ारों से उत्पादन स्थानों के सापेक्ष फ़ासले को बदल सकती हैं, जिससे संचार और परिवहन साधनों में तबदीली होने से उत्पादन के नये केंद्रों के अभ्युदय और पुराने केंद्रों के ह्रास को समझा जा सकता है। (इसमें यह बात और जोड़ दी जानी चाहिए कि दूर की ढुलाई पास की ढुलाई से अपेक्षाकृत सस्ती पड़ती है।) फिर परिवहन साधनों के विकास से न सिर्फ़ स्थानगत गमनागमन का वेग त्वरित हो जाता है और इस प्रकार कालगत अर्थ में भौगोलिक दूरी कम हो जाती है। न सिर्फ़ सकल संचार साधनों का विकास हुआ है, जिससे कि उदाहरणत: अनेक जहाज़ एक ही बंदरगाह के लिए एक ही समय पर रवाना हो जाते हैं अथवा अनेक रेलगाड़ियां उन्हीं दो स्थानों के बीच विभिन्न रेल मार्गों पर एक ही समय दौड़ती हैं, बल्कि मालवाही जहाज़ उसी हफ़्ते में, लगातार एक के बाद दूसरे दिन लिवरपूल से न्यूयार्क के लिए रवाना हो सकते हैं अथवा मालगाड़ियां एक ही दिन अलग-अलग समय पर मैनचेस्टर से लंदन के लिए रवाना हो सकती हैं। सही है कि इस अंतिम तथ्य से निरपेक्ष वेग – और इसलिए परिचलन काल का यह भाग भी – नहीं बदलता, क्योंकि परिवहन साधनों की एक निश्चित क्षमता नियत होती है। किंतु माल के क्रमिक परेषण अपनी यात्रा लघुतर अंतराल पर शुरू कर सकते हैं और इस तरह वास्तविक परेषण के पहले संभाव्य माल पूंजी के रूप में संचित हुए बिना एक के बाद एक बाज़ार में पहुंच सकते हैं। अत: पूंजी का प्रत्यावर्तन भी इसी प्रकार की छोटी क्रमिक अवधियों में फैला हुआ है, जिससे उसका एक भाग लगातार द्रव्य पूंजी में रूपांतरित होता रहता है, जब कि दूसरा माल पूंजी के रूप में परिचलन करता है।

प्रत्यावर्तन के अनेक क्रमिक अवधियों में फैल जाने से परिचलन का और इसलिए आवर्त का भी कुल समय घट जाता है। उत्पादन के विद्यमान स्थलों के अधिक उत्पादन करना शुरू करने, बड़े उत्पादन केंद्र बनने के साथ सबसे पहले परिवहन साधनों के कार्य की आवृत्ति ही बढ़ती है, उदाहरण के लिए, रेलगाड़ियों की संख्या। यह विकास पहले से मौजूद बाज़ार की ओर, अर्थात उत्पादन और आबादी के बड़े केंद्रों की ओर, निर्यात बंदरगाहों, वग़ैरह की ओर उन्मुख होता है। दूसरी ओर यातायात की इन विशेषकर बड़ी सुविधाओं के कारण और इनके परिणामस्वरूप पूंजी आवर्त में तेजी आने के कारण (चूंकि वह परिचलन काल पर निर्भर करता है) उत्पादन केंद्रों तथा बाज़ारों – दोनों ही का तेजी से संकेंद्रण होने लगता है। कुछ स्थानों पर लोगों और पूंजी की विराट राशियों के इस प्रकार तेज़ हुए संकेंद्रण के साथ-साथ पूंजी की इन राशियों का थोड़े से आदमियों के हाथों में संकेंद्रण होने लगता है। इसके साथ ही परिवहन साधनों में रूपांतरणों से उत्पादन स्थानों और बाज़ारों की सापेक्ष स्थितियों में आये परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्पादन स्थानों और बाज़ारों का पुरानी जगहों का बदलना और नई जगहों पर क़ायम होना भी देखा जा सकता है। हो सकता है कि कोई उत्पादन स्थल, जो राजमार्ग या नहर के किनारे स्थित होने से किसी समय विशेष सुविधाजनक स्थिति में रहा था, अब अपने को किसी मात्र बग़ली रेलमार्ग पर ही पाये, जिस पर गाड़ियां अपेक्षाकृत दीर्घ अंतरालों से चलती हैं, जब कि कोई दूसरा स्थान, जो पहले यातायात के प्रमुख मार्गों से दूर था, अब कई रेलमार्गों का संगम बन जाये। यह दूसरा स्थान अब उन्नति कर रहा है, जब कि पहलेवाला अवनत हो रहा है। इस प्रकार परिवहन साधनों में परिवर्तन माल के परिचलन काल में, क्रय-विक्रय के अवसरों, आदि में स्थानिक अंतर पैदा करते हैं अथवा पहले से विद्यमान स्थानिक अंतर का वितरण अब और प्रकार का हो जाता है। विभिन्न स्थानों के व्यापारिक और औद्योगिक प्रतिनिधियों की रेलमार्गों के प्रबंधकों से खींच-तान से यह प्रकट हो जाता है कि पूंजी आवर्त के लिए इस परिस्थिति का महत्व क्या है। (उदाहरण के लिए, पूर्वोद्धृत रेलवे समिति का सरकारी प्रतिवेदन देखिये।*)

उत्पादन की वे सभी शाखाएं, जो अपने उत्पाद की प्रकृति के कारण मुख्यतः स्थानीय उपभोग पर निर्भर करती हैं, जैसे मद्यनिर्माणशालाएं, इसी कारण सबसे ज्यादा आबादी के मुख्य केंद्रों में ही विकसित होती हैं। यहां पूंजी का ज्यादा तेज आवर्त अंशतः इस तथ्य की क्षतिपूर्ति कर देता है कि उत्पादन की कुछ परिस्थितियां, भवन निर्माण के लिए प्लाट, आदि, अधिक महंगी होती हैं।

एक ओर जहां परिवहन और संचार साधनों में पूंजीवादी उत्पादन की प्रगति से जनित सुधार से पण्य वस्तुओं की निश्चित राशियों का परिचलन काल घट जाता है, वहां दूसरी ओर यही उन्नति और परिवहन तथा संचार साधनों से उत्पन्न अवसर और भी दूरस्थ बाज़ारों के लिए, संक्षेप में विश्व बाज़ार के लिए काम करने को अनिवार्य बना देते हैं। दूर की जगहों के लिए मार्गस्थ मालों की राशि में असीम वृद्धि होती है और इसलिए उसके साथ ही, सापेक्ष और निरपेक्ष रूप में सामाजिक पूंजी के उस भाग में भी वृद्धि होती है, जो लगातार लंबी मीयादों तक परिचलन काल के दौरान माल पूंजी की मंज़िल में रहता है। इसके साथ ही सामाजिक संपदा के उस भाग में भी वृद्धि होती है, जो उत्पादन का प्रत्यक्ष साधन बनने के

---

*इस पुस्तक का पृष्ठ १४१ देखें। – सं०

बदले संचार और परिवहन साधनों में और उनके प्रचालन के लिए आवश्यक स्थायी और प्रचल पूंजी में लगाया जाता है।

उत्पादन स्थान से बाज़ार तक पण्य वस्तुओं के मार्ग की मात्र सापेक्ष दीर्घता भी केवल परिचलन काल के पहले भाग, विक्रय काल में ही नहीं, बल्कि उसके दूसरे भाग, द्रव्य के उत्पादक पूंजी के तत्वों में पुनःरूपांतरण, क्रय काल में भी अंतर उत्पन्न करती है। मान लीजिये, माल भारत भेजा जा रहा है। इसमें कह लीजिये, चार महीने लगेंगे। हम मान लेते हैं कि विक्रय काल शून्य के बराबर है, अर्थात माल आर्डर पर बनाया जाता है, और उसकी पहुंच पर निर्माता के अभिकर्ता को भुगतान किया जाता है। धन के प्रत्यावर्तन में (उसका रूप चाहे जो हो) चार महीने और लगते हैं। इस तरह कुल मिलाकर आठ महीने बाद ही पूंजी उत्पादक पूंजी के रूप में पुनः कार्यशील हो सकेगी और उसी क्रिया को फिर से शुरू कर सकेगी। आवर्त में इस प्रकार उत्पन्न अंतर उधार की विभिन्न शर्तों का एक भौतिक आधार होता है, जैसे सामान्यतः समुद्र पार विदेश व्यापार – यथा वेनिस और जिनोआ में – सही अर्थों में उधार पद्धति का एक स्रोत है। "१८४७ के संकट ने तत्कालीन साहूकार और व्यापारी समुदाय के लिए भारत और चीन की मीयाद" (वहां और यूरोप के बीच हुंडियों के चालू रहने की मीयाद) "को दर्शने दस महीने से घटाकर छः महीने कर देना संभव कर दिया था और रफ़्तार में सारी तेज़ी और तार व्यवस्था की स्थापना के साथ गुज़रे बीस वर्षों ने... मीयाद को दर्शने चार महीने पर लाने के एक शुरूआती क़दम के तौर पर दर्शने छः मास की भुगतान तिथि को... और घटाकर चार महीने कर देना आवश्यक बना दिया है। कलकत्ते से केप होते हुए लंदन तक जहाज़ का सफ़र औसतन नब्बे दिन के अंदर-अंदर का होता है। दर्शने चार महीने की मीयाद लगभग १५० दिन चालू रहने के बराबर होगी। दर्शने छः महीने की वर्तमान मीयाद लगभग २१० दिन चालू रहने के बराबर है" (*London Economist*, १६ जून, १८६६)।

दूसरी ओर: "ब्राज़ील की मीयाद दर्शने दो और तीन महीने की ही है, एंटवर्प से" (लंदन के लिए) "हुंडियों की मीयाद तीन महीने की होती है और मैंचेस्टर तथा ब्रेडफ़ोर्ड की हुंडियां भी लंदन में तीन महीने और ज्यादा लंबी मीयादों के लिए होती हैं। मौन समझौते के अनुसार व्यापारी को अपने माल की बिक्री की आय को, उसके लिए बनी हुंडियों की नियत तिथि के पहले तो बेशक नहीं, लेकिन वाजिब मीयाद के भीतर वसूल करने का ख़ासा मौक़ा दिया जाता है। इस दृष्टिकोण से भारतीय हुंडियों की मौजूदा मीयाद को बहुत ज़्यादा नहीं कहा जा सकता। लंदन में ज़्यादातर तीन महीने की तुरंत अदायगी की मीयाद पर बेचे जानेवाले भारतीय माल की बिक्री में लगनेवाले समय को निकाल देने पर पांच महीने से कम में वसूली नहीं की जा सकती, जब कि भारत में उसके ख़रीदे जाने से लेकर अंग्रेज़ी गोदामों में पहुंचने तक (औसतन) पांच महीने का और समय पहले ही लग चुका होगा। इस तरह यह दस महीने की मीयाद है, जब कि माल के लिए बनी हुंडी की मीयाद सात महीने से ज़्यादा नहीं होती" (वही, ३० जून, १८६६)। २ जुलाई, १८६६ को मुख्यतः भारत और चीन से कारबार करनेवाले लंदन के पांच बड़े बैंकों और पेरिस की *Comptoir d'Escompte* ने यह सूचना दी कि "१ जनवरी, १८६७ से पूर्व में उनकी शाखाएं और एजेंसियां वही हुंडियां बेचेंगी और ख़रीदेंगी, जिनकी मीयाद दर्शने चार महीने से ज़्यादा की नहीं होगी" (वही, ७ जुलाई, १८६६)। किंतु मीयाद में यह कमी बेकार साबित हुई और उसे रद्द करना पड़ा। (तब से स्वेज़ नहर ने सारी परिस्थिति में आमूल परिवर्तन कर दिया है।)

स्वाभाविक ही है कि माल परिचलन काल के बढ़ने के साथ बाज़ार में भाव बदल जाने का ख़तरा ज़्यादा होगा, क्योंकि भावों के बदल सकने की अवधि बढ़ जाती है।

परिचलन काल में अंतर, अंशतः व्यवसाय की एक ही शाखा की विभिन्न पृथक पूंजियों में वैयक्तिक अंतर और अंशतः अलग-अलग मीयादों के अनुसार व्यवसाय की विभिन्न शाखाओं के बीच अंतर, जहां नक़द भुगतान नहीं होता, क्रय-विक्रय में भुगतान की विभिन्न शर्तों से पैदा होते हैं। हम इस बात पर, जो उधार पद्धति के लिए महत्वपूर्ण है, यहां और विचार नहीं करेंगे।

आवर्त काल में अंतर माल की सुपुर्दगी के इक़रारनामों के परिमाण से भी पैदा होते हैं और उनका परिमाण पूंजीवादी उत्पादन के प्रसार और विस्तार के साथ-साथ बढ़ता जाता है। माल की सुपुर्दगी का इक़रारनामा ग्राहक और विक्रेता के बीच व्यवहार के नाते एक ऐसा काम है, जो बाज़ार से, परिचलन क्षेत्र से संबद्ध है। इसलिए आवर्त काल में यहां पैदा होनेवाले अंतर परिचलन क्षेत्र से उत्पन्न होते हैं, किंतु उत्पादन क्षेत्र पर वे तात्कालिक प्रभाव डालते हैं और यह वे भुगतान की सभी शर्तों और उधार की परिस्थितियों के अलावा डालते हैं। अतः नक़द भुगतान के मामले में भी वे ऐसा ही करते हैं। उदाहरण के लिए, कोयला, कपास, सूत, वग़ैरह विच्छिन्न उत्पाद हैं। प्रत्येक दिन तैयार उत्पाद की अपनी मात्रा की पूर्ति करता है। अब यदि कताई मिल मालिक या खान मालिक उत्पाद की इतनी बड़ी मात्रा देने का क़रार कर लेता है, जिसके लिए, मान लीजिये, लगातार कार्य दिवसों के चार-छः हफ़्तों तक का समय लग जाता है, तो जहां तक पूंजी पेशगी देने की कालावधि का संबंध है, यह बिल्कुल वैसी ही है, जैसे मानो इस श्रम प्रक्रिया में चार या छः हफ़्ते की निरंतर कार्य अवधि लगायी गयी हो। बेशक यहां यह मान लिया गया है कि सारी आदेशित मात्रा की एक ही बार एकसाथ सुपुर्दगी की जायेगी या कम से कम भुगतान कुल सुपुर्दगी हो जाने पर ही होगा। अलग-अलग लें, तो हर दिन ने तैयार उत्पाद की अपनी निश्चित मात्रा दी है। किंतु यह तैयार मात्रा उस मात्रा का केवल एक अंश है, जिसके लिए क़रार किया गया था। यद्यपि इस प्रसंग में अब तक तैयार भाग उत्पादन प्रक्रिया में नहीं रह गया है, फिर भी वह गोदाम में केवल संभाव्य पूंजी की हैसियत से पड़ा हुआ है।

अब हम परिचलन काल की दूसरी मंजिल, क्रय काल को अथवा उस अवधि को लेंगे, जिसमें पूंजी द्रव्य रूप से उत्पादक पूंजी के तत्वों में पुनःपरिवर्तित होती है। इस अवधि में उसे न्यूनाधिक समय तक अपनी द्रव्य पूंजी की अवस्था में बने रहना होता है, अतः कुल पेशगी पूंजी के एक निश्चित भाग को सारे समय द्रव्य पूंजी की अवस्था में रहना होता है, यद्यपि इस भाग में निरंतर परिवर्तित तत्व होते हैं। उदाहरण के लिए, किसी व्यवसाय में लगायी गयी कुल पूंजी में से सं गुणा १०० पाउंड राशि द्रव्य पूंजी के रूप में उपलब्ध होनी चाहिए, जिससे जहां इस सं गुणा १०० पाउंड के सभी घटक निरंतर उत्पादक पूंजी में परिवर्तित होते रहेंगे, फिर भी परिचलन की आमद से, सिद्धिकृत माल पूंजी से यह राशि निरंतर आपूरित होती रहेगी। अतः पेशगी पूंजी मूल्य का एक निश्चित भाग निरंतर द्रव्य पूंजी की अवस्था में, अर्थात ऐसे रूप में रहता है, जिसका संबंध उसके उत्पादन क्षेत्र से नहीं, वरन उसके परिचलन क्षेत्र से होता है।

हम पहले ही देख चुके हैं कि बाज़ार की दूरी के कारण पूंजी माल पूंजी के रूप में जितना ही अधिक समय तक बंधी रहती है, उतना ही द्रव्य के प्रत्यावर्तन में और फलतः द्रव्य पूंजी से उत्पादक पूंजी में पूंजी के रूपांतरण में भी प्रत्यक्ष विलंब होता है।

इसके अलावा हम मालों के क्रय के सिलसिले में यह भी देख चुके हैं (अध्याय ६) कि क्रय काल के कारण, कच्चे माल के मुख्य स्रोतों से न्यूनाधिक दूरी के कारण कच्चे माल को दीर्घतर अवधि के लिए ख़रीदना और उसे उत्पादक पूर्ति के रूप में, अंतर्हित अथवा संभाव्य उत्पादक पूंजी के रूप में उपलभ्य रखना आवश्यक हो जाता है और इसके परिणामस्वरूप एकबारगी पेशगी दी जानेवाली पूंजी की राशि और जितने समय के लिए वह पेशगी दी जाती है, उसकी अवधि भी बढ़ जाती है, बशर्ते कि उत्पादन का पैमाना उतना ही रहे।

समय की उन न्यूनाधिक दीर्घ अवधियों से भी व्यवसाय की विभिन्न शाखाओं में इससे मिलता-जुलता परिणाम उत्पन्न होता है, जिनमें कच्चे माल की अपेक्षाकृत बड़ी राशियां बाज़ार में डाल दी जाती हैं। मिसाल के लिए, लंदन में हर तीसरे महीने ऊन की बड़ी नीलामी होती है और ऊन का बाज़ार इस नीलामी द्वारा नियंत्रित होता है। दूसरी ओर, कपास के बाज़ार को फ़सल दर फ़सल समान गति से नहीं, तो भी निरंतर माल से भरे रखा जाता है। इस तरह की कालावधियां यह कच्चा माल ख़रीदने की मुख्य तिथियों को निर्धारित करती हैं। उसका असर इन उत्पादन तत्वों के लिए न्यूनाधिक समय के लिए पेशगी की अपेक्षा करनेवाली सट्टा ख़रीदों पर ख़ास तौर से ज़्यादा होता है, जैसे उत्पादित माल की प्रकृति किसी उत्पाद के संभाव्य माल पूंजी के रूप में न्यूनाधिक काल के लिए, अपेक्षी, साभिप्राय रूप में रोके रखने पर असर डालती है। "काश्तकार को एक हद तक सटोरिया भी होना चाहिए और इसलिए यदि उस समय की हालत को देखते हुए ज़रूरी हो, तो अपनी उपज की बिक्री को रोके रखना चाहिए ..." इसके बाद कुछ सामान्य नियम हैं। "... फिर भी उपज को बेचने के मामले में सब कुछ मुख्यतः व्यक्ति पर, स्वयं उपज पर और स्थान पर निर्भर करता है। अगर कोई आदमी होशियार और क़िस्मतवाला (!) है, साथ ही उसके पास काफ़ी कार्यशील पूंजी भी है, तो भाव असाधारण रूप से गिर जाने पर यदि वह अपनी अनाज की फ़सल बस साल भर तक रोके रहे, तो इसके लिए उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता। दूसरी ओर, अगर किसी के पास कार्यशील पूंजी नहीं है, या उसमें सट्टेबाज़ी की भावना का नितांत अभाव (!) है, तो वह चालू औसत दाम ही पाने की कोशिश करेगा, और जब भी और जितनी बार भी मौक़ा आयेगा, उसे माल बेचना पड़ेगा। ऊन को साल भर से ज़्यादा समय तक गोदाम में रखने का मतलब सदैव हानि होगा, लेकिन ग़ल्ले और तिलहन को उनकी कोटि और श्रेष्ठता को नुक़सान पहुंचाये बिना कई साल तक रखे रहा जा सकता है। ऐसी पैदावारों को, जिनके भावों में थोड़े-थोड़े समय में भारी उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, जैसे तिलहन, हॉप, टीज़ेल, आदि, उन वर्षों में जमा करके रखे रहना लाभदायी होगा, जिनमें बिक्री की क़ीमत उत्पादन की क़ीमत से बहुत कम होती है। जिन चीज़ों के परिरक्षण में रोज़ाना ख़र्च पड़े, जैसे मोटाये हुए जानवर, या जो जल्दी बिगड़ जाती हैं, जैसे फल, आलू, वग़ैरह, उनकी बिक्री को रोके रखने में सबसे कम औचित्य है। अलग-अलग स्थानों में किसी ख़ास उपज के औसत दाम किसी मौसम में सबसे कम मिलते हैं, तो दूसरे मौसमों में सबसे ऊंचे मिलते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ प्रदेशों में अनाज का औसत भाव बड़े दिन और ईस्टर के बीच के समय की अपेक्षा संत मार्टिन दिवस के आस-पास गिरा होता है। फिर कुछ चीज़ें कुछ स्थानों में कुछ ख़ास वक़्तों पर ही अच्छी बिकती हैं, जैसे ऊन के मामले में उन स्थानों के ऊन बाज़ारों में होता है, जहां अन्य समय पर ऊन का व्यापार ठंडा रहता है, इत्यादि" (किर्कोफ़, पृष्ठ ३०२)।

परिचलन काल के उत्तरार्ध का, जिसमें द्रव्य उत्पादक पूंजी के तत्वों में पुनःपरिवर्तित

होता है, अध्ययन करते हुए स्वयं इस रूपांतरण पर ही नहीं, जिस बाज़ार में उत्पाद बेचा जाता है, उसके फ़ासले के अनुसार जितने समय में द्रव्य वापस आता है, उस पर ही विचार नहीं किया जाना चाहिए। पेशगी पूंजी के उस भाग की राशि पर भी विचार करना चाहिए और ख़ासकर करना चाहिए, जिसे सदा द्रव्य रूप में और द्रव्य पूंजी की अवस्था में उपलभ्य रहना चाहिए।

सारी सट्टेबाज़ी दरकिनार, उत्पादक पूर्ति के रूप में जो वस्तुएं सदा सुलभ रहनी चाहिए, उनकी ख़रीद का परिमाण इस पूर्ति के नवीकरण के समय पर, अतः उन परिस्थितियों पर निर्भर होता है, जो स्वयं अपनी बारी में बाज़ार की परिस्थितियों पर निर्भर होती हैं और जो इस कारण विभिन्न कच्ची सामग्रियों के लिए भिन्न-भिन्न होती हैं। इन प्रसंगों में समय-समय पर द्रव्य की कुछ बड़ी ही राशि और इकमुश्त पेशगी देनी होती है। वह कमोबेश जल्दी वापस आती है, लेकिन पूंजी के आवर्त के अनुसार हमेशा क़िस्तों में। उसका एक भाग, यानी मज़दूरी में पुनःरूपांतरित भाग उसी प्रकार लगातार थोड़े-थोड़े समय पर फिर ख़र्च होता रहता है। लेकिन दूसरा भाग, यानी वह भाग, जो कच्चे माल, वग़ैरह में फिर बदला जायेगा, क्रय अथवा भुगतान की आरक्षित निधि के रूप में कुछ लंबी ही अवधि के लिए संग्रहीत होगा। अतः वह द्रव्य पूंजी के रूप में विद्यमान होता है, यद्यपि जिस परिमाण में वह विद्यमान होता है, वह ख़ुद बदलता रहता है।

हम अगले अध्याय में देखेंगे कि उत्पादन प्रक्रिया से अथवा परिचलन प्रक्रिया से जो अन्य परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं, उनसे यह आवश्यक हो जाता है कि पेशगी पूंजी का एक निश्चित भाग द्रव्य रूप में सुलभ रहे। सामान्यतः यह बात ध्यान देने योग्य है कि अर्थशास्त्री अक्सर यह भूल जाया करते हैं कि किसी व्यवसाय के लिए जो पूंजी आवश्यक होती है, उसका एक भाग द्रव्य पूंजी, उत्पादक पूंजी और माल पूंजी – क्रमशः इन तीन मंज़िलों से गुज़रता है। इतना ही नहीं, वे यह भी भूल जाया करते हैं कि उसके विभिन्न भागों में ये रूप निरंतर और एक ही समय विद्यमान होते हैं, यद्यपि इन भागों के सापेक्ष परिमाण सारे समय बदलते रहते हैं। ख़ास तौर से जो भाग सदा द्रव्य पूंजी के रूप में उपलभ्य रहता है, अर्थशास्त्री उसे ही भुला देते हैं, यद्यपि यही तथ्य बूर्जुआ अर्थतंत्र को समझने के लिए सर्वाधिक आवश्यक है और फलतः जो अपने महत्व को व्यवहार में भी जताता है।

अध्याय १५

पेशगी पूंजी के परिमाण पर आवर्त काल का प्रभाव

इस अध्याय में और अगले, सोलहवें अध्याय में हम पूंजी के स्वप्रसार पर आवर्त काल के प्रभाव का विवेचन करेंगे।

एक माल पूंजी ले लीजिये, जो – मान लीजिये कि – नौ हफ़्ते की कार्य अवधि का उत्पाद है। उत्पाद के मूल्य के उस भाग को, जो स्थायी पूंजी की औसत छीजन से उसमें जुड़ता है, और उस बेशी मूल्य को भी हम फ़िलहाल अलग रहने देते हैं, जो उत्पादन प्रक्रिया के दौरान उत्पाद में जुड़ता है। इस प्रकार इस उत्पाद का मूल्य उसके उत्पादन के लिए पेशगी दी प्रचल पूंजी के मूल्य के बराबर होगा, अर्थात उसके उत्पादन में प्रयुक्त कच्चे माल और सहायक सामग्री तथा मजदूरी के बराबर। मान लीजिये, यह मूल्य ९०० पाउंड है, जिससे साप्ताहिक परिव्यय १०० पाउंड हुआ। अतः उत्पादन काल, जो यहां कार्य अवधि के बराबर है, ९ हफ़्ते हुआ। यह बात महत्वहीन है कि हमारी कल्पना के अनुसार यह कार्य अवधि अविच्छिन्न उत्पाद की अथवा यह विच्छिन्न उत्पाद की अविच्छिन्न कार्य अवधि है, बशर्ते कि विच्छिन्न उत्पाद की जो मात्रा एक बार में बाजार में लायी जाती है, उसमें नौ हफ़्ते का श्रम लगता है। मान लीजिये, परिचलन काल तीन हफ़्ते का है। तब समूचा आवर्त काल बारह हफ़्ते का होगा। नौ हफ़्ते के बाद पेशगी उत्पादक पूंजी माल पूंजी में तबदील हो जाती है, किंतु अब वह तीन हफ़्ते तक परिचलन की अवधि में रहती है। अतः नयी उत्पादन अवधि तेरहवें हफ़्ते की शुरूआत से पहले आरंभ नहीं हो सकती और तीन हफ़्ते अथवा समूची आवर्त अवधि के चौथाई हिस्से उत्पादन ठप रहेगा। यदि हम मान लें कि उत्पाद को बेचने में औसतन इतना समय लगता है या समय की यह दीर्घता बाज़ार की दूरी से, या बिके हुए माल के भुगतान की शर्तों से जुड़ी हुई है, तो इससे भी कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। हर तीसरे महीने उत्पादन तीन हफ़्ते और इस तरह साल में तीन का चार गुना, अर्थात बारह हफ़्ते ठप रहेगा, जिसका मतलब हुआ तीन महीने या आवर्त की वार्षिक अवधि का चौथाई भाग। इसलिए यदि उत्पादन को निरंतर जारी रखना है और हफ़्ता दर हफ़्ता उसी पैमाने पर चलाना है, तो एक ही विकल्प है, और वह यह :

या तो उत्पादन का पैमाना घटा दिया जाये, जिससे ९०० पाउंड कार्य अवधि में तथा पहले आवर्त के परिचलन काल में भी काम चालू रखने के लिए काफ़ी हों। तब आवर्त की पहली अवधि समाप्त होने से पहले, दसवें हफ़्ते से, दूसरी कार्य अवधि, अतः नयी आवर्त अवधि भी शुरू हो जायेगी, क्योंकि आवर्त अवधि बारह हफ़्ते की है और कार्य अवधि नौ हफ़्ते की

है। बारह हफ़्ते पर फैली ६०० पाउंड की राशि ७५ पाउंड प्रति सप्ताह होगी। पहली बात तो यह है कि यह स्पष्ट है कि व्यवसाय का इतना घटा हुआ पैमाना स्थायी पूंजी के बदले हुए आयाम की और इसलिए समूचे तौर पर व्यवसाय के घट जाने की पूर्वापेक्षा करता है। दूसरी बात यह कि यह विवादास्पद है कि ऐसी घटती हो भी सकती है, क्योंकि प्रत्येक व्यवसाय में, उसके उत्पादन के विकास के अनुरूप, उसकी प्रतिद्वंद्विता करने की क्षमता को बनाये रखने के लिए आवश्यक निवेशित पूंजी का एक सामान्य न्यूनतम अंश बना रहता है। पूंजीवादी उत्पादन के विकास के साथ यह सामान्य न्यूनतम अंश निश्चित गति से बढ़ता जाता है, अतः वह स्थायी नहीं होता। किसी विशेष समय पर सामान्य न्यूनतम अंश तथा निरंतर बढ़ते हुए सामान्य अधिकतम अंश के बीच बहुत से मध्यवर्ती स्तर होते हैं। इस मध्यस्तर में पूंजी निवेश के अनेक भिन्न-भिन्न पैमाने संभव हैं। इस मध्यस्तर की सीमाओं के भीतर घटती का होना संभव है और उसकी निम्नतम सीमा उस समय प्रचलित सामान्य न्यूनतम अंश होता है।

जब उत्पादन में अटकाव आ जाता है, जब बाज़ार में माल का अतिसंचय हो जाता है और जब कच्चे माल का भाव चढ़ता जाता है, इत्यादि, तब स्थायी पूंजी के स्वरूप के स्थापित हो जाने के साथ कार्य काल को घटाकर, यथा आधा करके प्रचल पूंजी के सामान्य परिव्यय को प्रतिबंधित कर दिया जाता है। इसके विपरीत समृद्धि के समय, जिसमें स्थायी पूंजी का स्वरूप निश्चित होता है, अंशतः कार्य काल के प्रसार द्वारा और अंशतः उसके तीव्रण द्वारा प्रचल पूंजी का असामान्य प्रसार होता है। जिन व्यवसायों में आरंभ से ही ऐसे उतार-चढ़ावों को ध्यान में रखना होता है, अंशतः उपर्युक्त उपायों को अपनाकर और अंशतः आरक्षित स्थायी पूंजी – यथा रेल मार्गों पर आरक्षित इंजन, वग़ैरह – के उपयोग के साथ-साथ एकसाथ ज्यादा मजदूर लगाकर परिस्थिति को सुधारा जाता है। किंतु हमने यहां सामान्य परिस्थितियों की ही कल्पना की है, अतः ऐसे असामान्य उतार-चढ़ावों पर यहां विचार नहीं किया जा रहा है।

अतः उत्पादन को अविच्छिन्न बनाने के लिए उसी प्रचल पूंजी के व्यय को यहां दीर्घतर अवधि पर – नौ के बदले बारह हफ़्तों पर – फैला दिया गया है। फलतः प्रत्येक काल खंड में घटी हुई उत्पादक पूंजी कार्य कर रही है। उत्पादक पूंजी के प्रचल भाग को सौ से घटाकर पचहत्तर, यानी एक चौथाई, कर दिया गया है। नौ हफ़्ते की कार्य अवधि में कार्यशील उत्पादक पूंजी से जो कुल राशि घटायी जाती है, वह २५ का नौगुना अथवा २२५ पाउंड, या ६०० पाउंड का एक चौथाई भाग है। किंतु आवर्त काल से परिचलन काल का अनुपात भी इसी प्रकार ३/१२, यानी एक चौथाई है। अतः इससे यह नतीजा निकलता है: अगर माल पूंजी में परिवर्तित उत्पादक पूंजी के परिचलन की अवधि में उत्पादन को अविच्छिन्न रखना है, अगर उसे एकसाथ और लगातार हफ़्ता दर हफ़्ता चालू रखना है, और अगर इस कार्य के लिए कोई विशेष प्रचल पूंजी सुलभ नहीं है, तो ऐसा उत्पादक कार्य को कम करके, कार्यशील उत्पादक पूंजी के प्रचल घटक को घटाकर ही किया जा सकता है। इस प्रकार परिचलन काल में उत्पादन के लिए प्रचल पूंजी का जो भाग मुक्त होता है, उसका कुल पेशगी प्रचल पूंजी से अनुपात वही होता है, जो परिचलन काल का आवर्त की अवधि से होता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यह बात उत्पादन की उन्हीं शाखाओं पर लागू होती है जहां श्रम प्रक्रिया हफ़्ता दर हफ़्ता एक ही पैमाने पर चालू रखी जाती है, अतः जहां विभिन्न कार्य अवधियों में पूंजी का विभिन्न राशियों में निवेश दरकार नहीं होता, यथा कृषि में।

दूसरी ओर, यदि हम मान लें कि व्यवसाय का स्वरूप ऐसा है कि उत्पादन का पैमाना

घटाया नहीं जा सकता और इस प्रकार प्रति सप्ताह पेशगी दी जानेवाली प्रचल पूंजी नहीं घटायी जा सकती, तब उत्पादन की अविच्छिन्नता केवल अतिरिक्त प्रचल पूंजी द्वारा क़ायम रखी जा सकती है, जो उपर्युक्त प्रसंग में ३०० पाउंड है। बारह हफ़्ते की आवर्त अवधि में १,२०० पाउंड का क्रमशः निवेश किया जाता है और ३०० पाउंड इस राशि का एक चौथाई हैं, जैसे तीन हफ़्ते बारह हफ़्तों का एक चौथाई हैं। नौ हफ़्ते की कार्य अवधि के अंत में ९०० पाउंड का पूंजी मूल्य उत्पादक पूंजी के रूप से माल पूंजी के रूप में बदल चुका होता है। उसकी कार्य अवधि समाप्त हो जाती है, किंतु उसे उसी पूंजी से फिर शुरू नहीं किया जा सकता। जिन तीन हफ़्तों में वह माल पूंजी का कार्य करता हुआ परिचलन क्षेत्र में रहता है, उतने समय में, जहां तक उत्पादन प्रक्रिया का संबंध है, वह एक ही अवस्था में रहता है मानो वह प्रक्रिया हो ही नहीं। प्रस्तुत प्रसंग में हम सारे उधार संबंधों को निकाल देते हैं और यह मान लेते हैं कि पूंजीपति अपने ही धन से काम करता है। किंतु पहली कार्य अवधि के लिए पेशगी पूंजी जब अपनी उत्पादक प्रक्रिया पूरी कर लेने पर तीन हफ़्ते परिचलन प्रक्रिया में बनी रहती है, तब ३०० पाउंड का अतिरिक्त पूंजी निवेश भी काम करता है, जिससे उत्पादन का अविच्छिन्न क्रम भंग नहीं होता।

इसलिए इस सिलसिले में निम्नलिखित बातें ध्यान में रखना चाहिए:

पहली: ९०० पाउंड की प्रथम पेशगी पूंजी की कार्य अवधि ९ हफ़्तों के बाद समाप्त हो जाती है और जब तक तीन हफ़्ते बीत न जायें, तब तक, अर्थात तेरहवें हफ़्ते के शुरू होने तक वह वापस नहीं आती। किंतु ३०० पाउंड की अतिरिक्त पूंजी के साथ नई कार्य अवधि तत्काल शुरू हो जाती है। इसके द्वारा उत्पादन का अविच्छिन्न क्रम बनाये रखा जाता है।

दूसरी: ९०० पाउंड की मूल पूंजी और नौ हफ़्ते की पहली कार्य अवधि की समाप्ति पर जोड़ी गयी ३०० पाउंड की नई अतिरिक्त पूंजी, जो पहली कार्य अवधि की समाप्ति पर किसी अंतराल के बिना दूसरी कार्य अवधि का उद्घाटन करती है, के कार्य आवर्त की पहली अवधि में स्पष्टतः अलग-अलग होते हैं अथवा कम से कम किये जा सकते हैं, जब कि आवर्त की दूसरी अवधि के दौरान वे एक दूसरे को काटते हैं।

इस बात को और स्पष्ट करना चाहिए।

बारह हफ़्ते की आवर्त की पहली अवधि। नौ हफ़्ते की पहली कार्य अवधि। इस अवधि के लिए जो पूंजी पेशगी दी जाती है, उसका आवर्त तेरहवें हफ़्ते के शुरू होते समाप्त हो जाता है। आख़िरी तीन हफ़्तों में ३०० पाउंड की अतिरिक्त पूंजी कार्य करती है, उससे नौ हफ़्ते की दूसरी अवधि की शुरूआत होती है।

आवर्त की दूसरी अवधि। तेरहवें हफ़्ते के आरंभ में ९०० पाउंड वापस आ जाते हैं और एक नया आवर्त शुरू कर सकते हैं। किंतु अतिरिक्त ३०० पाउंड से दसवें हफ़्ते में ही दूसरी कार्य अवधि शुरू की जा चुकी है। इसके फलस्वरूप तेरहवां हफ़्ता शुरू होते-होते एक तिहाई कार्य अवधि समाप्त हो चुकी होती है और उत्पादक पूंजी से ३०० पाउंड उत्पाद में परिवर्तित हो चुके होते हैं। चूंकि दूसरी कार्य अवधि पूरी करने के लिए केवल छः हफ़्ते और चाहिए, इसलिए दूसरी कार्य अवधि की उत्पादक प्रक्रिया में ९०० पाउंड की प्रत्यावर्तित पूंजी का केवल दो तिहाई, यानी केवल ६०० पाउंड प्रवेश कर सकते हैं। मूल ९०० पाउंड में से ३०० पाउंड अब उसी भूमिका के लिए मुक्त हो जाते हैं, जिसका निर्वाह पहली कार्य अवधि में ३०० पाउंड की अतिरिक्त पूंजी ने किया था। आवर्त की दूसरी अवधि का छठा

हफ़्ता ख़त्म होने पर दूसरी कार्य अवधि समाप्त हो जाती है। उसके दौरान ६०० पाउंड की पेशगी पूंजी तीन हफ़्ते बाद, अथवा दूसरी, बारह हफ़्ते की आवर्त अवधि का नवां हफ़्ता समाप्त होने पर वापस आती है। अपनी परिचलन अवधि के तीन हफ़्तों में ३०० पाउंड की मुक्त पूंजी कार्यरत हो जाती है। इससे आवर्त की दूसरी अवधि के सातवें हफ़्ते में अथवा वर्ष के उन्नीसवें हफ़्ते में ६०० पाउंड की पूंजी की तीसरी कार्य अवधि शुरू हो जाती है।

आवर्त की तीसरी **अवधि**। आवर्त की दूसरी अवधि के नवें सप्ताह के अंत में ६०० पाउंड का नया पश्चप्रवाह होता है। किंतु तीसरी कार्य अवधि पूर्ववर्ती आवर्त के सातवें हफ़्ते में ही शुरू हो चुकी है और उसके छः हफ़्ते गुज़र भी चुके हैं। अतः तीसरी कार्य अवधि केवल तीन हफ़्ते और चलती है। अतएव प्रत्यावर्तित ६०० पाउंड में से केवल ३०० पाउंड उत्पादक प्रक्रिया में प्रवेश करते हैं। आवर्त की इस अवधि के बाक़ी नौ हफ़्ते चौथी कार्य अवधि में आ जाते हैं और इस प्रकार साल के सैंतीसवें हफ़्ते से चौथी आवर्त अवधि तथा पांचवीं कार्य अवधि एकसाथ शुरू होती हैं।

परिकलन को सरल बनाने के लिए इस मामले में हम यह मान लेते हैं कि कार्य अवधि पांच हफ़्ते की और परिचलन अवधि पांच हफ़्ते की है, इस तरह आवर्त अवधि दस हफ़्ते की होगी। यह भी मान लीजिये कि साल में पचास हफ़्ते हैं और प्रति सप्ताह पूंजी परिव्यय १०० पाउंड है। तब कार्य अवधि के लिए ५०० पाउंड की प्रचल पूंजी की और परिचलन काल के लिए ५०० पाउंड की अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता होगी। तब कार्य अवधियां और आवर्त काल इस प्रकार होंगे:

पहली	कार्य अवधि	१- ५	हफ़्ते तक	(५०० पाउंड पण्य रूप में)	१० वें	हफ़्ते के अंत	में वापस
दूसरी	"	६-१०	"	(५०० ")	१५	"	"
तीसरी	"	११-१५	"	(५०० ")	२०	"	"
चौथी	"	१६-२०	"	(५०० ")	२५	"	"
पांचवीं	"	२१-२५	"	(५०० ")	३०	"	"

और इसी प्रकार आगे।

यदि परिचलन काल शून्य है, जिससे आवर्त अवधि कार्य अवधि के बराबर है, तो आवर्तों की संख्या वर्ष भर की कार्य अवधियों की संख्या के बराबर होगी। पांच हफ़्ते की कार्य अवधि होने पर इसका अर्थ होगा प्रति वर्ष आवर्त की ५०/५, अथवा १० अवधियां, और आवर्तित पूंजी का मूल्य १० का ५०० गुना, यानी ५,००० होगा। हमारी सारणी में, जिसमें हमने पांच हफ़्ते का परिचलन काल माना है, प्रति वर्ष उत्पादित वस्तुओं का कुल मूल्य भी ५,००० पाउंड होगा, किंतु इसका दसवां भाग, यानी ५०० पाउंड, हमेशा माल पूंजी के रूप में रहेगा और पांच हफ़्ते से पहले वापस नहीं आयेगा। साल ख़त्म होने पर दसवीं कार्य अवधि (४६ वें से लेकर ५० वें कार्य सप्ताह तक) का उत्पाद अपना आधा आवर्त काल ही पूरा कर पायेगा, और उसका परिचलन काल अगले साल के पहले पांच हफ़्तों में पड़ेगा।

अब हम तीसरा उदाहरण लेते हैं: कार्य अवधि ६ हफ़्ते, परिचलन काल ३ हफ़्ते, श्रम प्रक्रिया के दौरान हफ़्तावार पेशगी १०० पाउंड।

पहली कार्य अवधि: पहले से छठे हफ़्ते तक। छठे हफ़्ते के अंत में ६०० पाउंड की माल पूंजी, नवें हफ़्ते के अंत में वापस।

दूसरी कार्य अवधि : सातवें से बारहवें हफ़्ते तक। सातवें से नवें हफ़्ते के बीच ३०० पाउंड अतिरिक्त पूंजी पेशगी दी जाती है। नवां हफ़्ता ख़त्म होने पर ६०० पाउंड की वापसी। इनमें से ३०० पाउंड दसवें से बारहवें हफ़्ते के बीच पेशगी दिये जाते हैं। अतः बारहवां हफ़्ता ख़त्म होने पर ३०० पाउंड मुक्त हो जाते हैं, और ६०० पाउंड माल पूंजी के रूप में होते हैं, जिनकी वापसी पंद्रहवां हफ़्ता बीतने पर हो सकती है।

तीसरी कार्य अवधि : तेरहवें से अठारहवें हफ़्ते तक। तेरहवें से पंद्रहवें हफ़्ते के बीच पूर्वोक्त ३०० पाउंड की पेशगी, उसके बाद ६०० पाउंड का पश्चप्रवाह, जिनमें से ३०० पाउंड सोलहवें से अठारहवें हफ़्ते तक के लिए पेशगी दिये जाते हैं। अठारहवें हफ़्ते की समाप्ति पर ३०० पाउंड द्रव्य रूप में मुक्त होते हैं, ६०० पाउंड माल पूंजी के रूप में हैं, जो इक्कीसवें हफ़्ते की समाप्ति पर वापस आती है (इस प्रसंग का अधिक विस्तृत प्रस्तुतीकरण आगे, परिच्छेद २ में देखें)।

दूसरे शब्दों में नौ कार्य अवधियों (५४ हफ़्तों) के दौरान, कुल ९ का ६०० गुना अथवा ५,४०० पाउंड क़ीमत का माल उत्पादित होता है। नवीं कार्य अवधि के अंत में पूंजीपति के पास ३०० पाउंड द्रव्य रूप में होते हैं और ६०० पाउंड माल के रूप में, जिसने अभी अपनी परिचलन अवधि पूरी नहीं की है।

इन तीनों उदाहरणों की तुलना से पता चलता है कि एक तो ५०० पाउंड की प्रथम पूंजी तथा उसी प्रकार ५०० पाउंड की द्वितीय अतिरिक्त पूंजी का क्रमिक विमोचन दूसरे उदाहरण में ही होता है, जिससे पूंजी के इन दो अंशों का संचलन पृथक तथा एक दूसरे से स्वतंत्र होता है। किंतु ऐसा केवल इसलिए होता है कि हमने यह बहुत ही आपवादिक कल्पना की है कि कार्य अवधि और परिचलन काल आवर्त अवधि के दो बराबर हिस्से हैं। अन्य सभी मामलों में आवर्त अवधि के दो घटकों के बीच जो भी अंतर हो, दोनों पूंजियों के संचलन एक दूसरे को काटते हैं, जैसे आवर्त की दूसरी अवधि शुरू होने पर प्रथम और तृतीय उदाहरणों में। तब द्वितीय अतिरिक्त पूंजी प्रथम पूंजी के एक अंश के साथ उस पूंजी का निर्माण करती है, जो आवर्त की दूसरी अवधि में कार्यशील होती है, जब कि प्रथम पूंजी का शेष भाग द्वितीय पूंजी का मूल कार्य संपन्न करने के लिए मुक्त हो जाता है। माल पूंजी के परिचलन काल में क्रियाशील पूंजी इस प्रसंग में इस कार्य के लिए मूलतः पेशगी दी गई द्वितीय पूंजी के तद्रूप नहीं होती, किंतु उसका मूल्य वही होता है, और वह कुल पेशगी पूंजी का वही अशेषभाजक अंश होती है।

दूसरी बात : जो पूंजी कार्य अवधि में कार्यशील थी, वह परिचलन काल में बेकार पड़ी रहती है। दूसरे उदाहरण में पूंजी कार्य अवधि के पांच हफ़्तों में कार्यशील रहती है और परिचलन अवधि के पांच हफ़्तों में बेकार रहती है। अतः यहां प्रथम पूंजी कुल जितने समय बेकार रहती है, वह आधे साल के बराबर है। इस समय के बीच द्वितीय अतिरिक्त पूंजी ही प्रकट होती है, जो अपनी बारी में, प्रस्तुत प्रसंग में आधा साल बेकार पड़ी रह चुकी है। किंतु परिचलन काल में उत्पादन का सातत्य सुनिश्चित रखने के लिए आवश्यक अतिरिक्त पूंजी का निर्धारण वर्ष में परिचलन कालों की समुच्चित मात्रा अथवा उनके सकल योग से नहीं, वरन सिर्फ़ आवर्त काल से परिचलन काल के अनुपात से ही होता है। (निस्संदेह हम यहां मान लेते हैं कि सभी आवर्त एक जैसी परिस्थितियों में होते हैं।) इस कारण दूसरे उदाहरण में अतिरिक्त पूंजी के २,५०० पाउंड नहीं, ५०० पाउंड आवश्यक होंगे। यह केवल इसलिए होता है कि

आवर्त में अतिरिक्त पूंजी वैसे ही प्रवेश कर जाती है, जैसे मूलतः पेशगी दी गई पूंजी, और इसलिए यह भी उसी की तरह अपना परिमाण अपने आवर्तों की संख्या से ही बनाती है।

तीसरी बात: जिन परिस्थितियों पर यहां विचार किया जा रहा है, वे इस बात से प्रभावित नहीं होतीं कि उत्पादन काल कार्य काल से अधिक है कि नहीं। ठीक है कि इस तरह आवर्त अवधियों का समुच्चय प्रवर्धित हो जाता है, किंतु यह विस्तार श्रम प्रक्रिया के लिए कोई अतिरिक्त पूंजी आवश्यक नहीं बनाता। अतिरिक्त पूंजी केवल श्रम प्रक्रिया में परिचलन काल के कारण उत्पन्न होनेवाले अंतरालों को भरने का ही काम करती है। अतः वह उत्पादन की उन व्यवधानों से रक्षा करने के लिए ही होती है, जो परिचलन काल में उत्पन्न होते हैं। उत्पादन की विशेष परिस्थितियों से उत्पन्न व्यवधान दूसरे तरीक़े से दूर किया जाता है, किंतु यहां उसका विवेचन आवश्यक नहीं है। फिर भी ऐसे प्रतिष्ठान हैं, जिनमें काम केवल आर्डरों के अनुसार सविराम चलता है, जिससे कार्य अवधियों के बीच अंतराल रह सकते हैं। ऐसे मामलों में अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता pro tanto [तत्प्रमाणे] दूर हो जाती है। दूसरी ओर मौसमी काम के अधिकांश मामलों में पश्चप्रवाह के समय की एक निश्चित सीमा होती है। यदि पूंजी का परिचलन काल उस बीच समाप्त न हो जाये, तो वही काम अगले साल उसी पूंजी से नये सिरे से शुरू नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर परिचलन काल भी उत्पादन की दो अवधियों के अंतराल की अपेक्षा अल्प हो सकता है। उस हालत में यदि पूंजी का इस बीच नियोजन न किया जाये, तो वह ख़ाली पड़ी रहती है।

चौथी बात: किसी निश्चित कार्य अवधि के लिए जो पूंजी पेशगी दी जाती है—जैसे तीसरे उदाहरण में ६०० पाउंड—वह अंशतः कच्चे माल और सहायक सामग्री में, कार्य अवधि के लिए उत्पादक पूर्ति में, स्थिर प्रचल पूंजी में और अंशतः परिवर्ती प्रचल पूंजी में, स्वयं श्रम के भुगतान में लगायी जाती है। संभव है कि स्थिर प्रचल पूंजी में जो भाग लगाया जाता है, वह उतने ही समय तक उत्पादक पूर्ति के रूप में विद्यमान न रहे। उदाहरणतः, संभव है कि कच्चा माल समूची कार्य अवधि भर सुलभ न हो, कोयला हर दो हफ़्ते के बाद ही मिल पाता हो। फिर भी, चूंकि यहां उधार का अब भी प्रश्न नहीं है, इसलिए पूंजी के इस भाग को, क्योंकि वह उत्पादक पूर्ति के रूप में सुलभ नहीं है, द्रव्य रूप में पास रखना चाहिए, जिससे कि जब जैसी जरूरत पड़े, उसे उत्पादक पूर्ति में तबदील किया जा सके। इससे छः हफ़्ते के लिए पेशगी दिये स्थिर प्रचल पूंजी मूल्य का परिमाण नहीं बदल जाता। दूसरी ओर अप्रत्याशित ख़र्च के लिए द्रव्य पूर्ति, अड़चनें दूर करने के लिए वास्तविक आरक्षित निधि से निरपेक्ष मजदूरी छोटे अंतरालों के बाद, अधिकतर प्रति सप्ताह दी जाती है। इसलिए अगर पूंजीपति मजदूर को अधिक समय तक के लिए अपना श्रम पेशगी देने के लिए विवश न करे, तो मजदूरी के लिए आवश्यक पूंजी का द्रव्य रूप में पास रहना जरूरी है। अतः पूंजी के पश्चप्रवाह के दौरान श्रम के भुगतान के लिए उसका एक भाग द्रव्य रूप में रोक लेना होगा जब कि शेष भाग उत्पादक पूर्ति में परिवर्तित किया जा सकता है।

अतिरिक्त पूंजी बिल्कुल वैसे ही विभाजित होती है, जैसे मूल पूंजी। किंतु प्रथम पूंजी से वह इस बात में भिन्न होती है कि (उधार संबंधों के अलावा) स्वयं अपनी कार्य अवधि के हेतु सुलभ होने के लिए उसे प्रथम पूंजी की पहली कार्य अवधि के समूचे दौर में पेशगी दिया जाना होगा, जिसमें वह प्रवेश नहीं करती। आवर्त की पूरी अवधि के लिए पेशगी दिये जाने के कारण उसे इस काल में अब भी कम से कम अंशतः स्थिर प्रचल पूंजी में परिवर्तित

किया जा सकता है। वह किस सीमा तक यह रूप ग्रहण करती है अथवा यह परिवर्तन आवश्यक होने तक वह अतिरिक्त द्रव्य पूंजी के रूप में बनी रहती है, यह अंशतः व्यवसाय की निश्चित शाखाओं में उत्पादन की विशेष परिस्थितियों पर, अंशतः स्थानीय परिस्थितियों पर, अंशतः कच्चे माल की क़ीमतों के उतार-चढ़ाव, इत्यादि पर निर्भर करेगा। यदि सामाजिक पूंजी पर उसकी समग्रता में विचार किया जाये, तो इस अतिरिक्त पूंजी का न्यूनाधिक ख़ासा भाग काफ़ी समय सदा द्रव्य पूंजी की अवस्था में रहेगा। किंतु जहां तक द्वितीय पूंजी के उस भाग का संबंध है, जो मज़दूरी के लिए पेशगी दिया जायेगा, वह सदा केवल छोटी-छोटी कार्य अवधियों के समाप्त होने और उनका भुगतान किये जाने के साथ-साथ श्रम शक्ति में क्रमशः ही परिवर्तित होता है। इसलिए द्वितीय पूंजी का यह भाग द्रव्य पूंजी के रूप में समूची कार्य अवधि के दौरान तब तक सुलभ रहता है कि श्रम शक्ति में अपने परिवर्तन द्वारा वह उत्पादक पूंजी के कार्य में भाग न लेने लगे।

फलतः प्रथम पूंजी के परिचलन काल को उत्पादन काल में रूपांतरित करने के लिए आवश्यक अतिरिक्त पूंजी का परिग्रहण केवल पेशगी पूंजी के परिमाण में और समुच्चित पूंजी के अनिवार्यतः पेशगी दिये जाने के परिमाण में ही वृद्धि नहीं करता, बल्कि पेशगी पूंजी का जो भाग द्रव्य पूर्ति के रूप में होता है, अतः जो द्रव्य पूंजी की अवस्था में होता है और जिसका रूप संभाव्य द्रव्य पूंजी का होता है, उसमें भी, और विशिष्टतः उसमें ही, वृद्धि करता है।

यही बात तब भी होती है – जहां तक वह उत्पादक पूर्ति के रूप में और द्रव्य पूर्ति के रूप में भी पेशगी से संबंध रखती है, – जब परिचलन काल के कारण आवश्यक हुआ पूंजी का दो भागों – अर्थात पहली कार्य अवधि के लिए पूंजी और परिचलन काल के लिए प्रतिस्थापन पूंजी – में विभाजन पूंजी व्यय में वृद्धि के कारण नहीं, वरन उत्पादन के पैमाने के घटने के कारण होता है। यहां द्रव्य रूप में बंधी पूंजी की राशि उत्पादन के पैमाने के प्रसंग में और भी ज्यादा बढ़ती है।

पूंजी के इस मूलतः उत्पादक पूंजी और अतिरिक्त पूंजी में पृथक्करण से सामान्यतः जो हासिल किया जाता है, वह है कार्य अवधियों का निरंतर अनुक्रम, उत्पादक पूंजी की हैसियत से पेशगी पूंजी के समान भाग का सतत कार्य।

अब हम दूसरे उदाहरण पर नज़र डालेंगे। उत्पादन प्रक्रिया में निरंतर नियोजित पूंजी ५०० पाउंड है। चूंकि कार्य अवधि पांच हफ़्ते है, इसलिए पचास हफ़्ते के दौरान (जिन्हें वर्ष के बराबर माना गया है) वह दस बार काम करती है। इसलिए बेशी मूल्य के अलावा उसका उत्पाद ५०० पाउंड का १० गुना, यानी ५,००० पाउंड हुआ। उत्पादन प्रक्रिया में प्रत्यक्ष और अविच्छिन्न काम करनेवाली पूंजी – ५०० पाउंड पूंजी मूल्य – के दृष्टिकोण से परिचलन काल शून्य बना दिया गया लगता है। आवर्त काल कार्य अवधि से एकरूप हो जाता है और परिचलन काल को शून्य के बराबर मान लिया जाता है।

किंतु यदि ५०० पाउंड पूंजी की उत्पादक सक्रियता में पांच हफ़्ते के परिचलन काल द्वारा नियमित व्यवधान डाला जाये, जिससे कि वह दस हफ़्ते की समूची आवर्त अवधि ख़त्म होने पर ही फिर उत्पादन योग्य हो सके, तो साल के पचास हफ़्तों में हर दस सप्ताह के पांच आवर्त होंगे। इनमें पांच हफ़्ते की पांच उत्पादन अवधियां होंगी अथवा ५०० पाउंड के पांच गुना, यानी २,५०० पाउंड के कुल उत्पाद और पांच हफ़्ते की पांच परिचलन अवधियों अथवा उसी प्रकार पच्चीस हफ़्तों के कुल परिचलन काल के साथ कुल पच्चीस उत्पादक हफ़्ते होंगे।

इस प्रसंग में यदि हम कहें कि ५०० पाउंड की पूंजी वर्ष में ५ बार आवर्तित हुई है, तो यह साफ़ और स्पष्ट होगा कि हर आवर्त अवधि के आधे भाग में ५०० पाउंड की इस पूंजी ने उत्पादक पूंजी की हैसियत से कार्य किया ही नहीं; उसने कुल मिलाकर केवल आधे साल अपना कार्य किया, किंतु शेष आधे साल उसने कार्य किया ही नहीं।

हमारे उदाहरण में ५०० पाउंड की प्रतिस्थापन पूंजी उन पांच परिचलन अवधियों के दौरान सामने आती है और इस प्रकार आवर्त २,५०० पाउंड से बढ़कर ५,००० पाउंड हो जाता है। किंतु अब पेशगी पूंजी ५०० पाउंड के बदले १,००० पाउंड है। ५,००० को १,००० से भाग देने पर ५ आता है। इसलिए दस के बदले पांच आवर्त हुए। और लोग ठीक इसी ढंग से हिसाब लगाते हैं। लेकिन जब यह कहा जाता है कि १,००० पाउंड की पूंजी का साल में ५ बार आवर्त हुआ है, तब पूंजीपतियों की खोखली खोपड़ी से परिचलन काल की याद ग़ायब हो जाती है और यह उलझन भरी धारणा पैदा हो जाती है कि इस पूंजी ने पांचों क्रमिक आवर्तों के दौरान उत्पादन प्रक्रिया में निरंतर काम किया है। किंतु यदि हम कहें कि १,००० पाउंड की पूंजी ५ बार आवर्तित हुई है, तो इसमें परिचलन काल और उत्पादन काल दोनों शामिल होते हैं। वस्तुतः, यदि १,००० पाउंड उत्पादन प्रक्रिया में सचमुच निरंतर सक्रिय रहे हों, तो उत्पाद हमारी कल्पना के अनुसार ५,००० पाउंड के बदले १०,००० पाउंड का होगा। किंतु उत्पादन प्रक्रिया में १,००० पाउंड निरंतर बनाये रखने के लिए २,००० पाउंड पेशगी देने होंगे। अर्थशास्त्री, जिनके पास आम तौर पर आवर्त की क्रियाविधि के बारे में साफ़-साफ़ कहने को कुछ नहीं होता, इस मुख्य बात को हमेशा नज़रंदाज़ कर जाते हैं और वह यह कि अगर उत्पादन को अविच्छिन्न चलते रहना है, तो औद्योगिक पूंजी का केवल एक भाग उत्पादन प्रक्रिया में यथार्थतः संलग्न रह सकता है। एक भाग जब उत्पादन अवधि में होता है, तब दूसरे भाग को हमेशा परिचलन अवधि में रहना होगा अथवा दूसरे शब्दों में एक भाग उत्पादक पूंजी का कार्य इसी शर्त पर कर सकता है कि दूसरा भाग माल पूंजी या द्रव्य पूंजी के रूप में वास्तविक उत्पादन से निकाल लिया जाये। इसे नज़रंदाज़ करने से द्रव्य पूंजी का महत्व और उसकी भूमिका पूर्णतः अनदेखी रह जाती है।

अब हमें यह पता लगाना है कि यदि आवर्त अवधि के दो हिस्से – कार्य अवधि और परिचलन अवधि – बराबर हों अथवा यदि कार्य अवधि परिचलन अवधि से बड़ी या छोटी हो, तो इससे आवर्त में क्या अंतर पैदा होते हैं; और इसके अलावा द्रव्य पूंजी के रूप में पूंजी के बंध जाने पर इसका क्या असर होता है।

हम मान लेते हैं कि प्रति सप्ताह पेशगी पूंजी सभी प्रसंगों में १०० पाउंड है और आवर्त अवधि नौ हफ़्ते है, जिससे आवर्त की प्रत्येक अवधि में पेशगी दी जानेवाली पूंजी ९०० पाउंड है।

१. परिचलन अवधि के बराबर कार्य अवधि

यद्यपि वास्तव में यह प्रसंग आकस्मिक अपवाद की तरह ही सामने आता है, फिर भी हम इसे इस अनुसंधान में अपना प्रस्थान बिंदु मानेंगे, क्योंकि यहां संबंध सबसे सादे और सबसे सुबोध तरीक़े से आकार ग्रहण करते हैं।

दोनों पूंजियां (पहली कार्य अवधि के लिए पेशगी दी गई पूंजी १ और अतिरिक्त पूंजी २ जो पूंजी १ की परिचलन अवधि के दौरान कार्य करती है), अपने संचलन में एक दूसरे को काटे बिना एक दूसरे की जगह लेती हैं। अतः पहली अवधि को छोड़कर, दोनों में प्रत्येक पूंजी केवल अपनी आवर्त अवधि के लिए पेशगी दी जाती है। जैसा कि आगे के उदाहरणों में दिखाया गया है, मान लीजिये कि आवर्त अवधि ९ हफ़्ते की है, जिससे कि कार्य अवधि और परिचलन अवधि प्रत्येक ४ १/२ हफ़्ते की हुई। तब हमारे सामने यह वार्षिक आरेख आता है।

सारणी १

पूंजी १

आवर्त अवधियां	कार्य अवधियां	पेशगी	परिचलन अवधियां
१. १- ९ हफ़्ते तक	१- ४ १/२ हफ़्ते तक	४५० पाउंड	४ १/२- ९ हफ़्ते तक
२. १०-१८ " "	१०-१३ १/२ " "	४५० "	१३ १/२-१८ " "
३. १९-२७ " "	१९-२२ १/२ " "	४५० "	२२ १/२-२७ " "
४. २८-३६ " "	२८-३१ १/२ " "	४५० "	३१ १/२-३६ " "
५. ३७-४५ " "	३७-४० १/२ " "	४५० "	४० १/२-४५ " "
६. ४६-[५४] " "	४६-४९ १/२ " "	४५० "	४९ १/२-[५४] " "[31]

[31] आवर्त के दूसरे वर्ष में पड़नेवाले हफ़्ते कोष्ठकों में दिये गये हैं।

पूंजी २

आवर्त अवधियां	कार्य अवधियां	पेशगी	परिचलन अवधियां
१. ४ १/२-१३ १/२ हफ़्ते तक	४ १/२-९ हफ़्ते तक	४५० पाउंड	१०-१३ १/२ हफ़्ते तक
२. १३ १/२-२२ १/२ " "	१३ १/२-१८ " "	४५० पाउंड	१९-२२ १/२ " "
३. २२ १/२-३१ १/२ " "	२२ १/२-२७ " "	४५० पाउंड	२८-३१ १/२ " "
४. ३१ १/२-४० १/२ " "	३१ १/२-३६ " "	४५० पाउंड	३७-४० १/२ " "
५. ४० १/२-४९ १/२ " "	४० १/२-४५ " "	४५० पाउंड	४६-४९ १/२ " "
६. ४९ १/२-[५८ १/२] " "	४९ १/२-[५४] " "	४५० पाउंड	[५५-५८ १/२] " "

५१ हफ़्तों के भीतर, जो यहां साल भर के बराबर है, पूंजी १ ४५० का ६ गुना अथवा २,७०० पाउंड की पण्य वस्तुओं का उत्पादन करती हुई पूरी छः कार्य अवधियां पार करती है और पूंजी २ पूरी ५ कार्य अवधियों में ४५० पाउंड का ५ गुना, यानी २,२५० पाउंड की पण्य वस्तुएं उत्पादित करती है। इसके अलावा पूंजी २ ने वर्ष के आख़िरी डेढ़ हफ़्तों में (५० वें के मध्य से लेकर ,५१ वें हफ़्ते के अंत तक) १५० पाउंड का अतिरिक्त माल पैदा किया। ५१ हफ़्तों का कुल उत्पाद ५,१०० पाउंड का है। जहां तक बेशी मूल्य के प्रत्यक्ष उत्पादन का संबंध है, जो केवल कार्य अवधि के दौरान होता है, ९०० पाउंड की कुल पूंजी, ५ २/३ बार (९०० का ५ २/३ गुना ५,१०० पाउंड के बराबर है) आवर्तित हो चुकेगी। किंतु यदि हम वास्तविक आवर्त पर विचार करें, तो पूंजी १ ५ २/३ बार आवर्तित हुई है, क्योंकि ५१वें हफ़्ते के अंत में उसकी छठी आवर्त अंवधि के ३ हफ़्ते पार करना अब भी बाक़ी रहता है; ४५० का ५ २/३ गुना २,५५० पाउंड के बराबर है; और पूंजी २ ५ १/६ बार आवर्तित हुई, क्योंकि उसने अपनी छठी आवर्त अवधि का डेढ़ हफ़्ता ही पार किया है, जिससे कि उसके ७ १/२ हफ़्ते अगले वर्ष में जा पड़ते हैं; ४५० का ५ १/६ गुना २,३२५ पाउंड के बराबर है; वास्तविक समग्र आवर्त ४,८७५ पाउंड है।

आइये, पूंजी १ और पूंजी २ पर एक दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र पूंजियों की तरह विचार करें। वे अपने संचलन में पूर्णतः स्वाधीन हैं, ये संचलन एक दूसरे के पूरक केवल इसलिए हैं कि उनकी कार्य तथा परिचलन अवधिया एक दूसरे की प्रत्यक्षतः एवज़ी करती हैं। उन्हें दो भिन्न पूंजीपतियों की दो नितांत स्वतंत्र पूंजियां माना जा सकता है।

पूंजी १ ने ५ पूरे आवर्त और छठे आवर्त का दो तिहाई भाग पूर्ण कर लिये हैं। वर्ष के अंत में उसका रूप माल पूंजी का है, जिसके सामान्य सिद्धिकरण में तीन हफ़्ते बाक़ी हैं। इस समय के दौरान वह उत्पादन प्रक्रिया में प्रवेश नहीं कर सकती। वह माल पूंजी के रूप में कार्य करती है, वह परिचालित होती है। उसने अपनी अंतिम आवर्त अवधि का दो तिहाई भाग ही पूरा किया है। इसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया जाता है: वह केवल दो तिहाई भाग आवर्तित हुई है, उसके समग्र मूल्य के दो तिहाई भाग ने ही संपूर्ण आवर्त संपन्न किया है। हम कहते हैं कि ४५० पाउंड अपना आवर्त ९ हफ़्ते में पूरा करते हैं, अतः ३०० पाउंड यह काम ६ हफ़्ते में करते हैं। किंतु अभिव्यक्ति के इस ढंग में आवर्त काल के दो विशिष्टतः भिन्न घटकों के सहज संबंध को अनदेखा कर दिया जाता है। ४५० पाउंड की पेशगी पूंजी ने ५ २/३ आवर्त पूरे किये हैं, इस अभिव्यक्ति का ठीक-ठीक अर्थ केवल यह है कि उसने ५ आवर्त पूर्णतः संपन्न किये हैं और छठे का केवल दो तिहाई भाग किया है। दूसरी ओर यह अभिव्यक्ति सही है कि आवर्तित पूंजी पेशगी पूंजी के ५ २/३ गुने के बराबर है; अतः ऊपर के प्रसंग में ४५० पाउंड का ५ २/३ गुना २,५५० पाउंड हुआ। इस का अर्थ यह हुआ कि इस ४५० पाउंड की पूंजी के साथ जब तक ४५० पाउंड की दूसरी पूरक पूंजी न हो, तब तक उसके एक भाग को उत्पादन प्रक्रिया में, जब कि दूसरे को परिचलन प्रक्रिया में होना होगा। यदि आवर्त काल आवर्तित पूंजी द्वारा अभिव्यक्त किया जाना है, तो उसे सदा केवल विद्यमान मूल्य (वास्तव में तैयार उत्पाद के मूल्य) द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है। पेशगी पूंजी ऐसी स्थिति में नहीं है, जिसमें वह उत्पादन प्रक्रिया फिर शुरू कर सके, यह परिस्थिति इस बात में प्रकट होती है कि उसका केवल एक भाग उत्पादन करने योग्य अवस्था में है अथवा यह कि निरंतर उत्पादन की अवस्था में होने के लिए पूंजी को एक ऐसे भाग में, जो निरंतर उत्पादन अवधि

में रहेगा और दूसरे भाग में बांटना होगा, जो निरंतर परिचलन अवधि में रहेगा, और यह इन दोनों अवधियों के परस्पर संबंध पर निर्भर करेगा। यह वही नियम है, जो परिचलन काल से आवर्त काल के अनुपात द्वारा निरंतर कार्यशील उत्पादक पूंजी की मात्रा निर्धारित करता है।

५१ वां हफ़्ता समाप्त होने तक, जिसे यहां हम वर्ष का अंत मान रहे हैं, पूंजी २ से १५० पाउंड माल के अधूरे तैयार पुंज के उत्पादन के लिए पेशगी दिये जा चुके हैं। उसका दूसरा भाग प्रचल स्थिर पूंजी – कच्चे माल, वग़ैरह – के रूप में, अर्थात ऐसे रूप में विद्यमान है, जिसमें वह उत्पादक पूंजी की तरह उत्पादन प्रक्रिया में कार्य कर सकता है। लेकिन उसका तीसरा भाग द्रव्य रूप में, कम से कम बाक़ी कार्य अवधि (३ हफ़्ते) की मजदूरी की मात्रा के रूप में विद्यमान है, किंतु यह मजदूरी हफ़्ता ख़त्म होने पर ही दी जाती है। अब पूंजी का यह भाग यद्यपि हर साल के शुरू में, इसलिए हर नये आवर्त चक्र के आरंभ में उत्पादक पूंजी के रूप में नहीं, वरन द्रव्य पूंजी के रूप में होता है, जिसमें वह उत्पादन प्रक्रिया में भाग नहीं ले सकता, फिर भी नया आवर्त शुरू होने पर प्रचल परिवर्ती पूंजी, अर्थात जीवंत श्रम शक्ति उत्पादन प्रक्रिया में कार्यरत होती है। ऐसा इस कारण होता है कि हफ़्ता ख़त्म होने तक श्रम शक्ति का भुगतान नहीं किया जाता, यद्यपि वह कार्य अवधि के आरंभ में, यथा प्रति सप्ताह ख़रीदी जा सकती है और इसी प्रकार प्रयुक्त भी होती है। यहां धन भुगतान के साधन का काम करता है। इस कारण वह एक ओर पूंजीपति के पास अभी द्रव्य रूप में ही होता है, जब कि दूसरी ओर श्रम शक्ति – वह माल, जिसमें द्रव्य रूपांतरित हो रहा है, – अब भी उत्पादन प्रक्रिया में कार्यरत हो चुकी है। इससे एक ही पूंजी मूल्य यहां दोहरे ढंग से प्रकट होता है।

यदि हम केवल कार्य अवधियों पर दृष्टिपात करें, तो

पूंजी १ उत्पादित करती है	४५० का ६ गुना अथवा	२,७०० पाउंड
पूंजी २ उत्पादित करती है	४५० का ५ १/३ गुना अथवा	२,४०० पाउंड
अतः कुल मिलाकर	९०० का ५ २/३ गुना अथवा	५,१०० पाउंड।

इसलिए ९०० पाउंड की कुल पेशगी पूंजी ने उत्पादक पूंजी के रूप में वर्ष भर में ५ २/३ बार कार्य किया है। बेशी मूल्य के उत्पादन के लिए यह निरर्थक है कि उत्पादन प्रक्रिया में सदा ४५० पाउंड और परिचलन प्रक्रिया में सदा ४५० पाउंड रहते हैं अथवा ९०० पाउंड उत्पादन प्रक्रिया में ४ १/२ हफ़्ते कार्य करते हैं, और अगले ४ १/२ हफ़्ते परिचलन प्रक्रिया में कार्य करते हैं।

दूसरी ओर, यदि हम आवर्त की अवधियों पर विचार करें, तो निम्न आवर्त हुआ है :

पूंजी १	४५० का ५ २/३ गुना अथवा	२,५५० पाउंड
पूंजी २	४५० का ५ १/६ गुना अथवा	२,३२५ पाउंड
अतः कुल पूंजी	९०० का ५ ५/१२ गुना अथवा	४,८७५ पाउंड।

कारण यह है कि कुल पूंजी के आवर्तों की संख्या पूंजी १ तथा २ के योग द्वारा विभाजित पूंजी १ तथा २ द्वारा आवर्तित राशियों के योग के बराबर होती है।

इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि यदि पूंजी १ तथा २ परस्पर स्वतंत्र हों, तो भी वे एक ही क्षेत्र में पेशगी दी गई सामाजिक पूंजी के भिन्न स्वतंत्र भाग मात्र होंगी। अतः यदि

इस उत्पादन क्षेत्र के भीतर की सामाजिक पूंजी केवल पूंजी १ तथा २ से ही गठित हो, तो इस क्षेत्र में सामाजिक पूंजी के आवर्त का परिकलन भी वैसे ही होगा, जैसे यहां एक ही निजी पूंजी के १ और २ घटकों का होता है। और आगे जाने पर किसी भी ख़ास उत्पादन क्षेत्र में निवेशित कुल सामाजिक पूंजी के प्रत्येक भाग का परिकलन इसी तरह किया जा सकता है। किंतु अंतिम विश्लेषण में कुल सामाजिक पूंजी के आवर्तों की संख्या विभिन्न उत्पादन क्षेत्रों में पेशगी पूंजियों के योग द्वारा विभाजित उन क्षेत्रों में आवर्तित पूंजियों के योग के बराबर होती है।

इसके अलावा इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि जैसे यहां सही अर्थों में उसी निजी व्यवसाय में १ और २ पूंजियों के आवर्त वर्ष भिन्न-भिन्न होते हैं (पूंजी २ का आवर्त चक्र पूंजी १ के आवर्त चक्र के मुक़ाबले ४१/२ हफ़्ते बाद शुरू होता है, जिससे कि पूंजी १ का वर्ष पूंजी २ की अपेक्षा ४१/२ हफ़्ते पहले समाप्त होता है), वैसे ही उत्पादन के उसी क्षेत्र में विभिन्न निजी पूंजियां अपने काम नितांत भिन्न अवधियों में शुरू करती हैं और इसलिए अपने आवर्त वर्ष भी वर्ष के भिन्न-भिन्न समय पर पूरे करती हैं। औसतों का वही परिकलन, जिसका हमने ऊपर १ और २ पूंजी के लिए उपयोग किया था, यहां भी सामाजिक पूंजी के विभिन्न स्वतंत्र भागों के आवर्त वर्षों को एक ही समरूप आवर्त वर्ष पर लाने के लिए पर्याप्त है।

२. परिचलन अवधि से बड़ी कार्य अवधि

१ और २ पूंजियों की कार्य तथा आवर्त अवधियां एक दूसरे की एवज़ी करने के बदले एक दूसरे को काटती हैं। इसके साथ ही कुछ पूंजी मुक्त हो जाती है। पहले विवेचित मामले में ऐसा नहीं था।

किंतु इससे यह तथ्य नहीं बदल जाता कि पहले की तरह, १) कुल पेशगी पूंजी की कार्य अवधियों की संख्या कुल पेशगी पूंजी द्वारा विभाजित पूंजी के दोनों पेशगी भागों के वार्षिक उत्पाद के मूल्य के योग के बराबर होती है, और २) कुल पूंजी द्वारा संपन्न किये आवर्तों की संख्या दोनों पेशगी पूंजियों के योग द्वारा विभाजित दोनों आवर्तित राशियों के योग के बराबर होती है। यहां भी हमें पूंजी के दोनों भागों पर इस तरह विचार करना चाहिए, मानो उन्होंने एक दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र रहकर अपनी आवर्त गति पूरी की हो।

इस प्रकार हम एक बार फिर मान लेते हैं कि श्रम प्रक्रिया के लिए प्रति सप्ताह १०० पाउंड पेशगी देने होंगे। मान लीजिये कि कार्य अवधि ६ हफ़्ते की है, इसलिए हर बार ६०० पाउंड (पूंजी १) की पेशगी दरकार होगी। मान लीजिये कि परिचलन काल ३ हफ़्ते का है, जिससे कि आवर्त अवधि पहले की ही तरह ९ हफ़्ते की होगी। मान लीजिये कि अब पूंजी १ की ३ हफ़्ते की परिचलन अवधि के दौरान ३०० पाउंड की पूंजी २ पदार्पण करती है। दोनों पूंजियों को परस्पर स्वतंत्र मानने पर हम देखते हैं कि वार्षिक आवर्त का कार्यक्रम इस प्रकार रहता है:

सारणी २

पूंजी १, ६०० पाउंड

आवर्त अवधियां	कार्य अवधियां	पेशगी	परिचलन अवधियां
१. १- ६ हफ़्ते तक	१- ६ हफ़्ते तक	६०० पाउंड	७- ६ हफ़्ते तक
२. १०-१८ " "	१०-१५ " "	६०० "	१६-१८ " "
३. १६-२७ " "	१६-२४ " "	६०० "	२५-२७ " "
४. २८-३६ " "	२८-३३ " "	६०० "	३४-३६ " "
५. ३७-४५ " "	३७-४२ " "	६०० "	४३-४५ " "
६. ४६-[५४] " "	४६-५१ " "	६०० "	[५२-५४] " "

अतिरिक्त पूंजी २, ३०० पाउंड

आवर्त अवधियां	कार्य अवधियां	पेशगी	परिचलन अवधियां
१. ७-१५ हफ़्ते तक	७- ६ हफ़्ते तक	३०० पाउंड	१०-१५ हफ़्ते तक
२. १६-२४ " "	१६-१८ " "	३०० "	१६-२४ " "
३. २५-३३ " "	२५-२७ " "	३०० "	२८-३३ " "
४. ३४-४२ " "	३४-३६ " "	३०० "	३७-४२ " "
५. ४३-५१ " "	४३-४५ " "	३०० "	४६-५१ " "

उत्पादन प्रक्रिया सारे वर्ष एक ही पैमाने पर अविच्छिन्न चालू रहती है। दोनों पूंजियां १ और २ पूर्णतः अलग रहती हैं। किंतु उन्हें अलग दिखाने के लिए हमें उनके वास्तविक प्रतिच्छेदनों और अंतर्ग्रंथनों को विच्छिन्न करना पड़ा था और इस तरह आवर्तों की संख्या भी बदलनी पड़ी थी। कारण यह कि उपरोक्त सारणी के अनुसार आवर्तित राशियां इस प्रकार होतीं :

पूंजी १ द्वारा ६०० का ५ २/३ गुना अथवा ३,४०० पाउंड और
पूंजी २ द्वारा ३०० का ५ गुना अथवा १,५०० पाउंड

अतः कुल पूंजी द्वारा ६०० का ५ ४/६ गुना अथवा ४,६०० पाउंड।

किंतु यह सही नहीं है, क्योंकि जैसा कि हम आगे देखेंगे, उत्पादन और परिचलन की यथार्थ अवधियां उपरिलिखित कार्यक्रम की अवधियों से पूर्णतः मेल नहीं खातीं, जिसमें मुख्यतः १ और २ पूंजियों को परस्पर स्वतंत्र दिखाने का प्रश्न था।

यथार्थ में पूंजी २ की पूंजी १ से कोई पृथक तथा भिन्न कार्य और परिचलन अवधियां नहीं होतीं। कार्य अवधि ६ हफ़्ते है और परिचलन अवधि ३ हफ़्ते। चूंकि पूंजी २ केवल ३०० पाउंड राशि की ही है, इसलिए वह कार्य अवधि के एक भाग के लिए ही पर्याप्त हो सकती

है। स्थिति वास्तव में यही है। छठे हफ़्ते के अंत में ६०० पाउंड मूल्य का उत्पाद परिचलन में पहुंच जाता है और नवें हफ़्ते के अंत में द्रव्य रूप में वापस आ जाता है। साथ ही सातवां हफ़्ता शुरू होने पर पूंजी २ अपना क्रियाकलाप शुरू कर देती है और सातवें से नवें हफ़्ते तक अगली कार्य अवधि की आवश्यकताओं को पूरा करती है। किंतु हमारी कल्पना के अनुसार नवें हफ़्ते की समाप्ति तक केवल आधी कार्य अवधि पूरी होती है। अतः ६०० पाउंड की पूंजी १, जो अभी वापस आयी ही है, दसवें हफ़्ते के आरंभ में एक बार फिर कार्यशील हो जाती है और अपने ३०० पाउंड से दसवें से बारहवें हफ़्ते तक के लिए आवश्यक पेशगी मुहैया करती है। इससे दूसरी कार्य अवधि का निपटारा हो जाता है। ६०० पाउंड का उत्पाद मूल्य परिचलन में है और पंद्रहवें हफ़्ते के अंत में वापस आयेगा। इसके साथ ही ३०० पाउंड, मूल पूंजी २ की राशि, मुक्त हो जाते हैं और अगली कार्य अवधि के पूर्वार्ध में, अर्थात तेरहवें से पंद्रहवें हफ़्ते के बीच कार्यशील हो सकते हैं। इन हफ़्तों के बीत जाने पर ६०० पाउंड वापस आ जाते हैं; इनमें से ३०० पाउंड शेष कार्य अवधि के लिए पर्याप्त होते हैं, और ३०० पाउंड अगली कार्य अवधि के लिए बच रहते हैं।

इसलिए यह इस तरह होता है:

पहली आवर्त अवधि: पहले से नवें हफ़्ते तक।

- पहली कार्य अवधि: पहले से छठे हफ़्ते तक। पूंजी १, ६०० पाउंड, कार्यशील है।
- पहली परिचलन अवधि: सातवें से नवें हफ़्ते तक। नवें हफ़्ते की समाप्ति, ६०० पाउंड वापस आ जाते हैं।

दूसरी आवर्त अवधि: सातवें से पंद्रहवें हफ़्ते तक।

- दूसरी कार्य अवधि: सातवें से बारहवें हफ़्ते तक।
    - पूर्वार्ध: सातवें से नवें हफ़्ते तक। पूंजी २, ३०० पाउंड, कार्यशील है। नवें हफ़्ते की समाप्ति, ६०० पाउंड द्रव्य रूप में (पूंजी १) वापस आते हैं।
    - उत्तरार्ध: दसवें से बारहवें हफ़्ते तक। पूंजी १ के ३०० पाउंड कार्यशील हैं। पूंजी १ के अन्य ३०० पाउंड मुक्त रहते हैं।
- दूसरी परिचलन अवधि: तेरहवें से पंद्रहवें हफ़्ते तक।
    - पंद्रहवें हफ़्ते की समाप्ति, ६०० पाउंड (आधे पूंजी १ से और आधे पूंजी २ से) द्रव्य रूप में वापस आते हैं।

तीसरी आवर्त अवधि: तेरहवें से इक्कीसवें हफ़्ते तक।

- तीसरी कार्य अवधि: तेरहवें से अठारहवें हफ़्ते तक।
    - पूर्वार्ध: तेरहवें से पंद्रहवें हफ़्ते तक। मुक्त हुए ३०० पाउंड अपना कार्य करते हैं। पंद्रहवें हफ़्ते की समाप्ति, ६०० पाउंड द्रव्य रूप में वापस आते हैं।
    - उत्तरार्ध: सोलहवें से अठारहवें हफ़्ते तक। प्रत्यावर्तित ६०० पाउंड में से ३०० पाउंड कार्यशील रहते हैं, शेष ३०० पाउंड पुनः मुक्त रहते हैं।
- तीसरी परिचलन अवधि: उन्नीसवें से इक्कीसवें हफ़्ते तक; इसकी समाप्ति पर ६०० पाउंड द्रव्य रूप में फिर वापस आ जाते हैं; इन ६०० पाउंड में पूंजी १ और पूंजी २ अब अविभिन्न रूप में मिल गई हैं।

तो इस तरह इक्यावनवें हफ़्ते की समाप्ति तक ६०० पाउंड पूंजी की आठ पूर्ण आवर्त अवधियां हैं (१: १-९ हफ़्ते तक; २: ७-१५; ३: १३-२१; ४: १९-२७; ५: २५-३३;

६ : ३१-३६ ; ७ : ३७-४५ ; ८ : ४३-५१ हफ़्ते तक)। किंतु चूंकि ४६-५१ वें हफ़्ते परिचलन की आठवीं अवधि में पड़ते हैं, इसलिए मुक्त हुई पूंजी के ३०० पाउंड को दख़ल देना और उत्पादन को चालू रखना होगा। चुनांचे साल के अंत में आवर्त इस प्रकार होता है : ६०० पाउंड अपना परिपथ ८ बार पूरा कर चुके हैं, उनका कुल योग ४,८०० पाउंड है। इसके अतिरिक्त हमारे पास आख़िरी तीन हफ़्तों (४६-५१) का उत्पाद भी है, किंतु उसने अपने ६ हफ़्ते के परिपथ का एक तिहाई भाग ही पार किया है, इसलिए आवर्तित राशि में उसकी राशि का केवल एक तिहाई, १०० पाउंड आता है। इसलिए यदि ५१ हफ़्तों का वार्षिक उत्पाद ५,१०० पाउंड हो, तो आवर्तित पूंजी केवल ४,८००+१००, यानी ४,६०० पाउंड हुई। अतः कुल पेशगी पूंजी, ६०० पाउंड, का आवर्त ५ ४/६ बार हुआ, जो पहले प्रसंग की तुलना में थोड़ा सा अधिक है।

प्रस्तुत उदाहरण में हमने ऐसे मामले की कल्पना की है, जिसमें कार्य काल आवर्त अवधि का २/३ और परिचलन काल १/३ है, अर्थात कार्य काल परिचलन काल का सरल गुणज है। अब प्रश्न यह है कि जब यह कल्पना नहीं की जाती, क्या पूंजी तब भी ऊपर बताये ढंग से मुक्त होती है अथवा नहीं।

मान लीजिये कि कार्य काल ५ हफ़्तों का है, परिचलन काल ४ हफ़्ते और पूंजी की प्रति सप्ताह पेशगी १०० पाउंड है।

पहली आवर्त अवधि : पहले से नवें हफ़्ते तक।

पहली कार्य अवधि : पहले से पांचवें हफ़्ते तक। पूंजी १, ५०० पाउंड, अपना कार्य करती है।

पहली परिचलन अवधि : छठे से नवें हफ़्ते तक। नवां हफ़्ता ख़त्म होने पर ५०० पाउंड द्रव्य रूप में वापस आ जाते हैं।

दूसरी आवर्त अवधि : छठे से चौदहवें हफ़्ते तक।

दूसरी कार्य अवधि : छठे से दसवें हफ़्ते तक।

पहला हिस्सा : छठे से नवें हफ़्ते तक। पूंजी २, ४०० पाउंड, अपना कार्य करती है। नवें हफ़्ते की समाप्ति, पूंजी १, ५०० पाउंड, द्रव्य रूप में वापस आ जाती है।

दूसरा हिस्सा : दसवां हफ़्ता। वापस आये हुए ५०० पाउंड में से १०० पाउंड अपना कार्य करते हैं। शेष ४०० पाउंड अगली कार्य अवधि के लिए मुक्त हो जाते हैं।

दूसरी परिचलन अवधि : ग्यारहवें से चौदहवें हफ़्ते तक। चौदहवें हफ़्ते की समाप्ति, ५०० पाउंड द्रव्य रूप में वापस आते हैं।

चौदहवें हफ़्ते की समाप्ति (११-१४) तक ऊपर मुक्त हुए ४०० पाउंड अपना कार्य करते हैं ; तब वापस आये ५०० पाउंड में से १०० पाउंड तीसरी कार्य अवधि (११-१५ वें हफ़्ते तक) की ज़रूरतें पूरी करते हैं, जिससे चौथी कार्य अवधि के लिए ४०० पाउंड फिर मुक्त हो जाते हैं। प्रत्येक कार्य अवधि में इसी की आवृत्ति होती है ; उसके आरंभ में ४०० पाउंड उपलब्ध होते हैं, जो ४ हफ़्ते के लिए काफ़ी होते हैं। चौथा हफ़्ता ख़त्म होने पर ५०० पाउंड द्रव्य रूप में वापस आ जाते हैं, इनमें से केवल १०० पाउंड आख़िरी हफ़्ते के लिए आवश्यक होते हैं और शेष ४०० पाउंड अगली कार्य अवधि के लिए मुक्त रहते हैं।

हम यह और मान लेते हैं कि एक कार्य अवधि ७ हफ़्ते की है और उसमें पूंजी १ ७०० पाउंड की है ; परिचलन अवधि २ हफ़्ते की है और पूंजी २ २०० पाउंड की है।

इस मामले में पहली आवर्त अवधि पहले से नवें हफ़्ते तक होगी ; उसकी पहली कार्य अवधि पहले से सातवें हफ़्ते तक होगी और पेशगी पूंजी ७०० पाउंड होगी। उसकी पहली परिचलन अवधि आठवें से नवें हफ़्ते तक होगी। नवां हफ़्ता ख़त्म होने पर ७०० पाउंड द्रव्य रूप में लौट आयेंगे।

दूसरी आवर्त अवधि में, जो आठवें से सोलहवें हफ़्ते तक होगी, आठवें से चौदहवें हफ़्ते तक की दूसरी कार्य अवधि होगी। इस अवधि के अंतर्गत आठवें और नवें हफ़्ते की ज़रूरतें पूंजी २ पूरा करेगी। नवां हफ़्ता ख़त्म होने पर उपर्युक्त ७०० पाउंड लौट आयेंगे। इस कार्य अवधि की समाप्ति (दसवें से चौदहवें हफ़्ते) तक इस राशि में से ५०० पाउंड काम आ चुके होंगे ; २०० पाउंड अगली कार्य अवधि के लिए मुक्त रहेंगे। दूसरी परिचलन अवधि पंद्रहवें से सोलहवें हफ़्ते तक होगी। सोलहवां हफ़्ता ख़त्म होने पर ७०० पाउंड फिर वापस आयेंगे। इसके बाद से प्रत्येक कार्य अवधि में इसी आवृत्ति होगी। पहले दो हफ़्तों में पूंजी की ज़रूरत पूर्ववर्ती कार्य अवधि की समाप्ति पर मुक्त हुए २०० पाउंड से पूरी हो जायेगी ; दूसरे हफ़्ते की समाप्ति पर ७०० पाउंड लौट आते हैं, किंतु अब कार्य अवधि में पांच हफ़्ते ही बचते हैं, जिससे उसमें अब केवल ५०० पाउंड की खपत होगी। इसलिए २०० पाउंड अगली कार्य अवधि के लिए हमेशा मुक्त रहेंगे।

इस तरह पता चलता है कि प्रस्तुत प्रसंग में, जहां यह माना गया है कि कार्य अवधि परिचलन अवधि से बड़ी है, हर हालत में प्रत्येक कार्य अवधि की समाप्ति पर द्रव्य पूंजी मुक्त हो जायेगी, जिसका परिमाण उतना ही होगा, जितना परिचलन अवधि के लिए पेशगी पूंजी २ का है। हमारे तीनों उदाहरणों में से पहले में पूंजी २ ३०० पाउंड थी, दूसरे में ४०० पाउंड और तीसरे में २०० पाउंड। तदनुसार प्रत्येक कार्य अवधि की समाप्ति पर मुक्त हुई पूंजी क्रमशः ३००, ४०० और २०० पाउंड है।

३. परिचलन अवधि से कम कार्य अवधि

हम एक बार फिर यह मानकर चलते हैं कि आवर्त अवधि ९ हफ़्ते की है, जिसमें ३ हफ़्ते कार्य अवधि के लिए नियत हैं, और उपलब्ध पूंजी १ ३०० पाउंड है। मान लीजिये कि परि-चलन अवधि ६ हफ़्ते की है। इन ६ हफ़्तों के लिए ६०० पाउंड की अतिरिक्त पूंजी दरकार होगी, जिसे हम तीन-तीन सौ पाउंड की दो पूंजियों में बांट सकते हैं, और इनमें से प्रत्येक पूंजी एक कार्य अवधि की ज़रूरतें पूरा करेगी। अब हमारे पास तीन-तीन सौ पाउंड की तीन पूंजियां हैं, जिनमें से ३०० पाउंड उत्पादन में हमेशा लगे रहेंगे, जब कि ६०० पाउंड परिचलन में होंगे (सारणी अगले पृष्ठ पर)।

यहां पहले प्रसंग का सच्चा प्रतिरूप है, अंतर इतना ही है कि अब दो के बदले तीन पूंजियां एक दूसरे की एवज़ी करती हैं। पूंजियों का प्रतिच्छेदन और अंतर्ग्रंथन नहीं होता। इनमें से हरेक को साल के आख़िर तक अलग अंकित किया जा सकता है। पहले प्रसंग की ही तरह कार्य अवधि की समाप्ति पर कोई पूंजी मुक्त नहीं होती। तीसरा हफ़्ता ख़त्म होने पर पूंजी १ पूर्णतः व्यय हो चुकती है, नवां हफ़्ता ख़त्म होने पर वह पूरी की पूरी लौट आती है, और दसवां हफ़्ता शुरू होने पर वह अपना कार्य फिर से चालू करती है। यही हाल २ और ३ पूंजियों का है। नियमित और पूर्ण एवज़ी के कारण कोई पूंजी मुक्त नहीं होती।

सारणी ३

पूंजी १

आवर्त अवधियां	कार्य अवधियां	परिचलन अवधियां
१. १- ६ हफ़्ते तक	१- ३ हफ़्ते तक	४- ६ हफ़्ते तक
२. १०-१८ " "	१०-१२ " "	१३-१८ " "
३. १६-२७ " "	१६-२१ " "	२२-२७ " "
४. २८-३६ " "	२८-३० " "	३१-३६ " "
५. ३७-४५ " "	३७-३६ " "	४०-४५ " "
६. ४६-[५४] " "	४६-४८ " "	४६-[५४] " "

पूंजी २

आवर्त अवधियां	कार्य अवधियां	परिचलन अवधियां
१. ४-१२ हफ़्ते तक	४- ६ हफ़्ते तक	७-१२ हफ़्ते तक
२. १३-२१ " "	१३-१५ " "	१६-२१ " "
३. २२-३० " "	२२-२४ " "	२५-३० " "
४. ३१-३६ " "	३१-३३ " "	३४-३६ " "
५. ४०-४८ " "	४०-४२ " "	४३-४८ " "
६. ४६-[५७] " "	४६-५१ " "	[५२-५७] " "

पूंजी ३

आवर्त अवधियां	कार्य अवधियां	परिचलन अवधियां
१. ७-१५ हफ़्ते तक	७- ६ हफ़्ते तक	१०-१५ हफ़्ते तक
२. १६-२४ " "	१६-१८ " "	१६-२४ " "
३. २५-३३ " "	२५-२७ " "	२८-३३ " "
४. ३४-४२ " "	३४-३६ " "	३७-४२ " "
५. ४३-५१ " "	४३-४५ " "	४६-५१ " "

कुल आवर्त इस प्रकार है:

पूंजी १,	३०० पाउंड का	५ २/३ गुना अथवा	१,७०० पाउंड
पूंजी २,	३०० पाउंड का	५ १/३ गुना अथवा	१,६०० पाउंड
पूंजी ३,	३०० पाउंड का	५ गुना अथवा	१,५०० पाउंड
कुल पूंजी,	९०० पाउंड का	५ १/३ गुना अथवा	४,८०० पाउंड

अब हम एक ऐसा भी उदाहरण लेंगे, जिसमें परिचलन अवधि कार्य अवधि का यथार्थ गुणज नहीं है। उदाहरण के लिए, कार्य अवधि – ४ हफ़्ते, परिचलन अवधि – ५ हफ़्ते। पूंजी की अनुरूप राशियां होंगी: पूंजी १ – ४०० पाउंड, पूंजी २ – ४०० पाउंड, पूंजी ३ – १०० पाउंड। हम यहां केवल पहले तीन आवर्त प्रस्तुत करते हैं।

सारणी ४

पूंजी १

आवर्त अवधियां	कार्य अवधियां	परिचलन अवधियां
१. १- ९ हफ़्ते तक	१- ४ हफ़्ते तक	५- ९ हफ़्ते तक
२. ९-१७ " "	९.१०-१२ " "	१३-१७ " "
३. १७-२५ " "	१७.१८-२० " "	२१-२५ " "

पूंजी २

आवर्त अवधियां	कार्य अवधियां	परिचलन अवधियां
१. ५-१३ हफ़्ते तक	५- ८ हफ़्ते तक	९-१३ हफ़्ते तक
२. १३-२१ " "	१३.१४-१६ " "	१७-२१ " "
३. २१-२९ " "	२१.२२-२४ " "	२५-२९ " "

पूंजी ३

आवर्त अवधियां	कार्य अवधियां	परिचलन अवधियां
१. ९-१७ हफ़्ते तक	९ हफ़्ते तक	१०-१७ हफ़्ते तक
२. १७-२५ " "	१७ " "	१८-२५ " "
३. २५-३३ " "	२५ " "	२६-३३ " "

इस प्रसंग में पूंजियां आपस में गुंथ जाती हैं, क्योंकि पूंजी ३ की कार्य अवधि पूंजी १ के पहले कार्य सप्ताह से बिल्कुल मेल खा जाती है। पूंजी ३ हफ़्ते भर के लिए ही काफ़ी होती है, इसलिए उसकी कोई स्वतंत्र कार्य अवधि नहीं होती। दूसरी ओर १ और २ दोनों ही पूंजियों की कार्य अवधि समाप्त होने पर १०० पाउंड की राशि, जो पूंजी ३ के बराबर है, मुक्त हो जाती है। कारण यह है कि यदि पूंजी ३ पूंजी १ की दूसरी कार्य अवधि के पहले सप्ताह और बाद की सभी कार्य अवधियों को पूरित करती है, और ४०० पाउंड – समग्र पूंजी १ – इस पहले हफ़्ते की समाप्ति पर लौट आते हैं, तो पूंजी १ की शेष कार्य अवधि में केवल तीन हफ़्ते, और ३०० पाउंड का तदनुरूप पूंजी निवेश ही बाक़ी रहते हैं। इस तरह मुक्त हुए १०० पाउंड पूंजी २ की एकदम बाद में आनेवाली कार्य अवधि के पहले हफ़्ते के लिए पर्याप्त होंगे; उस सप्ताह के अंत में ४०० पाउंड की समग्र पूंजी २ लौट आयेगी। किंतु चूंकि जो कार्य अवधि शुरू हो चुकी है, वह केवल ३०० पाउंड और ही जज़्ब कर सकती है, इसलिए उसकी समाप्ति पर १०० पाउंड फिर अलग हो जाते हैं। इसी प्रकार आगे भी होता है। तो होता यह है कि जब भी परिचलन अवधि कार्य अवधि का सरल गुणज नहीं होती, तब कार्य अवधि की समाप्ति पर पूंजी मुक्त हो जाती है। और यह मुक्त पूंजी पूंजी के उस भाग के बराबर होती है, जिसे कार्य अवधि की तुलना में परिचलन अवधि के अथवा कार्य अवधियों के गुणज से परिचलन अवधि के आधिक्य को भरना होता है।

जितने प्रसंगों की छानबीन की गई है, उनमें यह माना गया था कि यहां अन्वेषित व्यवसाय में कार्य अवधि और परिचलन अवधि दोनों सारे साल एक सी रहती हैं। यदि हम पूंजी के आवर्त और पेशगी दिये जाने पर परिचलन काल के प्रभाव को जानना चाहते, तो यह कल्पना आवश्यक थी। इससे स्थिति में ज़रा भी अंतर नहीं आता है कि यह कल्पना यथार्थ में इतने निरुपाधिक रूप में संगत नहीं है और अक्सर बिल्कुल संगत होती भी नहीं है।

इस समूचे परिच्छेद में हमने केवल प्रचल पूंजी के आवर्तों पर विचार किया है, स्थायी पूंजी के आवर्तों पर नहीं। इसका सीधा सा कारण यह है कि जो विचारणीय समस्या हमारे सामने है, उसका स्थायी पूंजी से कोई संबंध नहीं है। उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त श्रम के औज़ार, आदि स्थायी पूंजी केवल इस हद तक होते हैं कि उनके उपयोग का समय प्रचल पूंजी की आवर्त अवधि से ज़्यादा होता है; निरंतर दोहराई जानेवाली श्रम प्रक्रियाओं में लगातार प्रयुक्त इन श्रम उपकरणों के काम में आने की अवधि प्रचल पूंजी की आवर्त अवधि से बड़ी होती है, अतः वह प्रचल पूंजी के आवर्तों की सं अवधियों के बराबर होती है। प्रचल पूंजी के आवर्त की इन सं अवधियों द्वारा सूचित कुल समय चाहे दीर्घ हो अथवा अल्प, उत्पादक पूंजी का जो भाग इस काल के लिए स्थायी पूंजी के रूप में पेशगी दिया गया था, वह उसके दौरान फिर से पेशगी नहीं दिया जाता। वह अपने पुराने उपयोग रूप में अपने कार्य करता रहता है। अंतर केवल यह होता है: प्रचल पूंजी के आवर्त की प्रत्येक अवधि की एक ही **कार्य अवधि** की बदलती हुई दीर्घता के अनुपात में स्थायी पूंजी उस कार्य अवधि के उत्पाद को अपने आद्य मूल्य का न्यूनाधिक भाग दे देती है; और प्रत्येक आवर्त अवधि के परिचलन काल की दीर्घता के अनुपात में उत्पाद को दिया हुआ स्थायी पूंजी का यह मूल्यांश द्रव्य रूप में न्यूनाधिक शीघ्रता से वापस आ जाता है। इस परिच्छेद में हम जिस विषय का – उत्पादक पूंजी के प्रचल भाग के आवर्त का – विवेचन कर रहे हैं, उसका स्वरूप इस भाग के स्वरूप से ही उत्पन्न होता है। एक कार्य अवधि में प्रयुक्त प्रचल पूंजी जब तक अपना आवर्त पूरा न कर ले, जब तक वह

माल पूंजी में रूपांतरित न हो जाये, जब तक उससे द्रव्य पूंजी में और उससे फिर उत्पादक पूंजी में रूपांतरित न हो जाये, तब तक उसका प्रयोग नई कार्य अवधि में नहीं किया जा सकता। अतः पहली कार्य अवधि के तुरंत बाद दूसरी कार्य अवधि के आने के लिए आवश्यक है कि पूंजी फिर से पेशगी दी जाये और उत्पादक पूंजी के प्रचल तत्वों में परिवर्तित की जाये और उसकी माता इतनी होनी चाहिए कि पहली कार्य अवधि के लिए पेशगी दी गई प्रचल पूंजी की परिचलन अवधि से उत्पन्न रिक्ति भर जाये। श्रम प्रक्रिया के पैमाने और पेशगी पूंजी के विभाजन अथवा पूंजी के नये अंशों के मिलाये जाने पर प्रचल पूंजी की कार्य अवधि की दीर्घता द्वारा डाले जानेवाले प्रभाव का स्रोत यही है। इसी का हमें इस परिच्छेद में अध्ययन करना था।

४. निष्कर्ष

पूर्व अनुसंधान से ये निष्कर्ष निकलते हैं:

क) पूंजी के एक भाग को हमेशा कार्य अवधि में और दूसरे को परिचलन अवधि में रखने के लिए उसे जिन अंशों में बांटना होता है, वे एक दूसरे की दो प्रसंगों में अलग-अलग स्वतंत्र वैयक्तिक पूंजियों की तरह एवज़ी करते हैं: १) जब कार्य अवधि परिचलन अवधि के बराबर होती है, जिससे कि आवर्त अवधि दो बराबर भागों में बंट जाती है; २) जब परिचलन अवधि कार्य अवधि से बड़ी होती है, किंतु साथ ही कार्य अवधि की सरल गुणज होती है, जिससे कि एक परिचलन अवधि सं कार्य अवधियों के बराबर होती है, जहां सं पूर्ण संख्या होगी। इन प्रसंगों में क्रमशः पेशगी पूंजी का कोई भाग मुक्त नहीं होता।

ख) दूसरी ओर उन सभी प्रसंगों में, जिनमें १) परिचलन अवधि कार्य अवधि की सरल गुणज हुए बिना उससे बड़ी होती है और २) जिनमें कार्य अवधि परिचलन अवधि से बड़ी होती है, प्रत्येक कार्य अवधि की समाप्ति पर और दूसरे आवर्त के आरंभ में कुल प्रचल पूंजी का एक भाग निरंतर और नियतकालिक रूप में मुक्त होता रहता है। यह मुक्त पूंजी कुल पूंजी के उस भाग के बराबर होती है, जो परिचलन अवधि के लिए पेशगी दिया गया था, बशर्ते कि कार्य अवधि परिचलन अवधि से बड़ी हो; और यह मुक्त पूंजी पूंजी के उस भाग के बराबर होती है, जिसे कार्य अवधि से अथवा कार्य अवधियों के गुणज से परिचलन अवधि के अतिरेक को पूरा करना होता है, बशर्ते कि परिचलन अवधि कार्य अवधि से बड़ी हो।

ग) इससे यह नतीजा निकलता है कि कुल सामाजिक पूंजी के लिए, जहां तक उसके प्रचल भाग का संबंध है, पूंजी की मुक्ति नियम बन जायेगा, और उत्पादक प्रक्रिया में क्रमशः कार्यशील पूंजी के अंशों का मात्र एकांतरण अपवाद बन जायेगा। कार्य तथा परिचलन अवधियों की समानता के लिए अथवा परिचलन अवधि और कार्य अवधि के सरल गुणज की समानता के लिए आवर्त अवधि के दो घटकों की इस नियमित समानुपातिकता का मामले के स्वरूप से कोई भी संबंध नहीं है और इस कारण यह कुल मिलाकर अपवाद स्वरूप ही हो सकती है।

अतः प्रचल सामाजिक पूंजी का काफ़ी बड़ा हिस्सा, जो साल में अनेक बार आवर्तित होता है, वार्षिक आवर्त चक्र के दौरान नियतकालिक रूप से मुक्त हुई पूंजी के रूप में रहेगा।

फिर यह भी स्पष्ट है कि अन्य सभी परिस्थितियां समान हों, तो मुक्त पूंजी का परिमाण श्रम प्रक्रिया के परिमाण के साथ अथवा उत्पादन के पैमाने के साथ और इसलिए पूंजीवादी

उत्पादन के सामान्य विकास के साथ बढ़ता जाता है। ख (२) में जिस प्रसंग का उल्लेख है, उसमें ऐसा इसलिए होता है कि कुल पेशगी पूंजी में वृद्धि होती है। ख (१) में ऐसा इसलिए होता है कि पूंजीवादी उत्पादन के विकास के साथ परिचलन अवधि और बड़ी होती जाती है; अतः जिन प्रसंगों में कार्य अवधि परिचलन अवधि से कम होती है, वहां आवर्त अवधि भी बढ़ती है तथा दोनों अवधियों के बीच कोई नियमित अनुपात नहीं रह जाता।

उदाहरण के लिए, पहले प्रसंग में हमें प्रति सप्ताह १०० पाउंड लगाने पड़े थे। इस कारण ६ हफ़्ते की कार्य अवधि के लिए ६०० पाउंड की और ३ हफ़्ते की परिचलन अवधि के लिए ३०० पाउंड की – कुल मिलाकर ९०० पाउंड की ज़रूरत हुई। इस स्थिति में ३०० पाउंड लगातार मुक्त होते हैं। दूसरी ओर, यदि प्रति सप्ताह ३०० पाउंड लगाये जायें, तो हमारे पास कार्य अवधि के लिए १,८०० पाउंड और परिचलन अवधि के लिए ९०० पाउंड होंगे। अतः ३०० पाउंड के बदले ९०० पाउंड नियतकालिक रूप से मुक्त होते हैं।

घ) कुल पूंजी, मसलन ९०० पाउंड, ऊपर की तरह दो हिस्सों में बांटनी होगी, ६०० पाउंड कार्य अवधि के लिए और ३०० पाउंड परिचलन अवधि के लिए। जो भाग दरअसल श्रम प्रक्रिया में लगाया जाता है, वह इस प्रकार एक तिहाई – ९०० से ६०० पाउंड – घट जाता है। फलतः उत्पादन का पैमाना एक तिहाई घट जाता है। दूसरी ओर, ३०० पाउंड केवल कार्य अवधि को अविच्छिन्न बनाने के लिए कार्य करते हैं, ताकि श्रम प्रक्रिया में वर्ष के प्रति सप्ताह १०० पाउंड लगाये जा सकें।

निरपेक्षतः ६०० पाउंड ८ के ६ गुना, या ४८ सप्ताह काम करें (उत्पाद ४,८०० पाउंड), चाहे ९०० पाउंड की कुल पूंजी श्रम प्रक्रिया में ६ हफ़्ते के भीतर ख़र्च कर दी जाये और फिर ३ हफ़्ते की परिचलन अवधि में निष्क्रिय पड़ी रहे, बात एक ही है। बादवाले मामले में ४८ हफ़्तों के दौरान वह ६ का ५ १/३ गुना, यानी ३२ हफ़्ते काम करेगी (उत्पाद ९०० का ५ १/३ गुना अथवा ४,८०० पाउंड) और १६ हफ़्ते निष्क्रिय रहेगी। लेकिन निष्क्रिय १६ हफ़्तों में स्थायी पूंजी की ज्यादा बरबादी के अलावा और श्रम की मूल्य वृद्धि के अलावा, जिसे सारे साल पैसा देना होता है, चाहे उसका साल के कुछ ही भाग में इस्तेमाल किया जाये – उत्पादन प्रक्रिया का इस तरह का नियमित अंतरायण आधुनिक बड़े उद्योग के संचालन से बिल्कुल असंगत है। यह निरंतरता स्वयं श्रम की एक उत्पादक शक्ति है।

अब यदि हम मुक्त पूंजी, बल्कि कहिये कि निलंबित पूंजी को ज़रा ध्यान से देखें, तो पता चलता है कि उसके ख़ासे भाग को निरंतर द्रव्य पूंजी के रूप में रहना होता है। हम अपना उदाहरण ही लेते हैं: कार्य अवधि ६ हफ़्ते, परिचलन अवधि ३ हफ़्ते, प्रति सप्ताह निवेश – १०० पाउंड। दूसरी कार्य अवधि के मध्य में ९ वें हफ़्ते के अंत में ६०० पाउंड लौट आते हैं और बाक़ी कार्य अवधि के लिए उनमें से केवल ३०० पाउंड लगाने होते हैं। अतः दूसरी कार्य अवधि के अंत में ३०० पाउंड मुक्त हो जाते हैं। ये ३०० पाउंड किस अवस्था में हैं? हम मान लेंगे कि एक तिहाई मजदूरी के लिए और दो तिहाई कच्चे माल और सहायक सामग्री के लिए निवेशित किया गया है। इसलिए वापस आये हुए ६०० पाउंड में से २०० पाउंड द्रव्य रूप में मजदूरी के लिए और ४०० पाउंड उत्पादक पूर्ति के रूप में स्थिर प्रचल उत्पादक पूंजी के तत्वों के रूप में विद्यमान रहते हैं। लेकिन चूंकि इस उत्पादक पूर्ति का आधा भाग ही दूसरी कार्य अवधि के उत्तरार्ध के लिए दरकार होता है, अतः उसका दूसरा भाग ३ हफ़्ते अतिरिक्त उत्पादक पूर्ति के रूप में, अर्थात एक कार्य अवधि की आवश्यकताओं से अधिक पूर्ति

के रूप में रहता है। किंतु पूंजीपति जानता है कि चालू कार्य अवधि के लिए उसे वापस आई पूंजी के इस भाग (४०० पाउंड) का आधा, अथवा २०० पाउंड ही दरकार होंगे। इसलिए यह बाज़ार की हालत पर निर्भर करेगा कि वह इन २०० पाउंड को तुरंत अतिरिक्त उत्पादक पूर्ति में पूर्णतः अथवा अंशतः फिर बदल लेगा या बाज़ार के अधिक अनुकूल होने की आशा में द्रव्य पूंजी के रूप में पूर्णतः अथवा अंशतः बनाये रखेगा। दूसरी ओर कहना न होगा कि जो भाग (२०० पाउंड) मजदूरी पर व्यय होना है, उसे द्रव्य रूप में रहने दिया जाता है। पूंजीपति श्रम शक्ति को ख़रीदकर गोदाम में जमा करके नहीं रख सकता, जैसे कच्चे माल को रख सकता है। उसे उसका उत्पादन प्रक्रिया में समावेश करना होगा और हफ़्ते के अंत में उसका भुगतान करना होगा। किसी भी सूरत में ३०० पाउंड की मुक्त हुई पूंजी में से ये १०० पाउंड मुक्त द्रव्य पूंजी का रूप धारण कर लेंगे, अर्थात कार्य अवधि के लिए उनकी जरूरत न होगी। अतः द्रव्य पूंजी के रूप में मुक्त होनेवाली पूंजी को कम से कम पूंजी के मजदूरी में निवेशित परिवर्ती भाग के बराबर होना चाहिए। अधिकतम रूप में उसके भीतर मुक्त हुई समस्त पूंजी का समावेश हो सकता है। वास्तव में वह अल्पतम और अधिकतम के बीच लगातार घटती-बढ़ती रहती है।

आवर्त की क्रियाविधि मात्र से इस प्रकार मुक्त हुई द्रव्य पूंजी को (स्थायी पूंजी के क्रमिक पश्चप्रवाह द्वारा मुक्त द्रव्य पूंजी के तथा परिवर्ती पूंजी के लिए प्रत्येक श्रम प्रक्रिया में आवश्यक द्रव्य पूंजी के साथ) उधार प्रणाली के विकसित होने के साथ एक महत्वपूर्ण भूमिका निबाहनी होती है, और इसके साथ ही इस प्रणाली का एक मूलाधार भी बनना होता है।

मान लें कि हमारे उदाहरण में परिचलन काल ३ से घटकर २ हफ़्ते हो जाता है। यह कोई सामान्य परिवर्तन नहीं है, वरन कहिये कि समृद्धि के दिनों, भुगतान की कम अवधि, वग़ैरह के कारण आनेवाला परिवर्तन है। कार्य अवधि के दौरान ६०० पाउंड की जो पूंजी व्यय होती है, वह जरूरत से एक सप्ताह पहले वापस आ जाती है। अतः वह इस सप्ताह के लिए मुक्त हो जाती है। फिर कार्य अवधि के मध्य में पहले की तरह ३०० पाउंड (उन ६०० पाउंड का एक भाग) मुक्त हो जाते हैं, किंतु ३ के बदले ४ हफ़्ते के लिए। इसलिए मुद्रा बाजार में एक हफ़्ते के लिए ६०० पाउंड और ३ के बदले ४ हफ़्ते के लिए ३०० पाउंड होते हैं। चूंकि इसका संबंध एक ही पूंजीपति से नहीं, अनेक से होता है और ऐसा विभिन्न व्यवसायों में भिन्न-भिन्न अवधियों के दौरान होता है, अतः बाजार में और भी सुलभ द्रव्य पूंजी प्रकट हो जाती है। यदि यह स्थिति कुछ समय तक बनी रहे, तो जहां भी संभव होगा, उत्पादन का प्रसार होगा। उधार के द्रव्य से काम करनेवाले पूंजीपति मुद्रा बाज़ार से कम मांग करेंगे, जिससे वह ऐसे ही मंदा हो जायेगा, जैसे पूर्ति की बढ़ती से हो जाता है; अथवा अंततः, जो राशियां क्रियाविधि के लिए फ़ालतू हो जाती हैं, वे निश्चित रूप से मुद्रा बाजार में डाल दी जाती हैं।

परिचलन काल के ३ से २ हफ़्ते में और फलतः आवर्त अवधि के ९ से ८ हफ़्ते में संकुचन के कारण कुल पेशगी पूंजी का १/९ भाग फ़ालतू हो जाता है। ६ हफ़्ते की कार्य अवधि को अब ८०० पाउंड से वैसे ही अटूट चालू रखा जा सकता है, जैसे पहले ९०० पाउंड से रखा जाता था। अतः माल पूंजी के मूल्य का एक भाग, जो १०० पाउंड के बराबर है, द्रव्य में फिर बदले जाने के साथ द्रव्य पूंजी की अवस्था में ही बना रहता है और उत्पादन प्रक्रिया के

लिए पेशगी पूंजी अंश की हैसियत से आगे कोई और कार्य नहीं करता। जहां उत्पादन का पैमाना और अन्य परिस्थितियां, जैसे क़ीमतें, वग़ैरह यथावत बनी रहती हैं, पेशगी पूंजी की मूल्य राशि ६०० पाउंड से घटकर ८०० पाउंड हो जाती है। मूलतः पेशगी दिये मूल्य का शेष भाग, १०० पाउंड, द्रव्य पूंजी के रूप में अलग हो जाता है। इस रूप में वह मुद्रा बाज़ार में प्रवेश करता है और वहां कार्यशील पूंजियों का अतिरिक्त भाग बन जाता है।

इससे यह पता चलता है कि द्रव्य पूंजी का बाहुल्य किस तरह उत्पन्न हो सकता है—केवल इस अर्थ में नहीं कि द्रव्य पूंजी की पूर्ति मांग की अपेक्षा अधिक है; यह सदा केवल सापेक्ष बाहुल्य होता है, जो मसलन किसी संकट की समाप्ति पर नये चक्र का आरंभ करनेवाली "अवसादक अवधि" के दौरान आता है; वरन इस अर्थ में भी कि पेशगी पूंजी मूल्य का एक निश्चित भाग सामाजिक पुनरुत्पादन की समूची प्रक्रिया के प्रचालन के लिए फ़ालतू हो जाता है, जिसमें परिचलन प्रक्रिया भी शामिल होती है, और इसलिए वह द्रव्य पूंजी के रूप में अलग हो जाता है—यह आवर्त अवधि के संकुचन मात्र से, जब कि उत्पादन का पैमाना और क़ीमतें वैसी ही बनी रहती हैं, जनित बाहुल्य है। परिचलन में द्रव्य राशि ने—चाहे बड़ी, चाहे छोटी—उस पर ज़रा भी प्रभाव नहीं डाला है।

इसके विपरीत मान लीजिये कि परिचलन अवधि बढ़ जाती है, यथा ३ से ५ हफ़्ते हो जाती है। उस हालत में अगले आवर्त में ही पेशगी पूंजी का पश्चप्रवाह २ हफ़्ते अधिक विलंब से होगा। इस कार्य अवधि की उत्पादन प्रक्रिया का आख़िरी हिस्सा स्वयं पेशगी पूंजी के आवर्त की क्रियाविधि द्वारा और आगे चालू न रखा जा सकेगा। यदि यह हालत कुछ देर तक बनी रहे, तो वैसे ही उत्पादन प्रक्रिया में संकुचन हो सकता है, उसका परिमाण घट सकता है, जैसे पूर्व प्रसंग में विस्तरण हुआ था। लेकिन प्रक्रिया को उसी पैमाने पर चालू रखने के लिए परिचलन अवधि के समस्त प्रवर्धन काल में पेशगी पूंजी में २/६ की, अथवा २०० पाउंड की वृद्धि करना आवश्यक होगा। यह अतिरिक्त पूंजी केवल मुद्रा बाज़ार में प्राप्त की जा सकती है। यदि परिचलन अवधि का प्रवर्धन व्यवसाय की एक अथवा अनेक बड़ी शाखाओं में हो, तो वह मुद्रा बाज़ार पर दबाव डाल सकता है, बशर्ते कि इस प्रभाव को किसी प्रतिप्रभाव द्वारा ध्वस्त न कर दिया जाये। पूर्वोक्त बाहुल्य की तरह इस मामले में भी यह प्रकट और स्पष्ट है कि इस दबाव का पण्य वस्तुओं के भावों की गति से अथवा विद्यमान परिचलन माध्यम की राशि की गति से किसी भी तरह का संबंध नहीं था।

[प्रकाशन के लिए इस अध्याय की तैयारी में काफ़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बीजगणित में मार्क्स का पूरा दख़ल था, किंतु आंकड़ों, ख़ास तौर से व्यापार गणित में, वह माहिर नहीं थे, यद्यपि उनकी कापियों का काफ़ी मोटा बंडल मौजूद है, जिनमें भांति-भांति के वाणिज्यिक अभिकलन के बहुत से उदाहरण हैं, जिन्हें उन्होंने ख़ुद हल किया था। किंतु परिकलन के विभिन्न तरीक़ों का ज्ञान और दैनिक व्यावहारिक व्यापार गणित का अभ्यास, एक ही चीज़ नहीं है। फलतः आवर्तों के अभिकलन में मार्क्स इतना उलझ गये कि उनमें अधूरे छोड़े स्थानों के अलावा कई चीज़ें ग़लत और परस्पर विरोधी भी हैं। ऊपर जो सारणियां उद्धृत की गई हैं, उनमें मैंने सरलतम गणित के विचार से सही आंकड़ों को ही रहने दिया है। ऐसा करने का मेरे लिए मुख्यतः कारण यह था :

इस श्रमसाध्य परिकलन के अनिश्चित परिणामों के फलस्वरूप मार्क्स ने एक परिस्थिति को अनावश्यक महत्व दिया है, जो मेरी दृष्टि में वस्तुतः बहुत ही कम महत्व की है। मेरा

आशय उससे है, जिसे वह द्रव्य पूंजी की "मुक्ति" कहते हैं। उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर वास्तविक स्थिति यह है:

कार्य अवधि और परिचलन काल के बीच और इसलिए पूंजी १ और पूंजी २ के बीच जो भी अनुपात हो, पहले आवर्त की समाप्ति पर और उसके बाद एक कार्य अवधि के बराबर नियमित अंतरालों पर पूंजीपति के पास द्रव्य रूप में एक कार्य अवधि के लिए आवश्यक पूंजी, अर्थात पूंजी १ के बराबर राशि वापस आ जाती है।

यदि कार्य अवधि ५ हफ़्ते, परिचलन काल ४ हफ़्ते और पूंजी १ ५०० पाउंड हो, तो ५०० पाउंड के बराबर की द्रव्य राशि ९ वें, १४ वें, १९ वें, २४ वें, २९ वें, आदि हफ़्ते की समाप्ति पर प्रति बार वापस आ जाती है।

यदि कार्य अवधि ६ हफ़्ते, परिचलन काल ३ हफ़्ते और पूंजी १ ६०० पाउंड हो, तो ९ वें, १५ वें, २१ वें, २७ वें, ३३ वें, आदि हफ़्ते के अंत में ६०० पाउंड वापस आ जाते हैं।

अंततः, यदि कार्य अवधि ४ हफ़्ते, परिचलन काल ५ हफ़्ते और पूंजी १ ४०० पाउंड हो, तो ९ वें, १३ वें, १७ वें, २१ वें, २५ वें, आदि हफ़्ते की समाप्ति पर ४०० पाउंड वापस आ जाते हैं।

इस वापस आये हुए धन के किसी हिस्से का फ़ालतू होना या न होना, और यदि हो, तो कितना और इसलिए चालू कार्य अवधि के लिए मुक्त होना महत्वहीन है। यह माना गया है कि उत्पादन चालू पैमाने पर निरंतर जारी रहता है, और ऐसा हो, इसके लिए धन सुलभ होना चाहिए और इसलिए वापस भी आना चाहिए, चाहे वह "मुक्त हो" या न हो। यदि उत्पादन में व्यवधान आता है, तो उसके साथ मुक्ति भी रुक जाती है।

दूसरे शब्दों में द्रव्य की मुक्ति वास्तव में होती है; अतः द्रव्य रूप में अंतर्हित, केवल संभाव्य पूंजी का निर्माण होता है। किंतु ऐसा सभी परिस्थितियों में होता है, उन विशेष अवस्थाओं में ही नहीं, जिनका वर्णन मूल पाठ में किया गया है; और मूल पाठ में जिस पैमाने की कल्पना की गई है, उससे बड़े पैमाने पर होता है। जहां तक प्रचल पूंजी १ का संबंध है, प्रत्येक आवर्त की समाप्ति पर औद्योगिक पूंजीपति की स्थिति वही होती है, जो व्यवसाय क़ायम करने के समय थी – उसके पास वह सारी की सारी इकमुश्त होती है, किंतु वह उसे उत्पादक पूंजी में शनैः शनैः ही पुनःपरिवर्तित कर सकता है।

मूल पाठ में मुख्य बात यह प्रमाण है कि एक ओर औद्योगिक पूंजी का काफ़ी भाग सदा द्रव्य रूप में सुलभ होना चाहिए, दूसरी ओर उससे भी काफ़ी अधिक भाग को अस्थायी रूप से द्रव्य रूप धारण करना होगा। यह प्रमाण मेरी इस अतिरिक्त टिप्पणी से कुछ अधिक पुष्ट ही होता है। – फ़्रे० एं०]

५. क़ीमत परिवर्तन का प्रभाव

हमने अभी एक ओर अपरिवर्तित क़ीमतों की और उत्पादन के अपरिवर्तित पैमाने की, और दूसरी ओर परिचलन काल के संकुचन अथवा प्रसार की कल्पना की है। अब इसके विपरीत एक ओर अपरिवर्तित आवर्त अवधि और उत्पादन के अपरिवर्तित पैमाने की, और दूसरी ओर क़ीमत परिवर्तनों की, अर्थात कच्चे माल, सहायक सामग्री और श्रम के दाम में अथवा इनमें से केवल

पहली दो चीज़ों के दाम में उतार-चढ़ाव की कल्पना करेंगे। मान लीजिये, कच्चे माल और सहायक सामग्री की क़ीमत, और मजदूरी भी आधी रह जाती है। उस हालत में हमारे उदाहरण में प्रति सप्ताह पेशगी दी जानेवाली पूंजी १०० पाउंड के बदले ५० पाउंड होगी और ६ हफ़्ते की आवर्त अवधि के लिए पेशगी दी जानेवाली पूंजी ६०० पाउंड के बदले ४५० पाउंड होगी। पेशगी पूंजी मूल्य के ४५० पाउंड सबसे पहले द्रव्य पूंजी के रूप में अलग हो जाते हैं, किंतु उत्पादन प्रक्रिया उसी पैमाने पर, उसी आवर्त अवधि के साथ और इस अवधि के कार्य अवधि और परिचलन अवधि के पहले जैसे ही विभाजन के साथ चालू रहती है। इसी प्रकार वार्षिक पैदावार वही रहती है, किंतु उसका मूल्य घटकर आधा हो गया है। यह परिवर्तन, जिसके साथ द्रव्य पूंजी की पूर्ति और मांग में भी परिवर्तन आता है, न तो परिचलन की वृद्धि से और न ही प्रचल द्रव्य की माता में तबदीली से होता है। बात इससे उलटी है। उत्पादक पूंजी के तत्वों के मूल्य अथवा क़ीमत के आधा रह जाने का पहला नतीजा यह होगा कि व्यवसाय क को पहले ही जैसे पैमाने पर जारी रखने के लिए पेशगी दिया जानेवाला पूंजी मूल्य आधा घटेगा और इसलिए व्यवसाय क को बाज़ार में आधा धन ही डालना होगा, क्योंकि व्यवसाय क यह पूंजी मूल्य पहले द्रव्य रूप में, अर्थात द्रव्य पूंजी की तरह पेशगी देता है। परिचलन में डाले धन की राशि घटेगी, क्योंकि उत्पादन तत्वों का भाव गिरा है। यह पहला प्रभाव होगा।

किंतु दूसरी बात यह है कि मूलतः पेशगी दिये पूंजी मूल्य, ६०० पाउंड, का आधा भाग, यानी ४५० पाउंड, जो क) द्रव्य पूंजी, उत्पादक पूंजी और माल पूंजी के रूपों से क्रमशः गुज़र चुका है, और ख) एक ही समय पर और निरंतर, अंशतः द्रव्य पूंजी के रूप में, अंशतः उत्पादक पूंजी तथा अंशतः माल पूंजी के रूप में साथ-साथ रह चुका है, वह व्यवसाय क के परिपथ से अलग हो जायेगा और इस प्रकार अतिरिक्त द्रव्य पूंजी के रूप में मुद्रा बाज़ार में आकर मुद्रा पूंजी के एक अतिरिक्त घटक के रूप में उसे प्रभावित करेगा। ये मुक्त ४५० पाउंड द्रव्य पूंजी का काम करते हैं इसलिए नहीं कि व्यवसाय क को चलाने के लिए अब ये फ़ालतू धन बन गये हैं, वरन इसलिए कि वे आद्य पूंजी मूल्य का घटक हैं, अतः पूंजी की हैसियत से और आगे कार्य करने और परिचलन साधन मात्र की हैसियत से ख़र्च न किये जाने के लिए अभिप्रेत हैं। पूंजी रूप में उन्हें काम करने देने का सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि उन्हें द्रव्य पूंजी की हैसियत से मुद्रा बाज़ार में डाल दिया जाये। दूसरी ओर उत्पादन का पैमाना (स्थायी पूंजी के अलावा) दुगुना किया जा सकता है। उस हालत में ६०० पाउंड की उसी पेशगी पूंजी द्वारा पहले से दुगुने परिमाण की उत्पादक प्रक्रिया चालू रखी जा सकेगी।

दूसरी ओर, यदि उत्पादक पूंजी के परिचलन तत्वों का दाम आधा गुना बढ़ जाये, तो प्रति सप्ताह १०० पाउंड के बदले १५० पाउंड अथवा ६०० पाउंड के बदले १,३५० पाउंड दरकार होंगे। व्यवसाय को उसी पैमाने पर चलाते रहने के लिए ४५० पाउंड की अतिरिक्त पूंजी दरकार होगी और वह मुद्रा बाजार पर उसकी स्थिति के अनुसार pro tanto ज्यादा या कम दबाव डालेगी। यदि इस बाज़ार में उपलभ्य सारी ही पूंजी पहले से ही नियोजित हो, तो उपलभ्य पूंजी के लिए होड़ बढ़ जायेगी। यदि उसका एक भाग अनियोजित हो, तो उसे pro tanto कार्यशील किया जा सकेगा।

किंतु तीसरी बात यह है कि उत्पादन का एक निश्चित पैमाना होने पर यदि आवर्त वेग

और प्रचल उत्पादक पूंजी के तत्वों की क़ीमतें यथावत रहें, तो व्यवसाय क के उत्पाद की क़ीमत बढ़ सकती है या घट सकती है। यदि व्यवसाय क द्वारा प्रदत्त सामान की क़ीमत गिरती है, तो ६०० पाउंड की जो माल पूंजी वह लगातार परिचलन में डालता था, उसकी क़ीमत भी घटकर, कह लीजिये, ५०० पाउंड हो जायेगी। अतः पेशगी पूंजी के मूल्य का छठा भाग परिचलन प्रक्रिया से वापस न आयेगा। (यहां माल पूंजी में समाहित बेशी मूल्य पर विचार नहीं किया जा रहा है।) उस प्रक्रिया में उसका लोप हो जाता है। लेकिन चूंकि उत्पादन तत्वों का मूल्य अथवा क़ीमत यथावत रहता है, इसलिए ५०० पाउंड का यह पश्चप्रवाह उत्पादन प्रक्रिया में बराबर नियोजित ६०० पाउंड की पूंजी के ५/६ भाग का ही प्रतिस्थापन करने के लिए पर्याप्त होता है। अतः उत्पादन को उसी पैमाने पर चलाने के लिए १०० पाउंड की अतिरिक्त द्रव्य पूंजी दरकार होगी।

इसके विपरीत, यदि व्यवसाय क के उत्पाद का दाम चढ़ जाये, तो ६०० पाउंड की माल पूंजी की क़ीमत बढ़ जायेगी, मसलन ७०० पाउंड हो जायेगी। इस क़ीमत का सातवां भाग, अथवा १०० पाउंड, उत्पादन प्रक्रिया में पैदा नहीं होता, इस प्रक्रिया में पेशगी नहीं दिया जाता, वरन परिचलन प्रक्रिया से उत्पन्न होता है। किंतु उत्पादन तत्वों के प्रतिस्थापन के लिए केवल ६०० पाउंड आवश्यक हैं। अतः १०० पाउंड मुक्त हो जाते हैं।

अब तक किये गये अन्वेषण की परिधि में इसका निर्धारण नहीं आता कि पहले प्रसंग में आवर्त अवधि क्यों घटती या बढ़ती है, दूसरे प्रसंग में कच्चे माल और श्रम की क़ीमतें और तीसरे प्रसंग में प्रदत्त उत्पाद की क़ीमतें क्यों घटती या बढ़ती हैं।

किंतु निम्नलिखित अवश्य इसमें आता है :

पहला प्रसंग। उत्पादन का अपरिवर्तित पैमाना, उत्पादन तत्वों की और उत्पाद की अपरिवर्तित क़ीमतें, परिचलन अवधि में, तथा तदनुरूप आवर्त अवधि में परिवर्तन।

हमारे उदाहरण की कल्पना के अनुसार परिचलन अवधि के संकुचन के फलस्वरूप कुल पेशगी पूंजी के नवें भाग कम की जरूरत होगी, जिससे कुल पूंजी ६०० पाउंड से घटकर ८०० पाउंड हो जायेगी और द्रव्य पूंजी के १०० पाउंड अलग हो जायेंगे।

व्यवसाय क पहले की ही तरह उसी ६०० मूल्य के, उसी छः हफ़्ते के उत्पाद की पूर्ति करता है और चूंकि काम बारहों मास निरंतर चालू रहता है, इसलिए वह ५१ हफ़्तों में उत्पाद की ५,१०० पाउंड मूल्य की उतनी ही मात्रा की पूर्ति करता है। इसलिए जहां तक इस व्यवसाय द्वारा परिचलन में डाले हुए उत्पाद की क़ीमत और मात्रा का संबंध है, कोई परिवर्तन नहीं आया है, न इसमें ही परिवर्तन आया है कि वह अपना उत्पाद बाज़ार में कितनी बार डालता है। किंतु १०० पाउंड अलग हो जाते हैं, क्योंकि परिचलन अवधि के संकुचन से प्रक्रिया की जरूरतें पूर्वोक्त ९०० पाउंड के बदले अब केवल ८०० पाउंड से पूरी हो जाती हैं। अलग हुई पूंजी के १०० पाउंड द्रव्य पूंजी के रूप में विद्यमान रहते हैं। किंतु ये किसी भी प्रकार उस पेशगी पूंजी का भाग नहीं होते, जिसे द्रव्य पूंजी के रूप में निरंतर कार्य करना होगा। मान लीजिये कि ६०० पाउंड की पेशगी प्रचल पूंजी १ का ४/५ भाग, या ४८० पाउंड निरंतर उत्पादक सामग्री में निवेशित किये जाते हैं और उसका १/५ भाग, या १२० पाउंड मजदूरी

में। तब उत्पादन सामग्री में साप्ताहिक निवेश ८० पाउंड होगा और मजदूरी में २० पाउंड। तब ३०० पाउंड की पूंजी २ को भी उत्पादन सामग्री के लिए ४/५ भाग, या २४० पाउंड और मजदूरी के लिए १/५ भाग, या ६० पाउंड में बांटना होगा। मजदूरी में निवेशित पूंजी को हमेशा द्रव्य रूप में पेशगी देना होगा। जैसे ही ६०० पाउंड का माल उत्पाद द्रव्य रूप में पुनःपरिवर्तित होता है या बेच दिया जाता है, उसके ४८० पाउंड उत्पादन सामग्री में (उत्पादक पूर्ति में) तबदील किये जा सकते हैं, किंतु १२० पाउंड अपना द्रव्य रूप बनाये रखते हैं, ताकि ६ हफ़्ते तक मजदूरी की अदायगी के काम आ सकें। ये १२० पाउंड वापस आनेवाली ६०० पाउंड पूंजी का अल्पतम भाग हैं, जिसका हमेशा द्रव्य रूप में नवीकरण और प्रतिस्थापन होते रहना चाहिए और इसलिए जो सदा पेशगी पूंजी के उस अंश रूप में पास रहनी चाहिए, जो द्रव्य रूप में कार्य करता है।

अब अगर नियतकालिक रूप से ३ हफ़्ते के लिए मुक्त होनेवाले और उसी प्रकार उत्पादक पूर्ति के लिए २४० पाउंड और मजदूरी के लिए ६० पाउंड में विभाज्य ३०० पाउंड में से १०० पाउंड पूर्णतः अलग हो जायें, परिचलन काल के घट जाने से द्रव्य रूप में आवर्त की क्रियाविधि से पूरी तरह बाहर धकेल दिये जायें, तो इस १०० पाउंड की द्रव्य पूंजी के लिए द्रव्य कहां से आयेगा? इस राशि का पांचवां भाग ही नियतकालिक रूप से आवर्तों में मुक्त हुई पूंजी होता है। किंतु ४/५ भाग या ८० पाउंड उसी मूल्य की अतिरिक्त उत्पादक पूर्ति द्वारा पहले ही प्रतिस्थापित हो चुके होते हैं। यह अतिरिक्त उत्पादक पूर्ति किस प्रकार द्रव्य में परिवर्तित होती है और इस परिवर्तन के लिए द्रव्य कहां से आता है?

यदि न्यूनित परिचलन अवधि वास्तविकता बन गई है, तो उपर्युक्त ६०० पाउंड में से ४८० पाउंड के बदले केवल ४०० पाउंड उत्पादक पूर्ति में पुनःपरिवर्तित होते हैं। शेष भाग, या ८० पाउंड अपने द्रव्य रूप में बने रहते हैं और मजदूरी के उपर्युक्त २० पाउंड के साथ १०० पाउंड की निरस्त पूंजी बन जाते हैं। यद्यपि ये १०० पाउंड ६०० पाउंड की माल पूंजी की बिक्री के जरिये परिचलन क्षेत्र से आते हैं और मजदूरी तथा उत्पादन तत्वों में फिर न लगाये जाने के कारण अब उससे निकाल लिये गये हैं, फिर भी यह न भूलना चाहिए कि द्रव्य रूप में होने के कारण वे फिर उसी रूप में आ गये हैं, जिसमें वे परिचलन में मूलतः डाले गये थे। शुरू में ६०० पाउंड उत्पादक पूर्ति और मजदूरी में निवेशित किये गये थे। अब उसी उत्पादन प्रक्रिया को चलाने के लिए केवल ५०० पाउंड दरकार हैं। इस प्रकार द्रव्य रूप में मुक्त १०० पाउंड अब एक नई, नियोजनार्थी द्रव्य पूंजी, मुद्रा बाजार का एक नया घटक बन जाते हैं। सही है कि वे पहले भी नियतकालिक रूप से मुक्त द्रव्य पूंजी तथा अतिरिक्त उत्पादक पूंजी के रूप में रह चुके हैं, किंतु ये अंतर्हित अवस्थाएं स्वयं उत्पादन प्रक्रिया के निष्पादन की पूर्वापेक्षाएं थीं, क्योंकि वे उसकी निरंतरता की शर्त थीं। अब उनकी उस प्रयोजन के लिए जरूरत नहीं रह गई है और इस कारण अब वे नई द्रव्य पूंजी और मुद्रा बाजार का एक घटक बन गये हैं, यद्यपि वे किसी भी तरह तो उपलभ्य सामाजिक द्रव्य पूर्ति का अतिरिक्त तत्व हैं (क्योंकि वे व्यवसाय के आरंभ में विद्यमान थे और उसके द्वारा परिचलन में डाले गये थे) और न ही नवसंचित अपसंचय हैं।

ये १०० पाउंड वास्तव में अब परिचलन से निकाल लिये गये हैं, क्योंकि वे उस पेशगी द्रव्य पूंजी का भाग हैं, जो अब उसी व्यवसाय में नियोजित नहीं की जा रही है। किंतु उन्हें निकालना केवल इसलिए संभव हुआ है कि माल पूंजी का द्रव्य में और इस द्रव्य का उत्पादक

पूंजी में रूपांतरण, मा′ – द्र – मा, एक हफ़्ता जल्दी पूरा हो जाता है, जिससे इस प्रक्रिया में कार्यशील द्रव्य का परिचलन भी इसी प्रकार त्वरित हो जाता है। उन्हें उससे इसलिए निकाल लिया जाता है, क्योंकि अब पूंजी क के आवर्त के लिए उनकी जरूरत नहीं रही है।

यहां यह मान लिया गया है कि पेशगी पूंजी उसकी है, जो उसका नियोजन करता है। अगर उसने उसे उधार लिया होता, तो कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। परिचलन काल के घटने से उसे ६०० पाउंड के बदले केवल ८०० पाउंड उधार लेने होते। यदि १०० पाउंड ऋणदाता को वापस कर दिये जाते, तो भी वे पहले की ही तरह नई द्रव्य पूंजी के १०० पाउंड बनते, बस, अब क के बदले वे ख के हाथ में हुए होते। यदि पूंजीपति क को ४८० पाउंड की उत्पादन सामग्री उधार पर मिल जाती, जिससे उसे मजदूरी के लिए अपनी जेब से द्रव्य रूप में केवल १२० पाउंड पेशगी देने पड़ते, तो उसे अब उधार पर ८० पाउंड की सामग्री कम जुटानी हुई होती और यह राशि ऋणदाता पूंजीपति के लिए अतिरिक्त माल पूंजी होती, जब कि पूंजीपति क ने द्रव्य रूप में २० पाउंड अलग कर दिये होते।

उत्पादन की अतिरिक्त पूर्ति अब एक तिहाई कम हो जाती है। वह पहले अतिरिक्त पूंजी २ के ३०० पाउंड का ४/५ भाग, यानी २४० पाउंड थी, किंतु अब वह केवल १६० पाउंड है, अर्थात ३ के बदले २ हफ़्ते के लिए ही अतिरिक्त पूर्ति है। अब उसका नवीकरण हर ३ के बदले हर २ हफ़्ते में होता है, किंतु ३ के बदले केवल २ हफ़्ते के लिए। इस प्रकार ख़रीद, मसलन, कपास की मंडी में अधिक बार और कम मात्राओं में होती है। मंडी से कपास की उतनी ही मात्रा निकाली जाती है, क्योंकि उत्पाद की मात्रा वही रहती है। किंतु प्रत्याहरण का वितरण समय की दृष्टि से भिन्न है, वे ज्यादा लंबी अवधि में होते हैं। मान लीजिये कि प्रश्न ३ या २ महीने का है। यदि कपास की वार्षिक खपत १,२०० गांठों की है, तो पहले प्रसंग में बिक्री इस प्रकार होगी :

१ जनवरी,	३००	गांठें,	गोदाम	में	६००	गांठें	शेष
१ अप्रैल,	३००	”	”	”	६००	”	”
१ जुलाई,	३००	”	”	”	३००	”	”
१ अक्तूबर,	३००	”	”	”	०	”	”

किंतु दूसरे प्रसंग में :

१ जनवरी,	बेची	२००,	गोदाम	में	१,०००	गांठें	शेष
१ मार्च,	”	२००,	”	”	८००	”	”
१ मई,	”	२००,	”	”	६००	”	”
१ जुलाई,	”	२००,	”	”	४००	”	”
१ सितंबर,	”	२००,	”	”	२००	”	”
१ नवंबर,	”	२००,	”	”	०	”	”

इस तरह कपास में निवेशित धन पूर्णतः एक महीने के विलंब से, अक्तूबर के बदले नवंबर में ही वापस आता है। इसलिए अब यदि परिचलन काल के और इसलिए आवर्त काल के संकुचन से पेशगी पूंजी का नवां भाग, या १०० पाउंड द्रव्य पूंजी के रूप में अलग हो जाता है, और

यदि इन १०० पाउंड में उस नियतकालिक अतिरिक्त द्रव्य पूंजी के, जिससे हफ़्तावार मज़दूरी की अदायगी होती है, २० पाउंड और वे ८० पाउंड समाहित हों, जो हफ़्ते भर की नियतकालिक अतिरिक्त उत्पादक पूर्ति के रूप में विद्यमान थे, तो जहां तक इन ८० पाउंड का संबंध है, कारख़ानेदार के हाथ में न्यूनित अतिरिक्त उत्पादक पूर्ति कपास विक्रेता के हाथों में वर्धित माल पूर्ति के अनुरूप है। यह कपास उसके गोदाम में माल की हैसियत से जितना ही अधिक समय तक पड़ी रहेगी, उतना ही वह कारख़ानेदार के गोदाम में उत्पादक पूर्ति की हैसियत से कम समय तक रहेगी।

अब तक हम यह मानते थे कि व्यवसाय क में परिचलन काल का संकुचन इसलिए होता है कि क अपना माल ज्यादा तेजी से बेच देता है, उनका पैसा ज्यादा जल्दी पा लेता है या उधार के मामले में उसकी अदायगी कम अवधि के भीतर हो जाती है। इसलिए संकुचन का कारण मालों की बिक्री जल्दी होना, माल पूंजी के द्रव्य रूप में रूपांतरण, मा' — द्र, परिचलन प्रक्रिया के पहले दौर का जल्दी पूरा होना माना गया था। लेकिन उसका मूल दूसरे दौर, द्र — मा, में और इसलिए एक समकालिक परिवर्तन में भी हो सकता है, यह परिवर्तन चाहे कार्य अवधि में हो, चाहे ख, ग, आदि उन पूंजियों के परिचलन में हो, जो पूंजीपति क को उसकी प्रचल पूंजी के उत्पादक तत्व प्रदान करती हैं।

उदाहरण के लिए, यदि परिवहन के पुराने तरीक़ों से कपास, कोयला, वग़ैरह को अपने उत्पादनस्थल या भंडारस्थल से पूंजीपति क के उत्पादनस्थल तक ले जाने में ३ हफ़्ते लगते हैं, तो क की उत्पादक पूर्ति कम से कम ३ हफ़्ते चलनी चाहिए, जब तक नई पूर्ति न आ जाये। जब तक कपास और कोयला परिवहन में हैं, तब तक वे उत्पादन साधनों का काम नहीं कर सकते। तब वे परिवहन उद्योग के लिए और उसमें नियोजित पूंजी के लिए श्रम की वस्तु ही होते हैं; कोयले के उत्पादक या कपास विक्रेता के लिए वे परिचलन प्रक्रिया में माल पूंजी भी हैं। मान लीजिये, परिवहन में सुधार परिवहन को घटाकर २ हफ़्ते कर देते हैं। तब उत्पादक पूर्ति को त्रिसाप्ताहिक पूर्ति से पाक्षिक पूर्ति में बदला जा सकता है। इससे इस प्रयोजन के लिए अलग रखी गई ८० पाउंड की अतिरिक्त पेशगी पूंजी मुक्त हो जायेगी और इसी प्रकार मज़दूरी के लिए अलग किये २० पाउंड मुक्त हो जायेंगे, क्योंकि ६०० पाउंड की आवर्तित पूंजी एक हफ़्ता पहले वापस आ जायेगी।

दूसरी ओर, उदाहरण के लिए, अगर कच्चे माल की पूर्ति करनेवाली पूंजी की कार्य अवधि घटा दी जाये (जिसकी मिसालें पिछले अध्यायों में दी जा चुकी हैं), जिससे कि कच्चे माल की पूर्ति का कम समय में नवीकरण करने की संभावना पैदा हो जाती है, तो उत्पादक पूर्ति घट सकती है, और उसके नवीकरण की अवधियों के बीच का अंतराल कम हो सकता है।

इसके विपरीत, यदि परिचलन काल और इसलिए आवर्त अवधि को भी बढ़ा दिया जाये, तो अतिरिक्त पूंजी पेशगी देना ज़रूरी होगा। यदि पूंजीपति के पास अतिरिक्त पूंजी है, तो वह उसी की जेब से आयेगी। किंतु तब वह किसी न किसी रूप में मुद्रा बाज़ार में उपलब्ध पूंजी के एक भाग की तरह निवेशित हो जायेगी। उपलभ्य बनाने के लिए उसे उसके पुराने रूप से छुड़ाना होगा। मसलन, स्टॉक बेचना होगा, जमा धन निकालना होगा, जिससे कि इस प्रसंग में भी मुद्रा बाज़ार पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ेगा। अथवा अतिरिक्त पूंजी उधार लेनी होगी।

जहां तक अतिरिक्त पूंजी के उस भाग का संबंध है, जो मजदूरी के लिए आवश्यक है, सामान्य परिस्थितियों में उसे हमेशा द्रव्य पूंजी के रूप में पेशगी देना होगा, और इस प्रयोजन से पूंजीपति क मुद्रा बाजार पर अपनी ओर से प्रत्यक्ष दबाव डालेगा। किंतु यह उत्पादन सामग्री में निवेशित किये जानेवाले भाग के लिए केवल तब अपरिहार्य है, जब उसकी नक़द अदायगी करनी हो। यदि वह उसे उधार पर मिल जाये, तो मुद्रा बाजार पर इसका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव न पड़ेगा, क्योंकि तब अतिरिक्त पूंजी उत्पादक पूर्ति के रूप में, न कि प्रथमतः द्रव्य पूंजी के रूप में प्रत्यक्ष दी जाती है। किंतु यदि ऋणदाता क से प्राप्त हुंडी सीधे मुद्रा बाजार में डाल दे, बट्टे पर चला दे, इत्यादि, तो मुद्रा बाजार पर अन्य व्यक्ति के माध्यम से अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ेगा। किंतु यदि वह हुंडी का ऐसे क़र्ज की जमानत के तौर पर इस्तेमाल करता है, जो अभी देय नहीं है, तो मुद्रा बाजार पर यह अतिरिक्त पेशगी पूंजी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव नहीं डालेगी।

दूसरा प्रसंग। उत्पादन सामग्री की क़ीमत में परिवर्तन, अन्य सभी परिस्थितियां यथावत।

हमने अभी माना था कि ६०० पाउंड की कुल पूंजी का ४/५ भाग (७२० पाउंड के बराबर) उत्पादन सामग्री में निवेशित किया गया था और १/५ भाग (१८० पाउंड के बराबर) मजदूरी में।

यदि उत्पादन सामग्री की क़ीमत आधी रह जाये, तो ६ हफ़्ते की कार्य अवधि के लिए ४८० पाउंड के बदले २४० ही और अतिरिक्त पूंजी २ के लिए २४० पाउंड के बदले १२० पाउंड ही दरकार होंगे। इस प्रकार पूंजी १ ६०० पाउंड से घटकर २४० पाउंड + १२० पाउंड, यानी ३६० पाउंड रह जाती है, और पूंजी २ ३०० पाउंड से घटकर १२० पाउंड + ६० पाउंड, यानी १८० पाउंड रह जाती है। अतः ६०० पाउंड की कुल पूंजी घटकर ३६० पाउंड + १८० पाउंड, यानी ५४० पाउंड रह जाती है। इसलिए ३६० पाउंड की राशि मुक्त हो जाती है।

यह अलग हुई और अब अनियोजित अथवा मुद्रा बाजार में नियोजनार्थी द्रव्य पूंजी उस ६०० पाउंड की पूंजी के एक भाग के अलावा और कुछ नहीं है, जो मूलतः द्रव्य पूंजी के रूप में पेशगी दी गई थी और जो उत्पादन सामग्री की क़ीमतों में गिरावट आने के कारण, जिसमें वह समय-समय पर पुनःपरिवर्तित होती रहती है, अनावश्यक हो जाती है, बशर्ते कि व्यवसाय का विस्तार न करना हो, बल्कि उसी पैमाने पर चलाना हो। यदि क़ीमतों की यह गिरावट आकस्मिक परिस्थितियों के कारण न हो (ख़ास तौर से अच्छी फ़सल, सामग्री की अतिपूर्ति, इत्यादि), वरन कच्चा माल देनेवाली उत्पादन शाखा में उत्पादक शक्ति की वृद्धि के कारण हो, तो वह द्रव्य पूंजी मुद्रा बाजार में और सामान्यतः द्रव्य पूंजी के रूप में उपलभ्य पूंजी में निरपेक्ष वृद्धि होगी, क्योंकि अब वह पहले से निवेशित पूंजी का अभिन्न घटक न रह जायेगी।

तीसरा प्रसंग। स्वयं उत्पाद की बाजार क़ीमत में परिवर्तन।

क़ीमत गिरने पर पूंजी का एक भाग जाता रहता है और फलतः द्रव्य पूंजी की नई पेशगी के जरिये उसे पूरा करना होता है। विक्रेता का यह घाटा ग्राहक के लिए लाभ हो सकता है। ऐसा प्रत्यक्ष रूप में तब होता है, जब किसी उत्पाद की बाजार क़ीमत मात्र किसी आकस्मिक उतार-चढ़ाव के कारण गिरती है और इसके बाद फिर अपने सामान्य स्तर पर आ जाती है।

अप्रत्यक्ष रूप में ऐसा तब होता है, जब क़ीमतों में तबदीली मूल्य परिवर्तन के कारण होती है, जिसका प्रभाव पुराने उत्पाद पर भी पड़ता है, और जब यह उत्पाद उत्पादन के तत्व के रूप में दूसरे उत्पादन क्षेत्र में चला जाता है और वहां pro tanto पूंजी को मुक्त कर देता है। दोनों ही स्थितियों में क की जितनी पूंजी गई है और जिसके प्रतिस्थापन के लिए वह मुद्रा बाज़ार पर दबाव डालता है, उसकी उसके व्यावसायिक मित्र नई अतिरिक्त पूंजी के रूप में पूर्ति कर सकते हैं। तब जो कुछ होता है, वह केवल हस्तांतरण है।

इसके विपरीत, यदि उत्पाद की क़ीमत चढ़ जाती है, तो पूंजी का एक भाग, जो पेशगी नहीं दिया गया था, परिचलन से निकाल लिया जाता है। यह उत्पादन प्रक्रिया में पेशगी लगायी पूंजी का आंशिक भाग नहीं होती है और इसलिए जब तक उत्पादन का विस्तार न हो, तो वह निरस्त द्रव्य पूंजी होती है। चूंकि हमने यह माना है कि उत्पाद के माल पूंजी की तरह बाज़ार में लाये जाने के पहले उसके तत्वों की क़ीमतें नियत थीं, इसलिए वास्तविक मूल्य परिवर्तन से क़ीमतें बढ़ सकती थीं, क्योंकि उसकी क्रिया पूर्वव्यापी रही होती, जिससे आगे चलकर क़ीमतें, यथा कच्चे माल की, बढ़ जातीं। उस हालत में पूंजीपति क माल पूंजी के रूप में परिचलनशील अपने उत्पाद से और अपनी उपलभ्य उत्पादक पूर्ति से मुनाफ़ा कमाता। इस लाभ से उसे अतिरिक्त पूंजी मिल जाती, जिसकी अब उत्पादन तत्वों की नयी और ऊंची क़ीमतों के कारण अपना व्यवसाय चलाते रहने के लिए आवश्यकता होगी।

अथवा क़ीमतों का यह चढ़ाव अस्थायी ही होता है। तब पूंजीपति क को अतिरिक्त पूंजी के रूप में जिसकी ज़रूरत होती है, वह दूसरे पक्ष के लिए मुक्त पूंजी बन जाती है, क्योंकि क का उत्पाद व्यवसाय की दूसरी शाखाओं के लिए उत्पादन का एक तत्व बन जाता है। एक के लिए जो हानि है, वह दूसरे के लिए लाभ है।

अध्याय १६

परिवर्ती पूंजी का आवर्त

१. बेशी मूल्य की वार्षिक दर

मान लीजिये, प्रचल पूंजी २,५०० पाउंड है, जिसका ४/५ भाग, या २,००० पाउंड, स्थिर पूंजी (उत्पादन सामग्री) है और १/५ भाग, या ५०० पाउंड, मजदूरी में निवेशित परिवर्ती पूंजी है।

मान लीजिये, आवर्त अवधि ५ सप्ताह है: कार्य अवधि ४ सप्ताह, परिचलन अवधि १ सप्ताह। तब पूंजी १ २,००० पाउंड हुई, जिसमें १,६०० पाउंड स्थिर पूंजी के और ४०० पाउंड परिवर्ती पूंजी के हैं; पूंजी २ ५०० पाउंड की हुई, जिसमें ४०० पाउंड स्थिर पूंजी के और १०० पाउंड परिवर्ती पूंजी के हैं। प्रत्येक कार्य सप्ताह में ५०० पाउंड पूंजी निवेशित की जाती है। ५० सप्ताह के साल में ५०० का ५० गुना, यानी २५,००० पाउंड का वार्षिक उत्पाद निर्मित होता है। अतः कार्य अवधि में निरंतर नियोजित २,००० पाउंड की पूंजी १ १२ १/२ बार आवर्तित होती है। २,००० का १२ १/२ गुना २५,००० पाउंड है। इन २५००० पाउंड का ४/५, यानी २०,००० पाउंड उत्पादन साधनों में लगायी स्थिर पूंजी है और उसका १/५, यानी ५,००० पाउंड मजदूरी में लगायी परिवर्ती पूंजी हैं। इस प्रकार २,५०० पाउंड की कुल पूंजी $\frac{२५,०००}{२,५००}$, यानी दस बार आवर्तित होती है।

उत्पादन में व्यय की जानेवाली परिवर्ती प्रचल पूंजी परिचलन प्रक्रिया में उसी सीमा तक फिर से काम आ सकती है कि जिस सीमा तक वह उत्पाद, जिसमें उसका मूल्य पुनरुत्पादित होता है, बिक जाता है, माल पूंजी से द्रव्य पूंजी में परिवर्तित हो जाता है, जिससे कि उसे श्रम शक्ति की अदायगी के लिए फिर ख़र्च किया जा सके। लेकिन यह बात उत्पादन में निवेशित स्थिर प्रचल पूंजी (उत्पादन सामग्री) के बारे में भी सही है, जिसका मूल्य उत्पाद में उसके मूल्यांश के रूप में पुनः प्रकट होता है। प्रचल पूंजी के परिवर्ती और स्थिर, इन दोनों भागों में जो चीज़ सामान्य है और जो स्थायी पूंजी से उनकी भिन्नता सूचित करती है, वह यह नहीं है कि उनसे उत्पाद को अंतरित होनेवाला मूल्य माल पूंजी द्वारा परिचालित होता है, अर्थात माल के रूप में उत्पाद के परिचलन द्वारा परिचालित होता है। उत्पाद के मूल्य के एक भाग, अतः माल रूप में परिचालित उत्पाद के, माल पूंजी के एक भाग में सदा स्थायी पूंजी का घिसना-छीजना समाहित होता है, अर्थात स्थायी पूंजी का वह मूल्यांश समाहित होता है, जो उत्पादन प्रक्रिया के दौरान उत्पाद को अंतरित होता है। वास्तव में अंतर यह है: स्थायी पूंजी अपने पुराने उपयोग रूप में प्रचल पूंजी (जो स्थिर प्रचल पूंजी तथा परिवर्ती प्रचल पूंजी के योग

के बराबर है) की आवर्त अवधियों के छोटे-बड़े चक्र के दौरान उत्पादन प्रक्रिया में कार्य करती रहती है, जब कि प्रत्येक आवर्त उत्पादन क्षेत्र से – माल पूंजी के रूप में – परिचलन क्षेत्र में जानेवाली समग्र प्रचल पूंजी के प्रतिस्थापन पर निर्भर होता है। स्थिर प्रचल पूंजी तथा परिवर्ती प्रचल पूंजी के लिए परिचलन का पहला दौर मा' – द्र' सामान्य होता है। दूसरे दौर में वे जुदा हो जाती हैं। माल जिस द्रव्य में पुनःपरिवर्तित होता है, वह अंशतः उत्पादक पूर्ति (स्थिर प्रचल पूंजी) में रूपांतरित हो जाता है। द्रव्य के संघटक अंशों के क्रय की अलग-अलग शर्तों के अनुसार उसका कोई भाग कुछ पहले, तो कोई कुछ बाद में, उत्पादन सामग्री में परिणत हो सकता है, लेकिन आख़िरकार उसकी पूरी-पूरी खपत उसी तरह होती है। माल की बिक्री से प्राप्त द्रव्य का एक अन्य भाग द्रव्य पूर्ति के रूप में उत्पादन प्रक्रिया में समाविष्ट श्रम शक्ति की अदायगी में शनैः शनैः ख़र्च किये जाने के लिए सुरक्षित रहता है। यह भाग परिवर्ती प्रचल पूंजी होता है। फिर भी दोनों में से किसी भी भाग के समूचे प्रतिस्थापन की शुरूआत हमेशा पूंजी के आवर्त से उसके पूंजी में, उत्पाद से माल में, माल से द्रव्य में रूपांतरण से होती है। यही कारण है कि पिछले अध्याय में प्रचल – स्थिर और परिवर्ती – पूंजी के आवर्त का विवेचन स्थायी पूंजी की ओर ज़रा भी ध्यान दिये बिना एकसाथ और अलग-अलग किया गया था।

अब हम जो समस्या लेंगे, उसमें हमें एक क़दम और आगे जाना होगा और यह मानकर चलना होगा, मानो प्रचल पूंजी का परिवर्ती भाग ही अकेले प्रचल पूंजी है। दूसरे शब्दों में हम उस स्थिर प्रचल पूंजी का विवेचन यहां नहीं करेंगे, जो उसके साथ आवर्तित होती है।

२,५०० पाउंड की रक़म पेशगी दी गई है और वार्षिक उत्पाद का मूल्य २५,००० पाउंड है। किंतु प्रचल पूंजी का परिवर्ती भाग ५०० पाउंड है; इसलिए २५,००० पाउंड में प्रचल पूंजी हुई ५ से विभाजित २५,०००, यानी ५,००० पाउंड। यदि हम इन ५,००० पाउंड को ५०० पाउंड से विभाजित करें, तो पाते हैं कि आवर्तों की संख्या १० है, जैसे २,५०० पाउंड की कुल पूंजी के प्रसंग में भी थी।

जहां प्रश्न केवल बेशी मूल्य के उत्पादन का होता है, वहां यह औसत परिकलन करना पूर्णतः सही है, जिसके अनुसार वार्षिक उत्पाद के मूल्य को पेशगी पूंजी के मूल्य से विभाजित किया जाता है, इस पूंजी के उस भाग के मूल्य से नहीं, जो एक कार्य अवधि में लगातार काम में लाया जाता है (जैसे वर्तमान प्रसंग में ४०० से नहीं, ५०० से, पूंजी १ से नहीं, पूंजी १ और पूंजी २ के योग से)। हम आगे देखेंगे कि एक और दृष्टिकोण से यह परिकलन पूर्णतः सही नहीं है, जैसे यह औसत परिकलन भी समूचे तौर पर पूर्णतः सही नहीं है। दूसरे शब्दों में पूंजीपति के व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए तो यह काफ़ी ठीक है, किंतु यह आवर्त की सभी वास्तविक परिस्थितियां यथार्थतः या उचित ढंग से प्रकट नहीं करता।

हमने अभी तक माल पूंजी के उस मूल्यांश की, अर्थात उसमें निहित बेशी मूल्य की उपेक्षा की है, जो उत्पादन प्रक्रिया के दौरान पैदा हुआ और उत्पाद में समाविष्ट हुआ था। इसकी ओर हम अब ध्यान देंगे।

मान लीजिये, प्रति सप्ताह निवेशित १०० पाउंड परिवर्ती पूंजी १००% बेशी मूल्य या १०० पाउंड पैदा करती है। तब ५ हफ़्ते की आवर्त अवधि में निवेशित ५०० पाउंड परिवर्ती पूंजी ५०० पाउंड बेशी मूल्य पैदा करेगी, अर्थात आधे कार्य दिवस में बेशी श्रम समाविष्ट होगा।

यदि ५०० पाउंड परिवर्ती पूंजी ५०० पाउंड बेशी मूल्य पैदा करती है, तो

५,००० पाउंड, ५०० पाउंड का १० गुना, यानी ५,००० पाउंड बेशी मूल्य पैदा करेंगे। किंतु पेशगी परिवर्ती पूंजी ५०० पाउंड है। साल भर में उत्पादित कुल बेशी मूल्य के पेशगी परिवर्ती पूंजी की मूल्य राशि से अनुपात को ही हम बेशी मूल्य की वार्षिक दर कहते हैं। वर्तमान प्रसंग में यह ५०० प्रति ५०००, यानी १,०००% है। यदि हम इस दर का अधिक ध्यानपूर्वक विश्लेषण करें, तो देखेंगे कि यह पेशगी परिवर्ती पूंजी द्वारा एक आवर्त अवधि के दौरान उत्पादित बेशी मूल्य दर के परिवर्ती पूंजी के आवर्तों की संख्या (जो संपूर्ण परिवर्ती पूंजी के आवर्तों की संख्या के अनुरूप होती है) के साथ गुणनफल के बराबर होती है।

हमारे सम्मुख प्रस्तुत प्रसंग में एक आवर्त अवधि के लिए दी पेशगी परिवर्ती पूंजी ५०० पाउंड है। इस अवधि में उत्पादित बेशी मूल्य भी ५०० पाउंड ही है। इसलिए एक आवर्त अवधि के लिए बेशी मूल्य दर $\frac{५०० बे}{५०० प}$ या १००% है। इस १००% को १०– एक वर्ष में आवर्तों की संख्या – से गुणा करने से $\frac{५,००० बे}{५०० प}$, यानी १,०००% आता है।

यह बात बेशी मूल्य की वार्षिक दर के बारे में कही गई है। जहां तक आवर्त की किसी निर्दिष्ट अवधि में प्राप्त बेशी मूल्य की राशि का प्रश्न है, वह इस अवधि में पेशगी परिवर्ती पूंजी के मूल्य या वर्तमान प्रसंग में ५०० पाउंड के बेशी मूल्य दर के साथ गुणनफल के बराबर होती है; अतः वर्तमान प्रसंग में यह $\frac{१००}{१००}$ का ५०० गुना, यानी १ का ५०० गुना, यानी ५०० पाउंड है। यदि पेशगी परिवर्ती पूंजी १,५०० पाउंड होती, तो उसी बेशी मूल्य दर से बेशी मूल्य की राशि $\frac{१००}{१००}$ का १,५०० गुना या १,५०० पाउंड होती।

हम ५०० पाउंड की परिवर्ती पूंजी को क पूंजी कहेंगे, जो प्रति वर्ष १० बार आवर्तित होकर ५,००० पाउंड वार्षिक बेशी मूल्य पैदा करती है, अतः उसके लिए बेशी मूल्य की वार्षिक दर १,०००% है।

अब मान लीजिये कि ५,००० पाउंड की एक और परिवर्ती पूंजी ख पूरे साल के लिए (यानी यहां ५० सप्ताह के लिए) पेशगी दी जाती है, जिससे कि वह साल में एक ही बार आवर्तित होती है। इसके अलावा हम यह भी मान लेते हैं कि साल के अंत में जिस दिन उत्पाद तैयार होता है, उसी दिन उसकी अदायगी हो जाती है, जिससे जिस द्रव्य पूंजी में वह रूपांतरित होता है, वह उसी दिन वापस आ जाती है। इसलिए परिचलन अवधि हुई शून्य, आवर्त अवधि बराबर हुई कार्य अवधि के, अर्थात एक वर्ष के। पूर्व प्रसंग की ही भांति श्रम प्रक्रिया में प्रति सप्ताह १०० पाउंड की, अथवा ५० सप्ताह में ५,००० पाउंड की परिवर्ती पूंजी विद्यमान होगी। मान लीजिये कि बेशी मूल्य दर वही है, यानी १००%, अर्थात मान लीजिये कि उसी परिमाण के कार्य दिवस का आधा भाग बेशी श्रम का है। यदि हम ५ सप्ताह पर विचार करते हैं, तो निवेशित परिवर्ती पूंजी ५०० पाउंड और बेशी मूल्य दर १००% है और इसलिए ५ सप्ताह में उत्पादित बेशी मूल्य की राशि भी ५०० पाउंड है। यहां श्रम शक्ति की समुपयोजित मात्रा और उसके समुपयोजन की तीव्रता को बिल्कुल वैसा ही माना गया है, जैसा पूंजी क के मामले में थी।

१०० पाउंड की निवेशित परिवर्ती पूंजी प्रति सप्ताह १०० पाउंड बेशी मूल्य पैदा करती है, अतः ५० सप्ताह में ५०×१००=५,००० पाउंड की निवेशित पूंजी ५,००० पाउंड बेशी मूल्य पैदा करती है। प्रति वर्ष उत्पादित बेशी मूल्य की राशि पूर्व प्रसंग जितनी ही है, यानी ५,००० पाउंड, किंतु बेशी मूल्य की वार्षिक दर बिल्कुल भिन्न है। वह एक साल में पेशगी परिवर्ती पूंजी से विभाजित वर्ष भर में उत्पादित बेशी मूल्य के बराबर है: $\frac{\text{५,००० बे}}{\text{५,००० प}}$ अथवा १००%, जब कि पूंजी क के प्रसंग में यह दर १,०००% थी।

क और ख दोनों ही पूंजियों के प्रसंग में हमने प्रति सप्ताह १०० पाउंड परिवर्ती पूंजी का निवेश किया है। स्वविस्तार की मात्रा अथवा बेशी मूल्य दर भी वही है, यानी १००% और परिवर्ती पूंजी का परिमाण उतना ही रहता है, यानी १०० पाउंड। श्रम शक्ति की उतनी ही मात्रा का समुपयोजन होता है, समुपयोजन का परिमाण और सीमा दोनों प्रसंगों में बराबर हैं, कार्य दिवस एक से हैं और आवश्यक श्रम तथा बेशी श्रम में बराबर-बराबर बंटे हुए हैं। दोनों ही प्रसंगों में एक साल के दौरान नियोजित परिवर्ती पूंजी की राशि ५,००० पाउंड है; वह उतनी ही श्रम शक्ति को गतिशील बनाती है, और इन दोनों समान पूंजियों द्वारा गतिशील की गई श्रम शक्ति से उतनी ही राशि ५,००० पाउंड के बेशी मूल्य का दोहन करती है। फिर भी क और ख इन दोनों पूंजियों की वार्षिक बेशी मूल्य दर में ६००% का फ़र्क़ है।

यह परिघटना सर्वथा यह धारणा पैदा करती है कि बेशी मूल्य दर केवल परिवर्ती पूंजी द्वारा गतिशील की गई श्रम शक्ति के समुपयोजन की तीव्रता और सीमा पर ही नहीं, वरन परिचलन प्रक्रिया से उत्पन्न ऐसे प्रभावों पर निर्भर करती है, जिनकी व्याख्या नहीं की जा सकती। और दरअसल उसका यही अर्थ लगाया भी गया है और अपने इस शुद्ध रूप में नहीं, तो कम से कम अपने ज्यादा पेचीदा और प्रच्छन्न रूप में, लाभ की वार्षिक दर के रूप में तीसरे दशक के आरंभ से उसने रिकार्डो धारा को पूर्णतः पराभूत कर दिया है।

जब हम क और ख पूंजियों को बिल्कुल एक जैसी अवस्थाओं में दिखाऊ ढंग से नहीं, दरअसल रखते हैं, तो इस परिघटना की विचित्रता एकदम ग़ायब हो जाती है। ये समान अवस्थाएं तभी विद्यमान होती हैं कि जब परिवर्ती पूंजी ख की पूरी मात्रा श्रम शक्ति की अदायगी के लिए उसी अवधि में ख़र्च की जाती है, जिसमें पूंजी क ख़र्च की जाती है।

उस हालत में पूंजी ख के ५,००० पाउंड ५ हफ़्ते के लिए निवेशित किये जाते हैं, १,००० पाउंड प्रति सप्ताह के हिसाब से निवेश ५०,००० पाउंड प्रति वर्ष हो जाता है। तब हमारे पूर्वानुमानों के अनुसार बेशी मूल्य भी उसी प्रकार ५०,००० पाउंड हो जाता है। ५०,००० पाउंड की आवर्तित पूंजी को ५,००० पाउंड की पेशगी पूंजी से विभाजित करने पर आवर्तों की संख्या १० आती है। बेशी मूल्य दर $\frac{\text{५,००० बे}}{\text{५,००० प}}$ अथवा १००% को आवर्तों की संख्या १० से गुणित करने पर बेशी मूल्य की वार्षिक दर $\frac{\text{५०,००० बे}}{\text{५,००० प}}$ या १०/१, या १,०००% आती है। अब क और ख दोनों के लिए बेशी मूल्य की वार्षिक दर एक ही है, यानी १,०००%, किंतु बेशी मूल्य की राशि ख के प्रसंग में ५०,००० पाउंड

है, और क के प्रसंग में ५,००० पाउंड। बेशी मूल्य की उत्पादित राशियों का आपस में वही अनुपात है, जो पेशगी पूंजी मूल्य ख और क का है, अर्थात ५,००० : ५०० = १० : १। किंतु पूंजी ख ने पूंजी क की अपेक्षा उतने ही समय में १० गुना श्रम शक्ति को गतिशील किया है।

श्रम प्रक्रिया में वस्तुतः नियोजित पूंजी ही बेशी मूल्य पैदा करती है और बेशी मूल्य से संबंधित सभी नियम उस पर ही लागू होते हैं। अतः इनमें वह नियम भी शामिल है, जिसके अनुसार यदि बेशी मूल्य की दर दी हुई हो, तो उसकी मात्रा का निर्धारण परिवर्ती पूंजी के सापेक्ष परिमाण द्वारा किया जाता है।*

स्वयं श्रम प्रक्रिया को समय द्वारा मापा जाता है। यदि कार्य दिवस की दीर्घता दी हुई हो (जैसे यहां, जहां हम क और ख से संबंधित सभी अवस्थाओं को बराबर मानते हैं, जिससे बेशी मूल्य की वार्षिक दर के अंतर को स्पष्ट किया जा सके), तो कार्य सप्ताह में कार्य दिवसों की एक नियत संख्या होगी। अथवा हम किसी भी कार्य अवधि को, उदाहरण के लिए, ५ हफ़्ते की इस कार्य अवधि को, यदि कार्य दिवस में १० घंटे हों और कार्य सप्ताह में ६ दिन, तो ३०० घंटे का एक ही कार्य दिवस मान सकते हैं। इसके अलावा हमें इस संख्या को उन श्रमिकों की संख्या से गुणित करना होगा, जिन्हें उसी श्रम प्रक्रिया में एकसाथ और एक ही समय पर लगाया जाता है। यदि यह संख्या १० मान ली जाये, तो कार्य सप्ताह में १० के ६० गुना, यानी ६०० घंटे होंगे, और ५ सप्ताह की कार्य अवधि में ५ के ६०० गुना अथवा ३,००० घंटे होंगे। चूंकि बेशी मूल्य दर और कार्य दिवस की अवधि समान हैं, इसलिए यदि श्रम शक्ति की समान मात्राएं (श्रमिकों की संख्या से गुणित समान क़ीमत की श्रम शक्ति) एक ही समय गतिशील होती हैं, तो समान परिमाण की परिवर्ती पूंजियां नियोजित होती हैं।

अब हम अपने मूल उदाहरण पर लौट आते हैं। दोनों ही प्रसंगों में १०० पाउंड प्रति सप्ताह की बराबर-बराबर परिवर्ती पूंजियां क और ख पूरे साल हर हफ़्ते निवेशित की जाती हैं। इसलिए श्रम प्रक्रिया में यथार्थतः कार्यशील निवेशित परिवर्ती पूंजियां बराबर होती हैं, किंतु पेशगी परिवर्ती पूंजियां बहुत असमान होती हैं। क के मामले में हर ५ सप्ताह के लिए ५०० पाउंड पेशगी दिये जाते हैं, जिनमें से १०० पाउंड हर हफ़्ते समुपयोजित होते हैं। ख के मामले में ५ हफ़्ते की पहली अवधि के लिए ५,००० पाउंड पेशगी देने होंगे, जिनमें से केवल १०० पाउंड प्रति सप्ताह, अथवा ५ हफ़्ते में ५०० पाउंड, अथवा पेशगी पूंजी का दसवां भाग समुपयोजित होता है। ५ हफ़्ते की दूसरी अवधि में ४,५०० पाउंड पेशगी देने होंगे, किंतु इनमें से केवल ५०० पाउंड समुपयोजित होते हैं, इत्यादि। एक निश्चित अवधि के लिए दी गई परिवर्ती पूंजी नियोजित, अतः यथार्थतः कार्यशील और कर्मरत परिवर्ती पूंजी में उसी सीमा तक परिवर्तित होती है कि जिस सीमा तक वह यथार्थतः अवधि के श्रम प्रक्रिया द्वारा खपाये जानेवाले हिस्सों में प्रवेश करती है, जिस सीमा तक वह वस्तुतः श्रम प्रक्रिया में कार्यशील होती है। बीच के समय में, जिसमें उसका एक भाग बाद में नियोजनार्थ पेशगी दिया जाता है, यह भाग श्रम प्रक्रिया के लिए लगभग अस्तित्वहीन रहता है और इसलिए वह न तो मूल्य और न बेशी मूल्य के निर्माण पर कोई प्रभाव डालता है। उदाहरण के लिए, ५०० पाउंड की पूंजी क ले लीजिये। यह ५ हफ़्ते के लिए पेशगी दी जाती है, लेकिन हफ़्तावार श्रम प्रक्रिया

* कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', हिंदी संस्करण, खंड १, अध्याय ११। – सं०

में केवल १०० पाउंड क्रमशः दाखिल होते हैं। पहले हफ़्ते में इस पूंजी का पांचवां भाग नियोजित होता है; ४/५ भाग नियोजन में लाये बिना पेशगी देना होता है, यद्यपि उसका स्टॉक में रहना और इसलिए अगले ४ हफ़्तों की श्रम प्रक्रियाओं के लिए पेशगी दिया जाना जरूरी होता है।

पेशगी तथा नियोजित परिवर्ती पूंजी में संबंध-भेद दर्शानेवाली परिस्थितियां बेशी मूल्य के उत्पादन को – बेशी मूल्य दर दी हुई होने पर – इस सीमा तक और इस तथ्य के कारण ही प्रभावित करती हैं कि वे परिवर्ती पूंजी की उस मात्रा को विभेदित करती हैं, जिसका निर्धारित समयावधि में, यथा १ सप्ताह, ५ सप्ताह, आदि वस्तुतः नियोजन किया जा सकता है। पेशगी परिवर्ती पूंजी उसी सीमा तक और उसी समय के दौरान परिवर्ती पूंजी की तरह कार्य करती है, जब वह वस्तुतः नियोजित रहती है, उस समय के दौरान नहीं, जब वह स्टॉक में होती है, नियोजन में लाये बिना पेशगी दी जाती है। किंतु पेशगी तथा नियोजित परिवर्ती पूंजी में संबंध-भेद दर्शानेवाली सभी परिस्थितियां अंततोगत्वा आवर्त अवधियों के भेद (कार्य अवधि के या परिचलन अवधि के, या दोनों के अंतर द्वारा निर्धारित) में बदल जाती हैं। बेशी मूल्य के उत्पादन का नियम कहता है कि बेशी मूल्य दर समान हो, तो कार्यशील परिवर्ती पूंजी की समान मात्राएं बेशी मूल्य की समान मात्राएं पैदा करती हैं। इसलिए यदि **क** और **ख** पूंजियां समान अवधियों में समान बेशी मूल्य दरों पर परिवर्ती पूंजी की समान मात्राओं का नियोजन करती हैं, तो वे समान अवधियों में बेशी मूल्य की समान मात्राएं ही पैदा करेंगी, चाहे एक निश्चित अवधि में नियोजित इस परिवर्ती पूंजी का उसी अवधि में पेशगी दी गई परिवर्ती पूंजी से अनुपात कितना ही भिन्न क्यों न हो और इसलिए उत्पादित बेशी मूल्य की मात्राओं का नियोजित परिवर्ती पूंजी से नहीं, वरन सामान्यतः पेशगी परिवर्ती पूंजी से अनुपात कितना ही भिन्न क्यों न हो। बेशी मूल्य के उत्पादन के जिन नियमों का निदर्शन किया जा चुका है, उन्हें खंडित करना दरकिनार, अनुपात का यह भेद उनकी पुष्टि ही करता है और वह उन्हीं का एक अपरिहार्य परिणाम है।

आइये, हम पूंजी **ख** की ५ सप्ताह की पहली उत्पादक अवधि को ले लेते हैं। पांचवें हफ़्ते की समाप्ति पर ५०० पाउंड नियोजित और उपभुक्त हो चुके होते हैं। उत्पाद का मूल्य १,००० पाउंड है, अतः $\frac{\text{५०० बे}}{\text{५०० प}} = \text{१००\%}$। यह सब ठीक वैसे ही है, जैसे पूंजी **क** के मामले में। पूंजी **क** के मामले में बेशी मूल्य का पेशगी पूंजी के साथ-साथ सिद्धिकरण किया जाता है, जब कि **ख** के मामले में ऐसा नहीं होता, इस तथ्य से हमें यहां सरोकार नहीं है, जहां प्रश्न केवल बेशी मूल्य के उत्पादन का और उसके उत्पादन के दौरान पेशगी दी गई परिवर्ती पूंजी के साथ उसके अनुपात का है। किंतु इसके विपरीत यदि हम **ख** के प्रसंग में बेशी मूल्य के अनुपात का परिकलन ५,००० पाउंड पेशगी पूंजी के उस भाग के साथ नहीं, जो नियोजित और इसलिए जो उसके उत्पादन के दौरान उपभुक्त हो चुका है, वरन स्वयं इस कुल पेशगी पूंजी के साथ करें, तो हम पाते हैं कि यह $\frac{\text{५०० बे}}{\text{५,००० प}}$ अथवा १/१० या १०% है। इसलिए वह पूंजी **ख** के लिए १०% है और पूंजी **क** के लिए १००%, यानी १० गुना है। अब यदि कहा जाये कि ऐसी समान पूंजियों की बेशी मूल्य दर में यह

अंतर, जिन्होंने सवेतन और निर्वेतन श्रम में विभाजित श्रम की समान मात्राओं को गतिशील किया है, बेशी मूल्य के उत्पादन के नियमों के प्रतिकूल है, तो इसका जवाब सीधा सा होगा और वह वास्तविक संबंधों पर एक नजर डालते ही सूझेगा : क के मामले में बेशी मूल्य की वास्तविक दर व्यक्त है, अर्थात ५०० पाउंड की परिवर्ती पूंजी द्वारा ५ हफ़्ते में उत्पादित बेशी मूल्य का ५०० पाउंड की इस परिवर्ती पूंजी के साथ संबंध। दूसरी ओर ख के मामले में परिकलन ऐसा होता है, जिसका न तो बेशी मूल्य के उत्पादन से कोई संबंध होता है, न बेशी मूल्य के तदनुरूप दर निर्धारण से। कारण यह है कि ५०० पाउंड की परिवर्ती पूंजी द्वारा उत्पादित बेशी मूल्य के ५०० पाउंड का परिकलन परिवर्ती पूंजी के उन ५०० पाउंड के संदर्भ में नहीं किया जाता, जो इस बेशी मूल्य के उत्पादन के दौरान पेशगी दिये गये थे, वरन ५,००० पाउंड की पूंजी के संदर्भ में किया जाता है, जिसके ९/१० भाग या ४,५०० पाउंड का ५०० पाउंड के इस बेशी मूल्य के उत्पादन से कुछ भी संबंध नहीं है, बल्कि इसके विपरीत अभीष्ट यह होता है कि वे अगले ४५ सप्ताह के दौरान क्रमशः कार्य करेंगी, जिससे कि जहां तक पहले ५ हफ़्तों के उत्पादन का संबंध है, वे अस्तित्व में आते ही नहीं, और इस प्रसंग में यह उत्पादन ही विचारणीय है। अतः इस प्रसंग में क और ख पूंजियों के बेशी मूल्य की दरों में अंतर होने से कोई भी समस्या पैदा नहीं होती।

आइये, अब हम ख और क पूंजियों के बेशी मूल्य की सालाना दरों की तुलना करते हैं। पूंजी ख के लिए यह दर $\frac{५,००० \text{ बे}}{५,००० \text{ प}} = १००\%$ है; पूंजी क के लिए वह $\frac{५,००० \text{ बे}}{५०० \text{ प}} = १,०००\%$ है। किंतु बेशी मूल्य की दरों का अनुपात पहले जैसा ही है। तब स्थिति यह थी :

$$\frac{\text{पूंजी ख के बेशी मूल्य की दर}}{\text{पूंजी क के बेशी मूल्य की दर}} = \frac{१०\%}{१००\%}।$$

अब स्थिति यह है :

$$\frac{\text{पूंजी ख के बेशी मूल्य की वार्षिक दर}}{\text{पूंजी क के बेशी मूल्य की वार्षिक दर}} = \frac{१००\%}{१,०००\%}।$$

किंतु १०% : १००% = १००% : १,०००%, जिससे कि अनुपात वही रहता है।

किंतु अब समस्या बदल गई है। पूंजी ख की वार्षिक दर, $\frac{५,००० \text{ बे}}{५,००० \text{ प}} = १००\%$, हमारे परिचित उत्पादन के नियमों से और इस उत्पादन के अनुरूप बेशी मूल्य की दर के नियमों से तनिक भी विचलन प्रकट नहीं करती, विचलन का आभास तक नहीं देती। साल के भीतर ५,००० प पेशगी दिये गये और उत्पादक रूप से उपभुक्त हुए हैं और उन्होंने ५,००० बे पैदा किये हैं। इसलिए बेशी मूल्य की दर उपर्युक्त भिन्न $\frac{५,००० \text{ बे}}{५,००० \text{ प}} = १००\%$ के बराबर है। वार्षिक दर बेशी मूल्य की वास्तविक दर से मेल खाती है। अतः इस प्रसंग में पूंजी ख नहीं, वरन पूंजी क असंगति उत्पन्न करती है, जिसकी व्याख्या अपेक्षित है।

हमारे सामने यहां बेशी मूल्य की दर है $\frac{५,००० बे}{५०० प}$ = १,०००%। किंतु जहां पहले प्रसंग में ५ हफ़्ते का उत्पाद, ५०० बे, ५,००० पाउंड की पेशगी पूंजी के लिए परिकलित किया गया था, जिसका ९/१० भाग उसके उत्पादन में नियोजित नहीं किया गया था, वहां अब ५,००० बे को ५०० प के लिए, अर्थात ५,००० बे के उत्पादन में वस्तुतः नियोजित परिवर्ती पूंजी के दसवें भाग के लिए ही परिकलित किया जा रहा है; कारण यह कि ५,००० बे ५,००० पाउंड की ५० हफ़्ते के दौरान उत्पादक ढंग से उपभुक्त परिवर्ती पूंजी का उत्पाद हैं; ५ हफ़्ते की एक ही अवधि में उपभुक्त ५०० पाउंड की परिवर्ती पूंजी का नहीं। पहले प्रसंग में ५ सप्ताह में उत्पादित बेशी मूल्य को ५० सप्ताह के लिए पेशगी दी गई और ५ सप्ताह में उपभुक्त पूंजी से १० गुना बड़ी पूंजी के लिए परिकलित किया गया था। अब ५० सप्ताह में उत्पादित बेशी मूल्य को ५ सप्ताह के लिए पेशगी दी गई पूंजी के लिए, ५० सप्ताह में उपभुक्त पूंजी से १० गुना कम पूंजी के लिए, परिकलित किया जा रहा है।

५०० पाउंड की पूंजी क ५ सप्ताह से ज्यादा के लिए कभी पेशगी नहीं दी जाती। यह वक़्त बीत जाने पर वह लौट आती है, और साल के भीतर वह उसी प्रक्रिया का दस बार नवीकरण कर सकती है, क्योंकि वह १० आवर्त करती है। इससे दो परिणाम निकलते हैं:

पहला: क के प्रसंग में जो पूंजी पेशगी दी जाती है, वह पूंजी के उस भाग से केवल ५ गुना बड़ी होती है, जो एक हफ़्ते की उत्पादन प्रक्रिया में लगातार नियोजित रहती है। दूसरी ओर पूंजी ख, जो ५० हफ़्ते में केवल एक बार आवर्तित होती है और इसलिए जिसे ५० सप्ताह के लिए पेशगी देना होता है, अपने उस भाग से ५० गुना बड़ी होती है, जिसे हफ़्ते भर लगातार नियोजित किया जा सकता है। अतः आवर्त साल के भीतर उत्पादन प्रक्रिया के लिए पेशगी दी गई पूंजी तथा एक निश्चित उत्पादन अवधि, यथा एक सप्ताह के लिए सतत नियोज्य पूंजी के संबंध को आपरिवर्तित कर देता है। इसलिए हमारे सामने यहां पहला प्रसंग है, जिसमें ५ हफ़्ते के बेशी मूल्य को इन ५ हफ़्तों नें नियोजित पूंजी के लिए नहीं, वरन उससे १० गुना बड़ी, ५० सप्ताह के वास्ते नियोजित पूंजी के लिए परिकलित किया जाता है।

दूसरा: पूंजी क की ५ सप्ताह की आवर्त अवधि में साल का दसवां भाग ही आता है, जिससे साल में ऐसी १० आवर्त अवधियां होती हैं, जिनमें ५०० पाउंड की पूंजी क उत्तरोत्तर पुनःनिवेशित होती है। यहां नियोजित पूंजी प्रति वर्ष आवर्त अवधियों की संख्या से गुणित ५ हफ़्ते के लिए पेशगी दी पूंजी के बराबर है। साल में नियोजित पूंजी १० का ५०० गुना अथवा ५,००० पाउंड है। साल के दौरान पेशगी दी गई पूंजी $\frac{५,०००}{१०}$ या ५०० पाउंड है। वास्तव में, यद्यपि ५०० पाउंड सदा पुनःनियोजित होते रहते हैं, फिर भी हर पांच हफ़्ते बाद पेशगी दी जानेवाली राशि इन ५०० पाउंड से ज्यादा कभी नहीं होती। दूसरी ओर पूंजी ख के मामले में ५ सप्ताह में केवल ५०० पाउंड नियोजित किये जाते हैं और इन ५ हफ़्तों के लिए पेशगी दिये जाते हैं। लेकिन, चूंकि इस मामले में आवर्त अवधि ५० हफ़्ते है, इसलिए साल में नियोजित पूंजी ५० सप्ताह के लिए पेशगी दी जानेवाली पूंजी के बराबर होती है, न कि हर ५ सप्ताह के लिए पेशगी दी जानेवाली पूंजी के बराबर। तथापि बेशी मूल्य की दर दी हुई

होने पर बेशी मूल्य की प्रति वर्ष उत्पादित मात्रा साल में नियोजित पूंजी के अनुरूप होती है, न कि साल के दौरान पेशगी दी पूंजी के। अतः वह वर्ष में १० बार आवर्तित होनेवाली ५०० पाउंड की पूंजी के लिए जितनी होती है, उसकी तुलना में वर्ष में एक बार आवर्तित होनेवाली ५,००० पाउंड की पूंजी से बड़ी नहीं होती। और वह इतनी बड़ी केवल इसलिए है कि वर्ष में एक बार आवर्तित होनेवाली पूंजी स्वयं वर्ष में १० बार आवर्तित होनेवाली पूंजी से १० गुना बड़ी है।

एक साल के दौरान आवर्तित होनेवाली परिवर्ती पूंजी – अतः वार्षिक उत्पाद का भाग अथवा उस भाग के बराबर वार्षिक व्यय का अंश – उस साल के दौरान वस्तुतः नियोजित, उत्पादक रूप में उपभुक्त परिवर्ती पूंजी होती है। इसलिए इससे यह नतीजा निकलता है कि यदि प्रति वर्ष आवर्तित परिवर्ती पूंजी क और प्रति वर्ष आवर्तित परिवर्ती पूंजी ख बराबर हों, और स्वप्रसार की समान परिस्थितियों में नियोजित हों, जिससे कि बेशी मूल्य की दर दोनों के लिए समान हो, तो प्रति वर्ष उत्पादित बेशी मूल्य की मात्रा भी उसी तरह दोनों के लिए समान ही होगी। अतः साल भर के लिए परिकलित बेशी मूल्य की दर भी समान होगी, क्योंकि नियोजित पूंजी की राशियां समान हैं – जहां तक कि दर इस तरह प्रकट की जाती है:

$$\frac{\text{प्रति वर्ष उत्पादित बेशी मूल्य की मात्रा}}{\text{प्रति वर्ष आवर्तित परिवर्ती पूंजी}}$$

। अथवा सामान्य रूप में : आवर्तित परिवर्ती पूंजियों का सापेक्ष परिमाण जो भी हो, उनके द्वारा साल भर में उत्पादित बेशी मूल्य की दर बेशी मूल्य की उस दर से निर्धारित होती है, जिससे इन अलग-अलग पूंजियों ने औसत अवधियों में काम किया है (यथा, औसतन एक हफ़्ते या एक दिन)।

बेशी मूल्य के उत्पादन के नियमों तथा बेशी मूल्य की दर के निर्धारण के नियमों का यही एक परिणाम है।

अब हमें यह और देखना चाहिए कि इस अनुपात से क्या प्रकट होता है:

$$\frac{\text{प्रति वर्ष आवर्तित पूंजी}}{\text{पेशगी पूंजी}}$$

(जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, केवल परिवर्ती पूंजी को ध्यान में रखते हुए)। यह विभाजन पेशगी पूंजी द्वारा एक वर्ष में किये गये आवर्तों की संख्या प्रकट करता है।

पूंजी क के प्रसंग में यह होता है:

$$\frac{\text{५,००० पाउंड की प्रति वर्ष आवर्तित पूंजी}}{\text{५०० पाउंड की पेशगी पूंजी}}$$

पूंजी ख के प्रसंग में यह होता है:

$$\frac{\text{५,००० पाउंड की प्रति वर्ष आवर्तित पूंजी}}{\text{५,००० पाउंड की पेशगी पूंजी}}$$

दोनों अनुपातों में लब्ध आवर्तों की संख्या द्वारा गुणित पेशगी पूंजी को प्रकट करता है: क के प्रसंग में १० का ५०० गुना; ख के प्रसंग में १ का ५,००० गुना। अथवा इसे साल

भर के लिए परिकलित व्युत्क्रम आवर्त **काल** से गुणित किया जा सकता है। क के लिए आवर्त काल वर्ष का १/१० है; व्युत्क्रम आवर्त वर्ष का १०/१; अतः १०/१ का ५०० गुना अथवा ५,००० है। ख के प्रसंग में यह १/१ का ५,००० गुना अथवा ५,००० है। हर आवर्तों की व्युत्क्रम **संख्या** से गुणित आवर्तित पूंजी को प्रकट करता है; क के प्रसंग में १/१० का ५,००० गुना; ख के प्रसंग में १/१ का ५,००० गुना।

श्रम (सवेतन श्रम और निर्वेतन श्रम दोनों का योग) की प्रति वर्ष आवर्तित दोनों परिवर्ती पूंजियों द्वारा गतिशील की जानेवाली अलग-अलग मात्राएं इस मामले में समान हैं, क्योंकि आवर्तित पूंजियां स्वयं ही समान हैं और इसी प्रकार उनके विस्तार की दरें भी समान हैं।

प्रति वर्ष आवर्तित परिवर्ती पूंजी का परिवर्ती पेशगी पूंजी से अनुपात यह सूचित करता है: १) किसी निश्चित कार्य अवधि में पेशगी दी जानेवाली पूंजी का नियोजित परिवर्ती पूंजी से अनुपात। यदि आवर्तों की संख्या १० हो, जैसे पूंजी क के प्रसंग में है, और वर्ष में ५० हफ़्ते माने जायें, तो आवर्त अवधि ५ सप्ताह होगी। इन ५ हफ़्तों के लिए परिवर्ती पूंजी पेशगी देनी होगी और ५ सप्ताह के लिए पेशगी दी जानेवाली पूंजी एक हफ़्ते में नियोजित परिवर्ती पूंजी से ५ गुना बड़ी होगी। दूसरे शब्दों में पेशगी पूंजी (इस प्रसंग में ५०० पाउंड) का पांचवां भाग ही एक हफ़्ते के दौरान नियोजित हो सकता है। दूसरी ओर पूंजी ख के मामले में, जहां आवर्तों की संख्या १/१ है, आवर्त काल एक वर्ष, अथवा ५० हफ़्ते है। अतः प्रति सप्ताह नियोजित पूंजी से पेशगी पूंजी का अनुपात ५० : १ है। यदि ख के लिए भी बात वैसी ही होती, जैसी क के लिए, तो ख को प्रति सप्ताह १०० पाउंड के बदले १,००० पाउंड निवेशित करने होते। २) इससे यह नतीजा निकलता है कि परिवर्ती पूंजी की उसी मात्रा को और इसलिए – बेशी मूल्य की दर दी हुई होने के कारण – श्रम (सवेतन और निर्वेतन) की समान मात्रा को गतिशील करने के लिए और इस प्रकार वर्ष में बेशी मूल्य की भी समान मात्रा को पैदा करने के लिए ख ने क के मुक़ाबले १० गुना पूंजी (५,००० पाउंड) का नियोजन किया है। बेशी मूल्य की वास्तविक दर किसी निश्चित कालावधि में नियोजित परिवर्ती पूंजी के उसी अवधि में उत्पादित बेशी मूल्य के साथ अनुपात अथवा इस काल में परिवर्ती पूंजी द्वारा गतिशील किये निर्वेतन श्रम की मात्रा के अलावा और कुछ प्रकट नहीं करती। इसका परिवर्ती पूंजी के उस भाग से क़तई कुछ भी संबंध नहीं होता, जो उस समय पेशगी दिया जाता है, जब वह नियोजन में नहीं होता है। अतः इसी प्रकार इसका एक निश्चित कालावधि में पेशगी दिये जाने-वाले पूंजी अंश तथा उसी अवधि में नियोजित दूसरे अंश के बीच अनुपात से भी कोई संबंध नहीं होता, जिसे आवर्त अवधि विभिन्न पूंजियों के लिए आपरिवर्तित और विभेदित करती है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे बल्कि यही नतीजा निकलता है कि बेशी मूल्य की वार्षिक दर केवल एक ही मामले में बेशी मूल्य की वास्तविक दर से पूरा मेल खाती है, जो श्रम के समुपयोजन की मात्रा प्रकट करती है, अर्थात उस प्रसंग में, जहां पेशगी पूंजी का आवर्त साल में केवल एक बार होता है और इस प्रकार पेशगी पूंजी साल में आवर्तित पूंजी के बराबर होती है; अतः जब वर्ष में उत्पादित बेशी मूल्य की मात्रा का इस उत्पादन में वर्ष के दौरान

नियोजित पूंजी के साथ अनुपात वर्ष में उत्पादित बेशी मूल्य की मात्रा के वर्ष में पेशगी दी गई पूंजी के साथ अनुपात के तद्रूप होता है और उससे पूरा मेल खाता है।

क) बेशी मूल्य की वार्षिक दर बराबर है :

$$\frac{\text{वर्ष में उत्पादित बेशी मूल्य की मात्रा}}{\text{पेशगी परिवर्ती पूंजी}}$$

किंतु साल में उत्पादित बेशी मूल्य की मात्रा बेशी मूल्य की उसके उत्पादन में नियोजित परिवर्ती पूंजी से गुणित वास्तविक दर के बराबर होती है। बेशी मूल्य की वार्षिक मात्रा के उत्पादन में नियोजित पूंजी श्रावर्तों की संख्या से गुणित पेशगी पूंजी के बराबर होती है, जिसे हम सं की संज्ञा देते हैं। अतः क सूत्र निम्नलिखित में रूपांतरित हो जाता है :

ख) बेशी मूल्य की वार्षिक दर बराबर है :

$$\frac{\text{बेशी मूल्य की वास्तविक दर} \times \text{पेशगी परिवर्ती पूंजी} \times \text{सं}}{\text{पेशगी परिवर्ती पूंजी}}$$

उदाहरण के लिए, पूंजी ख के मामले में वह $\frac{१०० \times ५,००० \times १}{५,०००}$ अथवा १००% के बराबर है। केवल जब सं १ के बराबर होती है, अर्थात जब पेशगी परिवर्ती पूंजी साल में एक ही बार आवर्तित होती है और इसलिए जब वह वर्ष में नियोजित अथवा आवर्तित पूंजी के बराबर होती है, तभी बेशी मूल्य की वार्षिक दर उसकी वास्तविक दर के बराबर होती है।

हम बेशी मूल्य की वार्षिक दर को बे', बेशी मूल्य की वास्तविक दर को बे', पेशगी परिवर्ती पूंजी को प, आवर्तों की संख्या को सं की संज्ञा देते हैं। तब $\text{बे}' = \frac{\text{बे}'\text{प सं}}{\text{प}} = \text{बे}'\ \text{सं}$। दूसरे शब्दों में बे' बराबर है बे' सं के, और वह बे' के बराबर केवल तब होता है, जब सं = १; अतः बे' = बे' × १ अथवा बे'।

इसके अलावा यह भी नतीजा निकलता है कि बेशी मूल्य की वार्षिक दर हमेशा बे' सं के बराबर होती है, अर्थात एक आवर्त अवधि में उपभुक्त परिवर्ती पूंजी द्वारा उत्पादित बेशी मूल्य के उस परिवर्ती पूंजी के साल भर के आवर्तों की संख्या से गुणनफल के अथवा (जो एक ही बात है) एक वर्ष के लिए परिकलित उसके व्युत्क्रम आवर्त काल से गुणनफल के बराबर होती है। (यदि परिवर्ती पूंजी साल में १० बार आवर्तित होती है, तो उसका आवर्त काल वर्ष का १/१० होगा; अतः उसका व्युत्क्रम आवर्त काल १०/१ अथवा १० होगा।)

इससे यह भी नतीजा निकलता है कि यदि सं १ के बराबर हो, तो बे' = बे'। जब सं १ से बड़ा होता है, अर्थात जब पेशगी पूंजी का वर्ष में १ से अधिक बार आवर्त होता है अथवा आवर्तित पूंजी पेशगी पूंजी से अधिक होती है, तो बे' बे' से बड़ा होता है।

अंतिम बात, जब सं १ से न्यून होता है, तब बे' बे' से न्यून होता है, अर्थात तब, जब वर्ष भर में आवर्तित पूंजी पेशगी पूंजी का केवल एक भाग होती है, जिससे कि आवर्त अवधि वर्ष भर से ज्यादा होती है।

इस अंतिम प्रसंग पर हम थोड़ा और विचार करेंगे।

हम अपने पुराने उदाहरण की सारी आधारिकाओं को क़ायम रखेंगे, सिवा इसके कि आवर्त अवधि बढ़ाकर ५५ सप्ताह कर दी जाती है। श्रम प्रक्रिया को प्रति सप्ताह १०० पाउंड परिवर्ती पूंजी की, अतः आवर्त अवधि के लिए ५,५०० पाउंड की आवश्यकता है और वह प्रति सप्ताह १०० बे पैदा करती है; अतः बे' पहले की तरह १००% है। यहां आवर्त संख्या सं ५०/५५ या १०/११ है, क्योंकि आवर्त काल १ + वर्ष (५० सप्ताह के) का १/१० अथवा ११/१० वर्ष है।

$$बे' = \frac{१००\% \times ५,५०० \times १०/११}{५,५००} = १०० \times १०/११ = \frac{१,०००}{११} = ९० \; १०/११\%।$$

इसलिए यह १००% से कम है। वस्तुतः यदि बेशी मूल्य की वार्षिक दर १००% हो, तो साल में ५,५००प ५,५००बे पैदा करेंगे, जब कि इसके लिए ११/१० वर्ष जरूरी होते हैं। ५,५०० प साल में केवल ५,०००बे पैदा करते हैं, अतः बेशी मूल्य की वार्षिक दर $\frac{५,००० \text{ बे}}{५,५०० \text{ प}}$ अथवा १०/११, अथवा ९० १०/११% है।

अतः बेशी मूल्य की वार्षिक दर अथवा वर्ष में उत्पादित बेशी मूल्य से सामान्यतः **पेशगी** परिवर्ती पूंजी की तुलना (उस परिवर्ती पूंजी से भिन्न, जो साल के दौरान **आवर्तित** होती है) कोई आत्मगत तुलना मात्र नहीं है; स्वयं पूंजी की वास्तविक गति ही इस वैषम्य को उत्पन्न करती है। जहां तक पूंजी क के स्वामी का सवाल है, उसकी ५०० पाउंड की पेशगी परिवर्ती पूंजी साल ख़त्म होने पर उसके पास लौट आई है, और बेशी मूल्य के ५,००० पाउंड ऊपर से आये हैं। उसकी पेशगी पूंजी के परिमाण को उसके द्वारा वर्ष में नियोजित पूंजी की मात्रा नहीं, वरन उसके पास नियतकालिक रूप से लौटकर आनेवाली मात्रा प्रकट करती है। प्रस्तुत मामले के लिए यह निरर्थक है कि साल ख़त्म होने पर पूंजी अंशतः उत्पादक पूर्ति के रूप में विद्यमान रहती है या अंशतः द्रव्य पूंजी अथवा माल पूंजी के रूप में और वह इन भिन्न भागों में किन अनुपातों में विभाजित है। जहां तक पूंजी ख के स्वामी का सवाल है, उसकी ५,००० पाउंड की पेशगी पूंजी तथा इसके ऊपर बेशी मूल्य के ५,००० पाउंड लौट आये हैं। ग पूंजी (जिस पर सबसे अंत में विचार किया गया है और जो ५,५०० पाउंड की है) के स्वामी के लिए वर्ष में ५,००० पाउंड का बेशी मूल्य उत्पादित हुआ है (५,००० पाउंड का निवेश और बेशी मूल्य की दर १००%), किंतु उसके पास अभी न उसकी पेशगी पूंजी और न उस द्वारा उत्पादित बेशी मूल्य ही लौटे हैं।

बे' = बे' सं यह दर्शाता है कि एक आवर्त अवधि में नियोजित परिवर्ती पूंजी के लिए संगत बेशी मूल्य की दर, अर्थात

$$\frac{\text{एक आवर्त अवधि में उत्पादित बे की मात्रा}}{\text{एक आवर्त अवधि में नियोजित प}}$$

को आवर्त अवधियों की संख्या अथवा पेशगी परिवर्ती पूंजी की पुनरुत्पादन अवधियों की संख्या से, जिन अवधियों में वह अपने परिपथ का नवीकरण करती है, उनकी संख्या से गुणित करना होगा।

हम पहले ही (Buch I, Kap. IV)* ('मुद्रा का पूंजी में रूपांतरण'), और आगे (Buch I, Kap. XXI)** ('साधारण पुनरुत्पादन') में देख चुके हैं कि सामान्यतः पूंजी मूल्य पेशगी दिया जाता है, व्यय नहीं किया जाता, क्योंकि अपने परिपथ के विभिन्न दौरों से गुज़रने के बाद वह अपने प्रस्थान बिंदु पर लौट आता है और बेशी मूल्य से समृद्ध होकर लौटता है। यही उसे पेशगी मूल्य होने का स्वरूप प्रदान करता है। उसके प्रस्थान क्षण से प्रत्यावर्तन क्षण तक जो वक़्त बीतता है, वही वह समय है, जिसके लिए उसे पेशगी दिया गया था। पूंजी मूल्य द्वारा संपन्न सारी वृत्तीय गति को यदि उसके पेशगी दिये जाने से प्रत्यावर्तन काल तक मापा जाये, तो यह उसका आवर्त होगा, और इस आवर्त की मीयाद ही आवर्त अवधि होती है। जब यह अवधि समाप्त हो जाती है और परिपथ पूरा हो जाता है, तब वही पूंजी मूल्य उसी परिपथ को फिर से चालू कर सकता है, अतः नये सिरे से स्वप्रसार कर सकता है, बेशी मूल्य का निर्माण कर सकता है। यदि परिवर्ती पूंजी साल में १० बार आवर्तित होती है, जैसे कि पूंजी क के प्रसंग में, तो पूंजी की वही पेशगी साल भर में बेशी मूल्य की १० गुना मात्रा पैदा करेगी जो एक आवर्त अवधि के अनुरूप होती है।

पूंजीवादी समाज के दृष्टिकोण से इस पेशगी के स्वरूप की स्पष्ट समझ प्राप्त करना आवश्यक है।

पूंजी क, जो सालाना १० बार आवर्तित होती है, वर्ष में १० बार पेशगी दी जाती है। हर नई आवर्त अवधि के लिए वह नये सिरे से पेशगी दी जाती है। किंतु साथ ही क वर्ष के दौरान ५०० पाउंड के इसी पूंजी मूल्य से अधिक कुछ पेशगी नहीं देती और वस्तुतः हमारे द्वारा विवेचित उत्पादन प्रक्रिया के लिए इन ५०० पाउंड से अधिक कभी कुछ नहीं लगाती। जैसे ही ये ५०० पाउंड एक परिपथ पूरा करते हैं, क उन्हें उसी परिपथ में नये सिरे से लगा देती है; पूंजी अपनी प्रकृति से ही अपना पूंजी का स्वरूप केवल इसलिए बनाये रखती है कि वह आनुक्रमिक उत्पादन प्रक्रियाओं में सदा पूंजी की हैसियत से कार्य करती है। इसके अलावा वह ५ हफ़्ते से ज्यादा के लिए कभी पेशगी नहीं दी जाती। यदि आवर्त अधिक चले, तो वह अपर्याप्त सिद्ध होती है। यदि आवर्त घट जाये, तो उसका एक भाग फालतू हो जाता है। ५०० पाउंड की १० पूंजियां पेशगी नहीं दी जातीं, वरन ५०० पाउंड की एक पूंजी क्रमिक अंतरालों पर १० बार पेशगी दी जाती है। अतः बेशी मूल्य की वार्षिक दर ५०० पाउंड की पूंजी की १० पेशगियों, अथवा ५,००० पाउंड के लिए नहीं, वरन ५०० पाउंड की पूंजी की एक पेशगी के लिए परिकलित की जाती है। यह वैसी ही बात है, जैसे १ शिलिंग १० बार परिचालित होता है, फिर भी वह परिचलन में १ शिलिंग से ज्यादा को कभी प्रकट नहीं करता है, यद्यपि वह कार्य १० शिलिंग का करता है। लेकिन प्रति हस्तांतरण के बाद वह जिस जेब में पहुंचता है, उसमें उसका वही पहले जैसा १ शिलिंग का मूल्य बना रहता है।

उसी प्रकार पूंजी क प्रत्येक क्रमिक प्रत्यावर्तन पर और उसी तरह वर्ष के अंत में अपनी वापसी पर यह सूचित करती है कि उसके स्वामी ने हमेशा ५०० पाउंड के उसी पूंजी मूल्य से काम किया है। अतः उसके पास प्रति बार केवल ५०० पाउंड ही लौटकर आते हैं। इसलिए

* हिंदी संस्करण: भाग २।–सं०
** हिंदी संस्करण: अध्याय २३।–सं०

उसकी पेशगी पूंजी कभी ५०० पाउंड से ज्यादा नहीं होती। अतः ५०० पाउंड की पेशगी पूंजी उस भिन्न का हर होती है, जो बेशी मूल्य की वार्षिक दर प्रकट करती है। इसके लिए हमारे पास उपरोक्त सूत्र $बे' = \frac{बे'प\ सं}{प} = बे'सं$ था। चूंकि बेशी मूल्य बे' की वास्तविक दर $\frac{बे}{प}$ के बराबर, बेशी मूल्य की उस परिवर्ती पूंजी से, जिसने उसे पैदा किया है, विभाजित मात्रा के बराबर है, इसलिए हम बे'सं में बे' के मूल्य की $\frac{बे}{प}$ से प्रतिस्थापना कर सकते हैं, और यह दूसरा सूत्र प्राप्त कर सकते हैं: $बे' = \frac{बे\ सं}{प}$।

अपने १० गुने आवर्त और इस प्रकार अपनी पेशगी के १० गुने नवीकरण द्वारा ५०० पाउंड की पूंजी अपने से १० गुना बड़ी पूंजी, ५,००० पाउंड की पूंजी, का कार्य करती है, जैसे वर्ष में १० बार परिचालित होनेवाले ५०० शिलिंग भी वही कार्य करते हैं, जो केवल एक बार परिचालित होनेवाले ५,००० शिलिंग करते हैं।

२. वैयक्तिक परिवर्ती पूंजी का आवर्त

"समाज में उत्पादन की प्रक्रिया का रूप कुछ भी हो, यह आवश्यक है कि वह एक निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया हो और एक निश्चित अवधि के बाद बार-बार उन्हीं अवस्थाओं में से गुजरे ... इसलिए, यदि उत्पादन प्रक्रिया पर एक संबद्ध इकाई के रूप में और एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में विचार किया जाये, जो हर बार नये सिरे से आरंभ हो जाती है, तो उत्पादन की प्रत्येक सामाजिक प्रक्रिया साथ ही पुनरुत्पादन की भी प्रक्रिया होती है ... बेशी मूल्य पेशगी लगाई गई पूंजी की नियतकालिक वृद्धि की शक्ल में अथवा क्रियारत पूंजी के नियतकालिक फल की शक्ल में, पूंजी से उत्पन्न होनेवाली आय का रूप धारण कर लेता है" (Buch I, Kap. XXI, पृष्ठ ५८८, ५८९)*।

पूंजी क के प्रसंग में हमारे सामने ५ सप्ताह की १० आवर्त अवधियां हैं। पहली आवर्त अवधि में परिवर्ती पूंजी के ५०० पाउंड पेशगी लगाये जाते हैं; अर्थात प्रति सप्ताह १०० पाउंड श्रम शक्ति में तबदील किये जाते हैं, जिससे पहली आवर्त अवधि ख़त्म होने तक श्रम शक्ति पर ५०० पाउंड ख़र्च होते हैं। ये ५०० पाउंड, जो मूलतः कुल पेशगी पूंजी का एक भाग थे, अब पूंजी नहीं रह गये हैं। वे मजदूरी में दे दिये जाते हैं। मजदूर अपनी बारी में निर्वाह साधनों की ख़रीद में ५०० पाउंड क़ीमत के निर्वाह साधनों का उपभोग करके ख़र्च कर देते हैं। अतः पण्य वस्तुओं की उतने ही मूल्य की मात्रा विनष्ट हो जाती है (द्रव्य आदि के रूप में मजदूर जो कुछ बचा लें, वह भी पूंजी नहीं होता)। जहां तक मजदूर का सवाल है, पण्य वस्तुओं की इस मात्रा का अनुत्पादक उपभोग हुआ है, सिवा इसके कि वह उसकी श्रम शक्ति की क्षमता बनाये रखती है, जो पूंजीपति के लिए एक अपरिहार्य उपकरण है।

लेकिन दूसरी बात यह है कि ये ५०० पाउंड पूंजीपति के लिए उसी मूल्य (या क़ीमत)

---

*हिंदी संस्करण: पृष्ठ ६३६ और ६३७।–सं०

की श्रम शक्ति में रूपांतरित हो गये हैं। उसके द्वारा श्रम शक्ति श्रम प्रक्रिया में उत्पादक ढंग से उपभुक्त की जाती है। ५ हफ़्ते के अंत में १,००० पाउंड मूल्य के उत्पाद का सृजन हो जाता है। इसका आधा – ५०० पाउंड – श्रम शक्ति की अदायगी पर व्ययित परिवर्ती पूंजी का पुनरुत्पादित मूल्य है। बाक़ी आधा हिस्सा – ५०० पाउंड – नवोत्पादित बेशी मूल्य है। किंतु ५ हफ़्ते की श्रम शक्ति भी विनिमय के ज़रिये, जिसके लिए एक पूंजी अंश परिवर्ती पूंजी में परिवर्तित किया गया था, इसी प्रकार व्ययित होती, उपभुक्त होती है, यद्यपि उत्पादक ढंग से। जो श्रम कल सक्रिय था, वह वही श्रम नहीं है, जो आज सक्रिय है। वह और उसने जिस बेशी मूल्य का सृजन किया है, उसका मूल्य अब ऐसी चीज़ के मूल्य के रूप में, जो श्रम शक्ति से भिन्न है, यानी उत्पाद के मूल्य के रूप में विद्यमान है। किंतु उत्पाद को द्रव्य में परिवर्तित करके उसके मूल्य के उस भाग का, जो पेशगी परिवर्ती पूंजी के मूल्य के बराबर है, श्रम शक्ति से फिर विनिमय किया जा सकता है, और इस प्रकार वह पुनःपरिवर्ती पूंजी की हैसियत से कार्य कर सकता है। यह बात महत्वहीन है कि न केवल पुनरुत्पादित पूंजी मूल्य द्वारा, वरन द्रव्य रूप में पुनःपरिवर्तित पूंजी मूल्य द्वारा भी उन्हीं मज़दूरों, अर्थात श्रम शक्ति के उन्हीं वाहकों को काम दिया जाता है। पूंजीपति के लिए यह संभव है कि वह दूसरी आवर्त अवधि के लिए अन्य मज़दूरों को भाड़े पर रख ले।

अतः यथार्थ में ५०० पाउंड की नहीं, वरन ५,००० पाउंड की पूंजी ५-५ सप्ताह की १० आवर्त अवधियों में क्रमशः मज़दूरी पर व्यय होती है और इस मज़दूरी को मज़दूर फिर निर्वाह साधन ख़रीदने में ख़र्च करेंगे। ५,००० पाउंड की इस तरह पेशगी दी गई पूंजी उपभुक्त हो जाती है। उसकी हस्ती मिट जाती है। दूसरी ओर उत्पादन प्रक्रिया में ५०० पाउंड की नहीं, ५,००० पाउंड की श्रम शक्ति को क्रमशः समाविष्ट किया जाता है और वह ख़ुद अपने ५,००० पाउंड के मूल्य का पुनरुत्पादन ही नहीं करती, वरन उसके अलावा ५,००० पाउंड के बेशी मूल्य का उत्पादन भी करती है। दूसरी आवर्त अवधि में पेशगी लगाई जानेवाली ५०० पाउंड परिवर्ती पूंजी ५०० पाउंड की वही सर्वसम पूंजी नहीं है, जो पहली आवर्त अवधि में पेशगी लगाई गई थी। वह खप गई है, मज़दूरी पर ख़र्च कर दी गई है। किंतु उसकी ५०० पाउंड की नई परिवर्ती पूंजी से **प्रतिस्थापना** हो जाती है, जो पहली आवर्त अवधि में मालों के रूप में उत्पादित हुई थी और द्रव्य रूप में पुनःपरिवर्तित हो गई थी। अतः ५०० पाउंड की यह नई द्रव्य पूंजी पहली आवर्त अवधि में नवोत्पादित मालों की मात्रा का द्रव्य रूप है। पूंजीपति के हाथ में द्रव्य की वही सर्वसम राशि, ५०० पाउंड, फिर आ जाती है, अर्थात बेशी मूल्य के अलावा ठीक उतनी ही द्रव्य पूंजी, जितनी उसने मूलतः पेशगी दी थी, – यह तथ्य इस परिस्थिति को छिपा देता है कि वह नवोत्पादित पूंजी से काम कर रहा है। (जहां तक पूंजी के स्थिर अंशों को प्रतिस्थापित करनेवाले माल पूंजी के मूल्य के अन्य घटकों का प्रश्न है, उनके मूल्य का नवोत्पादन नहीं होता, केवल वह रूप बदल जाता है, जिसमें यह मूल्य विद्यमान होता है।)

आइये, अब हम तीसरी आवर्त अवधि को लेते हैं। यहां यह स्पष्ट है कि ५०० पाउंड की पूंजी, जो तीसरी बार पेशगी दी जाती है, पुरानी नहीं, नवोत्पादित पूंजी है, क्योंकि वह मालों की उस मात्रा का द्रव्य रूप है, जिसका उत्पादन पहली आवर्त अवधि में नहीं, दूसरी में हुआ है, अर्थात वह मालों की इस मात्रा के उस भाग का द्रव्य रूप है, जिसका मूल्य पेशगी परिवर्ती पूंजी के मूल्य के बराबर है। पहली आवर्त अवधि में उत्पादित पण्य वस्तुओं की मात्रा

बिक जाती है। उसके मूल्य का पेशगी पूंजी मूल्य के परिवर्ती अंश के बराबर एक भाग दूसरी आवर्त अवधि की नई श्रम शक्ति में रूपांतरित हो गया था; उसने मालों की नई मात्रा का उत्पादन किया, जो अपनी बारी में बिक गई और जिनके मूल्य का एक भाग तीसरी आवर्त अवधि में पेशगी दी गई ५०० पाउंड की पूंजी बन जाता है।

और आवर्त की दसों अवधियों में इसी तरह आगे भी होता है। इनके दौरान मालों की नवोत्पादित मात्राएं (जिनका मूल्य भी नवोत्पादित होता है, क्योंकि वह परिवर्ती पूंजी को प्रतिस्थापित करता है और पूंजी के स्थिर परिचलनशील भाग के रूप में केवल पुनः प्रकट नहीं होता) हर ५ सप्ताह के अंत में बाजार में डाली जाती हैं, ताकि उत्पादन प्रक्रिया में नित नई श्रम शक्ति का समावेश होता रहे।

इसलिए ५०० पाउंड की पेशगी परिवर्ती पूंजी के १० गुने आवर्त से जो हासिल होता है, वह यह नहीं है कि ५०० पाउंड की यह पूंजी उत्पादक ढंग से १० बार खपाई जा सकती है अथवा यह कि ५ हफ़्ते चलनेवाली परिवर्ती पूंजी ५० हफ़्ते नियोजित की जा सकती है। बल्कि होता यह है कि ५०० पाउंड की परिवर्ती पूंजी का १० गुना ५० सप्ताह में नियोजित किया जाता है और ५०० पाउंड की पूंजी हमेशा ५ हफ़्ते ही चलती है और ५ हफ़्ते बीतने पर उसे ५०० पाउंड की नवोत्पादित पूंजी से प्रतिस्थापित करना होता है। यह बात क और ख पूंजियों पर समान रूप से लागू होती है। लेकिन यहीं से अंतर भी पैदा होना शुरू हो जाता है।

५ हफ़्ते की पहली अवधि की समाप्ति पर ख तथा क द्वारा भी ५०० पाउंड की परिवर्ती पूंजी पेशगी दी जा चुकी है और ख़र्च की जा चुकी है। क तथा ख दोनों उसके मूल्य को श्रम शक्ति में बदल चुकी हैं और उसकी इस श्रम शक्ति द्वारा उत्पाद के उस नवसर्जित मूल्यांश से प्रतिस्थापना कर चुकी हैं, जो ५०० पाउंड की पेशगी परिवर्ती पूंजी के मूल्य के बराबर है। ख और क दोनों ही में श्रम शक्ति ने ५०० पाउंड की व्ययित परिवर्ती पूंजी के मूल्य को उतनी ही राशि के नये मूल्य से केवल प्रतिस्थापित ही नहीं किया है, वरन बेशी मूल्य भी जोड़ दिया है, जो हमारी कल्पना के अनुसार उसी परिमाण का है।

किंतु ख के मामले में जो मूल्य उत्पाद पेशगी परिवर्ती पूंजी को प्रतिस्थापित करता है और उसमें बेशी मूल्य जोड़ता है, वह उस रूप में नहीं है, जिसमें वह फिर से उत्पादक अथवा परिवर्ती पूंजी की तरह कार्य कर सके। वह ऐसे रूप में क के मामले में ही होता है। साल ख़त्म होने तक ख के पास पहले ५ सप्ताह में और प्रत्येक उत्तरवर्ती ५ हफ़्ते में ख़र्च की जानेवाली परिवर्ती पूंजी उस रूप में नहीं होती (यद्यपि वह बेशी मूल्य सहित नवोत्पन्न मूल्य से प्रतिस्थापित हो चुका है), जिसमें वह उत्पादक अथवा परिवर्ती पूंजी की हैसियत से पुनः कार्य कर सके। ठीक है कि उसका मूल्य एक नये मूल्य द्वारा प्रतिस्थापित हो जाता है, अतः उसका नवीकरण हो जाता है, किंतु उसके मूल्य के रूप (इस प्रसंग में मूल्य के निरपेक्ष रूप, उसके द्रव्य रूप) का नवीकरण नहीं होता।

५ सप्ताह की दूसरी अवधि के लिए (और इसी तरह वर्ष के उत्तरवर्ती प्रत्येक ५ हफ़्ते के लिए) ५०० पाउंड की और राशि फिर उपलब्ध होनी चाहिए, जैसे पहली अवधि में थी। इसलिए साल शुरू होने पर उधार की परिस्थितियों से अनपेक्ष अंतर्हित पेशगी द्रव्य पूंजी के

रूप में ५,००० पाउंड उपलभ्य होने चाहिए, यद्यपि वे दरअसल साल के दौरान धीरे-धीरे ही ख़र्च किये जाते हैं, श्रम शक्ति में बदले जाते हैं।

लेकिन चूंकि क के मामले में परिपथ, पेशगी पूंजी का आवर्त, पूरा हो जाता है, इसलिए पहले ५ हफ़्ते बीतने पर प्रतिस्थापन मूल्य उस रूप में – अपने मूल रूप में, द्रव्य रूप में – आ चुका होता है, जिसमें वह ५ हफ़्ते की मीयाद के लिए नई श्रम शक्ति को गतिशील कर सकता है।

क और ख दोनों के मामलों में ५ सप्ताह की दूसरी अवधि में नई श्रम शक्ति खप जाती है और इस श्रम शक्ति की अदायगी में ५०० पाउंड की नई पूंजी व्यय हो जाती है। पहले ५०० पाउंड से चुकाये मज़दूरों के निर्वाह साधन समाप्त हो चुके होते हैं, किसी भी सूरत में उनका मूल्य पूंजीपति के हाथ से ग़ायब हो चुका होता है। दूसरे ५०० पाउंड से नई श्रम शक्ति ख़रीदी जाती है, बाजार से नये निर्वाह साधन निकाले जाते हैं। संक्षेप में यह ५०० पाउंड की नई पूंजी ख़र्च की जा रही है, पुरानी नहीं। किंतु क के मामले में ५०० पाउंड की यह नई पूंजी पहले ख़र्च हुए ५०० पाउंड के मूल्य का नवोत्पन्न द्रव्य रूप प्रतिस्थानिक है, जब कि ख के मामले में यह प्रतिस्थानिक ऐसे रूप में होता है, जिसमें वह परिवर्ती पूंजी की हैसियत से कार्य नहीं कर सकता। वह मौजूद है, लेकिन परिवर्ती पूंजी के रूप में नहीं। अतः अगले ५ सप्ताह में उत्पादन प्रक्रिया चालू रखने के लिए ५०० पाउंड की अतिरिक्त पूंजी उपलब्ध होनी और यहां अपरिहार्य द्रव्य रूप में पेशगी दी जानी चाहिए। इस प्रकार ५० सप्ताह के दौरान क और ख दोनों परिवर्ती पूंजी की समान राशि ख़र्च करती हैं, श्रम शक्ति की समान मात्रा खपाती और उसकी अदायगी करती हैं। बस ख को यह अदायगी ५,००० पाउंड के उसके कुल मूल्य के बराबर की पेशगी पूंजी से करना होगी, जब कि क उसकी अदायगी हर पांच सप्ताह के लिए पेशगी दी गई ५०० पाउंड की पूंजी हर पांच सप्ताह में उत्पादित मूल्य प्रतिस्थानिक के निरंतर नवीकृत द्रव्य रूप से क्रमशः करता है। किसी भी सूरत में जितनी द्रव्य पूंजी ५ हफ़्ते के लिए यहां दरकार होती है, उससे ज्यादा पेशगी नहीं दी जाती, अर्थात पहले ५ हफ़्तों के लिए पेशगी दी गई, यानी ५०० पाउंड से ज्यादा कभी नहीं। ये ५०० पाउंड पूरे साल चलते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि श्रम के समुपयोजन की मात्रा और बेशी मूल्य की वास्तविक दर एक सी होने पर क और ख की वार्षिक दर (बेशी मूल्य की) उन परिवर्ती द्रव्य पूंजियों के परिमाणों के व्युत्क्रम अनुपात में होनी चाहिए, जिन्हें साल भर में श्रम शक्ति की उतनी ही मात्रा को गतिशील करने के लिए पेशगी देना होता है।

$$\text{क} : \frac{\text{५,००० बे}}{\text{५०० प}} = \text{१,०००\%}; \quad \text{ख} : \frac{\text{५,००० बे}}{\text{५,००० प}} = \text{१००\%}।$$

$$\text{किंतु} \quad \text{५०० प} : \text{५,००० प} = \text{१} : \text{१०} = \text{१००\%} : \text{१,०००\%}।$$

यह अंतर आवर्त अवधियों में, अर्थात उन अवधियों में अंतर के कारण है, जिनमें किसी निश्चित समय के लिए नियोजित परिवर्ती पूंजी का मूल्य प्रतिस्थानिक पूंजी की, अतः नई पूंजी की हैसियत से फिर से कार्य कर सकता है। क और ख दोनों के प्रसंग में एक सी अवधियों में नियोजित परिवर्ती पूंजी के मूल्य का एक सा प्रतिस्थापन होता है। उन्हीं एक सी अवधियों

में बेशी मूल्य की वृद्धि भी वही एक सी होती है। लेकिन ख के मामले में हर ५ हफ़्ते जहां ५०० पाउंड के मूल्य का प्रतिस्थापन तथा ५०० पाउंड के बेशी मूल्य का उत्पादन तो होता है, यह मूल्य प्रतिस्थानिक नई पूंजी नहीं बनता, क्योंकि वह द्रव्य रूप में नहीं होता है। क के मामले में पुराना पूंजी मूल्य नये पूंजी मूल्य द्वारा प्रतिस्थापित ही नहीं होता, वरन अपने द्रव्य रूप में पुनःप्रतिस्थापित भी हो जाता है; अतः अपना कार्य करने में क्षम नई पूंजी की हैसियत से प्रतिस्थापित होता है।

जहां तक स्वयं बेशी मूल्य के उत्पादन का सवाल है, मूल्य प्रतिस्थानिक का देरसबेर द्रव्य में, और इस प्रकार उस रूप में, जिसमें परिवर्ती पूंजी पेशगी दी जाती है, परिवर्तन प्रत्यक्षतः महत्वहीन है। यह उत्पादन नियोजित परिवर्ती पूंजी के परिमाण पर तथा श्रम के समुपयोजन की मात्रा पर निर्भर करता है। किंतु वह परिस्थिति साल भर में श्रम शक्ति की एक निश्चित प्रमात्रा को गतिशील करने के लिए पेशगी दी जानेवाली द्रव्य पूंजी के परिमाण को आपरिवर्तित कर देती है और इसलिए वह बेशी मूल्य की वार्षिक दर को निर्धारित करती है।

३. सामाजिक दृष्टिकोण से परिवर्ती पूंजी का आवर्त

आइये, क्षण भर के लिए इस मामले पर समाज के दृष्टिकोण से विचार करें। मान लीजिये, मज़दूर की हफ़्तावार मज़दूरी १ पाउंड और कार्य दिवस १० घंटे है। क और ख दोनों के मामले में साल में १०० मज़दूर काम पर लगाये जाते हैं (१०० मज़दूरों के लिए हफ़्तावार १०० पाउंड अथवा ५ हफ़्ते के लिए ५०० पाउंड या ५० हफ़्ते के लिए ५,००० पाउंड) और इनमें से हर मज़दूर ६ दिन के प्रत्येक सप्ताह में ६० घंटे काम करता है। इस तरह १०० मज़दूर ६,००० घंटे प्रति सप्ताह और ५० सप्ताह में ३,००,००० घंटे काम करते हैं। इस श्रम शक्ति को क और ख क़ब्ज़े में ले लेती हैं और इसलिए वह समाज द्वारा और किसी चीज़ के लिए ख़र्च नहीं की जा सकती। इस हद तक सामाजिक दृष्टि से क और ख दोनों का मामला एक सा है। फिर क और ख दोनों के मामले में किसी के द्वारा भी नियोजित १०० मज़दूरों को साल में ५,००० पाउंड मज़दूरी मिलती है (अथवा कुल मिलाकर २०० मज़दूरों को १०,००० पाउंड) और वे समाज से उतनी रक़म के निर्वाह साधन निकालते हैं। इसलिए यहां तक क और ख दोनों के मामलों में सामाजिक दृष्टि से बात एक ही है। चूंकि दोनों ही मामलों में मज़दूर हफ़्तावार मज़दूरी पाते हैं, इसलिए वे समाज से अपने निर्वाह साधन हफ़्तावार निकालते हैं और हर मामले में द्रव्य रूप में साप्ताहिक समतुल्य परिचलन में डालते हैं। लेकिन भेद यहीं से शुरू होता है।

पहला। क का मज़दूर जो द्रव्य परिचलन में डालता है, वह उसकी श्रम शक्ति के मूल्य का द्रव्य रूप (वस्तुतः पहले ही किये जा चुके श्रम की अदायगी का माध्यम) ही नहीं होता, जैसे वह ख के मज़दूर के लिए होता है; व्यवसाय शुरू होने के बाद दूसरी आवर्त अवधि

से लेकर यह पहली आवर्त अवधि में सर्जित **उसके अपने मूल्य** का द्रव्य रूप (बेशी मूल्य सहित श्रम शक्ति की क़ीमत के बराबर) होता है, जिससे दूसरी आवर्त अवधि में उसके श्रम की अदायगी की जाती है। ख के मज़दूर के साथ ऐसा नहीं होता। जहां तक अंतोक्त का संबंध है, यह सही है कि द्रव्य यहां उस काम की अदायगी का माध्यम होता है, जिसे वह पहले ही पूरा कर चुका है, किंतु इस किये हुए काम की अदायगी उस मूल्य से नहीं की जाती, जिसका उत्पादन उसने स्वयं किया था और जो द्रव्य में परिवर्तित हुआ था (स्वयं श्रम द्वारा उत्पादित मूल्य के द्रव्य रूप से नहीं)। यह दूसरे साल की शुरूआत तक नहीं किया जा सकता, जब ख के मज़दूर की उसके द्वारा पिछले साल उत्पादित और द्रव्य में परिवर्तित मूल्य से अदायगी की जाती है।

पूंजी की आवर्त अवधि जितना ही कम होती है – अतः पूरे साल उसका पुनरुत्पादन जितना ही छोटे अंतरालों पर होता है – पूंजीपति द्वारा मूलतः द्रव्य रूप में पेशगी दी गई पूंजी का परिवर्ती भाग मज़दूर द्वारा इस परिवर्ती पूंजी की प्रतिस्थापना करने के लिए सृजित मूल्य (जिसमें साथ-साथ बेशी मूल्य भी शामिल होता है) के द्रव्य रूप में उतना ही तेज़ी से रूपांतरित होता है ; वह समय उतना ही कम होगा, जिसके लिए पूंजीपति को ख़ुद अपनी निधि से द्रव्य पेशगी देना होगा, और उत्पादन के नियत पैमाने के अनुपात में उसके द्वारा सामान्यतः पेशगी दी जाने-वाली पूंजी उतना ही कम होगी, और बेशी मूल्य की नियत दर से वह वर्ष में बेशी मूल्य की अपेक्षाकृत उतना ही अधिक मात्रा का दोहन करेगा, क्योंकि वह मज़दूर द्वारा सृजित मूल्य के द्रव्य रूप से उस मज़दूर को उतना ही अधिक बार ख़रीद सकता है और उसके श्रम को उतना ही अधिक बार फिर गतिशील कर सकता है।

यदि उत्पादन का पैमाना दिया हुआ हो, तो पेशगी परिवर्ती द्रव्य पूंजी का (और सामान्यतः प्रचल पूंजी का) निरपेक्ष परिमाण आवर्त अवधि के घटने के साथ उसी के अनुपात में घटता जाता है, जब कि बेशी मूल्य की वार्षिक दर बढ़ती जाती है। यदि पेशगी पूंजी का परिमाण दिया हुआ हो, तो उत्पादन का पैमाना बढ़ता है ; अतः यदि बेशी मूल्य की दर निश्चित हो, तो इसी प्रकार एक आवर्त अवधि में सर्जित बेशी मूल्य की निरपेक्ष मात्रा भी पुनरुत्पादन अवधियों के लघुकरण से जनित बेशी मूल्य की वार्षिक दर की वृद्धि के साथ-साथ बढ़ती है, पूर्व अन्वेषण से सामान्यतः यह परिणाम निकलता है कि आवर्त अवधियों की भिन्न-भिन्न दीर्घता उत्पादक प्रचल पूंजी की उतनी ही मात्रा को और श्रम के समुपयोजन के उतने ही अंश के साथ श्रम की उतनी राशि को गतिशील करने के लिए द्रव्य पूंजी का नितांत भिन्न राशियों में पेशगी दिया जाना आवश्यक बना देती हैं।

दूसरा – और यह पहलेवाले भेद से संबद्ध है – ख और क के मज़दूर जो निर्वाह साधन ख़रीदते हैं, उनकी अदायगी वे परिवर्ती पूंजी से करते हैं, जो उनके हाथों में परिचलन के माध्यम में रूपांतरित हो गई है। उदाहरण के लिए, वे बाज़ार से गेहूं सिर्फ़ निकालते ही नहीं हैं, बल्कि द्रव्य रूप में समतुल्य से उसे प्रतिस्थापित भी करते हैं। लेकिन चूंकि ख का मज़दूर अपने निर्वाह साधनों के लिए, जिन्हें वह बाज़ार से निकालता है, जो धन देता है, वह उसके द्वारा साल के दौरान उत्पादित और बाज़ार में डाले मूल्य का द्रव्य रूप नहीं होता, जैसा कि क के मज़दूर के मामले में होता है, इसलिए वह निर्वाह साधन के विक्रेता को द्रव्य देता है, माल नहीं – चाहे वे उत्पादन साधन हों, चाहे निर्वाह साधन – जिन्हें यह विक्रेता बिक्री की आय से

ख़रीद सके, जैसा कि वह क के मामले में कर सकता है। अतः बाज़ार श्रम शक्ति से, इस श्रम शक्ति के लिए निर्वाह साधनों से, ख के मामले में प्रयुक्त श्रम उपकरण के रूप में और उत्पादन सामग्री के रूप में स्थायी पूंजी से रिक्त हो जाता है और इन्हें प्रतिस्थापित करने के लिए बाज़ार में द्रव्य रूप में इनका समतुल्य डाला जाता है ; किंतु साल के दौरान बाज़ार में कोई उत्पाद नहीं डाला जाता, जिससे कि उत्पादक पूंजी के बाज़ार से निकाले गये भौतिक तत्वों का प्रतिस्थापन हो सके। यदि हम समाज के पूंजीवादी नहीं, वरन साम्यवादी होने की कल्पना करें, तब पहले तो द्रव्य पूंजी बिल्कुल होगी ही नहीं, न उससे उत्पन्न लेन-देन को छिपाने के लिए तरह-तरह के आवरण होंगे। तब प्रश्न समाज के लिए पहले से इसका हिसाब लगाने का हो जाता है कि वह किसी हानि के बिना कितने श्रम, उत्पादन साधनों और निर्वाह साधनों का निवेश ऐसे व्यवसायों में कर सकता है, जैसे उदाहरणतः, रेलमार्गों का निर्माण, जो कोई उत्पादन या निर्वाह साधन प्रस्तुत नहीं करते, न बहुत समय तक, साल भर या उससे ज़्यादा समय तक कोई उपयोगी परिणाम ही उत्पन्न करते हैं, जब कि कुल वार्षिक उत्पाद से वे श्रम, उत्पादन साधन और निर्वाह साधन अवश्य निकालते रहते हैं। लेकिन पूंजीवादी समाज में, जहां सामाजिक विवेक सदा post festum [जश्न के बाद] ही हावी होता है, निरंतर भारी अव्यवस्था पैदा हो सकती है और पैदा होगी ही। एक ओर मुद्रा बाज़ार पर दबाव डाला जाता है ; जब कि दूसरी ओर सुलभ मुद्रा बाज़ार ऐसे बेशुमार व्यवसायों को पैदा कर देता है, इस तरह उन्हीं परिस्थितियों को जन्म देता है, जो आगे चलकर मुद्रा बाज़ार पर दबाव को पैदा करती हैं। मुद्रा बाज़ार को दबाव झेलना पड़ता है, क्योंकि यहां द्रव्य पूंजी की बड़ी-बड़ी पेशगी लगातार दीर्घ अवधियों के लिए आवश्यक होती है। और यह इस तथ्य के बावजूद कि उद्योगपति और व्यापारी अपने व्यवसाय को चलाने के लिए ज़रूरी द्रव्य पूंजी को सटोरियाई रेल योजनाओं, आदि में लगा देते हैं और उसकी कमी मुद्रा बाज़ार से उधार लेकर पूरी करते हैं।

दूसरी ओर समाज को उपलब्ध उत्पादक पूंजी पर दबाव पड़ता है। चूंकि उत्पादक पूंजी के तत्व बाज़ार से निरंतर निकाले जाते रहते हैं और उनकी जगह बाज़ार में उनका द्रव्य रूप में समतुल्य ही डाला जाता है, इसलिए प्रभावी मांग स्वयं पूर्ति का कोई तत्व मुहैया किये बिना पैदा हो जाती है। अतः उत्पादक सामग्री और निर्वाह साधन, दोनों की क़ीमतें बढ़ जाती हैं। इसमें यह बात और जोड़ी जानी चाहिए कि सट्टेबाज़ी एक नियमित व्यवहार है और पूंजी का बड़े पैमाने पर हस्तांतरण होता है। सटोरियों, ठेकेदारों, इंजीनियरों, वकीलों, वग़ैरह का गिरोह अपने को मालामाल कर लेता है। ये लोग बाज़ार में उपभोग वस्तुओं की ज़बरदस्त मांग पैदा कर देते हैं, जिसके साथ ही मजदूरी में भी बढ़ोतरी होती है। जिस हद तक इसका खाद्य पदार्थों से सरोकार होता है, खेती को बढ़ावा मिलता है। किंतु चूंकि इन खाद्य पदार्थों में साल के भीतर एकदम वृद्धि नहीं की जा सकती, इसलिए उनके आयात में वृद्धि होती है, जैसे साधारणतः विदेशी खाद्य सामग्री (जैसे कॉफ़ी, शक्कर, शराब, वग़ैरह) के और विलास वस्तुओं के आयात में भी वृद्धि होती है। अतः आयात में अतिशय बढ़ती होती है और आयात व्यवसाय की इस शाखा में बेहद सट्टेबाज़ी होती है। इस बीच उद्योग की उन शाखाओं में, जिनमें उत्पादन का प्रसार तेज़ी से हो सकता है (वास्तविक हस्तउद्योग, खनन, इत्यादि), चढ़ती क़ीमतों के कारण आकस्मिक प्रसार होता है और उसके तुरंत बाद गिरावट आ जाती है। श्रम बाज़ार में यही प्रभाव पैदा होता है और वह अन्तर्हित सापेक्ष फ़ालतू आबादी

की बड़ी संख्या और काम पर लगे मजदूरों की भी बड़ी संख्या को व्यवसाय की नई शाखाओं की ओर आकर्षित करने लगता है। आम तौर पर रेलों जैसे बड़े पैमाने के उपक्रम श्रम बाज़ार से श्रम शक्ति की एक निश्चित मात्रा निकालते हैं, जो कृषि, आदि जैसी व्यवसाय शाखाओं से ही आ सकती है, जहां हट्टे-कट्टे जवानों की ही ज़रूरत होती है। नये उद्यमों के व्यवसाय की स्थापित शाखाएं बन जाने और उनके लिए आवश्यक प्रवासी मज़दूर वर्ग का निर्माण हो चुके होने के बाद भी यह स्थिति बनी रहती है, उदाहरण के लिए, रेल निर्माण के पैमाने में औसत से ऊपर अस्थायी बढ़ोतरी आने के मामले में। मज़दूरों की आरक्षित सेना का जो भाग मज़दूरी को नीचा रखे रखता था, वह अब जज़्ब हो जाता है। मज़दूरी में आम बढ़ोतरी होती है, श्रम बाज़ार के अभी तक सुनियोजित भागों तक में। यह सब तक जारी रहता है कि अनिवार्य सहसापात श्रम की आरक्षित सेना को फिर मुक्त कर देता है और मज़दूरी एक बार फिर अपने अल्पतम स्तर तक, और उससे भी नीचे पहुंच जाती है।[32]

चूंकि आवर्त अवधि की दीर्घता – कम या अधिक – वास्तविक कार्य अवधि पर, अर्थात उत्पाद को बाज़ार के लिए तैयार करने के लिए ज़रूरी अवधि पर निर्भर करती है, इसलिए अवधि की न्यूनाधिक दीर्घता पूंजी के विभिन्न निवेशों के लिए सुनिश्चित उत्पादन की विद्यमान भौतिक परिस्थितियों पर आधारित होती है। कृषि में वे उत्पादन की नैसर्गिक परिस्थितियों का स्वरूप अधिक धारण करती हैं, हस्तउद्योग और खनन उद्योग के अधिकांश में वे स्वयं उत्पादन प्रक्रिया के सामाजिक विकास के अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं।

कार्य अवधि की दीर्घता चूंकि पूर्ति के आकार (मात्रिक परिमाण, जिसमें उत्पाद सामान्यतः बाज़ार में माल रूप में डाला जाता है) पर निर्भर करती है, इसलिए इस दीर्घता का स्वरूप रूढ़ होता है। किंतु स्वयं इस रूढ़ि का भौतिक आधार उत्पादन के पैमाने में होता है और इसलिए अलग से परीक्षण किये जाने पर ही आकस्मिक जान पड़ता है।

अंततः, चूंकि आवर्त अवधि की दीर्घता परिचलन अवधि की दीर्घता पर टिकी होती है, इसलिए वह अंशतः बाज़ार की परिस्थितियों के अविराम परिवर्तन, बिक्री की न्यूनाधिक आसानी, और इसके फलस्वरूप उत्पाद को अंशतः पास या दूर के बाज़ारों में बेचने की ज़रूरत पर निर्भर होती है। सामान्यतः मांग के परिमाण के अलावा यहां क़ीमतों का उतार-चढ़ाव आधारभूत महत्व रखता है, क्योंकि जब क़ीमतें गिरती होती हैं, तब बिक्री जानबूझकर रोकी जाती है, जब कि उत्पादन चालू रहता है; इसके विपरीत, जब क़ीमतें चढ़ती हैं अथवा पेशगी बिक्री

---

[32] पाण्डुलिपि में यहां आगे चलकर विस्तारण के लिए निम्नलिखित टिप्पणी निविष्ट की गई है: "उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति में अंतर्विरोध : माल के ग्राहकों के रूप में श्रमिक बाज़ार के लिए महत्वपूर्ण हैं। किंतु स्वयं अपने माल – श्रम शक्ति – के विक्रेताओं के रूप में पूंजीवादी समाज उन्हें अल्पतम क़ीमत पर रखने की कोशिश करता है।

"इसके अतिरिक्त अंतर्विरोध : जिन अवधियों में पूंजीवादी उत्पादन अपनी सारी ताक़त नियमित रूप में लगाता है, वे अत्युत्पादन की अवधियां सिद्ध होती हैं, क्योंकि उत्पादन संभाव्यताओं का उपयोग इस हद तक कभी नहीं हो सकता कि न केवल अधिक मूल्य का सृजन हो, वरन सिद्धिकरण भी हो ; किंतु मालों का विक्रय, माल पूंजी का और इस प्रकार बेशी मूल्य का सिद्धिकरण, सीमित होता है समाज की साधारण उपभोग आवश्यकताओं के कारण नहीं, वरन ऐसे समाज की उपभोग आवश्यकताओं के कारण, जिनमें भारी बहुलांश सदा दरिद्र रहता है और उसे सदा दरिद्र बने रहना होगा। किंतु यह सब अगले भाग से संबद्ध है।"

की जा सकती है, तब बिक्री और उत्पादन साथ-साथ चलते हैं। लेकिन उत्पादन स्थान से बाज़ार की जो वास्तविक दूरी है, उसे असली भौतिक आधार मानना चाहिए।

मिसाल के लिए, अंग्रेज़ी सूती माल या सूत भारत को बेचा जाता है। मान लीजिये, अंग्रेज सूत निर्माता की अदायगी निर्यातक ख़ुद करता है (निर्यातक ऐसा स्वेच्छा से तभी करता है, जब मुद्रा बाजार तगड़ा होता है। लेकिन जब निर्माता स्वयं किसी उधार लेन-देन द्वारा अपनी द्रव्य पूंजी का प्रतिस्थापन करता है, तब परिस्थितियां इतनी अच्छी नहीं होती हैं)। निर्यातक बाद में अपना सूती माल भारत के बाजार में बेचता है, जहां से उसकी पेशगी पूंजी उसे प्रेषित कर दी जाती है। इस प्रेषण तक इस मामले की राह भी बिल्कुल वैसी ही रहती है, जैसी तब थी, जब कार्य अवधि की दीर्घता ने निश्चित पैमाने पर उत्पादन प्रक्रिया चालू रखने के लिए नई द्रव्य पूंजी की पेशगी को आवश्यक बना दिया था। निर्माता जिस द्रव्य पूंजी से अपने मजदूरों की अदायगी करता है और अपनी प्रचल पूंजी के अन्य तत्वों का नवीकरण करता है, वह उसके द्वारा उत्पादित सूत का द्रव्य रूप नहीं है। ऐसा तब तक नहीं हो सकता, जब तक इस सूत का मूल्य द्रव्य अथवा उत्पाद के रूप में इंगलैंड वापस न आ जाये। पहले की तरह ही यह अतिरिक्त द्रव्य पूंजी है। अंतर केवल यह कि निर्माता के बदले उसे व्यापारी पेशगी देता है, जिसने अपनी बारी में, बहुत संभव है, उसे उधार की कार्यवाही के ज़रिये पाया हो। इसी प्रकार बाजार में, इस द्रव्य को डालने से पहले या उसके साथ-साथ अंग्रेज़ी बाजार में कोई अतिरिक्त उत्पाद नहीं रखा गया है, जिसे इस द्रव्य से ख़रीदा जा सकता हो और जो उत्पादक या व्यक्तिगत उपभोग के क्षेत्र में दाख़िल हो सकता हो। यदि यह स्थिति कुछ अधिक ही समय तक और कुछ अधिक ही बड़े पैमाने पर बनी रहे, तो उसका वही परिणाम होगा, जो पूर्वोक्त कार्य अवधि की बढ़ोतरी का हुआ था।

संभव है कि भारत में सूत फिर उधार बेचा जाये। इस उधार से भारत में उत्पाद ख़रीदा जाता है और बदले के माल की तरह इंगलैंड भेजा जाता है अथवा इस राशि के लिए धनादेश भेजे जाते हैं। अगर यह स्थिति देर तक चले, तो भारतीय मुद्रा बाज़ार दबाव में आ जाता है और इंगलैंड में उसकी प्रतिक्रिया से यहां संकट पैदा हो सकता है। यह संकट भारत को सोने-चांदी के निर्यात से संबद्ध हो, तो भी वह अपनी बारी में अंग्रेज़ी फ़र्मों और उनकी भारतीय शाखाओं के, जिन्होंने भारतीय बैंकों से क़र्ज़ लिया था, दिवालिया हो जाने से वहां नये संकट को जन्म देगा। इस प्रकार एक ही समय पर उस बाज़ार में भी, जहां व्यापार संतुलन **अनुकूल** है, और उसमें भी, जहां वह **प्रतिकूल** है, संकट उत्पन्न हो जाता है। यह परिघटना और भी जटिल हो सकती है। उदाहरणतः, मान लीजिये कि इंगलैंड ने भारत को चांदी की सिल्लियां भेजी हैं, लेकिन भारत के अंग्रेज ऋणदाता अब वहां अपना ऋण ताबड़तोड़ बटोर रहे हैं और भारत को शीघ्र ही अपनी चांदी इंगलैंड वापस भेजनी होगी।

संभव है कि भारत को निर्यात व्यापार और भारत से आयात व्यापार एक दूसरे को लगभग संतुलित कर दें, यद्यपि आयात व्यापार का परिमाण (कुछ विशेष परिस्थितियां छोड़कर, जैसे कि कपास की दुर्लभता, वग़ैरह) निर्यात व्यापार द्वारा निर्धारित और प्रेरित होता है। इंगलैंड और भारत के बीच व्यापार शेष संतुलित लग सकता है अथवा इधर-उधर मामूली दोलन दर्शा सकता है। किंतु जैसे ही इंगलैंड में संकट फूटता है, तो पता चलता है कि भारत में अनबिका सूती सामान गोदामों में पड़ा हुआ है (इसलिए माल पूंजी से द्रव्य पूंजी में रूपांतरित नहीं हुआ है – इस सीमा तक अत्युत्पादन हुआ है); और दूसरी ओर इंगलैंड के गोदामों

में भारतीय सामान की अनबिकी पूर्ति जमा है। और इसके अलावा, बिक चुकी और खप चुकी पूर्ति के काफ़ी अंश की अदायगी अभी नहीं हुई है। इसलिए मुद्रा बाज़ार में जो संकट ज्ञात पड़ता है, वह वास्तव में उत्पादन और पुनरुत्पादन की प्रक्रिया में ही विद्यमान असामान्य परिस्थितियों की अभिव्यंजना ही है।

तीसरा। जहां तक स्वयं नियोजित प्रचल पूंजी (स्थिर और परिवर्ती पूंजी) का संबंध है, चूंकि आवर्त अवधि की दीर्घता कार्य अवधि से उत्पन्न होती है, इसलिए आवर्त अवधि की दीर्घता यह अंतर पैदा करती है: साल के भीतर कई आवर्त होने के मामले में परिवर्ती या स्थिर प्रचल पूंजी के एक तत्व की पूर्ति उसके अपने उत्पाद द्वारा हो सकती है, यथा कोयले के उत्पादन, तैयार कपड़ों के व्यवसाय, वग़ैरह में। अन्य मामलों में ऐसा नहीं हो सकता, कम से कम उसी वर्ष के भीतर तो बिल्कुल भी नहीं।

अध्याय १७

बेशी मूल्य का परिचलन

हमने अभी देखा कि आवर्त अवधि में अंतर बेशी मूल्य की वार्षिक दर में अंतर पैदा कर देता है, यद्यपि बेशी मूल्य की सालाना पैदा होनेवाली राशि एक जैसी रहती है।

किंतु बेशी मूल्य के पूंजीकरण में, **संचय** में और वर्ष में उत्पादित बेशी मूल्य की मात्रा में भी इसके अलावा अनिवार्यतः और भी अंतर होते हैं, जब कि बेशी मूल्य की दर एक सी बनी रहती है।

शुरू में ही हम देखते हैं कि पूंजी क (पिछले अध्याय के उदाहरण की) की एक चालू आवधिक आय होती है, जिससे कि व्यवसाय का समारंभ करनेवाली आवर्त अवधि छोड़कर वह बेशी मूल्य के अपने उत्पादन से साल के भीतर ख़ुद अपनी खपत की अदायगी कर देती है और उसे उसकी अपनी ही निधि से पेशगी से पूरा करने की ज़रूरत नहीं रहती। किंतु ख के प्रसंग में ऐसा करना होता है। यद्यपि वह समय के उतने ही अंतरालों में क जितना ही बेशी मूल्य पैदा करती है, फिर भी उसके बेशी मूल्य का सिद्धिकरण नहीं होता, इसलिए उसकी खपत न तो उत्पादक, और न व्यक्तिगत रूप में हो सकती है। जहां तक व्यक्तिगत खपत का सवाल है, बेशी मूल्य पूर्वापेक्षित होता है। इस कार्य के लिए धन पेशगी देना होता है।

उत्पादक पूंजी का एक भाग, जिसे वर्गीकृत करना कठिन है, यानी स्थायी पूंजी के अनुरक्षण और जीर्णोद्धार के लिए आवश्यक अतिरिक्त पूंजी, भी अब उसी प्रकार नई रोशनी में दिखाई देने लगता है।

क के मामले में यह पूंजी अंश उत्पादन के आरंभ में – पूर्णतः अथवा अधिकांशतः – पेशगी नहीं दिया जाता। उसका उपलब्ध होना या अस्तित्वमान होना भी आवश्यक नहीं है। वह बेशी मूल्य के पूंजी में प्रत्यक्ष रूपांतरण द्वारा, अर्थात पूंजी रूप में उसके प्रत्यक्ष नियोजन द्वारा स्वयं व्यवसाय से निकलता है। बेशी मूल्य का एक भाग, जो नियतकालिक रूप से उत्पन्न ही नहीं होता, वरन जिसका साल के भीतर सिद्धिकरण भी कर लिया जाता है, जीर्णोद्धार, वग़ैरह का ज़रूरी ख़र्च चुका सकता है। इस प्रकार व्यवसाय को उसके मूल पैमाने पर चलाते रहने के लिए आवश्यक पूंजी का एक भाग कारबार के दौरान स्वयं व्यवसाय द्वारा बेशी मूल्य के पूंजीकरण द्वारा पैदा हो जाता है। पूंजी ख के लिए यह असंभव है। उसके मामले में विचाराधीन पूंजी अंश को मूलतः पेशगी दी पूंजी का अंश बनना होता है। दोनों ही मामलों में पूंजीपतियों के बही-खातों में यह अंश पेशगी पूंजी की तरह प्रकट होगा, जो वह सचमुच है,

क्योंकि हमारी कल्पना के अनुसार वह उत्पादक पूंजी का वह भाग है, जो व्यवसाय को एक निश्चित पैमाने पर क़ायम रखने के लिए ज़रूरी होता है। किंतु वह किस निधि से पेशगी दिया गया है, इससे ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ पड़ जाता है। ख के प्रसंग में वह दरअसल उस पूंजी का भाग है, जो मूलतः पेशगी दी जानी थी अथवा उपलभ्य बनाकर रखी गयी थी। दूसरी ओर क के प्रसंग में वह पूंजी रूप में प्रयुक्त बेशी मूल्य का भाग है। इस दूसरे प्रसंग से पता चलता है कि संचित पूंजी ही नहीं, मूलतः पेशगी पूंजी का एक भाग भी मात्र पूंजीकृत बेशी मूल्य हो सकता है।

जैसे ही उधार का विकास दख़ल देता है, मूलतः पेशगी पूंजी तथा पूंजीकृत बेशी मूल्य का परस्पर संबंध और भी जटिल हो जाता है। उदाहरणतः, क इस प्रयोजन के लिए आरंभ से ही स्वयं अपनी पर्याप्त पूंजी न होने के कारण साहूकार ग से उत्पादक पूंजी का एक अंश उधार लेता है, जिससे वह व्यवसाय शुरू करता है अथवा उसे साल के दौरान चलाता रहता है। साहूकार ग उसे एक द्रव्य राशि उधार देता है, जिसमें केवल साहूकार के पास च, छ, ज, आदि पूंजीपतियों का जमा किया बेशी मूल्य ही सन्निहित है। जहां तक क का संबंध है, अभी संचित पूंजी का कोई सवाल है ही नहीं। लेकिन च, छ, ज, वग़ैरह के सिलसिले में क वस्तुतः अभिकर्ता के सिवा और कुछ नहीं है, जो उनके द्वारा हस्तगत किये बेशी मूल्य का पूंजीकरण करता है।

हम (Buch I, Kap. XXII)* देख चुके हैं कि संचय, बेशी मूल्य का पूंजी में परिवर्तन, तत्वतः उत्तरोत्तर बढ़ते हुए पैमाने पर चलनेवाली पुनरुत्पादन प्रक्रिया है, चाहे इस प्रसार की अभिव्यक्ति पुराने कारख़ानों में नये कारख़ाने जोड़ने के विस्तारी रूप में हो, चाहे काम के मौजूदा पैमाने में बढ़ोतरी के गहन रूप में।

उत्पादन के पैमाने का प्रसार थोड़ा-थोड़ा करके इस तरह हो सकता है कि बेशी मूल्य का एक भाग सुधार के लिए इस्तेमाल होता रहे, जिससे या तो बस नियोजित श्रम की उत्पादक क्षमता में वृद्धि होती है या साथ ही उसका और गहन उपयोजन भी संभव हो जाता है। अथवा जहां कार्य दिवस की कोई क़ानूनी सीमा नहीं है, वहां प्रचल पूंजी का अतिरिक्त व्यय (उत्पादन सामग्री और मजदूरी में) स्थायी पूंजी के प्रसार के बिना उत्पादन का पैमाने बढ़ाने के लिए पर्याप्त होता है, जिसका दैनिक उपयोजन काल इस प्रकार केवल बढ़ जाता है, जब कि उसकी आवर्त अवधि तदनुरूप घट जाती है। अथवा बाज़ार की अनुकूल परिस्थितियों में पूंजीकृत बेशी मूल्य से कच्चे माल में सट्टा किया जा सकता है और यह ऐसी कार्यवाही है, जिसके लिए मूलतः पेशगी पूंजी पर्याप्त न होती, इत्यादि।

फिर भी यह स्पष्ट है कि जिन मामलों में आवर्त अवधियों की अधिक संख्या के कारण वर्ष में बेशी मूल्य का सिद्धिकरण अधिक बार होता है, उनमें ऐसी अवधियां भी होंगी, जिनमें न तो कार्य दिवस बढ़ाया जा सकता है, न अलग-अलग सुधार लाये जा सकते हैं; दूसरी ओर सारे व्यवसाय का समानुपात प्रसार अंशतः पूरे कारख़ाने के, यथा भवनों के प्रसार द्वारा, अंशतः कृषि में कृष्ट क्षेत्रों के विस्तार से केवल कुछेक न्यूनाधिक संकीर्ण सीमाओं के भीतर ही संभव है और इसके अलावा इसके लिए इतने परिमाण में अतिरिक्त पूंजी आवश्यक होगी, जिसकी पूर्ति केवल बेशी मूल्य के अनेक वर्षों के संचय से ही हो सकती है।

---

* हिंदी संस्करण : अध्याय २४। – सं०

इसलिए वास्तविक संचय अथवा उत्पादक पूंजी में बेशी मूल्य के रूपांतरण (और विस्तारित पैमाने पर तदनुरूप पुनरुत्पादन) के साथ-साथ द्रव्य संचय भी होता है, अंतर्हित द्रव्य पूंजी के रूप में बेशी मूल्य के एक भाग का एक साथ जमाव भी होता है, जिसका सक्रिय पूंजी की तरह कार्य करना तब तक अभीष्ट नहीं होता कि जब बाद में जाकर वह बढ़ते-बढ़ते एक निश्चित परिमाण पर पहुंच जाता है।

अकेले पूंजीपति के दृष्टिकोण से मामला ऐसा ही दिखाई देता है। किंतु पूंजीवादी उत्पादन के विकास के साथ-साथ उधार पद्धति का भी विकास होता है। पूंजीपति जिस द्रव्य पूंजी का अभी ख़ुद अपने व्यवसाय में नियोजन नहीं कर सकता, उसे दूसरे नियोजित करते हैं, जो उसके उपयोग के लिए उसे ब्याज देते हैं। वह द्रव्य पूंजी के विशिष्ट अर्थ में, उत्पादक पूंजी से भिन्न पूंजी के रूप में उसके काम आती है। किंतु वह दूसरे के हाथ में पूंजी बनकर काम आती है। स्पष्ट है कि बेशी मूल्य के अधिक प्रायिकता से सिद्धिकरण और उसके उत्पादित होने के पैमाने के बढ़ने के साथ-साथ नई द्रव्य पूंजी अथवा उस द्रव्य के अनुपात में वृद्धि होती है, जो पूंजी की हैसियत से मुद्रा बाज़ार में डाला जाता है और फिर विस्तारित उत्पादन द्वारा आत्मसात कर लिया जाता है या कम से कम उसका अधिकांश आत्मसात कर लिया जाता है।

अतिरिक्त अंतर्हित द्रव्य पूंजी को जिस सबसे सादे रूप में व्यक्त किया जा सकता है, वह अपसंचय है। हो सकता है कि यह अपसंचय मूल्यवान धातुएं पैदा करनेवाले देशों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में विनिमय द्वारा प्राप्त अतिरिक्त सोना या चांदी हो। इस प्रकार ही किसी देश में अपसंचित द्रव्य की निरपेक्ष वृद्धि होती है। दूसरी ओर यह भी संभव है – और अधिकांश प्रसंगों में ऐसा होता है – कि यह अपसंचय उस द्रव्य के अलावा और कुछ न हो, जिसे देश में परिचलन से निकाल लिया गया है और जिसने अलग-अलग पूंजीपतियों के हाथों में अपसंचय का रूप धारण कर लिया है। इसके अलावा यह भी संभव है कि यह अंतर्हित द्रव्य पूंजी केवल मूल्य के प्रतीक – यहां हम साख द्रव्य को अब भी नज़रंदाज़ कर रहे हैं – अथवा अन्य व्यक्तियों के प्रति क़ानूनी दस्तावेज़ों द्वारा प्रदत्त पूंजीपतियों के दावे (हक़) मात्र हों। ऐसे सभी मामलों में इस अतिरिक्त द्रव्य पूंजी के अस्तित्व का रूप जो भी हो, जहां तक वह in spe [प्रत्याशित] पूंजी है, वह भावी वार्षिक अतिरिक्त सामाजिक उत्पादन पर पूंजीपतियों के अतिरिक्त और आरक्षित क़ानूनी हक़ों के अलावा और कुछ नहीं है।

"वही समाज सभ्यता की चाहे किसी भी अवस्था में हो, वास्तविक संचित संपदा की संहति, परिमाण की दृष्टि से... उसकी उत्पादन शक्तियों से तुलना करने पर अथवा उसी समाज के कुछ वर्षों के ही वास्तविक उपभोग से भी तुलना करने पर इस क़दर नगण्य होती है कि विधायकों और अर्थशास्त्रियों का मुख्य ध्यान 'उत्पादक शक्तियों' और उनके भावी स्वतंत्र विकास की ओर निदेशित किया जाना चाहिए, न कि, जैसा अब तक होता आया है, मात्र संचित संपदा पर, जिस पर निगाह पहले पड़ती है। जिसे संचित संपदा कहा जाता है, उसका अधिकांश नाम का ही होता है, जिसमें वास्तविक पदार्थ, जहाज़, मकान, वस्त्र, भूमि पर सुधार कार्य नहीं, वरन असुरक्षा के साधनों अथवा उपायों द्वारा जनित और बनी रहनेवाली समाज की भावी वार्षिक उत्पादक शक्तियों के प्रति कोरी मांगें ही होती हैं... ऐसी वस्तुओं (भौतिक पदार्थों अथवा वास्तविक संपदा के संचय) का उनके स्वामियों के लिए समाज की भावी उत्पादक शक्तियों द्वारा सृजित संपदा को हथियाने के मात्र साधन के रूप में उपयोग ही वह एकमात्र

चीज़ है, जिससे वितरण के नैसर्गिक नियम बल प्रयोग के बिना उन्हें क्रमशः वंचित कर देंगे अथवा, यदि सहकारी श्रम की सहायता मिली, तो कुछ ही वर्षों के भीतर उन्हें वंचित कर देंगे" (विलियम टॉमसन, *An Inquiry into the Principles of the Distribution of Wealth*, लंदन, १८५०, पृष्ठ ४५३। यह पुस्तक मूलतः १८२४ में प्रकाशित हुई थी)।

"इसके बारे में कम ही सोचा जाता है, ज्यादातर लोगों को इसका गुमान भी नहीं होता कि विस्तार अथवा प्रभाव के विचार से समाज के वास्तविक संचय का मानवजाति की उत्पादक शक्तियों से, एक ही पीढ़ी के कुछ ही वर्षों के साधारण उपभोग से भी कितना अल्प अनुपात होता है। कारण स्पष्ट है, किंतु परिणाम अत्यंत भयंकर है। जो धन हर साल खपता है, अपने उपभोग के साथ लुप्त होता जाता है, वह क्षण भर को दिखाई देता है और भोग या उपयोग कर्म का समय छोड़कर मन पर छाप नहीं डालता। किंतु धन का जो भाग उपभोग में धीरे-धीरे आता है,—जैसे फ़र्नीचर, मशीनें, इमारतें, वह सब बचपन से बुढ़ापे तक मानव प्रयत्न का टिकाऊ स्मारक बनकर आंख के सामने रहता है। राष्ट्रीय संपदा के इस स्थिर, स्थायी अथवा क्रमशः खपनेवाले भाग पर—भूमि पर और जिन सामग्रियों पर काम करना होता है, जिन उपकरणों से काम किया जाता है और काम करते समय जिन मकानों में आश्रय लिया जाता है—उन पर अपने अधिकार द्वारा इन चीज़ों के मालिक समाज के सभी वस्तुतः कुशल उत्पादक श्रमिकों की वार्षिक उत्पादक शक्तियों को अपने ही लाभ के लिए लगा लेते हैं, यद्यपि उस श्रम के आवर्ती उत्पाद से इन चीज़ों का अनुपात बहुत ही कम हो सकता है। चूंकि ब्रिटेन और आयरलैंड की आबादी दो करोड़ है और हर व्यक्ति मर्द, औरत और बच्चे का औसत उपभोग २० पाउंड के लगभग है, इसलिए इस तरह यह ४० करोड़ की संपत्ति बनती है, जो साल भर में खपे श्रम का उत्पाद है। अनुमान लगाया गया है कि इन देशों की संचित पूंजी की कुल राशि १२० करोड़ या समाज के वार्षिक श्रम के ३ गुने से ज्यादा नहीं है; अथवा यदि बराबर बांटा जाये, तो वह हर व्यक्ति के लिए ६० पाउंड की पूंजी है। यहां हमें अनुपातों से सरोकार है, इन अनुमानित रक़मों की एकदम सही राशि से नहीं। इस पूंजी स्टॉक का ब्याज सारी आबादी को उसकी वर्तमान सुख-सुविधा के साथ साल में लगभग २ महीने रख सकता है और (अगर ख़रीदार मिल जायें, तो) सारी संचित पूंजी स्वयं उसे ३ साल ख़ाली बैठाये उसका अनुपोषण कर सकती है! यह समय बीतने पर भोजन, वस्त्र और घर के बिना उसे भूखों मरना या उनका गुलाम बनना होगा, जिन्होंने निष्क्रियता के ३ वर्षों में उसका भरण-पोषण किया था। तीन साल का एक स्वस्थ पीढ़ी के जीवन काल—कह लीजिये ४० वर्ष—के लिए जो परिमाण और महत्व होता है, वही अनुपात केवल एक पीढ़ी की उत्पादक शक्तियों का समृद्धतम समुदाय की भी वास्तविक संपदा, संचित पूंजी के लिए होता है; समान सुरक्षा के लिए विवेकपूर्ण व्यवस्था के अंतर्गत वे क्या पैदा करते, ख़ासकर सहकारी श्रम की सहायता से उसका नहीं, बल्कि उसका, जो वे असुरक्षा के दोषपूर्ण और अवसादकारी साधनों के अंतर्गत निश्चयात्मक रूप में पैदा करते हैं! .. विद्यमान पूंजी की विराट प्रतीत होनेवाली राशि को (बल्कि वार्षिक श्रम के उस उत्पाद पर नियंत्रण को, जिसे वह एकाधिकार में लेने के साधन का काम करती है) उसकी वर्तमान बलात विभाजित अवस्था में निरंतर बनाये रखने के लिए असुरक्षा की सारी बुराइयों, अपराधों और मुसीबतों के सारे भयानक तंत्र को निरंतर क़ायम रखने की कोशिश की जाती है। चूंकि पहले आवश्यकताओं की पूर्ति किये बिना कोई संचय संभव नहीं है और चूंकि मानव प्रकृति का प्रचंड प्रवाह भोग की ओर है, इसलिए किसी क्षण विशेष में समाज की वास्तविक संपदा

की राशि अपेक्षाकृत बहुत ही तुच्छ होती है। उत्पादन और उपभोग का यह चिरंतन चक्र है। वार्षिक उपभोग और उत्पादन की इस विशाल राशि से मुट्ठी भर वास्तविक संचय को कदाचित ही महसूस किया जायेगा; फिर भी ध्यान मुख्यत: इस मुट्ठी भर संचय की ओर ही, न कि उत्पादक शक्तियों की राशि की ओर दिया जाता रहा है। लेकिन चूंकि इस मुट्ठी भर संचय को थोड़े से लोग हथिया लेते हैं और उसे अपने सहप्राणियों के भारी बहुलांश के श्रम के निरंतर आवर्तित उत्पाद को अपने उपयोग के लिए परिवर्तित करने का साधन बना लेते हैं, इसीलिए इन थोड़े से लोगों की राय में ऐसे साधन का महत्व सर्वाधिक है ... इन देशों के वार्षिक उत्पाद का लगभग तिहाई हिस्सा आजकल उत्पादकों से सार्वजनिक दायित्वों के नाम पर खसोट लिया जाता है और उसका उन लोगों द्वारा अनुत्पादक ढंग से उपयोग कर लिया जाता है, जो उसका कोई समतुल्य नहीं देते, यानी उत्पादकों के लिए संतोषजनक समतुल्य नहीं देते ... संचित राशियों ने मामूली आदमी की निगाह को हमेशा आकर्षित किया है, ख़ास तौर से तब, जब वे कुछ ही लोगों के हाथ में होती हैं। प्रति वर्ष उत्पादित और उपभुक्त राशियां शक्तिशाली नदी की अनंत और अगणित लहरों की ही तरह लहराती जाती हैं और उपभोग के विस्मृत सागर में विलीन हो जाती हैं। किंतु इस अनंत उपभोग पर ही सारी मानवजाति अपनी प्राय: सभी प्रकार की तुष्टि के लिए ही नहीं, वरन अपने अस्तित्व के लिए भी निर्भर है। इस वार्षिक उत्पाद की मात्रा और उसका वितरण विचार का प्रमुख विषय होना चाहिए। वास्तविक संचय नितांत गौण महत्व का है और अपना लगभग सारा महत्व वार्षिक पैदावार के वितरण पर अपने प्रभाव से प्राप्त करता है ... वास्तविक संचय और वितरण को (टॉमसन की कृतियों में) सदा उत्पादन शक्ति के संदर्भ में और उसके अधीन लिया गया है। प्राय: अन्य सभी पद्धतियों में उत्पादन शक्ति पर वास्तविक संचय के और विद्यमान वितरण प्रणालियों को चिरस्थायी बनाने के संदर्भ में तथा उनके अधीन विचार किया गया है। इस वास्तविक वितरण के परिरक्षण की तुलना में संपूर्ण मानवजाति के शाश्वत दुख-सुख को विचार के अयोग्य समझा गया है। हिंसा, छल और आकस्मिकता के परिणामों को स्थायी बनाना सुरक्षा कहलाया है और इस मिथ्या सुरक्षा के समर्थन की ख़ातिर मानवजाति की समस्त उत्पादक शक्तियों का निर्मम बलिदान किया गया है" (वही, पृष्ठ ४४०-४४३)।

पुनरुत्पादन के लिए विघ्नों के सिवा, जो नियत पैमाने पर पुनरुत्पादन में भी दख़ल देते हैं, केवल दो सामान्य स्थितियां संभव हैं।

या तो साधारण पैमाने पर पुनरुत्पादन होता है।

अथवा बेशी मूल्य का पूंजीकरण, संचय होता है।

१. साधारण पुनरुत्पादन

साधारण पुनरुत्पादन में यदि वर्ष के भीतर कई आवर्त हों, तो वार्षिक अथवा नियतकालिक रूप में उत्पादित तथा सिद्धिकृत बेशी मूल्य का उसके स्वामी, पूंजीपति द्वारा वैयक्तिक, अर्थात अनुत्पादक उपभोग किया जाता है।

इस तथ्य से कि उत्पाद का मूल्य अंशतः बेशी मूल्य और अंशतः मूल्य का वह भाग होता है, जो उत्पाद में पुनरुत्पादित परिवर्ती पूंजी और उत्पाद द्वारा खप चुकी स्थिर पूंजी से निर्मित होता है, कुल उत्पाद की मात्रा में या उसके मूल्य में कुछ भी फ़र्क़ नहीं पड़ता, जो माल पूंजी के रूप में निरंतर परिचलन में आता रहता है और वैसे ही निरंतर उससे निकलता रहता है, जिससे कि उत्पादक अथवा वैयक्तिक उपभोग में आ सके, अर्थात उत्पादन या उपभोग के साधन का काम कर सके। यदि स्थिर पूंजी को अलग छोड़ दिया जाये, तो उससे श्रमिकों और पूंजीपतियों के बीच वार्षिक उत्पाद का वितरण ही प्रभावित होता है।

अतः यदि साधारण पुनरुत्पादन की ही कल्पना की जाये, तो भी बेशी मूल्य के एक भाग को सदा उत्पाद के रूप में नहीं, द्रव्य रूप में विद्यमान रहना होगा, क्योंकि अन्यथा वह उपभोग हेतु द्रव्य से उत्पाद में परिवर्तित न किया जा सकेगा। बेशी मूल्य के अपने मूल माल रूप से द्रव्य में इस परिवर्तन का यहां और विश्लेषण किया जाना चाहिए। विषय को सरल बनाने के लिए हम समस्या का सरलतम रूप पूर्वानुमानित करेंगे, अर्थात केवल धातु मुद्रा के ऐसे द्रव्य परिचलन पर विचार करेंगे, जो वास्तविक समतुल्य है।

साधारण माल परिचलन के नियमों के अनुसार (जिनका विवेचन Buch I, Kap. III में है),* किसी देश में धातु मुद्रा की जितनी राशि विद्यमान हो, वह माल परिचलन के लिए ही पर्याप्त न होनी चाहिए, वरन मुद्रा संबंधी उतार-चढ़ाव से निपटने के लिए भी काफ़ी होनी चाहिए, जो अंशतः परिचलन वेग के उतार-चढ़ाव से, अंशतः पण्य वस्तुओं का भाव बदलने से और अंशतः उन भिन्न-भिन्न और परिवर्तनशील अनुपातों से उत्पन्न होते हैं, जिनमें द्रव्य अदायगी के माध्यम का अथवा वास्तविक परिचलन के माध्यम का कार्य करता है। द्रव्य की विद्यमान मात्रा जिस अनुपात में अपसंचय तथा परिचालित द्रव्य में विभाजित होती है, वह निरंतर बदलता रहता है, किंतु द्रव्य की कुल मात्रा सदैव अपसंचित द्रव्य तथा परिचालित द्रव्य के योग के बराबर रहती है। द्रव्य की यह मात्रा (बहुमूल्य धातु की मात्रा) समाज का धीरे-धीरे संचित अपसंचय होती है। चूंकि अपसंचय के एक भाग की खपत घिसाई और छीजन में हो जाती है, इसलिए उसका वार्षिक प्रतिस्थापन वैसे ही आवश्यक होता है, जैसे अन्य किसी उत्पाद का। यथार्थ में यह किसी देश विशेष के वार्षिक उत्पाद के एक भाग के सोना-चांदी पैदा करनेवाले देशों के उत्पाद से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष विनिमय द्वारा होता है। किंतु इस लेन-देन का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप उसके साधारण क्रम को छिपा लेता है। समस्या को सरलतम और स्पष्टतम बनाने के लिए यह कल्पना करना होगा कि सोने-चांदी का उत्पादन स्वयं उस देश विशेष में होता है, और इसलिए प्रत्येक देश में सोने-चांदी का उत्पादन उसके कुल सामाजिक उत्पादन का एक भाग होता है।

विलास वस्तुओं के लिए उत्पादित सोने-चांदी के अलावा उनके वार्षिक उत्पादन की अल्पतम राशि द्रव्य परिचलन से होनेवाली धातु मुद्रा की वार्षिक घिसाई के बराबर होनी चाहिए। इसके अलावा, अगर प्रति वर्ष उत्पादित और परिचालित पण्य वस्तुओं की मात्रा की मूल्य राशि बढ़ती है, तो इसी प्रकार सोने-चांदी का वार्षिक उत्पादन भी बढ़ना चाहिए, क्योंकि परिचालित पण्य वस्तुओं की बढ़ी हुई मूल्य राशि और उनके परिचलन के लिए आवश्यक द्रव्य की मात्रा (और अपसंचय के अनुरूप निर्माण) की द्रव्य मुद्रा के और तेज वेग से और अदायगी

---

* हिंदी संस्करण: अध्याय ३।—सं०

के माध्यम के रूप में द्रव्य की अधिक व्यापक कार्यशीलता से, अर्थात वास्तविक द्रव्य के हस्तक्षेप के बिना क्रय-विक्रय के परस्पर अधिक संतुलन द्वारा क्षतिपूर्ति नहीं होती है।

अतः सामाजिक श्रम शक्ति के एक भाग और उत्पादन के सामाजिक साधनों के एक भाग का सोने-चांदी के उत्पादन के लिए प्रति वर्ष व्यय करना आवश्यक है।

जो पूंजीपति सोने-चांदी के उत्पादन में लगे हुए हैं और जो साधारण पुनरुत्पादन की हमारी कल्पना के अनुसार अपना उत्पादन केवल सालाना औसत घिसाई और उसके परिणाम-स्वरूप सोने-चांदी की सालाना औसत खपत की सीमाओं के भीतर करते हैं, वे अपने बेशी मूल्य को – जिसे वे हमारी कल्पना के अनुसार उसके किसी भी भाग के पूंजीकरण के बिना वार्षिक उपभोग में लाते हैं – प्रत्यक्षतः परिचलन में द्रव्यरूपेण डाल देते हैं, जो उत्पादन की अन्य शाखाओं के विपरीत, जहां वह उत्पाद का परिवर्तित रूप होता है, यहां उसका नैसर्गिक रूप है।

फिर, जहां तक मजदूरी का संबंध है – उस द्रव्य रूप, जिसमें परिवर्ती पूंजी पेशगी दी जाती है – यह मजदूरी भी उत्पाद की बिक्री द्वारा, द्रव्य में उसके रूपांतरण द्वारा नहीं, वरन स्वयं उस उत्पाद द्वारा प्रतिस्थापित होती है, जिसका नैसर्गिक रूप आरंभ से ही द्रव्य रूप होता है।

अंततः यही बात बहुमूल्य धातुओं के उत्पाद के उस भाग पर भी लागू होती है, जो नियतकालिक रूप में उपभुक्त स्थिर पूंजी – वर्ष में उपभुक्त स्थिर प्रचल पूंजी और स्थिर स्थायी पूंजी दोनों – के मूल्य के बराबर होता है।

आइये, पहले द्र – मा ... उ ... द्र' के रूप में बहुमूल्य धातुओं के उत्पादन में निवेशित पूंजी के परिपथ अथवा आवर्त पर विचार करें। चूंकि द्र – मा के अंतर्गत मा में श्रम शक्ति और उत्पादन साधन ही नहीं होते, वरन स्थायी पूंजी भी होती है, जिसके मूल्य का केवल एक भाग उ में उपभुक्त होता है, इसलिए स्पष्ट है कि द्र' – उत्पाद – ऐसी द्रव्य राशि है, जो मजदूरी में लगाई परिवर्ती पूंजी, उत्पादन साधनों में लगाई प्रचल स्थिर पूंजी और छीजी हुई स्थायी पूंजी के तुल्य मूल्यांश तथा बेशी मूल्य – इन सब के योग के बराबर है। यदि यह राशि और कम हो, तो – सोने का सामान्य मूल्य यथावत रहने पर – खान अलाभदायी हो जायेगी अथवा, यदि यह स्थिति सामान्य हो जाये, तो मालों के अपरिवर्तित मूल्य की तुलना में सोने का मूल्य आगे चलकर बढ़ जायेगा, अर्थात मालों की क़ीमत गिर जायेगी, जिससे द्र – मा में लगाई हुई द्रव्य राशि आगे से कम होती जायेगी।

यदि हम पहले पूंजी के केवल द्र – मा ... उ ... द्र' के प्रारंभ बिंदु द्र में पेशगी दिये प्रचल भाग पर विचार करें, तो हम देखते हैं कि श्रम शक्ति की अदायगी और उत्पादन सामग्री की ख़रीद के लिए एक निश्चित द्रव्य राशि पेशगी दी जाती है, परिचलन में डाली जाती है। किंतु यह राशि इस पूंजी के परिपथ द्वारा परिचलन से निकाली नहीं जाती, जिससे कि वह उसमें फिर नये सिरे से डाली जा सके। उत्पाद अपने भौतिक रूप में भी द्रव्य है; अतः विनिमय द्वारा, परिचलन प्रक्रिया द्वारा, उसका द्रव्य में परिवर्तन आवश्यक नहीं होता। वह उत्पादन प्रक्रिया से परिचलन प्रक्रिया में पहुंच जाता है, उस माल पूंजी के रूप में नहीं, जिसे द्रव्य पूंजी में पुनःपरिवर्तित करना होता है, वरन उस द्रव्य पूंजी के रूप में, जिसे उत्पादक पूंजी में पुनःपरिवर्तित करना होता है, अर्थात जिसे ताजा श्रम शक्ति और उत्पादन सामग्री

ख़रीदनी है। श्रम शक्ति और उत्पादन साधनों में उपभुक्त प्रचल पूंजी के द्रव्य रूप का उत्पाद की बिक्री द्वारा नहीं, वरन स्वयं उत्पाद के भौतिक रूप द्वारा प्रतिस्थापन होता है; अतः परिचलन से द्रव्य रूप में उसके मूल्य को फिर से निकालकर नहीं, वरन अतिरिक्त नवोत्पादित द्रव्य द्वारा होता है।

मान लें, यह प्रचल पूंजी ५०० पाउंड है, आवर्त अवधि ५ सप्ताह है, कार्य अवधि ४ सप्ताह और परिचलन अवधि केवल १ सप्ताह है। आरंभ से ही, कुछ द्रव्य ५ सप्ताह के लिए उत्पादक पूर्ति के हेतु पेशगी देना होगा और कुछ मजदूरी पर क्रमशः ख़र्च करने के लिए हाथ में रखना होगा। छठे सप्ताह के शुरू में ४०० पाउंड वापस आ जायेंगे और १०० पाउंड मुक्त हो जायेंगे। इसकी निरंतर आवृत्ति होती रहती है। पूर्व प्रसंगों की तरह यहां भी १०० पाउंड आवर्त के किसी निश्चित समय में सदैव मुक्त रूप में होंगे। लेकिन इनमें अतिरिक्त नवोत्पादित द्रव्य है, जैसे वह अन्य ४०० पाउंड में भी है। इस मामले में वार्षिक आवर्त संख्या १० है, और वार्षिक उत्पाद सोने के रूप में ५,००० पाउंड है। (इस मामले में परिचलन अवधि में वह समय नहीं है, जो माल को द्रव्य में बदलने के लिए आवश्यक होता है, वरन वह समय है, जो द्रव्य को उत्पादन तत्वों में बदलने के लिए आवश्यक होता है।)

५०० पाउंड की उन्हीं परिस्थितियों में आवर्तित प्रत्येक अन्य पूंजी के प्रसंग में निरंतर नवीकृत द्रव्य रूप हर ४ सप्ताह पर उत्पादित परिचलन में डाली जानेवाली माल पूंजी का परिवर्तित रूप है, जो अपनी बिक्री से – अर्थात द्रव्य की उस मात्रा के नियतकालिक प्रत्याहार द्वारा, जिसे प्रक्रिया में मूलतः प्रवेश करते समय वह व्यक्त करती थी – इस द्रव्य रूप को बार-बार फिर धारण करती है। इसके विपरीत यहां हर आवर्त अवधि में ५०० पाउंड का नया अतिरिक्त द्रव्य स्वयं उत्पादन प्रक्रिया से परिचलन में डाल दिया जाता है, ताकि उससे श्रम शक्ति और उत्पादन सामग्री को निरंतर निकाला जा सके। परिचलन में डाला गया यह द्रव्य इस पूंजी के संपन्न किये परिपथ द्वारा नहीं निकाला जाता है, बल्कि वह निरंतर उत्पादित सोने की राशियों से बढ़ता ही रहता है।

आइये, प्रचल पूंजी के परिवर्ती भाग पर विचार करें और पहले की तरह मान लें कि वह १०० पाउंड है। तब सामान्य माल उत्पादन में ये १०० पाउंड १० आवर्तों में श्रम शक्ति की लगातार अदायगी करते रहने के लिए पर्याप्त होंगे। यहां सोने के उत्पादन में उतनी ही राशि पर्याप्त है। किंतु पश्चप्रवाह के १०० पाउंड, जिनसे हर ५ सप्ताह पर श्रम शक्ति की अदायगी की जाती है, इस श्रम शक्ति के उत्पाद का परिवर्तित रूप नहीं हैं, वरन स्वयं इस नित नवीकृत उत्पाद का अंश हैं। सोने का उत्पादक अपने मजदूरों की अदायगी सीधे उस सोने के ही एक भाग से करता है, जिसका उत्पादन उन्होंने स्वयं किया है। अतः श्रम शक्ति पर सालाना ख़र्च किये और श्रमिकों द्वारा परिचलन में डाले जानेवाले ये १,००० पाउंड अपने प्रारंभ बिंदु पर इस परिचलन के ज़रिये नहीं लौटते।

फिर, जहां तक स्थायी पूंजी का संबंध है, व्यवसाय की मूल स्थापना के समय अपक्षाकृत बड़ी द्रव्य पूंजी लगाना जरूरी होता है और इस प्रकार यह पूंजी परिचलन में डाल दी जाती है। सभी स्थायी पूंजी की तरह वह वर्षों के दौर में थोड़ी-थोड़ी करके ही वापस आती है। किंतु वह उत्पाद के, सोने के, प्रत्यक्ष भाग के रूप में वापस आती है, उत्पाद की बिक्री से और तत्पश्चात द्रव्य में उसके परिवर्तन से नहीं। दूसरे शब्दों में वह परिचलन से द्रव्य हटाकर नहीं, वरन उत्पाद के उतने ही भाग के संचय द्वारा धीरे-धीरे अपना द्रव्य रूप धारण करती

है। इस तरह बहाल की गयी द्रव्य पूंजी द्रव्य की परिचलन से उसमें मूलतः डाली गई स्थायी पूंजी की रक़म की क्षतिपूर्ति करने के लिए धीरे-धीरे निकाली जानेवाली राशि नहीं होती। यह द्रव्य की अतिरिक्त राशि होती है।

अंत में, जहां तक बेशी मूल्य का संबंध है, यह भी उसी प्रकार नये उत्पाद – सोने – के एक भाग के बराबर है, जो आवर्त की हर नई अवधि में इसलिए परिचलन में डाला जाता है कि उसका हमारी कल्पना के अनुसार निर्वाह साधनों और विलास वस्तुओं पर अनुत्पादक व्यंय किया जाये।

किंतु हमारी कल्पना के अनुसार वर्ष का समग्र स्वर्ण उत्पादन – जो बाज़ार से निरंतर श्रम शक्ति और उत्पादन सामग्री तो निकालता रहता है, किंतु द्रव्य नहीं निकालता, बल्कि द्रव्य की नई मात्राएं उसमें बराबर जोड़ता जाता है – वर्ष में छीजे द्रव्य का प्रतिस्थापन भर करता है', अतः वह निरंतर विद्यमान सामाजिक द्रव्य की मात्रा को ज्यों का त्यों बने भर रहने देता है, यद्यपि अपसंचित द्रव्य और संचलनगत मुद्रा के दो रूपों में, भिन्न-भिन्न अनुपातों में।

माल परिचलन के नियम के अनुसार द्रव्य की कुल मात्रा परिचलन के लिए आवश्यक द्रव्य राशि तथा अपसंचय के रूप में रखी राशि के योग के बराबर होती है। यह अपसंचय परिचलन के संकुचन अथवा प्रसार के साथ घटता-बढ़ता है और विशेष रूप से अदायगी के साधनों की आवश्यक आरक्षित निधि के निर्माण में काम आता है। लेखा-संतुलन न होने पर द्रव्य रूप में जो कुछ देना होता है, वह पण्य वस्तुओं का मूल्य है। इस तथ्य से कि इस मूल्य का एक भाग बेशी मूल्य है, अर्थात उसके लिए माल विक्रेता को कुछ नहीं देना पड़ा था, स्थिति में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। मान लीजिये कि सभी उत्पादक अपने उत्पादन साधनों के स्वाधीन मालिक हैं, जिससे कि परिचलन स्वयं प्रत्यक्ष उत्पादकों के बीच ही होता है। तब उनकी पूंजी के स्थिर भाग के अलावा उनका वार्षिक मूल्य उत्पाद पूंजीवादी परिस्थातियों के अनुरूप दो भागों में बांटा जा सकता है: भाग क, जो केवल आवश्यक निर्वाह साधनों को प्रतिस्थापित करता है और भाग ख, जो अंशतः विलास वस्तुओं में और अंशतः उत्पादन के प्रसार में उपभुक्त होता है। इस तरह भाग क परिवर्ती पूंजी का प्रतीक है और भाग ख बेशी मूल्य का। किंतु इस विभाजन का कुल उत्पाद के परिचलन के लिए आवश्यक द्रव्य राशि के परिमाण पर कोई असर न होगा। अन्य परिस्थितियां यथावत रहें, तो परिचालित माल राशि का मूल्य समान रहेगा और इस प्रकार उसके लिए आवश्यक द्रव्य राशि भी समान रहेगी। यदि आवर्त अवधियां बराबर-बराबर विभाजित हों, तो पूंजीपतियों के पास आरक्षित द्रव्य राशि भी समान होनी चाहिए, अर्थात उनकी पूंजी का उतना ही भाग हमेशा द्रव्य रूप में बना रहना चाहिए, क्योंकि हमारी कल्पना के अनुसार उनका उत्पादन पहले की ही तरह माल उत्पादन होगा। अतः इस तथ्य से कि माल मूल्य का एक भाग बेशी मूल्य है, व्यवसाय चलाने के लिए आवश्यक द्रव्य की मात्रा में क़तई कोई अन्तर नहीं आयेगा।

टूक का एक विरोधी, जो द्र – मा – द्र' सूत्र से चिपका हुआ है, उनसे पूछता है कि पूंजीपति परिचलन में जितना द्रव्य डालता है, हमेशा उससे ज्यादा वहां से निकाल कैसे लिया करता है। ज़रा ध्यान दीजिये! विचारणीय समस्या बेशी मूल्य का **निर्माण** नहीं है। यह, जो एकमात्र रहस्य है, पूंजीवादी दृष्टिकोण से स्वयंसिद्ध है। नियोजित मूल्य राशि, यदि बेशी मूल्य के द्वारा स्वयं को समृद्ध न करे, तो वह पूंजी ही नहीं होगी। लेकिन चूंकि वह कल्पना के अनुसार पूंजी है, इसलिए बेशी मूल्य भी स्वयंसिद्ध है।

तब समस्या यह नहीं है कि बेशी मूल्य आता कहां से है, बल्कि यह है कि वह द्रव्य कहां से आता है, जिसमें यह परिवर्तित होता है।

किंतु बूर्जुआ अर्थशास्त्र में बेशी मूल्य का अस्तित्व स्वतःस्पष्ट है। इसलिए उसे सिर्फ़ मान ही नहीं लिया जाता, वरन एक और कल्पना से जोड़ भी दिया जाता है कि परिचलन में डाली जानेवाली माल राशि का एक भाग बेशी उत्पाद है, अतः पूंजीपति ने उसे अपने पूंजी अंश के रूप में परिचलन में नहीं डाला था; फलतः पूंजीपति अपने उत्पाद के साथ अपनी पूंजी के अलावा कुछ अधिक भी परिचलन में डालता है, और इस अतिरेक को वह उससे निकाल लेता है।

पूंजीपति परिचलन में जो माल पूंजी डालता है, उसका मूल्य उस उत्पादक पूंजी से अधिक होता है, जिसे वह श्रम शक्ति तथा उत्पादन साधनों के रूप में परिचलन से निकालता है (यह अधिक मूल्य आता कहां से है, यह नहीं बताया जाता और यह अस्पष्ट रहता है, किंतु उपर्युक्त राजनीतिक अर्थशास्त्र इसे एक तथ्य मानता है)। इस कल्पना के आधार पर यह स्पष्ट है कि न केवल पूंजीपति क, वरन ख, ग, घ, वग़ैरह भी जो पूंजी मूलतः और फिर बार-बार पेशगी लगाते हैं, परिचलन से अपनी पण्य वस्तुओं के विनिमय द्वारा उसके मूल्य की अपेक्षा हमेशा अधिक मूल्य क्यों निकाल पाते हैं। क, ख, ग, घ, इत्यादि परिचलन से उत्पादक पूंजी के रूप में जो मूल्य निकालते हैं, उसकी अपेक्षा माल पूंजी के रूप में अधिक माल मूल्य निरंतर परिचलन में डालते हैं। यह कार्य उतना ही बहुपक्षी होता है, जितना स्वतंत्र रूप से कार्यशील विभिन्न पूंजियां। अतः उन्हें आपस में लगातार एक मूल्य राशि बांटनी होती है (अर्थात अपनी बारी में हरेक को परिचलन से उत्पादक पूंजी निकालना होती है), जो उन उत्पादक पूंजियों की मूल्य राशि के बराबर होती है, जिन्हें उन्होंने अलग-अलग पेशगी दिया था; और वैसे ही उन्हें लगातार वह मूल्य राशि भी आपस में बांटनी होती है, जिसे वे सब के सब हर तरफ़ से परिचलन में उन पण्य वस्तुओं के रूप में डालते हैं, जो उनके उत्पादन तत्वों के मूल्य के ऊपर माल मूल्य के आधिक्य को प्रकट करती है।

किंतु इसके पहले कि माल पूंजी उत्पादक पूंजी में पुनःपरिवर्तित हो, और उसमें निहित बेशी मूल्य ख़र्च हो, माल पूंजी का द्रव्य में परिवर्तित होना आवश्यक है। इसके लिए धन कहां से आता है? पहली निगाह में सवाल मुश्किल मालूम होता है, और न तो टूक ने, न किसी और ने अब तक उसका जवाब दिया है।

मान लीजिये कि द्रव्य पूंजी के रूप में पेशगी दी ५०० पाउंड की प्रचल पूंजी अब समाज की, अर्थात पूंजीपति वर्ग की कुल प्रचल पूंजी है, उसकी आवर्त अवधि चाहे जो भी हो। मान लीजिये कि बेशी मूल्य १०० पाउंड है। सारा पूंजीपति वर्ग ६०० पाउंड परिचलन से कैसे बराबर निकाल पाता है, जब कि वह उसमें केवल ५०० पाउंड बराबर डालता रहता है?

जब ५०० पाउंड की द्रव्य पूंजी उत्पादक पूंजी में परिवर्तित हो जाती है, तब यह उत्पादक पूंजी अपने को उत्पादन प्रक्रिया के अंतर्गत ६०० पाउंड के माल में रूपांतरित कर लेती है और अब परिचलन में मूलतः पेशगी दी गई द्रव्य पूंजी, ५०० पाउंड मूल्य की पण्य वस्तुएं ही नहीं, वरन १०० पाउंड का नवोत्पादित बेशी मूल्य भी है।

१०० पाउंड का यह अतिरिक्त बेशी मूल्य पण्य वस्तुओं के रूप में परिचलन में डाला जाता है। यह तो निस्संदिग्ध है। किंतु इस तरह का कार्य किसी भी तरह इस अतिरिक्त माल मूल्य के परिचलन के लिए अतिरिक्त द्रव्य मुहैया नहीं करता।

इस कठिनाई को सत्याभासी वाग्छल से मिटाने से काम नहीं चलेगा।

मिसाल के लिए: जहां तक स्थिर प्रचल पूंजी का संबंध है, स्पष्ट है कि सभी उसे एकसाथ ही निवेशित नहीं करते। जहां पूंजीपति क अपनी पण्य वस्तुएं बेचता है, जिससे उसकी पेशगी पूंजी द्रव्य रूप धारण करती है, वहां दूसरी ओर ग्राहक ख की उपलभ्य द्रव्य पूंजी होती है, जो उसके उत्पादन साधनों – ठीक वही, जो क पैदा कर रहा है – का रूप लेती है। जिस क्रिया द्वारा क अपनी उत्पादित माल पूंजी को द्रव्य रूप में बहाल करता है, उसी के द्वारा ख अपनी पूंजी को उसके उत्पादक रूप में वापस लाता है, उसे द्रव्य रूप से श्रम शक्ति और उत्पादन साधनों में रूपांतरित करता है, वही द्रव्य राशि हर साधारण क्रय मा – द्र की ही तरह द्विविध प्रक्रिया में कार्य करती है। दूसरी ओर, जब क अपना द्रव्य उत्पादन साधनों में पुनःपरिवर्तित करता है, तो वह ग से ख़रीदारी करता है और यह व्यक्ति उससे ख की अदायगी करता है, इत्यादि, और इस प्रकार इस लेन-देन की व्याख्या की जा सकती है। किंतु:

माल के परिचलन में प्रचल द्रव्य की मात्रा के संदर्भ में स्थापित किये गये नियमों (Buch I, Kap. III)* में से किसी को भी उत्पादन प्रक्रिया का पूंजीवादी स्वरूप किसी प्रकार भी नहीं बदलता।

इसलिए जब कहा जाता है कि द्रव्य रूप में समाज की जो प्रचल पूंजी पेशगी दी जाने को है, वह ५०० पाउंड है, तो पहले ही इस बात को ध्यान में ले लिया जाता है कि एक ओर यह साथ ही पेशगी दी गयी रक़म है, और दूसरी ओर यह ५०० पाउंड से अधिक उत्पादक पूंजी को गतिशील करती है, क्योंकि वह बारी-बारी से विभिन्न उत्पादक पूंजियों की द्रव्य निधि का काम करती है। इसलिए व्याख्या का यह ढंग उस द्रव्य को, जिसके अस्तित्व की व्याख्या करनी है, पहले से ही अस्तित्वमान मान लेता है।

आगे और कहा जा सकता है: पूंजीपति क ऐसी चीज़ों का उत्पादन करता है, जिनका पूंजीपति ख व्यक्तिगत, अनुत्पादक उपभोग करता है। अतः ख का द्रव्य क की माल पूंजी को द्रव्य में बदलता है और इस प्रकार वही द्रव्य राशि ख के बेशी मूल्य का और क की प्रचल स्थिर पूंजी का सिद्धिकरण करती है। किंतु इस हालत में जिस समस्या का हल अभी होने को है, उसे और भी प्रत्यक्षतः हल हो चुका माना जाता है, यानी: ख को वह द्रव्य कहां से मिलता है, जो उसकी आय होता है? उसने ख़ुद ही अपने उत्पाद के बेशी मूल्य के इस भाग का कैसे सिद्धिकरण किया?

यह भी कहा जा सकता है कि प्रचल परिवर्ती पूंजी का जो भाग क अपने मज़दूरों को बराबर पेशगी देता रहता है, वह उसके पास परिचलन से बराबर वापस आता रहता है, और केवल उसका एक बदलता हुआ हिस्सा मज़दूरी की अदायगी के लिए उसके पास हमेशा बना रहता है। लेकिन व्यय और पश्चप्रवाह के बीच कुछ समय बीतता है और इस बीच मज़दूरी के लिए व्यय किया हुआ द्रव्य अन्य उपयोगों के अलावा बेशी मूल्य के सिद्धिकरण के काम आ सकता है।

---

* हिंदी संस्करण: अध्याय ३। – सं०

लेकिन हम जानते हैं कि पहले तो यह समय जितना ही अधिक होगा, उस द्रव्य की पूर्ति भी उतना ही अधिक होगी, जो पूंजीपति क को लगातार in petto [पास में] रखनी होगी। दूसरे, मजदूर धन ख़र्च करता है, उससे पण्य वस्तुएं भी ख़रीदता है और pro tanto [तत्प्रमाणे] उनमें निहित बेशी मूल्य को द्रव्य में परिवर्तित करता है। फलतः जो द्रव्य परिवर्ती पूंजी के रूप में पेशगी दिया जाता है, वही pro tanto बेशी मूल्य को द्रव्य में परिवर्तित करने के काम भी आता है। इस समस्या में यहां और गहराई में गये बिना इतना कहना काफ़ी होगा: समूचे पूंजीपति वर्ग और उसके परिचरों का उपभोग मजदूर वर्ग के उपभोग के साथ-साथ चलता है, इसलिए मजदूरों द्वारा परिचलन में द्रव्य डालने के ही साथ-साथ पूंजीपतियों को भी उसमें द्रव्य डालना होगा, जिससे अपने बेशी मूल्य को आय की तरह ख़र्च कर सकें। अतः इसके लिए परिचलन से द्रव्य निकालना होगा। यह व्याख्या आवश्यक द्रव्य की मात्रा को बस घटाने का ही काम करेगी, विलोपन करने का नहीं।

अंत में यह भी कहा जा सकता है: जब स्थायी पूंजी पहली बार निवेशित की जाती है, तब परिचलन में एक बड़ी द्रव्य राशि निरंतर डाली जाती है, और उसे परिचलन में डालनेवाले को केवल क्रमशः, खंडशः, अनेक वर्ष बीत जाने पर ही परिचलन से पुनः प्राप्त होती है। बेशी मूल्य को द्रव्य में बदलने के लिए क्या यह राशि पर्याप्त नहीं हो सकती?

इसका जवाब यह होना चाहिए कि शायद ५०० पाउंड की राशि में (जिसमें आवश्यक आरक्षित निधियों के लिए अपसंचय निर्माण शामिल है) इसका स्थायी पूंजी के रूप में जिस व्यक्ति ने उसे परिचलन में डाला है, उसके द्वारा नहीं, तो किसी और व्यक्ति द्वारा नियोजन सन्निहित है। इसके अलावा स्थायी पूंजी का काम देनेवाले उत्पाद को जुटाने में व्ययित रक़म के बारे में पहले ही यह मान लिया गया है कि उसमें अंतर्विष्ट बेशी मूल्य भी चुकाया गया है, और प्रश्न ठीक यही है कि यह धन आता कहां से है।

इसका सामान्य उत्तर पहले ही दिया जा चुका है: यदि १,००० पाउंड के क गुना की माल राशि को परिचालित होना है, तो इस परिचलन के लिए आवश्यक द्रव्य की मात्रा में इससे क़तई कुछ भी तबदीली नहीं आती कि इस माल राशि के मूल्य में कुछ बेशी मूल्य है या नहीं, यह माल राशि पूंजीवादी ढंग से उत्पादित हुई है या नहीं। **अतः स्वयं समस्या ही अस्तित्वमान नहीं है।** और जब मुद्रा संचलन वेग, आदि जैसी सभी परिस्थितियां निश्चित हों, तो १,००० पाउंड के क गुना के माल मूल्य के परिचलन के लिए इसके लिहाज़ के बिना एक निश्चित द्रव्य राशि आवश्यक है कि इन पण्य वस्तुओं के प्रत्यक्ष उत्पादकों को इस मूल्य का कितना कम या ज्यादा हिस्सा मिलता है। अगर यहां कोई समस्या है, तो वह इस सामान्य समस्या के पूर्णतः अनुरूप है: किसी देश के माल परिचलन के लिए आवश्यक धन कहां से आता है?

फिर भी पूंजीवादी उत्पादन के दृष्टिकोण से एक विशेष समस्या का **आभास** वस्तुतः विद्यमान है। प्रस्तुत प्रसंग में पूंजीपति प्रस्थान बिंदु के रूप में सामने आता है, जो परिचलन में द्रव्य डालता है। मजदूर जो धन निर्वाह साधनों को अदा करने के लिए ख़र्च करता है, वह पहले परिवर्ती पूंजी के द्रव्य रूप में विद्यमान था और इसलिए उसे पूंजीपति ने मूलतः श्रम शक्ति को ख़रीदने या उसकी अदायगी के साधन रूप में परिचलन में डाला था। इसके अलावा पूंजीपति परिचलन में वह धन भी डालता है, जो उसकी स्थिर, स्थायी और प्रचल, पूंजी का

मूल द्रव्य रूप होता है; वह उसे श्रम उपकरणों और उत्पादन सामग्री की ख़रीद या अदायगी के साधन रूप में इस्तेमाल करता है। किंतु पूंजीपति इसके आगे परिचलनगत द्रव्य की मात्रा के प्रारंभ बिंदु के रूप में सामने नहीं आता है। अब केवल दो प्रस्थान बिंदु हैं: पूंजीपति और श्रमिक। व्यक्तियों के अन्य सभी तीसरे संवर्गों को अपनी सेवाओं के लिए या तो इन दो वर्गों से धन प्राप्त करना होगा, या जहां तक वे उसे प्रतिदान में सेवा बिना ही प्राप्त करते हैं, वे किराये, ब्याज, आदि के रूप में बेशी मूल्य के सहस्वामी होते हैं। बेशी मूल्य औद्योगिक पूंजीपति की जेब में पूर्णतः ठहर ही नहीं पाता, वरन दूसरों को उसका हिस्सा देना पड़ता है, इसका प्रस्तुत समस्या से कुछ भी संबंध नहीं है। समस्या यह है कि वह अपने बेशी मूल्य को धन में कैसे बदलता है, यह नहीं कि जो कुछ मिला, उसका आगे चलकर बंटवारा कैसे होता है। हमारे उद्देश्य के लिए पूंजीपति को अब भी बेशी मूल्य का एकमात्र स्वामी माना जा सकता है। जहां तक मजदूर का संबंध है, यह पहले ही कहा जा चुका है कि वह परिचलन में मजदूर द्वारा डाले गये द्रव्य का गौण प्रारंभ बिंदु है, मुख्य बिंदु पूंजीपति है। परिवर्ती पूंजी के रूप में जो द्रव्य पहले पेशगी दिया गया था, वह अब परिचलन के अपने दूसरे दौर में होता है, जिसमें उसे मजदूर अपने निर्वाह साधनों की अदायगी के लिए ख़र्च करता है।

फलतः पूंजीपति वर्ग ही द्रव्य परिचलन का एकमात्र प्रस्थान बिंदु रहता है। यदि पूंजीपतियों को ४०० पाउंड उत्पादन साधनों की अदायगी के लिए और १०० पाउंड श्रम शक्ति की अदायगी के लिए चाहिए, तो वे ५०० पाउंड परिचलन में डालते हैं। किंतु १००% बेशी मूल्य की दर से उत्पाद में समाविष्ट बेशी मूल्य १०० पाउंड के मूल्य के बराबर है। पूंजीपति लोग परिचलन से लगातार ६०० पाउंड कैसे निकाल सकते हैं, जब वे उसमें लगातार सिर्फ़ ५०० पाउंड ही डालते हैं? कुछ न डालो, तो कुछ न मिलेगा। पूंजीपति वर्ग समूचे तौर पर परिचलन से वह कुछ नहीं निकाल सकता, जो उसमें पहले डाला नहीं गया था।

हम यहां इस तथ्य को अनदेखा करते हैं कि ४०० पाउंड की रक़म १० बार आवर्तित किये जाने पर ४,००० पाउंड मूल्य के उत्पादन साधन और १,००० पाउंड मूल्य की श्रम शक्ति को परिचालित करने के लिए पर्याप्त हो सकती है, और इसी प्रकार दूसरे १०० पाउंड १,००० पाउंड के बेशी मूल्य को परिचालित करने को पर्याप्त हो सकते हैं। द्रव्य राशि का परिचालित माल के मूल्य से अनुपात यहां महत्वहीन है। समस्या वही बनी रहती है। अगर द्रव्य के वही अंश अनेक बार परिचालित न हों, तो ५,००० पाउंड की पूंजी परिचलन में डालनी होगी और बेशी मूल्य को द्रव्य में बदलने के लिए १,००० पाउंड आवश्यक होंगे। प्रश्न यह है कि यह द्रव्य, चाहे वह १,००० पाउंड हो और चाहे १०० पाउंड, आता कहां से है। जो भी हो, यह परिचलन में डाली गई द्रव्य पूंजी से अधिक होता है।

पहली निगाह में चाहे यह विरोधाभास प्रतीत हो, किंतु वस्तुतः स्वयं पूंजीपति वर्ग ही परिचलन में वह धन डालता है, जो पण्य वस्तुओं में समाविष्ट बेशी मूल्य के सिद्धिकरण का काम करता है। मगर nota bene [ध्यान दीजिये], वह उसे पेशगी द्रव्य के रूप में, अतः पूंजी के रूप में परिचलन में नहीं डालता। वह उसे अपने व्यक्तिगत उपभोग के लिए क्रय साधन के रूप में ख़र्च करता है। अतः द्रव्य पूंजीपति वर्ग द्वारा पेशगी नहीं दिया जाता, यद्यपि वह उसके परिचलन का प्रस्थान बिंदु अवश्य है।

एक ऐसा अलग पूंजीपति ले लीजिये, जो व्यवसाय शुरू कर रहा है, जैसे एक फ़ार्मर। पहले साल वह, मान लीजिये, ५,००० पाउंड की द्रव्य पूंजी पेशगी लगाता है – ४,०००

पाउंड उत्पादन साधनों के लिए और १,००० पाउंड श्रम शक्ति के लिए। मान लीजिये, बेशी मूल्य की दर १००% है, उसके द्वारा हस्तगत बेशी मूल्य की रक़म १,००० पाउंड है। द्रव्य पूंजी के रूप में वह जितना पैसा पेशगी देता है, वह सब मिलाकर यही ५,००० पाउंड है। लेकिन आदमी को ज़िंदा भी रहना होता है और साल ख़त्म होने से पहले उसके हाथ कुछ भी धन नहीं आता। मान लीजिये, उसका उपभोग १,००० पाउंड है। यह रक़म उसके पास होनी चाहिए। वह कह सकता है कि उसे पहले साल के दौरान ये १,००० पाउंड अपने को पेशगी देने होते हैं। किंतु यह पेशगी, जो यहां केवल आत्मगत अर्थ में पेशगी है, इसके अलावा और कुछ व्यक्त नहीं करती कि पहले साल के दौरान उसे अपने व्यक्तिगत उपभोग के लिए अपनी जेब से ख़र्च करना होगा, अपने मज़दूरों की मुफ़्त पैदावार से नहीं। यह धन वह पूंजी रूप में पेशगी नहीं देता। वह उसे ख़र्च करता है, वह जिन निर्वाह साधनों का उपभोग करता है, उनके समतुल्य के रूप में उसे दे देता है। यह मूल्य उसके द्वारा द्रव्य रूप में ख़र्च किया, परिचलन में डाला और माल मूल्यों के रूप में उससे निकाला गया है। उसने इन माल मूल्यों का उपभोग कर डाला है। इस तरह उनके मूल्य से अब उसका कोई संबंध नहीं रह गया है। इस मूल्य के लिए उसने जो धन दिया था, वह अब परिचालित द्रव्य के एक तत्व के रूप में विद्यमान है। किंतु उसने इस द्रव्य का मूल्य उत्पाद के रूप में परिचलन से निकाल लिया है और अब यह मूल्य उन पण्य वस्तुओं के साथ नष्ट हो जाता है, जिनमें वह अस्तित्वमान था। वह सब का सब ख़त्म हो जाता है। लेकिन साल ख़त्म होने पर वह ६,००० पाउंड मूल्य का माल परिचलन में डालता है और उसे बेच देता है। इस तरीक़े से वह १) ५,००० पाउंड की अपनी पेशगी द्रव्य पूंजी तथा २) १,००० पाउंड के सिद्धिकृत बेशी मूल्य को वसूल कर लेता है। उसने ५,००० पाउंड पूंजी रूप में पेशगी दिये, उन्हें परिचलन में डाला और अब वह उससे ६,००० पाउंड निकालता है, जिसमें ५,००० पाउंड उसकी पूंजी के हैं और १,००० पाउंड उसके बेशी मूल्य के। अंतोक्त १,००० पाउंड उस द्रव्य के साथ, जिसे उसने ख़ुद परिचलन में डाला है, जिसे उसने पेशगी नहीं दिया था, वरन पूंजीपति की हैसियत से नहीं, उपभोक्ता की हैसियत से ख़र्च किया था, द्रव्य में परिवर्तित हो जाते हैं। वे उसके पास उसके द्वारा उत्पादित बेशी मूल्य के द्रव्य रूप में वापस आ जाते हैं। और अब से यह क्रिया हर साल दोहराई जायेगी। लेकिन दूसरे साल से वह जो १,००० पाउंड ख़र्च करता है, वे निरंतर उसके द्वारा उत्पादित बेशी मूल्य का परिवर्तित रूप, द्रव्य रूप होते हैं। वह उन्हें सालाना ख़र्च करता है, और वे सालाना उसके पास वापस आते हैं।

यदि उसकी पूंजी हर साल अधिक प्रायिकता से आवर्तित होती, तो उससे स्थिति में कोई फ़र्क़ न पड़ता, किंतु समय की दीर्घता पर और इसलिए उस रक़म पर प्रभाव पड़ता, जिसे उसने अपनी पेशगी द्रव्य पूंजी के अलावा अपने व्यक्तिगत उपभोग के लिए परिचलन में डाला होता।

पूंजीपति द्वारा यह द्रव्य परिचलन में बतौर पूंजी नहीं डाला जाता। किंतु जब तक बेशी मूल्य वापस आना शुरू हो, तब तक उन साधनों के बल पर, जो उसके अधिकार में हैं, रह पाना पूंजीपति की निश्चित विशेषता है।

प्रस्तुत प्रसंग में हमने कल्पना की थी कि अपनी पूंजी के पहले प्रतिफल के आने तक पूंजीपति अपने व्यक्तिगत उपभोग का दाम चुकाने के लिए जो द्रव्य राशि परिचलन में डालता है, वह उस बेशी मूल्य के बिल्कुल बराबर है, जिसे उसने उत्पादित किया है और इसलिए

उसे द्रव्य में परिवर्तित करना होगा। जहां तक एक अकेले पूंजीपति का संबंध है, यह स्पष्ट ही मनमानी कल्पना है। किंतु यदि साधारण पुनरुत्पादन को कल्पित किया जाये, तो समूचे पूंजीपति वर्ग पर लागू किये जाने पर यह अवश्य सही होगी। यह वही बात प्रकट करती है, जो यह कल्पना किरती है, अर्थात समूचे बेशी मूल्य का, और इस मूल्य का – अतः मूल पूंजी स्टॉक के किसी भी अंश का नहीं – अनुत्पादक ढंग से ही उपभोग होता है।

पहले यह माना गया था कि बहुमूल्य धातुओं का कुल उत्पादन (जो ५०० पाउंड के बराबर माना गया था) केवल द्रव्य की छीजन के प्रतिस्थापन के लिए पर्याप्त होता है।

सोने का उत्पादन करनेवाले पूंजीपतियों के पास उनका सारा उत्पाद सोने के रूप में होता है – उसका वह भाग, जो स्थिर तथा परिवर्ती पूंजी को प्रतिस्थापित करता है, और वह भाग भी, जिसमें बेशी मूल्य समाविष्ट होता है। अतः सामाजिक बेशी मूल्य का एक भाग सोना होता है, ऐसा उत्पाद नहीं, जिसे परिचलन प्रक्रिया द्वारा ही सोने में परिवर्तित किया जाये। वह शुरू से ही सोना होता है और परिचलन में इसलिए डाला जाता है कि उससे उत्पाद निकाला जाये। यही बात यहां मजदूरी पर, परिवर्ती पूंजी पर और पेशगी स्थिर पूंजी के प्रतिस्थापन पर भी लागू होती है। अतः जहां पूंजीपति वर्ग का एक भाग अपने द्वारा पेशगी द्रव्य पूंजी से अधिक मूल्य का माल (बेशी मूल्य की मात्रा जितना अधिक) परिचलन में डालता है, वहां पूंजीपतियों का दूसरा भाग परिचलन में उस माल के मूल्य से अधिक मूल्य का द्रव्य (बेशी मूल्य की मात्रा जितना अधिक) डालता है, जिसे वह सोने के उत्पादन के लिए परिचलन से निरंतर निकालता रहता है। जहां पूंजीपतियों का एक भाग परिचलन से उसमें डाले गये द्रव्य से निरंतर अधिक द्रव्य निकालता है, वहां उनका वह भाग, जो सोना पैदा करता है, उत्पादन साधनों में निकाले हुए द्रव्य की अपेक्षा उसमें निरंतर अधिक द्रव्य डालता है।

यद्यपि ५०० पाउंड के इस स्वर्ण उत्पाद का एक भाग स्वर्ण उत्पादकों का बेशी मूल्य होता है, फिर भी सारी राशि केवल माल परिचलन के लिए आवश्यक द्रव्य के प्रतिस्थापन के लिए ही उद्दिष्ट होती है। इस उद्देश्य के लिए यह बात निरर्थक है कि इस सोने का कितना हिस्सा मालों में समाविष्ट बेशी मूल्य को द्रव्य में परिवर्तित करता है, और उसका कितना हिस्सा अन्य मूल्य घटकों को द्रव्य में परिवर्तित करता है।

सोने के उत्पादन का एक देश से दूसरे देश को स्थानांतरण करने से स्थिति में कोई भी परिवर्तन नहीं आता। क देश की सामाजिक श्रम शक्ति और सामाजिक उत्पादन साधनों का एक भाग ५०० पाउंड मूल्य के उत्पाद में, मसलन, लिनन में परिवर्तित कर दिया जाता है, जिसे ख देश को निर्यात कर दिया जाता है, जिससे कि वहां सोना ख़रीदा जा सके। इस प्रकार क देश में नियोजित उत्पादक पूंजी क देश के बाजार में – द्रव्य से भिन्न – उससे ज्यादा पण्य वस्तुएं नहीं डालती, जितनी वह तब डालती कि अगर उसे सीधे स्वर्ण उत्पादन में नियोजित किया जाता। क का यह उत्पाद स्वर्ण के रूप में ५०० पाउंड व्यक्त करता है और देश के परिचलन में केवल द्रव्य रूप में प्रविष्ट होता है। सामाजिक बेशी मूल्य का जो भाग इस उत्पाद में समाविष्ट होता है, वह क देश के लिए केवल प्रत्यक्ष द्रव्य रूप में अस्तित्वमान होता है, कभी भी अन्य किसी रूप में नहीं। यद्यपि स्वर्ण उत्पादक पूंजीपतियों के लिए उत्पाद का सिर्फ़ एक अंश ही बेशी मूल्य को और दूसरा अंश पूंजी प्रतिस्थानिक को व्यक्त करता है, फिर भी यह प्रश्न कि प्रचल स्थिर पूंजी को छोड़कर इस स्वर्ण की कितनी मात्रा परिवर्ती पूंजी को

प्रतिस्थापित करती है और कितनी मात्रा बेशी मूल्य को व्यक्त करती है, यह केवल मात्र परिचालित माल के मूल्य के मजदूरी और बेशी मूल्य के साथ क्रमिक अनुपातों पर निर्भर करता है। बेशी मूल्य वाला अंश पूंजीपति वर्ग के विभिन्न सदस्यों के बीच बंट जाता है। यद्यपि इस अंश को वे व्यक्तिगत उपभोग के लिए निरंतर ख़र्च करते रहते हैं और नये उत्पाद की बिक्री द्वारा फिर वसूल करते रहते हैं, – यह क्रय-विक्रय ही बेशी मूल्य को द्रव्य रूप में बदलने के आवश्यक द्रव्य को उनके बीच परिचालित करता है, – फिर भी सामाजिक बेशी मूल्य का एक भाग द्रव्य रूप में, भले ही बदलते अनुपात में, पूंजीपतियों की जेब में होता है, जैसे मजदूरी का एक भाग हफ़्ते के कम से कम कुछ दिन मजदूरों की जेब में द्रव्य रूप में होता है। यह भाग द्रव्य उत्पाद के उस अंश द्वारा सीमित नहीं होता, जो मूलतः स्वर्ण उत्पादक पूंजीपतियों का बेशी मूल्य होता है, बल्कि – जैसा हम कह चुके हैं – उस अनुपात द्वारा सीमित होता है, जिसमें ५०० पाउंड का उपर्युक्त उत्पाद मजदूरों और पूंजीपतियों के बीच सामान्यतः वितरित होता है और जिसमें बेशी मूल्य तथा मूल्य के दूसरे घटक परिचालित होनेवाली पण्य पूर्ति में समाविष्ट होते हैं।

फिर भी बेशी मूल्य का वह अंश, जो अन्य पण्य वस्तुओं में नहीं, वरन द्रव्य रूप में उनके साथ ही साथ अस्तित्वमान होता है, केवल उसी सीमा तक प्रति वर्ष उत्पादित स्वर्ण का भाग होता है कि सोने के वार्षिक उत्पादन का एक हिस्सा बेशी मूल्य का सिद्धिकरण करने के लिए परिचालित होता है। द्रव्य का दूसरा अंश, जो पूंजीपति वर्ग के हाथ में विभिन्न मात्राओं में निरंतर उसके बेशी मूल्य के द्रव्य रूप में रहता है, प्रति वर्ष उत्पादित स्वर्ण का अंश नहीं होता, वरन देश में पहले ही संचित द्रव्य राशि का अंश होता है।

हमारी कल्पना के अनुसार सोने का वार्षिक उत्पादन ५०० पाउंड है, जो द्रव्य की सालाना छीजन भर के लिए काफ़ी होता है। यदि हम केवल इन ५०० पाउंड को ही ध्यान में रखें और प्रति वर्ष उत्पादित माल राशि के पूर्वसंचित द्रव्य द्वारा परिचालित अंश को अनदेखा कर दें, तो माल रूप में उत्पादित बेशी मूल्य महज़ इसलिए द्रव्य में अपने रूपांतरण के लिए परिचलन प्रक्रिया में द्रव्य रूप प्राप्त कर लेगा कि दूसरी ओर बेशी मूल्य प्रति वर्ष सोने के रूप में उत्पादित होता है। ५०० पाउंड के स्वर्ण उत्पाद के जो अन्य भाग पेशगी द्रव्य पूंजी का प्रतिस्थापन करते हैं, उन पर भी यही बात लागू होती है।

इस सिलसिले में यहां दो बातों पर ध्यान देना चाहिए।

पहली बात यह कि इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पूंजीपति द्रव्य रूप में जो बेशी मूल्य ख़र्च करते हैं और जो परिवर्ती तथा अन्य उत्पादक पूंजी वे द्रव्य रूप में पेशगी देते हैं, वह वास्तव में मजदूरों का उत्पाद होता है, यानी सोने के उत्पादन में लगे मजदूरों का उत्पाद। वे स्वर्ण उत्पाद के केवल उसी भाग का, जो उन्हें मजदूरी के रूप में "पेशगी" दिया जाता है, नवोत्पादन नहीं करते, वरन स्वर्ण उत्पाद के उस भाग का भी करते हैं, जिसमें स्वर्ण उत्पादक पूंजीपतियों का बेशी मूल्य प्रत्यक्षतः व्यक्त होता है। अंततः, जहां तक स्वर्ण उत्पाद के उस भाग का संबंध है, जो केवल स्वर्ण उत्पादन के लिए पेशगी स्थिर पूंजी मूल्य का प्रतिस्थापन करता है, वह केवल मजदूरों के वार्षिक श्रम द्वारा द्रव्य रूप में (अथवा सामान्यतः उत्पाद के रूप में) पुनः प्रकट होता है। जब व्यवसाय शुरू हुआ था, पूंजीपति द्वारा यह मूलतः उस द्रव्य के रूप में ख़र्च किया गया था, जो नवोत्पादित नहीं था, वरन जो सामाजिक द्रव्य की परिचलनशील राशि का अंश था। किंतु जहां तक उसका प्रतिस्थापन नये

उत्पाद से, अतिरिक्त सोने से होता है, वह मज़दूर का वार्षिक उत्पाद होता है। पूंजीपति की पेशगी यहां भी एक रूप मात्र की तरह प्रकट होती है, जो इसलिए अस्तित्व में आता है कि मज़दूर न तो अपने उत्पादन साधनों का मालिक होता है, न वह उत्पादन के दौरान दूसरे मज़दूरों द्वारा उत्पादित निर्वाह साधनों पर ही अधिकार रखता है।

किंतु दूसरी बात यह है कि जहां तक उस द्रव्य राशि का संबंध है, जो ५०० पाउंड के इस वार्षिक प्रतिस्थापन से स्वतंत्र, अंशतः संचय के रूप में और अंशतः प्रचल द्रव्य रूप में होती है, उसके साथ वही बात होगी, या कहें कि मूलतः वही बात हुई होगी, जो इन ५०० पाउंड के साथ प्रति वर्ष होती है। इस उपानुच्छेद के अंत में इसकी चर्चा हम फिर करेंगे।* किंतु उससे पहले हम कुछ और बातें कहना चाहते हैं।

आवर्त के अपने अध्ययन में हम देख चुके हैं कि अन्य परिस्थितियां समान रहें, तो अवधियों की दीर्घता में परिवर्तनों के लिए द्रव्य पूंजी की राशियों में परिवर्तन आवश्यक होता है, ताकि उत्पादन को उसी पैमाने पर जारी रखा जा सके। अतः द्रव्य परिचलन लोच को अपने को इस प्रसार और संकुचन के उस क्रमांतरण के अनुरूप बनाने के लिए काफ़ी होना चाहिए।

यदि हम यह भी मान लें कि कार्य दिवस की दीर्घता, सघनता और उत्पादकता सहित अन्य परिस्थितियां समान बनी रहेंगी – किंतु मज़दूरी और बेशी मूल्य में **उत्पाद के मूल्य का विभाजन दूसरे तरीक़े से होगा**, जिससे कि या तो मज़दूरी बढ़ेगी और बेशी मूल्य गिरेगा या इसका उलटा होगा, तो प्रचल द्रव्य राशि इससे प्रभावित नहीं होगी। यह परिवर्तन द्रव्य मुद्रा के किसी भी प्रकार के संकुचन अथवा प्रसार के बिना हो सकता है। आइये, ख़ास तौर से उस प्रसंग पर विचार करें, जिसमें मज़दूरी में आम बढ़ोतरी होती है, जिससे कि हमारी कल्पनाओं के अनुसार बेशी मूल्य की दर में आम गिरावट आयेगी, लेकिन इसी के साथ-साथ और हमारी कल्पना के ही अनुसार परिचालित माल राशि के मूल्य में भी कोई परिवर्तन न होगा। इस प्रसंग में स्वभावतः उस द्रव्य पूंजी में वृद्धि होती है, जिसे परिवर्ती पूंजी के रूप में पेशगी देना होता है, अतः उस द्रव्य राशि में भी वृद्धि होती है, जो यह कार्य करती है। किंतु बेशी मूल्य में और इसलिए उसके सिद्धिकरण के लिए आवश्यक द्रव्य राशि में भी ठीक उतनी ही रक़म की कमी होती है, जितनी की परिवर्ती पूंजी की कार्यशीलता के लिए आवश्यक द्रव्य राशि में वृद्धि होती है। इससे माल मूल्य के सिद्धिकरण के लिए आवश्यक द्रव्य राशि पर वैसे ही कोई प्रभाव नही पड़ता, जैसे स्वयं इस माल मूल्य पर नहीं पड़ता। अलग पूंजीपति के लिए माल का लागत मूल्य बढ़ जाता है, किंतु उसके उत्पादन की सामाजिक क़ीमत में कोई तबदीली नहीं होती। परिवर्तन होता है उस अनुपात में, जिसमें मूल्य के स्थिर अंश के अलावा मालों के उत्पादन की क़ीमत का मज़दूरी और मुनाफ़े में वितरण होता है।

लेकिन दलील यह दी जाती है कि परिवर्ती द्रव्य पूंजी के अधिक परिव्यय (द्रव्य के मूल्य को निस्संदेह स्थिर माना जाता है) में मज़दूरों के हाथ में ज्यादा द्रव्य राशि का होना सन्निहित होता है। इससे मज़दूरों में पण्य वस्तुओं की मांग और ज्यादा हो जाती है। इससे अपनी बारी

---

*इस पुस्तक के पृष्ठ ३०५ देखें। – सं०

में पण्य वस्तुओं की क़ीमत बढ़ जाती है।—या फिर यह कहा जाता है: अगर मजदूरी बढ़ती है, तो पूंजीपति अपनी पण्य वस्तुओं की क़ीमत बढ़ा देते हैं। किसी भी स्थिति में मजदूरी में आम बढ़ोतरी होने से पण्य वस्तुओं की क़ीमतें बढ़ जाती हैं। इसलिए क़ीमतों के बढ़ने की चाहे जो व्याख्या की जाये, माल परिचलन के लिए अधिक द्रव्य राशि आवश्यक हो जाती है।

पहले निरूपण का उत्तर: मजदूरी बढ़ने के फलस्वरूप मजदूरों की जीवनावश्यक वस्तुओं की मांग ख़ास तौर से बढ़ेगी। विलास वस्तुओं के लिए उनकी मांग किसी क़दर कम बढ़ेगी अथवा ऐसी चीजों के लिए मांग पैदा होने लगेगी, जो पहले उनके उपभोग के दायरे में नहीं आती थीं। अपरिहार्य निर्वाह साधनों की मांग में अचानक और बड़े पैमाने की वृद्धि निस्संदेह उनकी क़ीमतों को तत्काल बढ़ा देगी। इसका परिणाम: सामाजिक पूंजी के अधिक भाग का जीवनावश्यक वस्तुएं पैदा करने में और कम भाग का विलास वस्तुएं पैदा करने में उपयोग होगा; क्योंकि बेशी मूल्य में ह्रास से और इसके फलस्वरूप इन चीजों के लिए पूंजीपतियों की मांग घटने से इनकी क़ीमत गिरती है। दूसरी ओर मजदूर चूंकि ख़ुद विलास वस्तुएं ख़रीदते हैं, इसलिए उनकी मज़दूरी में वृद्धि जीवनावश्यक वस्तुओं की क़ीमतों को बढ़ावा नहीं देती, बल्कि विलास वस्तुओं के ग्राहकों का विस्थापन ही करती है। मज़दूरों में विलास वस्तुओं की खपत पहले की अपेक्षा ज्यादा हो जाती है और पूंजीपतियों में अपेक्षाकृत कम। Voilà tout [बस, इतनी सी बात है]। कुछ घट-बढ़ के बाद परिचालित माल राशि का मूल्य पहले जैसा हो जाता है। जहां तक क्षणिक उतार-चढ़ाव का सवाल है, वह अनियोजित द्रव्य पूंजी को उस पूंजी को, जो अभी तक सराफ़े में सट्टेबाजी या विदेशों में नियोजन की तलाश में रहती थी, घरेलू परिचलन में डाल देने के अलावा और कोई असर पैदा नहीं करता।

दूसरे निरूपण का उत्तर: अगर अपनी पण्य वस्तुओं की क़ीमतें इच्छानुसार बढ़ाना पूंजीवादी उत्पादकों के वश में होता, तो वे मजदूरी बढ़ाये बिना ऐसा कर सकते थे और करते भी। मालों की क़ीमतें गिरें, तो मजदूरी कभी नहीं बढ़ सकती। पूंजीपति वर्ग हमेशा और सभी परिस्थितियों में यदि वह सब कर सके, जो अब अपवाद रूप में किन्हीं निश्चित, विशेष, कहना चाहिए स्थानीय परिस्थितियों में ही करता है, अर्थात मजदूरी में बढ़ोतरी होते ही पण्य वस्तुओं की क़ीमतें और भी बढ़ाने और इस तरह जेब में ज्यादा मुनाफ़ा डालने के हर मौक़े का लाभ उठाना, तो वह ट्रेड-यूनियनों का कभी विरोध करे ही नहीं।

यह दावा कि विलास वस्तुओं की मांग घटने से (पूंजीपतियों की घटी हुई मांग के कारण, जिनका इस तरह की चीजों को ख़रीदने का साधन कम हो गया है) पूंजीपति उनकी क़ीमत बढ़ा सकते हैं, मांग और पूर्ति के नियम को लागू करने का बड़ा विचित्र नमूना होगा। चूंकि यह मात्र विलास वस्तुओं के ग्राहकों का विस्थापन, पूंजीपतियों का मजदूरों द्वारा विस्थापन नहीं है,—और जहां तक यह विस्थापन होता भी है, मजदूरों की मांग जीवनावश्यक वस्तुओं की क़ीमत वृद्धि प्रेरित नहीं करती, क्योंकि मजदूर अपनी बढ़ी हुई मजदूरी का जो हिस्सा विलास वस्तुओं पर ख़र्च करते हैं, उसे आवश्यक वस्तुओं पर ख़र्च नहीं कर सकते,—इसलिए घटी हुई मांग के फलस्वरूप विलास वस्तुओं की क़ीमतें गिरती हैं। अतः विलास वस्तुओं के उत्पादन से तब तक पूंजी निकाली जाती है कि सामाजिक उत्पादन की प्रक्रिया में उनकी पूर्ति का परिमाण घटकर उनकी बदली हुई भूमिका के अनुरूप नहीं हो जाता। उनके उत्पादन में इस तरह की कमी से उनकी क़ीमत बढ़कर अपने सामान्य स्तर पर पहुंच जाती है—उनका मूल्य अन्यथा अपरिवर्तित रहता है। जब तक यह संकुचन जारी रहता है अथवा यह समकरण

प्रक्रिया चलती रहती है और जीवनावश्यक वस्तुओं की क़ीमतें बढ़ती रहती हैं, तब तक उनके उत्पादन के लिए उतनी ही पूंजी की पूर्ति की जाती है, जितनी उत्पादन की दूसरी शाखाओं से निकाली जाती है, यहां तक कि मांग की तुष्टि नहीं हो जाती। तब संतुलन बहाल हो जाता है और सारी प्रक्रिया का परिणाम यह होता है कि सामाजिक पूंजी, अतः द्रव्य पूंजी भी जीवनावश्यक वस्तुओं के उत्पादन तथा विलास वस्तुओं के उत्पादन के बीच अब भिन्न अनुपात में विभाजित हो जाती है।

यह सारी आपत्ति पूंजीपतियों और उनके चाटुकार अर्थशास्त्रियों द्वारा खड़ा किया गया एक हौवा है।

जिन तथ्यों के बहाने यह हौवा खड़ा किया जाता है, वे तीन तरह के हैं:

१) द्रव्य परिचलन का यह सामान्य नियम है कि और सब बातें समान हों, तो प्रचल पण्य वस्तुओं की क़ीमतों की राशि में वृद्धि के साथ संचलनगत मुद्रा की मात्रा बढ़ती है, चाहे क़ीमतों की समग्रता में यह वृद्धि पण्य वस्तुओं की उसी मात्रा पर लागू होती हो या अधिक मात्रा पर। तब कार्य को कारण से उलझा दिया जाता है। मजदूरी जीवनावश्यक वस्तुओं की क़ीमतों के बढ़ने के साथ बढ़ती है (यद्यपि यह बढ़ोतरी बिरले ही होती है, और आपवादिक मामलों में ही समानुपातिक होती है)। मजदूरी में बढ़ोतरी पण्य वस्तुओं की क़ीमतें बढ़ने का परिणाम है, उसका कारण नहीं।

२) मज़दूरी में आंशिक या स्थानिक बढ़ोतरी – यानी उत्पादन की कुछ शाखाओं में ही बढ़ोतरी – के मामले में इस के बाद इन शाखाओं के उत्पाद की क़ीमतों में स्थानिक वृद्धि हो सकती है। किंतु यह भी बहुत सी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, यह कि मज़दूरी में असामान्य गिरावट नहीं थी और इसलिए मुनाफ़े की दर असामान्यतः ऊंची नहीं थी; या यह कि क़ीमतें बढ़ने से इन चीज़ों के लिए बाज़ार संकुचित नहीं हो जाता (इसलिए उनकी क़ीमतें बढ़ने से पहले उनकी पूर्ति का संकुचन आवश्यक नहीं होता), इत्यादि।

३) मज़दूरी में आम बढ़ोतरी के मामले में उद्योग की उन शाखाओं में उत्पादित पण्य वस्तुओं की क़ीमत में इज़ाफ़ा होता है, जहां परिवर्ती पूंजी का प्राधान्य होता है, किंतु दूसरी ओर जिन शाखाओं में स्थिर या स्थायी पूंजी का प्राधान्य होता है, वहां क़ीमत गिरती है।

साधारण माल परिचलन के अपने अध्ययन में हमने देखा था (Buch I, Kap. III, 2)* कि यद्यपि पण्य वस्तुओं की किसी निश्चित मात्रा का द्रव्य रूप परिचलन क्षेत्र में केवल अस्थायी होता है, फिर भी माल के रूपांतरण के दौरान किसी एक व्यक्ति के हाथ में अस्थायी रूप से विद्यमान द्रव्य अवश्यमेव दूसरे के हाथ में पहुंच जाता है, जिससे कि प्रथमतः मालों का विनिमय सर्वांगीण ही नहीं होता अथवा वे एक दूसरे को प्रतिस्थापित ही नहीं करते, वरन इस प्रतिस्थापन को द्रव्य का सर्वांगीण अवक्षेपण प्रेरित करता है और उसके साथ-साथ होता है। "जब कोई माल किसी दूसरे माल का स्थान लेता है, तो द्रव्य माल सदा किसी तीसरे व्यक्ति के हाथों में बना रहता है। परिचलन के प्रत्येक रंध्र से द्रव्य पसीने की तरह बाहर निकलता रहता है" (Buch I, S. 92)**। पूंजीवादी माल उत्पादन के आधार पर हूबहू यही तथ्य इस

---

* हिंदी संस्करण: अध्याय ३। – सं०

** हिंदी संस्करण: पृष्ठ १३०। – सं०

बात से प्रकट होता है कि पूंजी का एक भाग हमेशा द्रव्य पूंजी के रूप में विद्यमान रहता है और बेशी मूल्य का जो भाग हमेशा उसके मालिकों के हाथ में पाया जाता है, वह भी वैसे ही द्रव्य रूप में होता है।

इसके अलावा, **द्रव्य का परिपथ** – अर्थात द्रव्य का प्रस्थान बिंदु को **प्रत्यावर्तन** – पूंजी के आवर्त का एक दौर होने के कारण **मुद्रा परिचलन**[33] से पूर्णतः भिन्न, बल्कि उसकी विरोधी परिघटना है, जो बार-बार हस्तांतरण द्वारा प्रस्थान बिंदु से अपने सतत विचलन को प्रकट करती है (Buch I, S. 94)*। फिर भी त्वरित आवर्त में eo ipso [उसी कारण] त्वरित संचलन सन्निहित होता है।

पहले परिवर्ती पूंजी के बारे में: यदि कोई, मान लीजिये, ५०० पाउंड की द्रव्य पूंजी परिवर्ती पूंजी के रूप में साल में १० बार आवर्तित होती है, तो स्पष्ट है कि संचलनगत मुद्रा की मात्रा का यह संखंड अपने मूल्य का १० गुना, अथवा ५,००० पाउंड परिचालित करता है। पूंजीपति और मजदूर के बीच वह साल में १० बार परिचालित होता है। प्रचल द्रव्य राशि के उसी संखंड से साल में १० बार श्रमिक की अदायगी की जाती है और श्रमिक स्वयं भी अदायगी करता है। यदि वही परिवर्ती पूंजी साल में केवल एक बार आवर्तित हो, तो उत्पादन का पैमाना वही रहने पर ५,००० पाउंड पूंजी का केवल एक आवर्त होगा।

फिर: मान लीजिये प्रचल पूंजी का स्थिर भाग १,००० पाउंड है। यदि पूंजी १० बार आवर्तित होती है, तो पूंजीपति अपना माल और इसलिए उसके मूल्य के स्थिर प्रचल भाग को साल में १० बार बेचता है। द्रव्य की प्रचल मात्रा का वही संखंड (१,००० पाउंड के बराबर) अपने स्वामियों के हाथ से साल में १० बार पूंजीपतियों के हाथ में पहुंचता है। यह द्रव्य १० बार हस्तांतरण करता है। दूसरे, पूंजीपति साल में १० बार उत्पादन साधन ख़रीदता है। इससे द्रव्य का फिर एक हाथ से दूसरे हाथ में १० बार परिचलन होता है। १,००० पाउंड की रक़म से औद्योगिक पूंजीपति १०,००० पाउंड का माल बेचता है और फिर १०,००० पाउंड का माल ख़रीदता है। द्रव्य रूप में १,००० पाउंड के २० परिचलनों से २०,००० पाउंड की माल पूर्ति का परिचलन होता है।

अंतिम बात, आवर्त में तेज़ी आने से द्रव्य के जिस अंश से बेशी मूल्य का सिद्धिकरण हो जाता है, उसका परिचलन भी तेज हो जाता है।

---

[33] यद्यपि प्रकृतितंत्रवादी अब भी इन दोनों परिघटनाओं को उलझाते हैं, फिर भी सबसे पहले उन्होंने ही द्रव्य के अपने प्रारंभ बिंदु को पश्चप्रवाह के द्रव्य परिचलन का तात्विक रूप होने पर, परिचलन का वह रूप, जो पुनरुत्पादन को बढ़ावा देता है, होने पर ज़ोर दिया था। "*Tableau Economique* पर निगाह डालते ही आप देख लेंगे कि उत्पादक वर्ग ही वह धन मुहैया करता है, जिससे दूसरे वर्ग उससे उत्पाद ख़रीदते हैं और वे जब दूसरे साल वही ख़रीदारी करने के लिए आते हैं, तो यह धन उसे लौटा देते हैं... इस तरह आप यहां व्यय के बाद पुनरुत्पादन और पुनरुत्पादन के बाद फिर व्यय के अलावा द्रव्य के परिचलन द्वारा निर्मित व्यय और पुनरुत्पादन को मापनेवाले इस वृत्त के अलावा और किसी वृत्त को नहीं देखेंगे" (Quesnay, *Dialogues sur le Commerce et sur les Travaux des Artisans*, Daire édition, Physiocrats, I, pp. 208, 209)। "पूंजियों की इस निरंतर पेशगी और प्रत्यावर्तन को ही द्रव्य परिचलन की संज्ञा देनी चाहिए, यह उपयोगी और फलप्रद परिचलन, जो समाज के सभी श्रमों को जीवन देता है, जो राष्ट्र की क्रियाशीलता और जीवन को क़ायम रखता है और जिसकी प्राणी के शरीर में रुधिर के परिसंचरण से बिल्कुल सही ही तुलना की गई है" (Turgot, *Reflexions etc.*, Oeuvres, Daire édition, I, p. 45)।

* हिंदी संस्करण: पृष्ठ १३१-१३२। – सं०

किंतु इसके विपरीत द्रव्य परिचलन में तेजी आने का मतलब अनिवार्यतः पूंजी का और इसलिए द्रव्य का तीव्रतर आवर्त वेग नहीं होता, अर्थात उसका मतलब अनिवार्यतः पुनरुत्पादन प्रक्रिया का संकुचन और अधिक तीव्र नवीकरण नहीं होता।

जब भी उसी एक द्रव्य राशि से अधिक संख्या में लेन-देन किये जाते हैं, तब द्रव्य का परिचलन और भी तेजी से होता है। ऐसा द्रव्य परिचलन की प्राविधिक सुविधाओं में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप पूंजी पुनरुत्पादन की उन्हीं अवधियों के अंतर्गत भी हो सकता है। फिर, ऐसे लेन-देनों की संख्या में वृद्धि हो सकती है, जिनमें द्रव्य माल के वास्तविक विनिमय को प्रकट किये बिना परिचलन करता है (शेयर बाज़ार में सीमांत लेन-देन, आदि)। दूसरी ओर द्रव्य के कुछ परिचलनों का पूर्णतः विलोपन भी हो सकता है, मसलन, जहां काश्तकार ख़ुद भूस्वामी होता है, वहां काश्तकार और भूस्वामी के बीच कोई द्रव्य परिचलन न होता; जहां औद्योगिक पूंजीपति स्वयं पूंजी का मालिक है, वहां उसके और ऋणदाताओं के बीच कोई द्रव्य परिचलन नहीं होता।

जहां तक किसी देश में द्रव्य अपसंचय के आद्य निर्माण और उसके कुछ लोगों द्वारा अधिकरण का प्रश्न है, उसका यहां विस्तार से विवेचन अनावश्यक है।

उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति का आधार उजरती श्रम, मजदूर की द्रव्य रूप में अदायगी और सामान्यतः जिंस अदायगी का नक़द अदायगी में रूपांतरण है, इसलिए वह सिर्फ़ तब ही अधिक बड़ा आकार ग्रहण कर सकती है और अधिक पूर्णता प्राप्त कर सकती है कि अगर देश में परिचलन के लिए और उसके द्वारा संवर्धित अपसंचय (आरक्षित निधि, आदि) के निर्माण के लिए पर्याप्त मात्रा में द्रव्य उपलभ्य हो। यह ऐतिहासिक आधारिका है, यद्यपि इसका यह अर्थ न लगाना चाहिए कि पहले पर्याप्त अपसंचय का निर्माण होता है और तब जाकर ही पूंजीवादी उत्पादन की शुरूआत होती है। वह उसके लिए आवश्यक परिस्थितियों का विकास होने के साथ-साथ ही विकसित होता जाता है और इनमें एक परिस्थिति है बहुमूल्य धातुओं की पर्याप्त पूर्ति। इसलिए सोलहवीं सदी से मूल्यवान धातुओं की वर्धित पूर्ति पूंजीवादी उत्पादन के विकास के इतिहास का एक बुनियादी तत्व है। किंतु जहां तक पूंजीवादी उत्पादन के आधार पर द्रव्य सामग्री की अतिरिक्त आवश्यक पूर्ति का संबंध है, हम एक ओर बेशी मूल्य को उस उत्पाद में, जिसे उसे द्रव्य में बदलने के लिए आवश्यक द्रव्य के बिना ही परिचलन में डाल दिया जाता है, समाविष्ट और दूसरी ओर बेशी मूल्य को उत्पाद के द्रव्य में पहले रूपांतरण के बिना सोने के रूप में देखते हैं।

द्रव्य में बदली जानेवाली अतिरिक्त पण्य वस्तुओं को आवश्यक द्रव्य राशि इसलिए मिल जाती है कि दूसरी तरफ़ पण्य वस्तुओं के रूप में परिवर्तत के लिए अतिरिक्त सोने (और चांदी) को विनिमय के द्वारा नहीं, वरन स्वयं उत्पादन द्वारा परिचलन में डाल दिया जाता है।

२. संचय और विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन

संचय चूंकि विस्तारित पुनरुत्पादन के रूप में होता है, इसलिए यह स्पष्ट है कि वह द्रव्य परिचलन के बारे में कोई नई समस्या नहीं पेश करता।

पहली बात तो यही है कि जहां तक बढ़ती हुई उत्पादक पूंजी के कार्य के लिए आवश्यक अतिरिक्त द्रव्य पूंजी का सवाल है, उसकी पूर्ति सिद्धिकृत बेशी मूल्य के उस अंश से होती है, जिसे पूंजीपति द्रव्य पूंजी के रूप में, न कि आय के द्रव्य रूप में परिचलन में डालते हैं। द्रव्य पहले से ही पूंजीपतियों के हाथ में होता है। केवल उसका नियोजन भिन्न होता है।

किंतु अब अतिरिक्त उत्पादक पूंजी के फलस्वरूप उसका उत्पाद, अतिरिक्त माल राशि परिचलन में डाल दी जाती है। पण्य वस्तुओं की इस अतिरिक्त मात्रा के साथ-साथ उसके सिद्धिकरण के लिए आवश्यक अतिरिक्त द्रव्य का एक भाग परिचलन में डाल दिया जाता है, क्योंकि इस माल राशि का मूल्य उत्पादन में उपभुक्त उत्पादक पूंजी के मूल्य के बराबर होता है। यह अतिरिक्त द्रव्य राशि यथार्थतः अतिरिक्त द्रव्य पूंजी के रूप में ही पेशगी दी गई है और इसलिए वह पूंजीपति के पास उसकी पूंजी के आवर्त के माध्यम से लौट आती है। यहां वही सवाल फिर पैदा हो जाता है, जैसा ऊपर हुआ था। वह अतिरिक्त द्रव्य कहां से आता है, जिससे अब माल रूप में समाविष्ट अतिरिक्त बेशी मूल्य का सिद्धिकरण किया जाये?

इसका सामान्य उत्तर फिर वही है। परिचालित पण्य वस्तुओं की क़ीमतों का कुल योग इसलिए नहीं बढ़ गया है कि पण्य वस्तुओं की दी हुई राशि की क़ीमतें बढ़ गई हैं, वरन इसलिए कि पण्य वस्तुओं की जो राशि अब परिचलन कर रही है, वह पूर्वपरिचालित राशि से बड़ी है और क़ीमतों में गिरावट से उसका प्रतिकरण नहीं हुआ है। अधिक मूल्य की पण्य वस्तुओं की इस अधिक मात्रा के परिचलन के लिए आवश्यक अतिरिक्त द्रव्य या तो परिचालित द्रव्य की मात्रा के उपयोग में ज्यादा किफ़ायत से – चाहे अदायगी में संतुलन, आदि क़ायम करके या ऐसे उपायों से, जो उन्हीं सिक्कों के परिचलन को त्वरित करते हैं – अथवा द्रव्य के अप-संचय के रूप से परिचलन माध्यम में रूपांतरण द्वारा प्राप्त करना होगा। अंतोक्त का आशय यही नहीं है कि निष्क्रिय द्रव्य पूंजी ख़रीद या अदायगी के साधन की तरह कार्य करने लगती है अथवा पहले ही आरक्षित निधि की तरह कार्यशील द्रव्य पूंजी अपने स्वामी के लिए इस कार्य का निष्पादन करते हुए समाज के लिए सक्रिय परिचलन करती है (जैसा कि बैंकों की जमा रक़मों के साथ होता है, जिन्हें निरंतर उधार दिया जाता है) और इस प्रकार वह दोहरा कार्य करती है। इसका आशय यह भी है कि सिक्कों की गतिरुद्ध आरक्षित निधियों की बचत होती है।

"द्रव्य सिक़्कों के रूप में निरंतर प्रवाहित होता रहे, इसके लिए ज़रूरी है कि सिक़्क़ा द्रव्य रूप में लगातार जमता रहे। सिक़्क़े का निरंतर संचलन सिक्के की आरक्षित निधियों के रूप में जो परिचलन प्रक्रिया में सर्वत्र उत्पन्न हो जाती हैं और उसे आवश्यक भी बनाती हैं, न्यूनाधिक मात्रा में उसकी निरंतर गतिहीनता पर निर्भर करता है; इन आरक्षित निधियों के निर्माण, वितरण, विघटन और पुनर्निर्माण में लगातार क्रमांतरण होता रहता है, उनका अस्तित्व निरंतर विलुप्त होता रहता है और उनका विलोपन निरंतर अस्तित्वमान रहता है। सिक्के के द्रव्य में और द्रव्य के सिक्के में इस अविराम रूपांतरण को ऐडम स्मिथ ने यह कहकर व्यक्त किया था कि पण्य वस्तुओं के हर स्वामी को अपनी बिक्री के विशेष माल के अलावा सार्विक माल की एक निश्चित मात्रा की पूर्ति हमेशा पास रखनी चाहिए, जिससे वह ख़रीदारी करता है। हमने देखा था कि मा – द्र – मा परिचलन में दूसरा अंश द्र – मा ख़रीदारियों की एक श्रृंखला में निरंतर विघटित होता रहता है, जो एकबारगी नहीं होतीं, वरन समय के क्रमिक अंतरालों पर होती हैं, जिससे कि द्र का एक भाग सिक्कों के रूप में

परिचलन करता है, जब कि दूसरा भाग द्रव्य के रूप में अचल रहता है। वस्तुतः उस हालत में द्रव्य केवल निलंबित सिक्का होता है और सिक्कों की चालू राशि के भिन्न-भिन्न भाग लगातार कभी इस रूप में, तो कभी उस रूप में प्रकट होते और निरंतर बारी-बारी से आते रहते हैं। अतः परिचलन माध्यम का द्रव्य में यह पहला रूपांतरण स्वयं द्रव्य परिचलन के एक प्राविधिक पक्ष को ही प्रकट करता है" (कार्ल मार्क्स, *Zur Kritik der Politischen Oekonomie*, १८५६, पृष्ठ १०५, १०६)। (द्रव्य से भिन्न "सिक्के" का प्रयोग यहां उस द्रव्य के लिए किया गया है, जो अपने अन्य कार्यों से भिन्न केवल परिचलन के माध्यम का कार्य करता है।)

जब ये सारे उपाय काफ़ी नहीं होते, तब अतिरिक्त सोना पैदा करना होता है अथवा, जो वही बात है, अतिरिक्त उत्पाद के कुछ भाग का सोने से – जिन देशों में बहुमूल्य धातुओं का खनन किया जाता है, उनके उत्पाद से – प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष विनिमय करना होता है।

परिचलन उपकरण के रूप में अभीष्ट सोने और चांदी के वार्षिक उत्पादन में व्ययित श्रम शक्ति और उत्पादन के सामाजिक साधनों की समस्त राशि पूंजीवादी उत्पादन पद्धति के, सामान्यतः पण्य उत्पादन की एक भारी मद faux frais है। यह सामाजिक उपयोग से यथासंभव अधिकतम अतिरिक्त उत्पादन तथा उपभोग साधनों का, अर्थात वास्तविक धन का तुल्य अपाहरण है। परिचलन के इस ख़र्चीले तंत्र की लागत जिस सीमा तक कम की जाती है, उत्पादन के दिये हुए पैमाने या उसके विस्तार की दी हुई मात्रा के स्थिर रहने पर सामाजिक श्रम की उत्पादक शक्ति eo ipso बढ़ जाती है। अतः जहां तक उधार पद्धति के साथ विकसित होनेवाले साधनों का यह प्रभाव रहता है, वे या तो वास्तविक द्रव्य के किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप के बिना सामाजिक उत्पादन और श्रम प्रक्रिया के काफ़ी अंश का निष्पादन करके या वस्तुतः कार्यरत द्रव्य की मात्रा की कार्य क्षमता बढ़ाकर पूंजीवादी संपदा में प्रत्यक्ष वृद्धि करते हैं।

इससे इस निरर्थक सवाल का भी निपटारा हो जाता है कि उधार पद्धति के बिना (केवल इसी दृष्टि से भी देखने पर) अर्थात केवल धातु के सिक्के के परिचलन से पूंजीवादी उत्पादन अपने मौजूदा परिमाण में संभव होगा या नहीं। स्पष्टतः ऐसा नहीं है। बल्कि उसने बहुमूल्य धातुओं के उत्पादन के परिमाण में ही बाधाओं का सामना किया होता। इसके विपरीत, जहां तक उधार पद्धति द्रव्य पूंजी की पूर्ति करती है या उसे गतिशील करती है, उसकी उत्पादक शक्ति के बारे में किसी को कोई हवाई कल्पनाएं न पालनी चाहिए। इस समस्या का और अधिक विश्लेषण यहां अप्रासंगिक है।

अब हमें उस प्रसंग का अन्वेषण करना है, जिसमें कोई वास्तविक संचय नहीं होता, अर्थात उत्पादन के पैमाने का प्रत्यक्ष विस्तार नहीं होता, किंतु जहां सिद्धिकृत बेशी मूल्य के एक भाग को न्यूनाधिक समय तक आरक्षित द्रव्य निधि के रूप में इसलिए संचित होना होता है कि आगे चलकर उत्पादक पूंजी में रूपांतरित हो जाये।

इस तरह से संचित होनेवाला द्रव्य जहां तक अतिरिक्त द्रव्य है, इस बात की और व्याख्या करना जरूरी नहीं है। यह द्रव्य स्वर्ण उत्पादक देशों से लाये बेशी स्वर्ण का एक भाग ही हो सकता है। इस संदर्भ में इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि जिस घरेलू उत्पाद के बदले इस सोने का आयात किया जाता है, वह अब उक्त देश में नहीं रहता। उसे सोने के बदले विदेश को निर्यात कर दिया गया है।

किंतु यदि हम यह मान लें कि देश में अब भी पहले की ही तरह वही द्रव्य राशि है, तब संचित और संचयमान द्रव्य परिचलन से ही प्राप्त हुआ है। केवल उसका कार्य बदल गया है। वह परिचलनगत द्रव्य से शनैः शनैः रूप लेती अंतर्हित द्रव्य पूंजी में परिवर्तित हो गया है।

इस मामले में जिस द्रव्य का संचय होता है, वह बिकी हुई पण्य वस्तुओं का, और इसके अलावा उनके मूल्य के उस अंश का द्रव्य रूप है, जो उनके स्वामी के लिए बेशी मूल्य है (यहां यह कल्पित है कि उधार पद्धति नहीं है)। जो पूंजीपति यह द्रव्य संचय करता है, उसने pro tanto ख़रीदारी किये बिना बिक्री की है।

यदि हम इस प्रक्रिया को केवल एक पृथक परिघटना मान लें, तो किसी व्याख्या की ज़रूरत नहीं है। पूंजीपतियों का एक भाग उत्पाद की बिक्री से प्राप्त धन के बदले बाज़ार से उत्पाद निकाले बिना उसके एक भाग को अपने पास रख लेता है। दूसरी ओर उनका एक और भाग केवल व्यवसाय चलाने के लिए आवश्यक सतत आवर्ती द्रव्य पूंजी को छोड़कर अपने द्रव्य को पूर्णतः उत्पाद में बदल लेता है। बेशी मूल्य के वाहक के रूप में बाज़ार में डाले गये उत्पाद का एक भाग उत्पादन साधन अथवा परिवर्ती पूंजी के वास्तविक तत्व, आवश्यक निर्वाह साधन होता है। इसलिए वह तुरंत उत्पादन के प्रसार के काम आ सकता है। कारण यह है कि किसी भी तरह यह पूर्वकल्पना नहीं है कि पूंजीपतियों का एक भाग द्रव्य पूंजी संचित करता है, जब कि दूसरा भाग अपने बेशी मूल्य का पूर्णतः उपभोग करता है, बल्कि यही है कि एक भाग अपना संचय द्रव्य रूप में करता है, अंतर्हित द्रव्य पूंजी का निर्माण करता है, जब कि दूसरा भाग सचमुच संचय करता है, यानी उत्पादन का पैमाना बढ़ाता है, अपनी उत्पादक पूंजी का सचमुच प्रसार करता है। अगर बारी-बारी से पूंजीपतियों का एक भाग द्रव्य संचय करे और दूसरा भाग उत्पादन का पैमाना बढ़ाये, और फिर यही क्रम विपरीत चले, तो भी परिचलन की ज़रूरतों के लिए उपलभ्य द्रव्य की मात्रा पर्याप्त होती है। इसके अलावा एक तरफ़ द्रव्य का संचय केवल बक़ाया दावों के संचय से नक़द द्रव्य के बिना भी हो सकता है।

लेकिन कठिनाई तब पैदा होती है, जब हम द्रव्य पूंजी के वैयक्तिक नहीं, पूंजीपति वर्ग की ओर से समष्टिगत संचय की कल्पना करते हैं। हमारी कल्पना के अनुसार पूंजीवादी उत्पादन के अनन्य और व्यापक आधिपत्य में इस वर्ग के अतिरिक्त मज़दूर वर्ग छोड़कर अन्य कोई वर्ग है ही नहीं। मज़दूर वर्ग जो कुछ ख़रीदता है, वह उसकी मज़दूरी के कुल योग के बराबर, समूचे पूंजीपति वर्ग द्वारा पेशगी दी परिवर्ती पूंजी के कुल योग के बराबर होता है। पूंजीपति वर्ग द्वारा अपने उत्पाद मज़दूर वर्ग को बेचे जाने से यह द्रव्य उसके पास लौट आता है। इस प्रकार उसकी परिवर्ती पूंजी अपना द्रव्य रूप पुनः धारण कर लेती है। मान लीजिये, परिवर्ती पूंजी का, यानी वर्ष में नियोजित होनेवाली, न कि पेशगी दी जानेवाली परिवर्ती पूंजी का कुल योग १०० पाउंड का क गुना है। अब विचाराधीन प्रश्न पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि आवर्त वेग के अनुसार वर्ष में इस परिवर्ती पूंजी मूल्य को पेशगी देने के लिए कितना ज़्यादा या कितना कम द्रव्य आवश्यक है। पूंजीपति वर्ग इन १०० पाउंड की क गुना पूंजी से श्रम शक्ति की कोई एक मात्रा ख़रीदता है अथवा मज़दूरों की एक संख्या को मज़दूरी देता है। यह पहला लेन-देन हुआ। मज़दूर उसी रक़म से पूंजीपतियों से मालों की कोई एक मात्रा ख़रीदते हैं, जिससे कि १०० पाउंड की क गुना रक़म पूंजीपतियों के पास लौट आती है। यह दूसरा लेन-देन हुआ। और इसकी बराबर पुनरावृत्ति होती है। इसलिए १०० पाउंड की

इस क गुना रक़म से मजदूर वर्ग कभी भी उत्पाद का वह भाग नहीं ख़रीद पायेगा जो स्थिर पूंजी है, उसका तो जिक्र ही क्या कि जो पूंजीपति वर्ग का बेशी मूल्य है। इन १०० पाउंड के क गुने से मजदूर कभी भी सामाजिक उत्पाद के मूल्य के उस भाग से कुछ ज्यादा नहीं ख़रीद सकते, जो पेशगी परिवर्ती पूंजी के मूल्य को व्यक्त करनेवाले मूल्यांश के बराबर होता है।

उस प्रसंग के सिवा, जिसमें द्रव्य का यह सार्विक संचय विभिन्न अलग-अलग पूंजीपतियों में, किसी भी परिमाण में अतिरिक्त रूप में जोड़ी बहुमूल्य धातुओं के वितरण के अलावा और कुछ व्यक्त नहीं करता, भला समूचा पूंजीपति वर्ग किस तरह द्रव्य संचय कर सकता है?

सभी पूंजीपतियों को बदले में कुछ भी ख़रीदे बिना अपने उत्पाद का एक हिस्सा बेचना होगा। यह तथ्य कोई रहस्य नहीं है कि उन सबके पास एक द्रव्य निधि है, जिसे वे अपने उपभोग के परिचलन माध्यम के रूप में परिचलन में डालते हैं, जिसका एक भाग उनमें से हरेक के पास परिचलन से लौट आता है। किंतु उस हालत में यह द्रव्य निधि बेशी मूल्य के द्रव्य में रूपांतरण के फलस्वरूप बिल्कुल परिचलन निधि के रूप में रहती है और किसी भी तरह अंतर्हित द्रव्य पूंजी के रूप में नहीं होती।

यथार्थ में जैसा होता है, उसे देखते हुए मामले पर विचार करें, तो हम देखते हैं कि भावी उपयोग के लिए जिस अंतर्हित द्रव्य पूंजी का संचय किया जाता है, उसमें निम्नलिखित का समावेश होता है:

१) बैंकों में जमा धन; और बैंकों के अधिकार में जो रक़म वस्तुतः होती है, वह अपेक्षाकृत अत्यल्प ही होती है। यहां द्रव्य पूंजी का संचय नाममात्र को ही होता है। दरअसल जिस चीज का संचय होता है, वह बक़ाया दावे हैं, जिन्हें द्रव्य में परिवर्तित किया जा सकता है (यदि कभी किया जाये, तो); यह केवल इसलिए कि निकाले हुए धन और जमा किये धन में एक संतुलन पैदा हो जाता है। बैंक के पास द्रव्य रूप में जो रक़म होती है, वह अपेक्षाकृत अल्प ही होती है।

२) सरकारी प्रतिभूतियां। ये पूंजी होती ही नहीं, बल्कि राष्ट्र के वार्षिक उत्पाद पर बक़ाया दावे ही होती हैं।

३) स्टॉक [या शेयर]। जो शेयर जाली नहीं होते, वे किसी निगमित वास्तविक पूंजी के सत्वाधिकार पत्र और उससे प्रति वर्ष प्राप्त बेशी मूल्य के धनादेश होते हैं।

इन प्रसंगों में कहीं भी द्रव्य संचय नहीं है। जो कुछ एक ओर द्रव्य पूंजी के संचय की तरह प्रकट होता है, वह दूसरी ओर द्रव्य का निरंतर वास्तविक व्यय बनकर प्रकट होता है। यह महत्वहीन है कि द्रव्य को उसका मालिक ख़र्च करता है या दूसरे लोग, जो उसके क़र्ज़-दार हैं।

पूंजीवादी उत्पादन के आधार पर अपसंचय का निर्माण अपने आप में कभी लक्ष्य नहीं होता, बल्कि या तो परिचलन में गतिरोध का नतीजा होता है—सामान्यतः जैसा होता है, उसके विपरीत द्रव्य की ज्यादा बड़ी राशियां अपसंचय का रूप धारण कर लेती हैं—अथवा आवर्त के कारण आवश्यक हुए संचयों का परिणाम होता है; अथवा अंततः अपसंचय केवल अस्थायी तौर पर अंतर्हित रूप में विद्यमान और उत्पादक पूंजी का कार्य करने के लिए अभीष्ट द्रव्य पूंजी का निर्माण होता है।

इसलिए यदि एक ओर द्रव्य रूप में सिद्धिकृत बेशी मूल्य का एक भाग परिचलन से हटा लिया जाये और अपसंचय के रूप में संचित कर लिया जाये, तो इसके साथ ही बेशी मूल्य का

अन्य भाग निरंतर उत्पादक पूंजी में परिवर्तित होता जायेगा। पूंजीपति वर्ग के सदस्यों में अतिरिक्त बहुमूल्य धातुओं के वितरण के सिवा द्रव्य रूप में संचय कभी भी एकसाथ सभी जगह नहीं होता।

जो बात वार्षिक उत्पाद के उस भाग के बारे में सही है, जो बेशी मूल्य को माल रूप में प्रकट करता है, वह उसके दूसरे भाग के बारे में भी सही है। उसके परिचलन के लिए कोई एक द्रव्य राशि दरकार होती है। यह द्रव्य राशि पूंजीपति वर्ग की उतनी ही होती है, जितनी पण्य वस्तुओं की प्रति वर्ष उत्पादित मात्रा उनकी होती है, जो बेशी मूल्य प्रकट करती है। उसे मूलतः स्वयं पूंजीपति वर्ग परिचलन में डालता है। उसके सदस्यों के बीच स्वयं परिचलन प्रक्रिया द्वारा उसका निरंतर पुनर्वितरण होता है। ठीक जैसे सामान्य रूप में सिक्कों के परिचलन में होता है, वैसे ही यहां भी इस राशि का एक भाग नित बदलते स्थलों पर गतिरुद्ध होता रहता है, जब कि दूसरा भाग निरंतर परिचलन करता रहता है। इसके एक भाग का संचय साभिप्राय, द्रव्य पूंजी का निर्माण करने के लिए है या नहीं, इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

यहां परिचलन की उन आपबीतियों की तरफ़ ध्यान नहीं दिया गया है, जिनमें एक पूंजीपति दूसरे के बेशी मूल्य के एक भाग, या उसकी पूंजी के एक भाग को हथिया लेता है, और इस प्रकार द्रव्य पूंजी का तथा उत्पादक पूंजी का भी एकांगी संचय तथा केंद्रीकरण होता है। उदाहरण के लिए, हथियाये हुए बेशी मूल्य का जो भाग पूंजीपति क ने द्रव्य पूंजी के रूप में संचित किया है, वह पूंजीपति ख के बेशी मूल्य का एक भाग हो सकता है, जो उसके पास वापस नहीं आयेगा।

भाग ३

कुल सामाजिक पूंजी का पुनरुत्पादन तथा परिचलन

अध्याय १८[34]

भूमिका

१. अन्वेषण का विषय

पूंजी की प्रत्यक्ष उत्पादन प्रक्रिया उसकी श्रम तथा स्वप्रसार प्रक्रिया है, वह प्रक्रिया है, जिसका परिणाम माल उत्पाद है और जिसका प्रेरक हेतु बेशी मूल्य का उत्पादन है।

पूंजी की पुनरुत्पादन प्रक्रिया में यह प्रत्यक्ष उत्पादन प्रक्रिया तथा वास्तविक परिचलन प्रक्रिया के दोनों दौर समाहित होते हैं, अर्थात वह समूचा परिपथ, जो एक आवर्ती प्रक्रिया के रूप में – ऐसी प्रक्रिया के रूप में, जो निश्चित अवधियों में निरंतर अपनी आवृत्ति करती है – पूंजी आवर्त का निर्माण करता है।

इस परिपथ का अध्ययन हम चाहे द्र ... द्र' रूप में करें, चाहे उ ... उ रूप में, स्वयं प्रत्यक्ष उत्पादन प्रक्रिया उ हमेशा इस परिपथ की सिर्फ़ एक कड़ी होती है। एक रूप में वह परिचलन प्रक्रिया की संवर्धक बनकर आती है, दूसरे में परिचलन प्रक्रिया उसकी संवर्धक बनकर प्रकट होती है। दोनों ही स्थितियों में उसका निरंतर नवीकरण, उत्पादक पूंजी रूप में पूंजी का लगातार पुनरागमन परिचलन प्रक्रिया में उसके रूपांतरणों द्वारा निर्धारित होता है। दूसरी ओर निरंतर नवीकृत उत्पादन प्रक्रिया उन रूपांतरणों की, जिनसे पूंजी परिचलन क्षेत्र में बारंबार गुजरती है, उसके बारी-बारी से द्रव्य पूंजी और माल पूंजी के रूप में प्रकट होने की शर्त है।

किंतु प्रत्येक वैयक्तिक पूंजी कुल सामाजिक पूंजी का केवल व्यक्तिकृत अंश मात्र होती है, ऐसा अंश, जो मानो वैयक्तिक जीवन से युक्त हो, जैसे प्रत्येक पूंजीपति वैयक्तिक रूप में पूंजीपति वर्ग का केवल एक पृथक तत्व होता है। सामाजिक पूंजी के संचलन में उसके व्यक्तिकृत भिन्नांशों के संचलनों की समग्रता, वैयक्तिक पूंजियों के आवर्त समाहित होते हैं। जैसे वैयक्तिक माल का रूपांतरण पण्य जगत के रूपांतरणों की – पण्य परिचलन की – शृंखला की एक कड़ी है, वैसे ही वैयक्तिक पूंजी का रूपांतरण, उसका आवर्त सामाजिक पूंजी के परिपथ की एक कड़ी है।

---

[34] पाण्डुलिपि २ से। – फ़े० एं०

इस सारी प्रक्रिया में उत्पादक उपभोग (उत्पादन की प्रत्यक्ष प्रक्रिया) उन रूप परिवर्तनों (भौतिक दृष्टि से विनिमय) सहित, जिनके कारण वह होता है और उन रूप परिवर्तनों अथवा विनिमयों सहित वैयक्तिक उपभोग भी समाविष्ट होते हैं, जो उसे जन्म देते हैं। इस प्रक्रिया में एक ओर श्रम शक्ति में परिवर्ती पूंजी का परिवर्तन और इसलिए पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया में श्रम शक्ति का समावेश शामिल होता है। यहां मजदूर अपनी पण्य वस्तु, श्रम शक्ति के विक्रेता का काम करता है और पूंजीपति उसके क्रेता का। किंतु दूसरी ओर पण्य वस्तुओं के विक्रय में मजदूर वर्ग द्वारा उनका क्रय और इसलिए उनका वैयक्तिक उपभोग भी शामिल होता है। यहां मजदूर वर्ग पण्य वस्तुओं के क्रेता के रूप में और पूंजीपति मजदूरों को उनके विक्रेता के रूप में आते हैं।

माल पूंजी के परिचलन में बेशी मूल्य का परिचलन और इसलिए वह क्रय-विक्रय भी शामिल होता है, जिसके द्वारा पूंजीपति अपने वैयक्तिक उपभोग, बेशी मूल्य के उपभोग का सिद्धिकरण करते हैं।

अत: सामाजिक पूंजी के रूप में कुल वैयक्तिक पूंजियों के परिपथ पर और इसलिए उसकी समग्रता में विचार किया जाये, तो उसमें पूंजी का परिचलन ही नहीं, वरन सामान्य माल परिचलन भी समाहित होता है। अंतोक्त परिचलन में मूलत: केवल दो घटक हो सकते हैं: १)वास्तविक पूंजी का परिपथ और २) उन पण्य वस्तुओं का, जो वैयक्तिक उपभोग में दाख़िल होती हैं, फलत: उन वस्तुओं का परिपथ, जिन पर मजदूर अपनी मजदूरी, और पूंजीपति अपना बेशी मूल्य (अथवा उसका एक अंश) ख़र्च करता है। किसी भी सूरत में पूंजी के परिपथ में बेशी मूल्य का परिचलन भी समाविष्ट होता है, क्योंकि यह मूल्य पूंजी का एक भाग होता है और इसी प्रकार परिवर्ती पूंजी का श्रम शक्ति में परिवर्तन, मजदूरी की अदायगी भी शामिल होती है। किंतु इस बेशी मूल्य और पण्य वस्तुओं पर मजदूरी का व्यय पूंजी परिचलन की कोई कड़ी नहीं होता, यद्यपि इस परिचलन के लिए कम से कम मजदूरी का ख़र्च किया जाना आवश्यक है।

खंड १ में पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया का विश्लेषण एक वैयक्तिक क्रिया और साथ ही एक पुनरुत्पादन प्रक्रिया – बेशी मूल्य का उत्पादन और स्वयं पूंजी का उत्पादन – के रूप में किया गया था। परिचलन के क्षेत्र में पूंजी के रूप और सत्त्व में आनेवाले परिवर्तनों को विस्तृत निरूपण के बिना मान लिया गया था। यह पहले से मान लिया गया था कि एक ओर पूंजीपति अपना उत्पाद उसके मूल्य पर बेचता है, और दूसरी ओर वह परिचलन क्षेत्र में उस प्रक्रिया को फिर से शुरू करने या चालू रखने के लिए उत्पादन के वास्तविक साधन पाता है। परिचलन क्षेत्र में जिस एकमात्र क्रिया का हमने विस्तृत निरूपण किया था, वह थी पूंजीवादी उत्पादन की बुनियादी शर्त के रूप में श्रम शक्ति का क्रय-विक्रय।

इस खंड २ के पहले भाग में उन विभिन्न रूपों पर, जिन्हें पूंजी अपनी वृत्तीय गति में धारण करती है और स्वयं इस गति के विभिन्न रूपों पर विचार किया गया था। खंड १ में जिस कार्य काल पर विचार किया गया था, उसमें अब परिचलन काल भी जोड़ा जाना चाहिए।

दूसरे भाग में परिपथ का आवर्ती होने के नाते, अर्थात आवर्त के रूप में विवेचन किया गया था। यह दिखाया गया था कि एक ओर पूंजी के विभिन्न घटक (स्थायी और प्रचल) किस तरह विभिन्न अवधियों में और विभिन्न तरीक़ों से रूपों के परिपथ पूरे करते हैं; दूसरी ओर उन परिस्थितियों की छानबीन की गई थी, जो कार्य अवधि और परिचलन अवधि की

विभिन्न दीर्घताओं को निर्धारित करती हैं। परिपथ की अवधि और उसके घटकों के विभिन्न अनुपात स्वयं उत्पादन प्रक्रिया के आयामों पर और बेशी मूल्य की वार्षिक दर पर जो प्रभाव डालते हैं, वह बताया गया था। दरअसल, जहां पहले भाग में पूंजी द्वारा अपने परिपथ में निरंतर धारण किये और तजे जानेवाले क्रमिक रूपों का अध्ययन किया गया था, वहां दूसरे भाग में यह दिखाया गया था कि एक दिये हुए परिमाण की पूंजी किस तरह एक ही समय पर, यद्यपि विभिन्न अनुपातों में, रूपों के इस प्रवाह और क्रमानुसरण में विभिन्न रूपों में – उत्पादक पूंजी, द्रव्य पूंजी या माल पूंजी में – विभाजित होती है, जिससे कि उनमें परस्पर क्रमांतरण ही नहीं होता, वरन कुल पूंजी मूल्य के विभिन्न अंश भी निरंतर एक दूसरे के साथ विद्यमान रहते हैं और इन विभिन्न अवस्थाओं में कार्य करते हैं। ख़ास तौर से द्रव्य पूंजी ऐसे विशेष लक्षणों के साथ सामने आई, जो खंड १ में नहीं प्रकट किये गये थे। कुछ ऐसे नियमों का पता चलाया गया, जिनके अनुसार दी हुई पूंजी के विभिन्न बड़े घटकों को – आवर्त की परिस्थितियों के अनुरूप – द्रव्य पूंजी के रूप में निरंतर पेशगी देना और नवीकृत करना होता है, जिससे कि दिये हुए परिमाण की उत्पादक पूंजी को निरंतर कार्यशील रखा जा सके।

किंतु पहले और दूसरे दोनों ही भागों में प्रश्न सदा किसी वैयक्तिक पूंजी का, सामाजिक पूंजी के किसी व्यक्तिकृत भाग की गति का ही रहता था।

किंतु वैयक्तिक पूंजियों के परिपथ अंतर्ग्रंथित होते, एक दूसरे को पूर्वापेक्षित करते और आवश्यक बनाते हैं और इस अंतर्ग्रंथन से ही कुल सामाजिक पूंजी की गति बनाते हैं। जैसे साधारण माल परिचलन में माल का समग्र रूपांतरण पण्य जगत के रूपांतरणों की शृंखला की कड़ी बनकर प्रकट हुआ था, वैसे ही अब वैयक्तिक पूंजी का रूपांतरण सामाजिक पूंजी के रूपांतरणों की शृंखला की कड़ी बनकर प्रकट होता है। किंतु जहां साधारण माल परिचलन में पूंजी परिचलन समाहित होना किसी भी प्रकार अनिवार्य नहीं है, क्योंकि वह ग़ैरपूंजीवादी उत्पादन के आधार पर भी हो सकता है, वहां कुल सामाजिक पूंजी के परिपथ में, जैसा कि बताया जा चुका है, वैयक्तिक पूंजी के परिपथ के बाहर का माल परिचलन भी, अर्थात उन पण्य वस्तुओं का परिचलन भी समाहित होता है, जो पूंजी नहीं हैं।

अब हमें वैयक्तिक पूंजियों की परिचलन प्रक्रिया का (जो अपनी समग्रता में पुनरुत्पादन प्रक्रिया का एक रूप है) कुल सामाजिक पूंजी के घटकों के रूप में, अर्थात कुल सामाजिक पूंजी की परिचलन प्रक्रिया का अध्ययन करना है।

२. द्रव्य पूंजी की भूमिका

[यद्यपि निम्नलिखित का संबंध इस भाग के एक अगले परिच्छेद से है, फिर भी हम उसका, यानी कुल सामाजिक पूंजी के घटक रूप में द्रव्य पूंजी का विश्लेषण अभी ही करेंगे।]

वैयक्तिक पूंजी के आवर्त के अध्ययन में द्रव्य पूंजी के दो पक्ष प्रकट हुए थे।

पहली बात, यह वह रूप है, जिसमें प्रत्येक वैयक्तिक पूंजी मंच पर प्रकट होती है और पूंजी के रूप में अपनी प्रक्रिया शुरू करती है। इसलिए वह primus motor [आदि प्रेरक] बनकर प्रकट होती है और सारी प्रक्रिया को उत्प्रेरित करती है।

दूसरी बात, पेशगी पूंजी मूल्य के जिस भाग को निरंतर द्रव्य रूप में पेशगी देना और नवीकृत करना होता है, वह आवर्त अवधि की विशेष दीर्घता और उसके दोनों संघटक अंशों – कार्य अवधि और परिचलन अवधि – के विशेष अनुपात के अनुसार उस उत्पादक पूंजी से,

जिसे वह गतिशील करता है, अपने अनुपात में, अर्थात उत्पादन के निरंतर पैमाने से अपने अनुपात में भिन्न होता है। किंतु यह अनुपात जो भी हो, प्रक्रिया के अंतर्गत पूंजी मूल्य का जो भाग उत्पादक पूंजी के रूप में लगातार कार्य कर सकता है, वह हर हालत में पेशगी पूंजी मूल्य के उस भाग द्वारा सीमित हो जाता है, जिसे उत्पादक पूंजी के साथ-साथ सदैव द्रव्य रूप में रहना होता है। यहां प्रश्न केवल सामान्य आवर्त का, निरपेक्ष औसत का है। परिचलन में आनेवाले व्यवधानों के क्षतिपूरण के लिए आवश्यक अतिरिक्त द्रव्य पूंजी विवेचन के बाहर है।

पहली बात के बारे में : माल उत्पादन माल परिचलन की पूर्वकल्पना करता है और माल परिचलन माल की द्रव्य रूप में अभिव्यंजना, द्रव्य परिचलन की पूर्वकल्पना करता है ; माल का माल और द्रव्य में विघटन उत्पाद की माल रूप में अभिव्यंजना का नियम है। इसी तरह पूंजीवादी माल उत्पादन – चाहे उसे सामाजिक रूप में देखें, चाहे वैयक्तिक रूप में – हर प्रारंभी व्यवसाय के primus motor और उसके सतत प्रेरक की तरह भी द्रव्य के रूप में पूंजी अथवा द्रव्य पूंजी की पूर्वकल्पना करता है। प्रचल पूंजी विशेषकर यह दिखाती है कि द्रव्य पूंजी अल्पकालिक अंतरालों के बाद सतत आवृत्ति के साथ प्रेरक की तरह काम करती है। समस्त पेशगी पूंजी मूल्य , अर्थात पूंजी के सभी तत्व, जिनमें पण्य वस्तुएं, श्रम शक्ति, श्रम उपकरण और उत्पादन सामग्री समाहित होते हैं, द्रव्य से बार-बार ख़रीदने होते हैं। जो बात यहां वैयक्तिक पूंजी के लिए सही है, वह सामाजिक पूंजी के लिए भी सही है, जो केवल अनेक वैयक्तिक पूंजियों के रूप में ही कार्य करती है। किंतु जैसा हम खंड १ में दिखा चुके हैं, इससे यह नतीजा कभी नहीं निकलता कि पूंजी का कार्य क्षेत्र, उत्पादन का पैमाना – पूंजीवादी आधार पर भी – अपनी **निरपेक्ष** सीमाओं के लिए कार्यरत द्रव्य पूंजी की राशि पर निर्भर करता है।

पूंजी में उत्पादन के वे तत्व समाविष्ट होते हैं, जिनका प्रसार किन्हीं सीमाओं के भीतर पेशगी द्रव्य पूंजी के परिमाण से स्वतंत्र होता है। श्रम शक्ति के लिए अदा की जानेवाली रक़म चाहे उतनी ही रहे, तो भी उसका न्यूनाधिक विस्तृत अथवा गहन समुपयोजन किया जा सकता है। यदि इस बढ़े हुए समुपयोजन से द्रव्य पूंजी बढ़ती है (यानी यदि मज़दूरी बढ़ा दी जाये), तो वह यथानुपात नहीं बढ़ती, अतः pro tanto बिल्कुल नहीं बढ़ती।

उत्पादक रूप में समुपयुक्त प्रकृतिदत्त सामग्रियों – धरती, समुद्र, खनिज, वन, इत्यादि – का, जो पूंजी मूल्य के तत्व नहीं हैं, द्रव्य पूंजी की पेशगी में बढ़ती किये बिना श्रम शक्ति की उसी मात्रा के और अधिक प्रयास से अधिक विस्तृत या गहन समुपयोजन किया जाता है। इस प्रकार उत्पादक पूंजी के वास्तविक तत्व अतिरिक्त द्रव्य पूंजी की मांग किये बिना बढ़ जाते हैं। किंतु जहां तक ऐसी अनुपूर्ति अतिरिक्त सहायक सामग्री के लिए आवश्यक होती है, जिस द्रव्य पूंजी में यह पूंजी मूल्य पेशगी दिया जाता है, वह उत्पादक पूंजी की परिवर्धित प्रभाविता के यथानुपात नहीं बढ़ती, अतः pro tanto क़तई नहीं बढ़ती।

उन्हीं श्रम उपकरणों और इस प्रकार उसी स्थायी पूंजी को नित्य प्रयोग किये जाने के समय को और बढ़ाकर और उनके नियोजन की गहनता को बढ़ाकर स्थायी पूंजी के लिए अतिरिक्त द्रव्य ख़र्च किये बिना ज्यादा कारगर ढंग से इस्तेमाल किया जा सकता है। उस हालत में स्थायी पूंजी का केवल आवर्त ही अधिक तीव्र हो जाता है, किंतु साथ ही उसके पुनरुत्पादन तत्वों की पूर्ति और शीघ्रता से होती है।

प्राकृतिक पदार्थों के अलावा उत्पादक प्रक्रिया में ऐसी प्राकृतिक शक्तियों का, जिनके लिए कुछ ख़र्च नहीं करना होता, न्यूनाधिक प्रभाविता के साथ काम करनेवाले कारकों की तरह

समावेश करना संभव है। उनकी प्रभाविता की मात्रा ऐसे तरीक़ों और वैज्ञानिक विकास पर निर्भर करती है, जिनके लिए पूंजीपति को कुछ भी ख़र्च नहीं करना पड़ता।

यही बात उत्पादन प्रक्रिया में श्रम शक्ति के सामाजिक संयोग और अलग-अलग श्रमिकों के अर्जित कौशल पर भी लागू होती है। कैरी हिसाब लगाते हैं कि भूस्वामी को कभी यथेष्ट प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि ज़मीन में अनादि काल से उसकी वर्तमान उत्पादकता संभव बनाने के लिए जितनी पूंजी या श्रम लगाया गया है, उसका उसे मुआवज़ा नहीं मिलता। (बेशक ज़मीन से जो उत्पादकता छीनी जाती है, उसका ज़िक्र नहीं किया जाता।) उस हिसाब से हर अलग-अलग मज़दूर को उस काम के अनुसार पैसा देना होगा, जो एक बर्बर को आधुनिक मिस्तरी के रूप में विकसित करने के लिए सारी मानवजाति को करना पड़ा है। विपरीत यह समझना चाहिए कि ज़मीन में लगाये और भूस्वामी या पूंजीपति द्वारा धन में बदले गये निर्वेतन श्रम को जोड़ा जाये, तो इस ज़मीन में कुल जितनी भी पूंजी लगाई गई है, वह सूद दर सूद न जाने कितनी गुना अदा कर दी गई है, जिससे समाज भूसंपत्ति को कभी का और न जाने कितनी बार छुड़ा चुका है।

सही है कि जहां तक श्रम की उत्पादक शक्ति की वृद्धि का मतलब अतिरिक्त पूंजी मूल्य लगाना नहीं होता, वह एक तो केवल उत्पाद की मात्रा, उसके मूल्य का परिवर्धन नहीं करती है, सिवा इसके कि वह उस सीमा तक उतने ही श्रम से अधिक स्थिर पूंजी का पुनरुत्पादन करना और इस प्रकार उसके मूल्य का परिरक्षण करना संभव कर देती है। किंतु इसके साथ ही वह पूंजी के लिए नई सामग्री और इस प्रकार पूंजी के परिवर्धित संचय का आधार निर्मित करती है।

जहां तक स्वयं सामाजिक श्रम के संगठन, और इस प्रकार श्रम की सामाजिक उत्पादक शक्ति में वृद्धि के लिए बड़े पैमाने का उत्पादन और इसलिए अलग-अलग पूंजीपतियों द्वारा द्रव्य पूंजी की बड़ी-बड़ी राशियों का पेशगी दिया जाना ज़रूरी होता है, हम खंड १* में दिखा चुके हैं कि यह कार्यरत पूंजी मूल्यों के परिमाण में और फलतः जिस द्रव्य पूंजी के रूप में वे पेशगी दिये जाते है, उसके परिमाण में भी निरपेक्ष वृद्धि को आवश्यक बनाये बिना कुछ लोगों के हाथ में पूंजियों के केंद्रीकरण द्वारा अंशतः किया जा सकता है। कुछ लोगों के हाथ में केंद्रीकरण द्वारा अलग-अलग पूंजियों का परिमाण उनके कुल सामाजिक योग में बढ़ोतरी के बिना बढ़ सकता है। यह वैयक्तिक पूंजियों का बदला हुआ वितरण मात्र है।

अंतिम बात यह कि हम पिछले भाग में दिखा चुके हैं कि आवर्त अवधि के घटने से या तो पहले की अपेक्षा कम द्रव्य पूंजी से उतनी ही उत्पादक पूंजी को अथवा उतनी ही द्रव्य पूंजी से अधिक उत्पादक पूंजी को गतिशील किया जा सकता है।

किंतु प्रत्यक्षतः इस सब का स्वयं द्रव्य पूंजी के प्रश्न से कोई संबंध नहीं है। इससे केवल यह पता चलता है कि पेशगी पूंजी – मुक्त रूप में, मूल्य रूप में एक निश्चित रक़म की मूल्य राशि – में, उसके उत्पादक पूंजी में रूपांतरण के बाद ऐसी उत्पादक शक्तियां शामिल हो जाती हैं, जिनकी सीमाएं उसके मूल्य की सीमाओं द्वारा निर्धारित नहीं होतीं, वरन जो इसके विपरीत कुछ सीमाओं के अंदर विस्तार अथवा गहनता की भिन्न-भिन्न मात्राओं में काम कर सकती हैं। यदि उत्पादन तत्वों – श्रम शक्ति और उत्पादन साधनों – की क़ीमतें दी हुई हों, तो पण्य

---

*हिंदी संस्करण: खंड १, पृष्ठ ७००-७०४, ८१०-८१२। – सं०

वस्तुओं के रूप में विद्यमान इन उत्पादन तत्वों की निश्चित मात्रा ख़रीदने के लिए आवश्यक द्रव्य पूंजी का परिमाण निर्धारित हो जाता है। अथवा पेशगी दी जानेवाली पूंजी के मूल्य का परिमाण निर्धारित हो जाता है। किंतु जिस सीमा तक यह पूंजी मूल्यों तथा उत्पादों के स्रष्टा का काम करती है, वह लचीली और परिवर्तनशील होती है।

दूसरी बात के बारे में: यह स्वतः स्पष्ट है कि सामाजिक श्रम और उत्पादन साधनों का जो भाग घिसे हुए सिक्कों के प्रतिस्थापन के लिए द्रव्य की ख़रीदारी या पैदावार पर सालाना ख़र्च किया जाता है, वह pro tanto सामाजिक उत्पादन के परिमाण से कटौती करता है। किंतु जहां तक उस द्रव्य मूल्य का संबंध है, जो अंशतः परिचलन माध्यम का और अंशतः अपसंचय का काम करता है, वह तो अर्जित किये, उत्पादन के उत्पादित साधन और संपदा के नैसर्गिक स्रोत के रूप में श्रम शक्ति के साथ-साथ मौजूद होता ही है। उसे इन पर लगाई सीमा नहीं माना जा सकता। उसके उत्पादन के तत्वों में रूपांतरण, उसके अन्य राष्ट्रों से विनिमय द्वारा उत्पादन के पैमाने का विस्तार किया जा सकता है। किंतु यह इसकी पूर्वकल्पना करता है कि द्रव्य सदा ही की भांति अपनी विश्व द्रव्य की भूमिका निबाह रहा है।

उत्पादक पूंजी को गतिशील करने के लिए आवर्त अवधि की दीर्घता के अनुसार न्यूनाधिक द्रव्य पूंजी दरकार होती है। हम यह भी देख चुके हैं कि आवर्त अवधि के कार्य काल और परिचलन काल में विभाजन के लिए द्रव्य रूप में अंतर्हित अथवा निलंबित पूंजी में वृद्धि की आवश्यकता होती है।

चूंकि आवर्त अवधि कार्य अवधि की दीर्घता द्वारा निर्धारित होती है, इसलिए अन्य परिस्थितियां यथावत रहें, तो वह उत्पादन प्रक्रिया की भौतिक प्रकृति द्वारा निर्धारित होती है, अतः वह इस उत्पादन प्रक्रिया के विशिष्ट सामाजिक स्वरूप द्वारा निर्धारित नहीं होती। फिर भी पूंजीवादी उत्पादन के आधार पर अपेक्षाकृत दीर्घ अवधि के अधिक विस्तृत क्रियाकलाप कुछ लंबी ही अवधि के लिए द्रव्य पूंजी की बड़ी-बड़ी पेशगियों को आवश्यक बना देते हैं। अतः ऐसे क्षेत्रों में उत्पादन उस द्रव्य पूंजी के परिमाण पर निर्भर करता है, जो वैयक्तिक पूंजीपति को उपलब्ध होती है। यह अड़चन उधार पद्धति और उससे संबद्ध संस्थाओं, यथा संयुक्त पूंजी कंपनियों द्वारा दूर कर दी गयी है। इसलिए मुद्रा बाज़ार में गड़बड़ से इन प्रतिष्ठानों का धंधा ठप हो जाता है, जबकि अपनी बारी में यही प्रतिष्ठान मुद्रा बाज़ार में गड़बड़ पैदा करते हैं।

समाजीकृत उत्पादन के आधार पर उस पैमाने का पता लगाया जाना होगा, जिस पर उन कारबारों को कि जो अंतरिम अवधि में उपयोगी परिणाम के रूप में किसी भी उत्पाद की पूर्ति किये बिना लंबे समय तक श्रम शक्ति और उत्पादन साधनों का आहरण करते हैं, उत्पादन की उन शाखाओं को हानि पहुंचाये बिना चलाया जा सकता है, जो न केवल श्रम शक्ति और उत्पादन साधनों का निरंतर अथवा वर्ष में अनेक बार आहरण ही करती हैं, बल्कि निर्वाह तथा उत्पादन साधनों की पूर्ति भी करती हैं। समाजीकृत तथा पूंजीवादी उत्पादन, दोनों में ही जो मज़दूर व्यवसाय की छोटी कार्य अवधियोंवाली शाखाओं में काम करते हैं, वे पहले की ही भांति बदले में कोई उत्पाद दिये बिना केवल कुछ समय तक उत्पाद का आहरण करते हैं, जब कि व्यवसाय की लंबी कार्य अवधियोंवाली शाखाएं बदले में कुछ भी देने से पहले निरंतर लंबे समय तक उत्पाद आहारित करती हैं। इस प्रकार यह परिस्थिति श्रम प्रक्रिया विशेष के भौतिक स्वरूप से उत्पन्न होती है, उसके सामाजिक रूप से नहीं। समाजीकृत उत्पादन के मामले में द्रव्य पूंजी विलुप्त हो जाती है। उत्पादन की विभिन्न शाखाओं को श्रम शक्ति

और उत्पादन साधनों का वितरण समाज करता है। उत्पादक बेशक वाउचर पा सकते हैं, जिनसे उन्हें उपयोज्य वस्तुओं की सामाजिक पूर्ति से अपने श्रम काल के अनुरूप कोई एक मात्रा आहारित करने का अधिकार मिल सकता है। ये वाउचर द्रव्य नहीं हैं। उनका परिचलन नहीं होता।

द्रव्य पूंजी की आवश्यकता चूंकि कार्य अवधि की दीर्घता से पैदा होती है, इसलिए हम देखते हैं कि यह दो बातों से प्रतिबंधित होती है: **पहली बात** यह कि सामान्यतः द्रव्य वह रूप है, जिसमें प्रत्येक वैयक्तिक पूंजी (उधार को छोड़कर) को अपने को उत्पादक पूंजी में बदलने के लिए प्रकट होना होता है; यह पूंजीवादी उत्पादन की और सामान्यतः माल उत्पादन की प्रकृति से उत्पन्न परिणाम है। **दूसरी बात** यह कि आवश्यक द्रव्य पेशगी का परिमाण इस परिस्थिति से बनता है कि समाज से श्रम शक्ति और उत्पादन साधनों का अपेक्षाकृत दीर्घ काल तक उस दौरान उसे द्रव्य में परिवर्तनीय उत्पाद के प्रत्यर्पण के बिना लगातार आहरण किया जाता है। पहली शर्त कि पेशगी दी जानेवाली पूंजी द्रव्य रूप में पेशगी दी जाये, स्वयं इस द्रव्य के रूप से विलुप्त नहीं हो जाती, चाहे यह द्रव्य धातु मुद्रा, उधार द्रव्य, प्रतीक मुद्रा, आदि कुछ भी क्यों न हो। दूसरी शर्त पर इसका किसी भी तरह कोई असर नहीं पड़ता कि परिचलन से किसी समतुल्य के प्रत्यावर्तन के बिना कौन से द्रव्य माध्यम द्वारा अथवा उत्पादन के कौन से रूप में श्रम, निर्वाह साधन और उत्पादन साधन आहारित किये जाते हैं।

अध्याय १६[35]

विषय के पूर्व प्रस्तुतीकरण

१. प्रकृतितंत्रवादी

केने की *Tableau Economique* कुछ स्थूल रूपरेखाओं में यह दिखाती है कि राष्ट्रीय उत्पादन का एक निश्चित मूल्य का वार्षिक परिणाम परिचलन द्वारा कैसे इस तरह वितरित होता है कि और सब परिस्थितियां यथावत हों, तो साधारण पुनरुत्पादन, अर्थात उसी पैमाने पर पुनरुत्पादन हो सकता है। उत्पादन अवधि का प्रारंभ बिंदु सही तौर पर पिछले साल की फ़सल होता है। परिचलन की असंख्य अलग-अलग क्रियाएं अपने विशिष्ट वृहत सामाजिक संचलन – समाज के कार्यतः निर्धारित बड़े आर्थिक वर्गों के बीच परिचलन – में मिलकर एक हो जाती हैं। यहां हमारी निम्नलिखित बातों में दिलचस्पी है: कुल उत्पाद का एक भाग – उसके अन्य सभी भागों के समान उपयोग पदार्थ होने के नाते पिछले साल के श्रम का नया परिणाम होता है – साथ ही उसी दैहिक रूप में प्रकट होनेवाले पुराने पूंजी मूल्य का निधान मात्र होता है। वह परिचलन नहीं करता, वरन अपने उत्पादकों के, कृषक वर्ग के हाथ में रहता है, जिससे कि वहां पूंजी के रूप में फिर अपना काम शुरू कर सके। वर्ष के उत्पाद के इस भाग – स्थिर पूंजी – में, केने असंगत तत्व भी शामिल करते हैं, लेकिन अपने ज्ञान की सीमाओं की बदौलत वह मुख्य बात को पकड़ लेते हैं, जिसकी परिधि में कृषि ही मानव श्रम के निवेश का बेशी मूल्य पैदा करनेवाला एकमात्र क्षेत्र है, अतः पूंजीवादी दृष्टिकोण से एकमात्र वास्तविक उत्पादक क्षेत्र है। पुनरुत्पादन की आर्थिक प्रक्रिया का विशिष्ट सामाजिक स्वरूप चाहे जैसा हो, वह इस क्षेत्र (कृषि) में हमेशा पुनरुत्पादन की नैसर्गिक प्रक्रिया से गुंथ जाती है। अंतोक्त प्रक्रिया की प्रत्यक्ष परिस्थितियां प्रथमोक्त की परिस्थितियों पर प्रकाश डालती हैं और परिचलन की मरीचिका से उत्पन्न विचारों की उलझन को दूर करती हैं।

किसी व्यवस्था का लेबल दूसरी चीजों के लेबलों से अन्य बातों के अलावा इस बात में भिन्न होता है कि वह ग्राहक ही नहीं, कभी-कभी विक्रेता को भी ठगता है। स्वयं केने तथा उनके आसन्न अनुयायी अपनी दूकान के सामंती नामपट्ट में विश्वास करते थे। यही बात आज और इस घड़ी भी हमारे वैयाकरणों के साथ भी है। किंतु वस्तुतः प्रकृतितंत्रवादियों की व्यवस्था पूंजीवादी उत्पादन की पहली व्यवस्थित अवधारणा है। औद्योगिक पूंजी का प्रतिनिधि – आभोगी वर्ग – सारी आर्थिक गति का निदेशन करता है। कृषि पूंजीवादी ढंग से की जाती है, अर्थात वह पूंजीपति फ़ार्मर का बड़े पैमाने का उद्यम है; जमीन का प्रत्यक्ष काश्तकार उजरती

[35] पाण्डुलिपि ८ का प्रारंभ। – फ़े० एं०

मजदूर है। उत्पादन न केवल उपयोग सामग्री का, बल्कि उसके मूल्य का भी सृजन करता है; उत्पादन का प्रेरक हेतु बेशी मूल्य की प्राप्ति है, जिसका जन्म स्थान उत्पादन क्षेत्र है, परिचलन क्षेत्र नहीं। परिचलन द्वारा अस्तित्व में लाई जानेवाली पुनरुत्पादन की सामाजिक प्रक्रिया के वाहकों के रूप में जो तीन वर्ग सामने आते हैं, उनमें "उत्पादक" श्रम का प्रत्यक्ष शोषक, बेशी मूल्य का उत्पादक,* पूंजीपति फ़ार्मर उनसे भिन्न होता है, जो बेशी मूल्य का विनियोग भर करते हैं।

प्रकृतितांत्रिक व्यवस्था के पूंजीवादी स्वरूप ने अपने मुकुलन काल में भी विरोध पैदा किया था: एक ओर उसे लेंगे और मैब्ली ने चुनौती दी थी, दूसरी ओर छोटे उन्मुक्त भूमिधरों के हिमायतियों ने।

पुनरुत्पादन प्रक्रिया के विश्लेषण में ऐडम स्मिथ का पश्चगमन[36] इसलिए और भी उल्लेखनीय है कि वह केवल केने के सही विश्लेषणों का विशदीकरण ही नहीं, मसलन उनकी "avances primitives" और "avances annuelles" का सामान्यीकरण ही नहीं करते, और उन्हें क्रमशः "स्थायी" और "प्रचल" पूंजी[37] ही नहीं कहते, वरन कुछ स्थलों पर प्रकृतितंत्रवादियों की ग़लतियों को पूरी तरह दोहराते भी हैं। मसलन, यह दिखाने के लिए कि अन्य किसी प्रकार के पूंजीपति की अपेक्षा फ़ार्मर ज्यादा मूल्य पैदा करता है, वह कहते हैं: "और कोई समान पूंजी फ़ार्मर की पूंजी से अधिक मात्रा में उत्पादक श्रम को गतिशील नहीं करती। उसके कमकर चाकर ही नहीं, उसके कमकर मवेशी भी उत्पादक श्रमिक होते हैं।" (कमकर चाकरों की क्या उम्दा तारीफ़ की गयी है!) "कृषि में भी प्रकृति मनुष्य के साथ **श्रम करती है**; और यद्यपि **उसके श्रम के लिए कोई खर्च नहीं करना पड़ता**, फिर भी उसकी उपज का **वैसे ही मूल्य होता है, जैसे सबसे ज्यादा मेहनताना पानेवाले मजदूरों** की उपज का। कृषि के सबसे महत्वपूर्ण कार्य इतना प्रकृति की उर्वरता को बढ़ाने के उद्देश्य से किये जाते नहीं प्रतीत होते, यद्यपि वे वैसा भी करते हैं, जितना प्रकृति की उर्वरता को मनुष्य के लिए सबसे लाभदायी पौधों को पैदा करने की ओर निदेशित करते जान पड़ते हैं। झाड़-झंखाड़ से भरा खेत भी अक्सर साग-पात की उतनी ही बड़ी मात्रा पैदा कर सकता है, जितनी ख़ूब बढ़िया काश्त किया हुआ अंगूरों का बाग़ या अनाज का खेत। जोतने और रोपने का काम

---

*मार्क्स ने केने की *Tableau Economique* का 'बेशी मूल्य का सिद्धांत' में अधिक विस्तार के साथ विश्लेषण किया है (देखिये, का० मार्क्स *Theories of Surplus-Value* [vol. IV of *Capital*], Part I, मास्को, १९६३, पृ० २९९–३३३ तथा ३६७-३६९)।–सं०

[36] *Kapital*, Band I, 2. Ausgabe, S. 612, Note 32. ['पूंजी', खंड १, दूसरी आवृत्ति, मास्को, १९७५, पृष्ठ ६६३, पादटिप्पणी १]।

[37] कुछ प्रकृतितंत्रवादियों, विशेष रूप से तुर्गो, ने यहां भी उनका मार्ग प्रशस्त कर दिया था। केने या अन्य प्रकृतितंत्रवादियों की अपेक्षा तुर्गो ने "avances" के बदले "पूंजी" शब्द का व्यवहार कहीं अधिक बार किया है और कारख़ानेदारों की "avances" या "capitaux" [पूंजी] को काश्तकारों के "avances" या "capitaux" के और अधिक तद्रूप माना है। उदाहरण के लिए: "उनकी (उद्यमकर्ता कारख़ानेदारों की) तरह उन्हें (les fermiers, अर्थात पूंजीपति काश्तकारों को) प्रत्यावर्तित पूंजियों के अलावा प्राप्त होना चाहिए इत्यादि"। (तुर्गो, *Oeuvres*, Daire Edition, पेरिस, १८४४, खंड १, पृष्ठ ४०)।

प्रकृति की सक्रिय उर्वरता को अनुप्राणित करने की बनिस्बत नियमित अधिक करता है; और उसकी तमाम मेहनत के बाद काम का काफ़ी बड़ा हिस्सा हमेशा प्रकृति के करने के लिए बाक़ी रहता है। अतः कृषि में लगाये जानेवाले श्रमिक और कमकर मवेशी (वाह!) कारख़ानों के मज़दूरों की तरह स्वयं अपने उपभोग के बराबर अथवा उन्हें काम में लगानेवाली पूंजी के मालिकों के मुनाफ़े समेत उसके बराबर मूल्य का ही नहीं, वरन उससे बहुत अधिक मूल्य का पुनरुत्पादन करते हैं। फ़ार्मर की पूंजी और उसके तमाम मुनाफ़े के अलावा वे भूस्वामी के किराये का नियमित पुनरुत्पादन करते हैं। यह किराया प्रकृति की उन शक्तियों की उपज माना जा सकता है, जिनका उपयोग ज़मींदार फ़ार्मर को किराये पर देता है। वह उन शक्तियों की कल्पित सीमा के अनुसार न्यूनाधिक होता है या दूसरे शब्दों में वह भूमि की कल्पित नैसर्गिक अथवा उन्नत उर्वरता के अनुसार न्यूनाधिक होता है। जितने को भी आदमी का काम समझा जाता है, उसे घटा देने पर या उसका मुआवज़ा दे देने पर जो बच रहता है, वह प्रकृति का काम है। वह कुल उत्पाद के चौथाई से कदाचित ही कम और अक्सर उसके तिहाई से ज़्यादा ही होता है। कारख़ानों में लगाये उत्पादक श्रम की समान मात्रा कभी इतना बड़ा पुनरुत्पादन नहीं कर सकती। वहां प्रकृति कुछ नहीं करती, सब कुछ मनुष्य करता है; और इसलिए पुनरुत्पादन हमेशा उसे करनेवाले कर्ताओं की शक्ति के अनुरूप होगा। अतः कृषि में नियोजित पूंजी कारख़ानों में नियोजित किसी भी समान पूंजी के मुक़ाबले उत्पादक श्रम की और बड़ी मात्रा को ही गतिशील नहीं करती, वरन उत्पादक श्रम की जितनी मात्रा का वह नियोजन करती है, उसके अनुपात में भी भूमि की वार्षिक उपज और देश के श्रम में, देशवासियों की वास्तविक संपदा और आय में कहीं अधिक मूल्य जोड़ती है!" (खंड २, अध्याय ५, पृष्ठ २४२।)

खंड २, अध्याय १ में ऐडम स्मिथ कहते हैं: "बीज का भी पूरा मूल्य यथार्थतः स्थायी पूंजी ही है।" इसलिए पूंजी यहां पूंजी मूल्य के बराबर हो जाती है; वह "स्थायी" रूप में विद्यमान होती है। यद्यपि वह (बीज) खेत और खलिहान के बीच आगे-पीछे आता-जाता रहता है, फिर भी कभी मालिक नहीं बदलता, इसलिए यथार्थतः परिचालित नहीं होता। फ़ार्मर उसे बेचकर नहीं, वरन उसकी बढ़ोतरी से मुनाफ़ा कमाता है।" (पृष्ठ १८६)। बात की निरर्थकता इस तथ्य में निहित है कि अपने पूर्ववर्ती केने की तरह स्मिथ भी स्थिर पूंजी के मूल्य का नवीकृत रूप में पुनः प्रकट होना नहीं देखते, अतः वह पुनरुत्पादन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण तत्व नहीं देख पाते, बल्कि बस प्रचल और स्थायी पूंजी के अपने भेद की और वह भी ग़लत, एक मिसाल और दे देते हैं। स्मिथ के "avances primitives" और "avances annuelles" के "स्थायी पूंजी" और "प्रचल पूंजी" में अनुवाद में प्रगति "पूंजी" शब्द के व्यवहार में ही है, जिसकी अवधारणा सामान्यीकृत है और प्रकृतितंत्रवादियों के प्रयोग के "कृषि" क्षेत्र के लिए विशेष अभिप्राय से मुक्त हो जाती है; उनका पश्चगमन इस बात में निहित है कि "स्थायी" और "प्रचल" को सर्वोपरि भेद माना जाता है, और ऐसे ही रखा जाता है।

२. ऐडम स्मिथ

१) स्मिथ का सामान्य दृष्टिकोण

ऐडम स्मिथ खंड १, अध्याय ६, पृष्ठ ४२ पर कहते हैं: "प्रत्येक समाज में हर पण्य वस्तु की क़ीमत की परिणति अंततोगत्वा उन तीन भागों (मज़दूरी, लाभ, किराये) में से

किसी एक में अथवा उन तीनों में होती है; और हर उन्नत समाज में तीनों ही न्यूनाधिक संघटक अंशों के रूप में पण्य वस्तुओं के कहीं बड़े भाग की क़ीमत में शामिल होते हैं।"[38] अथवा जैसा कि वह आगे पृष्ठ ६३ पर कहते हैं: "मज़दूरी, लाभ और किराया, ये समस्त आय तथा **समस्त विनिमेय मूल्य** के तीन **मूल स्रोत** हैं।" हम "पण्य वस्तुओं की क़ीमत के संघटक अंशों" अथवा "समस्त विनिमेय मूल्य" के बारे में ऐडम स्मिथ के सिद्धांत का विवेचन नीचे अधिक विस्तार से करेंगे।

वह और आगे कहते हैं: "चूंकि स्थिति यह है, प्रत्येक पण्य वस्तु विशेष को अलग-अलग लेने पर यह देखा गया है; इसलिए उन सभी पण्य वस्तुओं के साथ भी ऐसा ही होना चाहिए, जो समग्र रूप में हर देश के श्रम और भूमि की कुल **वार्षिक पैदावार** बनाती हैं। इस वार्षिक पैदावार की **कुल क़ीमत अथवा विनिमेय मूल्य** को अपने आपको उन्हीं तीन भागों में **वियोजित करना** होगा और देश के विभिन्न निवासियों के बीच या तो उनके श्रम की **मजदूरी**, उनकी पूंजी के **लाभ** या उनकी ज़मीन के **किराये** के रूप में **विभाजित होना** होगा।" (खंड २, अध्याय २, पृष्ठ १९०)।

ऐडम स्मिथ के लिए इस प्रकार सभी पण्य वस्तुओं की क़ीमत को अलग-अलग तथा "हर देश के श्रम और भूमि की कुल वार्षिक पैदावार की... कुल क़ीमत अथवा विनिमेय मूल्य को भी" मजदूरी, लाभ और किराये में वियोजित करने के बाद, जो उजरती मजदूरों, पूंजीपतियों और ज़मींदारों की आय के तीन स्रोत हैं, एक चौथे तत्व को, यानी पूंजी के तत्व को चक्करदार रास्ते से घुसाना जरूरी हो जाता है। यह कार्य सकल आय और शुद्ध आय के बीच भेद करके किया जाता है: "किसी बड़े देश के सभी निवासियों की **सकल** आय में उनकी भूमि और श्रम की **कुल वार्षिक पैदावार** आती है; **शुद्ध** आय में वह सब आता है, जो पहले अपनी **स्थायी** और दूसरे, अपनी **प्रचल पूंजी के अनुरक्षण के व्यय को घटा देने के बाद** उनके पास मुक्त बच रहता है; अथवा अपनी पूंजी का अतिलंघन किये बिना, जिसे वे तात्कालिक उपभोग के लिए आरक्षित अपने स्टॉक में रख सकते अथवा अपने निर्वाह, सुख-सुविधा और मनोरंजन पर ख़र्च कर सकते हैं। उनका वास्तविक धन भी उनकी सकल आय के नहीं, बल्कि शुद्ध आय के समानुपात में होता है।" (वही, पृष्ठ १९०)।

इस पर हमारी टिप्पणी इस प्रकार है:

१) ऐडम स्मिथ यहां स्पष्टतः केवल साधारण पुनरुत्पादन को ले रहे हैं, विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन अथवा संचय को नहीं। वह सिर्फ़ कार्यशील पूंजी के "अनुरक्षण" के व्यय की ही बात करते हैं। "शुद्ध" आमदनी वार्षिक उत्पाद के उस भाग के बराबर है – वह चाहे समाज का हो, चाहे पृथक पूंजीपति का – जो "उपभोग निधि" में अंतरित हो सकता

---

[38] इसलिए कि "पण्य वस्तुओं के कहीं बड़े भाग की क़ीमत" – वाक्यांश का अर्थ पाठक ग़लत न समझें, निम्नलिखित यह दिखाता है कि स्वयं ऐडम स्मिथ इसकी व्याख्या किस प्रकार करते हैं। उदाहरण के लिए, समुद्री मछली की क़ीमत में किराया शामिल नहीं होता, केवल मजदूरी और लाभ शामिल होते हैं। स्काच अक़ीक में केवल मजदूरी शामिल होती है। वह कहते हैं: "स्काटलैंड के कुछ भागों में कुछ ग़रीब लोग समुद्र के किनारे उन छोटे रंग-बिरंगे पत्थरों को बीनने का धन्धा करते हैं, जो आम तौर से स्काच अक़ीक के नाम से जाने जाते हैं। संगतराश उन्हें जो क़ीमत देते हैं, वह बस उनकी मेहनत की मजदूरी ही होती है; किराये या लाभ उसका कोई अंश नहीं होता।"

है, किंतु इस निधि के ग्राकार को कार्यशील "पूंजी का अतिलंघन" नहीं करना चाहिए। इस तरह वैयक्तिक उत्पाद ग्रौर सामाजिक उत्पाद दोनों के मूल्य का एक भाग न तो मज़दूरी में ग्रौर न लाभ में, न किराये में, वरन पूंजी में वियोजित होता है।

२) ऐडम स्मिथ श्लेष द्वारा "सकल ग्रौर शुद्ध ग्राय" में भेद करके ख़ुद ग्रपने ही सिद्धांत से भागते हैं। पृथक पूंजीपति तथा समूचा पूंजीपति वर्ग ग्रथवा तथाकथित राष्ट्र उत्पादन में उपभुक्त पूंजी के बदले एक माल उत्पाद पाते हैं, जिसका मूल्य – जिसे उत्पाद के समानुपातिक ग्रंशों द्वारा प्रकट किया जा सकता है – एक ग्रोर ख़र्च किये हुए पूंजी मूल्य को प्रतिस्थापित करता है, ग्रौर इस प्रकार ग्रामदनी ग्रथवा ग्रौर भी ग्रक्षरशः ग्रागम या रेवेन्यू का निर्माण करता है (revenue revenir – प्रत्यागमन – का भूत कृदंत है), किंतु ध्यान दें, पूंजी पर ग्राय ग्रथवा पूंजी पर ग्रामदनी; दूसरी ग्रोर मूल्य के घटकों को, जो "देश के विभिन्न निवासियों के बीच या तो उन के श्रम की मज़दूरी, उनकी पूंजी के लाभ या उनकी ज़मीन के किराये के रूप में विभाजित" होते हैं, निर्माण करता है, जिस चीज़ को ग्राम तौर से ग्रामदनी कहा जाता है। इसलिए समग्र उत्पाद का मूल्य किसी की – या तो ग्रलग पूंजीपति की, या सारे देश की – ग्रामदनी बनता है, किंतु वह एक ग्रोर पूंजी पर ग्रामदनी होता है, ग्रौर दूसरी ग्रोर उससे भिन्न "ग्रागम" ("revenue") होता है। फलतः माल मूल्य के उसके घटकों में विश्लेषण में जो चीज़ बहिष्कृत की जाती है, उसे एक बग़ली दरवाज़े – "ग्रागम" शब्द के दोहरे ग्रर्थ के द्वारा वापस ले ग्राया जाता है। किंतु उत्पाद के केवल वही मूल्य घटक "ग्रंदर लाये" जा सकते हैं, जो उसमें पहले से विद्यमान हैं। ग्रगर **पूंजी** को ग्राय के रूप में ग्राना है, तो पूंजी पहले ख़र्च की जा चुकी होती।

ऐडम स्मिथ इसके ग्रलावा कहते हैं: "प्रत्येक स्टॉक नियोजन को ग्रनियत घाटों का जो ख़तरा रहता है, लाभ की न्यूनतम सामान्य दर हमेशा उसकी क्षतिपूर्ति करने के लिए पर्याप्त से कुछ ज्यादा ही होनी चाहिए। यही वह बेशी भाग है, जो शुद्ध या साफ़ लाभ होता है।" [कौन पूंजीपति लाभ से पूंजी के ग्रावश्यक व्यय का ग्रर्थ लगाता है?] "जिसे सकल लाभ कहते हैं, उसमें ग्रक्सर यह बेशी ही नहीं, वरन वह भी होता है, जो ऐसे ग्रसामान्य घाटों की क्षतिपूर्ति के लिए सुरक्षित रखा जाता है।" (खंड १, ग्रध्याय ६, पृष्ठ ७२)। इसका ग्रर्थ इसके सिवा ग्रौर कुछ नहीं है कि बेशी मूल्य के एक भाग को, जिसे सकल लाभ का हिस्सा माना जाता है, उत्पादन के लिए बीमा निधि बनना होगा। इस बीमा निधि का निर्माण बेशी श्रम के एक भाग से होता है, जो उस सीमा तक पूंजी का, ग्रर्थात पुनरुत्पादन हेतु निधि का प्रत्यक्ष उत्पादन करता है। जहां तक स्थायी पूंजी ग्रादि के "ग्रनुरक्षण" से संबंधित व्यय का प्रश्न है (ऊपरवाले उद्धरण देखें), उपभुक्त स्थायी पूंजी का नई पूंजी द्वारा प्रतिस्थापन पूंजी का नवीन व्यय नहीं है, बल्कि पुराने पूंजी मूल्य का नये रूप में नवीकरण मात्र है। ग्रौर जहां तक स्थायी पूंजी के प्रतिकार का प्रश्न है, जिसे ऐडम स्मिथ उसी तरह ग्रनुरक्षण व्यय में शामिल करते हैं, यह ख़र्च पेशगी पूंजी की क़ीमत का हिस्सा होता है। इस बात से कि पूंजी-पति यह सब एकबारगी निवेशित करने के बजाय उसे पूंजी के कार्यशील होने के समय क्रमशः, ग्रावश्यकतानुसार निवेशित करता है, ग्रौर जो मुनाफ़ा उसकी जेब में पहले ही पहुंच चुका है, उसी में से यह सब निवेशित कर सकता है – इस से मुनाफ़े का स्रोत नहीं बदल जाता। जो मूल्य घटक उसमें समाहित है, वह केवल यही साबित करता है कि मज़दूर बीमा निधि के लिए तथा प्रतिकार निधि के लिए भी बेशी श्रम प्रदान करता है।

इसके बाद ऐडम स्मिथ हमें बताते हैं कि शुद्ध आय से, अर्थात अपने विशिष्ट अर्थ में आय से, सारी स्थायी पूंजी निकाल देनी चाहिए और प्रचल पूंजी का वह समग्र भाग भी निकाल देना चाहिए, जो स्थायी पूंजी के अनुरक्षण और प्रतिकार के लिए और उसके नवीकरण के लिए आवश्यक होता है; वस्तुतः वह सारी पूंजी, जो उपभोग निधि के हेतु दैहिक रूप में नहीं है।

"स्थायी पूंजी के अनुरक्षण के सारे ख़र्च को स्पष्ट ही समाज की शुद्ध आय से निकाल देना होगा। न तो समाज की उपयोगी मशीनों और श्रम के उपकरणों के अवलंबन के लिए आवश्यक सामग्री और न इस सामग्री को उचित रूप देने के लिए आवश्यक श्रम ही उसका अंग बन सकते हैं। उस श्रम की **क़ीमत** अवश्य उसका अंग बन सकती है, क्योंकि इस प्रकार काम में लगाये मज़दूर अपनी मज़दूरी का सारा मूल्य तात्कालिक उपभोग के लिए आरक्षित अपने स्टॉक में डाल सकते हैं। किंतु श्रम के अन्य प्रकारों में **क़ीमत**" [अर्थात इस श्रम के लिए दी मज़दूरी] "और **उत्पाद**" [जिसमें यह श्रम निहित है] "दोनों ही इस स्टॉक में जाते हैं: क़ीमत मज़दूरों के स्टॉक में और उत्पाद दूसरे लोगों के स्टॉक में, जिनके निर्वाह, सुख-सुविधा और मनोरंजन साधनों में उन मज़दूरों के श्रम की बदौलत वृद्धि होती है।" (खंड २, अध्याय २, पृष्ठ १९०, १९१)।

ऐडम स्मिथ यहां एक बहुत ही महत्वपूर्ण भेद पर पहुंच जाते हैं – **उत्पादन साधनों** के उत्पादन में लगाये जानेवाले और **उपभोग वस्तुओं** के तात्कालिक उत्पादन में लगाये जानेवाले मज़दूरों का भेद। प्रथमोक्त मज़दूर पण्य वस्तुओं का जो मूल्य पैदा करते हैं, उसका एक संघटक अंश मज़दूरी के योग के बराबर, अर्थात श्रम शक्ति की ख़रीद में निवेशित पूंजी अंश के मूल्य के बराबर होता है। मूल्य का यह भाग मज़दूरों द्वारा उत्पादित उत्पादन साधनों के एक निश्चित अंश के रूप में दैहिक रूप में विद्यमान होता है। उन्हें मज़दूरी के रूप में मिला धन उनकी आय है, किंतु उनकी मेहनत ने ऐसे सामान का उत्पादन नहीं किया है, जो उनके या दूसरों के लिए उपभोज्य हो। इसलिए यह उत्पाद वार्षिक उत्पाद के उस अंश का तत्व नहीं है, जो सामाजिक उपभोग निधि के निर्माण के लिए उद्दिष्ट होता है, सिर्फ़ जिसमें ही "शुद्ध आय" का सिद्धिकरण हो सकता है। ऐडम स्मिथ यहां यह जोड़ना भूल जाते हैं कि जो बात मज़दूरी पर लागू होती है, वही उत्पादन साधनों के मूल्य के उस घटक पर भी लागू होती है, जो बेशी मूल्य होने के नाते किराये और मुनाफ़े के संवर्गों के अंतर्गत (सर्वोपरि) औद्योगिक पूंजीपति की आय बनता है। ये मूल्य घटक भी इसी प्रकार उत्पादन साधनों में ऐसी वस्तुओं में विद्यमान होते हैं, जिनका उपभोग नहीं हो सकता। वे द्रव्य में परिवर्तित हुए बिना अपनी क़ीमत के अनुरूप मात्रा में अंतोक्त प्रकार के मज़दूरों द्वारा उत्पादित उपभोग वस्तुओं को मुहैया नहीं कर सकते, केवल तब जाकर ही वे इन वस्तुओं को उत्पादन साधनों के मालिकों की वैयक्तिक उपभोग निधि को अंतरित कर सकते हैं। किंतु इससे ऐडम स्मिथ को यह और भी दीख जाना चाहिए था कि प्रति वर्ष उत्पन्न उत्पादन साधनों के मूल्य का एक भाग इस उत्पादन क्षेत्र में कार्यशील उत्पादन साधनों – वे उत्पादन साधन, जिनसे उत्पादन साधनों का निर्माण किया जाता है – के मूल्य के बराबर होता है। इसलिए यहां नियोजित स्थिर पूंजी के मूल्य के बराबर मूल्यांश का न केवल उसके दैहिक रूप के कारण ही, जिसमें वह विद्यमान होता है, वरन उसके पूंजी रूप में कार्यशील होने के कारण भी आय का निर्माण करनेवाला मूल्य घटक बनना संभव नहीं है।

जहां तक दूसरे प्रकार के मज़दूरों का, जो उपभोग वस्तुओं का प्रत्यक्ष उत्पादन करते हैं, संबंध है, ऐडम स्मिथ की परिभाषाएं पूरी तरह सही नहीं हैं। कारण यह कि वह कहते हैं कि श्रम के इन प्रकारों में श्रम की क़ीमत और उत्पाद दोनों ही तात्कालिक उपभोग के आरक्षित स्टॉक में "जाते हैं": **"क़ीमत"** (अर्थात मज़दूरी में प्राप्त धन) **"मज़दूरों** के स्टॉक में जाती है, **उत्पाद दूसरे लोगों** के स्टॉक में, जिनके निर्वाह, सुख-सुविधा और मनोरंजन साधनों में उन मज़दूरों के श्रम की बदौलत वृद्धि होती है।" किंतु मज़दूर अपने श्रम की **"क़ीमत"** के सहारे, उस द्रव्य के सहारे नहीं जी सकता, जिसके रूप में उसे मज़दूरी दी जाती है; वह इस द्रव्य का उपभोग वस्तुएं ख़रीदकर सिद्धिकरण करता है। इनमें अंशतः स्वयं उसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की क़िस्में भी हो सकती हैं। दूसरी ओर उसका अपना उत्पाद ऐसा हो सकता है कि जो केवल श्रम के समुपयोजकों के उपभोग में आता हो।

इस प्रकार किसी देश की "शुद्ध 'आय" से स्थायी पूंजी को पूरी तरह से अलग कर देने के बाद ऐडम स्मिथ आगे कहते हैं:

"किंतु यद्यपि इस प्रकार स्थायी पूंजी के अनुरक्षण का सारा ख़र्च अनिवार्यतः समाज की शुद्ध आय से निकाल दिया जाता है, फिर भी यह प्रचल पूंजी के अनुरक्षण जैसा ही मामला नहीं है। अंतोक्त पूंजी जिन चार अंशों – द्रव्य, रसद, सामग्री और तैयार माल – से बनी होती है, पहले ही देखा जा चुका है कि इनमें से आख़िरी तीनों अंश उससे नियमित रूप से निकाले जाते हैं, और या तो समाज की स्थायी पूंजी में या तात्कालिक उपभोग के लिए आरक्षित उनके स्टॉक में रखे जाते हैं। उस उपभोज्य सामान के जिस भी अंश का पूर्वोक्त के" [स्थायी पूंजी के] "अनुरक्षण में नियोजन नहीं होता, वह सब उत्तरोक्त" [तात्कालिक उपभोग] "में चला जाता है और समाज की शुद्ध आय का अंश बन जाता है। अतः प्रचल पूंजी के उन तीनों भागों का अनुरक्षण समाज की शुद्ध आय से वार्षिक उत्पाद का कोई भाग नहीं निकालता, सिवा उसके कि जो स्थायी पूंजी के अनुरक्षण के लिए आवश्यक है।" (खंड २, अध्याय २, पृष्ठ १६२।)

यह कहना उसी बात को दूसरे शब्दों में पुनरुक्ति भर है कि प्रचल पूंजी का जो भाग उत्पादन साधनों के उत्पादन में काम नहीं आता, वह उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में, दूसरे शब्दों में, वार्षिक उत्पाद के उस भाग में चला जाता है, जो समाज की उपभोग निधि बनाने के लिए उद्दिष्ट है। फिर भी इस के तत्काल बाद का यह अंश महत्वपूर्ण है:

"इस मामले में समाज की प्रचल पूंजी व्यक्ति की प्रचल पूंजी से भिन्न होती है। व्यक्ति की प्रचल पूंजी को उसकी शुद्ध आय का कोई भी भाग बनने से पूर्णतः अलग रखा जाता है, जो पूरी तरह से उसके लाभ से ही बनती है। किंतु यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति की प्रचल पूंजी समाज की प्रचल पूंजी का भाग होती है, जिसका वह सदस्य होता है, फिर भी इसके कारण उसे उसी प्रकार समाज की शुद्ध आय का भाग बनने से पूर्णतः अलग नहीं रखा जाता। यद्यपि व्यापारी की दूकान में जितना माल है, उसे उसके तात्कालिक उपभोग के लिए आरक्षित स्टॉक में किसी भी तरह नहीं रखा जा सकता, फिर भी वह दूसरों के उपभोग स्टॉक में रखा जा सकता है, जो अन्य निधियों से प्राप्त आय से उसकी पूंजी या अपनी पूंजी के किसी भी तरह घटे बिना उसके मूल्य का मुनाफ़े सहित नियमित रूप से प्रतिस्थापन कर सकते हैं।" (वही।)

इस प्रकार हमें पता चलता है कि:

१) जिस प्रकार स्थायी पूंजी और उसके पुनरुत्पादन (वह कार्य की बात भूल जाते हैं)

और अनुरक्षण के लिए आवश्यक प्रचल पूंजी **हर अलग पूंजीपति** की शुद्ध आय से पूर्णतः बाहर रहती है, जो केवल उसका लाभ ही हो सकती है, उसी प्रकार उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में नियोजित प्रचल पूंजी भी उससे बाहर रहती है। अतः उसके माल उत्पाद का जो भाग उसकी पूंजी को प्रतिस्थापित करता है, वह मूल्य के उन घटकों में वियोजित नहीं हो सकता, जो उसकी कोई आय होते हैं।

२) हर अलग पूंजीपति की प्रचल पूंजी उसी प्रकार समाज की प्रचल पूंजी का अंश होती है, जैसे हर वैयक्तिक स्थायी पूंजी होती है।

३) यद्यपि समाज की प्रचल पूंजी वैयक्तिक प्रचल पूंजियों का योग ही होती है, फिर भी उसका स्वरूप हर अलग पूंजीपति की प्रचल पूंजी से भिन्न होता है। अलग पूंजीपति की प्रचल पूंजी **उसकी अपनी आय** का अंग कभी नहीं हो सकती; फिर भी समाज की प्रचल पूंजी (यानी उपभोज्य वस्तुओंवाली पूंजी) का एक भाग साथ ही **समाज की आय** का अंग बन सकता है अथवा जैसा उन्होंने पहले कहा था, उसे समाज की शुद्ध आय में अनिवार्यतः वार्षिक उत्पाद के एक हिस्से के बराबर कमी नहीं करना चाहिए। वस्तुतः ऐडम स्मिथ जिसे यहां प्रचल पूंजी कहते हैं, वह प्रति वर्ष उत्पादित माल पूंजी है, जिसे उपभोग वस्तुएं पैदा करनेवाले पूंजीपति प्रति वर्ष परिचलन में डालते हैं। उनका यह सारा वार्षिक पण्य उत्पाद उपभोज्य वस्तुएं होती हैं और इसलिए उस निधि का निर्माण करता है, जिसमें समाज की शुद्ध आय (मजदूरी समेत) का सिद्धिकरण या व्यय होता है। ऐडम स्मिथ को व्यापारी की दूकान में माल की मिसाल लेने के बजाय औद्योगिक पूंजीपतियों के गोदामों में जमा सामान की मिसाल को लेना चाहिए था।

इसलिए ऐडम स्मिथ ने अगर विचार के उन क्षणिक आवेगों को सूत्रबद्ध कर लिया होता, जिन्होंने पहले उसके पुनरुत्पादन के, जिसे वह स्थायी पूंजी कहते हैं और अब उसके, जिसे वह प्रचल पूंजी कहते हैं, अध्ययन में अपने आपको उन पर हावी किया था, तो निम्नलिखित नतीजे पर पहुंचते :

१) समाज के वार्षिक उत्पाद में दो क्षेत्र होते हैं। उनमें से एक में उत्पादन साधन होते हैं, दूसरे में उपभोग वस्तुएं। दोनों में प्रत्येक का विवेचन अलग-अलग किया जाना चाहिए।

२) वार्षिक उत्पाद के जिस भाग में **उत्पादन साधन** समाहित होते हैं, उसका कुल मूल्य इस प्रकार विभक्त होता है: मूल्य का एक अंश उत्पादन साधनों के मूल्य का केवल इन उत्पादन साधनों के निर्माण में उपभुक्त भाग होता है; वह केवल नवीकृत रूप में पुनः प्रकट हुआ पूंजी मूल्य ही होता है; एक और अंश श्रम शक्ति पर लगाई गई पूंजी के मूल्य के बराबर अथवा उत्पादन के इस क्षेत्र में पूंजीपतियों द्वारा अदा की गई कुल मजदूरी के बराबर होता है। और अन्त में मूल्य का तीसरा अंश किराया जमीन समेत औद्योगिक पूंजीपतियों के मुनाफ़ों का स्रोत होता है।

ऐडम स्मिथ के अनुसार प्रथम संघटक अंश इस पहले क्षेत्र में नियोजित तमाम वैयक्तिक पूंजियों की स्थायी पूंजी का पुनरुत्पादित अंश पृथक पूंजीपति की अथवा समाज की "शुद्ध आय का कोई भी भाग बनने से पूर्णतः अलग रहता है"। वह सदैव पूंजी की तरह कार्य करता है, आय की तरह कभी भी नहीं। उस सीमा तक हर पृथक पूंजीपति की "स्थायी पूंजी" किसी भी तरह समाज की स्थायी पूंजी से भिन्न नहीं होती। किंतु उत्पादन साधनों में समाविष्ट समाज के वार्षिक उत्पाद के मूल्य के अन्य अंश, अतः मूल्य के वे अंश, जो उत्पादन साधनों

की इस समग्र राशि के अशेषभाजक भागों में अस्तित्वमान होते हैं – वस्तुतः **एकसाथ इस उत्पादन में लगे हुए सभी कर्ताओं के लिए आय का**, मजदूरों के लिए मजदूरी, पूंजीपतियों के लिए लाभ और किराये का निर्माण करते हैं। किंतु **समाज** के लिए वे **आय** का नहीं, **पूंजी** का निर्माण करते हैं, यद्यपि समाज का वार्षिक उत्पाद अलग-अलग पूंजीपतियों का कुल उत्पाद ही होता है, जो उस समाज के अंग होते हैं। उनकी प्रकृति ही ऐसी है कि वे साधारणतः उत्पादन साधनों के रूप में ही कार्य कर सकते हैं और जो भाग आवश्यकता पड़ने पर उपभोग वस्तुओं के रूप में कार्य कर भी सकते हैं, वे भी नये उत्पादन के कच्चे माल या सहायक सामग्री के रूप में काम आने के लिए उद्दिष्ट होते हैं। किंतु वे इस रूप में – अतः पूंजी के रूप में – अपने उत्पादकों के हाथ में नहीं, वरन अपने उपभोक्ताओं के हाथ में काम करते हैं, अर्थात:

३) दूसरे क्षेत्र के पूंजीपतियों, **उपभोग** वस्तुओं के प्रत्यक्ष उत्पादकों के हाथ में। ये उत्पादन साधन इन पूंजीपतियों के लिए उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में उपभुक्त पूंजी का प्रतिस्थापन करते हैं (जहां तक कि यह पूंजी श्रम शक्ति में परिवर्तित नहीं होती, और इसलिए वह इस दूसरे क्षेत्र के मजदूरों की कुल मजदूरी नहीं होती), जब कि यह उपभुक्त पूंजी, जो अब उपभोग वस्तुओं के रूप में उनका उत्पादन करनेवाले पूंजीपति के हाथ में होती है – सामाजिक दृष्टि से – अपनी बारी में **उस उपभोग निधि का निर्माण करती है, जिसमें पहले क्षेत्र के मजदूर और पूंजीपति अपनी आय का सिद्धिकरण करते हैं।**

यदि ऐडम स्मिथ अपना विश्लेषण यहां तक ले आते, तो सारा मसला हल करने के लिए थोड़ी सी ही कसर रह जाती। वह लगभग जड़ पर पहुंच गये थे, क्योंकि वह पहले ही कह चुके थे कि समाज के कुल वार्षिक उत्पाद की संरचक माल पूंजियों के **एक** प्रकार के मूल्यांश (उत्पादन साधन) सचमुच उनके उत्पादन में लगे अलग-अलग श्रमिकों और पूंजीपतियों की आय का निर्माण करते हैं, किंतु वे समाज की आय के किसी संघटक अंश का निर्माण नहीं करते; जब कि **दूसरे** प्रकार का मूल्यांश (उपभोग वस्तुएं) अपने वैयक्तिक स्वामियों, पूंजी निवेश के इस क्षेत्र में लगे पूंजीपतियों के लिए पूंजी मूल्य होते हुए भी सामाजिक आय का केवल एक भाग होता है।

किंतु पूर्वोक्त से इतना तो स्पष्ट है:

पहली बात: यद्यपि सामाजिक पूंजी केवल वैयक्तिक पूंजियों के योग के बराबर होती है और इस कारण समाज का वार्षिक माल उत्पाद (अथवा माल पूंजी) इन वैयक्तिक पूंजियों के कुल पण्य उत्पाद के बराबर होता है; और यद्यपि इसलिए माल के मूल्य का उसके संघटक अंशों में विश्लेषण, जो प्रत्येक वैयक्तिक माल पूंजी के लिए संगत है, पूरे समाज की माल पूंजी के लिए भी संगत होना चाहिए – और वस्तुतः अंततोगत्वा वह संगत सिद्ध होता भी है – फिर भी पुनरुत्पादन की कुल सामाजिक प्रक्रिया में ये संघटक अंश प्रकट होने का जो रूप धारण करते हैं, वह भिन्न होता है।

दूसरी बात: साधारण पुनरुत्पादन के आधार पर भी केवल मजदूरी (परिवर्ती पूंजी) और बेशी मूल्य का उत्पादन ही नहीं होता, वरन नये स्थिर पूंजी मूल्य का प्रत्यक्ष उत्पादन भी होता है, यद्यपि कार्य दिवस केवल दो भागों का होता है, एक वह, जिसमें मजदूर परिवर्ती पूंजी का प्रतिस्थापन करता है, वस्तुतः अपनी श्रम शक्ति के क्रय के लिए उसके तुल्य का उत्पादन करता है, और दूसरा वह, जिसमें वह बेशी मूल्य (मुनाफ़े, किराये, वग़ैरह) का उत्पादन करता है।

उत्पादन साधनों के पुनरुत्पादन में जो दैनिक श्रम ख़र्च होता है – और जिसका मूल्य मज़दूरी और बेशी मूल्य से संरचित होता है – वह अपना सिद्धिकरण उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में लगाये गये पूंजी के स्थिर अंश को प्रतिस्थापित करनेवाले नये उत्पादन साधनों में करता है।

मुख्य कठिनाइयां – जिनका अधिकांश पूर्ववर्ती अंशों में हल कर दिया गया है – संचय का अध्ययन करते हुए नहीं, वरन साधारण पुनरुत्पादन का अध्ययन करते हुए सामने आती हैं। इसी कारण जब भी प्रश्न समाज के वार्षिक उत्पाद की गति का और परिचलन द्वारा उसके पुनरुत्पादन का होता है, ऐडम स्मिथ (खंड २) और उनसे पहले केने *(Tableau Economique)* साधारण पुनरुत्पादन को ही अपना प्रारंभ बिंदु बनाते हैं।

२) ऐडम स्मिथ द्वारा विनिमय मूल्य का प+बे में वियोजन

ऐडम स्मिथ का यह मत कि किसी भी एक पण्य वस्तु की – और इसलिए समाज के वार्षिक उत्पाद (वह ठीक ही सर्वत्र पूंजीवादी उत्पादन की कल्पना करते हैं) को बनानेवाली समूचे तौर पर सभी पण्य वस्तुओं की – क़ीमत अथवा "विनिमेय मूल्य" तीन "संघटक अंशों" – मजदूरी, लाभ और किराये – से बनती है अथवा उनमें "अपने को वियोजित" कर लेती है, इस रूप में समानीत किया जा सकता है: माल मूल्य प+बे के बराबर है, अर्थात पेशगी परिवर्ती पूंजी तथा बेशी मूल्य के योग के बराबर है। लाभ और किराये के इस समानयन को हम ऐडम स्मिथ की स्पष्ट अनुमति से जैसा कि निम्न उद्धरणों से प्रकट होता है, एक सामान्य बे नामक इकाई के अंतर्गत ला सकते हैं, जिनमें हम पहले छोटी-मोटी सभी बातों को, अर्थात इस मत से कि माल मूल्य में केवल वही तत्व समाहित होते हैं, जिन्हें हम प+बे कहते हैं, सभी वास्तविक अथवा आभासी विचलनों को छोड़ देंगे।

हस्तनिर्माण में: "मज़दूर सामग्री में जो मूल्य जोड़ते हैं . . . वह अपने को . . . दो भागों में वियोजित कर लेता है, जिनमें से एक भाग उन्हें मजदूरी देता है, और दूसरा उनके मालिक को उसके द्वारा पेशगी दिये सामग्री और मज़दूरी के कुल स्टॉक पर लाभ देता है।" (खंड १, अध्याय ६, पृष्ठ ४१।) यद्यपि "कारख़ाने में काम करनेवाले को मज़दूरी उसके मालिक द्वारा पेशगी दी जाती है, पर असल में मालिक को उस पर कुछ भी ख़र्च नहीं करना पड़ता, क्योंकि इस मज़दूरी के मूल्य की आम तौर पर लाभ सहित उस चीज़ के सुधरे हुए मूल्य में पुनःस्थापना हो जाती है, जिस पर उसका श्रम लगाया जाता है।" (खंड २, अध्याय ३, पृष्ठ २२१।) स्टॉक का वह भाग, जो "उत्पादक श्रम के भरण-पोषण में" ख़र्च होता है, "उसके (मालिक के) लिए पूंजी का कार्य कर चुकने के बाद उनकी (मज़दूरों की) आय बनता है"। (खंड २, अध्याय ३, पृष्ठ २२३।)

अभी-अभी उद्धृत अध्याय में ऐडम स्मिथ साफ़-साफ़ कहते हैं:

"प्रत्येक देश की भूमि और श्रम का कुल वार्षिक उत्पाद . . . अपने को स्वभावतः दो भागों में विभक्त कर लेता है। इनमें से एक और प्रायः सबसे बड़ा भाग प्रथमतः पूंजी के प्रतिस्थापन के लिए अथवा रसद, सामग्री और तैयार उत्पाद के, जिन्हें पूंजी से निकाल लिया गया था, नवीकरण के लिए और दूसरा भाग या तो पूंजी के मालिक के लिए **उसके स्टॉक पर लाभ** के रूप में अथवा किसी अन्य व्यक्ति के लिए उसकी **ज़मीन के किराये** के रूप में आय बनने के लिए उद्दिष्ट होता है।" (पृष्ठ २२२।) ऐडम स्मिथ ने अभी-अभी बताया है कि

पूंजी का केवल एक भाग साथ ही किसी के लिए आय बनता है, यानी वह, जो उत्पादक श्रम की ख़रीद में निवेशित किया जाता है। यह अंश – परिवर्ती पूंजी – पहले उसके नियोजक के हाथ में उसके लिए "पूंजी का कार्य करता है" और फिर वह स्वयं उत्पादक श्रमिक के लिए "आय बनता है"। पूंजीपति अपने पूंजी मूल्य के एक अंश को श्रम शक्ति में बदल लेता है और ठीक इसी प्रकार उसे परिवर्ती पूंजी बनाता है; इस रूपांतरण के कारण ही उसकी पूंजी का केवल यह अंश नहीं, बल्कि उसकी सारी पूंजी ही औद्योगिक पूंजी की तरह कार्य करती है। श्रम शक्ति का विक्रेता, श्रमिक, उसका मूल्य मजदूरी के रूप में पाता है। उसके हाथ में श्रम शक्ति मात्र एक बिकाऊ माल है, ऐसा माल, जिसे बेचकर वह गुज़ारा करता है और इसलिए जो उसकी आय का एकमात्र स्रोत है; श्रम शक्ति केवल अपने ग्राहक, पूंजीपति, के हाथ में ही परिवर्ती पूंजी का कार्य करती है और पूंजीपति उसकी क्रय क़ीमत केवल आभासी रूप में ही पेशगी देता है, क्योंकि मजदूर द्वारा उसे उसके मूल्य की पहले ही पूर्ति की जा चुकी है।

ऐडम स्मिथ इस प्रकार यह दिखाने के बाद कि हस्तनिर्माण में उत्पाद का मूल्य प+बे के बराबर होता है (बे पूंजीपति का लाभ है), हमें बताते हैं कि कृषि में श्रमिक "स्वयं अपने उपभोग के अथवा उन्हें नियोजित करनेवाली [परिवर्ती] पूंजी के, उसके मालिकों के मुनाफ़े सहित बराबर मूल्य पुनरुत्पादित करने" के अलावा आगे "फ़ार्मर की पूंजी और उसके तमाम लाभों के अतिरिक्त भूस्वामी के किराये का भी नियमित पुनरुत्पादन करते हैं।" (खंड २, अध्याय ५, पृष्ठ २४३।) यह तथ्य कि किराया भूस्वामी के हाथ में पहुंच जाता है, विचाराधीन समस्या के लिए पूर्णतः महत्वहीन है। उसके हाथ में पहुंचने से पहले उसे फ़ार्मर के, अर्थात औद्योगिक पूंजीपति के हाथ में होना होगा। उसे किसी की भी आय बनने के पहले उत्पाद के मूल्य का संघटक अंश बनना होगा। इसलिए स्वयं ऐडम स्मिथ के अनुसार किराया और लाभ दोनों ही बेशी मूल्य के संघटक अंश मात्र हैं और इन्हें उत्पादक श्रमिक अपनी ख़ुद की मजदूरी के साथ, यानी परिवर्ती पूंजी के मूल्य के साथ निरंतर पुनरुत्पादित करता है। अतः किराया और लाभ बेशी मूल्य बे के अंश हैं और इस प्रकार ऐडम स्मिथ के लिए सभी पण्य वस्तुओं की क़ीमत अपने को प+बे में वियोजित कर लेती है।

यह मत कि सभी पण्य वस्तुओं की (अतः वार्षिक माल उत्पाद की भी) क़ीमत अपने को मज़दूरी तथा लाभ तथा किराया ज़मीन के योग में वियोजित कर लेती है, स्मिथ की कृतियों के अंतरायिक गूढ़ अंशों तक में यह रूप धारण करता है कि प्रत्येक माल का और इसलिए समाज के वार्षिक माल उत्पाद का भी मूल्य प+बे के बराबर अथवा श्रम शक्ति में ख़र्च हुए और श्रमिकों द्वारा निरंतर पुनरुत्पादित पूंजी मूल्य तथा मजदूरों द्वारा अपने काम के ज़रिये जोड़े बेशी मूल्य के योग के बराबर होता है।

ऐडम स्मिथ का यह अंतिम परिणाम साथ ही उनके उन संघटक अंशों के एकांगी विश्लेषण के स्रोत को भी प्रकट कर देता है, – आगे देखिये – जिनमें किसी माल का मूल्य अपने को वियोजित करता है। इस तथ्य का कि वे साथ ही उत्पादन में लगे विभिन्न वर्गों के लिए आय के विभिन्न स्रोत भी होते हैं, इनमें से प्रत्येक संघटक अंश के परिमाण तथा उनकी मूल्य राशि के निर्धारण से कोई भी संबंध नहीं है।

जब ऐडम स्मिथ यह कहते हैं, तो सभी प्रकार के quid pro quo उलझा दिये जाते हैं कि "मजदूरी, लाभ और किराया समस्त आय तथा समस्त विनिमेय मूल्य के भी तीन मूल

स्रोत हैं। अन्य सभी प्रकार की आय अंततः इन्हीं में से किसी एक से प्राप्त होती है।" (खंड १, अध्याय ६, पृष्ठ ४८।)

१) समाज के वे सभी सदस्य, जो श्रम द्वारा अथवा उसके बिना पुनरुत्पादन में प्रत्यक्षतः संलग्न नहीं हैं, वार्षिक पण्य उत्पाद से अपना भाग – दूसरे शब्दों में अपनी उपभोग वस्तुएं – मुख्यतः केवल उन वर्गों के हाथ से प्राप्त कर सकते हैं, जिन्हें उत्पाद पहले मिलता है – उत्पादक श्रमिक, औद्योगिक पूंजीपति और भूस्वामी। उस सीमा तक उनकी आय भौतिक रूप में मजदूरी (उत्पादक श्रमिकों की), लाभ और किराये से व्युत्पन्न है, और इसलिए वह इस मूल आमदनी से व्युत्पन्न प्रतीत होती है। किंतु दूसरी ओर इस अर्थ में व्युत्पन्न आय के प्राप्तिकर्ता उसे अपने सामाजिक कार्यों की बदौलत प्राप्त करते हैं – जैसे राजा, पुरोहित, प्रोफ़ेसर, वेश्या, सैनिक, इत्यादि – और इसलिए वे इन कार्यों को अपनी आय का मूल स्रोत मान सकते हैं।

२) – और यहां ऐडम स्मिथ की हास्यास्पद भूल अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है। पण्य वस्तुओं के मूल्य के संघटक अंशों की और उनमें निहित उत्पाद की मूल्य राशि की सही परिभाषा से शुरू करने और फिर यह दिखाने कि ये संघटक अंश किस प्रकार आय के इतने सारे विभिन्न स्रोत बन जाते हैं,[39] इस प्रकार आय को मूल्य से व्युत्पन्न दिखाने के बाद वह उलटी दिशा में चलना शुरू कर देते हैं – और यही उनकी प्रमुख धारणा बनी रहती है – और वह आय को "संघटक अंशों" से "सभी विनिमेय मूल्य के **मूल स्रोत**" में परिणत कर देते हैं और इस प्रकार वह अनगढ़ अर्थशास्त्र के लिए दरवाज़ा भरपूर खुला छोड़ देते हैं। (देखिये अपने रोशेर को।*)

३) पूंजी का स्थिर भाग

आइये, अब देखें कि ऐडम स्मिथ किस तरह माल मूल्य से पूंजी मूल्य का स्थिर भाग ग़ायब कर देने का प्रयत्न करते हैं।

"उदाहरण के लिए, अनाज की क़ीमत में एक भाग भूस्वामी का किराया अदा करता है।" मूल्य के इस घटक के उद्गम का इस परिस्थिति से कि वह भूस्वामी को दिया जाता है और किराये की शकल में उसकी आय बनता है, उसी प्रकार कोई संबंध नहीं है, जैसे मूल्य के अन्य घटकों के उद्गम का इस तथ्य से कोई संबंध नहीं है कि लाभ और मजदूरी के रूप में वे आय के स्रोत होते हैं।

"दूसरा [अंश] उसके उत्पादन में लगे श्रमिकों" [यहां उन्होंने जोड़ दिया है, "और कमकर मवेशियों"] के भरण-पोषण का ख़र्च या मजदूरी देता है, और तीसरा फ़ार्मर का मुनाफ़ा देता है। ये तीनों भाग या तो अविलंब या अंततोगत्वा अनाज की सारी क़ीमत का

---

[39] मैं यह वाक्य पांडुलिपि से ज्यों का त्यों दे रहा हूं, यद्यपि अपने वर्तमान संदर्भ में वह पहले जो कुछ कहा गया है और जो इसके तुरंत बाद कहा जा रहा है, उसका खंडन करता प्रतीत होता है। इस प्रतीयमान अंतर्विरोध का निराकरण आगे चलकर क्रमांक ४: 'ऐडम स्मिथ की कृतियों में पूंजी और आय' में किया गया है। – फ़े॰ एं॰

* मार्क्स व॰ रोशेर की *System der Volkswirtschaft. Band I: Die Grundlagen der Nationalökonomie*, Dritte, vermehrte und verbesserte Auflage. Stuttgart und Augsburg, 1858, की बात कर रहे हैं। – सं॰

निर्माण करते प्रतीत होते हैं (सचमुच **प्रतीत ही होते हैं**)।"[40] यह सारी क़ीमत, अर्थात उसके परिमाण का निर्धारण, तीन तरह के लोगों में उसके वितरण से पूर्णतः स्वतंत्र है। "शायद सोचा जाये कि काश्तकार के स्टॉक की प्रतिस्थापना के लिए या उसके कमकर मवेशियों और काश्त के दूसरे उपकरणों के घिसने-छीजने की क्षतिपूर्ति करने के लिए चौथा भाग भी आवश्यक होगा। लेकिन यह समझना चाहिए कि काश्त के किसी उपकरण की, जैसे कि कमकर घोड़े की क़ीमत ख़ुद भी इन्हीं तीन भागों से बनती है: उस जमीन का किराया, जिस पर उसका पोषण होता है, उसके पालन-पोषण का श्रम और उस काश्तकार का लाभ, जो इस ज़मीन का किराया और इस श्रम की मज़दूरी दोनों पेशगी देता है। अतः यद्यपि अनाज की क़ीमत घोड़े की क़ीमत और उसके भरण-पोषण का ख़र्च दोनों अदा कर सकती है, फिर भी सारी क़ीमत अपने को अब भी अविलंब या अंततोगत्वा किराये, श्रम" (उनका आशय मज़दूरी से है), "और लाभ के उन्हीं तीन भागों में वियोजित करती है।" (खंड १, अध्याय ६, पृष्ठ ४२।)

अपने विस्मयकारी सिद्धांत के समर्थन में ऐडम स्मिथ को जो कुछ कहना है, वह सब शब्दशः यही है। सबूत के नाम पर वह सिर्फ़ अपना वही दावा दोहराते हैं। मसलन, वह स्वीकार करते हैं कि अनाज की क़ीमत प+बे ही नहीं है, बल्कि उसमें अनाज के उत्पादन में खपे उत्पादन साधनों की क़ीमत भी, अतः वह पूंजी मूल्य भी समाहित है, जिसका निवेश फ़ार्मर श्रम शक्ति में नहीं करता है। लेकिन वह कहते हैं, इन सभी उत्पादन साधनों की क़ीमत अपने को प+बे में वैसे ही वियोजित कर लेती है, जैसे अनाज की क़ीमत। लेकिन वह यह जोड़ना भूल जाते हैं: और इसके अलावा उत्पादन साधनों के ख़ुद अपने निर्माण में उपभुक्त उत्पादन साधनों की क़ीमतों में भी वियोजित कर लेती है। वह हमें उत्पादन की एक शाखा से दूसरी शाखा और उससे तीसरी को निदेशित करते हैं। यह दावा कि पण्य वस्तुओं की सारी क़ीमत "अविलंब" अथवा "अंततोगत्वा" प+बे में अपने को वियोजित कर लेती है, उसी हालत में ढकोसला न होगा कि अगर वह यह दिखा सकें कि जिन पण्य वस्तुओं की क़ीमत अपने को अविलंब उ (उपभुक्त उत्पादन साधनों की क़ीमत)+प+बे में वियोजित कर लेती है, उनकी अंततोगत्वा उन पण्य वस्तुओं से क्षतिपूर्ति हो जाती है, जो "उपभुक्त उत्पादन साधनों" को पूर्णतः प्रतिस्थापित करती हैं और ख़ुद जिनका उत्पादन परिवर्ती पूंजी के व्यय मात्र से, अर्थात पूंजी के श्रम शक्ति में निवेश मात्र से होता है। उस हालत में इस अंतिम पण्य उत्पाद की क़ीमत अविलंब प+बे होगी। फलतः पूर्वोक्त की क़ीमत उ+प+बे, जहां उ पूंजी के स्थिर भाग का प्रतीक है, भी अंततोगत्वा प+बे में वियोज्य होगी। स्वयं ऐडम स्मिथ को विश्वास नहीं था कि उन्होंने स्कॉच अक़ीक संग्राहकों की मिसाल देकर ऐसा प्रमाण जुटा दिया है, जो उनके अनुसार १) किसी प्रकार के बेशी मूल्य का सृजन नहीं करते, केवल अपनी मजदूरी पैदा करते हैं, और २) कोई उत्पादन साधन काम में नहीं लाते (लेकिन वे अक़ीक ढोने के लिए टोकरी, झोले और अन्य पात्रों के रूप में उन्हें काम में लाते ही हैं)।

---

[40] हम इस बात को नज़रंदाज़ कर देते हैं कि यहां ऐडम स्मिथ अपनी मिसाल के चुनाव में ख़ासकर बदनसीब रहे हैं। अनाज का मूल्य अपने को मज़दूरी, लाभ और किराये में केवल इसलिए वियोजित करता है कि कमकर मवेशियों के खाये चारे को कमकर मवेशियों की मज़दूरी के रूप में और कमकर मवेशियों को उजरती श्रमिकों के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिससे नतीजे के तौर पर उजरती मज़दूर भी अपनी बारी में कमकर मवेशी के रूप में पेश किया गया है। (पांडुलिपि २ से जोड़ा अंश।—फ़्रे० एं०)

हम देख ही चुके हैं कि स्वयं ऐडम स्मिथ आगे चलकर अपने ही सिद्धांत का खंडन कर डालते हैं, किंतु अपने अंतर्विरोधों से अभिज्ञ हुए बिना। किंतु उन अंतर्विरोधों का स्रोत यथार्थतः उनके वैज्ञानिक पूर्वाधारों में ही मिलेगा। श्रम में परिवर्तित पूंजी अपने से अधिक बड़ा मूल्य पैदा करती है। कैसे? ऐडम स्मिथ कहते हैं: श्रमिकों द्वारा उत्पादन प्रक्रिया के दौरान जिन चीज़ों पर वे काम करते हैं, उन्हें ऐसा मूल्य प्रदान करने से, जो उनके अपने क्रय मूल्य के समतुल्य का ही निर्माण नहीं करता, वरन बेशी मूल्य (लाभ और किराये) का भी करता है, जो मज़दूरों के नहीं, उनके मालिकों के हिस्से में आता है। वे बस इतना ही हासिल करते हैं और इतना ही हासिल कर भी सकते हैं। जो बात एक दिन के औद्योगिक श्रम के लिए सही है, वह वर्ष के दौरान सारे पूंजीपति वर्ग द्वारा गतिशील किये श्रम के लिए भी सही है। अतः समाज द्वारा उत्पादित वार्षिक मूल्य की कुल राशि अपने को केवल प+बे में ही, ऐसे समतुल्य में, जिसके द्वारा मज़दूर अपनी श्रम शक्ति के क्रय पर व्ययित पूंजी मूल्य को प्रतिस्थापित करते हैं, और उतने अतिरिक्त मूल्य में ही वियोजित कर सकती है, जिसे उन्हें इसके अलावा अपने मालिकों को देना होता है। किंतु माल मूल्य के ये दोनों तत्व साथ ही पुनरुत्पादन में निरत विभिन्न वर्गों की आय के स्रोत भी होते हैं: पहला मजदूरी का, मज़दूरों की आय का स्रोत है; दूसरा बेशी मूल्य का स्रोत है, जिसके एक भाग को औद्योगिक पूंजीपति मुनाफ़े की शक्ल में रख लेता है और दूसरे भाग को किराये की, जो भूस्वामी की आय है, शक्ल में त्याग देता है। इसलिए जब वार्षिक मूल्य उत्पाद में प+बे के अलावा और कोई तत्व नहीं है, तब मूल्य का एक और अंश आयेगा कहां से? हम यहां साधारण पुनरुत्पादन को आधार बना रहे हैं। चूंकि वार्षिक श्रम की सारी मात्रा अपने को श्रम शक्ति पर व्ययित पूंजी मूल्य के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक श्रम में और बेशी मूल्य के सृजन के लिए आवश्यक श्रम में वियोजित कर लेती है, तब श्रम शक्ति पर व्यय न किये गये पूंजी मूल्य के उत्पादन के लिए श्रम कहां से आयेगा?

मामला इस प्रकार है:

१) ऐडम स्मिथ माल का मूल्य उजरती मज़दूर द्वारा अपने श्रम की वस्तु में जोड़ी श्रम की मात्रा से निर्धारित करते हैं। उसे वह अक्षरशः "सामग्री" कहते हैं, क्योंकि वह हस्तनिर्माण की चर्चा कर रहे हैं, जो स्वयं श्रम के उत्पाद को रूप देता है। लेकिन इससे बात बदल नहीं जाती। मजदूर किसी चीज़ में जो मूल्य जोड़ता है ("जोड़ता है" शब्दावली ऐडम स्मिथ की ही है), वह इससे पूर्णतः स्वतंत्र होता है कि जिस वस्तु में मूल्य जोड़ा जाता है, ख़ुद उसमें इस परिवर्धन **से पहले** कोई मूल्य था भी या नहीं। अतः मजदूर नया मूल्य माल रूप में पैदा करता है। ऐडम स्मिथ के अनुसार यह अंशतः उसकी मजदूरी का समतुल्य है और इसलिए यह अंश उसकी मजदूरी के मूल्य के परिमाण द्वारा निर्धारित होता है; उस परिमाण के अनुसार उसे अपनी मजदूरी के बराबर मूल्य का उत्पादन या पुनरुत्पादन करने के लिए श्रम जोड़ना पड़ता है। दूसरी ओर मज़दूर इस प्रकार निर्धारित सीमा के अलावा अधिक श्रम जोड़ता है और इससे उसे काम में लगानेवाले पूंजीपति के लिए बेशी मूल्य का सृजन होता है। यह बेशी मूल्य पूरा का पूरा पूंजीपति के पास रहता है या उसका कुछ हिस्सा वह और लोगों को दे देता है, इससे उजरती मजदूर द्वारा जोड़े बेशी मूल्य के गुणात्मक (अर्थात किसी भी तरह बेशी मूल्य के) अथवा मात्रात्मक (परिमाण के) निर्धारण में ज़रा भी फ़र्क़ नहीं पड़ता। यह उत्पाद के मूल्य के किसी भी और भाग जैसा ही मूल्य है, किंतु वह इस बात में भिन्न है कि मज़दूर को इसका कुछ भी समतुल्य नहीं मिला है, न आगे

मिलेगा, बल्कि इसके विपरीत पूंजीपति इस मूल्य को उसका कुछ भी समतुल्य दिये बिना हथिया लेगा। माल के कुल मूल्य को मजदूर द्वारा उसके उत्पादन में व्ययित श्रम राशि निर्धारित करती है; इस कुल मूल्य का एक भाग इस तथ्य द्वारा निर्धारित होता है कि वह मजदूरी के मूल्य के बराबर होता है, अर्थात उसका समतुल्य होता है। अतः उसका दूसरा भाग, बेशी मूल्य, भी इसी प्रकार अनिवार्यतः उत्पाद के कुल मूल्य वियुत मजदूरी के समतुल्य भाग के मूल्य के बराबर निर्धारित होता है; अतः माल के मूल्य के उस भाग से, जिसमें उसकी मजदूरी का समतुल्य सन्निहित होता है, अधिक के निर्माण में उत्पादित मूल्य के आधिक्य के बराबर होता है।

२) जो बात किसी अलग औद्योगिक प्रतिष्ठान में किसी अलग श्रमिक द्वारा उत्पादित माल के बारे में सही है, वह समूचे तौर पर व्यवसाय की सभी शाखाओं के वार्षिक उत्पाद के बारे में भी सही है। जो बात किसी अलग उत्पादक श्रमिक के दिन भर के काम के बारे में सही है, वह पूरे वर्ष के उस काम के बारे में भी सही है, जिसे उत्पादक श्रमिकों का पूरा वर्ग चालू करता है। इससे वार्षिक उत्पाद में व्ययित वार्षिक श्रम की मात्रा द्वारा निर्धारित कुल मूल्य "स्थापित" (ऐडम स्मिथ की शब्दावली) हो जाता है। और यह कुल मूल्य अपने को दो अंशों में वियोजित कर लेता है – वार्षिक श्रम के उस भाग द्वारा, जिससे श्रमिक वर्ग अपनी वार्षिक मजदूरी के समतुल्य का, वस्तुतः स्वयं इस मजदूरी का ही सृजन करता है, निर्धारित अंश और उस अतिरिक्त वार्षिक श्रम द्वारा निर्धारित दूसरा अंश, जिससे मजदूर पूंजीपति वर्ग के लिए बेशी मूल्य का सृजन करता है। अतः वार्षिक उत्पाद में समाहित वार्षिक मूल्य उत्पाद में केवल दो तत्व होते हैं: अर्थात मजदूर वर्ग द्वारा प्राप्त वार्षिक मजदूरी का समतुल्य और पूंजीपति वर्ग के लिए प्रति वर्ष दिया जानेवाला बेशी मूल्य। चूंकि वार्षिक मजदूरी मजदूर वर्ग की और बेशी मूल्य की वार्षिक मात्रा पूंजीपति वर्ग की आय है, इसलिए ये दोनों वार्षिक उपभोग निधि में सापेक्ष भाग व्यक्त करती हैं (साधारण पुनरुत्पादन का वर्णन करने में यह दृष्टिकोण सही है) और उसी में सिद्धिकृत होती हैं। इसलिए स्थिर पूंजी मूल्य के लिए, उत्पादन साधनों के रूप में कार्यरत पूंजी के पुनरुत्पादन के लिए कहीं कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। पर अपनी कृति की भूमिका में ऐडम स्मिथ स्पष्टतः कहते हैं कि माल के मूल्य के वे सभी अंश, जो आय के रूप में कार्य करते हैं, सामाजिक उपभोग निधि के लिए उद्दिष्ट श्रम के वार्षिक उत्पाद के अनुरूप होते हैं: "इन पहले चार खंडों का उद्देश्य इसकी व्याख्या करना है कि महान मानव समवाय की आय में क्या-क्या होता है अथवा उन निधियों का स्वरूप क्या रहा है, जो भिन्न-भिन्न युगों और राष्ट्रों में उनके वार्षिक उपभोग की पूर्ति करती आई हैं।" (पृष्ठ १२।) और भूमिका के पहले ही वाक्य में पढ़ने को मिलता है: "प्रत्येक राष्ट्र का वार्षिक श्रम वह निधि है, जो मूलतः उसके द्वारा साल में उपभुक्त सभी जीवनावश्यक वस्तुओं और सुविधाओं की पूर्ति करता है और जो सदा या तो उस श्रम के प्रत्यक्ष उत्पाद में या उस उत्पाद से दूसरे राष्ट्रों से जो कुछ ख़रीदा जाता है, उसमें समाहित होता है।" (पृष्ठ ११।)

अब ऐडम स्मिथ की पहली ग़लती वार्षिक **उत्पाद के मूल्य को नवोत्पादित वार्षिक मूल्य के** समीकृत करना है। अंतोक्त मूल्य पिछले साल के श्रम का उत्पाद **मात्र** है, प्रथमोक्त में वार्षिक उत्पाद के निर्माण में उपभुक्त किंतु **पिछले और अंशतः उससे पहले के भी वर्षों में** उत्पादित मूल्य के सभी तत्वों के अलावा वे उत्पादन साधन भी शामिल होते हैं, जिनका मूल्य केवल **पुनःप्रकट होता है**, किंतु जो, जहां तक उनके मूल्य का संबंध है, गत वर्ष में व्ययित

श्रम द्वारा न तो उत्पादित हुए हैं, और न पुनरुत्पादित। इस उलझाव के ज़रिये ऐडम स्मिथ वार्षिक उत्पाद के मूल्य के स्थिर अंश को ग़ायब कर देते हैं। इस उलझाव का आधार उनकी मूल धारणा में विद्यमान दूसरी भ्रांति है। वह स्वयं श्रम के द्विविध स्वरूप में भेद नहीं करते – एक वह, जो श्रम शक्ति व्यय करके मूल्य रचता है, दूसरा वह मूर्त उपयोगी श्रम, जो उपयोग वस्तुएं (उपयोग मूल्य) रचता है। वर्ष भर में निर्मित कुल माल राशि, दूसरे शब्दों में **कुल वार्षिक उत्पाद** गत वर्ष में कार्यरत **उपयोगी** श्रम का उत्पाद है; ये सब पण्य वस्तुएं केवल इस कारण विद्यमान हैं कि सामाजिक रूप से नियोजित श्रम उपयोगी श्रम की बहुशाखीय प्रणाली में व्यय किया गया था; केवल इस तथ्य के कारण ही उत्पादन साधनों का माल उत्पादन में उपभुक्त और नये दैहिक रूप में प्रकट होनेवाला मूल्य उन पण्य वस्तुओं के समग्र मूल्य में सुरक्षित रहता है। इस प्रकार कुल **वार्षिक उत्पाद** साल के दौरान व्ययित **उपयोगी** श्रम का परिणाम है; किंतु वार्षिक **उत्पाद के मूल्य** का केवल एक भाग ही साल के दौरान रचा गया है; यह भाग **वार्षिक मूल्य उत्पाद** है, जिसमें साल के दौरान गतिशील श्रम की मात्रा व्यक्त होती है।

इसलिए यदि ऐडम स्मिथ अभी उद्धृत वाक्य में कहते हैं: "प्रत्येक राष्ट्र का वार्षिक श्रम वह निधि है, जो मूलतः उसके द्वारा साल में उपभुक्त सभी जीवनावश्यक वस्तुओं और सुविधाओं की पूर्ति करता है, इत्यादि," तो वह केवल उपयोगी श्रम का एकांगी दृष्टिकोण अपनाते हैं, जिसने सचमुच इन सभी निर्वाह साधनों को उनका उपभोज्य रूप प्रदान किया है। किंतु वह यह भूल जाते हैं कि पूर्व वर्षों में पूरित श्रम वस्तुओं और उपकरणों की सहायता के बिना यह असंभव होता और इसलिए "वार्षिक श्रम" मूल्य तो रचता है, लेकिन जिस सारे उत्पाद का वह निर्माण करता है, उसका समग्र मूल्य नहीं रचता और नवोत्पादित मूल्य उत्पाद के मूल्य से अल्प होता है।

यद्यपि हम ऐडम स्मिथ की इस विश्लेषण में अपने सभी उत्तरवर्तियों की अपेक्षा और आगे न जाने के लिए निंदा नहीं कर सकते (यद्यपि प्रकृतितंत्रवादियों का सही दिशा में क़दम उठाना तब भी प्रत्यक्ष होने लगा था), लेकिन वह आगे चलकर उलझन में फंस जाते हैं और यह मुख्यतः इसलिए कि उनकी सामान्यतः माल मूल्य की "गूढ़" धारणा का सतही धारणाएं निरंतर उल्लघंन करती रहती हैं, जो कुल मिलाकर उन पर हावी रहती हैं। फिर भी उनके वैज्ञानिक सहज बोध के कारण उनका गूढ़ दृष्टिकोण समय-समय पर पुनः प्रकट होता रहता है।

४) ऐडम स्मिथ के यहां पूंजी और आय

प्रत्येक माल के (अतः वार्षिक उत्पाद के भी) मूल्य का जो भाग केवल मज़दूरी का समतुल्य होता है, वह पूंजीपति द्वारा श्रम शक्ति के लिए पेशगी दी जानेवाली पूंजी के बराबर होता है, अर्थात कुल पेशगी पूंजी के परिवर्ती अंश के बराबर होता है। पूंजीपति उजरती श्रमिकों द्वारा पूरित पण्य वस्तुओं के नवोत्पादित मूल्य के एक अंश के ज़रिये पूंजी मूल्य का यह भाग वसूल कर लेता है। परिवर्ती पूंजी चाहे इस अर्थ में पेशगी दी जाती है कि पूंजीपति उस उत्पाद में मज़दूर के हिस्से के लिए, जो अभी बिक्री के लिए तैयार नहीं है, या तैयार होने पर भी अभी पूंजीपति द्वारा बेचा नहीं गया है, उसकी द्रव्य में अदायगी करता है और चाहे वह श्रमिक द्वारा पहले पूरित पण्य वस्तुओं की बिक्री से प्राप्त द्रव्य से अदायगी करता है, या

चाहे उधार के ज़रिये उसने पहले ही यह पैसा निकाल लिया है – इन सभी मामलों में पूंजीपति परिवर्ती पूंजी व्यय करता है, जो द्रव्य रूप में मज़दूरों के हाथ में पहुंच जाती है और दूसरी ओर उसके पास इस पूंजी मूल्य का समतुल्य उसकी पण्य वस्तुओं के उस मूल्यांश में रहता है, जिसमें मज़दूर ने उसके कुल मूल्य का अपना हिस्सा फिर से उत्पादित कर दिया है, दूसरे शब्दों में, जिसमें उसने अपनी ही मज़दूरी के मूल्य का उत्पादन कर दिया है। मज़दूर को अपने ही उत्पाद के दैहिक रूप में यह मूल्यांश देने के बदले पूंजीपति उसकी द्रव्य रूप में अदायगी करता है। पूंजीपति के लिए उसके पेशगी पूंजी मूल्य का परिवर्ती अंश अब माल रूप में विद्यमान है, जब कि मज़दूर को अपनी बिकी हुई श्रम शक्ति का समतुल्य द्रव्य रूप में प्राप्त हो गया है।

अब जहां पूंजीपति द्वारा पेशगी दी पूंजी का वह भाग, जो श्रम शक्ति की ख़रीद के ज़रिये परिवर्ती पूंजी में परिवर्तित हो गया है, स्वयं उत्पादन प्रक्रिया में कार्यशील श्रम शक्ति की तरह कार्य करता है और इस शक्ति के व्यय द्वारा माल के रूप में फिर से नये मूल्य का उत्पादन होता है, अर्थात वह पुनरुत्पादित होता है, अतः पेशगी पूंजी मूल्य का पुनरुत्पादन अथवा नवोत्पादन होता है, वहां मज़दूर अपनी बिकी हुई श्रम शक्ति का मूल्य या उसकी क़ीमत निर्वाह साधनों पर, अपनी श्रम शक्ति के पुनरुत्पादन साधनों पर ख़र्च करता है। परिवर्ती पूंजी के बराबर धन राशि उसकी आय, अतः उसकी आमदनी होती है, जो तभी तक चलती है कि जब तक वह पूंजीपति को अपनी श्रम शक्ति बेच सकता है।

उजरती मज़दूर की पण्य वस्तु – उसकी श्रम शक्ति – माल का कार्य वहीं तक करती है, जहां तक उसका पूंजीपति की पूंजी में समावेश होता है, यानी वह पूंजी की तरह कार्य करती है; दूसरी ओर पूंजीपति जो पूंजी श्रम शक्ति की ख़रीद में द्रव्य पूंजी के रूप में ख़र्च करता है, वह श्रम शक्ति के विक्रेता, उजरती मज़दूर के हाथ में आय का कार्य करती है।

यहां परिचलन और उत्पादन की विविध प्रक्रियाओं का परस्पर मिश्रण होता है, जिनमें ऐडम स्मिथ विभेद नहीं करते।

पहला : परिचलन प्रक्रिया से संबंधित कार्य। मज़दूर अपना माल – श्रम शक्ति – पूंजीपति को बेचता है; पूंजीपति उसे जिस धन से ख़रीदता है, वह उसके दृष्टिकोण से बेशी मूल्य के उत्पादन के लिए निवेशित धन, अतः द्रव्य पूंजी है; वह ख़र्च नहीं की जाती, वरन पेशगी दी जाती है। ("पेशगी" – प्रकृतितंत्रवादियों के avance – का यही वास्तविक अर्थ है, पूंजीपति द्रव्य चाहे जहां से लाये। पूंजीपति उत्पादन प्रक्रिया के हेतु भी मूल्य अदा करता है, वह उसके दृष्टिकोण से पेशगी दिया जाता है, चाहे यह पहले हो या post festum; वह स्वयं उत्पादन प्रक्रिया के लिए पेशगी दिया जाता है।) यहां भी वैसा ही होता है, जैसा माल की और किसी भी बिक्री में होता है। विक्रेता उपयोग मूल्य (यहां अपनी श्रम शक्ति) देता है और द्रव्य रूप में उसका मूल्य पाता है (उसकी क़ीमत का सिद्धिकरण करता है); ग्राहक अपना धन देता है और बदले में स्वयं माल – यहां श्रम शक्ति – प्राप्त करता है।

दूसरा : उत्पादन प्रक्रिया में ख़रीदी हुई श्रम शक्ति अब कार्यरत पूंजी का अंश बन जाती है और स्वयं मज़दूर यहां केवल इस पूंजी के एक विशेष दैहिक रूप का काम करता है, जो पूंजी के उन तत्वों से भिन्न होता है, जो उत्पादन साधनों के दैहिक रूप में विद्यमान होते हैं। इस प्रक्रिया के दौरान अपनी श्रम शक्ति ख़र्च करके मज़दूर उत्पादन साधनों में मूल्य जोड़ता है, जिसे वह अपनी श्रम शक्ति के मूल्य के (बेशी मूल्य से अलग) बराबर उत्पाद में तबदील करता है; इसलिए वह पूंजीपति के लिए माल के रूप में उसकी पूंजी के उस अंश

का पुनरुत्पादन करता है, जो उसे मज़दूरी के रूप में पेशगी दिया गया है या दिया जायेगा; वह पूंजीपति के लिए इस मजदूरी का समतुल्य पैदा करता है; अतः वह पूंजीपति के लिए उस पूंजी का पुनरुत्पादन करता है, जिसे पूंजीपति श्रम शक्ति ख़रीदने के लिए फिर "पेशगी" दे सकता है।

तीसरा: माल की बिक्री में उसके विक्रय मूल्य का एक भाग पूंजीपति द्वारा पेशगी परिवर्ती पूंजी को प्रतिस्थापित करता है, जिससे एक ओर वह फिर से श्रम शक्ति ख़रीदने के और दूसरी ओर मज़दूर उसे फिर से बेचने के योग्य हो जाता है।

मालों के सभी क्रय-विक्रय में – जहां तक सिर्फ़ इन लेन-देनों की ही बात है – यह महत्वहीन है कि विक्रेता को अपने माल से जो प्राप्ति होती है, उसका क्या होता है, और ग्राहक के हाथों में उसकी ख़रीदी हुई उपयोग वस्तुओं का क्या होता है। इसलिए जहां तक केवल परिचलन प्रक्रिया का संबंध है, यह महत्वहीन है कि पूंजीपति द्वारा ख़रीदी श्रम शक्ति उसके लिए पूंजी मूल्य का पुनरुत्पादन करती है, और दूसरी ओर मज़दूर अपनी श्रम शक्ति के क्रय मूल्य के रूप में जो धन पाता है, वह उसकी आय बनता है। मजदूर के वाणिज्यिक माल – उसकी श्रम शक्ति – के मूल्य के परिमाण पर न तो इसका कोई असर पड़ता है कि वह उसके लिए "आय" बनता है, न इसका कि ग्राहक द्वारा इस वाणिज्यिक माल का उपयोग उसके लिए पूंजी मूल्य का पुनरुत्पादन करता है।

चूंकि श्रम शक्ति का मूल्य – अर्थात इस पण्य वस्तु का उचित विक्रय मूल्य – उसके पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक श्रम की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है और यहां श्रम की यह मात्रा स्वयं श्रम की उस मात्रा से निर्धारित होती है, जो मज़दूर के आवश्यक निर्वाह साधन पैदा करने के लिए, अतः उसके अस्तित्व को बनाये रखने के लिए दरकार होती है, इसलिए मज़दूरी वह आय बन जाती है, जिस पर मज़दूर को निर्वाह करना होता है।

ऐडम स्मिथ की बात बिल्कुल ग़लत है, जब वह कहते हैं (पृष्ठ २२३): "स्टॉक का **वह भाग**, जो उत्पादक श्रम के भरण-पोषण में व्यय किया जाता है ... उसके [पूंजीपति के] लिए पूंजी का कार्य कर चुकने के बाद ... उनकी [मज़दूरों की] आय बनता है।" पूंजीपति अपने द्वारा ख़रीदी श्रम शक्ति के लिए जो **द्रव्य** देता है, वह "उसके लिए पूंजी का कार्य करता है", क्योंकि इस प्रकार वह अपनी पूंजी के भौतिक घटकों में श्रम शक्ति का समावेश करता है और इस तरह अपनी पूंजी को इस योग्य बनाता है कि वह पूर्ण रूप से उत्पादक पूंजी का कार्य करे। यह भेद करना आवश्यक है: श्रम शक्ति मज़दूर के हाथ में **माल** है, पूंजी नहीं और वह उसके लिए तभी तक आय होती है, जब तक वह उसकी बिक्री की लगातार पुनरावृत्ति कर सकता है; वह पूंजी का कार्य बिक जाने **के बाद** पूंजीपति के हाथ में स्वयं उत्पादन प्रक्रिया के दौरान करती है। जो चीज़ यहां दो बार काम देती है, वह श्रम शक्ति है: मज़दूर के हाथ में माल की तरह, जो अपने मूल्य पर बेची जाती है; उसे ख़रीदनेवाले पूंजीपति के हाथ में शक्ति उत्पादक मूल्य तथा उपयोग मूल्य के रूप में। किंतु मज़दूर को पूंजीपति से धन की प्राप्ति तब ही होती है, जब वह उसे अपनी श्रम शक्ति का उपयोग दे चुका होता है, जब श्रम के उत्पाद के मूल्य में उसका सिद्धिकरण हो चुका होता है। पूंजीपति को यह मूल्य उसकी अदायगी करने से पहले ही मिल चुका होता है। इसलिए दो बार कार्य द्रव्य नहीं करता: पहले परिवर्ती पूंजी के द्रव्य रूप में और फिर मज़दूरी के रूप में। इसके विपरीत यह श्रम शक्ति है, जिसने दो बार कार्य किया है: पहले श्रम शक्ति की बिक्री के समय **माल** की तरह (मज़दूरी की

दी जानेवाली रक़म के निर्धारण में द्रव्य केवल मूल्य के अधिकल्पित माप का काम करता है और उसका पूंजीपति के हाथ में होना भी ज़रूरी नहीं है) ; दूसरी बार उत्पादन प्रक्रिया में, जिसमें वह **पूंजी** की तरह, अर्थात पूंजीपति के हाथ में और मूल्य तथा उपयोग मूल्य का सृजन करनेवाले तत्व की तरह कार्य करती है। मज़दूर को जो दिया जाना है, पूंजीपति द्वारा उसके द्रव्य रूप में अदा किये जाने के पहले ही श्रम शक्ति ही माल रूप में उस समतुल्य की पूर्ति कर चुकी है। इसलिए स्वयं मज़दूर ही उस निधि का निर्माण करता है, जिससे पूंजीपति उसकी अदायगी करता है। लेकिन बात इतनी ही नहीं है।

मज़दूर जो धन पाता है, उसे वह अपनी श्रम शक्ति को बनाये रखने के लिए, – अथवा पूंजीपति वर्ग और मज़दूर वर्ग को उनकी समग्रता में देखते हुए – पूंजीपति के लिए उस उपकरण को बनाये रखने के लिए ख़र्च करता है, जिसके बूते पर ही वह पूंजीपति बना रह सकता है।

इस प्रकार श्रम शक्ति का सतत क्रय-विक्रय पूंजी के एक तत्व के रूप में श्रम शक्ति को स्थायित्व प्रदान करता है, जिसकी बदौलत पूंजी पण्य वस्तुओं की, उपयोग वस्तुओं की, जिनका मूल्य होता है, स्रष्टा बनकर प्रकट होती है, इसके अलावा, जिसकी बदौलत पूंजी का वह भाग, जो श्रम शक्ति ख़रीदता है, श्रम शक्ति के अपने ही उत्पाद द्वारा निरंतर बहाल होता रहता है और फलतः स्वयं मज़दूर निरंतर पूंजी की उस निधि का निर्माण करता रहता है, जिसमें से उसे अदायगी की जाती है। दूसरी ओर श्रम शक्ति की निरंतर बिक्री मज़दूर के भरण-पोषण का अपने को निरंतर नवीकृत करता स्रोत बन जाती है और इसलिए उसकी श्रम शक्ति उस शक्ति के रूप में प्रकट होती है, जिसके ज़रिये वह अपनी गुज़र के लिए आय हासिल करता है। इस मामले में आय का मतलब माल (श्रम शक्ति) की निरंतर बिक्री द्वारा जनित मूल्यों के विनियोजन के सिवा और कुछ नहीं है और ये मूल्य केवल बेचे जानेवाले माल के निरंतर पुनरुत्पादन के ही काम आते हैं। और इस हद तक स्मिथ का यह कहना सही है कि स्वयं मज़दूर द्वारा सृजित उत्पाद का वह मूल्यांश उसकी आय का स्रोत बन जाता है, जिसके लिए पूंजीपति उसे मज़दूरी के रूप में समतुल्य देता है। किंतु इससे माल के इस मूल्यांश का स्वरूप अथवा परिमाण नहीं बदल जाता, जैसे उत्पादन साधनों का मूल्य इससे नहीं बदल जाता कि वे पूंजी मूल्यों का कार्य करते हैं अथवा सरल रेखा का स्वरूप और परिमाण इससे नहीं बदल जाता कि वह किसी त्रिकोण की आधार रेखा या किसी दीर्घवृत्त का व्यास है। श्रम शक्ति का मूल्य वैसे ही नितांत स्वतंत्र रूप में सुनिश्चित रहता है, जैसे उत्पादन साधनों का। माल का यह मूल्यांश **न** तो ऐसी आय **होता है,** जो स्वतंत्र उपादान की तरह इस मूल्यांश को बनाती हो, **न** वह अपने को आय में ही **वियोजित करता है**। जहां मज़दूर द्वारा लगातार पुनरुत्पादित यह नया मूल्य उसके लिए आमदनी का स्रोत तो होता है, किंतु इसके विपरीत उसकी आय उसके द्वारा उत्पन्न इस नये मूल्य का घटक नहीं बनती। उसके द्वारा सृजित नये मूल्य का जो हिस्सा उसे अदा किया जाता है, उसका परिमाण उसकी आय के मूल्य परिमाण को निर्धारित करता है, न कि इसका उलटा होता है। यह तथ्य कि नवसृजित मूल्य का यह अंश उसके लिए आय होता है, केवल यह इंगित करता है कि उसका होता क्या है, वह उसके उपयोग का स्वरूप दिखलाता है और उसकी उत्पत्ति से उसका वैसे ही कोई संबंध नहीं होता, जैसे अन्य किसी मूल्य की उत्पत्ति से भी नहीं होता। यदि मेरी प्राप्ति हफ़्ते में दस शिलिंग है, तो इससे दस शिलिंग के मूल्य की **प्रकृति** में कोई परिवर्तन नहीं होता, न उनके मूल्य के **परिमाण** में होता है। किसी भी अन्य माल की ही भांति श्रम शक्ति का मूल्य भी उसके

पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक श्रम की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है; इस श्रम की मात्रा मजदूर के लिए आवश्यक निर्वाह साधनों के मूल्य द्वारा निर्धारित होती है, इसलिए वह उसके जीवन की परिस्थितियों के ही पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक श्रम के बराबर होती है–यह इस माल (श्रम शक्ति) की एक विशिष्टता है, लेकिन यह विशिष्टता इस तथ्य से कुछ अधिक नहीं कि कमकर मवेशियों का मूल्य उनके भरण-पोषण के लिए आवश्यक निर्वाह साधनों के मूल्य द्वारा, अर्थात मानव श्रम की उस मात्रा द्वारा निर्धारित होता है, जो इन निर्वाह साधनों के उत्पादन के लिए दरकार होती है।

किंतु यह "आय" का संवर्ग ही ऐडम स्मिथ के यहां सारे हानिकर उलझाव का कारण है। आय के विभिन्न प्रकार उनके यहां प्रति वर्ष उत्पादित नवसृजित माल मूल्य के "संघटक अंश" बन जाते हैं, जब कि इसके विपरीत यह माल मूल्य **पूंजीपति के लिए** अपने को जिन दो भागों में वियोजित करता है, वे आय के स्रोत बन जाते हैं–श्रम की ख़रीद के समय द्रव्य रूप में पेशगी दी गई उसकी परिवर्ती पूंजी का समतुल्य और मूल्य का दूसरा अंश, बेशी मूल्य, जो इसी प्रकार उसी का है, लेकिन उसके लिए उसे कुछ भी ख़र्च करना नहीं पड़ा। परिवर्ती पूंजी का समतुल्य श्रम शक्ति के लिए पुनः पेशगी दिया जाता है और उस सीमा तक मजदूरी के रूप में मजदूर की आय बनता है। चूंकि दूसरा अंश–बेशी मूल्य–पूंजीपति के लिए किसी भी पेशगी पूंजी के प्रतिस्थापन के काम नहीं आता, इसलिए वह उसके द्वारा उपभोग वस्तुओं पर (आवश्यक वस्तुओं और विलास वस्तुओं, दोनों पर) ख़र्च किया जा सकता है अथवा किसी प्रकार का पूंजी मूल्य बनने के बदले आय की तरह खपाया जा सकता है। स्वयं माल मूल्य इस आय की प्राथमिक शर्त है, और उसके संघटक अंश पूंजीपति के दृष्टिकोण से केवल इस सीमा तक भिन्न होते हैं कि वे उसके द्वारा पेशगी दी परिवर्ती पूंजी मूल्य के समतुल्य हैं अथवा उससे अधिक हैं। दोनों में माल के उत्पादन के दौरान व्ययित श्रम द्वारा गतिशील की गई श्रम शक्ति के अलावा और कुछ समाहित नहीं होता। उनमें परिव्यय, श्रम का परिव्यय समाहित है, आय अथवा आमदनी नहीं।

उस quid pro quo के अनुसार, जिससे माल मूल्य के आय का स्रोत बनने के बजाय आय माल मूल्य का स्रोत बन जाती है, माल का मूल्य अब विभिन्न प्रकार की आमदनी से "रचित" प्रतीत होता है; इन आयों का एक दूसरे से स्वतंत्र निर्धारण होता है, और माल का कुल मूल्य इन आयों के मूल्यों के योग से निर्धारित होता है। किंतु अब प्रश्न यह है कि आयों में से, जिन्हें माल मूल्य को बनानेवाली माना गया है, प्रत्येक का मूल्य कैसे निर्धारित किया जाये। मजदूरी के मामले में ऐसा किया जा सकता है, क्योंकि मजदूरी अपने माल, श्रम शक्ति का मूल्य प्रकट करती है, और यह मूल्य (अन्य सभी मालों के मूल्य की ही तरह) उसके पुनरुत्पादन के लिए दरकार श्रम द्वारा निर्धार्य होता है। किंतु बेशी मूल्य अथवा, जैसा कि ऐडम स्मिथ कहेंगे, लाभ और किराया, उसके ये दो रूप कैसे निर्धारित होंगे? यहां ऐडम स्मिथ केवल खोखली शब्दावली पेश कर पाते हैं। कभी वह मजदूरी और बेशी मूल्य (अथवा मजदूरी और लाभ) को मालों के मूल्य या क़ीमत के संघटक अंशों के रूप में प्रस्तुत करते हैं, तो कभी–और लगभग उसी सांस में–उन अंशों के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिनमें मालों की क़ीमत "स्वयं को वियोजित कर लेती है", किंतु इसके उलटे इसका यह मतलब है कि माल मूल्य पहले से दी हुई चीज़ है और इस दिये हुए मूल्य के विभिन्न भाग विभिन्न प्रकार की आय के रूप में उत्पादक प्रक्रिया में लगे हुए विभिन्न व्यक्तियों के हिस्से में आते हैं। यह

बात किसी प्रकार उस धारणा के तद्रूप नहीं है कि मूल्य इन तीन "संघटक अंशों से संरचित होता है"। यदि तीन भिन्न सरल रेखाओं की लंबाई मैं स्वतंत्र रूप में निर्धारित करूं और फिर इन तीनों रेखाओं को "संघटक अंश" मानकर इनसे चौथी सरल रेखा बनाऊं, जो इनके योग के बराबर हो, तो यह किसी प्रकार वैसी ही कार्य पद्धति न होगी, जैसी जब मेरे सामने कोई दी हुई सरल रेखा है और मैं किसी उद्देश्य से उसे विभाजित करता हूं, यानी कहें कि तीन भिन्न भागों में उसे "वियोजित" करता हूं। पहली स्थिति में रेखा की लंबाई उन तीनों रेखाओं की लंबाई के साथ पूर्णतया बदलती है, जिनका वह योग है; दूसरी स्थिति में रेखा के तीनों अंशों की लंबाई इस तथ्य द्वारा आरंभ से ही सीमित रहती है कि वे एक दी हुई लंबाई की रेखा के अंश हैं।

वस्तुतः, यदि हम स्मिथ के निरूपण के उस भाग पर जमे रहें, जो सही है, **वार्षिक श्रम द्वारा नव सृजित** और वार्षिक सामाजिक पण्य उत्पाद में समाहित **मूल्य** (वैसे ही, जैसे प्रत्येक अलग पण्य वस्तु में अथवा प्रत्येक दैनिक, साप्ताहिक, आदि उत्पाद में) पेशगी परिवर्ती पूंजी के मूल्य (अर्थात श्रम शक्ति ख़रीदने के लिए अभीष्ट मूल्यांश) तथा उस बेशी मूल्य के योग के बराबर होता है, जिसका पूंजीपति अपने वैयक्तिक उपभोग साधनों में सिद्धिकरण कर सकता है – क्योंकि यहां साधारण पुनरुत्पादन को मान लिया गया है और यह भी कि अन्य परिस्थितियां यथावत हैं; इसके अलावा, अगर हम यह भी ध्यान में रखें कि ऐडम स्मिथ उस श्रम को, जो मूल्य रचता है, श्रम शक्ति का व्यय है और उस श्रम को, जो उपयोग मूल्य रचता है, अर्थात उचित और उपयोगी रूप में व्यय किया जाता है, आपस में उलझा देते हैं, तो सारी धारणा का निचोड़ यह होता है: प्रत्येक माल का मूल्य श्रम का उत्पाद होता है; अतः यह बात वार्षिक श्रम के उत्पाद के मूल्य के बारे में अथवा समाज के वार्षिक पण्य उत्पाद के मूल्य के बारे में भी सही है। लेकिन चूंकि सभी श्रम अपने को १) आवश्यक श्रम काल में, जिसके दौरान मज़दूर अपनी श्रम शक्ति की ख़रीद के लिए पेशगी पूंजी के समतुल्य मात्र का पुनरुत्पादन करता है, और २) बेशी श्रम में वियोजित करता है, जिसके द्वारा मज़दूर पूंजीपति को ऐसे मूल्य की पूर्ति करता है, जिसका वह कुछ समतुल्य नहीं देता, अतः बेशी मूल्य की पूर्ति करता है, इसलिए इससे यह नतीजा निकलता है कि समस्त माल मूल्य स्वयं को केवल इन दो संघटक अंशों में वियोजित कर सकता है, जिससे कि अंततोगत्वा वह मज़दूर वर्ग के लिए मज़दूरी के रूप में और पूंजीपति वर्ग के लिए बेशी मूल्य के रूप में आय बनता है। जहां तक स्थिर पूंजी मूल्य का, अर्थात वार्षिक उत्पाद के निर्माण में उपभुक्त उत्पादन साधनों के मूल्य का संबंध है, इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती कि यह मूल्य किस प्रकार नये उत्पाद के मूल्य में प्रवेश कर जाता है (सिवा इस शब्दावली के कि पूंजीपति अपना माल बेचते समय उसे ग्राहक से वसूल करता है), लेकिन चूंकि उत्पादन साधन स्वयं भी श्रम के उत्पाद हैं, इसलिए अंततोगत्वा अपनी बारी में मूल्य के इस अंश में भी परिवर्ती पूंजी और बेशी मूल्य का, आवश्यक श्रम के उत्पाद का और बेशी श्रम के उत्पाद का समतुल्य समाहित हो सकता है। इस बात से कि इन उत्पादन साधनों के मूल्य उनके नियोजकों के हाथ में पूंजी मूल्यों की तरह कार्य करते हैं, उनके – अगर हम मामले की तह तक जायें, तो – "मूलतः" दूसरों के हाथ में मूल्य के उन्हीं दो अंशों में, अतः आय के दो भिन्न स्रोतों में स्वयं को वियोजित कर लेने में कोई बाधा नहीं आती – भले ही ऐसा उन्होंने कभी पहले किया हो।

यहां एक बात सही है: यह बात प्रत्येक वैयक्तिक पूंजी पर अलग-अलग, अतः प्रत्येक अलग

पूंजीपति के दृष्टिकोण से विचार करने पर अपने को जिस तरह से पेश करती है, सामाजिक पूंजी की गति में, अर्थात वैयक्तिक पूंजियों की समग्रता की गति में वह अपने को दूसरे ढंग से पेश करती है। वैयक्तिक पूंजीपति के लिए माल का मूल्य स्वयं को १) एक स्थिर तत्व में (या, जैसा कि ऐडम स्मिथ कहते हैं – चौथे तत्व में) और २) मजदूरी और बेशी मूल्य के योग में अथवा मजदूरी, लाभ और किराये में वियोजित करता है। किंतु समाज के दृष्टिकोण से ऐडम स्मिथ का चौथा तत्व, स्थिर पूंजी मूल्य, ग़ायब हो जाता है।

५) उपसंहार

यह असंगत सूत्र कि तीन तरह की आयें – मजदूरी, लाभ और किराया – मालों के मूल्य के तीन "संघटक अंश" हैं, ऐडम स्मिथ के यहां इस अधिक तर्कसंगत प्रतीत होनेवाले विचार से उत्पन्न होता है कि मालों का मूल्य इन तीन संघटक अंशों में "स्वयं को वियोजित कर लेता है"। यह भी उसी प्रकार ग़लत है, भले ही यह मान लिया जाये कि मालों का मूल्य केवल उपभुक्त श्रम शक्ति के समतुल्य और उसके द्वारा सृजित बेशी मूल्य में ही बांटा जा सकता है। किंतु यहां भी भ्रांति का आधार अधिक गहरा, अधिक वास्तविक है। पूंजीवादी उत्पादन इस तथ्य पर आधारित है कि उत्पादक मजदूर ख़ुद अपनी श्रम शक्ति पूंजीपति को अपने माल के रूप में बेचता है, जिसके हाथ में वह तब उसकी उत्पादक पूंजी के एक तत्व के रूप में ही कार्य करती है। यह लेन-देन, जो परिचलन से – श्रम शक्ति के क्रय-विक्रय से – संबंधित है, उत्पादन प्रक्रिया का समारंभ ही नहीं करता, वरन अप्रत्यक्ष रूप में उसका विशिष्ट स्वरूप भी निर्धारित करता है। उपयोग मूल्य का और माल तक का उत्पादन (क्योंकि यह स्वतंत्र उत्पादक मजदूरों द्वारा भी किया जा सकता है) यहां पूंजीपति के लिए निरपेक्ष और सापेक्ष बेशी मूल्य पैदा करने का साधन मात्र है। इस कारण हम उत्पादन प्रक्रिया के विश्लेषण में देख चुके हैं कि निरपेक्ष और सापेक्ष बेशी मूल्य का उत्पादन १) दैनिक श्रम प्रक्रिया की अवधि को और २) पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया के समस्त सामाजिक और प्राविधिक संरूप को निर्धारित करता है। इस प्रक्रिया के भीतर मूल्य (स्थिर पूंजी मूल्य) के परिरक्षण मात्र, पेशगी मूल्य (श्रम शक्ति के समतुल्य) के वास्तविक पुनरुत्पादन और बेशी मूल्य के, अर्थात उस मूल्य के, जिसके लिए पूंजीपति ने न तो पहले कोई समतुल्य पेशगी दिया था, न post festum करेगा, उत्पादन का भेद चरितार्थ होता है।

यद्यपि बेशी मूल्य – पूंजीपति द्वारा पेशगी दिये मूल्य के समतुल्य से अधिक मूल्य – के हस्तगतकरण का समारंभ श्रम शक्ति के क्रय-विक्रय से शुरू हो जाता है, फिर भी वह ऐसी क्रिया है, जो स्वयं उत्पादन प्रक्रिया के अंतर्गत संपन्न होती है और उसका अनिवार्य अंग होती है।

प्रारंभिक क्रिया, जो एक परिचलन क्रिया – श्रम शक्ति की ख़रीद-फ़रोख़्त – है, स्वयं उत्पादन **तत्वों** के सामाजिक **उत्पाद** के वितरण के पहले हुए और उसकी पूर्वापेक्षा करनेवाले वितरण पर, अर्थात श्रमिक के माल के रूप में श्रम शक्ति के ग़ैरश्रमिकों की संपत्ति के रूप में उत्पादन साधनों से पृथक्करण पर आधारित है।

किंतु बेशी मूल्य का यह हस्तगतकरण अथवा मूल्य के उत्पादन का पेशगी मल्य के पुनरुत्पादन, और ऐसे नये मूल्य (बेशी मूल्य) के उत्पादन में, जो किसी समतुल्य को

प्रतिस्थापित नहीं करता, यह पृथक्करण स्वयं मूल्य के सारतत्व को अथवा मूल्य के उत्पादन की प्रकृति को किसी भी प्रकार नहीं बदलता। मूल्य का सारतत्व व्ययित श्रम शक्ति के अलावा और कुछ नहीं होता और ऐसा ही बना रहता है–इस श्रम के विशिष्ट, उपयोगी स्वरूप से स्वतंत्र श्रम–और मूल्य का उत्पादन इस व्यय की प्रक्रिया के अलावा और कुछ नहीं है। उदाहरण के लिए, एक भूदास छः दिन अपनी श्रम शक्ति व्यय करता है, छः दिन श्रम करता है और अपने में इस व्यय का तथ्य इस परिस्थिति से नहीं बदल जाता कि वह संभवतः तीन दिन अपने लिए ख़ुद अपने खेत पर काम करता है और तीन दिन अपने मालिक के लिए उसके खेत पर काम करता है। जो श्रम वह अपने लिए स्वेच्छा से करता है और जो बेगार अपने मालिक के लिए करता है, दोनों समान रूप से श्रम हैं; जहां तक इस श्रम पर मूल्यों के संदर्भ में अथवा उसके द्वारा रचे हुए उपयोगी पदार्थों के संदर्भ में विचार किया जाता है, उसके श्रम के छः दिनों में कोई अंतर नहीं है। जो अंतर है, वह केवल उन भिन्न परिस्थितियों से संबंधित है, जिनमें उसके छः दिन के श्रम काल के दोनों अर्धांशों के दौरान उसकी श्रम शक्ति व्यय होती है। यही बात उजरती मजदूर के आवश्यक और बेशी श्रम पर भी लागू होती है।

उत्पादन प्रक्रिया की समाप्ति माल में होती है। उसके निर्माण में श्रम शक्ति व्यय की गई थी, यह तथ्य अब माल का एक भौतिक गुण बनकर, मूल्य धारण करने का गुण बनकर प्रकट होता है। इस मूल्य का परिमाण व्ययित श्रम की मात्रा से मापा जाता है; माल का मूल्य इसके सिवा और किसी में स्वयं को वियोजित नहीं करता और न उसमें और कोई चीज़ ही समाहित होती है। यदि मैंने निश्चित लंबाई की सरल रेखा खींची है, तो मैंने पहले तो आरेखन कला के सहारे एक सरल रेखा "उत्पन्न" की है (बेशक केवल प्रतीक रूप में, जो मुझे पहले से मालूम है), जिसका प्रयोग किन्हीं नियमों (सिद्धांतों) के अनुसार किया जाता है, जो मुझसे स्वतंत्र हैं। यदि इस रेखा को (किसी समस्या के अनुरूप) मैं तीन भागों में विभाजित करूं, तो इनमें से प्रत्येक भाग सरल रेखा बना रहता है और जिसके वे भाग हैं, वह सारी रेखा इस विभाजन के कारण स्वयं को सरल रेखा से भिन्न किसी और चीज़ में, यथा किसी प्रकार की वक्र रेखा में वियोजित नहीं कर लेती। और न मैं दी हुई लंबाई की किसी रेखा को इस ढंग से विभाजित कर सकता हूं कि उसके भागों का योग स्वयं अविभाजित रेखा से अधिक हो; अतः अविभाजित रेखा की लंबाई, उसके भागों की लंबाई को मनमाने ढंग से निश्चित कर देने से निर्धारित नहीं होती। इसके विपरीत इन भागों की सापेक्ष लंबाई आरंभ से ही उस रेखा के आकार द्वारा परिसीमित रहती है, जिसके वे भाग हैं।

इस मामले में पूंजीपति जो माल उत्पादित करता है, वह उस माल से किसी तरह भिन्न नहीं होता, जिसे स्वतंत्र मजदूर अथवा श्रमिकों के समुदाय, अथवा दास पैदा करते हैं। किंतु प्रस्तुत संदर्भ में श्रम का संपूर्ण उत्पाद तथा उसका समूचा मूल्य भी पूंजीपति का है। अन्य किसी भी उत्पादक की तरह उसे भी अपने माल को उससे और कोई काम निकालने के पहले बेचकर द्रव्य में बदलना होता है; उसे सार्विक समतुल्य के रूप में बदलना होता है।

आइये, पण्य उत्पाद की उसके द्रव्य के बदले जाने से पहले परीक्षा करें। वह पूर्णतः पूंजीपति का होता है। दूसरी ओर श्रम के उपयोगी उत्पाद, उपयोग मूल्य की हैसियत से वह पूर्णतः पिछली श्रम प्रक्रिया का उत्पाद है। किंतु उसके मूल्य के साथ ऐसा नहीं है। इस मूल्य का एक अंश माल के उत्पादन पर व्ययित और नये रूप में प्रकट होनेवाले उत्पादन साधनों का मूल्य भर है। यह मूल्य इस माल की उत्पादन प्रक्रिया के दौरान उत्पादित नहीं हुआ है, क्योंकि

यह मूल्य उत्पादन प्रक्रिया से पहले, उससे स्वतंत्र उत्पादन साधनों में समाविष्ट था; उन्होंने इस मूल्य के वाहक बनकर इस प्रक्रिया में प्रवेश किया था; उसके प्रकट होने के रूप का ही नवीकरण और परिवर्तन हुआ है। पूंजीपति के लिए माल के मूल्य का यह अंश स्थिर पूंजी मूल्य के माल के उत्पादन में पेशगी दिये और उपभुक्त अंश का समतुल्य है। इससे पहले वह उत्पादन साधनों के रूप में विद्यमान था; अब वह नवोत्पादित माल के मूल्य के संघटक अंश के रूप में विद्यमान है। जैसे ही यह माल द्रव्य में परिवर्तित किया जाता है, वैसे ही जो मूल्य अभी द्रव्य रूप में विद्यमान है, उसे उत्पादन साधनों के रूप में उत्पादन प्रक्रिया द्वारा और इस प्रक्रिया में उसके कार्य द्वारा निर्धारित उसके मूल रूप में पुनःपरिवर्तित करना होता है। इस मूल्य के पूंजी की तरह कार्य करने से माल मूल्य के स्वरूप में कोई अंतर नहीं आता।

माल के मूल्य का दूसरा अंश श्रम शक्ति का वह मूल्य है, जो उजरती मजदूर पूंजीपति को बेचता है। उत्पादन साधनों के मूल्य की ही तरह इसे उस उत्पादन प्रक्रिया से स्वतंत्र निर्धारित किया जाता है, जिसमें श्रम शक्ति को प्रवेश करना होता है, और श्रम शक्ति के इस उत्पादन प्रक्रिया में प्रवेश करने के पहले इसे परिचलन क्रिया – श्रम शक्ति के क्रय-विक्रय – में स्थापित किया जाता है। अपने कार्य – श्रम शक्ति के व्यय – द्वारा उजरती मजदूर उस मूल्य के बराबर माल मूल्य का उत्पादन करता है, जो पूंजीपति को उसकी श्रम शक्ति के उपयोग के लिए उसे देना होता है। पूंजीपति को यह मूल्य वह माल के रूप में देता है, और पूंजीपति उसे इसकी अदायगी द्रव्य रूप में करता है। इस बात से कि माल मूल्य का यह अंश पूंजीपति के लिए उस परिवर्ती पूंजी का समतुल्य मात्र होता है, जो उसे मजदूरी के रूप में पेशगी देनी होती है, यह तथ्य किसी प्रकार बदल नहीं जाता कि वह उत्पादन प्रक्रिया के दौरान नवोत्पादित माल मूल्य मात्र है, उसमें उसके अतिरिक्त और कुछ समाहित नहीं है, जो बेशी मूल्य में समाहित है, अर्थात श्रम शक्ति का पहले किया हुआ व्यय। न इस सत्य पर इस तथ्य का ही कोई प्रभाव पड़ता है कि पूंजीपति द्वारा मजदूर को उसकी श्रम शक्ति का मजदूरी के रूप में दिया गया मूल्य श्रमिक के लिए आय का रूप धारण कर लेता है और इससे न केवल श्रम शक्ति का, वरन स्वयं उजरती मजदूरों के वर्ग का और इस प्रकार समूचे पूंजीवादी उत्पादन के आधार का भी निरंतर पुनरुत्पादन होता है।

फिर भी मूल्य के इन दोनों अंशों का योग पूरे माल मूल्य के बराबर नहीं होता। उन दोनों ही के ऊपर कुछ अतिरिक्त बचा रहता है और वह है बेशी मूल्य। मजदूरी के रूप में पेशगी परिवर्ती पूंजी को जो मूल्यांश प्रतिस्थापित करता है, उसी के समान यह उत्पादन प्रक्रिया के दौरान श्रमिक द्वारा नवसृजित मूल्य – घनीभूत श्रम – है। किंतु सारे उत्पाद के मालिक, पूंजीपति को इसके लिए कुछ भी नहीं देना पड़ता। इस परिस्थिति से वस्तुतः पूंजीपति के लिए बेशी मूल्य का पूर्णतया उपभोग करना संभव हो जाता है, बशर्ते कि उसे उसके कुछ हिस्से दूसरे भागीदारों को न देने पड़ें, जैसे भूस्वामी को किराया जमीन, जब ऐसे मामले में ये हिस्से इस तरह के अन्य व्यक्तियों की आय बन जाते हैं। यही वह प्रेरक हेतु था, जिसने हमारे पूंजीपति को मालों के उत्पादन में हाथ भी लगाने को प्रेरित किया। किंतु न तो उसकी बेशी मूल्य को हथिया लेने की मूल शुभ अभिलाषा और न बाद में उसके अथवा अन्य लोगों द्वारा उसका आय के रूप में व्यय स्वयं बेशी मूल्य पर कोई असर डालता है। वे न इस तथ्य को कि यह घनीभूत निर्वेतन श्रम है, और न इस बेशी मूल्य के नितांत भिन्न परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होनेवाले परिमाण को ही विकृत करते हैं।

किंतु यदि ऐडम स्मिथ मालों के मूल्य का अनुसंधान करते समय भी अपने को समग्र पुनरुत्पादन प्रक्रिया में इस मूल्य के विभिन्न अंशों की भूमिका के अन्वेषण में लगाना चाहते थे, जैसा उन्होंने किया भी है, तो यह स्पष्ट होता कि जहां कुछ भाग विशेष आय की तरह कार्य करते हैं, वहां अन्य भाग वैसे ही लगातार पूंजी की तरह कार्य करते रहते हैं और फलतः उनके तर्क के अनुसार उन्हें माल मूल्य के संघटक अंश अथवा ऐसे अंश कहा जाना चाहिए था, जिनमें यह मूल्य स्वयं को वियोजित करता है।

ऐडम स्मिथ सामान्य माल उत्पादन का पूंजीवादी माल उत्पादन के साथ तदात्मीकरण करते हैं; उनके लिए उत्पादन साधन आरंभ से ही "पूंजी" हैं, श्रम आरंभ से ही उजरती श्रम है और इसलिए "उपयोगी और उत्पादक श्रमिकों की संख्या ... सर्वत्र उन्हें काम में लगाने में नियोजित पूंजी स्टॉक की मात्रा के अनुपात में होती है"। (भूमिका, पृष्ठ १२।) संक्षेप में श्रम प्रक्रिया के विभिन्न उपादान – वस्तुगत और व्यक्तिगत दोनों ही – आरंभ से ही पूंजीवादी उत्पादन युग के चारित्रिक मुखौटे पहने हुए आते हैं। अतः मालों के मूल्य का विश्लेषण प्रत्यक्षतः इस विवेचन से एकाकार हो जाता है कि एक ओर यह मूल्य किस सीमा तक व्ययित पूंजी का समतुल्य मात्र है, और दूसरी ओर किस सीमा तक यह "मुक्त" मूल्य का किसी पेशगी पूंजी मूल्य को प्रतिस्थापित न करनेवाले अथवा बेशी मूल्य का निर्माण करता है। इस दृष्टिकोण से तुलना करने पर माल मूल्य के भाग इस प्रकार स्वयं को अगोचर रूप में उसके स्वतंत्र "संघटक अंशों" में और अंततः "समस्त मूल्य के स्रोतों" में रूपांतरित कर लेते हैं। एक और निष्कर्ष यह निकलता है कि माल मूल्य विभिन्न प्रकार की आयों से बना होता है अथवा उसमें "स्वयं को वियोजित कर लेता है", जिससे कि आयों का माल मूल्यों से नहीं, वरन माल मूल्यों का "आयों" से निर्माण होता है। किंतु ठीक जैसे पूंजी मूल्य की तरह कार्य करने से स्वयं माल मूल्य अथवा द्रव्य का स्वरूप ज़रा भी नहीं बदलता, वैसे ही माल मूल्य का स्वरूप भी इससे ज़रा भी नहीं बदलता कि वह आगे किसी व्यक्ति विशेष के लिए आय का कार्य करेगा। ऐडम स्मिथ का जिस माल से साबिक़ा पड़ा है, वह आरंभ से ही माल पूंजी है (जिसमें माल के उत्पादन में उपभुक्त पूंजी मूल्य के अलावा बेशी मूल्य भी समाहित है); अतः यह पूंजीवादी पद्धति से उत्पादित माल है, उत्पादन की पूंजीवादी प्रक्रिया का परिणाम है। इसलिए पहले इस प्रक्रिया का और उसमें समाविष्ट मूल्य के स्वविस्तार तथा निर्माण की प्रक्रिया का भी विश्लेषण करना ज़रूरी होता। चूंकि अपनी बारी में इस प्रक्रिया का पूर्वाधार माल परिचलन है, इसलिए उसका वर्णन माल के प्राथमिक और स्वतंत्र विश्लेषण की भी अपेक्षा करता है। किंतु ऐडम स्मिथ जहां कहीं कभी "गूढ़ रूप में" सही बात भी कह जाते हैं, वहां भी अपने विवेचन में वह मूल्य निर्माण को सदा माल के विश्लेषण, अर्थात माल पूंजी के विश्लेषण का आनुषंगिक ही मानते हैं।

३. उत्तरवर्ती अर्थशास्त्री[41]

रिकार्डो ऐडम स्मिथ के सिद्धांत को लगभग शब्दशः पुनः प्रस्तुत करते हैं: "यह जानना चाहिए कि किसी भी देश की सारी पैदावार उपभुक्त हो जाती है; किंतु इससे अधिकतम

[41] यहां से अध्याय के अंत तक का अंश पांडुलिपि २ का एक अनुपूरक है। – फ़े० एं०

संभाव्य अंतर पड़ जाता है कि इसका उपभोग वे लोग करते हैं, जो एक अन्य मूल्य का पुनरुत्पादन करते हैं अथवा वे लोग, जो इसका पुनरुत्पादन नहीं करते। जब हम कहते हैं कि आय बच जाती है और पूंजी में जुड़ जाती है, तब हमारा आशय यह होता है कि आय का जो हिस्सा पूंजी में जुड़ता बताया जाता है, उसका उपभोग अनुत्पादक श्रमिकों के बदले उत्पादक श्रमिक करते हैं।" (*Principles* [सिद्धांत], पृष्ठ १६३।)

वस्तुतः रिकार्डो ऐडम स्मिथ के मालों की क़ीमत के मजदूरी और बेशी मूल्य (अथवा परिवर्ती पूंजी तथा बेशी मूल्य) में वियोजन विषयक सिद्धांत को पूर्णतः स्वीकार करते थे। उनके लिए बहसतलब नुक़्ते ये हैं: १) बेशी मूल्य के संघटक अंश: वह किराया जमीन को उसका आवश्यक तत्व नहीं मानते; २) रिकार्डो माल की क़ीमत इन संघटक अंशों में **विभाजित कर देते हैं**। इसलिए मूल्य का परिमाण prius [सर्वोपरि] है। संघटक अंशों के योग को एक दिया हुआ परिमाण मान लिया जाता है, यही प्रारंभ बिंदु है, जब कि ऐडम स्मिथ माल मूल्य के परिमाण को उसके संघटक अंशों के योग से post festum निकालकर अक्सर इसके विपरीत अपने ही श्रेष्ठतर विवेक के प्रतिकूल चलते हैं।

रैमज़े रिकार्डो के विरुद्ध यह टिप्पणी करते हैं: "... वह सारे उत्पाद को सदैव मजदूरी और लाभ में विभाजित मानते प्रतीत होते हैं, और स्थायी पूंजी के प्रतिस्थापन के लिए आवश्यक भाग को भूल जाते हैं।" (*An Essay on the Distribution of Wealth*, ऐडिनबरा, १८३६, पृष्ठ १७४।) स्थायी पूंजी से रैमज़े का वही आशय है, जो मेरा स्थिर पूंजी से है: "स्थायी पूंजी ऐसे रूप में विद्यमान होती है, जिसमें वह भावी माल को पैदा करने में सहायक तो होती है, पर मजदूरों का भरण-पोषण नहीं करती।" (वही, पृष्ठ ५६।)

ऐडम स्मिथ ने मालों के मूल्य के, अतः सालाना सामाजिक उत्पाद के मजदूरी और बेशी मूल्य और इसलिए मात्र आय में अपने वियोजन के अनिवार्य निष्कर्ष का – यह निष्कर्ष कि ऐसी स्थिति में सारा सालाना उत्पाद उपभुक्त हो सकता है – विरोध किया। मौलिक विचारक कभी बेसिर पैर के निष्कर्ष नहीं निकालते। यह काम वे सेय और मैक-कुलोच जैसे लोगों के लिए छोड़ देते हैं।

सेय सचमुच सारे मसले को बड़ी आसानी से हल कर डालते हैं। एक के लिए जो पूंजी की पेशगी है, वह दूसरे के लिए आय, शुद्ध उत्पाद है या था। सकल उत्पाद और शुद्ध उत्पाद का अंतर विशुद्धतः आत्मगत है, और "इस प्रकार समस्त उत्पाद का समग्र मूल्य समाज में आय के रूप में बांट दिया गया है।" (सेय, *Traité d'Economie Politique*, १८१७, २, पृष्ठ ६४।) "प्रत्येक उत्पाद का समग्र मूल्य भूस्वामियों, पूंजीपतियों और औद्योगिक कारबार करनेवाले उन सभी लोगों के लाभों से संरचित होता है, जिन्होंने उसके उत्पादन में योगदान किया है।" (मजदूरी को यहां profits des industrieux [उद्योगपतियों का लाभ] कहा गया है!) "इससे समाज की आय **सकल उत्पादित मूल्य** के बराबर हो जाती है, न कि भूमि के शुद्ध उत्पाद के बराबर, जैसा कि अर्थशास्त्रियों के संप्रदाय (प्रकृतितंत्रवादियों) का विश्वास था" (पृष्ठ ६३।)

औरों के अलावा प्रूदों ने भी सेय की इस खोज को आत्मसात कर लिया है।

किंतु श्तोर्ख़, जो इसी प्रकार ऐडम स्मिथ का मत सिद्धांततः स्वीकार करते हैं, यह मानते हैं कि सेय का उसका व्यावहारिक उपयोग तर्कसंगत नहीं है। "यदि यह मान लिया जाये कि किसी राष्ट्र की आय उसके कुल उत्पाद के बराबर है, अर्थात उसमें से कोई भी पूंजी"

(यहां कहना चाहिए: कोई भी स्थिर पूंजी) "नहीं घटायी जायेगी, तो यह भी माना जायेगा कि यह राष्ट्र अपने सालाना उत्पाद के समस्त मूल्य का अनुत्पादक उपभोग कर सकता है, और इससे उसकी भावी आय में ज़रा भी कसर न पड़ेगी ... जो उत्पाद राष्ट्र को" (स्थिर) "पूंजी के प्रतीक होते हैं, वे उपभोज्य नहीं होते।" (श्तोर्ख़, *Considérations sur la nature du revenu national*, पेरिस, १८२४, पृष्ठ १४७, १५०।)

किंतु श्तोर्ख़ हमें यह बताना भूल गये कि पूंजी के इस स्थिर भाग का अस्तित्व उनके द्वारा स्वीकृत क़ीमतों के स्मिथी विश्लेषण से किस प्रकार मेल खाता है, जिसके अनुसार मालों के मूल्य में केवल मजदूरी और बेशी मूल्य होते हैं, किसी स्थिर पूंजी का कोई अंश नहीं। केवल सेय के माध्यम से उन्हें यह बोध होता है कि क़ीमतों के इस विश्लेषण से बेतुके नतीजे निकलते हैं और इस विषय पर उनकी अपनी अंतिम बात यह है कि "आवश्यक क़ीमत को उसके सरलतम तत्वों में वियोजित करना असंभव है।" (*Cours d'Economie Politique*, पीटर्सबर्ग, १८१५, २, पृष्ठ १४१।)

सीसमांडी ने, जो विशेषकर आय से पूंजी के संबंध का विवेचन करते हैं और यथार्थ में इस संबंध की अपनी विचित्र व्याख्या को अपने *Nouveaux Principes* की differentia specifica [विशिष्ट भेद] मानते हैं, समस्या के स्पष्टीकरण के लिए एक भी वैज्ञानिक शब्द नहीं कहा है, रंच मात्र योगदान नहीं किया है।

बर्टन, रैमजे और शेरबूलिये ऐडम स्मिथ की स्थापना से आगे जाने की कोशिश करते हैं। किंतु वे लड़खड़ा जाते हैं, क्योंकि वे आरंभ से ही स्थिर और परिवर्ती पूंजी मूल्य के भेद और स्थायी तथा प्रचल पूंजी के भेद को स्पष्ट न कर पाने के कारण समस्या को एकांगी ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

इसी प्रकार जॉन स्टुअर्ट मिल भी ऐडम स्मिथ से उनके अनुयाइयों को प्रदत्त मत को अपनी सामान्य आडंबरपूर्ण शैली में ही पुनः प्रस्तुत करते हैं। परिणामस्वरूप विचारों का स्मिथी उलझाव आज तक बना हुआ है, और उनका मत राजतीतिक अर्थशास्त्र का एक सनातनी धर्मसूत्र है।

अध्याय २०

साधारण पुनरुत्पादन

१. समस्या का निरूपण

यदि हम सामाजिक पूंजी – अतः समग्र पूंजी, वैयक्तिक पूंजियां जिसके भिन्नांश मात्र होती हैं, जिनकी गति उनकी वैयक्तिक गति और साथ ही समग्र पूंजी की गति में समायोजक कड़ी होती है – के वार्षिक कार्य और उसके परिणामों का अध्ययन करें,[42] अर्थात यदि हम साल के दौरान समाज द्वारा मुहैया किये पण्य उत्पाद का अध्ययन करें, तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि सामाजिक पूंजी की पुनरुत्पादन प्रक्रिया कैसे होती है, कौन सी विशेषताएं इस पुनरुत्पादन प्रक्रिया को वैयक्तिक पूंजी की पुनरुत्पादन प्रक्रिया से अलग करती हैं और दोनों ही सामान्य विशेषताएं कौन सी हैं। वार्षिक उत्पाद में सामाजिक उत्पाद उन अंशों के, जो पूंजी को प्रतिस्थापित करते हैं, अर्थात सामाजिक पुनरुत्पादन, साथ-साथ वे अंश भी होते हैं, जो उपभोग निधि में आते हैं, जिनका उपभोग पूंजीपति और श्रमिक करते हैं, अतः उत्पादक और वैयक्तिक दोनों तरह का उपभोग होता है। उसमें पूंजीपति वर्ग और श्रमिक वर्ग का पुनरुत्पादन (अर्थात भरण-पोषण) और इस प्रकार उत्पादन की समूची प्रक्रिया के पूंजीवादी स्वरूप का पुनरुत्पादन भी समाहित होता है।

स्पष्ट ही हमें यहां परिचलन सूत्र मा' – { द्र – मा . . . उ . . . मा' / द्र – मा } का ही विश्लेषण करना है और उपभोग उसमें अनिवार्यतः भूमिका अदा करता है, क्योंकि प्रस्थान बिंदु मा' = मा + मा, माल पूंजी में स्थिर और परिवर्ती पूंजी मूल्य दोनों और बेशी मूल्य भी शामिल हैं। इसलिए उसकी गति में वैयक्तिक और उत्पादक दोनों तरह का उपभोग शामिल है। द्र – मा . . . उ . . . मा' – द्र' तथा उ . . . मा' – द्र' – मा . . . उ परिपथों में पूंजी की गति प्रारंभ और समापन बिंदु है। और बेशक इसमें उपभोग भी शामिल है, क्योंकि माल को, उत्पाद को बेचना होता है। जब यह कल्पित रूप में किया जा चुका होता है, तब वैयक्तिक पूंजी की गति के लिए यह महत्वहीन है कि इसके बाद इस माल का क्या होता है। दूसरी ओर मा' . . . मा' की गति में सामाजिक पुनरुत्पादन की परिस्थितियां ठीक इसी तथ्य से दृष्टिगोचर होती हैं कि यह दिखाना होता है कि इस कुल उत्पाद मा' के मूल्य के प्रत्येक

---

[42] पाण्डुलिपि २ से। – फ़े० एं०

अंश का क्या होता है। इस प्रसंग में समग्र पुनरुत्पादन प्रक्रिया में परिचलन से जनित उपभोग प्रक्रिया बिल्कुल उसी तरह शामिल होती है, कि जैसे स्वयं पूंजी की पुनरुत्पादन प्रक्रिया।

अपने प्रस्तुत प्रयोजन के लिए हमें इस पुनरुत्पादन प्रक्रिया का अध्ययन मूल्य के प्रतिस्थापन के दृष्टिकोण से तथा मा' के पृथक संघटक अंशों की सारवस्तु के दृष्टिकोण से भी करना होगा। अब हम, जैसा कि वैयक्तिक पूंजी के उत्पाद के मूल्य के विश्लेषण में हमने किया था, इस **कल्पना** से संतोष नहीं कर पायेंगे कि वैयक्तिक पूंजीपति माल की बिक्री के ज़रिये अपनी पूंजी के संघटक अंशों को पहले द्रव्य में परिवर्तित कर सकता है और फिर जिंस बाज़ार में उत्पादन तत्वों के नये क्रय द्वारा उन्हें उत्पादक पूंजी में पुनःपरिवर्तित कर सकता है। चूंकि ये उत्पादन तत्व स्वरूप से ही सामग्री हैं इसलिए वे वैसे ही सामाजिक पूंजी के संघटक हैं, जैसे वैयक्तिक तैयार उत्पाद, जिससे उनका विनिमय होता है और जिसका वे प्रतिस्थापन करते हैं। इसके विपरीत सामाजिक पण्य उत्पाद के उस अंश की गति, जिसका उपभोग मज़दूर अपनी मज़दूरी के व्यय द्वारा और पूंजीपति अपने बेशी मूल्य के व्यय द्वारा करता है, कुल उत्पाद की गति का अभिन्न अंग ही नहीं होती, वरन वैयक्तिक पूंजियों की गतियों में घुल-मिल भी जाती है और इसलिए इस प्रक्रिया की व्याख्या उसे कल्पित कर लेने मात्र से नहीं हो सकती।

हमारे सामने प्रत्यक्षतः जो समस्या है, वह यह है: उत्पादन में उपभुक्त पूंजी का वार्षिक उत्पाद में से मूल्यगत प्रतिस्थापन कैसे होता है और इस प्रस्थापन की गति पूंजीपतियों द्वारा बेशी मूल्य के और श्रमिकों द्वारा मज़दूरी के उपभोग से कैसे गुंथ जाती है? इसलिए सर्वप्रथम यह साधारण पैमाने पर पुनरुत्पादन का मामला है। आगे यह भी मान लिया जाता है कि उत्पादों का विनिमय उनके मूल्य के अनुसार होता है, और यह भी कि उत्पादक पूंजी के संघटक अंशों के मूल्यों में कोई आमूल उलट-फेर नहीं होता। लेकिन यह तथ्य सामाजिक पूंजी की गतियों पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता कि क़ीमतें मूल्यों से विचलन करती हैं। कुल मिलाकर उत्पादों की उतनी ही मात्राओं का उतना ही विनिमय होता है, यद्यपि अलग-अलग पूंजीपति जिन मूल्य संबंधों में अंतर्ग्रस्त हैं, वे अब उनकी अपनी-अपनी पेशगी के और उनमें से प्रत्येक द्वारा अलग-अलग उत्पादित बेशी मूल्य की मात्राओं के यथानुपात नहीं रह गये हैं। जहां तक मूल्य में उलट-फेरों की बात है, अगर वे सर्वत्र और समान रूप में वितरित हों, तो वे कुल वार्षिक उत्पाद के मूल्य घटकों के पारस्परिक संबंधों में कोई अंतर नहीं लाते। लेकिन जहां तक वे आंशिक और असमान रूप में वितरित होते हैं, तो वे ऐसी उथल-पुथल हैं, जिन्हें **पहले** तो अपरिवर्तित मूल्य संबंधों से विचलन मानकर ही समझा जा सकता है, और **दूसरे** अगर उस नियम का प्रमाण हो, जिसके अनुसार वार्षिक उत्पाद के मूल्य का एक अंश स्थिर पूंजी को और दूसरा परिवर्ती पूंजी को प्रतिस्थापित करता है, तब स्थिर अथवा परिवर्ती पूंजी के मूल्य में उलट-फेर होने से इस नियम में कोई अंतर नहीं आयेगा। उससे केवल उन मूल्यांशों के सापेक्ष परिमाणों में अंतर आयेगा, जो इस या उस रूप में कार्य करते हैं, क्योंकि मूल मूल्यों की जगह दूसरे मूल्य ले चुके होंगे।

जब तक हम मूल्य के उत्पादन को और पूंजी के उत्पाद के मूल्य को अलग-अलग लेते थे, तब तक उत्पादित वस्तुओं का दैहिक रूप विश्लेषण के लिए पूर्णतः निरर्थक था, फिर चाहे वे, मसलन, मशीनें हों या अनाज, या आइने। यह हमेशा केवल मिसाल देने की बात थी और उत्पादन की कोई भी शाखा समान रूप से यह काम कर सकती थी। हम जिस चीज़ का विवेचन कर रहे थे, वह स्वयं उत्पादन की प्रत्यक्ष प्रक्रिया थी, जो अपने आपको प्रत्येक स्थल

पर किसी वैयक्तिक पूंजी की प्रक्रिया के रूप में प्रकट करती है। जहां तक पूंजी के पुनरुत्पादन का संबंध था, यह मान लेना काफ़ी था कि माल के रूप में उत्पाद का जो अंश पूंजी मूल्य का प्रतीक होता है, उसे परिचलन क्षेत्र में अपने को अपने उत्पादन तत्वों में और इस प्रकार उत्पादक पूंजी के रूप में पुनःपरिवर्तित कर लेने का अवसर मिल जाता है: जैसे यह मान लेना काफ़ी था कि मजदूर और पूंजीपति दोनों को बाजार में वे वस्तुएं मिल जाती हैं, जिन पर वे अपनी मजदूरी और बेशी मूल्य का व्यय करते हैं। प्रस्तुतीकरण का यह मात्र औपचारिक ढंग सामाजिक पूंजी तथा उसके उत्पाद के मूल्य के अध्ययन में अब और काम नहीं दे सकेगा। उत्पाद के मूल्य के एक भाग का पूंजी में पुनःरूपांतरण और दूसरे भाग का पूंजीपति वर्ग तथा श्रमिक वर्ग के निजी उपभोग में आना स्वयं उत्पाद के मूल्य के भीतर एक ऐसी गति बन जाते हैं, जिसमें कुल पूंजी का परिणाम अपने को व्यंजित करता है; और यह गति मूल्य का प्रतिस्थापन मात्र नहीं है, सामग्री का प्रतिस्थापन भी है, इसलिए वह कुल सामाजिक उत्पाद के मूल्य घटकों के सापेक्ष परिमाणों से उतना ही संबद्ध है, जितना उनके उपयोग मूल्य से, उनके भौतिक रूप से।

साधारण[43] पुनरुत्पादन, उसी पैमाने पर पुनरुत्पादन, कल्पना मात्र प्रतीत होता है, क्योंकि एक ओर समस्त संचय या विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन का न होना पूंजीवादी परिस्थितियों में एक विचित्र परिकल्पना है, और दूसरी ओर उत्पादन की परिस्थितियां अलग-अलग वर्षों में बिल्कुल एक जैसी ही नहीं रहतीं (और यही कल्पित है)। माना यह गया है कि दिये हुए परिमाण की सामाजिक पूंजी माल मूल्य की इस साल भी पिछले साल जितनी मात्रा पैदा करती है और आवश्यकताओं की उतनी ही मात्रा की पूर्ति करती है, यद्यपि मालों के रूप पुनरुत्पादन प्रक्रिया के दौरान बदल सकते हैं। किंतु जहां तक संचय होता ही है, साधारण पुनरुत्पादन सदैव उसका अंग रहता है और इसलिए उसका अलग अध्ययन किया जा सकता है, वह संचय का एक वास्तविक उपादान होता है। वार्षिक उत्पाद का मूल्य घट सकता है, यद्यपि उपयोग मूल्यों की मात्रा उतनी ही बनी रह सकती है; अथवा मूल्य वही बना रह सकता है, यद्यपि उपयोग मूल्यों की मात्रा घट सकती है; अथवा मूल्य की और पुनरुत्पादित उपयोग मूल्यों की मात्रा एकसाथ घट सकती है। यह सब कुल मिलाकर पहले से अधिक अनुकूल अथवा अधिक कठिन परिस्थितियों में होनेवाले पुनरुत्पादन जैसा होता है, जिसका परिणाम अपूर्ण—दोषपूर्ण पुनरुत्पादन—हो सकता है। इस सब का संबंध पुनरुत्पादन के विभिन्न तत्वों के परिमाणगत पक्ष से ही हो सकता है, समूची प्रक्रिया में पुनरुत्पादक पूंजी की अथवा पुनरुत्पादित आय की हैसियत से उनकी भूमिका से नहीं।

२. सामाजिक उत्पादन के दो क्षेत्र[44]

समाज के कुल उत्पाद और इसलिए कुल पैदावार को दो मुख्य क्षेत्रों में बांटा जा सकता है:

1. **उत्पादन साधन,** ऐसे रूप में पण्य वस्तुएं, जिसमें वे उत्पादक उपभोग में पहुंचेंगी, अथवा कम से कम पहुंच सकती हैं।

---

[43] पाण्डुलिपि ८ से।—फ़े० एं०

[44] मुख्यतः पाण्डुलिपि २ से; सारणियां पाण्डुलिपि ८ से।—फ़े० एं०

II. **उपभोग वस्तुएं**, ऐसे रूप में पण्य वस्तुएं, जिसमें वे पूंजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग के निजी उपभोग में पहुंचती हैं।

इन दोनों क्षेत्रों में से प्रत्येक से संबद्ध उत्पादन की सभी भिन्न-भिन्न शाखाएं उत्पादन की एक ही महाशाखा बन जाती हैं, पहले प्रसंग में उत्पादन साधनों की और दूसरे में उपभोग वस्तुओं की। उत्पादन की इन दोनों शाखाओं में से प्रत्येक में नियोजित कुल पूंजी सामाजिक पूंजी का एक अलग बड़ा क्षेत्र होती है।

प्रत्येक क्षेत्र में पूंजी के दो भाग होते हैं:

१) **परिवर्ती पूंजी**। यह पूंजी, जहां तक इसके **मूल्य** का संबंध है, उत्पादन की इस शाखा में नियोजित सामाजिक श्रम शक्ति के मूल्य के बराबर होती है; दूसरे शब्दों में वह इस श्रम शक्ति के लिए अदा की गई कुल मजदूरी के बराबर होती है। जहां तक उसकी सारवस्तु का संबंध है, वह कार्यरत श्रम शक्ति, जो इस पूंजी मूल्य द्वारा गतिशील हुई है, अर्थात सजीव श्रम होती है।

२) **स्थिर पूंजी**। यह इस शाखा में उत्पादक उद्देश्यों में प्रयुक्त सभी उत्पादन साधनों का मूल्य है। ये स्वयं **स्थायी** पूंजी, यथा मशीनों, श्रम उपकरणों, इमारतों, कमकर पशुओं, आदि तथा **प्रचल** स्थिर पूंजी, यथा उत्पादन सामग्री – कच्चा माल और सहायक सामान, अधतैयार उत्पाद, आदि – में विभाजित होते हैं।

इस पूंजी की सहायता से दोनों में से प्रत्येक क्षेत्र में सृजित कुल वार्षिक उत्पाद के मूल्य का एक अंश वह होता है, जो उत्पादन प्रक्रिया में उपभुक्त स्थिर पूंजी स को व्यक्त करता है, और जो अपने मूल्य के अनुसार उत्पाद को केवल अंतरित होता है और दूसरा अंश वह होता है, जो वर्ष के समूचे श्रम द्वारा जोड़ा जाता है। यह अंतोक्त अंश अपनी बारी में पेशगी परिवर्ती पूंजी प के प्रतिस्थानिक में और इसके अलावा अतिरिक्त अंश में, जो बेशी मूल्य बे होता है, में विभाजित होता है। और प्रत्येक अलग माल के मूल्य की ही तरह प्रत्येक क्षेत्र के कुल वार्षिक उत्पाद का मूल्य स+प+बे होता है।

मूल्य का स अंश, जो उत्पादन में **उपभुक्त** स्थिर पूंजी को व्यक्त करता है, उत्पादन में **नियोजित** स्थिर पूंजी के मूल्य से पूरी तरह मेल नहीं खाता। ठीक है कि उत्पादन सामग्री पूरी तरह खप जाती है और उसका मूल्य पूरी तरह उत्पाद को अंतरित हो जाता है। लेकिन नियोजित **स्थायी** पूंजी के एक अंश की ही पूरी खपत होती है और इस तरह उसका ही मूल्य उत्पाद को अंतरित होता है। स्थायी पूंजी का दूसरा अंश – यथा मशीनें, इमारतें, वग़ैरह – पूर्ववत बना और कार्यशील रहता है, यद्यपि वार्षिक छीजन के अनुसार वह ह्रासित होता जाता है। स्थायी पूंजी का यह सतत अंश हमारे लिए तब विद्यमान नहीं होता, जब हम उत्पाद के मूल्य पर विचार करते हैं। वह पूंजी मूल्य का अंश है, जो इस नवोत्पादित माल मूल्य के साथ-साथ और उससे स्वतंत्र विद्यमान रहता है। यह बात वैयक्तिक पूंजी के उत्पाद के मूल्य के विश्लेषण में पहले ही बताई जा चुकी है (Buch I, Kap. VI, S. 192)।* किंतु फ़िलहाल हम प्रयुक्त विश्लेषण पद्धति को छोड़ देंगे। वैयक्तिक पूंजी के उत्पाद के मूल्य के अध्ययन में हमने देखा था कि स्थायी पूंजी छीजन के जरिये जितने मूल्य से वंचित होती है, वह छीजन के दौरान सृजित उत्पाद में अंतरित हो जाता है और इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि इस दौरान

* हिंदी संस्करण: अध्याय ८, पृष्ठ २२८-२३१।– सं०

इस प्रकार अंतरित मूल्य में से इस स्थायी पूंजी का कोई अंश वस्तुरूप में प्रतिस्थापित होता है या नहीं। किंतु कुल सामाजिक उत्पाद और उसके मूल्य के अध्ययन में इस स्थल पर हमें कम से कम फ़िलहाल उस मूल्यांश को अपने परिकलन के बाहर करना पड़ता है, जो अगर साल के दौरान स्थायी पूंजी की वस्तुरूप में प्रतिस्थापना न हो, तो स्थायी पूंजी से छीजन द्वारा वार्षिक उत्पाद को अंतरित होता है। इस अध्याय के एक आगामी परिच्छेद में हम इस पर विशेषकर विचार करेंगे।

हम साधारण पुनरुत्पादन के अपने अध्ययन को निम्नलिखित सारणी पर आधारित करेंगे, जिसमें स स्थिर पूंजी, प परिवर्ती पूंजी और बे बेशी मूल्य है और बेशी मूल्य की दर बे/प को १०० % माना गया है। संख्याएं लाखों मार्क, फ़्रैंक या पाउंड व्यक्त कर सकती हैं।

I. उत्पादन साधनों का उत्पादन :

पूंजी . . . . . . $४,०००_{स} + १,०००_{प} = ५,०००$

पण्य उत्पाद . . . . . . $४,०००_{स} + १,०००_{प} + १,०००_{बे} = ६,०००$,

जो उत्पादन साधनों में विद्यमान है।

II. उपभोग वस्तुओं का उत्पादन :

पूंजी . . . . $२,०००_{स} + ५००_{प} = २,५००$

पण्य उत्पाद . . . . $२,०००_{स} + ५००_{प} + ५००_{बे} = ३,०००$,

जो उपभोग वस्तुओं में विद्यमान है।

सारांश : कुल वार्षिक पण्य उत्पाद :

I. $४,०००_{स} + १,०००_{प} + १,०००_{बे} = ६,०००$ उत्पादन साधन।

II. $२,०००_{स} + ५००_{प} + ५००_{बे} = ३,०००$ उपभोग वस्तुएं।

कुल मूल्य ६,०००, उस स्थायी पूंजी को छोड़कर, जो हमारी कल्पना के अनुसार अपने स्वाभाविक रूप में बनी रही है।

अब यदि हम साधारण पुनरुत्पादन के आधार पर, जिसमें समूचे बेशी मूल्य का अनुत्पादक उपभोग होता है, आवश्यक रूपांतरणों की परीक्षा करें और फ़िलहाल उन्हें जन्म देनेवाले द्रव्य परिचलन को छोड़ दें, तो हमें आरंभ में ही तीन महत्वपूर्ण आधार मिल जाते हैं।

१) श्रमिकों की मजदूरी के $५००_{प}$ और क्षेत्र II के पूंजीपतियों के बेशी मूल्य के $५००_{बे}$ उपभोग वस्तुओं पर ख़र्च करने होंगे। किंतु उनका मूल्य क्षेत्र II के पूंजीपतियों के हाथ में १,००० की उपभोग वस्तुओं में विद्यमान होता है, जिससे पेशगी $५००_{प}$ प्रतिस्थापित होते हैं और $५००_{बे}$ व्यक्त होते हैं। फलतः क्षेत्र II की मजदूरी और बेशी मूल्य का इस क्षेत्र के भीतर इसी क्षेत्र के उत्पाद से विनिमय होता है। इससे $(५००_{प} + ५००_{बे})$ II = १,००० राशि की उपभोग वस्तुएं कुल उत्पाद से निकल जाती हैं।

२) क्षेत्र I के $१,०००_{प} + १,०००_{बे}$ भी इसी प्रकार उपभोग वस्तुओं पर, दूसरे शब्दों में क्षेत्र II के उत्पाद पर ख़र्च किये जायेंगे। अतः उनका विनिमय इस उत्पाद के शेष भाग से करना होगा, जो स्थिर पूंजी के भाग, $२,०००_{स}$ के बराबर है। क्षेत्र II बदले में उत्पादन

साधनों की समान माला – क्षेत्र I का उत्पाद – पाता है, जिसमें क्षेत्र I के $१,०००_{प} + १,०००_{बे}$ के मूल्य का समावेश है। इस प्रकार २,००० $II_{स}$ और ($१,०००_{प} + १,०००_{बे}$) I परिकलन के बाहर निकल आते हैं।

३) अब भी ४,००० $I_{स}$ बच रहते हैं। ये वे उत्पादन साधन हैं, जो क्षेत्र I में ही, उसकी उपभुक्त स्थिर पूंजी के प्रतिस्थापन के लिए ही इस्तेमाल किये जा सकते हैं और इसलिए उनका प्रथम क्षेत्र के वैयक्तिक पूंजीपतियों के बीच विनिमय द्वारा उसी प्रकार निपटारा होता है, जैसे ($५००_{प} + ५००_{बे}$) II का श्रमिकों और पूंजीपतियों के बीच या क्षेत्र II के वैयक्तिक पूंजीपतियों के बीच विनिमय द्वारा होता है।

आगामी विवेचन को समझने के लिए फ़िलहाल इतना काफ़ी होना चाहिए।

३. दोनों क्षेत्रों के बीच विनिमय : $I_{(प+बे)}$ बनाम $II_{स}$[45]

हम शुरूआत दोनों वर्गों के बीच बड़े विनिमय से करते हैं। ($१,०००_{प} + १,०००_{बे}$) I – ये मूल्य अपने उत्पादकों के हाथ में अपने स्वाभाविक रूप में उत्पादन साधन हैं, जिनका २,००० $II_{स}$ से, अपने दैहिक रूप में उपभोग वस्तुओं से संरचित मूल्यों से विनिमय किया जाता है। इससे क्षेत्र II का पूंजीपति वर्ग अपनी २,००० की स्थिर पूंजी को उपभोग वस्तुओं के रूप से उपभोग वस्तुओं के उत्पादन साधनों के रूप में, ऐसे रूप में पुनःपरिवर्तित कर लेता है, जिसमें वह श्रम प्रक्रिया के उपादान के रूप में तथा मूल्य के स्वप्रसार के लिए स्थिर पूंजी मूल्य के रूप में फिर से कार्य कर सकती है। दूसरी ओर इसके द्वारा I ($१,०००_{प}$) की श्रम शक्ति के समतुल्य तथा I ($१,०००_{बे}$) के पूंजीपतियों के बेशी मूल्य का उपभोग वस्तुओं में सिद्धिकरण हो जाता है; ये दोनों ही उत्पादन साधनों के अपने दैहिक रूप से ऐसे दैहिक रूप में परिवर्तित हो जाते हैं, जिसमें उनका आय के रूप में उपभोग किया जा सकता है।

लेकिन यह परस्पर विनिमय द्रव्य के परिचलन द्वारा संपन्न होता है, जो उसे उतना ही संवर्धित करता है, जितना उसे समझना कठिन भी बना देता है, लेकिन जो निर्णायक महत्व का है, क्योंकि पूंजी के परिवर्ती भाग को द्रव्य रूप से अपने को श्रम शक्ति में परिवर्तित करती द्रव्य पूंजी के नाते द्रव्य रूप निरंतर पुनः ग्रहण करते रहना होता है। समाज के संपूर्ण परिसर में एक ही समय साथ-साथ क्रियाशील उत्पादन की सभी शाखाओं के लिए इसके लिहाज के बिना कि वे संवर्ग I की हैं या II की, द्रव्य रूप में परिवर्ती पूंजी पेशगी का दिया जाना आवश्यक है। पूंजीपति श्रम शक्ति को उसके उत्पादन प्रक्रिया में दाख़िल होने से पहले ख़रीदता है, किंतु उसकी अदायगी उसके उपयोग मूल्यों के उत्पादन में ख़र्च किये जा चुकने के बाद निश्चित अवधियों पर ही करता है। उत्पाद के मूल्य के शेष भाग के साथ वह उसके उस भाग का, जो श्रम शक्ति की अदायगी के लिए व्यय किये द्रव्य का समतुल्य मात्र होता है, उत्पाद के मूल्य के उस भाग का, जो परिवर्ती पूंजी को व्यक्त करता है, भी स्वामी होता है। मूल्य के इस भाग में मज़दूर पहले ही पूंजीपति को अपनी मज़दूरी का समतुल्य दे चुका है। किंतु मालों

[45] यहां से पाण्डुलिपि ८ फिर शुरू होती है। – फ़्रे० एं०

का द्रव्य में पुन:रूपांतरण, उनका विक्रय ही पूंजीपति को द्रव्य पूंजी के रूप में उसकी परिवर्ती पूंजी वापस लौटाता है, जिसे वह श्रम शक्ति ख़रीदने के लिए फिर पेशगी दे सकता है।

इसलिए क्षेत्र I में समष्टि पूंजीपति ने मजदूरों को उत्पाद I के मूल्य के लिए १,००० पाउंड दिये हैं, जो १,०००$_{प}$ के बराबर है (मैंने पाउंड का प्रयोग केवल यह दिखाने के लिए किया है कि यह द्रव्य रूप में मूल्य है)। उत्पाद I का मूल्य पहले ही प अंश के, अर्थात मजदूरों द्वारा निर्मित उत्पादन साधनों के रूप में विद्यमान है। इन १,००० पाउंड से मज़दूर II के पूंजीपतियों से उसी मूल्य की उपभोग वस्तुएं ख़रीदते हैं, और इस प्रकार स्थिर पूंजी II का आधा हिस्सा द्रव्य में बदल देते हैं; II के पूंजीपति अपनी बारी में I के पूंजीपतियों से १,००० के उत्पादन साधन ख़रीदते हैं; जिससे जहां तक I के पूंजीपतियों का संबंध है, १,०००$_{प}$ के बराबर परिवर्ती पूंजी मूल्य, जो उनके उत्पाद का अंश होने के कारण उत्पादन साधनों के दैहिक रूप में विद्यमान था, द्रव्य में पुन:परिवर्तित हो जाता है और अब I के पूंजीपतियों के हाथ में फिर से द्रव्य पूंजी की तरह कार्य कर सकता है, जो श्रम शक्ति में, अतः उत्पादक पूंजी के सबसे महत्वपूर्ण तत्व में रूपांतरित हो जाती है। इस प्रकार उनकी माल पूंजी के कुछ भाग के सिद्धिकरण के फलस्वरूप उनकी परिवर्ती पूंजी द्रव्य रूप में उनके पास पुन: लौट आती है।

जहां तक स्थिर पूंजी II के दूसरे अर्धांश से माल पूंजी I के बे अंश के विनिमय के लिए ज़रूरी द्रव्य का संबंध है, उसे भिन्न-भिन्न तरीक़ों से पेशगी दिया जा सकता है। वास्तव में इस परिचलन में दोनों संवर्गों के अलग-अलग पूंजीपतियों द्वारा क्रय-विक्रय की असंख्य पृथक क्रियाएं होती हैं, जिनमें धन हर हालत में इन्हीं पूंजीपतियों के पास से आता है, क्योंकि मज़दूरों द्वारा परिचलन में डाले धन का हम हिसाब कर चुके हैं। संवर्ग II के पूंजीपति के पास अपनी उत्पादक पूंजी के अलावा जो द्रव्य पूंजी है, उससे वह संवर्ग I के पूंजीपतियों से उत्पादन साधन ख़रीद सकता है और इसके विपरीत संवर्ग I का पूंजीपति व्यक्तिगत ख़र्च के लिए, न कि पूंजी व्यय के लिए आवंटित द्रव्य निधि से संवर्ग II के पूंजीपतियों से उपभोग वस्तुएं ख़रीद सकता है। जैसा कि हम इससे पूर्व पहले और दूसरे भागों में दिखा चुके हैं, यह मान लेना होगा कि पूंजीपतियों के हाथ में पूंजी को पेशगी लगाने या आय को ख़र्च करने के लिए उत्पादक पूंजी के अलावा द्रव्य पूर्ति की एक मात्रा सभी परिस्थितियों में रहती है। मान लीजिये – द्रव्य का अनुपात हमारे लिए पूर्णतः महत्वहीन है – द्रव्य का आधा भाग II के पूंजीपतियों द्वारा अपनी स्थिर पूंजी के प्रतिस्थापन के लिए उत्पादन साधनों के क्रय में पेशगी दिया जाता है, जब कि दूसरा भाग I के पूंजीपतियों द्वारा उपभोग वस्तुओं पर ख़र्च किया जाता है। इस मामले में क्षेत्र II क्षेत्र I से उत्पादन साधन ख़रीदने के लिए ५०० पाउंड पेशगी देता है और इस प्रकार अपनी स्थिर पूंजी का तीन चौथाई भाग (क्षेत्र I के मजदूरों से प्राप्त उपर्युक्त १,००० पाउंड सहित) वस्तुरूप में प्रतिस्थापित करता है। इस तरह पाये ५०० पाउंड से क्षेत्र I क्षेत्र II से उपभोग वस्तुएं ख़रीदता है और इस प्रकार अपनी माल पूंजी के बे भाग के आधे हिस्से के लिए मा – द्र – मा परिचलन पूरा करता है और इस प्रकार उपभोग निधि में अपने उत्पाद का सिद्धिकरण करता है। इस दूसरी प्रक्रिया द्वारा ५०० पाउंड II के पास उसकी उत्पादक पूंजी के साथ-साथ विद्यमान द्रव्य पूंजी के रूप में पहुंच जाते हैं। दूसरी ओर I अपनी माल पूंजी के बे अंश के उस आधे हिस्से की बिक्री की प्रत्याशा में, जो अभी भंडार

में उत्पाद के रूप में पड़ा हुआ है, II की उपभोग वस्तुओं को ख़रीदने में ५०० पाउंड की द्रव्य राशि ख़र्च कर देता है। II उन्हीं ५०० पाउंड से I से उत्पादन साधन ख़रीदता है और इस प्रकार अपनी समूची स्थिर पूंजी (१,००० + ५०० + ५०० = २,०००) को वस्तु रूप में प्रतिस्थापित करता है, जब कि I अपने सारे बेशी मूल्य का उपभोग वस्तुओं में सिद्धिकरण कर लेता है। कुल मिलाकर ४,००० पाउंड की द्रव्य राशि की पण्य वस्तुओं का सारा विनिमय २,००० पाउंड के द्रव्य परिचलन द्वारा संपन्न हो जायेगा। २,००० पाउंड की यह राशि केवल इसलिए बनती है कि सारे वार्षिक उत्पाद को थोक रूप में, कुछ बड़े ढेरों में विनिमीत हुआ बताया गया है। यहां महत्व की बात यह है कि II ने उपभोग वस्तुओं के रूप में पुनरुत्पादित अपनी स्थिर पूंजी को उत्पादन साधनों के रूप में पुनःपरिवर्तित ही नहीं कर लिया है, वरन इसके अलावा ५०० पाउंड भी पुनः प्राप्त कर लिये हैं, जो उसने उत्पादन साधन ख़रीदने के लिए परिचलन में पेशगी दिये थे; और यह कि इसी प्रकार I के पास अब श्रम शक्ति में फिर से प्रत्यक्षतः परिवर्तनीय द्रव्य पूंजी की तरह उसकी वह परिवर्ती पूंजी ही द्रव्य रूप में नहीं है, जिसका उसने उत्पादन साधनों के रूप में पुनरुत्पादन किया था, वरन उपभोग वस्तुओं के क्रय में अपनी पूंजी के बे अंश के बिक जाने की प्रत्याशा में ख़र्च किये गये ५०० पाउंड भी होते हैं। ये ५०० पाउंड उसके पास किये गये ख़र्च के कारण नहीं, वरन उसके माल उत्पाद के एक भाग, जिसमें बेशी मूल्य का अर्धांश सन्निहित है, की बाद में बिक्री के कारण लौटकर आते हैं।

दोनों ही मामलों में यही नहीं होता कि II की स्थिर पूंजी उत्पाद के रूप से उत्पादन साधनों के दैहिक रूप में पुनःपरिवर्तित हो जाती है, जिस रूप में ही वह पूंजी की तरह कार्य कर सकती है, इसी प्रकार यही नहीं होता कि I की पूंजी का परिवर्ती अंश अपने द्रव्य रूप में और I के उत्पादन साधनों का बेशी मूल्यांश अपने उपभोज्य रूप में परिवर्तित हो जाता है, जिस रूप में उसका आय की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है। यह भी होता है कि द्रव्य पूंजी के वे ५०० पाउंड II के पास लौट आते हैं, जो उसने उपभोग साधनों के रूप में विद्यमान अपनी स्थिर पूंजी के मूल्य के तदनुरूप क्षतिपूरक अंश को बेचने से पहले पेशगी दिये थे; और इसके अलावा I के पास वे ५०० पाउंड भी लौट आते हैं, जो उसके द्वारा anticipando [प्रत्याशा में] उपभोग वस्तुओं के क्रय में ख़र्च किये गये थे। अगर II द्वारा अपने माल उत्पाद के स्थिर अंश के मोल पर और I द्वारा अपने पण्य उत्पाद के बेशी मूल्यांश के मोल पर पेशगी दिया गया धन उनके पास लौट आता है, तो केवल इसलिए कि पूंजीपतियों का एक वर्ग II की माल रूप में विद्यमान स्थिर पूंजी के अलावा ५०० पाउंड परिचलन में डालता है, और दूसरा वर्ग भी I में माल रूप में विद्यमान बेशी मूल्य के अलावा उतनी ही राशि परिचलन में डालता है। अंततोगत्वा इन दोनों क्षेत्रों ने अपने-अपने मालों के रूप में समतुल्यों का विनिमय करके परस्पर एक दूसरे का पूरा भुगतान कर दिया है। उनके द्वारा परिचलन में अपने मालों के मूल्य से आधिक्य में उनके विनिमय को कार्यान्वित करने के साधन के रूप में डाला गया धन परिचलन से इनमें से प्रत्येक के पास इन दोनों में से प्रत्येक द्वारा उसमें डाले गये अंश के यथानुपात लौट आता है। इससे दोनों में कोई धेला भर भी ज्यादा अमीर नहीं हो जाता। II के पास उपभोग वस्तुओं के रूप में २,००० की तथा द्रव्य रूप में ५०० की स्थिर पूंजी थी; अब उसके पास पहले की ही तरह २,००० उत्पादन साधनों में और ५०० द्रव्य रूप में हैं; इसी प्रकार I के पास पहले की ही तरह १,००० का बेशी मूल्य

(माल, उत्पादन साधन, जिन्हें अब उपभोग निधि में परिवर्तित कर लिया गया है) तथा ५०० द्रव्य रूप में हैं। सामान्य निष्कर्ष यह है: औद्योगिक पूंजीपति स्वयं अपना माल परिचलन संपन्न करने के लिए जो धन परिचलन में डालते हैं – चाहे माल मूल्य के स्थिर भाग की क़ीमत पर, चाहे मालों के रूप में विद्यमान बेशी मूल्य की क़ीमत पर, जहां तक कि वह आय की तरह व्यय किया जाता है – उसका उतना ही भाग अलग-अलग पूंजीपतियों के पास लौट आता है, जितना उन्होंने द्रव्य परिचलन के लिए पेशगी दिया था।

जहां तक वर्ग I की परिवर्ती पूंजी के द्रव्य रूप में पुन:रूपांतरण का संबंध है, I के पूंजीपतियों द्वारा इस पूंजी के मज़दूरी में लगा दिये जाने के बाद वह उनके लिए पहले मालों के उस रूप में रहती है, जिसमें मज़दूरों ने उसे उन्हें दिया था। उन्होंने यह पूंजी इन मज़दूरों को द्रव्य रूप में उनकी श्रम शक्ति की क़ीमत की तरह दी थी। इस सीमा तक पूंजीपतियों ने अपने पण्य उत्पाद के मूल्य के उस संघटक अंश की अदायगी कर दी है, जो द्रव्य रूप में व्यय की हुई परिवर्ती पूंजी के बराबर है। इस कारण वे माल उत्पाद के इस अंश के भी मालिक हैं। किंतु मज़दूर वर्ग का वह हिस्सा, जिसे उन्होंने काम में लगाया है, अपने द्वारा निर्मित उत्पादन साधनों को नहीं ख़रीदता; ये मज़दूर II द्वारा उत्पादित उपभोग वस्तुएं ख़रीदते हैं। इसलिए I के पूंजीपतियों द्वारा श्रम शक्ति की अदायगी के लिए पेशगी दी गई परिवर्ती पूंजी उनके पास सीधे नहीं लौटती। वह मज़दूरों द्वारा किये क्रयों के ज़रिये श्रमिक जनों के लिए आवश्यक और उनकी सामर्थ्य के भीतर मालों के पूंजीपति उत्पादकों के हाथ में पहुंच जाती है; दूसरे शब्दों में वह II के पूंजीपतियों के हाथ में पहुंच जाती है। और जब तक ये उत्पादन साधन ख़रीदने में धन ख़र्च नहीं करते, तब तक वह इस टेढ़े-मेढ़े रास्ते से I के पूंजीपतियों के हाथ में नहीं पहुंचता।

इससे यह नतीजा निकलता है कि साधारण पुनरुत्पादन के आधार पर I की माल पूंजी के प + बे मूल्यों का योग (अत: I के कुल पण्य उत्पाद का तदनुरूप समानुपातिक अंश) $II_{स}$ स्थिर पूंजी के बराबर होगा, जिसे इसी प्रकार क्षेत्र II के कुल पण्य उत्पाद का समानुपातिक अंश माना गया है; अथवा $I_{(प+बे)} = II_{स}$।

४. क्षेत्र II के भीतर विनिमय। जीवनावश्यक वस्तुएं और विलास वस्तुएं

क्षेत्र II के माल उत्पाद के मूल्य में प तथा बे घटकों का अध्ययन करना अभी बाक़ी है। इस विश्लेषण का उस सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न से कोई संबंध नहीं है, जिस पर हमारा ध्यान यहां केंद्रित है, अर्थात यह कि प्रत्येक पृथक पूंजीवादी पण्य उत्पाद के मूल्य का स + प + बे में विभाजन – भले ही वह अभिव्यंजना के विभिन्न रूपों द्वारा संपन्न किया गया हो – किस हद तक कुल वार्षिक उत्पाद के मूल्य पर भी लागू होता है। इस प्रश्न का उत्तर एक ओर $II_{स}$ से $I_{(प+बे)}$ के विनिमय में और दूसरी ओर क्षेत्र I के वार्षिक उत्पाद में $I_{स}$ के पुनरुत्पादन के अनुसंधान में मिलता है, जो हम आगे करेंगे। चूंकि $II_{(प+बे)}$ उपभोग वस्तुओं के दैहिक रूप में विद्यमान होता है; चूंकि मज़दूरों की श्रम शक्ति की अदायगी के लिए जो

परिवर्ती पूंजी पेशगी दी जाती है, उसे उन्हें आम तौर से उपभोग वस्तुओं पर ख़र्च करना होता है; और चूंकि साधारण पुनरुत्पादन को मान लेने पर मालों के मूल्य का बे अंश वस्तुतः आय के रूप में उपभोग वस्तुओं पर ख़र्च किया जाता है, इसलिए यह prima facie [प्रथमदृष्टया] स्पष्ट है कि II के पूंजीपतियों से II के मजदूर जो मजदूरी पाते हैं, उससे वे अपने ही उत्पाद का मजदूरी के रूप में प्राप्त द्रव्य मूल्य की राशि के अनुरूप अंश फिर ख़रीद लेते हैं। इस तरह II का पूंजीपति वर्ग श्रम शक्ति की अदायगी के लिए अपने द्वारा पेशगी दी द्रव्य पूंजी को द्रव्य रूप में पुनःपरिवर्तित कर लेता है। यह ऐसा ही है, मानो उसने मजदूरों को मूल्य के प्रतीक मात्र दिये हों। जैसे ही मजदूर अपनी ही उत्पादित – लेकिन पूंजीपतियों की – वस्तुओं का एक भाग ख़रीदकर मूल्य के इन प्रतीकों का सिद्धिकरण करेंगे, ये प्रतीक पूंजीपतियों के हाथ में वापस आ जायेंगे। बस, ये प्रतीक मूल्य का प्रतिनिधित्व मात्र नहीं करते हैं, वरन साकार सोने या चांदी के रूप में वे मूल्य रखते भी हैं। आगे चलकर हम द्रव्य रूप में पेशगी परिवर्ती पूंजी की एक प्रक्रिया द्वारा, जिसमें मजदूर वर्ग ग्राहक के रूप में सामने आता है और पूंजीपति वर्ग विक्रेता के रूप में, इस तरह के पश्चप्रवाह का अधिक विस्तार से विश्लेषण करेंगे। किंतु यहां दूसरा मसला दरपेश है, जिसका अपने प्रस्थान बिंदु पर परिवर्ती पूंजी के इस प्रत्यावर्तन के सिलसिले में विवेचन करना जरूरी है।

वार्षिक माल उत्पादन के संवर्ग II में उत्पादन की बहुविध शाखाएं होती हैं, किंतु इनके उत्पाद के अनुसार इन्हें दो बड़े उपविभागों में बांटा जा सकता है:

क) उपभोग वस्तुएं, जो मजदूर वर्ग के उपभोग में आती हैं, और जिस सीमा तक वे जीवनावश्यक वस्तुएं हैं – मजदूरों की उपभोग वस्तुओं से गुण और मूल्य में अक्सर भिन्न होने पर भी – वे पूंजीपति वर्ग के उपभोग का अंश भी होती हैं। अपने प्रयोजन के लिए हम यहां इस समूचे उपविभाग को इसके लिहाज के बिना कि तंबाकू जैसा उत्पाद शरीरक्रियात्मक दृष्टि से वस्तुतः उपभोक्ता आवश्यकता है या नहीं, उपभोक्ता **आवश्यकताएं** कह सकते हैं। यह काफ़ी है कि वह आदत के कारण आवश्यकता है।

ख) **विलास** वस्तुएं, जो केवल पूंजीपति वर्ग के उपभोग में आती हैं और इसलिए जिनका विनिमय उस व्ययित बेशी मूल्य से ही हो सकता है, जो मजदूर के हिस्से में कभी नहीं आता।

जहां तक प्रथम संवर्ग का संबंध है, यह स्पष्ट है कि उसके अंतर्गत मालों के उत्पादन के लिए जो परिवर्ती पूंजी पेशगी दी जाती है, वह द्रव्य रूप में सीधे वर्ग II के पूंजीपतियों (अर्थात IIक पूंजीपतियों) के पास लौट आयेगी, जिन्होंने इन जीवनावश्यक वस्तुओं का उत्पादन किया है। वे इन्हें अपने ही मजदूरों को उन्हें मजदूरी में दी परिवर्ती पूंजी की राशि के अनुसार बेच देते हैं। जहां तक वर्ग II के पूंजीपतियों के इस समूचे क उपविभाग का संबंध है, यह पश्चप्रवाह **प्रत्यक्ष** होता है, चाहे उद्योग की विभिन्न संबद्ध शाखाओं के पूंजीपतियों के बीच होनेवाले लेन-देन कितने ही क्यों न हों, जिनके द्वारा वापस आनेवाली परिवर्ती पूंजी pro rata वितरित होती है। ये परिचलन प्रक्रियाएं हैं, जिनके परिचलन साधनों की पूर्ति सीधे उस द्रव्य द्वारा होती है, जिसे मजदूर ख़र्च करते हैं। किंतु उपविभाग IIख की स्थिति इससे भिन्न है। इस उपविभाग में उत्पादित मूल्य का समग्र अंश, $II ख_{(प + बे)}$, विलास वस्तुओं के दैहिक रूप में, अर्थात ऐसी वस्तुओं के रूप में होता है, जिन्हें मेहनतकश वर्ग उसी प्रकार नहीं ख़रीद सकता, जिस प्रकार वह उत्पादन साधनों के रूप में विद्यमान माल मूल्य $I_{प}$ नहीं

ख़रीद सकता, बावजूद इस तथ्य के कि विलास वस्तुएं और उत्पादन साधन दोनों इन्हीं मजदूरों के उत्पाद हैं। इसलिए जिस पश्चप्रवाह द्वारा इस उपविभाग में पेशगी परिवर्ती पूंजी अपने द्रव्य रूप में पूंजीपति उत्पादकों के पास लौटकर आती है, वह सीधा नहीं, वरन किसी के माध्यम से हो सकता है, जैसे कि $I_{प}$ के मामले में।

उदाहरण के लिए, मान लीजिये कि प = ५०० और बे = ५००, जैसे कि वे समूचे क्षेत्र II के प्रसंग में थे, किंतु परिवर्ती पूंजी, और तदनुरूप बेशी मूल्य इस प्रकार वितरित हैं:

उपविभाग क, जीवनावश्यक वस्तुएं: प = ४००, बे = ४००; अत: उपभोक्ता आवश्यकताओं में $४००_{प} + ४००_{बे}$ = ८०० मूल्य की माल राशि अथवा II क ($४००_{प} + ४००_{बे}$)।

उपविभाग ख, विलास वस्तुएं: $१००_{प} + १००_{बे}$ = २०० मूल्य की वस्तुएं अथवा II ख ($१००_{प} + १००_{बे}$)।

II ख के मजदूरों को अपनी श्रम शक्ति के भुगतान में द्रव्य रूप में १०० या, कह लीजिये, १०० पाउंड मिले हैं। इस द्रव्य से वे II क पूंजीपतियों से उतनी ही राशि की उपभोग वस्तुएं ख़रीदते हैं। पूंजीपतियों का यह वर्ग उसी द्रव्य से १०० पाउंड का II ख का माल ख़रीदता है, और इस प्रकार II ख के पूंजीपतियों की परिवर्ती पूंजी उनके पास द्रव्य रूप में लौट आती है।

II क में पूंजीपतियों के हाथ में $४००_{प}$ द्रव्य उपलभ्य हैं, जिन्हें उन्होंने अपने ही मजदूरों से विनिमय द्वारा प्राप्त किया है। इसके अलावा उत्पाद का चौथाई हिस्सा, जो बेशी मूल्य है, II ख के मजदूरों को अंतरित कर दिया गया है और उसके बदले विलास वस्तुओं के रूप में II ख ($१००_{प}$) प्राप्त किये गये हैं।

अब अगर यह मान लें कि II क और II ख के पूंजीपति जीवनावश्यक वस्तुओं और विलास वस्तुओं में अपनी आय के व्यय का समान अनुपात में विभाजन करते हैं – मसलन आवश्यक वस्तुओं के लिए ३/५ और विलास वस्तुओं के लिए २/५ – तो उपविभाग II क के पूंजीपति बेशी मूल्य से आय का ३/५ हिस्सा, $४००_{बे}$ अथवा २४० अपने ही उत्पाद – जीवनावश्यक वस्तुओं पर और २/५ या १६० विलास वस्तुओं पर ख़र्च करेंगे। उपविभाग II ख के पूंजीपति अपने $१००_{बे}$ के बेशी मूल्य का इसी तरह बंटवारा करेंगे: ३/५ हिस्सा या ६० आवश्यक वस्तुओं के लिए और २/५ हिस्सा या ४० विलास वस्तुओं के लिए, जिसमें अंतोक्त का उत्पादन और विनिमय उनके अपने ही उपविभाग में होता है।

विलास वस्तुओं के लिए $(II क)_{बे}$ को प्राप्त १६० II क के पूंजीपतियों के पास इस तरह पहुंचते हैं: जैसा कि हम देख चुके हैं, (II क) $४००_{बे}$ में से १०० का विनिमय जीवनावश्यक वस्तुओं के रूप में $(II ख)_{प}$ की एक समान राशि से होता है, जो विलास वस्तुओं के रूप में विद्यमान है, और जीवनावश्यक वस्तुओं के ६० और का विनिमय विलास वस्तुओं के (II ख) $६०_{बे}$ से होता है। इसलिए पूरा परिकलन इस प्रकार होता है:

II क: $४००_{प} + ४००_{बे}$; II ख: $१००_{प} + १००_{बे}$।

१) $४००_{प}$ (क) का उपभोग II क के मजदूर करते हैं, जिनके उत्पाद का वे एक

हिस्सा (जीवनावश्यक वस्तुएं) हैं। मज़दूर उन्हें अपने ही उपविभाग के पूंजीपति उत्पादकों से ख़रीदते हैं। ये पूंजीपति इस तरह द्रव्य रूप में ४०० पाउंड फिर पा लेते हैं, जो उनके द्वारा मज़दूरी के रूप में इन्हीं मज़दूरों को दी गई उनकी ४०० की परिवर्ती पूंजी का मूल्य है। अब वे उससे फिर श्रम शक्ति ख़रीद सकते हैं।

२) $४००_{बे}$ (क) के $१००_{प}$ (ख) के बराबर, यानी बेशी मूल्य (क) के चौथाई हिस्से का विलास वस्तुओं में इस तरह सिद्धिकरण होता है : मज़दूर (ख) अपने उपविभाग (ख) के पूंजीपतियों से मज़दूरी में १०० पाउंड पाते हैं। इस राशि से वे बेशी मूल्य (क) का चौथाई हिस्सा, अर्थात जीवनावश्यक वस्तुएं ख़रीदते हैं। इस धन से क पूंजीपति उतनी ही राशि की विलास वस्तुएं ख़रीदते हैं, जो $१००_{प}$ (ख) के बराबर अथवा विलास वस्तुओं के कुल उत्पाद का आधा हैं। इस प्रकार ख पूंजीपति अपनी परिवर्ती पूंजी द्रव्य रूप में वापस पा जाते हैं और श्रम शक्ति फिर ख़रीदकर पुनरुत्पादन शुरू करने में समर्थ हो जाते हैं, क्योंकि पूरे संवर्ग II की समग्र स्थिर पूंजी का $II_{स}$ से $I_{(प+बे)}$ के विनिमय द्वारा पहले ही प्रतिस्थापन हो चुका है। अतः विलास वस्तुओं के मज़दूरों की श्रम शक्ति फिर से केवल इसलिए बिकाऊ हो जाती है कि उनके ख़ुद के उत्पाद का एक हिस्सा, जिसे उन्होंने अपनी मज़दूरी के समतुल्य के रूप में निर्मित किया है, II क पूंजीपतियों द्वारा अपनी उपभोग निधि में खींच लिया गया है, द्रव्य में तबदील कर लिया गया है। (यही बात I की श्रम शक्ति की बिक्री पर लागू होती है, क्योंकि जिस $II_{स}$ से $I_{(प+बे)}$ का विनिमय होता है, उसमें विलास वस्तुएं और जीवनावश्यक वस्तुएं दोनों होती हैं, और $I_{(प+बे)}$ के द्वारा जिसका नवीकरण होता है, वह विलास वस्तुओं और जीवनावश्यक वस्तुओं दोनों के उत्पादन के साधन हैं।)

३) अब हम क और ख के बीच विनिमय पर आते हैं, जो महज़ दो उपविभागों के पूंजीपतियों के बीच विनिमय है। अब तक हम क के अंतर्गत परिवर्ती पूंजी ($४००_{प}$) और बेशी मूल्य के अंश ($१००_{बे}$) तथा ख के अंतर्गत परिवर्ती पूंजी ($१००_{प}$) का विवेचन कर चुके हैं। इसके अलावा हमने यह मान रखा है कि दोनों वर्गों में पूंजीपतियों की आय के ख़र्च का औसत अनुपात विलास वस्तुओं के लिए २/५ और आवश्यक वस्तुओं के लिए ३/५ है। विलास वस्तुओं पर पहले ही ख़र्च हुए १०० के अलावा समूचे क उपविभाग को विलास वस्तुओं के लिए अभी ६० और इसी अनुपात से ख को ४० आवंटित करना बाक़ी है।

इसलिए $(II\ क)_{बे}$ को आवश्यक वस्तुओं के लिए २४० और विलास वस्तुओं के लिए १६० अथवा २४० + १६० = $४००_{बे}$ (II क) में विभाजित किया जाता है।

$(II\ ख)_{बे}$ को आवश्यक वस्तुओं के लिए ६० और विलास वस्तुओं के लिए ४० ; ६० + ४० = $१००_{बे}$ (II ख) में विभाजित किया जाता है। अंतिम ४० का यह वर्ग अपने ही उत्पाद (अपने बेशी मूल्य का २/५ अंश) से उपभोग करता है। आवश्यक वस्तुओं के ६० यह वर्ग $६०_{बे}$ (क) से अपने बेशी मूल्य के ६० का विनिमय करके प्राप्त करता है।

इस तरह पूंजीपतियों के समूचे वर्ग II का यह बैठता है (प तथा बे उपविभाग क के अंतर्गत आवश्यक वस्तुएं हैं, ख में वे विलास वस्तुएं हैं) :

II क ($४००_{प}$ + $४००_{बे}$) + II ख ($१००_{प}$ + $१००_{बे}$) = १,००० ; इस प्रकार

इस गति से यह सिद्धिकरण होता है: $५००_{प}$ (क+ख) [$४००_{प}$ (क) तथा $१००_{बे}$ (क) में सिद्धिकृत] + $५००_{बे}$ (क+ख) [$३००_{बे}$ (क) + $१००_{प}$ (ख) + $१००_{बे}$ (ख) में सिद्धिकृत] = १,०००।

क और ख पर अलग-अलग विचार करने पर निम्न सिद्धिकरण प्राप्त होता है:

क) $$\frac{प}{४००_{प}\ (क)} + \frac{बे}{२४०_{बे}(क) + १००_{प}(ख) + ६०_{बे}\ (ख)} = ८००$$

ख) $$\frac{प}{१००_{बे}(क)} + \frac{बे}{६०_{बे}(क) + ४०_{बे}(ख)} \quad . \quad . \quad . \quad . \quad . \quad . = \frac{२००}{१,०००}।$$

यदि सरलता के लिए हम परिवर्ती और स्थिर पूंजी के बीच समान अनुपात मान लें (जो, प्रसंगवश, बिल्कुल भी ज़रूरी नहीं है), तो $४००_{प}$ (क) के लिए स्थिर पूंजी १,६०० बनती है और $१००_{प}$ (ख) के लिए ४००। इस तरह II में क और ख ये दो उपविभाग बन जाते हैं:

$$II\ क)\quad १,६००_{स} + ४००_{प} + ४००_{बे} = २,४००$$

$$II\ ख)\quad ४००_{स} + १००_{प} + १००_{बे} = \quad ६००,$$

जिनका योग है:

$$२,०००_{स} + ५००_{प} + ५००_{बे} = ३,०००$$

तदनुसार उपभोग वस्तुओं के रूप में जिन २,००० $II_{स}$ का विनिमय २,००० $I_{(प+बे)}$ से होता है, उनमें से १,६०० का जीवनावश्यक वस्तुओं के उत्पादन साधनों से और ४०० का विलास वस्तुओं के उत्पादन साधनों से विनिमय होता है।

इसलिए २,००० $I_{(प+बे)}$ का क के लिए ($८००_{प} + ८००_{बे}$) I, जो जीवनावश्यक वस्तुओं के उत्पादन साधनों के १,६०० के बराबर है, और ख के लिए ($२००_{प} + २००_{बे}$) I, जो विलास वस्तुओं के उत्पादन साधनों के ४०० के बराबर हैं, में विघटन हो जायेगा।

स्वयं श्रम उपकरणों और साथ ही कच्ची और सहायक सामग्री, इत्यादि का काफ़ी बड़ा भाग दोनों क्षेत्रों के लिए एक सा ही होता है। किंतु जहां तक कुल उत्पाद $I(प+बे)$ के मूल्य के विभिन्न अंशों के विनिमय का संबंध है, ऐसा विभाजन पूर्णतः महत्वहीन होगा। I के उपर्युक्त $८००_{प}$ और I के $२००_{प}$ का इसलिए सिद्धिकरण होता है कि उपभोग वस्तुओं, १,००० $II_{स}$ के लिए मजदूरी ख़र्च की जाती है; अतः इस उद्देश्य के लिए पेशगी दी द्रव्य पूंजी अपनी वापसी पर I के पूंजीपति उत्पादकों के बीच समान रूप में वितरित हो जाती है, उनकी पेशगी परिवर्ती पूंजी द्रव्य रूप में pro rata प्रतिस्थापित होती है। दूसरी ओर, जहां तक १,००० $I_{बे}$ के सिद्धिकरण का संबंध है, पूंजीपति यहां भी उसी तरह समरूप में (अपने बे के परिमाण के यथानुपात) $II_{स}$ के समूचे दूसरे भाग से उपभोग साधनों के रूप में १,००० के बराबर ६०० II क और

४०० II ख प्राप्त करेंगे; फलतः जो लोग II क की स्थिर पूंजी प्रतिस्थापित करेंगे, वे यह प्राप्त करेंगे:

$६००_{स}$ (II क) से ४८० (३/५) और $४००_{स}$ (II ख) से ३२० (२/५), जो ८०० के बराबर है। जो लोग II ख की स्थिर पूंजी का प्रतिस्थापन करेंगे, वे यह प्राप्त करेंगे:

$६००_{स}$ (II क) से १२० (३/५) और $४००_{स}$ (II ख) से ८० (२/५), जो २०० के बराबर है। कुल योग = १,०००।

यहां जो चीज़ स्वेच्छाधीन है, वह I और II दोनों की स्थिर पूंजी से परिवर्ती पूंजी का अनुपात है और वैसे ही I और II तथा उनके उपविभागों के लिए इस अनुपात की एकरूपता है। जहां तक इस एकरूपता का संबंध है, उसे यहां केवल सरलता के लिए माना गया है और हम भिन्न अनुपात मान लें, तो इससे समस्या और उसके समाधान की परिस्थितियां किसी भी प्रकार बदल नहीं जायेंगी। फिर भी साधारण पुनरुत्पादन की कल्पना के अनुसार इस सब का अनिवार्य परिणाम यह है:

१) एक वर्ष के श्रम द्वारा उत्पादन साधनों के दैहिक रूप में निर्मित नया मूल्य (प+बे में विभाज्य) स्थिर पूंजी स के वार्षिक श्रम के दूसरे भाग द्वारा सृजित उत्पाद के मूल्य में समाविष्ट और उपभोग वस्तुओं के रूप में पुनरुत्पादित मूल्य के बराबर होता है। यदि वह $II_{स}$ से कम हो, तो II के लिए अपनी स्थिर पूंजी का पूर्ण प्रतिस्थापन करना असंभव हो जायेगा; यदि वह ज्यादा हो, तो कुछ अंश बेशी बच रहेगा, जिसका उपयोग न होगा। दोनों ही स्थितियों में साधारण पुनरुत्पादन की कल्पना खंडित होगी।

२) उपभोग वस्तुओं के रूप में पुनरुत्पादित होनेवाले वार्षिक उत्पाद के मामले में द्रव्य रूप में पेशगी परिवर्ती पूंजी प का उसके प्राप्तिकर्ताओं द्वारा, चूंकि वे विलास वस्तुएं उत्पन्न करनेवाले मज़दूर हैं, जीवनावश्यक वस्तुओं के उस अंश में ही सिद्धिकरण किया जा सकता है, जिसमें उनके पूंजीपति उत्पादकों के लिए उनका बेशी मूल्य prima facie निहित होता है; इसी लिए विलास वस्तुओं के उत्पादन में ख़र्च किया जानेवाला प मूल्य में जीवनावश्यक वस्तुओं के रूप में उत्पादित बे के तदनुरूप अंश के बराबर होता है और इसलिए वह इस पूरे बे से, अर्थात (II क $)_{बे}$ से कम होगा, और विलास वस्तुओं के पूंजीपति उत्पादकों द्वारा पेशगी दी परिवर्ती पूंजी द्रव्य रूप में उनके पास केवल बे के इस अंश में उस प के सिद्धिकरण के माध्यम से लौटती है। यह परिघटना $II_{स}$ में $I_{(प+बे)}$ के सिद्धिकरण के बहुत सदृश है, सिवा इसके कि दूसरे प्रसंग में (IIख $)_{प}$ अपना सिद्धिकरण उसी मूल्य के (II क $)_{बे}$ के एक अंश में करता है। ये अनुपात कुल वार्षिक उत्पाद के प्रत्येक वितरण में गुणात्मक दृष्टि से निर्धारक बने रहते हैं, क्योंकि वह परिचलन द्वारा जनित वार्षिक पुनरुत्पादन की प्रक्रिया में वस्तुतः दाख़िल होता है। $I_{(प+बे)}$ का सिद्धिकरण केवल $II_{स}$ में हो सकता है, जैसे $II_{स}$ का क्रिया में उत्पादक पूंजी के घटक के रूप में नवीकरण इस सिद्धिकरण के द्वारा ही हो सकता है; इसी प्रकार (II ख $)_{प}$ का सिद्धिकरण केवल (II क $)_{बे}$ के अंश में ही हो सकता है और (II ख $)_{प}$ इस प्रकार केवल द्रव्य पूंजी के रूप में पुनःपरिवर्तित हो सकता

है। कहना न होगा कि यह सब वहीं तक लागू होता है कि जहां तक यह सब वास्तव में स्वयं पुनरुत्पादन प्रक्रिया का परिणाम होता है, अर्थात जहां तक, उदाहरणतः, II ख के पूंजीपति प के लिए दूसरों से उधार लेकर द्रव्य पूंजी हासिल नहीं करते। तथापि परिमाणात्मक दृष्टि से वार्षिक उत्पाद के विभिन्न अंशों के उपर्युक्त अनुपातों में विनिमय तभी तक हो सकते हैं कि जब तक उत्पादन का पैमाना और उसके मूल्य संबंध स्थिर बने रहते हैं और जब तक ये सुनिश्चित संबंध विदेशी व्यापार से बदलते नहीं।

अब यदि हम ऐडम स्मिथ के ढंग पर कहें कि $I_{(प+बे)}$ स्वयं को $II_{स}$ में वियोजित कर लेते हैं, और $II_{स}$ स्वयं को $I_{(प+बे)}$ में वियोजित कर लेता है अथवा जैसा कि वह और भी अक्सर तथा और भी बेतुके ढंग से कहा करते थे, $I_{(प+बे)}$ $II_{स}$ की क़ीमत (अथवा उनकी शब्दावली में "विनिमय मूल्य") के संघटक अंश होते हैं और $II_{स}$ $I_{(प+बे)}$ के मूल्य का समग्र संघटक अंश होता है, तो इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है और कहना भी चाहिए कि $(II\,ख)_{प}$ स्वयं को $(II\,क)_{बे}$ में, अथवा $(II\,क)_{बे}$ $(II\,ख)_{प}$ में वियोजित कर लेता है, अथवा $(II\,ख)_{प}$ II क के बेशी मूल्य का संघटक अंश होता है, और vice versa, बेशी मूल्य स्वयं को इस प्रकार मजदूरी में अथवा परिवर्ती पूंजी में वियोजित करता है, और परिवर्ती पूंजी बेशी मूल्य का "संघटक अंश" होती है। यह बेतुकापन सचमुच ही ऐडम स्मिथ के यहां है, क्योंकि उनके अनुसार मजदूरी जीवनावश्यक वस्तुओं के मूल्य द्वारा निर्धारित होती है, और ये माल मूल्य अपनी बारी में उनमें निहित मज़दूरी के मूल्य (परिवर्ती पूंजी) और बेशी मूल्य द्वारा निर्धारित होते हैं। पूंजीवाद के आधार पर एक कार्य दिवस का मूल्य उत्पाद जिन भिन्नांशों में – अर्थात प+बे में – विभाजित होता है, उनमें वह ऐसा मशगूल हो जाते हैं कि यह बिल्कुल भूल जाते हैं कि साधारण माल विनिमय के लिए यह निरर्थक है कि विभिन्न दैहिक रूपों में विद्यमान समतुल्यों में समाहित श्रम सवेतन है या निर्वेतन, क्योंकि दोनों ही मामलों में उनके उत्पादन में श्रम की समान मात्रा लगती है; और यह भी निरर्थक है कि क का माल उत्पादन साधन है और ख का उपभोग वस्तु है; और यह है कि अपनी बिक्री के बाद किसी माल को पूंजी के संघटक अंश का काम करना पड़ता है, जब कि दूसरा उपभोग निधि में पहुंच जाता है, और secundum Adam (ऐडम के अनुसार) आय के रूप में उपभुक्त होता है। वैयक्तिक ग्राहक अपने माल का जो भी उपयोग करता है, वह माल विनिमय के दायरे में या परिचलन की परिधि में नहीं आता और मालों के मूल्य को प्रभावित नहीं करता। यह बात इस तथ्य से भी किसी तरह नहीं बदलती कि कुल वार्षिक सामाजिक उत्पाद के परिचलन के विश्लेषण में उसके निश्चित उद्दिष्ट उपयोग को, उसके विविध संघटक अंशों के उपभोग की बात को ध्यान में रखना होगा।

ऊपर प्रस्थापित किये $(II\,ख)_{प}$ के उसी मूल्य के $(II\,क)_{बे}$ के एक अंश से विनिमय में तथा $(II\,क)_{बे}$ और $(II\,ख)_{बे}$ के बाद वाले विनिमयों में यह क़तई नहीं माना गया है कि II क और II ख के अलग-अलग पूंजीपति अथवा उनके अपने-अपने साकल्य अपने बेशी मूल्य का आवश्यक उपभोग वस्तुओं और विलास वस्तुओं में समान अनुपात में विभाजन करते हैं। कोई इस उपभोग पर ज्यादा ख़र्च कर सकता है, तो कोई और दूसरे

पर। साधारण पुनरुत्पादन के आधार पर केवल इतना माना गया है कि उपभोग निधि में समूचे बेशी मूल्य के बराबर मूल्यों की राशि का सिद्धिकरण होता है। इस प्रकार सीमाएं निर्धारित हैं। प्रत्येक क्षेत्र में कोई क के अंतर्गत ज्यादा ख़र्च कर सकता है, तो कोई ख के। किंतु इसकी आपसी क्षतिपूर्ति हो सकती है, जिससे कि क और ख के पूंजीपति समूहों में, समूचे तौर पर, प्रत्येक दोनों में ही समानुपात में भाग लेता है। किंतु प्रत्येक ठोस मामले में मूल्य संबंध – II के उत्पाद के समग्र मूल्य में दोनों तरह के उत्पादकों – क और ख – के समानुपातिक हिस्से – दिये हुए होते हैं और फलतः इस उत्पाद की पूर्ति करनेवाली उत्पादन शाखाओं के बीच निश्चित परिमाणगत संबंध भी दिया हुआ होता है; बस, उदाहरण के लिए जो अनुपात चुना गया है, वह कल्पित है। यदि दूसरा उदाहरण लिया जाये, तो भी गुणात्मक पहलुओं में कोई तबदीली न होगी; केवल परिमाणगत निर्धारक बदल जायेंगे। किंतु यदि किन्हीं परिस्थितियों के कारण क और ख के सापेक्ष परिमाण में कोई वास्तविक परिवर्तन हो जाता है, तो साधारण पुनरुत्पादन की परिस्थितियां भी तदनुसार बदल जायेंगी।

चूंकि $(II\text{ख})_{\text{प}}$ का सिद्धिकरण $(II\text{क})_{\text{बे}}$ के तुल्य भाग में होता है, इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि वार्षिक उत्पाद के विलास वस्तु-अंश बढ़ते जाने और इसलिए विलास वस्तुओं के उत्पादन में श्रम शक्ति के अधिकाधिक भाग लगते जाने का अनुपात $(II\text{ख})_{\text{प}}$ में पेशगी दी परिवर्ती पूंजी का परिवर्ती पूंजी के द्रव्य रूप की तरह फिर से कार्य करनेवाली द्रव्य पूंजी में पुनःरूपांतरण और इस कारण मजदूर वर्ग के II ख में नियोजित हिस्से का अस्तित्व और पुनरुत्पादन – उसे उपभोक्ता आवश्यकताओं की पूर्ति – पूंजीपति वर्ग की फ़ुज़ूल-ख़र्ची पर, उसके बेशी मूल्य के काफ़ी हिस्से के विलास वस्तुओं से विनिमय पर निर्भर करता है।

प्रत्येक संकट विलास वस्तुओं के उपभोग को तुरंत कम कर देता है, $(II\text{ख})_{\text{प}}$ के द्रव्य पूंजी में पुनःपरिवर्तन को केवल आंशिक रूप में ही होने देकर विलंबित कर देता है और इस तरह विलास वस्तुओं के उत्पादन में लगे मजदूरों की कुछ संख्या को बेकार कर देता है और दूसरी ओर इस तरह वह उपभोक्ता आवश्यकताओं की बिक्री को अवरुद्ध करके उसे घटा देता है। और यह उन अनुत्पादक मजदूरों का उल्लेख किये बिना, जिन्हें इसी समय बरख़ास्त किया जाता है, जिन मजदूरों को अपनी सेवाओं के बदले पूंजीपतियों की विलास व्यय निधि से एक अंश मिलता है (ये मजदूर स्वयं pro tanto विलास वस्तुएं हैं) और जो जीवनावश्यक वस्तुओं के उपभोग, आदि में काफ़ी हद तक भाग लेते हैं। समृद्धि के दिनों में इसका उलटा होता है, ख़ास तौर से मिथ्या समृद्धि के दिनों में, जब द्रव्य का सापेक्ष मूल्य, जो माल रूप में प्रकट होता है, अन्य कारणों से भी घट जाता है (मूल्यों में किसी वास्तविक उलट-फेर के बिना), जिससे मालों की क़ीमतें अपने ही मूल्यों से स्वतंत्ररूपेण चढ़ जाती हैं। जीवनावश्यक वस्तुओं का उपभोग बढ़ जाता है। यही नहीं, मजदूर वर्ग (अब अपनी समूची आरक्षित सेना द्वारा मुस्तैदी से प्रबलित) भी अपनी पहुंच के बाहर की विलास वस्तुओं का और उन वस्तुओं का, जो दूसरे समय अधिकतर केवल पूंजीपति वर्ग के लिए उपभोक्ता "आवश्यकताएं" होती हैं, क्षणिक आनंद लेता है। अपनी बारी में इससे भी क़ीमतों में इज़ाफ़ा होता है।

यह कहना कोरी पुनरावृत्ति करना है कि संकट कारगर उपभोग की दुर्लभता से अथवा कारगर उपभोक्ताओं की दुर्लभता से पैदा होते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था उपभोग की कारगर

पद्धतियों के अलावा और किसी पद्धति से परिचित नहीं है, सिवा sub forma pauperis या ठगों की पद्धति के। माल अविक्रेय है, इसका यही अर्थ है कि उसके लिए कारगर ग्राहक, अर्थात उपभोक्ता नहीं मिले हैं (क्योंकि अंततोगत्वा माल उत्पादक अथवा व्यक्तिगत उपभोग के लिए ही ख़रीदे जाते हैं)। किंतु यदि कोई यह कहकर कि मजदूर वर्ग अपने ही उत्पाद का बहुत ही कम हिस्सा पाता है और इसलिए जैसे ही उसे उसका अधिक भाग मिलने लगेगा और इसके परिणामस्वरूप उसकी मज़दूरी बढ़ जायेगी, वैसे ही यह दोष दूर हो जायेगा, इस पुनरावृत्ति को अधिक गहन औचित्य की सादृश्यता प्रदान करना चाहे, तो यही कहा जा सकता है कि संकटों की तैयारी सदा ठीक उन्हीं दिनों में होती है, जब मज़दूरी में आम तौर से इज़ाफ़ा होता है और मज़दूर वर्ग वास्तव में वार्षिक उत्पाद के उस भाग का ज्यादा हिस्सा पाता है, जो उपभोग के लिए उद्दिष्ट होता है। गंभीर और "सरल" (!) सहज बोध के इन समर्थकों के दृष्टिकोण से तो ऐसे दिनों को संकट दूर करना चाहिए। तो पता चलता है कि पूंजीवादी उत्पादन में भली और बुरी नीयत से स्वतंत्र ऐसी परिस्थितियां भी होती हैं, जिनमें मज़दूर वर्ग उस सापेक्ष समृद्धि का क्षणिक ही आनंद ले पाता है, और वह भी हमेशा आनेवाले संकट के पूर्वसूचक के रूप में।[47]

कुछ पहले हमने देखा था कि उपभोक्ता आवश्यकताओं के उत्पादन और विलास वस्तुओं के उत्पादन के बीच का अनुपात $II_{(प+बे)}$ के II क और II ख में और इस प्रकार $II_{स}$ के $(II क)_{स}$ और $(II ख)_{स}$ में विभाजन को आवश्यक बना देता है। अतः यह विभाजन उत्पादन के स्वरूप तथा गुणात्मक संबंधों पर मूलगामी प्रभाव डालता है और वह उसकी सामान्य संरचना का महत्वपूर्ण कारक है।

साधारण पुनरुत्पादन का तात्विक लक्ष्य उपभोग है, यद्यपि बेशी मूल्य को हथियाना अलग-अलग पूंजीपतियों का प्रेरक हेतु प्रतीत होता है; किंतु बेशी मूल्य का सापेक्ष परिमाण चाहे जो हो, वह तो आख़िर यहां पूंजीपति के वैयक्तिक उपभोग का साधक ही माना जाता है।

चूंकि साधारण पुनरुत्पादन विस्तारित पैमाने पर समस्त वार्षिक पुनरुत्पादन का अंग, और वह भी सबसे महत्वपूर्ण अंग है, इसलिए यह प्रेरक स्वयं आत्मसंपन्नीकरण प्रेरक के सहचर और उसके व्यतिरेक के रूप में बना रहता है। दरअसल मामला ज्यादा पेचीदा है, क्योंकि लूट – पूंजीपति के बेशी मूल्य – में साझीदार उससे स्वतंत्र उपभोक्ताओं के रूप में सामने आते हैं।

५. द्रव्य परिचलन द्वारा विनिमय का साधन

अभी तक हमने परिचलन का जितना विश्लेषण किया है, वह उत्पादकों के विभिन्न वर्गों के बीच निम्नलिखित सारणी के अनुसार चलता रहा है:

१) वर्ग I और वर्ग II के बीच:

$$\text{I. } \underline{४,०००_{स} + १,०००_{प} + १,०००_{बे}}$$

$$\text{II. } \ldots\ldots \quad २,०००_{स} \quad \ldots\ldots + ५००_{प} + ५००_{बे}$$

---

[47] संकटों के रॉडबेर्टसीय सिद्धांत के संभाव्य माननेवालों के लिए ad notam [ध्यानव्य] – फ़े० एं०

यह $II_{स}$, जो २,००० के बराबर है, के परिचलन का हिसाब हुआ, जिसका I ($१,०००_{प}+$ $+१,०००_{बे}$) से विनिमय होता है।

फ़िलहाल ४,००० $I_{स}$ को छोड़ देने पर भी II के अंतर्गत प+बे का परिचलन शेष रह जाता है। अब II क और II ख उपविभागों के बीच $II_{(प+बे)}$ इस प्रकार बंटता है:

२) II. $५००_{प}+५००_{बे}$ = क ($४००_{प}+४००_{बे}$) + ख ($१००_{प}+१००_{बे}$)।

$४००_{प}$ (क) अपने ही उपविभाग के भीतर परिचलन करता है; जिन मज़दूरों की उससे अदायगी की जाती है, वे अपने मालिकों, II क के पूंजीपतियों, से आवश्यक निर्वाह साधन ख़रीदते हैं, जिनका उत्पादन स्वयं उन्होंने किया है।

चूंकि दोनों उपविभागों के पूंजीपति अपने बेशी मूल्य का ३/५ भाग II क के उत्पाद (आवश्यक वस्तुओं) पर तथा २/५ भाग II ख के उत्पाद (विलास वस्तुओं) पर ख़र्च करते हैं, इसलिए क के बेशी मूल्य के ३/५ भाग अथवा २४० की खपत स्वयं उपविभाग I क में होती है। इसी तरह ख के बेशी मूल्य का २/५ भाग (विलास वस्तुओं के रूप में उत्पादित और विद्यमान) उपविभाग II ख में खपता है।

II क और II ख के बीच विनिमय के लिए रह जाता है: II क की ओर: $१६०_{बे}$; II ख की ओर: $१००_{प}+६०_{बे}$। ये दोनों एक दूसरे को निरसित कर देते हैं। II ख के मज़दूर द्रव्य मज़दूरी के रूप में जो १०० पाते हैं, उनसे वे II क से उसी राशि की जीवन आवश्यक वस्तुएं ख़रीदते हैं। इसी प्रकार II ख के पूंजीपति II क से अपने बेशी मूल्य की ३/५ राशि अथवा $६०_{बे}$ की जीवनावश्यक वस्तुएं ख़रीदते हैं। इस तरह II क के पूंजीपतियों को, जैसा कि ऊपर माना गया था, II ख द्वारा उत्पादित विलास वस्तुओं (II ख के पूंजीपतियों के हाथ में उनके द्वारा अदा की गयी मज़दूरी का प्रतिस्थापन करनेवाले उत्पाद के रूप में $१००_{प}$ और $६०_{बे}$) में निवेशित करने के लिए आवश्यक धन, अपने बेशी मूल्य का ३/५ अथवा $१६०_{बे}$ प्राप्त हो जाता है। अतः यह सारणी इस प्रकार है:

$$३)\ II\,क\quad [४००_{प}]+[२४०_{बे}]+\quad १६०_{बे}$$
$$ख\ \ .\ .\ .\ .\ .\ .\ .\ \overline{१००_{प}+६०_{बे}}+[४०_{ब}],$$

कोष्ठकबद्ध मदें केवल अपने उपविभाग में परिचालित और उपभुक्त हो रही हैं।

परिवर्ती पूंजी में पेशगी दी गयी द्रव्य पूंजी का प्रत्यक्ष पश्चप्रवाह, जो केवल जीवनावश्यक वस्तुओं का उत्पादन करनेवाले क्षेत्र II क के पूंजीपति के मामले में ही होता है, पहले बताये इस सामान्य नियम की विशेष परिस्थितियों द्वारा आपरिवर्तित अभिव्यक्ति मात्र है कि मालों के उत्पादकों द्वारा परिचलन के लिए पेशगी लगाया गया धन माल परिचलन के सामान्य दौर में उनके पास लौट आता है। प्रसंगवश, इससे यह नतीजा भी निकलता है कि मालों के उत्पादक की पीठ पर अगर कोई द्रव्य पूंजीपति हो और औद्योगिक पूंजीपति को द्रव्य पूंजी (शब्द के यथार्थतम अर्थ में, अर्थात द्रव्य रूप में पूंजी मूल्य) पेशगी दे, तो इस द्रव्य के पश्चप्रवाह का वास्तविक स्थल द्रव्य पूंजीपति का जेब ही है। इस प्रकार प्रचल द्रव्य का अधिकांश द्रव्य पूंजी के उस क्षेत्र की होता है, जो बैंकों, आदि के रूप में संगठित और संकेंद्रित है,

यद्यपि द्रव्य कमोबेश सभी लोगों के हाथों से होकर परिचालित होता है। यह क्षेत्र अपनी पूंजी को जिस ढंग से पेशगी देता है, उससे उसका आख़िर में उसके पास निरंतर द्रव्य रूप में पश्चप्रवाह आवश्यक हो जाता है, यद्यपि यह फिर औद्योगिक पूंजी के द्रव्य पूंजी में पुनःरूपांतरण द्वारा ही होता है।

माल परिचलन के लिए हमेशा दो चीज़ें ज़रूरी होती हैं: माल, जो परिचलन में डाला जाता है और द्रव्य, जो उसी प्रकार उसमें डाला जाता है। "...परिचलन की प्रक्रिया पैदावार के प्रत्यक्ष विनिमय की तरह उपयोग मूल्यों के स्थानांतरित होने और मालिकों के बदलने पर समाप्त नहीं हो जाती। किसी एक माल के रूपांतरण के परिपथ से बाहर निकल जाने पर द्रव्य ग़ायब नहीं हो जाता। उसका तो लगातार परिचलन के क्षेत्र के उन नये स्थानों में अवक्षेपण होता रहता है, जिनको दूसरे माल ख़ाली कर जाते हैं," इत्यादि (Buch I, Kap. III, p. 92)*।

उदाहरण के लिए, $II_{स}$ और $I_{(प+बे)}$ के बीच परिचलन में हमने माना था कि II ने उसके लिए द्रव्य रूप में ५०० पाउंड पेशगी दिये हैं। उत्पादकों के बड़े सामाजिक समूहों के बीच परिचलन अपने को जिन असंख्य परिचलन प्रक्रियाओं में वियोजित कर लेता है, उनमें विभिन्न समूहों के प्रतिनिधि अलग-अलग अवसरों पर पहले ग्राहकों के रूप में आयेंगे और इसलिए परिचलन में धन डालेंगे। विशेष परिस्थितियां दरकिनार, यह और किसी चीज़ से नहीं, तो उत्पादन अवधियों में अंतर से, और इस प्रकार विभिन्न माल पूंजियों की आवर्त अवधियों में अंतर पड़ने से आवश्यक हो जाता है। इस तरह इन ५०० पाउंड से II उतने ही मूल्य के उत्पादन साधन I से ख़रीदता है और I ५०० पाउंड मूल्य की उपभोग वस्तुएं II से ख़रीदता है। अतः धन II के पास वापस आ जाता है, किंतु इस पश्चप्रवाह से यह क्षेत्र किसी तरह ज़्यादा धनी नहीं हो जाता। उसने पहले परिचलन में ५०० पाउंड द्रव्य रूप में डाले थे और उसी मूल्य का माल उसमें से निकाला था; फिर वह ५०० पाउंड का माल बेचता है और उतनी ही द्रव्य राशि परिचलन से निकालता है। इस प्रकार ५०० पाउंड उसके पास लौट आते हैं। दरअसल II ने परिचलन में ५०० पाउंड द्रव्य रूप में और ५०० पाउंड मालों के रूप में डाले हैं, जो १,००० पाउंड के बराबर हुए। वह ५०० पाउंड मालों के रूप में और ५०० पाउंड द्रव्य रूप में परिचलन से निकालता है। I के माल में ५०० पाउंड और II के माल में ५०० पाउंड के निपटारे के लिए परिचलन को द्रव्य रूप में केवल ५०० पाउंड की आवश्यकता है; इसलिए जिसने भी दूसरे उत्पादकों से माल ख़रीदने के लिए द्रव्य पेशगी दिया है, वह अपना माल बेचने पर उसे वापस पा जाता है। फलतः यदि I ने पहले II से ५०० पाउंड का माल ख़रीदा है और बाद में ५०० पाउंड मूल्य का माल II को बेच दिया है, तो ये ५०० पाउंड II के पास नहीं, I के पास लौट आयेंगे।

वर्ग I में मज़दूरी में निवेशित धन, अर्थात द्रव्य रूप में पेशगी परिवर्ती पूंजी, इसी रूप में प्रत्यक्षतः नहीं लौटता, वरन टेढ़े रास्ते से अप्रत्यक्षतः लौटता है। किंतु II में मज़दूरी के ५०० पाउंड मज़दूरों से पूंजीपतियों के पास प्रत्यक्षतः लौट आते हैं और यह प्रत्यावर्तन उस मामले में हमेशा प्रत्यक्ष होता है, जिसमें उन्हीं व्यक्तियों में बारंबार क्रय-विक्रय इस तरह होता है कि वे बारी-बारी से मालों के ग्राहक और विक्रेता होते हैं। II का पूंजीपति श्रम शक्ति

* हिंदी संस्करण: अध्याय ३, पृष्ठ १२९-१३०।—सं०

की अदायगी द्रव्य में करता है; इस तरह वह श्रम शक्ति का समावेश अपनी पूंजी में कर लेता है और अपने उजरती मजदूरों के प्रसंग में औद्योगिक पूंजीपति की भूमिका ग्रहण कर लेता है, किंतु ऐसा वह परिचलन की इस क्रिया के द्वारा ही करता है, जो उसके लिए द्रव्य पूंजी का उत्पादक पूंजी में रूपांतरण मात्र है। इससे मजदूर, जो पहले विक्रेता, अपनी ही श्रम शक्ति का विक्रेता था, अब पूंजीपति के प्रसंग में ग्राहक की, पैसेवाले की तरह सामने आता है और पूंजीपति मालों के विक्रेता का काम करता है। इस तरह पूंजीपति मजदूरी में निवेशित धन को वापस पा जाता है। चूंकि इन मालों की बिक्री में धोखा, आदि सन्निहित नहीं है, बल्कि तुल्य मालों और द्रव्य में विनिमय है, इसलिए यह ऐसी प्रक्रिया नहीं है, जिससे पूंजी-पति धन बटोर ले। वह मजदूर की दो बार – पहले द्रव्य में, फिर मालों में – अदायगी नहीं करता। जैसे ही मजदूर उसके मालों से द्रव्य का विनिमय करता है, उसका द्रव्य उसके पास लौट आता है।

फिर भी परिवर्ती पूंजी में परिवर्तित द्रव्य पूंजी, अर्थात मजदूरी के लिए पेशगी दिया द्रव्य, स्वयं द्रव्य परिचलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, क्योंकि मजदूर को तो नित कमाकर नित जीना होता है और इसलिए वह औद्योगिक पूंजीपति को ज्यादा समय के लिए उधार दे नहीं सकता। इस कारण परिवर्ती पूंजी को द्रव्य रूप में समाज के असंख्य भिन्न-भिन्न स्थलों पर एकसाथ कुछ लघु अंतरालों पर, जैसे कि सप्ताह, आदि – ऐसी कालावधियां, जो अपनी पुनरावृत्ति जरा जल्दी ही करती हैं (और ये अवधियां जितना ही छोटी होंगी, उतना ही इस माध्यम से एकबारगी परिचलन में डाली जानेवाली कुल द्रव्य राशि भी अपेक्षाकृत कम होगी) – उद्योग की विभिन्न शाखाओं में पूंजियों की भिन्न-भिन्न आवर्त अवधियां जो भी हों, पेशगी देना होता है। पूंजीवादी उत्पादनवाले प्रत्येक देश में इस तरह पेशगी दी हुई पूंजी कुल परिचलन का अपेक्षाकृत निर्णायक भाग होती है, इसलिए और भी कि अपने प्रस्थान बिंदु पर अपने पश्चप्रवाह के पहले वही द्रव्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न रास्तों से गुजरता है और अन्य असंख्य कार्यों के लिए परिचलन माध्यम का कार्य करता है।

आइये, अब $I_{(प+बे)}$ तथा $II_{स}$ के बीच परिचलन पर एक अन्य दृष्टिकोण से विचार करें।

I के पूंजीपति मजदूरी की अदायगी में १,००० पाउंड पेशगी लगाते हैं। इस धन से मजदूर II के पूंजीपतियों से १,००० पाउंड के निर्वाह साधन ख़रीदते हैं। अपनी बारी में ये उसी द्रव्य से I के पूंजीपतियों से उत्पादन साधन ख़रीदते हैं। इस तरह I के पूंजीपति अपनी परिवर्ती पूंजी द्रव्य रूप में वापस पा लेते हैं, जब कि II के पूंजीपति अपनी आधी स्थिर पूंजी को माल पूंजी के रूप से उत्पादक पूंजी के रूप में पुनःपरिवर्तित कर लेते हैं। II के पूंजीपति I से उत्पादन साधन प्राप्त करने के लिए ५०० पाउंड और द्रव्य रूप में पेशगी देते हैं। I के पूंजीपति यह धन II से प्राप्त उपभोग वस्तुओं पर ख़र्च करते हैं। इस तरह ये ५०० पाउंड II के पूंजीपतियों के पास लौट आते हैं। वे अपनी स्थिर पूंजी के माल में परिवर्तित आख़िरी चौथाई भाग को उसके उत्पादक दैहिक रूप में पुनःरूपांतरित करने के लिए फिर पेशगी दे देते हैं। यह धन I के पास लौट आता है और वह फिर उसी राशि की उपभोग वस्तुएं II से निकालता है। इस तरह ५०० पाउंड II के पास लौट आते हैं। अब II के

पूंजीपतियों के पास पहले की ही तरह ५०० पाउंड द्रव्य रूप में और २,००० पाउंड स्थिर पूंजी के रूप में हैं, जिनमें अंतोक्त माल पूंजी के रूप से उत्पादक पूंजी के रूप में नवपरिवर्तित हैं। १,५०० पाउंड के ज़रिये ५,००० पाउंड की माल राशि को परिचालित कर दिया गया है। अर्थात: १) I अपने मजदूरों को १,००० पाउंड उनकी उसी मूल्य की श्रम शक्ति के लिए देता है; २) मज़दूर इन्हीं १,००० पाउंड से II से अपने निर्वाह साधन ख़रीदते हैं, ३) II उसी द्रव्य से I से उत्पादन साधन ख़रीदता है और इस तरह I को द्रव्य रूप में १,००० पाउंड राशि की परिवर्ती पूंजी बहाल कर देता है; ४) II ५०० पाउंड के उत्पादन साधन I से ख़रीदता है; ५) I उन्हीं ५०० पाउंड से II से उपभोग वस्तुएं ख़रीदता है; ६) II उसी ५०० पाउंड से I से उत्पादन साधन ख़रीदता है; ७) I उन्हीं ५०० पाउंड से II से निर्वाह साधन ख़रीदता है। इस तरह ५०० पाउंड II के पास लौट आते हैं, जिसने उन्हें उन २,००० पाउंड के अलावा परिचलन में डाला था, जो माल के रूप में थे, और जिन्होंने परिचलन से कोई तुल्य माल नहीं निकाला था।[48]

इसलिए विनिमय का क्रम यह रहता है:

१) I द्रव्य रूप में १,००० पाउंड श्रम शक्ति के लिए, अत: १,००० पाउंड के बराबर माल के लिए देता है।

२) मजदूर II से अपनी द्रव्य रूप में १,००० पाउंड मज़दूरी से उपभोग वस्तुएं, अत: १,००० पाउंड के बराबर माल ख़रीदते हैं।

३) II मज़दूरों से प्राप्त १,००० पाउंड से I से उसी राशि के उत्पादन साधन, अत: १,००० पाउंड के बराबर माल ख़रीदता है।

इस तरह १,००० पाउंड I के पास परिवर्ती पूंजी के द्रव्य रूप में वापस आ जाते हैं।

४) II I से ५०० पाउंड के उत्पादन साधन, अत: ५०० पाउंड के बराबर माल ख़रीदता है।

५) I उन्हीं ५०० पाउंड से II से उपभोग वस्तुएं, अत: ५०० पाउंड के बराबर माल ख़रीदता है।

६) II उन्हीं ५०० पाउंड से I से उत्पादन साधन, अत: ५०० पाउंड के बराबर माल ख़रीदता है।

७) I उन्हीं ५०० पाउंड से II से उपभोग वस्तुएं, अत: ५०० पाउंड के बराबर माल ख़रीदता है।

विनिमीत माल मूल्यों की कुल राशि: ५,००० पाउंड।

II द्वारा ख़रीद के लिए पेशगी दिये ५०० पाउंड उसके पास लौट आये हैं।

नतीजा इस प्रकार है:

---

[48] पृष्ठ ३६४ [प्रस्तुत खंड के पृष्ठ ३५१-३५२] से यह कुछ भिन्न है। वहां भी I इसी प्रकार परिचलन में ५०० पाउंड की स्वतंत्र राशि डालता है। यहां अकेला II परिचलन के लिए अतिरिक्त द्रव्य उपलब्ध करता है। किंतु इससे आख़िरी नतीजे में फ़र्क़ नहीं पड़ता। – फ़े० एं०

१) I के पास द्रव्य रूप में १,००० पाउंड राशि की परिवर्ती पूंजी है, जो उसने शुरू में परिचलन के लिए पेशगी दी थी। इसके अलावा उसने अपने व्यक्तिगत उपभोग के लिए अपने ही उत्पाद के रूप में १,००० पाउंड और व्यय किये थे, अर्थात उसने उत्पादन साधन बेचकर जो १,००० पाउंड की द्रव्य राशि प्राप्त की थी, वह ख़र्च कर डाली है।

दूसरी ओर द्रव्य रूप में विद्यमान परिवर्ती पूंजी को जिस दैहिक रूप, अर्थात श्रम शक्ति में रूपांतरित करना होता है, उसे उसके स्वामियों ने व्यापार के एकमात्र माल के रूप में, जिसे उन्हें जिंदा रहने के लिए बेचना होता है, उपभोग के द्वारा क़ायम रखा है, पुनरुत्पादित किया और फिर उपलभ्य बना दिया है। इसी प्रकार उजरती मज़दूरों और पूंजीपतियों का संबंध भी पुनरुत्पादित हो गया है।

२) II की स्थिर पूंजी वस्तुरूप में प्रतिस्थापित हो गयी है, और उसी II द्वारा परिचलन में पेशगी दिये ५०० पाउंड उसके पास लौट आये हैं।

जहां तक I के मजदूरों का संबंध है, परिचलन साधारण है: मा – द्र – मा:
$\underbrace{}_{1}$ मा (श्रम शक्ति) – $\underbrace{}_{2}$ द्र (१,००० पाउंड, I परिवर्ती पूंजी का द्रव्य रूप) – $\underbrace{}_{3}$ मा (१,००० पाउंड की जीवनावश्यक वस्तुएं); ये १,००० पाउंड II की माल के, निर्वाह साधनों के रूप में विद्यमान स्थिर पूंजी के मूल्य को द्रव्य राशि में परिवर्तित करते हैं।

II के पूंजीपतियों के संबंध में क्रिया मा – द्र उनके पण्य उत्पाद के एक अंश का द्रव्य रूप में रूपांतरण है, जिससे वह उत्पादक पूंजी के घटकों में, अर्थात उनके लिए आवश्यक उत्पादन साधनों के एक अंश में, पुनःपरिवर्तित हो जाता है।

उत्पादन साधनों के दूसरे अंश ख़रीदने के लिए II के पूंजीपतियों द्वारा पेशगी दिया द्रव्य (५०० पाउंड) $II_{स}$ के उस अंश का द्रव्य रूप प्रत्याशित होता है, जो अभी पण्य वस्तुओं (उपभोग वस्तुओं) के रूप में विद्यमान है; द्र – मा क्रिया में, जिसमें II द्र से ख़रीदता है और I मा को बेचता है, द्रव्य (II) उत्पादक पूंजी के एक अंश में परिवर्तित हो जाता है, जब कि मा (I) मा – द्र क्रिया से गुजरता है, द्रव्य में परिवर्तित होता है, किंतु यह द्रव्य I के लिए पूंजी मूल्य का कोई संघटक अंश नहीं, वरन द्रव्य में परिवर्तित और केवल उपभोग वस्तुओं पर व्ययित बेशी मूल्य होता है।

द्र – मा . . . उ . . . मा' – द्र' परिपथ में पहली क्रिया द्र – मा एक पूंजीपति की है और अंतिम क्रिया मा' – द्र' (अथवा उसका एक हिस्सा), दूसरे पूंजीपति की है; जिस मा से द्र उत्पादक पूंजी में परिवर्तित होता है, वह मा के विक्रेता के लिए (जो इस मा का विनिमय द्रव्य से करता है), स्थिर पूंजी का घटक है, परिवर्ती पूंजी का घटक या बेशी मूल्य है, यह सब स्वयं माल परिचलन के लिए पूर्णतः निरर्थक है।

जहां तक उसके माल उत्पाद के घटक प+बे का संबंध है, वर्ग I परिचलन में जितना डालता है, उससे ज्यादा निकालता है। पहले तो परिवर्ती पूंजी के १,००० पाउंड उसके पास लौट आते हैं; दूसरे, वह ५०० पाउंड के उत्पादन साधन बेचता है (ऊपर विनिमय क्रमांक ४ देखिये); इस तरह उसके बेशी मूल्य का आधा हिस्सा द्रव्य में बदल जाता है; इसके

बाद वह ५०० पाउंड के उत्पादन साधन फिर बेचता है (विनिमय क्रमांक ६), जो उसके बेशी मूल्य का दूसरा अर्धांश है, और इस प्रकार सारा बेशी मूल्य परिचलन से द्रव्य रूप में निकाल लिया जाता है। अतः क्रमानुसार : १) परिवर्ती पूंजी १,००० पाउंड के बराबर द्रव्य में पुनः-परिवर्तित हो जाती है; २) बेशी मूल्य का आधा हिस्सा ५०० पाउंड के बराबर द्रव्य में परिवर्तित हो जाता है; ३) बेशी मूल्य का दूसरा आधा हिस्सा ५०० पाउंड के बराबर; कुल मिलाकर $१,०००_{प} + १,०००_{बे}$ द्रव्य में परिवर्तित हो जाते हैं, जो २,००० पाउंड के बराबर है। यद्यपि I ने परिचलन में केवल १,००० पाउंड डाले थे (उन विनिमयों के अलावा, जो $I_{स}$ के पुनरुत्पादन को संवर्धित करते हैं और जिनका विश्लेषण हम आगे करेंगे), उसने परिचलन से इस राशि का दुगना निकाल लिया है। बेशक बे उपभोग वस्तुओं पर ख़र्च किये जाने से द्रव्य में परिवर्तित होते ही तुरंत दूसरों (II) के हाथ में पहुंच जाता है। I के पूंजीपतियों ने उससे **द्रव्य** रूप में उतना ही निकाला था, जितना मूल्य में **मालों** के रूप में उसमें डाला था; इस तथ्य से कि यह मूल्य बेशी मूल्य है, अर्थात पूंजीपतियों को उसके लिए कुछ भी ख़र्च नहीं करना पड़ता, इन मालों का मूल्य किसी तरह बदल नहीं जाता; जहां तक माल परिचलन में मूल्यों के विनिमय का संबंध है, उस तथ्य का कुछ भी महत्व नहीं है। बेशी मूल्य का द्रव्य रूप में अस्तित्व अस्थायी ही होता है, जैसे वे सब अन्य रूप अस्थायी होते हैं, जिन्हें पेशगी पूंजी अपने रूपांतरणों में धारण करती है। I मालों के द्रव्य में बदलने तथा तत्पश्चात I द्रव्य के II मालों में परिवर्तित होने के बीच जो अंतराल होता है, वह उससे अधिक नहीं टिकता।

यदि आवर्त और अल्पकालीन होते, – अथवा साधारण माल परिचलन के दृष्टिकोण से द्रव्य के और द्रुत परिचलन की कल्पना की जाती – तो विनिमीत माल मूल्यों के परिचलन के लिए और भी कम द्रव्य पर्याप्त होता; यदि क्रमिक विनिमयों की संख्या दी हुई हो, तो यह राशि सदा परिचालित मालों की क़ीमतों के योग द्वारा अथवा उनके मूल्यों के योग द्वारा निर्धारित होती है। यह निरर्थक है कि मूल्यों के इस योग में एक ओर बेशी मूल्य और दूसरी ओर पूंजी मूल्य का अनुपात क्या होता है।

यदि हमारे उदाहरण में I की मजदूरी साल में चार बार दी जाये, तो २५० का चार गुना, यानी १,००० उपलब्ध होंगे। अतः द्रव्य रूप में २५० पाउंड $I_{प} - १/२\ II_{स}$ परि-चलन के लिए और परिवर्ती पूंजी $I_{प}$ तथा श्रम शक्ति I के बीच परिचलन के लिए पर्याप्त होंगे। इसी प्रकार, यदि $I_{बे}$ तथा $II_{स}$ के बीच परिचलन चार आवर्तों में हो, तो ५,००० पाउंड रक़म के मालों के परिचलन के लिए केवल २५० पाउंड अथवा कुल मिलाकर ५०० पाउंड की द्रव्य राशि या द्रव्य पूंजी दरकार होगी। उस स्थिति में बेशी मूल्य आधा-आधा करके क्रमा-नुसार दो बार के बदले चौथाई के हिसाब से क्रमानुसार चार बार द्रव्य में परिवर्तित होगा।

यदि विनिमय क्रमांक ४ में II नहीं, बल्कि I ग्राहक बने और उसी मूल्य की उपभोग वस्तुओं पर ५०० पाउंड ख़र्च करे, तो विनिमय क्रमांक ५ में उन्हीं ५०० पाउंड से II उत्पादन साधन ख़रीदेगा; ६) I उन्हीं ५०० पाउंड से उपभोग वस्तुएं ख़रीदता है; ७) II उन्हीं ५०० पाउंड से उत्पादन साधन ख़रीदता है, जिससे कि ५०० पाउंड आख़िर में I के पास लौट आते हैं, जैसे पहले II के पास लौटे थे। यहां बेशी मूल्य द्रव्य में उस द्रव्य द्वारा परि-वर्तित होता है, जिसे पूंजीपति उत्पादक स्वयं अपने व्यक्तिगत उपभोग के लिए ख़र्च करते हैं।

यह द्रव्य उनकी प्रत्याशित आय, जो माल अभी बिकने को है, उसमें समाहित बेशी मूल्य की प्रत्याशित प्राप्तियों का प्रतीक होता है। बेशी मूल्य ५०० पाउंड के पश्चप्रवाह द्वारा द्रव्य में परिवर्तित नहीं होता; क्योंकि $I_{प}$ मालों के रूप में १,००० पाउंड के अलावा I ने विनिमय क्रमांक ४ की समाप्ति पर द्रव्य रूप में ५०० पाउंड परिचलन में डाले थे और जहां तक हमें मालूम है, यह अतिरिक्त द्रव्य था और मालों की बिक्री से प्राप्ति नहीं था। यदि यह द्रव्य I के पास लौट आता है, तो I केवल अतिरिक्त द्रव्य वापस पाता है और अपने बेशी मूल्य को इस तरह द्रव्य में परिवर्तित नहीं करता। बेशी मूल्य I का द्रव्य में परिवर्तन केवल $I_{बे}$ मालों की बिक्री से होता है। यह बेशी मूल्य इन्हीं मालों में समाविष्ट होता है और प्रति बार तभी तक टिका रहता है कि जब तक मालों की बिक्री से प्राप्त किया हुआ धन उपभोग वस्तुएं ख़रीदने पर फिर से नहीं ख़र्च किया जाता।

I अतिरिक्त द्रव्य (५०० पाउंड) से II से उपभोग वस्तुएं ख़रीदता है; यह द्रव्य I ने ख़र्च किया था, जिसके पास II के मालों में इसका समतुल्य है; II द्वारा I से ५०० पाउंड का माल ख़रीदने के साथ पहली बार द्रव्य वापस आता है; दूसरे शब्दों में वह I द्वारा बेचे माल के तुल्य रूप में वापस आता है, किंतु I को इन मालों के लिए कुछ भी नहीं ख़र्च करना पड़ता, वे उसके लिए बेशी मूल्य हैं, और इस प्रकार **इसी क्षेत्र द्वारा परिचलन में डाला गया द्रव्य अपने ही बेशी मूल्य को द्रव्य में बदल देता है**। दूसरी बार ख़रीदने पर (क्रमांक ६)। I ने इसी प्रकार II के माल के रूप में उसका तुल्य पा लिया है। अब मान लीजिये कि II I से उत्पादन साधन (क्रमांक ७) नहीं ख़रीदता। उस स्थिति में I ने वस्तुतः १,००० पाउंड उपभोग वस्तुओं के लिए दिये होते और इस तरह अपने सारे बेशी मूल्य को आय के रूप में ख़र्च कर लिया होता, अर्थात ५०० ख़ुद अपने I माल (उत्पादन साधनों) के रूप में, और ५०० द्रव्य रूप में; दूसरी ओर उसके पास अब भी भंडार में अपने ही मालों (उत्पादन साधनों) के रूप में ५०० पाउंड होते और द्रव्य रूप में वह ५०० पाउंड से छुटकारा पा चुका हुआ होता।

इसके विपरीत II अपनी स्थिर पूंजी का तीन चौथाई भाग माल पूंजी के रूप से उत्पादक पूंजी के रूप में पुनःपरिवर्तित कर चुका होगा; किंतु चौथाई भाग (५०० पाउंड) उसके पास अब भी द्रव्य पूंजी के रूप में, वस्तुतः बेकार द्रव्य के रूप में अथवा उस द्रव्य के रूप में पड़ा होगा, जिसने अपना कार्य निलंबित कर दिया है और आस्थगित है। यदि यह हालत काफ़ी समय तक बनी रहे, तो II को अपने पुनरुत्पादन के पैमाने में चौथाई कटौती करनी होगी।

तथापि उत्पादन साधनों के रूप में ५०० जो I के हाथ में हैं, मालों के रूप में बेशी मूल्य नहीं हैं; वे उन ५०० पाउंड की जगह पर हैं, जो द्रव्य रूप में पेशगी दिये गये थे और जो मालों के रूप में बेशी मूल्य के १,००० पाउंड के अलावा I के पास थे। द्रव्य रूप में वे हमेशा परिवर्तनीय होते हैं; मालों के रूप में वे तत्काल अविक्रेय होते हैं। इतना तो स्पष्ट है कि इस मामले में साधारण पुनरुत्पादन – जिसमें II तथा I दोनों ही में उत्पादक पूंजी के हर तत्व की प्रतिस्थापना करनी होती है – तभी संभव रहता है कि अगर I के पास वे ५०० सोने की चिड़ियां वापस आ जायें, जो उसने पहले उड़ायी थीं।

यदि कोई पूंजीपति (यहां हमारा अब भी औद्योगिक पूंजीपतियों से ही सरोकार है, जो और सभी पूंजीपतियों के प्रतिनिधि हैं) उपभोग वस्तुओं पर धन ख़र्च कर देता है, तो

वह उससे छुटकारा पा लेता है, धन सभी नाशवान चीज़ों की तरह जाता रहता है। वह उसके पास तभी लौटकर आ सकता है कि जब वह उसे मालों के बदले, अर्थात अपनी माल पूंजी के बदले परिचलन से बाहर खींचे। जहां तक उसका संबंध है, जैसे उसके कुल वार्षिक उत्पाद (उसकी माल पूंजी) का, वैसे ही उसके प्रत्येक तत्व का मूल्य, अर्थात प्रत्येक पृथक माल का मूल्य स्थिर पूंजी मूल्य, परिवर्ती पूंजी मूल्य तथा बेशी मूल्य में विभाज्य होता है। फलतः प्रत्येक पृथक माल (पण्य उत्पाद के संघटक तत्वों के रूप में) का द्रव्य में परिवर्तन साथ ही सारे पण्य उत्पाद में समाहित बेशी मूल्य के एक अंश का भी द्रव्य में परिवर्तन होता है। इसलिए इस प्रसंग में यह बात शब्दशः सही है कि पूंजीपति ने स्वयं परिचलन में वह द्रव्य डाला था, – जब उसने उसे अपनी उपभोग वस्तुओं पर ख़र्च किया था – जिसके द्वारा उसका बेशी मूल्य द्रव्य में परिवर्तित होता है अथवा उसका सिद्धिकरण होता है। बेशक सवाल यहां बिल्कुल एक जैसे सिक्कों का नहीं, वरन ऐसी नक़द रक़म का है, जो उस रक़म के (या उसके एक हिस्से के) बराबर हो, जिसे उसने अपनी व्यक्तिगत ज़रूरतें पूरी करने के लिए परिचलन में डाला था।

व्यवहार में यह दो तरह से होता है: यदि व्यवसाय अभी हाल ही में, चालू वर्ष में शुरू किया गया है, तो इसके पहले कि पूंजीपति अपने व्यवसाय की प्राप्तियों के किसी भी अंश का अपने निजी उपभोग के लिए उपयोग कर सके, इसमें ख़ासा समय कम से कम कुछ महीने लग जायेगा। लेकिन इसके बावजूद वह अपना उपभोग पल भर को भी स्थगित नहीं करता। वह अपने द्वारा भविष्य में हथियाये जानेवाले बेशी मूल्य की प्रत्याशा में अपने को द्रव्य पेशगी देता है (यह महत्वहीन है कि अपने जेब से या उधार के ज़रिये किसी और के जेब से); किंतु ऐसा करते हुए वह बाद में सिद्धिकृत किये जानेवाले बेशी मूल्य के सिद्धिकरण का माध्यम भी पेशगी देता है। यदि इसके विपरीत उसका व्यवसाय अधिक समय तक बाक़ायदा चलता रहा है, तो अदायगियां और प्राप्तियां पूरे साल की अलग-अलग मीयादों में फैली होती हैं। किंतु एक चीज़ अटूट क्रम से चलती रहती है और वह है पूंजीपति का उपभोग, जो प्रचलित अथवा प्राक्कलित आय की प्रत्याशा करता है और जिसके परिमाण का उसके एक निश्चित अंश के आधार पर अभिकलन किया जाता है। मालों के प्रत्येक अंश के बेचे जाने के साथ ही वर्ष भर में उत्पादित होनेवाले बेशी मूल्य के एक अंश का भी सिद्धिकरण होता है। लेकिन यदि सारे साल में केवल इतना ही उत्पादित माल बिकता है, जितना उनमें समाहित स्थिर और परिवर्ती पूंजी मूल्यों के प्रतिस्थापन के लिए दरकार है अथवा यदि क़ीमतें इतना गिर जायें कि समस्त वार्षिक माल उत्पाद की बिक्री से केवल उसमें समाहित पेशगी पूंजी मूल्य का ही सिद्धिकरण हो सके, तब भावी मूल्य की आशा में द्रव्य के व्यय का प्रत्याशी स्वरूप प्रकट हो जायेगा। यदि हमारा पूंजीपति दिवालिया हो जाता है, तो उसके लेनदार और न्यायालय इसकी जांच करेंगे कि उसका प्रत्याशित निजी ख़र्च उसके व्यवसाय के परिमाण के और उस व्यवसाय के आम तौर से या सामान्यतः अनुरूप बेशी मूल्य की प्राप्ति के उचित अनुपात में था या नहीं।

जहां तक समूचे पूंजीपति वर्ग का संबंध है, यह प्रस्थापना कि वह स्वयं अपने बेशी मूल्य के सिद्धिकरण के लिए (तदनुरूप अपनी स्थिर और परिवर्ती पूंजी के परिचलन के लिए भी) आवश्यक द्रव्य परिचलन में डालेगा, न केवल विरोधाभासी प्रतीत नहीं होती, बल्कि वह समूचे तंत्र की अनिवार्य शर्त के रूप में सामने आती है। कारण यह कि यहां केवल दो वर्ग हैं:

मजदूर वर्ग, जो केवल अपनी श्रम शक्ति लगाता है और पूंजीपति वर्ग, जिसके पास उत्पादन के सामाजिक साधनों और द्रव्य का इजारा है। विरोधाभास तो तब होगा, जब शुरू में मजदूर वर्ग अपने ही साधनों में से वह द्रव्य पेशगी दे, जो मालों में निहित बेशी मूल्य के सिद्धिकरण के लिए आवश्यक है। किंतु वैयक्तिक पूंजीपति ग्राहक का काम करके ही, उपभोग वस्तुओं के क्रय में द्रव्य का **व्यय करके** अथवा अपनी उत्पादक पूंजी के तत्व ख़रीदने में – वे चाहे श्रम शक्ति हो, चाहे उत्पादन साधन – द्रव्य **पेशगी देता है**। वह अपने धन का समतुल्य पाये बिना कभी उसे हाथ से निकलने नहीं देता। वह परिचलन में धन वैसे ही पेशगी देता है, जैसे वह उसमें अपना माल पेशगी देता है। दोनों ही स्थितियों में वह उनके परिचलन के प्रारंभ बिंदु के रूप में काम करता है।

वास्तविक प्रक्रिया दो परिस्थितियों से अस्पष्ट हो जाती है :

१) एक ख़ास तरह के पूंजीपतियों द्वारा जोड़तोड़ के विषय के रूप में औद्योगिक पूंजी की परिचलन प्रक्रिया में **व्यापारी पूंजी** का (जिसका पहला रूप हमेशा द्रव्य होता है, क्योंकि व्यापारी महज़ व्यापारी होने के कारण किसी "उत्पाद" अथवा "माल" का निर्माण नहीं करता) और **द्रव्य पूंजी** का प्रकट होना।

२) बेशी मूल्य का – जिसे हमेशा पहले औद्योगिक पूंजीपति के हाथ में रहना होता है – विभिन्न संवर्गों में विभाजन, जिसके वाहकों के रूप में औद्योगिक पूंजीपति के अलावा भूस्वामी (किराया ज़मीन के लिए), महाजन (सूद के लिए), वग़ैरह, और इनके अलावा सरकार और उसके कर्मचारी, किरायाजीवी, वग़ैरह प्रकट होते हैं। ये सभी भद्रजन औद्योगिक पूंजीपति के संदर्भ में ग्राहकों की तरह और उस सीमा तक उसके मालों के द्रव्य रूप में परिवर्तनकर्ताओं की तरह प्रकट होते हैं; वे भी pro parte [भागानुसार] "द्रव्य" परिचलन में डालते हैं, और पूंजीपति उसे उन से पाता है। किंतु यह बात हमेशा भुला दी जाती है कि उन्होंने शुरू-शुरू में उसे किस स्रोत से प्राप्त किया था और नित नये सिरे से प्राप्त करते रहते हैं।

६. क्षेत्र I की स्थिर पूंजी[48a]

अब हमारे लिए क्षेत्र I की ४,००० स राशि की स्थिर पूंजी का विश्लेषण करना बाक़ी रह जाता है। यह मूल्य पण्य उत्पाद I के रूप में नये सिरे से प्रकट होनेवाले उत्पादन साधनों के मालों की इस मात्रा के निर्माण में उपभुक्त मूल्य के बराबर होता है। यह पुनः प्रकट होनेवाला मूल्य, जो I की उत्पादन प्रक्रिया में नहीं पैदा हुआ था, वरन उसमें पिछले साल स्थिर मूल्य के रूप में उसके उत्पादन साधनों के निश्चित मूल्य के रूप में प्रविष्ट हुआ था, अब माल राशि I की उस समस्त संहति में विद्यमान है, जिसे संवर्ग II ने जज़्ब नहीं कर लिया है। I के पूंजीपतियों के हाथ में इस प्रकार रहे मालों की इस मात्रा का मूल्य उनके कुल वार्षिक माल उत्पाद के दो तिहाई मूल्य के बराबर होता है। किन्हीं विशेष उत्पादन साधनों को पैदा करनेवाले अलग पूंजीपति के प्रसंग में हम कह सकते हैं: वह अपना माल उत्पाद बेचता है; उसे द्रव्य में परिवर्तित करके उसने अपने उत्पाद के मूल्य के स्थिर अंश को भी

[48a] यहां से पांडुलिपि २। – फ़े० एं०

द्रव्य में पुनःपरिवर्तित कर लिया है। द्रव्य में परिवर्तित इस मूल्यांश से वह फिर मालों के अन्य विक्रेताओं से अपने उत्पादन साधन ख़रीदता है अथवा अपने उत्पाद का स्थिर मूल्यांश ऐसे दैहिक रूप में रूपांतरित करता है, जिसमें वह अपना उत्पादक स्थिर पूंजी का कार्य फिर शुरू कर सकता है। किंतु अब यह कल्पना असंभव हो जाती है। I के पूंजीपति वर्ग के अंतर्गत उत्पादन साधन पैदा करनेवाले पूंजीपति समग्र रूप में आ जाते हैं। इसके अलावा ४,००० का जो पण्य उत्पाद उनके पास रह जाता है, वह सामाजिक उत्पाद का वह अंश है, जिसका विनिमय किसी और अंश से नहीं हो सकता, क्योंकि वार्षिक उत्पाद का ऐसा अन्य कोई अंश शेष नहीं रहता है। इन ४,००० को छोड़कर शेष सबका निपटान हो गया है। एक भाग सामाजिक उपभोग निधि में समेट लिया गया है और दूसरे को क्षेत्र II की स्थिर पूंजी को प्रतिस्थापित करना होगा, जो क्षेत्र I से जिस किसी का भी विनिमय कर सकता था, पहले ही कर चुका है।

यदि हम याद रखें कि अपने दैहिक रूप में समस्त I पण्य उत्पाद उत्पादन साधनों से ही, अर्थात स्वयं स्थिर पूंजी के भौतिक तत्वों से ही निर्मित होता है, तो कठिनाई बहुत आसानी से दूर हो जाती है। यहां हम उसी परिघटना को देखते हैं, जिसे पहले II के अंतर्गत देख चुके हैं, केवल उसका दूसरा पक्ष सामने होता है। II के प्रसंग में समस्त माल उत्पाद उपभोग वस्तुएं था। अतः इस उत्पाद में समाविष्ट बेशी मूल्य तथा मजदूरी के योग के अनुरूप उसका एक अंश स्वयं उसके उत्पादकों के उपभोग में आ सकता था। यहां, I के प्रसंग में समस्त उत्पाद उत्पादन साधन – इमारतें, मशीनें, जहाज़, कच्ची और सहायक सामग्री, वग़ैरह है। अतः इसका एक अंश, यानी वह, जो इस क्षेत्र में नियोजित स्थिर पूंजी को प्रतिस्थापित करता है, अपने दैहिक रूप में उत्पादक पूंजी के घटक की तरह तुरंत फिर से कार्य कर सकता है। जहां तक वह परिचलन में जाता है, वह वर्ग I के भीतर परिचालित होता है। II में पण्य उत्पाद के एक भाग का उसके उत्पादकों द्वारा वस्तुरूप में वैयक्तिक उपभोग किया जाता है, जब कि I में उत्पाद के एक अंश का उसके पूंजीवादी उत्पादकों द्वारा वस्तुरूप में उत्पादक उपभोग किया जाता है।

पण्य उत्पाद I के ४,००० $_{स}$ के बराबर हिस्से में इस संवर्ग में उपभुक्त स्थिर पूंजी मूल्य पुनः प्रकट होता है और ऐसे दैहिक रूप में कि जिसमें वह अपना उत्पादक स्थिर पूंजी का कार्य तुरंत फिर शुरू कर सकता है। II में ३,००० के माल उत्पाद का मजदूरी तथा बेशी मूल्य (१,००० के बराबर) के योग के बराबर मूल्य का अंश सीधे II पूंजीपतियों और मजदूरों के व्यक्तिगत उपभोग में पहुंच जाता है, जब कि दूसरी ओर इस पण्य उत्पाद का स्थिर पूंजी मूल्य (२,००० के बराबर) II पूंजीपतियों के उत्पादक उपभोग में फिर दाख़िल नहीं हो सकता, बल्कि उसका I से विनिमय द्वारा प्रतिस्थापन करना होता है।

इसके विपरीत I में ६,००० के उसके माल उत्पाद का वह अंश, जिसका मूल्य मजदूरी तथा बेशी मूल्य (२,००० के बराबर) के योग के बराबर है, अपने उत्पादकों के व्यक्तिगत उपभोग में नहीं जाता, और ऐसा वह अपने दैहिक रूप के कारण नहीं कर सकता। उसका पहले II से विनिमय करना होता है। दूसरी ओर इस उत्पाद के मूल्य का ४,००० के बराबर स्थिर अंश ऐसे दैहिक रूप में होता है – समग्रतः I पूंजीपति वर्ग के विचार से – कि वह उस वर्ग की स्थिर पूंजी का अपना कार्य फिर से तुरंत शुरू कर सकता है। दूसरे शब्दों में क्षेत्र

I के समग्र उत्पाद में उपयोग मूल्य ही होते हैं, जो अपने दैहिक रूप के कारण – उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति में – स्थिर पूंजी के तत्वों का ही काम कर सकते हैं। इसलिए ६,००० के इस उत्पाद का एक तिहाई भाग (२,०००) क्षेत्र II की स्थिर पूंजी को प्रतिस्थापित करता है और शेष दो तिहाई भाग क्षेत्र I की स्थिर पूंजी को।

स्थिर पूंजी I में उत्पादन साधनों के उत्पादन की विविध शाखाओं में निवेशित – इतनी लोहा कारख़ानों में, इतनी कोयला खानों में, इत्यादि – पूंजी के बहुत से भिन्न-भिन्न समूह समाहित होते हैं। इन पूंजी समूहों में प्रत्येक अथवा इन सामाजिक समूह पूंजियों में प्रत्येक अपनी बारी में स्वतंत्र रूप से कार्यशील, न्यूनाधिक संख्य अलग-अलग पूंजियों से निर्मित होती है। प्रथमतः समाज की पूंजी, उदाहरण के लिए, ७,५०० (जिसका मतलब करोड़, वग़ैरह हो सकता है) पूंजी के विभिन्न समूहों से बनी होती है; ७,५०० की सामाजिक पूंजी अलग-अलग भागों में बंटी होती है और इनमें से प्रत्येक भाग उत्पादन की किसी शाखा विशेष में निवेशित होता है; उत्पादन की किसी शाखा विशेष में निवेशित सामाजिक पूंजी मूल्य के प्रत्येक अंश में, जहां तक उसके दैहिक रूप का संबंध है, अंशतः उस विशेष उत्पादन क्षेत्र में आवश्यक उत्पादन साधन, अंशतः उस व्यवसाय में आवश्यक और उसके अनुरूप प्रशिक्षित, तथा उत्पादन के प्रत्येक अलग-अलग क्षेत्र में किये जानेवाले श्रम की विशेष क़िस्म के अनुसार श्रम विभाजन द्वारा अनेक प्रकार से आपरिवर्तित श्रम शक्ति समाहित होती है। उत्पादन की किसी विशेष शाखा में निवेशित सामाजिक पूंजी के प्रत्येक अंश में अपनी बारी में उसमें निवेशित और स्वतंत्र रूप से कार्यशील सभी अलग-अलग पूंजियों का योग समाहित होता है। यह बात I तथा II दोनों क्षेत्रों पर प्रत्यक्षतः लागू होती है।

जहां तक स्थिर पूंजी मूल्य के अपने पण्य उत्पाद के दैहिक रूप में I में पुनः प्रकट होने का संबंध है, वह अंशतः उत्पादन साधनों के रूप में उस उत्पादन क्षेत्र विशेष में (अथवा व्यक्तिगत व्यवसाय में भी) पुनः प्रवेश करता है, जहां से वह उत्पाद के रूप में निकलता है: उदाहरण के लिए, अनाज के उत्पादन में अनाज, कोयले के उत्पादन में कोयला, लोहे के उत्पादन में मशीनों की शक्ल में लोहा, इत्यादि।

लेकिन चूंकि स्थिर पूंजी मूल्य I के संरचक पृथक उत्पाद अपने विशेष या अलग उत्पादन क्षेत्र में सीधे वापस नहीं आते, इसलिए वे केवल अपना स्थान परिवर्तन ही करते हैं। वे अपने दैहिक रूप में क्षेत्र I के किसी अन्य उत्पादन क्षेत्र में चले जाते हैं, जब कि क्षेत्र I के अन्य उत्पादन क्षेत्रों का उत्पाद उनका वस्तुरूप में प्रतिस्थापन करता है। यह इन उत्पादों का स्थान परिवर्तन मात्र है। वे सब I की स्थिर पूंजी को प्रतिस्थापित करनेवाले उपादानों के रूप में पुनः प्रवेश करते हैं, बस I के उसी समूह के बदले वे दूसरे समूह में प्रवेश करते हैं। चूंकि यहां I के अलग-अलग पूंजीपतियों के बीच विनिमय होता है, इसलिए यह स्थिर पूंजी के एक दैहिक रूप से स्थिर पूंजी के दूसरे दैहिक रूप का, एक तरह के उत्पादन साधनों से दूसरी तरह के उत्पादन साधनों का विनिमय होता है। यह स्थिर पूंजी I के विभिन्न पृथक भागों का परस्पर विनिमय है। जो उत्पाद ख़ुद अपने क्षेत्र में प्रत्यक्षतः उत्पादन साधनों का काम नहीं करता, वह अपने उत्पादन स्थान से दूसरी जगह स्थानांतरित हो जाता है और इस तरह उत्पाद एक दूसरे को परस्पर प्रतिस्थापित करते हैं। दूसरे शब्दों में (हमने बेशी मूल्य II के प्रसंग में जो देखा था, उसी की तरह) I का प्रत्येक पूंजीपति मालों की इस राशि से ४,००० की स्थिर पूंजी में अपने हिस्से के यथानुपात अपने लिए आवश्यक उत्पादन साधन

निकाल लेता है। यदि उत्पादन पूंजीवादी होने के बदले समाजीकृत होता, तो क्षेत्र I का यह उत्पाद, स्पष्ट ही उतने ही नियमित रूप में इस क्षेत्र की विविध शाखाओं के बीच उत्पादन साधनों के रूप में पुनरुत्पादन के लिए पुनः वितरित किया जाता; एक अंश उस उत्पादन क्षेत्र में सीधे बना रहता, जहां से वह उत्पाद के रूप में बाहर आया था, दूसरा अन्य उत्पादन स्थानों में पहुंच जाता और इस तरह इस क्षेत्र में विभिन्न उत्पादन स्थानों के बीच निरंतर आवागमन बना रहता।

७. दोनों क्षेत्रों में परिवर्ती पूंजी तथा बेशी मूल्य

इस प्रकार प्रति वर्ष उत्पादित उपभोग वस्तुओं का समग्र मूल्य वर्ष भर में पुनरुत्पादित परिवर्ती पूंजी मूल्य II तथा नवोत्पादित बेशी मूल्य II (अर्थात साल में II द्वारा उत्पादित मूल्य के बराबर) तथा वर्ष भर में पुनरुत्पादित परिवर्ती पूंजी मूल्य I तथा नवोत्पादित बेशी मूल्य I (अर्थात वर्ष भर में I द्वारा निर्मित मूल्य) के योग के बराबर होता है।

अतः साधारण पुनरुत्पादन की कल्पना के आधार पर वर्ष भर में उत्पादित उपभोग वस्तुओं का समग्र मूल्य वार्षिक मूल्य उत्पाद के बराबर, अर्थात सामाजिक श्रम द्वारा वर्ष भर में उत्पादित समग्र मूल्य के बराबर होता है और ऐसा होना लाजमी भी है, क्योंकि साधारण पुनरुत्पादन में इस समूचे मूल्य की खपत हो जाती है।

समग्र सामाजिक कार्य दिवस दो भागों में विभाजित होता है: १) आवश्यक श्रम, जो साल के दौरान $१,५००_{प}$ का मूल्य निर्मित करता है; २) बेशी श्रम, जो $१,५००_{बे}$ का अतिरिक्त मूल्य अथवा बेशी मूल्य निर्मित करता है। इन मूल्यों का योग, ३,०००, वर्ष में उत्पादित उपभोग वस्तुओं के मूल्य (३,०००) के बराबर होता है। अतः वर्ष भर में उत्पादित उपभोग वस्तुओं का कुल मूल्य वर्ष भर में समग्र सामाजिक कार्य दिवस द्वारा उत्पादित सकल मूल्य के बराबर, सामाजिक परिवर्ती पूंजी तथा सामाजिक बेशी मूल्य के योग के बराबर, वर्ष के कुल नये उत्पाद के बराबर होता है।

किंतु हम जानते हैं कि यद्यपि मूल्य के ये दोनों परिमाण बराबर हैं, फिर भी माल II, उपभोग वस्तुओं का कुल मूल्य सामाजिक उत्पादन के इस क्षेत्र में उत्पादित नहीं होता। ये परिमाण बराबर इसलिए हैं कि II में पुनः प्रकट होनेवाला स्थिर पूंजी मूल्य I द्वारा नवोत्पादित मूल्य (परिवर्ती पूंजी मूल्य तथा बेशी मूल्य के योग) के बराबर होता है; अतः $I_{(प+ब)}$ II के उत्पाद का वह भाग ख़रीदा जाता है, जो उसके (II क्षेत्र के) उत्पादकों के लिए स्थिर पूंजी मूल्य है। इस तरह इससे जाहिर होता है कि सारे समाज के दृष्टिकोण से II के पूंजीपतियों के उत्पाद का मूल्य प+बे में क्यों वियोजित हो सकता है, यद्यपि इन पूंजीपतियों के लिए वह स+प+बे में विभाजित होता है। ऐसा केवल इसलिए होता है कि $II_{स}$ यहां $I_{(प+बे)}$ के बराबर है और सामाजिक उत्पाद के ये दोनों घटक विनिमय द्वारा अपने दैहिक रूप आपस में बदल लेते हैं, जिससे कि इस रूपांतरण के बाद $II_{स}$ फिर उत्पादन साधनों में और $I_{(प+बे)}$ उपभोग वस्तुओं में अस्तित्वमान होते हैं।

यही वह परिस्थिति है, जिसने ऐडम स्मिथ को यह धारणा बनाने के लिए प्रेरित किया कि वार्षिक उत्पाद का मूल्य अपने को प+बे में वियोजित कर लेता है। यह १) वार्षिक

उत्पाद के उस अंश के लिए ही सही है, जिसमें उपभोग वस्तुएं होती हैं; और २) यह उस अर्थ में सही नहीं है कि यह कुल मूल्य II में उत्पादित होता है और उसके उत्पाद का मूल्य II में पेशगी परिवर्ती पूंजी के मूल्य तथा II में उत्पादित बेशी मूल्य के योग के बराबर होता है। यह केवल इस अर्थ में सही है कि $II_{(स+प+बे)}$ बराबर है $II_{(प+बे)} + I_{(प+बे)}$ के, अथवा इसलिए कि $II_{स}$ बराबर है $I_{(प+बे)}$ के।

इसके अलावा यह भी नतीजा निकलता है:

प्रत्येक कार्य दिवस की ही भांति सामाजिक कार्य दिवस (अर्थात समूचे मजदूर वर्ग द्वारा वर्ष भर में व्ययित श्रम) केवल दो भागों में, यानी आवश्यक श्रम और बेशी श्रम में विभाजित होता है और फलतः इस कार्य दिवस द्वारा उत्पादित मूल्य भी इसी प्रकार अपने को केवल दो भागों में वियोजित करता है, यानी परिवर्ती पूंजी मूल्य अथवा वह मूल्यांश, जिससे मज़दूर अपने पुनरुत्पादन के साधन ख़रीदता है, तथा बेशी मूल्य, जिसे पूंजीपति स्वयं अपने व्यक्तिगत उपभोग पर ख़र्च कर सकता है। फिर भी समाज के दृष्टिकोण से सामाजिक कार्य दिवस का एक भाग केवल **नई स्थिर पूंजी के उत्पादन** पर, यानी उस उत्पाद पर ख़र्च किया जाता है, जिसका एकमात्र उद्देश्य श्रम प्रक्रिया में उत्पादन साधन की हैसियत से, अतः साथ चलनेवाली मूल्य की स्वप्रसार प्रक्रिया में स्थिर पूंजी की हैसियत से कार्य करना है। हमारी कल्पना के अनुसार कुल सामाजिक कार्य दिवस ३,००० के द्रव्य मूल्य में अभिव्यक्त होता है, जिसका केवल एक तिहाई हिस्सा, या १,०००, उपभोग वस्तुओं का निर्माण करनेवाले क्षेत्र II में, यानी उन मालों का निर्माण करनेवाले क्षेत्र में उत्पादित होता है, जिनमें अंततोगत्वा समाज की परिवर्ती पूंजी के कुल मूल्य तथा कुल बेशी मूल्य का सिद्धिकरण होता है। अतः इस कल्पना के अनुसार सामाजिक कार्य दिवस का दो तिहाई भाग नई स्थिर पूंजी के उत्पादन में लगाया जाता है। यद्यपि क्षेत्र I के वैयक्तिक पूंजीपतियों और मज़दूरों के दृष्टिकोण से सामाजिक कार्य दिवस का यह दो तिहाई भाग परिवर्ती पूंजी मूल्य तथा बेशी मूल्य के उत्पादन के ही काम आता है, जैसे क्षेत्र II में सामाजिक कार्य दिवस का अंतिम तिहाई भाग, फिर भी यह दो तिहाई भाग – अब भी समाज की और इसी प्रकार उत्पाद के उपयोग मूल्य की दृष्टि से भी – उत्पादक उपभोग की प्रक्रिया के अंतर्गत अथवा इस दौर में उपभुक्त हो चुकी स्थिर पूंजी का प्रतिस्थानिक मात्र उत्पन्न करता है। पृथक रूप में देखने पर भी कार्य दिवस का यह दो तिहाई भाग जहां उत्पादक के लिए केवल परिवर्ती पूंजी मूल्य तथा बेशी मूल्य के योग के बराबर समग्र मूल्य उत्पादित करता है, फिर भी वह ऐसे कोई उपयोग मूल्य पैदा नहीं करता, जिन पर मजदूरी या बेशी मूल्य व्यय किया जा सके, क्योंकि उसका उत्पाद उत्पादन साधन होता है।

पहले तो यह ध्यान में रखना चाहिए कि I हो, चाहे II, किसी में भी सामाजिक कार्य दिवस का कोई भाग उत्पादन के इन दोनों बड़े क्षेत्रों में नियोजित और कार्यरत स्थिर पूंजी के मूल्य के उत्पादन काम नहीं आता। वे केवल स्थिर पूंजी के मूल्य के अलावा, जो ४,००० $I_{स}$ + २,००० $II_{स}$ के बराबर है, अतिरिक्त मूल्य २,००० $I_{(प+बे)}$ + १,००० $II_{(प+बे)}$ का उत्पादन करते हैं। उत्पादन साधनों के रूप में उत्पादित नया मूल्य अभी स्थिर पूंजी नहीं होता। वह केवल भविष्य में इस रूप में कार्य के लिए उद्दिष्ट होता है।

II का सारा उत्पाद – उपभोग वस्तुएं – उपयोग मूल्य के यथार्थ दृष्टिकोण से, अपने दैहिक रूप में II द्वारा व्यय किये सामाजिक कार्य दिवस के एक तिहाई भाग का उत्पाद है।

यह अपने मूर्त रूप में श्रम का उत्पाद है – जैसे इस क्षेत्र में किया गया कपड़ा बुनने, बेकिंग (पकाने), वगैरह का श्रम – वह इस श्रम का उत्पाद है, क्योंकि यह श्रम श्रम प्रक्रिया के आत्मगत तत्व की तरह कार्य करता है। जहां तक उत्पाद II के मूल्य के स्थिर अंश का संबंध है, वह केवल नये मूल्य में, नये दैहिक रूप में, उपभोग वस्तुओं के रूप में पुनः प्रकट होता है, जब कि पहले वह उत्पादन साधनों के रूप में था। उसका मूल्य श्रम प्रक्रिया द्वारा उसके पुराने दैहिक रूप से उसके नये दैहिक रूप में अंतरित हो गया है। किंतु उत्पाद मूल्य के दो तिहाई भाग का २,००० के बराबर **मूल्य** II की चालू वर्ष की स्वप्रसार प्रक्रिया में उत्पादित नहीं हुआ है।

जैसे II का उत्पाद श्रम प्रक्रिया के दृष्टिकोण से सद्यः कार्यशील सजीव श्रम का तथा उसे आवंटित उन कल्पित उत्पादन साधनों का परिणाम है, जिनमें वह श्रम अपनी वस्तुगत परिस्थितियों में मूर्त रूप में अभिव्यंजित होता है, वैसे ही स्वप्रसार की प्रक्रिया के दृष्टिकोण से II के उत्पाद का ३,००० के बराबर मूल्य नये जोड़े सामाजिक कार्य दिवस के एक तिहाई भाग द्वारा उत्पादित एक नये ($५००_{प}+५००_{बे}=१,०००$) तथा यहां विवेचित II की वर्तमान उत्पादन प्रक्रिया से पहले समाप्त हो चुके एक गत सामाजिक कार्य दिवस के दो तिहाई भाग का समावेश करनेवाले स्थिर मूल्य से विरचित है। II उत्पाद के मूल्य का यह अंश अपने को स्वयं उत्पाद के एक भाग में अभिव्यंजित करता है। वह २,००० की अथवा सामाजिक कार्य दिवस के दो तिहाई भाग की उपभोग वस्तुओं की राशि में होता है। यह वह नया उपयोग रूप है, जिसमें यह मूल्यांश पुनः प्रकट होता है। २,००० $II_{स}$ के बराबर उपभोग वस्तुओं के एक भाग का I ($१,०००_{प}+१,०००_{बे}$) के बराबर उत्पादन साधनों से विनिमय इस प्रकार वास्तव में समुचित कार्य दिवस के दो तिहाई भाग **का** – जो चालू वर्ष के श्रम का कोई अंश नहीं होता और इस वर्ष के पहले ही समाप्त हो चुका था – चालू वर्ष जोड़े नये दो तिहाई कार्य दिवस से विनिमय है। चालू वर्ष के सामाजिक कार्य दिवस का दो तिहाई भाग स्थिर पूंजी के उत्पादन में लगाया जाये और साथ ही ख़ुद अपने उत्पादकों के लिए परिवर्ती पूंजी मूल्य के साथ बेशी मूल्य बन जाये, ऐसा तभी हो सकता है कि उसका वर्ष में उपभुक्त उपभोग वस्तुओं के मूल्यांश से विनिमय हो, जिनमें चालू वर्ष से पहले व्ययित और सिद्धिकृत कार्य दिवस का दो तिहाई भाग समाविष्ट होता है। यह चालू वर्ष के दो तिहाई कार्य दिवस का इस वर्ष से पहले व्ययित दो तिहाई कार्य दिवस से विनिमय, चालू वर्ष के श्रम काल का पिछले वर्ष के श्रम काल से विनिमय है। इससे यह पहेली सुलझ जाती है कि एक समूचे सामाजिक कार्य दिवस का मूल्य उत्पाद अपने को कैसे परिवर्ती पूंजी मूल्य तथा बेशी मूल्य के योग में वियोजित कर सकता है, यद्यपि इस कार्य दिवस का दो तिहाई उन वस्तुओं के, जिनमें परिवर्ती पूंजी अथवा बेशी मूल्य का सिद्धिकरण हो सकता है, उत्पादन में नहीं, वरन साल में उपभुक्त पूंजी के प्रतिस्थापन के लिए उत्पादन साधनों के उत्पादन में ख़र्च किया गया था। इसकी सीधी-सादी व्याख्या यह है कि II के उत्पाद के मूल्य के जिस दो तिहाई भाग में I के पूंजीपति और मजदूर अपने द्वारा उत्पादित बेशी मूल्य तथा परिवर्ती पूंजी मूल्य का सिद्धिकरण करते हैं (और जो सारे वार्षिक उत्पाद के मूल्य का २/९ भाग है), वह – जहां तक उसके मूल्य का संबंध है, – चालू वर्ष से पहले के साल के सामाजिक कार्य दिवस के दो तिहाई भाग का उत्पाद है।

I तथा II के सामाजिक उत्पाद – उत्पादन साधन और उपभोग वस्तुओं – की समष्टि अपने उपयोग मूल्य की दृष्टि से सचमुच अपने मूर्त, दैहिक रूप में चालू वर्ष के श्रम का उत्पाद है, किंतु केवल उसी सीमा तक कि स्वयं इस श्रम को उपयोगी और मूर्त श्रम समझा जाता है, न कि श्रम शक्ति का व्यय अथवा मूल्य सृजक श्रम। और पहली बात भी केवल इस अर्थ में सही है कि उत्पादन साधनों ने केवल मात्र उनमें जोड़े गये सजीव श्रम की, उन पर काम करनेवाले श्रम की बदौलत अपने को नये उत्पाद में, चालू वर्ष के उत्पाद में परिणत कर लिया है। इसके विपरीत चालू वर्ष का श्रम अपने को अपने से स्वतंत्र उत्पादन साधनों के बिना, श्रम उपकरणों तथा उत्पादन सामग्री के बिना उत्पाद में परिणत नहीं कर सकता था।

८. दोनों क्षेत्रों में स्थिर पूंजी

६,००० के उत्पाद के कुल मूल्य का तथा जिन संवर्गों में वह विभाजित होता है, उनका विश्लेषण वैयक्तिक पूंजी द्वारा उत्पादित मूल्य के विश्लेषण से कोई ज्यादा कठिनाई प्रस्तुत नहीं करता। इसके विपरीत दोनों एकरूप हैं।

यहां समग्र वार्षिक सामाजिक उत्पाद में तीन सामाजिक कार्य दिवस हैं और इनमें से प्रत्येक एक साल का है। इनमें से प्रत्येक कार्य दिवस द्वारा अभिव्यक्त मूल्य ३,००० है, जिससे कुल उत्पाद द्वारा अभिव्यक्त मूल्य ३,०००×३, यानी ६,००० है।

इसके अलावा इस कार्य काल के निम्नलिखित अंश उस एक वर्षीय उत्पादन प्रक्रिया **से पहले** ही समाप्त हो चुके हैं, जिसके उत्पाद का हम अब विश्लेषण कर रहे हैं: क्षेत्र I में कार्य दिवस का ४/३ भाग (४,००० का उत्पाद) और क्षेत्र II में कार्य दिवस का २/३ भाग (२,००० का उत्पाद), जिनका योग हुआ ६,००० के उत्पाद के दो सामाजिक कार्य दिवस। इस कारण ४,००० $I_{स}$ + २,००० $II_{स}$ = ६,००० $_{स}$ उत्पादन साधनों के मूल्य रूप में अथवा सामाजिक उत्पाद के कुल मूल्य में पुनः प्रकट होनेवाले स्थिर पूंजी मूल्य के रूप में सामने आते हैं।

फिर क्षेत्र I में नये जोड़े एक वर्ष के सामाजिक कार्य दिवस का एक तिहाई भाग आवश्यक श्रम अथवा वह श्रम है, जो १,००० $I_{प}$ की परिवर्ती पूंजी के मूल्य को प्रतिस्थापित करता है और I में लगे श्रम की क़ीमत अदा करता है। इसी तरह II में सामाजिक कार्य दिवस का छठा भाग आवश्यक श्रम है, जिसका मूल्य ५०० है। अतः आधे सामाजिक कार्य दिवस का मूल्य अभिव्यक्त करनेवाला १,००० $I_{प}$ + ५०० $II_{प}$ = १,५०० $_{प}$ चालू वर्ष में जोड़े गये समुच्चित कार्य दिवस के आधे भाग की मूल्य अभिव्यक्ति है, जिसमें आवश्यक श्रम समाहित है।

अंततः क्षेत्र I में समुच्चित कार्य दिवस का एक तिहाई भाग, जिसका उत्पाद १,००० का है, बेशी श्रम है, और क्षेत्र II में कार्य दिवस का छठा भाग, जिसका उत्पाद ५०० का है, बेशी श्रम है। दोनों मिलकर जोड़े हुए समुच्चित कार्य दिवस का दूसरा आधा भाग बनाते हैं। अतः कुल उत्पादित बेशी मूल्य १,००० $I_{बे}$ + ५०० $II_{बे}$ अथवा १,५०० $_{बे}$ के बराबर है।

इस प्रकार:

सामाजिक उत्पाद के मूल्य का स्थिर पूंजी अंश (स):

उत्पादन प्रक्रिया से पहले व्ययित दो कार्य दिवस; मूल्य अभिव्यक्ति=६,०००।

साल भर में व्ययित आवश्यक श्रम (प):

वार्षिक उत्पाद पर व्ययित आधा कार्य दिवस; मूल्य अभिव्यक्ति=१,५००।

साल भर में व्ययित बेशी श्रम (बे):

वार्षिक उत्पाद पर व्ययित आधा कार्य दिवस; मूल्य अभिव्यक्ति=१,५००।

वार्षिक श्रम द्वारा उत्पादित मूल्य (प+बे)=३,०००।

उत्पाद का कुल मूल्य (स+प+बे)=९,०००।

तो कठिनाई स्वयं सामाजिक उत्पाद के मूल्य के विश्लेषण की नहीं है। वह सामाजिक उत्पाद के **मूल्य** के संघटक अंशों की उसके **भौतिक** घटकों से तुलना करने में पैदा होती है।

मूल्य का स्थिर, केवल पुनः प्रकट होनेवाला अंश इस उत्पाद के उस भाग के मूल्य के बराबर है, जिसमें **उत्पादन** साधन समाहित होते हैं और वह उस भाग में समाविष्ट होता है।

प+बे के बराबर वर्ष का नया मूल्य उत्पाद इस उत्पाद के उस भाग के मूल्य के बराबर है, जिसमें **उपभोग** वस्तुएं समाहित होती हैं और वह उसमें समाविष्ट होता है।

किंतु कुछ ऐसे अपवादों को छोड़कर, जिनका यहां कोई महत्व नहीं है, उत्पादन साधन और उपभोग वस्तुएं नितांत भिन्न प्रकार के माल, नितांत भिन्न दैहिक रूपों अथवा उपयोग रूपों का उत्पाद और इसलिए मूर्त श्रम की नितांत भिन्न श्रेणियों का उत्पाद होते हैं। निर्वाह साधनों के उत्पाद में जो श्रम मशीनों का उपयोग करता है, वह उस श्रम से अत्यधिक भिन्न होता है, जो मशीनें बनाता है। जिस संपूर्ण समुच्चित वार्षिक कार्य दिवस की मूल्य अभिव्यक्ति ३,००० है, वह ३,००० के बराबर उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में ख़र्च हुआ जान पड़ता है, जिसमें मूल्य का कोई स्थिर भाग पुनः प्रकट नहीं होता, क्योंकि ये ३,००० जो $१,५००_{प}+१,५००_{बे}$ के बराबर हैं, केवल परिवर्ती पूंजी मूल्य और बेशी मूल्य में वियोजित होते हैं। दूसरी ओर ६,००० का स्थिर पूंजी मूल्य उपभोग वस्तुओं से नितांत भिन्न श्रेणी के उत्पादों में, अर्थात उत्पादन साधनों में पुनः प्रकट होता है, जब कि वास्तव में सामाजिक कार्य दिवस का कोई भाग इस नये उत्पाद के उत्पादन में ख़र्च हुआ प्रतीत नहीं पड़ता। बल्कि ऐसा लगता है कि समूचे कार्य दिवस में श्रम की केवल ऐसी श्रेणियां हैं, जिनका परिणाम उत्पादन साधन नहीं होते, वरन उपभोग वस्तुएं होती हैं। इस रहस्य का स्पष्टीकरण किया जा चुका है। वर्ष के श्रम का मूल्य उत्पाद क्षेत्र II के उत्पाद के मूल्य के बराबर, नवोत्पादित उपभोग वस्तुओं के कुल मूल्य के बराबर होता है। किंतु इस उत्पाद का मूल्य वार्षिक श्रम के उस भाग से दो तिहाई अधिक होता है, जो (क्षेत्र II में) उपभोग वस्तुओं के उत्पादन क्षेत्र में ख़र्च किया गया है। उसके उत्पादन में वार्षिक श्रम का केवल एक तिहाई भाग ख़र्च किया गया है। इस वार्षिक श्रम का दो तिहाई भाग उत्पादन साधनों के उत्पादन पर, यानी क्षेत्र I में ख़र्च किया गया है। I में इस दौरान जिस मूल्य उत्पाद का निर्माण होता है, जो I में उत्पादित परिवर्ती पूंजी मूल्य तथा बेशी मूल्य के बराबर है, वह II के उस स्थिर पूंजी मूल्य के बराबर होता है, जो उपभोग वस्तुओं के रूप में II में पुनः प्रकट होता है। अतः उनका परस्पर विनिमय और वस्तुरूप में प्रतिस्थापन हो सकता है। इसलिए II की उपभोग वस्तुओं का मूल्य I तथा II के नये मूल्य उत्पाद की राशि के बराबर है, अथवा $II_{(स+प+बे)}$

बराबर है $I_{(प+बे)}+II_{(प+बे)}$ के, अतः वह प तथा बे के रूप में वर्ष भर के श्रम द्वारा उत्पादित नये मूल्यों के योग के बराबर है।

दूसरी ओर उत्पादन साधनों (I) का कुल मूल्य उत्पादन साधनों (I) तथा उपभोग वस्तुओं (II) के रूप में पुनः प्रकट होनेवाले स्थिर पूंजी मूल्य की राशि के बराबर, दूसरे शब्दों में समाज के कुल उत्पाद में पुनः प्रकट होनेवाले स्थिर पूंजी मूल्य की राशि के बराबर है। यह कुल मूल्य – मूल्यगत अर्थों में – बराबर है I की उत्पादन प्रक्रिया के पूर्ववर्ती कार्य दिवस के ४/३ भाग तथा II की उत्पादन प्रक्रिया के पूर्ववर्ती कार्य दिवस के २/३ भाग के, कुल मिलाकर दो समुच्चित कार्य दिवसों के।

अतः वार्षिक सामाजिक उत्पाद के प्रसंग में कठिनाई इस कारण पैदा होती है कि मूल्य का स्थिर अंश उत्पाद के एक ऐसे प्रकार – उत्पादन साधनों – के रूप में प्रस्तुत होता है, जो मूल्य के इस स्थिर अंश में जोड़े और उपभोग वस्तुओं के रूप में प्रस्तुत प+बे के नये मूल्य से नितांत भिन्न होता है। इससे, जहां तक मूल्य का संबंध है, यह प्रतीत होता है कि उत्पाद की उपभुक्त राशि का दो तिहाई भाग नये रूप में, नये उत्पाद की शकल में समाज द्वारा उसके उत्पादन पर कोई श्रम व्यय किये बिना फिर प्राप्त हो जाता है। वैयक्तिक पूंजी के प्रसंग में ऐसा नहीं होता। प्रत्येक वैयक्तिक पूंजीपति श्रम की किसी विशेष, मूर्त कोटि का नियोजन करता है, जो अपने विशेष उत्पादन साधनों को उत्पाद में रूपांतरित करता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिये कि पूंजीपति मशीन निर्माता है, साल में व्ययित स्थिर पूंजी $६,०००_{स}$, परिवर्ती पूंजी $१,५००_{प}$, बेशी मूल्य $१,५००_{बे}$, उत्पाद ९,००० और उत्पाद कहिये कि १८ मशीनें हैं, जिनमें प्रत्येक ५०० की है। यहां सारा उत्पाद एक ही रूप में, यानी मशीनों के रूप में है। (यदि वह विभिन्न प्रकार की मशीनें बनाता है, तो प्रत्येक प्रकार का अलग परिकलन किया जाता है।) सारा पण्य उत्पाद मशीन निर्माण में साल भर में व्ययित श्रम का फल है; वह श्रम की उसी मूर्त कोटि का उन्हीं उत्पादन साधनों से संयोग है। इसलिए उत्पाद के मूल्य के विभिन्न अंश उसी दैहिक रूप में प्रस्तुत होते हैं: १२ मशीनों में $६,०००_{स}$, ३ मशीनों में $१,५००_{प}$, ३ मशीनों में $१,५००_{बे}$ का समावेश है। प्रस्तुत प्रसंग में स्पष्ट है कि १२ मशीनों का मूल्य $६,०००_{स}$ के बराबर है, इसलिए नहीं कि इन १२ मशीनों में केवल उसी श्रम का समावेश हुआ है, जो इन मशीनों के निर्माण से पहले किया गया था और उस श्रम का नहीं है, जो उनके निर्माण पर व्यय हुआ है। १८ मशीनों के लिए उत्पादन साधनों का मूल्य अपने आप १२ मशीनों में अंतरित नहीं हो गया, वरन इन १२ मशीनों का मूल्य (जिसमें $४,०००_{स}+१,०००_{प}+१,०००_{बे}$ समाहित हैं) उस स्थिर पूंजी के समग्र मूल्य के बराबर है, जो इन १८ मशीनों में समाविष्ट है। अतः मशीन निर्माता को इन १८ मशीनों में से १२ बेंचनी होंगी, जिससे कि वह १८ नई मशीनों के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक उस स्थिर पूंजी का प्रतिस्थापन कर सके, जिसे वह व्यय कर चुका है। इसके विपरीत बात अव्याख्येय होगी, यदि इस तथ्य के बावजूद कि ख़र्च किये गये श्रम के मात्र मशीनों के निर्माण में ही लगाये जाने पर भी नतीजा यह निकले: एक ओर ६ मशीनें $१,५००_{प}+१,५००_{बे}$ के बराबर हैं, दूसरी ओर $६,०००_{स}$ मूल्य के लोहा, तांबा, पेंच, पट्टे, आदि हैं, अर्थात अपने दैहिक रूप में मशीनों के उत्पादन साधन हैं, और हमें पता है कि वैयक्तिक

मशीन निर्माता पूंजीपति स्वयं इनका उत्पादन नहीं करता, वरन उसे परिचलन प्रक्रिया के द्वारा उनका प्रतिस्थापन करना होता है। फिर भी पहली नज़र में यही लगता है कि समाज के वार्षिक उत्पाद का पुनरुत्पादन इस बेतुके ढंग से होता है।

वैयक्तिक पूंजी के उत्पाद का, अर्थात सामाजिक पूंजी के उस प्रत्येक अंश के उत्पाद का, जिसका अपना जीवन होता है और जो स्वतंत्र ढंग से कार्य करता है, किसी न किसी प्रकार का दैहिक रूप होता है। एकमात्र शर्त यह है कि इस उत्पाद का वस्तुतः उपयोग रूप, उपयोग मूल्य होना चाहिए, जिससे उस पर परिचलनीय पण्य जगत का सदस्य होने की छाप लग जाती है। यह बात महत्वहीन और सांयोगिक ही है कि वह जिस उत्पादन प्रक्रिया से उत्पाद के रूप में निकला है, उसी में उत्पादन साधनों की तरह पुनः प्रवेश कर सकता है या नहीं; दूसरे शब्दों में उसके मूल्य का वह भाग, जो पूंजी का स्थिर भाग है, ऐसे दैहिक रूप में है या नहीं, जिसमें वह स्थिर पूंजी के रूप में फिर वस्तुतः कार्य कर सकता है। यदि नहीं, तो उत्पाद के मूल्य का यह भाग क्रय-विक्रय द्वारा अपने भौतिक उत्पादन तत्वों के रूप में पुनःपरिवर्तित हो जाता है और इस प्रकार स्थिर पूंजी ऐसे दैहिक रूप में पुनरुत्पादित हो जाती है, जिसमें वह कार्य कर सकती है।

समुच्चित सामाजिक पूंजी के उत्पाद की स्थिति इससे भिन्न होती है। पुनरुत्पादन के सभी भौतिक तत्वों को अपने दैहिक रूप में इस उत्पाद के संघटक अंश बनना होता है। पूंजी का उपभुक्त स्थिर भाग समुच्चित उत्पादन द्वारा वहीं तक प्रतिस्थापित हो सकता है कि जहां तक उत्पाद में पुनः प्रकट होनेवाला पूंजी का समग्र स्थिर भाग उन नये उत्पादन साधनों के दैहिक रूप में पुनः प्रकट होता है, जो स्थिर पूंजी की तरह सचमुच कार्य कर सकते हैं। अतः साधारण पुनरुत्पादन की कल्पना के आधार पर उत्पाद का जो अंश उत्पादन साधनों से बनता है, उसके मूल्य को सामाजिक पूंजी के मूल्य के स्थिर भाग के बराबर होना होता है।

फिर: व्यक्तिगत विचार से पूंजीपति अपने उत्पाद के मूल्य में नये जोड़े हुए श्रम के द्वारा केवल अपनी परिवर्ती पूंजी तथा बेशी मूल्य का उत्पादन करता है, जब कि मूल्य का स्थिर भाग नये जोड़े हुए श्रम के मूर्त स्वरूप के कारण उत्पाद में अंतरित हो जाता है।

सामाजिक विचार से सामाजिक कार्य दिवस का उत्पादन साधन पैदा करनेवाला, अतः उनमें नया मूल्य जोड़नेवाला तथा उनमें उनके निर्माण में उपभुक्त उत्पादन साधनों के मूल्य को अंतरित करनेवाला अंश I तथा II दोनों क्षेत्रों में पुराने उत्पादन साधनों की शक्ल में उपभुक्त पूंजी के प्रतिस्थापनार्थ नई **स्थिर पूंजी** के अलावा और कुछ निर्मित नहीं करता। वह केवल उत्पादक उपभोग के लिए उद्दिष्ट उत्पाद का निर्माण करता है। इसलिए इस उत्पाद का समस्त मूल्य केवल ऐसा मूल्य है, जो स्थिर पूंजी की तरह फिर से कार्य कर सकता है, जो स्थिर पूंजी को उसके दैहिक रूप में केवल फिर से ख़रीद सकता है और जो इस कारण सामाजिक विचार से न तो परिवर्ती पूंजी में और न बेशी मूल्य में वियोजित होता है।

दूसरी ओर सामाजिक कार्य दिवस का जो भाग उपभोग वस्तुएं पैदा करता है, वह सामाजिक प्रतिस्थापन पूंजी का कोई अंश निर्मित नहीं करता। वह केवल अपने दैहिक रूप में I तथा II की परिवर्ती पूंजी के मूल्य तथा बेशी मूल्य के सिद्धिकरण के लिए उद्दिष्ट उत्पाद का ही निर्माण करता है।

समाज के दृष्टिकोण की बात करके समय और इसलिए समाज के कुल उत्पाद पर विचार करते समय, जिसमें वैयक्तिक उपभोग तथा सामाजिक पूंजी का पुनरुत्पादन दोनों समाविष्ट

होते हैं, हमें प्रूदों द्वारा पूंजीवादी अर्थशास्त्र से अनुकृत ढर्रे में नहीं पड़ जाना चाहिए और इस मामले को यों न देखना चाहिए, मानो उत्पादन की पूंजीवादी पद्धतिवाला समाज, en bloc, अपनी समग्रता में देखे जाने पर अपना विशिष्ट ऐतिहासिक और आर्थिक स्वरूप खो देगा। नहीं, बात इससे उलटी है। उस स्थिति में हमारा समष्टि रूप में पूंजीपति से सरोकार होता है। समष्टि पूंजी समस्त पृथक पूंजीपतियों का मिला-जुला पूंजी स्टॉक बनकर सामने आती है। इस संयुक्त पूंजी कंपनी में और बहुत सी अन्य पूंजी कंपनियों में यह बात सामान्य है कि हरेक यह तो जानता है कि उसने क्या लगाया है, पर यह नहीं जानता कि उससे वह पायेगा क्या।

९. ऐडम स्मिथ, श्तोर्ख़ और रैमज़े पर पुनःदृष्टि

सामाजिक उत्पाद का समुच्चित मूल्य ९,००० है, जो ६,००० $_{स}$ + १,५०० $_{प}$ + १,५०० $_{बे}$ के बराबर है, अर्थात ६,००० उत्पादन साधनों का पुनरुत्पादन करते हैं और ३,००० उपभोग वस्तुओं का। अतः सामाजिक आय का मूल्य (प+बे) समुच्चित उत्पाद के मूल्य का सिर्फ़ एक तिहाई है और उपभोक्ताओं – मजदूरों तथा पूंजीपतियों की भी समष्टि कुल सामाजिक उत्पाद से केवल इस एक तिहाई राशि तक ही पण्य वस्तुएं, उत्पाद निकाल सकती है और उन्हें अपनी उपभोग निधि में समाविष्ट कर सकती है। दूसरी ओर ६,००० अथवा उत्पाद के मूल्य का दो तिहाई स्थिर पूंजी का मूल्य है, जिसका वस्तुरूप में प्रतिस्थापन करना होता है। अतः उत्पादन निधि में इस राशि के उत्पादन साधनों का फिर से समावेश करना होता है। श्तोर्ख़ ने इसे प्रमाणित न कर पाने पर भी यह पहचान लिया था कि वह महत्वपूर्ण है: "यह स्पष्ट है कि वार्षिक उत्पाद का मूल्य अंशतः पूंजी में और अंशतः लाभ में बंटा होता है, और वार्षिक उत्पाद के मूल्य के इन अंशों में से प्रत्येक उस उत्पाद की ख़रीद में नियमित रूप से लगाया जाता है, जिसकी राष्ट्र को अपनी पूंजी को बनाये रखने और अपनी उपभोग निधि का आपूरण करने दोनों के लिए जरूरत होती है... जो उत्पाद राष्ट्र की **पूंजी है, उसका उपभोग नहीं किया जाना है**" (श्तोर्ख़, *Considèrations sur la nature du revenu national*, पेरिस, १८२४, पृष्ठ १३४-१३५, १५०)।

किंतु ऐडम स्मिथ ने एक अद्‌भुत मत चलाया है, जिस पर आज तक विश्वास किया जाता है, उस पूर्वोक्त रूप में ही नहीं, जिसके अनुसार सामाजिक उत्पाद का समस्त मूल्य अपने को आय – मजदूरी तथा बेशी मूल्य – में अथवा उनकी शब्दावली में मजदूरी जमा लाभ (ब्याज) तथा किराया ज़मीन में वियोजित कर लेता है, वरन उस और भी लोकप्रिय रूप में, जिसके अनुसार "अंततोगत्वा" **उपभोक्ताओं को उत्पाद का सारा मूल्य** उत्पादकों को देना होता है। आज दिन तक यह अर्थशास्त्र के तथाकथित विज्ञान की सर्वाधिक सुप्रतिष्ठित सामान्य धारणा, कहना चाहिए, उसका शाश्वत सत्य है। इसकी मिसाल इस तर्कसंगत प्रतीत होनेवाले तरीक़े से दी जा सकती है: कोई भी चीज ले लीजिये, जैसे कि लिनन की क़मीज। पहले लिनन कातनेवाले को सन उगानेवाले को सन का सारा मूल्य, अर्थात बीज, उर्वरक, जांगर मवेशियों के चारे, आदि का मूल्य तथा मूल्य का वह भाग, जिसे सन उगानेवाले की स्थायी पूंजी का इमारतों, खेती के उपकरण, वग़ैरह जैसा भाग उत्पाद को प्रदान करता है; सन के उत्पादन में अदा की मजदूरी; सन में समाविष्ट बेशी मूल्य (लाभ, किराया ज़मीन);

आख़िर में उत्पादन स्थल से कताईघर तक सन की ढुलाई का ख़र्च – अदा करना होता है। फिर बुनकर को लिनन सूत कातनेवाले को न केवल सन का दाम, वरन मशीनों, इमारतों, वग़ैरह के मूल्य, संक्षेप में स्थायी पूंजी के उस अंश का दाम भी, जो सन को अंतरित होता है; इसके अलावा कताई की प्रक्रिया में उपभुक्त सारी सहायक सामग्री, कातनेवालों की मज़दूरी, बेशी मूल्य, इत्यादि का भी दाम भरना होता है और इसी तरह रंगरेज़, तैयार लिनन की ढुलाई लागत और अंत में क़मीज़ निर्माता तक यही सिलसिला चलता है, जिसे सभी पूर्ववर्ती उत्पादकों को सारा दाम चुकाना होता है, जिन्होंने उसके लिए केवल कच्चा माल जुटाया था। उसके हाथ में मूल्य में और वृद्धि होती है, अंशतः स्थायी पूंजी के उस मूल्य द्वारा, जो क़मीज़ों के निर्माण में श्रम उपकरणों, सहायक सामग्री, वग़ैरह की शक्ल में खपता है, और अंशतः उस व्यय किये श्रम के द्वारा, जो क़मीज़ बनानेवालों की मज़दूरी का मूल्य तथा क़मीज़ निर्माता का बेशी मूल्य उसमें जोड़ता है। मान लीजिये, क़मीज़ों के रूप में इस सारे उत्पाद की लागत अंततः १०० पाउंड बैठती है और मान लीजिये कि यह समाज द्वारा क़मीज़ों पर व्ययित कुल वार्षिक उत्पाद के मूल्य का समभाग है। क़मीज़ों के उपभोक्ता ये १०० पाउंड, अर्थात क़मीज़ों में समाहित उत्पादन साधनों तथा सन उगानेवाले, कातनेवाले, बुनकर, रंगरेज़, क़मीज़ निर्माता और सभी माल ढोनेवालों की मज़दूरी तथा बेशी मूल्य अदा करते हैं। यह बात पूरी तरह सही है। सच तो यह है कि बच्चा भी यह समझ सकता है। किंतु आगे कहा जाता है: अन्य सभी मालों के मूल्य के बारे में भी यही होता है। कहना यह चाहिए: **सभी उपभोग वस्तुओं** के मूल्य के बारे में, सामाजिक उत्पाद के उस अंश के मूल्य के बारे में, जो उपभोग निधि में आता है, अर्थात सामाजिक उत्पाद के मूल्य के उस अंश के बारे में, जो आय के रूप में ख़र्च किया जा सकता है, यही होता है। बेशक, इन सभी मालों के मूल्यों का योग उनमें उपयुक्त सभी उत्पादन साधनों के मूल्यों (पूंजी के स्थिर भागों) के तथा आख़िर में जोड़े हुए श्रम द्वारा रचे हुए मूल्य (मज़दूरी तथा बेशी मूल्य) के बराबर है। अतः उपभोक्ता समष्टि मूल्यों की इस समग्र राशि के दाम दे सकती है, क्योंकि यद्यपि प्रत्येक अलग-अलग माल का मूल्य स+प+बे से निर्मित है, फिर भी उपभोग निधि में पहुंचनेवाले सभी मालों के मूल्य का अधिकतम योग भी सामाजिक उत्पाद के उस मूल्यांश के बराबर ही हो सकता है, जो प+बे में वियोजित होता है, दूसरे शब्दों में वह उस मूल्य के ही बराबर हो सकता है, जिसे वर्ष में ख़र्च किये श्रम ने विद्यमान उत्पादन साधनों में, अर्थात स्थिर पूंजी के मूल्य में जोड़ा है। जहां तक स्थिर पूंजी के मूल्य का संबंध है, हम देख चुके हैं कि उसका प्रतिस्थापन सामाजिक उत्पाद की राशि में से दोहरे ढंग से होता है। प्रथम, उपभोग वस्तुएं पैदा करनेवाले II पूंजीपतियों के उनके लिए उत्पादन साधन पैदा करनेवाले I पूंजीपतियों से विनिमय द्वारा। यहीं उस उक्ति का स्रोत है कि जो एक के लिए पूंजी है, वह दूसरे के लिए आय है। किंतु वास्तविक स्थिति यह नहीं है। २,००० मूल्य की उपभोग वस्तुओं की शक्ल में विद्यमान २,००० $II_{स}$ II पूंजीपति वर्ग के लिए स्थिर पूंजी मूल्य हैं। अतः वे स्वयं इस मूल्य का उपभोग नहीं कर सकते, यद्यपि उत्पाद अपने दैहिक रूप के अनुरूप उपभोग के लिए उद्दिष्ट है। दूसरी ओर २,००० $I_{(प+बे)}$ मज़दूरी और बेशी मूल्य हैं, जिनका उत्पादन I के पूंजीपति तथा मज़दूर वर्ग ने किया है। वे उत्पादन साधनों के, ऐसी चीज़ों के दैहिक रूप में होते हैं, जिनमें उनके अपने मूल्य का उपभोग नहीं

हो सकता। इसलिए हमारे पास ४,००० राशि के मूल्य हैं, जिनका आधा हिस्सा विनिमय के पहले और उसके बाद केवल स्थिर पूंजी को प्रतिस्थापित करता है, जब कि दूसरा हिस्सा केवल आय होता है।

दूसरी बात यह है कि क्षेत्र I की स्थिर पूंजी वस्तुरूप में प्रतिस्थापित होती है और ऐसा अंशतः I पूंजीपतियों के बीच विनिमय द्वारा और अंशतः प्रत्येक अलग-अलग व्यवसाय में वस्तुरूप में प्रतिस्थापन द्वारा होता है।

यह शब्दावली कि सारे वार्षिक उत्पाद का मूल्य अंततोगत्वा उपभोक्ता को चुकाना होगा, तभी सही होगी कि जब उपभोक्ता शब्द से दो नितांत भिन्न प्रकार के उपभोक्ताओं का आशय ग्रहण किया जाये: व्यक्तिगत उपभोक्ता और उत्पादक उपभोक्ता। किंतु अगर उत्पाद के एक अंश का उपभोग **उत्पादक ढंग से** करना होगा, तो उसका अर्थ इसके सिवा और कुछ नहीं है कि उसे **पूंजी का कार्य** करना होगा और उसका **आय के रूप में उपभोग** नहीं हो सकता।

यदि हम ६,००० के बराबर समुच्चित उत्पाद के मूल्य को $६,०००_{स} + १,५००_{प} + १,५००_{बे}$ में विभाजित कर दें और ३,००० (प+बे) पर केवल उसके आय के गुण के विचार से दृष्टिपात करें, तो इसके विपरीत परिवर्ती पूंजी लुप्त होती और पूंजी में सामाजिक विचार से केवल स्थिर पूंजी शेष रहती प्रतीत होती है। कारण यह कि जो कुछ पहले पहल $१,५००_{प}$ के रूप में प्रकट हुआ था, उसने अपने को सामाजिक आय के एक अंश, मजदूर वर्ग की आय, मजदूरी में वियोजित कर लिया है और इस तरह उसका पूंजी का स्वरूप लुप्त हो गया है। रैमज़े दरअसल यही निष्कर्ष निकालते हैं। उनके अनुसार सामाजिक दृष्टि से पूंजी केवल स्थायी पूंजी होती है, किंतु स्थायी पूंजी से उनका मतलब मूल्यों की उस मात्रा से होता है, जिसमें उत्पादन साधन समाहित होते हैं, ये उत्पादन साधन चाहे श्रम उपकरण हों, चाहे श्रम सामग्री हों, जैसे कच्चा माल, अर्धनिर्मित उत्पाद, सहायक सामग्री, वग़ैरह। वह परिवर्ती पूंजी को प्रचल पूंजी कहते हैं: "प्रचल पूंजी में केवल श्रमिक जनों को उनके श्रम के उत्पाद के पूर्ण होने से पहले उन्हें पेशगी दी गई निर्वाह तथा अन्य जीवनावश्यक वस्तुएं होती हैं... यथार्थतः स्थायी पूंजी ही राष्ट्रीय संपदा का स्रोत है, न कि प्रचल पूंजी... प्रचल पूंजी उत्पादन में प्रत्यक्ष साधक नहीं होती, न उसके लिए तत्वतः आवश्यक ही होती है; वह एक सुविधा मात्र है, जो जनसाधारण की दयनीय निर्धनता के कारण आवश्यक बन जाती है... राष्ट्रीय दृष्टिकोण से केवल स्थायी पूंजी उत्पादन की लागत का एक तत्व होती है" (रैमज़े, *l. c.*, pp. 23-26, *passim*)। रैमज़े स्थायी पूंजी की, जिससे उनका आशय स्थिर पूंजी है, परिभाषा इन शब्दों में अधिक सूक्ष्मतापूर्वक करते हैं: "वह कालावधि, जिसमें इस श्रम" (अर्थात किसी माल पर व्यय किये हुए श्रम) "के उत्पाद का कोई अंश स्थायी पूंजी के रूप में, यानी ऐसे रूप में विद्यमान रहा हो, जिसमें वह भावी माल के उद्‌भव में सहायता तो करता है, किंतु **श्रमिकों का भरण-पोषण** नहीं करता" (वही, पृष्ठ ५९)।

ऐडम स्मिथ स्थिर और परिवर्ती पूंजी के भेद को स्थायी पूंजी और प्रचल पूंजी के भेद में विलुप्त करके जो तबाही करते हैं, वह यहां फिर हमारे देखने में आती है। रैमज़े की स्थिर पूंजी में श्रम उपकरण हैं, उनकी प्रचल पूंजी में निर्वाह साधन हैं। ये दोनों ही एक नियत मूल्य के माल हैं। इनमें न यह बेशी मूल्य पैदा कर सकता है, न वह।

१०. पूंजी और आय : परिवर्ती पूंजी और मज़दूरी[49]

समग्र वार्षिक पुनरुत्पादन, वर्ष का समग्र उत्पाद, उस वर्ष के उपयोगी श्रम का उत्पाद होता है। किंतु इस कुल उत्पाद का मूल्य उस मूल्यांश से अधिक होता है, जिसमें वार्षिक श्रम, चालू वर्ष के दौरान व्यय की गई श्रम शक्ति, सन्निहित होती है। इस वर्ष का **मूल्य उत्पाद** इस अवधि में मालों के रूप में नवनिर्मित मूल्य **उत्पाद के मूल्य** से, सारे वर्ष के दौरान निर्मित मालों की कुल राशि के समुच्चित मूल्य से कम होता है। वार्षिक उत्पाद के कुल मूल्य से उसमें चालू वर्ष के श्रम द्वारा जोड़े गये मूल्य को घटा देने से जो अंतर प्राप्त होता है, वह वास्तव में पुनरुत्पादित मूल्य नहीं, वरन वह नये अस्तित्व रूप में पुनः प्रकट होनेवाला मूल्य मात्र है। वह वार्षिक उत्पाद को उससे पहले से विद्यमान मूल्य से स्थिर पूंजी के चालू वर्ष की सामाजिक श्रम प्रक्रिया में भाग ले चुके घटकों के टिकाऊपन के अनुसार जल्दी या देर में अंतरित हुआ मूल्य है, ऐसा मूल्य है, जिसका उद्भव पिछले वर्ष अथवा उससे भी अनेक वर्ष पहले अस्तित्व में आये उत्पादन साधनों के मूल्य से हो सकता है। इस तरह यह पूर्व वर्षों के उत्पादन साधनों से चालू वर्ष के उत्पाद को अंतरित मूल्य होता है।

आइये, अपनी सारणी ले लेते हैं। अब तक I तथा II के बीच और II के भीतर तत्वों के विनिमय के विवेचन के बाद हमारे सामने यह स्थिति है:

I) $४,०००_{स} + १,०००_{प} + १,०००_{बे}$ (बादवाले २,००० $II_{स}$ का उपभोग वस्तुओं में सिद्धिकरण हुआ है) = ६,०००।

II) $२,०००_{स}$ ($I_{(प+बे)}$ से विनिमय द्वारा पुनरुत्पादित) + $५००_{प}$ + $५००_{बे}$ = ३,०००।

मूल्यों का योग = ९,०००।

वर्ष के दौरान नवोत्पादित मूल्य केवल प और बे में समाविष्ट है। अतः इस वर्ष के मूल्य उत्पाद का योग बराबर है प + बे के, अथवा २,००० $I_{(प+बे)}$ + १,००० $II_{(प+बे)}$ = ३,०००। इस वर्ष के उत्पाद के शेष सभी मूल्यांश केवल वार्षिक उत्पादन में पहले उपभुक्त उत्पादन साधनों के मूल्य से अंतरित मूल्य मात्र होते हैं। चालू वार्षिक श्रम ने ३,००० के मूल्य के अलावा और कोई मूल्य पैदा नहीं किया है। उसका सारा वार्षिक मूल्य उत्पाद यही है।

अब, जैसा कि हम देख चुके हैं, वर्ग II के लिए २,००० $I_{(प+बे)}$ उसके २,००० $II_{स}$ को उत्पादन साधनों को दैहिक रूप में प्रतिस्थापित करते हैं, तब संवर्ग I में व्ययित वार्षिक श्रम के दो तिहाई भाग ने स्थिर पूंजी II का, उसके समग्र मूल्य का और उसके दैहिक रूप का भी नवोत्पादन किया है। समाज के दृष्टिकोण से साल के दौरान व्यय किये दो तिहाई श्रम ने क्षेत्र II के उपयुक्त दैहिक रूप में सिद्धिकृत नये स्थिर पूंजी मूल्य का सृजन किया है। इस प्रकार समाज के वार्षिक श्रम का अधिकांश नई स्थिर पूंजी (उत्पादन साधनों के रूप में विद्यमान पूंजी मूल्य) के उत्पादन पर ख़र्च किया गया है, जिससे कि उपभोग वस्तुओं के उत्पादन पर ख़र्च किया स्थिर पूंजी मूल्य प्रतिस्थापित हो सके। यहां जो चीज़ पूंजीवादी समाज का बर्बर समाज से भेद दिखलाती है, वह सीनियर[50] के ख़याल

---

[49] यहां से आगे पाण्डुलिपि ८ से है। – फ़े० एं०

[50] "जब जंगली आदमी धनुष बनाता है, तब वह उद्योग तो करता है, परंतु परिवर्जन

के मुताबिक़ जंगली आदमी की अपने श्रम को कभी-कभी इस तरह ख़र्च करने की सुविधा और विशेषता नहीं है, जिससे उसे आय में, अर्थात उपभोग वस्तुओं में वियोज्य (विनिमेय) उत्पादों की प्रप्ति होती है। नहीं, भेद निम्नलिखित है:

क) पूंजीवादी समाज अपने उपलभ्य वार्षिक श्रम का अधिक भाग उन उत्पादन साधनों (यानी स्थिर पूंजी) के उत्पादन पर ख़र्च करता है, जो मज़दूरी अथवा बेशी मूल्य के रूप में आय में वियोज्य नहीं हैं, वरन जो केवल पूंजी की तरह कार्य कर सकते हैं।

ख) जब जंगली आदमी धनुष, वाण, पत्थर के हथौड़े, कुल्हाड़ियां, टोकरियां, वग़ैरह बनाता है, तब वह बहुत अच्छी तरह जानता है कि उसने जो समय यों ख़र्च किया है, वह उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में नहीं लगाया गया है, वरन यह कि उसने इस प्रकार अपने लिए आवश्यक उत्पादन साधन ही जमा किये हैं और कुछ नहीं। इसके अलावा जंगली समय के अपव्यय के प्रति अपनी नितांत उदासीनता से एक गंभीर आर्थिक पाप करता है और जैसे कि टाइलर[51] हमें बताते हैं, कभी-कभी एक तीर बनाने में पूरा महीना लगा देता है।

एक के लिए जो पूंजी है, दूसरे के लिए वह आय है, और इसके विलोमतः भी इन वास्तविक अंतःसंबंधों को समझने की सैद्धांतिक कठिनाई से अपने को निकालने के लिए कुछ अर्थशास्त्री जिस प्रचलित धारणा का सहारा लेते हैं, वह केवल अंशतः सही है और उसे सार्विक स्वरूप प्रदान करने के साथ वह पूर्णतः ग़लत हो जाती है (अतः उसमें वार्षिक पुनरुत्पादन में होनेवाली समूची विनिमय प्रक्रिया की एकदम ग़लत समझ होती है, और इसलिए जो कुछ अंशतः सही है, उसके वास्तविक आधार की भी ग़लत समझ होती है)।

अब हम उन वास्तविक संबंधों का समाहार करते हैं, जिन पर इस धारणा की आंशिक यथातथ्यता आधारित है और ऐसा करने में इन संबंधों के बारे में भ्रांत धारणाएं उभरकर सामने आ जायेंगी।

१) परिवर्ती पूंजी पूंजीपति के हाथ में पूंजी का और उजरती मज़दूर के हाथ में आय का कार्य करती है।

परिवर्ती पूंजी पहले **द्रव्य पूंजी** के रूप में पूंजीपति के हाथ में होती है; और वह **द्रव्य पूंजी** का कार्य पूंजीपति द्वारा उससे श्रम शक्ति का क्रय करने के ज़रिये करती है। जब तक वह उसके हाथ में द्रव्य रूप में बनी रहती है, तब तक वह द्रव्य रूप में विद्यमान एक दिये हुए मूल्य के अलावा और कुछ नहीं होती; अतः वह एक स्थिर परिमाण है, परिवर्ती नहीं। वह केवल संभाव्य रूप में परिवर्ती पूंजी है, अपनी इस क्षमता के कारण कि वह श्रम शक्ति में परिवर्तनीय है। वह वास्तविक परिवर्ती पूंजी तभी बनती है कि जब अपना द्रव्य रूप उतार देती है, जब वह पूंजीवादी प्रक्रिया में उत्पादक पूंजी के संघटक अंश की तरह कार्यरत श्रम शक्ति में परिवर्तित हो जाती है।

द्रव्य, जो पहले परिवर्ती पूंजी के द्रव्य रूप की तरह पूंजीपति के लिए कार्य करता था,

---

नहीं करता" (Senior, *Principes fondamentaux de l'Economie Politique*. trad. Arrivabene, Paris, 1836, pp. 342-343)। "समाज जितना विकास करता है, परिवर्जन की मांग उतनी ही बढ़ती जाती है" (वही, पृष्ठ ३४२)। (तुलना करें, *Kapital*, Buch I, Kap. XXII, S. 19.) [हिंदी संस्करण: अध्याय २४, ३, पृष्ठ ६६९-६७०।]

[51] E. B. Tylor, *Researches into the Early History of Mankind, etc.* London, 1865, pp. 198-199.

अब मजदूर के हाथ में उसकी मजदूरी के द्रव्य रूप की तरह, जिसका वह निर्वाह साधनों से विनिमय करता है, अर्थात उसकी श्रम शक्ति के निरंतर पुनरावृत्त विक्रय से प्राप्त आय के द्रव्य रूप की तरह कार्य करता है।

यहां हमारे सामने यह सीधा सा तथ्य है कि ग्राहक का द्रव्य, इस प्रसंग में पूंजीपति का, उसके हाथ से निकलकर विक्रेता के पास, इस प्रसंग में श्रम शक्ति के विक्रेता, मजदूर के पास पहुंचता है। यह परिवर्ती पूंजी के दोहरा कार्य – पूंजीपति के लिए पूंजी का और मजदूर के लिए आय का – करने का मामला नहीं है। यह वही द्रव्य है, जो पहले पूंजीपति के हाथ में उसकी परिवर्ती पूंजी के द्रव्य रूप की तरह, अतः संभाव्य परिवर्ती पूंजी की तरह होता है और जो, जैसे ही पूंजीपति उसे श्रम शक्ति में बदलता है, मजदूर के हाथ में बिकी हुई श्रम शक्ति के समतुल्य का काम करता है। किंतु यह तथ्य कि वही धन विक्रेता के हाथ में एक उपयोगी कार्य करता है और ग्राहक के हाथ में दूसरा, एक ऐसी परिघटना है कि जो मालों के सभी क्रय-विक्रय की विशेषता है।

वितंडावादी अर्थशास्त्री इस मामले को ग़लत दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हैं, जैसा कि तब अच्छी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि अगर हम आगेवाली बातों की तरफ़ फ़िलहाल ध्यान न देकर अपनी दृष्टि को केवल परिचलन क्रिया द्र – श्र (द्र – मा के बराबर), पूंजीपति ग्राहक द्वारा द्रव्य का श्रम शक्ति में परिवर्तन, जो श्र – द्र (मा – द्र के बराबर) है, विक्रेता – श्रमिक – द्वारा माल श्रम शक्ति का द्रव्य में परिवर्तन पर जमाये रखें। वे कहते हैं: यहां एक ही द्रव्य दो पूंजियों का सिद्धिकरण करता है; ग्राहक – पूंजीपति – अपनी द्रव्य पूंजी को सजीव श्रम शक्ति में बदलता है, जिसे वह अपनी उत्पादक पूंजी में समाविष्ट कर लेता है; दूसरी ओर विक्रेता – श्रमिक – अपना माल – श्रम शक्ति – द्रव्य में बदलता है, जिसे वह आय के रूप में ख़र्च करता है, और इसकी बदौलत वह अपनी श्रम शक्ति बार-बार बेच पाता है और इस तरह उसे बनाये रख पाता है। इसलिए उसकी श्रम शक्ति माल रूप में उसकी पूंजी है, जो उसे निरंतर आय प्रदान करती है। श्रम शक्ति सचमुच उसकी संपत्ति है (निरंतर स्वनवीकृत और पुनरुत्पादित), उसकी पूंजी नहीं। यही एकमात्र माल है, जिसे जिंदा रहने के लिए वह बार-बार बेच सकता है और बेचना पड़ता है और जो पूंजी (परिवर्ती) का कार्य केवल ग्राहक – पूंजीपति – के हाथ में करती है। यह तथ्य कि एक आदमी को अपनी श्रम शक्ति, यानी ख़ुद अपने को दूसरे आदमी के हाथ बार-बार बेचना पड़ता है, इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह सिद्ध करता है कि वह पूंजीपति है, क्योंकि उसके पास बिक्री के लिए निरंतर "माल" (वह स्वयं) रहता है। इस अर्थ में ग़ुलाम भी पूंजीपति है, हालांकि वह दूसरे आदमी द्वारा सदा-सर्वदा के लिए माल की तरह बेच दिया गया है, क्योंकि यह इस माल – कमेरे ग़ुलाम – की प्रकृति में है कि उसका ख़रीदार हर रोज नये सिरे से उससे काम ही नहीं कराता, बल्कि उसके लिए निर्वाह साधन भी जुटाता है, जिससे कि वह निरंतर नये सिरे से काम कर सके (इस बात को लेकर माल्थस को सीसमांडी और सेय के पत्रों से तुलना कीजिये)।*

---

* मार्क्स के दिमाग़ में जे॰ बी॰ सेय के *Lettres à M. Malthus sur differents sujets d'économie politique, notamment sur les causes de la stagnation générale du commerce*, Paris, 1820 की बात है। – सं॰

२) और इस तरह २,००० $II_{स}$ से १,००० $I_{प}$ + १,००० $I_{बे}$ के विनिमय में कुछ के लिए जो स्थिर पूंजी (२,००० $II_{स}$) है, वह दूसरों के लिए परिवर्ती पूंजी और बेशी मूल्य अतः सामान्यतः आय हो जाती है; और जो परिवर्ती पूंजी और बेशी मूल्य (२,००० $I_{(प+बे)}$) है, अतः कुछ लोगों के लिए सामान्यतः आय है, वह दूसरों के लिए स्थिर पूंजी बन जाती है।

आइये, मजदूर के दृष्टिकोण से शुरूआत करके पहले $I_{प}$ के $II_{स}$ से विनिमय पर नज़र डालें।

I का समष्टि श्रमिक I के समष्टि पूंजीपति को अपनी श्रम शक्ति १,००० पर बेचता है; उसे यह मूल्य द्रव्य में, मजदूरी के रूप में मिलता है। इस द्रव्य से वह II से उसी मूल्य राशि की उपभोग वस्तुएं ख़रीदता है। II का पूंजीपति उसके सामने केवल माल विक्रेता के रूप में ही आता है, अन्य किसी रूप में नहीं, भले ही मजदूर ख़रीदारी अपने ही पूंजीपति से करे, जैसा कि वह, उदाहरणतः, ५०० $II_{प}$ के विनिमय में करता है, जैसा कि हम ऊपर (पृष्ठ ४०० पर) देख चुके हैं।* उसका माल, श्रम शक्ति, जिस परिचलन रूप से गुज़रता है, वह मात्र आवश्यकताओं की तुष्टि के लिए, उपभोग के लिए मालों का साधारण परिचलन है: मा (श्रम शक्ति) — द्र — मा (उपभोग वस्तुएं, II माल)। इस परिचलन क्रिया का परिणाम यह होता है कि श्रमिक I पूंजीपति के लिए अपना श्रम शक्ति के रूप में अनुरक्षण करता है और अपना इस रूप में अनुरक्षण करते रहने के लिए उसे श्र (मा) — द्र — मा क्रिया का निरंतर नवीकरण करना होता है। उसकी मजदूरी का उपभोग वस्तुओं में सिद्धिकरण होता है, वह आय के रूप में ख़र्च होती है और समूचे मजदूर वर्ग को देखते हुए आय के रूप में बार-बार ख़र्च होती है।

आइये, अब $II_{स}$ से $I_{प}$ के उसी विनिमय को पूंजीपति के दृष्टिकोण से देखें। II का समूचा माल उत्पाद में उपभोग वस्तुएं हैं, अतः ऐसी चीज़ें हैं, जिनका वार्षिक उपभोग में आना, अतः किसी के लिए आय के सिद्धिकरण में काम आना, वर्तमान प्रसंग में समष्टि श्रमिक I के लिए अभीष्ट है। किंतु II के समष्टि पूंजीपति के लिए उसके पण्य उत्पाद का एक अंश, जो २,००० के बराबर है, अब उसकी माल में परिवर्तित उत्पादक पूंजी के स्थिर पूंजी मूल्य का रूप है। इस उत्पादक पूंजी को माल रूप से उसके दैहिक रूप में पुनःपरिवर्तित करना होगा, जिसमें वह उत्पादक पूंजी के स्थिर अंश की तरह फिर काम कर सकती है। अभी तक II के पूंजीपति ने जो कुछ किया है, वह यह कि I के मजदूरों को बिक्री के जरिये उसने अपने स्थिर पूंजी मूल्य का आधा हिस्सा (१,००० के बराबर), जो मालों (उपभोग वस्तुओं) के रूप में पुनरुत्पादित हुआ था, द्रव्य रूप में पुनःपरिवर्तित कर लिया है। अतः स्थिर पूंजी मूल्य $II_{स}$ के अर्धांश में परिवर्ती पूंजी $I_{प}$ नहीं, वरन केवल वह द्रव्य परिवर्तित किया गया है, जो श्रम शक्ति से विनिमय में I के लिए द्रव्य पूंजी का कार्य कर रहा था और इस प्रकार श्रम शक्ति के विक्रेता के क़ब्ज़े में आ गया है, जिसके लिए वह पूंजी नहीं, वरन द्रव्य रूप में आय है, अर्थात वह उपभोग वस्तुएं ख़रीदने के साधन रूप में

*प्रस्तुत पुस्तक, पृष्ठ ३५५-३५६। — सं०

ख़र्च किया जाता है। इधर १,००० के बराबर जो द्रव्य I के श्रमिकों से II के पूंजीपतियों के पास आ गया है, वह उत्पादक पूंजी II के स्थिर तत्व के रूप में कार्य नहीं कर सकता। वह अभी केवल उसकी माल पूंजी का द्रव्य रूप है, जो स्थिर पूंजी के स्थायी अथवा प्रचल घटकों में बदला जायेगा। इस प्रकार I के श्रमिकों से, अपने माल के ख़रीदारों से, प्राप्त द्रव्य से II १,००० के उत्पादन साधन I से ख़रीदता है। इस प्रकार स्थिर पूंजी मूल्य II का उसकी कुल राशि के अर्धांश तक उसके दैहिक रूप में नवीकरण होता है, जिसमें वह उत्पादक पूंजी II के तत्व के रूप में फिर से कार्य कर सकता है। इस प्रसंग में परिचलन का क्रम **मा – द्र – मा** था: १,००० मूल्य की उपभोग वस्तुएं – १,००० का द्रव्य – १,००० मूल्य के उत्पादन साधन ।

किंतु **मा – द्र – मा** यहां पूंजी की गति का प्रतिनिधित्व करता है। जब **मा** श्रमिकों को बेचा जाता है, तब वह द्र में बदल जाता है और यह द्र उत्पादन साधनों में बदल जाता है। जिन भौतिक तत्वों से वह माल बना है, यह उन्हीं में मालों का पुनःपरिवर्तन है। दूसरी ओर, जैसे II का पूंजीपति I के संदर्भ में केवल मालों के ख़रीदार का काम करता है, वैसे ही I का पूंजीपति II के संदर्भ में केवल मालों के विक्रेता का काम करता है। I ने आरंभ में १,००० मूल्य की श्रम शक्ति परिवर्ती पूंजी के रूप में कार्य करने के लिए उद्दिष्ट द्रव्य रूप में १,००० से ख़रीदी थी। अतः उसने द्रव्य रूप में जो $१,०००_प$ ख़र्च किया था, उसका समतुल्य उसे मिल गया है। वह द्रव्य अब मजदूर का है, जो II से ख़रीदारियों में उसे ख़र्च कर सकता है। इस तरह जो द्रव्य II के कोष में पहुंच गया है, उसे I तब तक वापस नहीं पा सकता कि जब तक उसी मूल्य की बिक्री से उसे वहां से फिर न निकाल ले।

पहले I के पास परिवर्ती पूंजी की तरह कार्य करने के लिए उद्दिष्ट १,००० के बराबर निश्चित द्रव्य राशि थी। द्रव्य इस रूप में उसी मूल्य की श्रम शक्ति में रूपांतरण द्वारा काम करता है। किंतु मजदूर ने उत्पादन प्रक्रिया के फलस्वरूप उसे ६,००० के माल (उत्पादन साधनों) की मात्रा की पूर्ति की है, जिसका छठा भाग अथवा १,००० द्रव्य रूप में पेशगी पूंजी के परिवर्ती भाग के बराबर है। परिवर्ती पूंजी मूल्य अब अपने माल रूप में परिवर्ती पूंजी का कार्य नहीं करने लगता है, जैसे वह पहले द्रव्य रूप में भी नहीं करता था। वह ऐसा सजीव श्रम शक्ति में परिवर्तित होने के बाद ही कर सकता है और केवल तभी तक कि जब तक यह श्रम शक्ति उत्पादन प्रक्रिया में कार्यशील रहती है। द्रव्य रूप में परिवर्ती पूंजी मूल्य केवल संभाव्य परिवर्ती पूंजी था। किंतु वह ऐसे रूप में था, जिसमें वह श्रम शक्ति में प्रत्यक्षतः परिवर्तनीय था। माल के रूप में वही परिवर्ती पूंजी मूल्य अब भी संभाव्य मुद्रा मूल्य है, वह केवल मालों की बिक्री द्वारा, अतः II द्वारा I से १,००० के माल ख़रीदे जाने पर ही अपने मूल द्रव्य रूप में फिर बहाल होता है। यहां परिचलन की गति इस प्रकार है: $१,०००_प$ (द्रव्य) – १,००० मूल्य की श्रम शक्ति – मालों के रूप में १,००० (परिवर्ती पूंजी का समतुल्य) – $१,०००_प$ (द्रव्य); अतः **द्र – मा ... मा – द्र** (**द्र – श्र ... मा – द्र** के बराबर)। **मा ... मा** के बीच होनेवाली उत्पादन प्रक्रिया स्वयं परिचलन क्षेत्र के दायरे में नहीं आती। वार्षिक पुनरुत्पादन के विभिन्न तत्वों के परस्पर विनिमय में वह कहीं सामने नहीं आता, यद्यपि इस विनिमय में उत्पादक पूंजी के सभी तत्वों का, स्थिर तत्व का और परिवर्ती तत्व (श्रम शक्ति) का भी पुनरुत्पादन शामिल है। इस विनिमय में भाग लेनेवाले सभी तत्व ग्राहक या विक्रेता, या दोनों की हैसियत से प्रकट होते हैं। मजदूर केवल मालों के ग्राहक की

हैसियत से सामने आते हैं; पूंजीपति बारी-बारी से ग्राहक और विक्रेता के रूप में और किन्हीं सीमाओं के भीतर केवल मालों के ग्राहक के रूप में अथवा केवल मालों के विक्रेता के रूप में सामने आते हैं।

परिणाम: I के पास अपनी पूंजी का परिवर्ती मूल्य-घटक द्रव्य रूप में फिर आ जाता है और केवल इसी रूप से वह श्रम शक्ति में प्रत्यक्षतः परिवर्तनीय है, अर्थात उसके पास परिवर्ती पूंजी मूल्य उस एकमात्र रूप में फिर आ जाता है, जिसमें वह उसकी उत्पादक पूंजी के परिवर्ती तत्व की हैसियत से वस्तुतः पेशगी दिया जा सकता है। दूसरी ओर मजदूर को फिर माल के, अपनी श्रम शक्ति के विक्रेता की हैसियत से काम करना होता है, इसके बाद ही वह फिर मालों के ग्राहक का काम कर सकता है।

जहां तक संवर्ग II की परिवर्ती पूंजी ($५०० II_{प}$) का संबंध है, उत्पादन के एक ही वर्ग के पूंजीपतियों और मजदूरों के बीच परिचलन प्रक्रिया प्रत्यक्ष होती है, क्योंकि हम उसे II के समष्टि पूंजीपति और II के समष्टि श्रमिक के बीच होते देखते हैं।

II का समष्टि पूंजीपति उसी मूल्य की श्रम शक्ति ख़रीदने के लिए $५००_{प}$ पेशगी देता है। इस प्रसंग में समष्टि पूंजीपति ग्राहक है और समष्टि श्रमिक – विक्रता। तदनंतर श्रम शक्ति की बिक्री की प्राप्तियों को लेकर मजदूर अपने ही बनाये मालों के एक अंश का ग्राहक बनकर सामने आता है। इसलिए यहां पूंजीपति विक्रेता है। पूंजीपति ने मजदूर की श्रम शक्ति की ख़रीद के लिए जो धन दिया था, उसे मजदूर ने नवोत्पादित माल पूंजी II के एक अंश द्वारा, यानी माल रूप में $५००_{प}$ की राशि द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया है। अब मालों के रूप में पूंजीपति के पास वही प है, जो उसके पास श्रम शक्ति में परिवर्तित होने के पहले द्रव्य रूप में था, जब कि दूसरी ओर मजदूर ने अपनी श्रम शक्ति के मूल्य का द्रव्य रूप में सिद्धिकरण कर लिया है और अब अपनी बारी में वह ख़ुद अपनी बनाई हुई उपभोग वस्तुओं के एक हिस्से के क्रय में अपने उपभोग की अदायगी करने के लिए यह द्रव्य ख़र्च करके उसका आय के रूप में सिद्धिकरण करता है। यह द्रव्य रूप में मजदूर की आय का स्वयं उसने जिन मालों का पुनरुत्पादन किया है, उनके एक अंश से, यानी पूंजीपति के $५००_{प}$ से विनिमय है। इस प्रकार यह द्रव्य II के पूंजीपति के पास उसकी परिवर्ती पूंजी के द्रव्य रूप की तरह वापस आ जाता है। यहां आय के मूल्य का द्रव्य समतुल्य मालों के रूप में परिवर्ती पूंजी मूल्य को प्रतिस्थापित करता है।

पूंजीपति जब मजदूर को मालों की समतुल्य मात्रा बेचता है, तब श्रम शक्ति के क्रय में अपने द्वारा उसे दिये धन को वापस लेकर अपनी संपदा को बढ़ा नहीं लेता। यदि वह मजदूर को पहले उसकी श्रम शक्ति ख़रीदते समय ५०० दे और फिर ५०० मूल्य के माल की मात्रा उसे मुफ़्त दे, जिसे मजदूरों ने उसके लिए उत्पादित किया था, तो वह वास्तव में मजदूर की दो बार अदायगी करेगा। इसके विपरीत, यदि मजदूर अपनी ५०० की श्रम शक्ति की क़ीमत के बदले उसके लिए मालों के रूप में ५०० के समतुल्य के अलावा और कुछ पैदा न करे, तो पूंजीपति इस लेन-देन से पहले जैसा था, उससे कुछ ज्यादा समृद्ध न हो जायेगा। किंतु मजदूर ने ३,००० के उत्पाद का पुनरुत्पादन किया है। उसने उत्पाद के मूल्य के स्थिर भाग को, अर्थात प्रयुक्त उत्पादन साधनों के २,००० के बराबर मूल्य को नये उत्पाद में बदलकर सुरक्षित रखा है। इसके अलावा इस दिये हुए मूल्य में उसने $१,०००_{(प+बे)}$ का मूल्य और

जोड़ा है। (पूंजीपति द्रव्य रूप में ५०० की वापसी से बेशी मूल्य पा जाता है, इस अर्थ में वह और धनी बनता है – इस धारणा को देस्तु द त्रासी ने विकसित किया है, जैसा कि इस अध्याय के परिच्छेद १३ में विस्तारपूर्वक दिखाया गया है।)

II के मजदूर द्वारा ५०० की उपभोग वस्तुओं की ख़रीद से II का पूंजीपति ५०० $II_{प}$ का मूल्य – जो अभी उसके पास माल रूप में था – द्रव्य रूप में, जिसमें उसने उसे मूलतः पेशगी दिया था, फिर पा जाता है। मालों की और किसी बिक्री की ही तरह इस लेन-देन का भी प्रत्यक्ष फल एक दिये हुए मूल्य का माल रूप से द्रव्य रूप में परिवर्तन होता है। न द्रव्य के अपने प्रस्थान बिंदु पर इस पश्चप्रवाह में ही कोई विशेष बात है। यदि II के पूंजीपति ने ५०० द्रव्य रूप से I के पूंजीपति से माल ख़रीदा होता और फिर अपनी बारी में ५०० रक़म का माल I के पूंजीपति को बेचा होता, तो द्रव्य रूप में उसी प्रकार ५०० उसके पास लौट आते। ५०० की यह द्रव्य राशि केवल मालों की एक मात्रा (१,०००) के परिचलन के काम आती और जिस सामान्य नियम की व्याख्या पहले की जा चुकी है, उसके अनुसार जिसने यह द्रव्य मालों की इस मात्रा के विनिमय के लिए परिचलन में डाला था, उसके पास वह लौट आता।

किंतु II पूंजीपति के पास द्रव्य रूप में जो ५०० लौटे थे, वे साथ ही द्रव्य रूप में नवीकृत संभाव्य परिवर्ती पूंजी भी हैं। ऐसा क्यों है? द्रव्य और इसलिए द्रव्य पूंजी भी वहीं तक और तभी तक संभाव्य परिवर्ती पूंजी होती है कि जब तक और जहां तक वह श्रम शक्ति में परिवर्तनीय होती है। II पूंजीपति के पास द्रव्य रूप में ५०० पाउंड की वापसी के साथ-साथ श्रम शक्ति II भी बाजार में वापस आती है। इन दोनों का विरोधी ध्रुवों पर प्रत्यावर्तन और इसलिए ५०० का द्रव्य रूप में न केवल द्रव्य की हैसियत से, वरन द्रव्य रूप में परिवर्ती पूंजी की हैसियत से भी पुनः प्रकट होना एक ही प्रक्रिया पर निर्भर हैं। II के पूंजीपति के पास ५०० के बराबर द्रव्य इसलिए लौट आता है कि उसने II के श्रमिक को ५०० के बराबर उपभोग वस्तुएं बेची थीं, अर्थात इसलिए कि श्रमिक ने स्वयं को, अपने परिवार को और इस प्रकार अपनी श्रम शक्ति को भी बनाये रखने के लिए अपनी मजदूरी ख़र्च की है। मालों के ग्राहक की तरह फिर काम करने और जिंदा रहने के लिए उसे अपनी श्रम शक्ति फिर बेचनी होगी। इसलिए II के पूंजीपति के पास द्रव्य रूप में इन ५०० की वापसी द्रव्य रूप में ५०० से ख़रीदे जा सकनेवाले माल की हैसियत में श्रम शक्ति का भी पूंजीपति के पास प्रत्यावर्तन अथवा बने रहना है और इस तरह ५०० की द्रव्य रूप में संभाव्य परिवर्ती पूंजी के रूप में वापसी है।

जहां तक संवर्ग IIख का, जो विलास वस्तुएं पैदा करता है, संबंध है, प – $(IIख)_{प}$ – की स्थिति वही है, जो $I_{प}$ की है। जो द्रव्य IIख पूंजीपतियों के लिए द्रव्य रूप में उनकी परिवर्ती पूंजी का नवीकरण करता है, वह उनके पास IIक पूंजीपतियों के पास होता हुआ चक्करदार रास्ते से वापस आता है। फिर भी इस बात से बेशक फ़र्क़ पड़ता है कि मजदूर अपने निर्वाह साधन सीधे उन पूंजीपति उत्पादकों से ख़रीदते हैं, जिन्हें वे अपनी श्रम शक्ति बेचते हैं या किसी दूसरे संवर्ग के पूंजीपतियों से ख़रीदते हैं, जिनके जरिये द्रव्य चक्करदार रास्ते से ही प्रथमोक्त के पास लौटता है। चूंकि मजदूर वर्ग नित कमाता और नित खाता है, इसलिए वह तभी तक ख़रीदारी करता है कि जब तक उसके पास इसके साधन होते हैं। पूंजीपतियों के साथ ऐसा नहीं है, यथा १,००० $I_{प}$ से १,००० $II_{स}$ के विनिमय में। पूंजीपति

के लिए नित कमाकर नित जीने की समस्या नहीं है। उसका प्रेरक हेतु उसकी पूंजी का अधिकतम स्वप्रसार है। इसलिए यदि II पूंजीपति को किन्हीं भी परिस्थितियों से यह लगता हो कि अपनी स्थिर पूंजी का नवीकरण तुरंत करने के बजाय अपना द्रव्य या कम से कम उसका कुछ भाग कुछ समय के लिए रोके रखने से उसे अधिक लाभ होगा, तब I के पास १,००० $II_{स}$ (द्रव्य रूप में) की वापसी और इसी तरह द्रव्य रूप में १,००० $I_{प}$ की बहाली भी विलंबित हो जायेगी और I पूंजीपति अपना व्यवसाय उसी पैमाने पर तभी चला सकता है कि अगर वह आरक्षित द्रव्य से काम ले; और सामान्यतः द्रव्य रूप में आरक्षित पूंजी इसलिए ज़रूरी होती है कि किसी व्यवधान के बिना काम चलता रहे, फिर परिवर्ती पूंजी मूल्य द्रव्य रूप में चाहे जल्दी वापस आये, चाहे देर में।

चालू वार्षिक पुनरुत्पादन के विविध तत्वों के विनिमय के अन्वेषण के लिए विगत वर्ष के श्रम के परिणामों की, अभी-अभी समाप्त हुए वर्ष के श्रम के परिणामों की भी छानबीन करना आवश्यक है। जिस उत्पादन प्रक्रिया का फल इस वर्ष का उत्पाद है, वह पीछे छूट गया है; वह अतीत की चीज़ है, जिसका समावेश उसके उत्पाद में हो गया है। परिचलन प्रक्रिया के प्रसंग में यह बात और भी लागू होती है, जो संभाव्य परिवर्ती पूंजी का वास्तविक परिवर्ती पूंजी में परिवर्तन, अर्थात श्रम शक्ति का क्रय-विक्रय है, जो उत्पादन प्रक्रिया से पहले होती है या उसके साथ-साथ चलती है। श्रम बाज़ार अब उस माल बाज़ार का अंग नहीं रह गया है, जो हमारे सामने यहां है। यहां मज़दूर अपनी श्रम शक्ति को पहले बेंच ही नहीं चुका है, वरन उसने बेशी मूल्य के अलावा माल रूप में अपनी श्रम शक्ति की क़ीमत के समतुल्य की भी पूर्ति की है। इसके अलावा वह अपनी मज़दूरी को भी हस्तगत कर चुका है और विनिमय के समय वह माल (उपभोग वस्तुओं) के ग्राहक की तरह ही सामने आता है। दूसरी ओर यह ज़रूरी है कि वार्षिक उत्पाद में पुनरुत्पादन के सारे तत्व समाहित हों, वह उत्पादक पूंजी के सारे तत्वों को, सर्वोपरि उसके सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व, परिवर्ती पूंजी को बहाल करे। और सचमुच हम देख चुके हैं कि परिवर्ती पूंजी के संदर्भ में विनिमय का परिणाम यह होता है: अपनी मज़दूरी के व्यय और ख़रीदे हुए माल के उपभोग द्वारा मज़दूर मालों के ख़रीदार के रूप में अपनी श्रम शक्ति का अनुरक्षण करता और उसका पुनरुत्पादन करता है, क्योंकि उसके पास यही एकमात्र माल है, जिसे वह बेंच सकता है। जैसे इस श्रम शक्ति की ख़रीदारी में पूंजीपति का पेशगी द्रव्य उसके पास लौट आता है, वैसे ही श्रम शक्ति उस माल की हैसियत से श्रम बाज़ार में लौट आती है, जिसका विनिमय इस द्रव्य से हो सकता है। १,००० $I_{प}$ के विशेष प्रसंग में नतीजा यह होता है कि I के पूंजीपतियों के पास द्रव्य रूप में १,०००$_{प}$ होते हैं और I के मज़दूर उन्हें श्रम शक्ति के रूप में १,००० पेश करते हैं, जिससे कि I की सारी पुनरुत्पादन प्रक्रिया का नवीकरण हो सके। यह विनिमय प्रक्रिया का एक परिणाम है।

दूसरी ओर I के मज़दूरों द्वारा मज़दूरी के व्यय ने II की १,०००$_{स}$ राशि के बराबर उपभोग वस्तुओं की स्थानापत्ति की और इस तरह उन्हें पण्य रूप से द्रव्य रूप में रूपांतरित किया। क्षेत्र II ने I से १,०००$_{प}$ के बराबर माल ख़रीदकर उन्हें अपनी स्थिर पूंजी के दैहिक रूप में पुनःपरिवर्तित किया और इस प्रकार I को द्रव्य रूप में उसकी परिवर्ती पूंजी का मूल्य बहाल कर दिया।

I की परिवर्ती पूंजी तीन रूपांतरणों से होकर गुजरती है, जो वार्षिक उत्पाद के विनिमय में बिल्कुल भी प्रकट नहीं होते या प्रकट होते हैं, तो केवल सांकेतिक रूप में।

१) पहला रूप द्रव्य में १,००० $I_{प}$ का है, जो उतने ही मूल्य की श्रम शक्ति में परिवर्तित होता है। यह परिवर्तन ख़ुद I और II के बीच माल विनिमय में प्रकट नहीं होता, किंतु उसका परिणाम इस बात में प्रकट होता है कि I का मजदूर वर्ग द्रव्य में १,००० के साथ II के माल विक्रेता के सामने आता है, जैसे II का मजदूर वर्ग द्रव्य में ५०० पाकर माल रूप में ५०० $II_{प}$ के माल विक्रेता के सामने आता है।

२) दूसरा रूप और वह एकमात्र रूप जिसमें परिवर्ती पूंजी वस्तुतः परिवर्तित होती है, परिवर्ती पूंजी का कार्य करता है, जहां दिये हुए मूल्य की जगह उससे विनिमीत मूल्य सृजक शक्ति प्रकट होती है। यह रूप केवल उस उत्पादन प्रक्रिया के अंतर्गत है, जो पीछे छूट चुकी है।

३) तीसरा रूप वार्षिक मूल्य उत्पाद का है, जिसमें परिवर्ती पूंजी ने उत्पादन प्रक्रिया के फलस्वरूप अपनी सार्थकता सिद्ध की है, जो I के प्रसंग में $१,०००_{प}$ तथा $१,०००_{बे}$ के योग के, अथवा २,००० $I_{(प+बे)}$ के बराबर है। द्रव्य रूप में अपने मूल १,००० मूल्य के बदले हमारे पास इसकी दुगनी राशि का मूल्य अथवा माल रूप में २,००० है। अतः माल रूप में १,००० का परिवर्ती पूंजी मूल्य उस नये मूल्य का अर्धांश मात्र है, जिसका उत्पादन परिवर्ती पूंजी उत्पादक पूंजी के एक तत्व के नाते करती है। माल रूप में १,००० $I_{प}$ I द्वारा मूलतः पेशगी दिये गये और समुच्चित पूंजी के परिवर्ती भाग के रूप में उद्दिष्ट $१,०००_{प}$ का द्रव्य रूप में यथार्थ समतुल्य हैं। किंतु माल रूप में वे केवल संभाव्य रूप में ही द्रव्य हैं (जब तक वे बेचे न जायें, तब तक वे वस्तुतः द्रव्य नहीं बनते) और वे प्रत्यक्ष रूप में तो परिवर्ती द्रव्य पूंजी और भी कम हैं। वे अंततोगत्वा $II_{स}$ के हाथ १,००० $I_{प}$ माल की बिक्री से श्रम शक्ति के क्रेय माल के रूप में, ऐसी सामग्री के रूप में, जिसका द्रव्य में $१,०००_{प}$ विनिमय हो सकता है, शीघ्र पुनः प्रकट होने से ही परिवर्ती द्रव्य पूंजी बनते हैं।

इन सभी रूपांतरणों के दौरान परिवर्ती पूंजी निरंतर पूंजीपति I के हाथ में रहती है; १) शुरू में द्रव्य पूंजी की तरह; २) फिर उसकी उत्पादक पूंजी के एक तत्व की तरह; ३) इसके बाद उसकी माल पूंजी के मूल्यांश की तरह, अतः माल मूल्य की तरह; ४) अंत में फिर द्रव्य रूप में, जहां उसके सामने पुनः श्रम शक्ति होती है, जिससे उसका विनिमय हो सकता है। श्रम प्रक्रिया के दौरान पूंजीपति के पास परिवर्ती पूंजी एक सक्रिय मूल्य सृजक श्रम शक्ति की तरह होती है, किंतु दिये हुए परिमाण के मूल्य की तरह नहीं होती। लेकिन चूंकि पूंजीपति मजदूर की अदायगी उसकी शक्ति के कुछ समय क्रियाशील रह चुकने के पहले नहीं करता, इसलिए मजदूर की अदायगी करने के पहले ही उस शक्ति द्वारा अपनी तथा बेशी मूल्य की प्रतिस्थापना करने के लिए सृजित मूल्य उसके हाथ में होता है।

चूंकि परिवर्ती पूंजी किसी न किसी रूप में हमेशा पूंजीपति के हाथ में रहती है, इसलिए यह दावा किसी तरह नहीं किया जा सकता कि वह अपने को किसी के लिए आय में बदल लेती है। इसके विपरीत माल रूप में १,००० $I_{प}$ II के हाथ अपनी बिक्री से अपने को द्रव्य रूप में बदल लेता है, जिसकी आधी स्थिर पूंजी को वह वस्तुरूप में प्रति-स्थापित करता है।

जो चीज़ अपने को आय में वियोजित करती है, वह परिवर्ती पूंजी I अथवा द्रव्य रूप में $१,०००_{प}$ नहीं है। यह द्रव्य श्रम शक्ति में परिवर्तित होने के साथ परिवर्ती पूंजी I के द्रव्य रूप की तरह कार्य करना बंद कर देता है, जैसे मालों के किसी भी विक्रेता का द्रव्य उसके द्वारा उसका किन्हीं अन्य विक्रेताओं के माल से विनिमय कर लेने के साथ उसकी किसी भी चीज़ का प्रतिनिधित्व करना बंद कर देता है। मज़दूरी के रूप में प्राप्त धन मज़दूर वर्ग के हाथ में जिन रूपांतरणों से गुज़रता है, वे परिवर्ती पूंजी के रूपांतरण नहीं, वरन द्रव्य में परिवर्तित उसकी श्रम शक्ति के मूल्य के रूपांतरण हैं, जैसे श्रमिक द्वारा सृजित (२,००० $I_{(प+बे)}$)मूल्य का रूपांतरण केवल पूंजीपति के एक माल का रूपांतरण है, जिससे मज़दूर का कोई सरोकार नहीं है। फिर भी पूंजीपति, और उससे भी अधिक उसका सैद्धांतिक भाष्यकार, अर्थशास्त्री बड़ी ही कठिनाई से इस धारणा से छुटकारा पा सकता है कि मजदूर को जो धन दिया गया है, वह अब भी उसी का, पूंजीपति का धन ही है। यदि पूंजीपति स्वर्ण का उत्पादक है, तो मूल्य का परिवर्ती अंश – यानी माल के रूप में वह समतुल्य, जो उसके लिए श्रम ख़रीदने की क़ीमत को प्रतिस्थापित करता है – स्वयं सीधे द्रव्य रूप में प्रकट होता है और इसलिए पश्चप्रवाह के चक्करदार रास्ते के बिना फिर से परिवर्ती द्रव्य पूंजी की तरह कार्य कर सकता है। किंतु जहां तक II के मजदूर का संबंध है – विलास वस्तुओं का उत्पादन करने-वाले मज़दूरों को छोड़कर – $५००_{प}$ मजदूर द्वारा उपभोग के लिए अभीष्ट मालों के रूप में है, जिसे समष्टि के रूप में मजदूर फिर सीधे उसी समष्टि पूंजीपति से ख़रीदता है, जिसे उसने अपनी श्रम शक्ति बेची थी। II के पूंजी मूल्य के परिवर्ती अंश में, जहां तक उसके दैहिक रूप का संबंध है, अधिकतर मज़दूर वर्ग के उपभोग के लिए उद्दिष्ट उपभोग वस्तुएं समाहित होती हैं। किंतु पूंजीपति को ५०० $II_{प}$ की परिवर्ती पूंजी की उसके द्रव्य रूप में बहाली मजदूर द्वारा इस रूप में व्ययित परिवर्ती पूंजी नहीं, बल्कि मज़दूरी – मजदूर का धन – ठीक इन उपभोग वस्तुओं में अपने सिद्धिकरण से ही करती है। परिवर्ती पूंजी $II_{प}$ उपभोग वस्तुओं में वैसे ही पुनरुत्पादित होती है, जैसे स्थिर पूंजी २,००० $II_{स}$। इनमें से कोई भी अपने को आय में वियोजित नहीं करती। दोनों ही मामलों में मजदूरी ही अपने को आय में वियोजित करती है।

फिर भी वार्षिक उत्पाद के विनिमय में यह तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण है कि मजदूरी के आय के रूप में व्यय से एक प्रसंग में १,००० $II_{स}$ की द्रव्य पूंजी के रूप में बहाली हो जाती है, इसी तरह इस चक्करदार रास्ते से १,००० $I_{प}$ और पुनः ५०० $II_{प}$, अतः स्थिर और परिवर्ती पूंजी की भी (परिवर्ती पूंजी के प्रसंग में अंशतः प्रत्यक्ष और अंशतः अप्रत्यक्ष पश्च-प्रवाह द्वारा)।

११. स्थायी पूंजी का प्रतिस्थापन

वार्षिक पुनरुत्पादन के विनिमयों के विश्लेषण में निम्नलिखित से बड़ी कठिनाई सामने आती है। बात सबसे सीधे-सादे ढंग से पेश की जाये, तो स्थिति यह होती है:

$$I)\ ४,०००_{स} + १,०००_{प} + १,०००_{बे} +$$
$$II)\ २,०००_{स} + ५००_{प} + ५००_{बे} = ९,०००$$

यह अंततः अपने को इस प्रकार वियोजित करता है:

$$४,००० \ I_{स} + २,००० \ II_{स} + १,००० \ I_{प} + ५०० \ II_{प} + १,००० \ I_{बे} + ५०० \ II_{बे} =$$
$$= ६,०००_{स} + १,५००_{प} + १,५००_{बे} = ९,०००$$

स्थिर पूंजी के मूल्य का एक अंश, जो श्रम उपकरणों – इन शब्दों के यथार्थतम अर्थ में (उत्पादन साधनों के एक विशेष भाग के रूप में) – से बना है, श्रम उपकरणों से श्रम उत्पाद (माल) को अंतरित हो जाता है। ये श्रम उपकरण उत्पादक पूंजी के तत्वों की तरह कार्य करते रहते हैं और ऐसा अपने पुराने दैहिक रूप में करते हैं। एक निश्चित अवधि तक उनके लगातार कार्य करने के परिणामस्वरूप उनकी घिसाई होती है, उनमें क्रमशः मूल्य ह्रास होता है, वह उनके द्वारा उत्पादित माल के मूल्य के एक तत्व के रूप में पुनः प्रकट होता है, वही श्रम उपकरणों से श्रम के उत्पाद को अंतरित होता है। इसलिए जहां तक वार्षिक पुनरुत्पादन का संबंध है, स्थायी पूंजी के केवल ऐसे संघटक अंशों पर ही शुरू से ध्यान दिया जायेगा, जो साल भर से ज्यादा चलते हैं। यदि वे साल के भीतर ही पूरी तरह से छीज जाते हैं, तो वार्षिक पुनरुत्पादन द्वारा उनका पूरी तरह प्रतिस्थापन और नवीकरण आवश्यक होगा और विचाराधीन समस्या से उनका कोई संबंध नहीं है। मशीनों और स्थायी पूंजी के दूसरे ज्यादा टिकाऊ रूपों के मामले में ऐसा हो सकता है – और अक्सर होता भी है – कि उनके कुछ हिस्सों को साल के भीतर ही पूर्ण रूप से प्रतिस्थापित करना होता है, यद्यपि इमारत या मशीन अपनी समग्रता में कहीं ज्यादा चलती है। ये हिस्से स्थायी पूंजी के तत्वों के संवर्ग में आते हैं, जिनका एक साल के भीतर ही प्रतिस्थापन करना होता है।

मालों के मूल्य के इस तत्व को मरम्मत की लागत से उलझाना नहीं चाहिए। यदि कोई माल बिक जाता है, तो अन्य सभी की तरह यह मूल्य तत्व भी द्रव्य में बदल जाता है। किंतु द्रव्य में बदल जाने के बाद मूल्य के अन्य तत्वों से उसका भेद स्पष्ट हो जाता है। मालों के उत्पादन में उपभुक्त कच्चे माल और सहायक सामग्री का वस्तुरूप में प्रतिस्थापन ज़रूरी होता है, जिससे कि मालों का पुनरुत्पादन शुरू हो सके (अथवा मालों की उत्पादन प्रक्रिया सामान्य रूप में जारी रहे)। उन पर ख़र्च हुई श्रम शक्ति का ताज़ा श्रम शक्ति द्वारा नवीकरण भी आवश्यक होता है। फलतः मालों से सिद्धिकृत द्रव्य को उत्पादक पूंजी के इन तत्वों में, द्रव्य रूप से माल रूप में निरंतर पुनःपरिवर्तित करना आवश्यक होता है। इससे स्थिति में कोई अंतर नहीं आता कि यदि, उदाहरण के लिए, कच्ची और सहायक सामग्री को किन्हीं निश्चित अंतरालों पर बड़ी मात्रा में ख़रीदा जाता है, जिससे कि वे उत्पादक पूर्ति का काम करती हैं और इन्हीं निश्चित अवधियों में उनका फिर से ख़रीदना ज़रूरी न हो; और इसलिए – जब तक वे चलती हैं – मालों की बिक्री से आनेवाला धन इसी प्रयोजन के लिए होने के कारण संचित होता जाता है और इस प्रकार स्थिर पूंजी का यह अंश कुछ समय ऐसी मुद्रा पूंजी प्रतीत होता है, जिसका सक्रिय कार्य निलंबित हो गया है। यह आय-पूंजी नहीं है; यह द्रव्य रूप में निलंबित उत्पादक पूंजी है। उत्पादन साधनों के नवीकरण को निरंतर होते ही रहना होगा, यद्यपि परिचलन के संदर्भ में इस नवीकरण का रूप बदल सकता है। नई ख़रीदारी, वह परिचलन क्रिया, जिसके द्वारा इनका नवीकरण या प्रतिस्थापन होता है, न्यूनाधिक दीर्घ अंतरालों पर हो सकती है, फिर एक ही बार में अनुरूप उत्पादक पूर्ति से प्रतिकारित कोई बड़ी राशि निवेशित की जा सकती है। अथवा ख़रीदारियों के बीच के अंतराल छोटे हो सकते हैं;

फिर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में द्रव्य के व्यय का, छोटी-छोटी उत्पादक पूर्तियों का तेज़ सिलसिला आता है। इससे स्वयं स्थिति नहीं बदल जाती। यही बात श्रम शक्ति पर भी लागू होती है। जहां उत्पादन साल भर लगातार एक ही पैमाने पर चालू रहता है, वहां नई श्रम शक्ति द्वारा उपभुक्त श्रम शक्ति का निरंतर प्रतिस्थापन होता है। जहां काम मौसमी होता है अथवा भिन्न-भिन्न अवधियों में श्रम की भिन्न-भिन्न मात्रा का प्रयोग होता है, जैसे खेती में, वहां श्रम शक्ति की अनुरूप ख़रीद भी कभी थोड़ी, तो कभी ज्यादा मात्रा में होती है। किंतु मालों की बिक्री से द्रव्य की प्राप्तियां, जहां तक वे उस माल मूल्य के हिस्से को द्रव्य में बदलती हैं, जो स्थायी पूंजी की छीजन के बराबर होता है, वे जिस उत्पादक पूंजी के मूल्य ह्रास की पूर्ति करती हैं, उसके संघटक अंश में पुन:परिवर्तित नहीं होतीं। वे उत्पादक पूंजी के साथ स्थिर हो जाती हैं और द्रव्य के रूप में बनी रहती हैं। द्रव्य का यह अवक्षेपण तब तक बार-बार होता रहता है, जब तक न्यूनाधिक वर्षों की पुनरुत्पादन अवधि बीत नहीं जाती, जिसके दौरान स्थिर पूंजी का स्थायी तत्व उत्पादन प्रक्रिया में अपने पुराने दैहिक रूप में कार्य करता रहता है। जैसे ही स्थायी तत्व, जैसे कि इमारतें, मशीनें, वग़ैरह छीज जाता है और उत्पादन प्रक्रिया में आगे कार्य नहीं कर सकता, उसका मूल्य द्रव्य द्वारा, द्रव्य अवक्षेपणों की समष्टि – स्थायी पूंजी से उन मालों को, जिनके उत्पादन में उसने भाग लिया था और जिसने इन मालों की बिक्री के फलस्वरूप द्रव्य रूप धारण किया था, शनैः-शनैः अंतरित मूल्यों – द्वारा पूर्णतः प्रतिस्थापित होकर उसके साथ आ जाता है। यह द्रव्य स्थायी पूंजी को (अथवा उसके तत्वों को, चूंकि उसके विभिन्न तत्वों का टिकाऊपन अलग-अलग होता है) वस्तुरूप में प्रतिस्थापित करने का और इस प्रकार उत्पादक पूंजी के इस संघटक अंश का वस्तुतः नवीकरण करने का काम करता है। अतः यह द्रव्य स्थिर पूंजी मूल्य के एक अंश का, यानी उसके स्थायी अंश का द्रव्य रूप है। इस प्रकार इस अपसंचय का निर्माण स्वयं पुनरुत्पादन की पूंजीवादी प्रक्रिया का एक तत्व है; यह स्थायी पूंजी के मूल्य अथवा उसके विभिन्न तत्वों का – द्रव्य रूप में – तब तक पुनरुत्पादन और संग्रहण है कि जब तक स्थायी पूंजी का जीवन काल समाप्त नहीं हो जाता और फलतः वह अपना पूरा मूल्य उत्पादित मालों को नहीं प्रदान कर देती और जब उसका वस्तुरूप में प्रतिस्थापन जरूरी नहीं हो जाता है। किंतु यह द्रव्य स्थायी पूंजी के निःशेष तत्वों के प्रतिस्थापन के लिए नये तत्वों में पुन:परिवर्तित होते ही अपना अपसंचय का रूप ही त्यागता है और इसलिए परिचलन द्वारा जनित पूंजी की पुनरुत्पादन प्रक्रिया में अपना क्रियाकलाप फिर शुरू कर देता है।

जैसे साधारण माल परिचलन किसी प्रकार भी उत्पाद के कोरे विनिमय के सर्वरूप नहीं है, वैसे ही वार्षिक माल उत्पाद का परिवर्तन अपने को किसी प्रकार भी अपने विविध घटकों के परस्पर माध्यमहीन विनिमय मात्र में वियोजित नहीं कर सकता। इसमें द्रव्य की एक विशिष्ट भूमिका होती है, जो विशेषतः स्थायी पूंजी मूल्य के पुनरुत्पादन के ढंग में प्रकट होती है। (यदि उत्पादन सामूहिक हो जाये और उसका माल उत्पादनवाला रूप न रह जाये, तो सारी बात कितनी बदली हुई दिखाई देगी, इसे हम आगे चलकर विश्लेषण के लिए छोड़ देते हैं।)

अब यदि हम अपनी मूल सारणी पर लौट आयें, तो वर्ग II के लिए यह हमारे सामने आयेगा: $२,०००_{स} + ५००_{प} + ५००_{बे}$। उस हालत में साल में उत्पादित सभी उपभोग वस्तुएं मूल्य में ३,००० के बराबर हैं; और मालों की कुल राशि में विभिन्न माल तत्वों में से प्रत्येक, जहां तक उसके मूल्य का संबंध है, $२/३_{स} + १/६_{प} + १/६_{बे}$ अथवा प्रतिशत में $६६२/३_{स} +$

$+$ १६ २/३$_{प}$ $+$ १६ २/३$_{बे}$ का बना है। वर्ग II के मालों के विभिन्न प्रकारों में स्थिर पूंजी के भिन्न-भिन्न अनुपात हो सकते हैं। इसी तरह स्थिर पूंजी का स्थायी अंश भी भिन्न-भिन्न हो सकता है। स्थायी पूंजी के अंशों के टिकाऊपन और इसलिए उनकी वार्षिक छीजन अथवा उस मूल्यांश में भी भिन्नता हो सकती है, जिसे वे pro rata उन मालों को अंतरित करते हैं, जिनके उत्पादन में वे भाग लेते हैं। किंतु यहां यह महत्वहीन है। जहां तक सामाजिक पुनरुत्पादन प्रक्रिया का संबंध है, यह केवल II और I वर्गों के बीच विनिमय का प्रश्न है। ये दोनों वर्ग यहां केवल अपने सामाजिक, व्यापक संबंधों में एक दूसरे के आमने-सामने होते हैं। अतः यदि II के अंतर्गत वर्गीकृत सभी उत्पादन शाखाएं शामिल हों, तो माल उत्पाद II के मूल्य के स भाग का समानुपातिक परिमाण (विचाराधीन समस्या के लिए एकमात्र महत्वपूर्ण) औसत अनुपात दे देता है।

अतः माल का प्रत्येक प्रकार (और वे अधिकतर एक ही प्रकार के होते हैं), जिसका समुच्चित मूल्य २,०००$_{स}$ $+$ ५००$_{प}$ $+$ ५००$_{बे}$ के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है, मूल्य में ६६ २/३%$_{स}$ $+$ १६ २/३%$_{प}$ $+$ १६ २/३%$_{बे}$ के बराबर होता है। यह बात प्रति १०० माल पर लागू होती है, चाहे वह स अथवा प या बे, किसी के भी अंतर्गत वर्गीकृत हो।

जिन मालों में २,०००$_{स}$ का समावेश है, उनका इस प्रकार और मूल्यगत विभाजन किया जा सकता है :

१) १,३३३ १/३$_{स}$ $+$ ३३३ १/३$_{प}$ $+$ ३३३ १/३$_{बे}$ $=$ २,०००$_{स}$;

इसी प्रकार ५००$_{प}$ को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है :

२) ३३३ १/३$_{स}$ $+$ ८३ १/३$_{प}$ $+$ ८३ १/३$_{बे}$ $=$ ५००$_{प}$;

और अंत में ५००$_{बे}$ का विभाजन इस प्रकार हो सकता है :

३) ३३३ १/३$_{स}$ $+$ ८३ १/३$_{प}$ $+$ ८३ १/३$_{बे}$ $=$ ५००$_{बे}$।

अब यदि हम १), २) और ३) के स जोड़ें, तो यह प्राप्त होता है : १ ३३३ १/३$_{स}$ $+$ ३३३ १/३$_{स}$ $+$ ३३३ १/३$_{स}$ $=$ २,०००। इसके अलावा : ३३३ १/३$_{प}$ $+$ $+$ ८३ १/३$_{प}$ $+$ ८३ १/३$_{प}$ $=$ ५०० और यही स्थिति बे के साथ है। जोड़ करने से कुल मूल्य ऊपर की तरह वही ३,००० प्राप्त होता है।

अतः माल संहति II में सन्निहित समस्त स्थिर पूंजी मूल्य, जो ३,००० का मूल्य प्रकट करता है, २,०००$_{स}$ में समाहित है, और इसका रत्ती भर अंश भी न तो ५००$_{प}$ में है और न ५००$_{बे}$ में। यही बात प और बे के बारे में भी सही है।

दूसरे शब्दों में, माल संहति II का जो समस्त भाग स्थिर पूंजी मूल्य को प्रकट करता है और इसलिए अपने दैहिक रूप में अथवा अपने द्रव्य रूप में पुनःपरिवर्तनीय है, वह २,०००$_{स}$ में विद्यमान है। इसलिए जो चीज भी माल II के स्थिर मूल्य के विनिमय से संबंधित है, वह २,००० II$_{स}$ की गति की सीमाओं के भीतर है। और यह विनिमय केवल I (१,०००$_{प}$ $+$ $+$ १,०००$_{बे}$) से ही किया जा सकता है।

इसी तरह वर्ग I के सिलसिले में उस वर्ग के स्थिर पूंजी मूल्य के विनिमय से जिस चीज़ का भी संबंध हो, वह ४,००० $I_{स}$ के विवेचन की सीमाओं के भीतर होगी।

१) मूल्य के छीजांश का द्रव्य रूप में प्रतिस्थापन

यदि शुरूआत के लिए हम निम्नलिखित लें:

$$I \quad ४,०००_{स} + \underbrace{१,०००_{प} + १,०००_{बे}}$$

$$II \quad २,०००_{स} + ५००_{प} + ५००_{बे},$$

तो २,००० $II_{स}$ मालों का उसी मूल्य के I ($१,०००_{प} + १,०००_{बे}$) मालों से विनिमय यह पूर्वकल्पना करेगा कि समग्र २,००० $II_{स}$ I द्वारा उत्पादित II की स्थिर पूंजी के नैसर्गिक तत्वों में वस्तुरूप में पुनःपरिवर्तित होते हैं। किंतु २,००० के माल मूल्य में, जिसमें अंतोक्त है, एक ऐसे तत्व का समावेश है, जो स्थायी पूंजी के मूल्य ह्रास की क्षतिपूर्ति कर देता है। इस स्थायी पूंजी का तुरंत वस्तुरूप में प्रतिस्थापन नहीं करना होता, वरन द्रव्य में परिवर्तित करना होता है, जो स्थायी पूंजी के अपने दैहिक रूप में नवीकरण का समय आने तक धीरे-धीरे एक राशि में संचित होता जाता है। प्रत्येक वर्ष स्थायी पूंजी का अवसान होता जाता है, जिसका इस या उस वैयक्तिक व्यवसाय में अथवा उद्योग की इस या उस शाखा में प्रतिस्थापन करना होता है। एक ही वैयक्तिक पूंजी के मामले में स्थायी पूंजी के इस या उस अंश का प्रतिस्थापन जरूरी होता है, क्योंकि उसके विभिन्न भागों का टिकाऊपन अलग-अलग होता है। साधारण पैमाने पर, यानी सभी तरह के संचय की उपेक्षा करते हुए भी वार्षिक पुनरुत्पादन की परीक्षा करने पर हम शुरूआत ab ovo [आदितः नहीं करते। जिस वर्ष का हम अध्ययन कर रहे होते हैं, वह बीते अनेक वर्षों में से एक है; वह पूंजीवादी उत्पादन के उद्भव के बाद का पहला साल नहीं है। अतः वर्ग II की विविध उत्पादन शाखाओं में निवेशित विभिन्न पूंजियों की उम्र में अंतर होता है। जिस तरह उत्पादन की इन शाखाओं में काम करनेवाले लोग हर साल मरते हैं, उसी तरह ढेरों स्थायी पूंजियां भी हर साल ख़त्म होती जाती हैं और संचित द्रव्य निधि से उनका वस्तुरूप में नवीकरण करना होता है। इसलिए २,००० $I_{(प+बे)}$ से २,००० $I_{स}$ के विनिमय में २,००० $II_{स}$ का अपने माल रूप (उपभोग वस्तुओं) से नैसर्गिक तत्वों में परिवर्तन शामिल है। इन नैसर्गिक तत्वों में केवल कच्ची और सहायक सामग्री ही नहीं होती, वरन स्थायी पूंजी के नैसर्गिक तत्व भी होते हैं, जैसे मशीनें, उपकरण, इमारतें, वग़ैरह। इसलिए जिस छीजन का प्रतिस्थापन २,००० $II_{स}$ मूल्य में **द्रव्य में** करना होता है, वह कैसे भी कार्यशील स्थायी पूंजी की राशि के अनुरूप नहीं होती, क्योंकि इसके एक अंश का प्रति वर्ष इसके वस्तुरूप में प्रतिस्थापन करना होता है। किंतु यह इसकी कल्पना करता है कि वर्ग II के पूंजीपतियों द्वारा इस प्रतिस्थापन के लिए आवश्यक द्रव्य पूर्ववर्ती वर्षों में संचित कर लिया गया था। फिर भी जो शर्त पिछले वर्षों पर लागू होती है, वही चालू वर्ष पर भी उतनी ही लागू होती है।

I ($१,०००_{प}+१,०००_{बे}$) और २,००० $II_{स}$ के विनिमय में पहले इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि $I_{(प+बे)}$ की मूल्य राशि में मूल्य का कोई स्थिर तत्व नहीं है, अतः उसमें छीजन की प्रतिस्थापना करनेवाला तत्व, अर्थात ऐसा मूल्य नहीं है, जो स्थिर पूंजी के स्थायी घटक से उन मालों को अंतरित हुआ है, जिनके दैहिक रूप में प+बे विद्यमान हैं। दूसरी ओर यह तत्व $II_{स}$ में है और ठीक इस मूल्य तत्व के एक अंश का अस्तित्व ही उस स्थायी पूंजी की बदौलत है, जिसे द्रव्य रूप से अपने दैहिक रूप में तुरंत परिवर्तित नहीं होना है, वरन पहले अपने द्रव्य रूप में बने रहना है। अतः I ($१,०००_{प}+१,०००_{बे}$) और २,००० $II_{स}$ का विनिमय तुरंत यह कठिनाई पेश करता है कि I के उत्पादन साधनों का, जिनमें $२,०००_{(प+बे)}$ दैहिक रूप में हैं, विनिमय II की उपभोग वस्तुओं से, पूरे २,००० मूल्य के समतुल्य से करना है, जब कि दूसरी ओर उपभोग वस्तुओं के २,००० $II_{स}$ का उनके पूरे मूल्य पर I ($१,०००_{प}+१,०००_{बे}$) के उत्पादन साधनों से विनिमय नहीं हो सकता, क्योंकि उनके मूल्य के एक समभाग का – जो छीजन के अथवा प्रतिस्थापित किये जाने-वाले स्थायी पूंजी के मूल्य ह्रास के बराबर है – पहले द्रव्य के रूप में अवक्षेपण होना होगा, जो वार्षिक उत्पादन की चालू अवधि में परिचलन के माध्यम का और आगे काम न करेगा और यहां हम केवल इसी की जांच कर रहे हैं। किंतु इस छीजन के तत्व की अदायगी करने का और २,००० $II_{स}$ के माल मूल्य में समाविष्ट द्रव्य केवल क्षेत्र I से आ सकता है, क्योंकि II अपनी अदायगी नहीं कर सकता, वरन यह अदायगी अपना माल बेचकर ही करवाता है, और चूंकि २,००० $II_{स}$ का सारा माल संभवतः $I_{(प+बे)}$ ख़रीदता है। अतः इस ख़रीदारी के ज़रिये वर्ग I को उस छीजन को II के लिए द्रव्य में भी बदलना होगा। किंतु पहले प्रतिपादित नियम के अनुसार परिचलन के लिए पेशगी दिया गया द्रव्य पूंजीपति उत्पादक के पास लौट आता है, जो बाद में उसी के बराबर मात्रा का माल परिचलन में डालता है। यह स्पष्ट है कि $II_{स}$ ख़रीदने में I २,००० का माल, और इसके अलावा हमेशा के लिए द्रव्य की बेशी राशि II को नहीं दे सकता (विनिमय की क्रिया द्वारा उसके किसी भी प्रतिफल के बिना)। वरना $I_{स}$ माल संहति $II_{स}$ को उसके मूल्य से ऊपर ख़रीदेगा। यदि II वास्तव में अपने $२,०००_{स}$ का विनिमय I ($१,०००_{प}+१,०००_{बे}$) से करता है, तो I पर आगे उसका कोई दावा नहीं रह जाता और इस विनिमय में परिचालित द्रव्य या तो I के पास या II के पास इसके अनुसार लौट आता है कि इन दोनों में से किसने उसे परिचलन में डाला था, अर्थात उनमें से कौन पहले ग्राहक बना था। इसके साथ ही II अपनी पण्य पूंजी का सारा मूल्य उत्पादन साधनों के दैहिक रूप में पुनःपरिवर्तित कर चुका होगा, जब कि हमारी कल्पना यह है कि बिक्री के बाद वह उसके एक समभाग को वार्षिक पुनरुत्पादन की चालू अवधि में द्रव्य से उसकी स्थिर पूंजी के स्थायी घटकों के दैहिक रूप में पुनःपरिवर्तित नहीं करेगा। II के पक्ष में द्रव्य संतुलन तभी होगा कि अगर वह I को २,००० की चीज़ें बेचे और I से २,००० से कम की, कहिये कि सिर्फ़ १,८०० की, ख़रीदे। उस हालत में I को नामे शेष २०० को द्रव्य में पूरा करना होगा, जो उसके पास वापस

नहीं आता, क्योंकि परिचलन में २०० के बराबर माल डालकर उसने जो द्रव्य पेशगी दिया था, उसे वह उससे नहीं निकाल पाया होगा। ऐसी हालत में II के लिए उसकी स्थायी पूंजी की छीजन के नामे डाली द्रव्य निधि पैदा हो जायेगी। किंतु तब दूसरी ओर, I की ओर उत्पादन साधनों का २०० की राशि का अत्युत्पादन हो जायेगा, और हमारी सारणी का आधार ही नष्ट हो जायेगा, यानी यह कि पुनरुत्पादन उसी पैमाने पर हो, जिसमें उत्पादन की विभिन्न प्रणालियों के बीच पूर्ण समानुपात की कल्पना की गयी है। इस तरह हम एक कठिनाई से छुटकारा पाकर उससे भी बदतर कठिनाई पैदा कर लेते।

चूंकि यह समस्या कुछ विशेष कठिनाइयां पेश करती है और अर्थशास्त्रियों ने अभी तक इसका बिल्कुल भी विवेचन नहीं किया है, इसलिए हम seriatim [सिलसिलेवार] सभी संभव (या कम से कम संभव लगनेवाले) समाधानों या कहना चाहिए समस्या के प्रतिपादनों की परीक्षा करेंगे।

सबसे पहले हमने अभी यह माना है कि II २,००० का माल I को बेचता है, किंतु उससे केवल १,८०० का ख़रीदता है। २,००० $II_{स}$ माल मूल्य में छीजन के प्रतिस्थापन के लिए २०० शामिल हैं, जिन्हें द्रव्य रूप में रखना होगा। इस तरह २,००० $II_{स}$ का मूल्य I के उत्पादन साधनों से विनिमीत करने के लिए १,८०० और छीजन के प्रतिस्थापन के लिए २०० में, जो द्रव्य रूप में (I के हाथ २,०००$_{स}$ बेचे जाने पर) रखे जायेंगे, विभाजित होगा। मूल्य के अर्थों में व्यक्त करने पर २,००० $II_{स}$ बराबर हैं १,८००$_{स}$+ +२००$_{स}$ (छ) के, जहां छ छीजन के लिए है।

तब हमें इसका अध्ययन करना होगा:

विनिमय I. १,०००$_{प}$+१,०००$_{बे}$

II. १,८००$_{स}$+२००$_{स}$ (छ)

मजदूरों को उनकी श्रम शक्ति के लिए मजदूरी के तौर पर जो १,००० पाउंड दिये गये हैं, I उनसे १,००० $II_{स}$ की उपभोग वस्तुएं ख़रीदता है। II उन्हीं १,००० पाउंड से १,००० $I_{प}$ के उत्पादन साधन ख़रीदता है। इस प्रकार I के पूंजीपति अपनी परिवर्ती पूंजी द्रव्य रूप में वापस पा जाते हैं और उसे उसी राशि की श्रम शक्ति ख़रीदने में अगले साल लगा सकते हैं, अर्थात वे अपनी उत्पादक पूंजी का परिवर्ती अंश वस्तुरूप में प्रतिस्थापित कर सकते हैं।

इसके अलावा II पेशगी ४०० पाउंड से $I_{बे}$ के उत्पादन साधन ख़रीदता है और $I_{बे}$ उन्हीं ४०० पाउंड से $II_{स}$ की उपभोग वस्तुएं ख़रीदता है। इस तरह II के पूंजीपतियों द्वारा परिचलन के लिए पेशगी दिये ४०० पाउंड उनके पास लौट आते हैं, किंतु केवल बेचे हुए माल के समतुल्य के रूप में। अब I पेशगी ४०० पाउंड से उपभोग वस्तुएं ख़रीदता है; I से II ४०० पाउंड के उत्पादन साधन ख़रीदता है, जिससे ये ४०० पाउंड I के पास लौट आते हैं। इसलिए यहां तक का विवरण इस प्रकार है:

I मालों के रूप में १,०००$_{प}$+८००$_{बे}$ परिचलन में डालता है; इसके अलावा वह द्रव्य रूप में मजदूरी के लिए १,००० पाउंड और II से विनिमय के लिए ४०० पाउंड परिचलन

में डालता है। विनिमय पूरा हो जाने पर I के पास १,०००$_{\text{प}}$ द्रव्य रूप में होते हैं, ८००$_{\text{बे}}$ का ८०० II$_{\text{स}}$ (उपभोग वस्तुओं) से विनिमय हो जाता है और ४०० पाउंड द्रव्य रूप में होते हैं।

II मालों (उपभोग वस्तुओं) के रूप में १,८००$_{\text{स}}$ तथा द्रव्य रूप में ४०० पाउंड परिचलन में डालता है। विनिमय पूरा होने पर उसके पास I मालों (उत्पादन साधनों) के रूप में १,८०० और द्रव्य रूप में ४०० पाउंड होते हैं।

अब भी I की तरफ़ २००$_{\text{बे}}$ (उत्पादन साधनों में) और II की तरफ़ २००$_{\text{स}}$ (छ) (उपभोग वस्तुओं में) शेष रहते हैं।

हमारी कल्पना के अनुसार I २०० पाउंड से २०० की उपभोग वस्तुएं स (छ) ख़रीदता है। किंतु II ये २०० पाउंड अपने पास रखे रहता है, क्योंकि २००$_{\text{स}}$ (छ) छीजन के हैं और उन्हें तुरंत उत्पादन साधनों में परिवर्तन नहीं करना होता। अतः २०० I$_{\text{बे}}$ की बिक्री नहीं हो सकती। बेशी मूल्य I के प्रतिस्थापित किये जानेवाले पांचवें हिस्से का सिद्धिकरण नहीं किया जा सकता, अथवा उसे उत्पादन साधनों के अपने दैहिक रूप से उपभोग वस्तुओं के रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता।

इससे साधारण पुनरुत्पादन की हमारी कल्पना का ही खंडन नहीं होता; वह अपने में कोई ऐसी प्राक्कल्पना है भी नहीं कि जो द्रव्य में २००$_{\text{स}}$ (छ) के रूपांतरण की व्याख्या कर सके। बल्कि इसका मतलब यह निकलता है कि उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। चूंकि यह नहीं दिखाया जा सकता कि २००$_{\text{स}}$ (छ) को किस तरह द्रव्य रूप में परिवर्तित किया जा सकता है, इसलिए यह मान लिया जाता है कि I सौजन्यतावश ही, इसी लिए परिवर्तन कर देगा कि वह अपने ही २००$_{\text{बे}}$ के शेष भाग को द्रव्य में नहीं बदल पाता। इसे विनिमय क्रियाविधि का सामान्य कार्य मानना वैसा ही है, जैसा यह सोचना कि २००$_{\text{स}}$ (छ) को नियमित रूप से द्रव्य में परिवर्तित करने के लिए हर साल २०० पाउंड आसमान से बरस पड़ेंगे।

लेकिन अगर I$_{\text{बे}}$ अपने आदिम अस्तित्व रूप में, अर्थात उत्पादन साधनों के मूल्य के संघटक अंश के रूप में, अतः मालों के मूल्य के संघटक अंश के रूप में, जिन्हें उनके पूंजीपति उत्पादकों को विक्रय द्वारा द्रव्य में बदलना होता है, प्रकट होने के बजाय, जैसा कि इस मामले में होता है, पूंजीपतियों के साझियों के हाथ में, जैसे ज़मींदारों के हाथ में किराया ज़मीन की शक्ल में या साहूकारों के हाथ में ब्याज की शक्ल में प्रकट हो, तो ऐसी प्राक्कल्पना का बेतुकापन एकदम सामने नहीं आता। किंतु यदि मालों के बेशी मूल्य का वह अंश, जो औद्योगिक पूंजीपति को किराया ज़मीन या ब्याज के रूप में बेशी मूल्य के सहस्वामियों को देना होता है, मालों की बिक्री द्वारा बहुत समय तक सिद्धिकृत नहीं होता है, तो किराये और ब्याज की अदायगी भी ठप हो जायेगी और इसलिए ज़मींदार या ब्याज पानेवाले किराया और ब्याज ख़र्च करके वार्षिक पुनरुत्पादन के निश्चित अंशों को इच्छानुसार द्रव्य में परिवर्तित करने के dei ex machina [ईश्वरदत्त साधन] नहीं बन सकते। यही बात उन सब तथाकथित अनुत्पादक श्रमिकों – सरकारी अफ़सरों, डाक्टरों, वकीलों, आदि, और अन्य सभी लोगों के व्ययों पर भी

लागू होती है, जो "सामान्य जनता" के सदस्यों के नाते अर्थशास्त्रियों के यों "काम आते हैं" कि उन्होंने जो कुछ व्याख्या किये बिना छोड़ दिया था, उसकी व्याख्या कर डालते हैं।

बात तब भी नहीं बनती कि अगर I और II के बीच – पूंजीपति उत्पादकों के दोनों बड़े क्षेत्रों के बीच – सीधे विनिमय के बदले सौदागर को माध्यम के रूप में घसीट लिया जाता है और वह अपने "द्रव्य" द्वारा सारी कठिनाइयों से पार पाने में मदद करता है। उदाहरण के लिए, प्रस्तुत प्रसंग में २०० $I_{बे}$ को निश्चित रूप से II के औद्योगिक पूंजीपतियों के हिस्से में डालना होगा। यह राशि कई सौदागरों के हाथ से गुज़र सकती है, किंतु प्राक्कल्पना के अनुसार उनमें से आख़िरी व्यापारी II के संदर्भ में अपने को उसी झंझट में फंसा हुआ पायेगा, जिसमें I के पूंजीपति उत्पादक शुरू-शुरू में थे, यानी यह कि वे II के हाथ २०० $I_{बे}$ नहीं बेच सकते। और यह रुद्ध क्रय राशि I के साथ उसी प्रक्रिया का नवीकरण नहीं कर सकती।

हम यहां देखते हैं कि हमारे वास्तविक उद्देश्य के अलावा पुनरुत्पादन प्रक्रिया का उसके बुनियादी रूप में – जिसमें अस्पष्टता पैदा करनेवाली छोटी-मोटी परिस्थितियों को दूर कर दिया गया है – अवलोकन करना नितांत आवश्यक है, ताकि उस फ़रेब से बचा जा सके, जो सामाजिक पुनरुत्पादन प्रक्रिया को उसके पेचीदा मूर्त रूप में तत्काल विश्लेषण का विषय बनाया जाने पर "वैज्ञानिक" विश्लेषण का आभास देता है।

यह नियम कि जब पुनरुत्पादन सामान्य गति से होता रहता है (वह चाहे साधारण पैमाने पर हो, चाहे विस्तारित पैमाने पर), तब पूंजीपति उत्पादक द्वारा परिचलन में पेशगी दिये गये द्रव्य को अपने प्रस्थान बिंदु पर लौटकर आना ही होता है (द्रव्य चाहे उसका अपना हो, चाहे उधार का), इस प्राक्कल्पना की सदा-सर्वदा के लिए जड़ काट देता है कि २०० $II_{स}$ (छ) I द्वारा पेशगी द्रव्य के माध्यम से द्रव्य में परिवर्तित होते हैं।

२) स्थायी पूंजी का वस्तुरूप में प्रतिस्थापन

ऊपर विवेचित प्राक्कल्पना से निपट लेने के बाद केवल ऐसी संभावनाएं ही रह जाती हैं, जिनमें द्रव्य रूप में छीजांश के प्रतिस्थापन के अलावा पूर्णतः निश्चेष्ट स्थायी पूंजी का वस्तुरूप में प्रतिस्थापन भी शामिल है।

अभी तक हमने यह माना था कि

क) I द्वारा मज़दूरी के रूप में दिये १,००० पाउंड को मज़दूर उसी राशि के अनुरूप $II_{स}$ पर ख़र्च करते हैं, यानी वे इस रक़म से उपभोग वस्तुएं ख़रीदते हैं।

यह एक वास्तविक बात ही है कि I द्वारा ये १,००० पाउंड द्रव्य रूप में पेशगी दिये जाते हैं। संबद्ध पूंजीपति उत्पादकों को द्रव्य रूप में मज़दूरी देनी ही होती है। फिर मज़दूर यह द्रव्य उपभोग वस्तुओं पर ख़र्च करते हैं और वह उपभोग वस्तु विक्रेताओं के लिए अपनी स्थिर पूंजी को माल पूंजी से उत्पादक पूंजी में बदलने में परिचलन के माध्यम का कार्य करता है। यह सच है कि वह बहुत से माध्यमों से गुज़रता है (दूकानकार, मकान मालिक, कर समाहर्त्ता, अनुत्पादक श्रमिक, जैसे कि डाक्टर, वग़ैरह, जिनकी ज़रूरत स्वयं मज़दूर को होती है) और इसलिए वह I मज़दूरों के हाथ से II के पूंजीपतियों के हाथ में केवल अंशतः ही

धेसी पहुंचता है। उसका प्रवाह् न्यूनाधिक निलंबित हो सकता है और इसलिए पूंजीपति को नये मुद्रा रिजर्व की जरूरत पड़ सकती है। यह सब इस बुनियादी स्वरूप में विचार का विषय नहीं है।

ख) हमने माना था कि कभी II से ख़रीदारी करने के लिए I द्रव्य रूप में ४०० पाउंड और पेशगी देता है और यह द्रव्य उसके पास लौट आता है, जब कि II कभी I से ख़रीदारी के लिए ४०० पाउंड पेशगी देता है और यह द्रव्य वैसे ही वापस आ जाता है। यह कल्पना करनी ही होती है, क्योंकि इसके विपरीत यह मान लेना बेक़ायदा होगा कि I अथवा II के पूंजीपति अपने मालों के विनिमय के लिए आवश्यक द्रव्य एकपक्षीय ढंग से परिचलन में पेशगी दे देंगे। चूंकि हम उपशीर्षक १) के अंतर्गत दिखा चुके हैं कि इस प्राक्कल्पना को बेतुकी मानकर ठुकरा देना चाहिए कि २०० $I_{स}$ (छ) को द्रव्य में परिवर्तित करने के लिए I परिचलन में अतिरिक्त द्रव्य डालेगा, इसलिए ऐसा प्रतीत होगा कि जो एकमात्र प्राक्कल्पना शेष है, वह और भी ज्यादा बेतुकी है कि II स्वयं परिचलन में वह द्रव्य डाल रहा था, जिससे उसके मालों के मूल्य का वह संघटक अंश द्रव्य में बदल जाता है, जिसे उसकी स्थायी पूंजी की छीजन की क्षतिपूर्ति करनी होती है। उदाहरण के लिए, उत्पादन प्रक्रिया में श्री क की कताई मशीन द्वारा जो मूल्यांश गंवाया जाता है, वह सूत के मूल्यांश के रूप में पुनः प्रकट हो जाता है। एक ओर उनकी कताई मशीन के मूल्य में जो क्षति होती है, यानी छीजन में, वह दूसरी ओर उनके हाथ में द्रव्य के रूप में संचित हो जायेगा। अब मान लीजिये कि क २०० पाउंड की कपास ख से ख़रीदते हैं और इस तरह द्रव्य रूप में २०० पाउंड परिचलन में पेशगी देते हैं। फिर ख उनसे २०० पाउंड का सूत ख़रीदते हैं और ये २०० पाउंड अब क के पास अपनी मशीन की छीजन की क्षतिपूर्ति करने की निधि का काम देते हैं। सारी बात का निचोड़ बस यह होगा कि अपने उत्पादन, उसके उत्पाद और इस उत्पाद की बिक्री के अलावा क in petto २०० पाउंड रखते हैं, जिससे कि अपनी कताई मशीन के मूल्य ह्रास की क्षतिपूर्ति अपने तईं कर सकें, अर्थात अपनी मशीन के मूल्य ह्रास के कारण २०० पाउंड खोने के अलावा उन्हें हर साल २०० पाउंड द्रव्य रूप में अपनी ही गांठ से उठा रखने भी होंगे, जिससे कि आख़िरकार वह नई कताई मशीन ख़रीद सकें।

किंतु यह बेतुकापन आभास मात्र है। II में वे पूंजीपति हैं, जिनकी स्थायी पूंजी अपने पुनरुत्पादन की अत्यधिक भिन्न-भिन्न मंजिलों में है। इनमें से कुछ पूंजीपतियों के पास वह उस मंजिल में पहुंच गयी है, जहां उसका वस्तुरूप में पूर्ण प्रतिस्थापन आवश्यक हो गया है। अन्य पूंजीपतियों के यहां वह इस मंजिल से न्यूनाधिक दूर है। अंतोक्त समूह के सभी सदस्यों में यह बात सामान्य है कि उनकी स्थायी पूंजी वस्तुतः पुनरुत्पादित नहीं होती, अर्थात उसी प्रकार के नये नमूनों के जरिये in natura नवीकृत नहीं होती, वरन उसका मूल्य द्रव्य रूप में उत्तरोत्तर संचित होता रहता है। पहला समूह बिल्कुल उसी स्थिति में है (या लगभग उसी स्थिति में है, यह यहां महत्वहीन है), जिसमें व्यवसाय शुरू करने के समय वह था, जब वह अपनी द्रव्य पूंजी लेकर बाजार में इसलिए आया था कि उसे एक ओर स्थिर (स्थायी तथा प्रचल) पूंजी में, और दूसरी ओर श्रम शक्ति में, परिवर्ती पूंजी में परिवर्तित करे। इन पूंजीपतियों को इस मुद्रा पूंजी को, अर्थात स्थिर स्थायी पूंजी के मूल्य और प्रचल तथा परिवर्ती पूंजी के मूल्य दोनों ही को फिर परिचलन में पेशगी देना होता है।

ग्रतः, यदि हम यह मान लें कि I से विनिमय के लिए पूंजीपति वर्ग II परिचलन में जो ४०० पाउंड डालता है, उसका ग्राधा II के उन पूंजीपतियों से ग्राता है, जिन्हें ग्रपने मालों द्वारा प्रचल पूंजी से संबद्ध ग्रपने उत्पादन साधनों का ही नवीकरण नहीं, वरन ग्रपने द्रव्य द्वारा ग्रपने स्थायी पूंजी का भी वस्तुरूप में नवीकरण करना होता है, जब कि II के पूंजीपतियों का दूसरा ग्रर्धांश ग्रपने द्रव्य से ग्रपनी स्थिर पूंजी के केवल प्रचल भाग का वस्तु-रूप में प्रतिस्थापन करता है, किंतु ग्रपनी स्थायी पूंजी का वस्तुरूप में नवीकरण नहीं करता, तो इस कथन में कोई ग्रंतर्विरोध नहीं है कि ये लौटनेवाले ४०० पाउंड (I द्वारा उनसे उपभोग वस्तुग्रों के क्रय के साथ लौटनेवाले) II के इन दोनों भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार से विभाजित होते हैं। वे वर्ग II के पास वापस ग्राते हैं, किंतु उन्हीं हाथों में नहीं ग्राते, बल्कि इस वर्ग के भीतर उसके एक भाग से दूसरे में होते हुए विविध प्रकार से वितरित होते हैं।

II के एक भाग ने ग्रंततोगत्वा ग्रपने मालों से उत्पादन साधनों के एक भाग की क्षतिपूर्ति कर लेने के ग्रलावा द्रव्य में २०० पाउंड को स्थायी पूंजी के वस्तुरूप में नये तत्वों में परि-वर्तित कर लिया है। जैसे व्यवसाय शुरू करने के समय था, वैसे ही इस प्रकार ख़र्च किया हुग्रा द्रव्य इस स्थायी पूंजी द्वारा उत्पादित होनेवाले मालों के मूल्य के छीजांश के रूप में कई वर्षों के दौरान थोड़ा-थोड़ा करके ही परिचलन से इस भाग के पास वापस ग्राता है।

किंतु II के दूसरे भाग को २०० पाउंड के बदले I से कोई माल नहीं मिला था। लेकिन I उसकी उस द्रव्य से ग्रदायगी करता है, जिसे II के पहले भाग ने ग्रपनी स्थायी पूंजी के तत्वों पर ख़र्च किया था। II के पहले भाग का स्थायी पूंजी मूल्य फिर नवीकृत दैहिक रूप में ग्रा जाता है, जब कि दूसरा भाग ग्रपनी स्थायी पूंजी के वस्तुरूप में भावी प्रतिस्थापन के हेतु ग्रब भी द्रव्य रूप में उसका संचय करने में लगा होता है।

पूर्ववर्ती विनिमयों के बाद हमें जिस ग्राधार पर ग्रागे बढ़ना है, वह दोनों पक्षों की ग्रोर से ग्रभी विनिमीत होनेवाले मालों का शेषांश है: I की ग्रोर से $४००_{बे}$ का, ग्रौर II की ग्रोर से $४००_{स}$ का।[62] हम मान लेते हैं कि II ८०० के इन मालों के विनिमय के लिए द्रव्य रूप में ४०० पेशगी देता है। हर हालत में $II_{स}$ के उस भाग को ४०० के ग्राधे (२०० के बराबर) का व्यय करना ही होगा, जिसने छीजन मूल्य के रूप में २०० संचित किये हैं ग्रौर जिसे यह द्रव्य ग्रपनी स्थायी पूंजी के दैहिक रूप में पुनःपरिवर्तित करना है।

जैसे स्थिर पूंजी मूल्य, परिवर्ती पूंजी मूल्य ग्रौर बेशी मूल्य को – जिनमें माल पूंजी II का तथा I का भी मूल्य विभाज्य है – क्रमशः II तथा I के मालों के विशेष समानुपातिक ग्रंशों द्वारा द्योतित किया जा सकता है, वैसे ही स्वयं स्थिर पूंजी मूल्य के ग्रंतर्गत यह मूल्यांश भी द्योतित किया जा सकता है, जिसे ग्रभी स्थायी पूंजी के दैहिक रूप में परिवर्तित नहीं करना है, वरन फ़िलहाल द्रव्य रूप में संचय करना है। माल II की एक माला (ग्रतः प्रस्तुत प्रसंग में शेषांश का ग्राधा, यानी २००) यहां इस छीजन मूल्य का वाहक मात्र है, जिसका विनिमय द्वारा द्रव्य रूप में ग्रवक्षेपण किया जाना है। (II के पूंजीपतियों का जो पहला भाग स्थायी पूंजी का वस्तुरूप में नवीकरण करता है, हो सकता है कि वह इस प्रकार ग्रपने छीजन

---

[62] ये संख्याएं भी पहले मानी संख्याग्रों से मेल नहीं खातीं। किंतु यह बात महत्वहीन है, क्योंकि प्रश्न केवल ग्रनुपातों का है। – फ़े० एं०

मूल्य के एक अंश का सिद्धिकरण कर भी चुका हुआ हो – उस माल संहति के छीजांश से, जिसका अभी यहां शेषांश ही सामने आता है – फिर भी उसे द्रव्य रूप में २०० का सिद्धिकरण करना बाक़ी रहता है।)

जहां तक इस अंतिम क्रिया में II द्वारा परिचलन में डाले ४०० पाउंड के दूसरे अर्धांश (२०० के बराबर) का संबंध है, वह स्थिर पूंजी के प्रचल घटक I से ख़रीदता है। इन २०० पाउंड का एक हिस्सा परिचलन में II के दोनों भागों द्वारा अथवा इनमें से उसी द्वारा डाला जा सकता है, जो अपने मूल्य के स्थायी घटक का वस्तुरूप में नवीकरण नहीं करता।

इस प्रकार इन ४०० पाउंड की सहायता से I से निम्नलिखित की निकासी होती है: १) २०० पाउंड के बराबर माल, जिसमें केवल स्थायी पूंजी के तत्व समाहित हैं; २) २०० पाउंड के बराबर माल, जो स्थिर पूंजी के प्रचल भाग के नैसर्गिक तत्वों को ही प्रतिस्थापित करता है। इस तरह I ने अपना सारा वार्षिक उत्पाद बेच डाला है, जहां तक वह II को बेचा जाना था; किंतु उसके पंचमांश का मूल्य, ४०० पाउंड, अब द्रव्य रूप में I के पास है। यह द्रव्य तथापि द्रव्य में परिवर्तित बेशी मूल्य है, जिसे उपभोग वस्तुओं पर आय के रूप में ख़र्च करना होता है। इस प्रकार I अपने ४०० पाउंड से II का समस्त माल मूल्य, जो ४०० के बराबर है, ख़रीद लेता है, अतः यह द्रव्य II के माल को गतिशील करता हुआ उसके पास लौट आता है।

अब हम तीन प्रसंगों की कल्पना करेंगे, जिनमें हम II पूंजीपतियों के उस भाग को "भाग १" कहेंगे, जो अपनी स्थायी पूंजी का वस्तुरूप में प्रतिस्थापन करता है; और उस भाग को "भाग २" कहेंगे, जो स्थायी पूंजी के मूल्य ह्रास का द्रव्य रूप में संचय करता है। तीनों प्रसंग निम्नलिखित हैं: क) II के पास माल की सूरत में अब भी शेषांश के रूप में विद्यमान ४०० के एक हिस्से को १ और २ भागों के लिए स्थिर पूंजी के प्रचल हिस्सों के किन्हीं अंशों का (कह लीजिये, प्रत्येक के लिए आधे का) प्रतिस्थापन करना होगा; ख) भाग १ ने अपना सारा माल पहले ही बेच डाला है, जब कि भाग २ को अभी ४०० बेचना बाक़ी है; ग) भाग २ ने २०० को, जो ह्रास मूल्य के वाहक हैं, छोड़कर और सब बेच दिया है।

तब हमारे सामने निम्नलिखित वितरण हैं:

क) II के हाथ में अब भी विद्यमान ४००$_{\text{स}}$ माल मूल्य में से भाग १ के पास १०० और भाग २ के पास ३०० हैं; ३०० में से २०० मूल्य ह्रास के हैं। उस हालत में, भाग १ ने मूलतः ३०० का व्यय द्रव्य में ४०० पाउंड से किया था, जिन्हें अब I ने II से मालों की प्राप्ति के लिए वापस किया है, यानी द्रव्य रूप में २००, जिनके लिए उसने I से वस्तुरूप में स्थायी पूंजी के तत्व हासिल किये और I से अपने माल विनिमय के प्रवर्तन के लिए द्रव्य रूप में १०० प्राप्त किये। दूसरी ओर भाग २ ने उसी प्रकार I से अपने माल विनिमय के प्रवर्तन के लिए ४०० का केवल १/४, यानी १०० पेशगी दिये।

इसलिए भाग १ ने द्रव्य रूप में ४०० में से ३०० तथा भाग २ ने १०० पेशगी दिये।

किंतु इन ४०० की वापसी इस प्रकार होती है:

भाग १ को १००, यानी उसके पेशगी द्रव्य का केवल एक तिहाई भाग। किंतु शेष दो तिहाई भाग के बदले उसके पास २०० मूल्य की नवीकृत स्थायी पूंजी है। भाग १ ने २०० मूल्य के स्थायी पूंजी के इस तत्व के लिए I को द्रव्य दिया है, किंतु बाद में और कोई माल नहीं दिया। जहां तक द्रव्य रूप में २०० का संबंध है, भाग १ क्षेत्र I के सामने ग्राहक रूप में ही आता

है, लेकिन आगे चलकर विक्रेता के रूप में नहीं। इसलिए यह द्रव्य भाग १ के पास लौटकर नहीं आ सकता; वरना उसे I से स्थायी पूंजी के तत्व भेंटस्वरूप प्राप्त हुए होते।

जहां तक भाग १ द्वारा पेशगी दिये द्रव्य के अंतिम तीसरे भाग का संबंध है, उसने पहले अपनी स्थिर पूंजी के प्रचल घटकों के ग्राहक का काम किया। I उसी द्रव्य से अपने माल का १०० का शेषांश उससे ख़रीदता है। इस तरह यह द्रव्य उसके पास (क्षेत्र II के भाग १ के पास) लौट आता है, क्योंकि ग्राहक का काम करने के बाद वह सीधे माल विक्रेता का काम करता है। अगर यह द्रव्य वापस नहीं आता, तो II (भाग १) ने १०० राशि के मालों के लिए I को १०० पहले द्रव्य रूप में और फिर १०० मालों के रूप में फोकट में दे दिये होते, यानी II ने अपना माल I को भेंटस्वरूप दे दिया होता।

दूसरी ओर भाग २, जिसने द्रव्य रूप में १०० लगाये थे, द्रव्य रूप में ३०० वापस पा जाता है: १०० इसलिए कि पहले उसने ग्राहक के नाते द्रव्य रूप में १०० परिचलन में डाले थे और वह विक्रेता के नाते उन्हें वापस पाता है; २०० इसलिए कि वह इस राशि के मालों के विक्रेता का ही कार्य करता है, ग्राहक का नहीं। अतः द्रव्य I को लौटकर नहीं जा सकता। इस प्रकार स्थायी पूंजी के ह्रास का स्थायी पूंजी के तत्व ख़रीदने के लिए II (भाग १) द्वारा परिचलन में डाले द्रव्य द्वारा संतुलन हो जाता है। किंतु वह भाग २ के हाथ में भाग १ के द्रव्य के रूप में नहीं, वरन वर्ग I के द्रव्य के रूप में पहुंचता है।

ख) इस कल्पना के आधार पर $II_{स}$ का शेषांश इस तरह वितरित होता है कि भाग १ के पास २०० द्रव्य के रूप में होते हैं और भाग २ के पास ४०० माल के रूप में।

भाग १ ने अपना सारा माल बेच डाला है, किंतु द्रव्य के रूप में २०० उसकी स्थिर पूंजी के स्थायी घटक का परिवर्तित रूप है, जिसका उसे वस्तुरूप में नवीकरण करना होता है। इसलिए यहां वह केवल ग्राहक का कार्य करता है और अपने द्रव्य के बदले उसकी स्थायी पूंजी के नैसर्गिक तत्वों के रूप में उसी मूल्य का माल I पाता है। भाग २ को परिचलन में अधिकतम केवल २०० पाउंड डालना होता है (यदि I और II के बीच माल विनिमय के लिए I कोई द्रव्य पेशगी न दे, तो), क्योंकि अपने माल मूल्य के अर्धांश के लिए वह I को बेचनेवाला ही है, I से ख़रीदनेवाला नहीं।

४०० पाउंड के परिचलन से भाग २ को यह वापसी होती है: २०० इसलिए कि इन्हें उसने ग्राहक के नाते पेशगी दिया था और अब २०० के माल के रूप में विक्रेता के नाते उन्हें वापस पाता है; २०० इसलिए कि वह २०० मूल्य का माल I के हाथ माल के रूप में—I से उनका समतुल्य पाये बिना—बेचता है।

ग) भाग १ के पास २०० द्रव्य रूप में और $२००_{स}$ माल रूप में हैं। भाग २ के पास $२००_{स}$ (छ) माल रूप में हैं।

इस कल्पना के आधार पर भाग २ के लिए द्रव्य रूप कुछ भी पेशगी देना ज़रूरी नहीं है, क्योंकि I के संदर्भ में वह अब ग्राहक बनता ही नहीं है, केवल विक्रेता का काम करता है और इसलिए जब तक कोई उससे ख़रीदारी न करे, उसे इंतज़ार करना होता है।

भाग १ द्रव्य रूप में ४०० पाउंड पेशगी देता है: २०० I से परस्पर माल विनिमय के लिए; २०० I से केवल ख़रीदारी के लिए। द्रव्य रूप में इन आख़िरी २०० पाउंड से वह स्थायी पूंजी के तत्व ख़रीदता है।

I द्रव्य रूप में २०० पाउंड से भाग १ से २०० का माल ख़रीदता है और इस तरह इस माल विनिमय के लिए भाग १ ने द्रव्य रूप में जो २०० पाउंड पेशगी दिये थे, वे उसे वापस मिल जाते हैं। I को इसी तरह भाग १ से जो अन्य २०० पाउंड मिले थे, उनसे वह २०० मूल्य का माल भाग २ से ख़रीदता है, जिससे कि भाग २ की स्थायी पूंजी की छीजन का द्रव्य रूप में अवक्षेपण हो जाता है।

यदि यह मान लिया जाये कि ग) प्रसंग में II (भाग १) के बदले वर्ग I विद्यमान मालों के विनिमय के प्रवर्तन के लिए द्रव्य रूप में २०० पेशगी देता है, तो भी स्थिति में कोई अंतर नहीं आयेगा। उस हालत में यदि I पहले II, भाग २ से इस कल्पना के आधार पर मालों के रूप में २०० ख़रीदता है कि इस भाग के पास केवल यही माल शेषांश बेचने को रह गया है, तो २०० पाउंड I के पास लौटकर नहीं आते, क्योंकि II, भाग २ फिर ग्राहक के रूप में नहीं आता। किंतु उस हालत में II, भाग १ के पास ख़रीदारी के लिए द्रव्य रूप में २०० पाउंड और २०० माल रूप में विनिमय के लिए होते हैं, इस तरह I से व्यापार हेतु कुल योग ४०० हो जाता है। इसलिए II, भाग १ से २०० पाउंड द्रव्य रूप में I के पास लौट आते हैं। यदि I उन्हें II, भाग १ से माल रूप में २०० की ख़रीद में फिर लगा देता है, तो जैसे ही II, भाग १ माल रूप में ४०० का दूसरा अर्धांश I के हाथों से ले लेता है, वे I के पास लौट आते हैं। भाग १ (II) ने स्थायी पूंजी के तत्वों के ग्राहक मात्र के नाते द्रव्य रूप में २०० पाउंड ख़र्च किये हैं। अतः वे उसके पास वापस नहीं आते, वरन इस काम आते हैं कि $२००_{स}$ को II, भाग २ के माल शेषांश को द्रव्य में परिवर्तित करें, जब कि I द्वारा माल विनिमय के लिए द्रव्य रूप में लगाये २०० पाउंड I के पास II, भाग १ के माध्यम से वापस आते हैं, II, भाग २ के माध्यम से नहीं। उसके ४०० के माल के बदले उसके पास ४०० राशि का पण्य समतुल्य लौट आया है; उसने पण्य रूप में ८०० के विनिमय के लिए द्रव्य रूप में जो २०० पाउंड पेशगी दिये थे, वे भी उसी तरह उसके पास लौट आये हैं। इसलिए सभी कुछ ठीक-ठाक है।

विनिमय में पेश आयी कठिनाई:

$$\begin{array}{l} \text{I.}\ \underbrace{१,०००_{प} + १,०००_{बे}} \\ \text{II.}\qquad २,०००_{स} \end{array}$$

को शेषांशों के विनिमय की कठिनाई में परिणत कर दिया गया था:

I. . . . . $४००_{बे}$।

II. (१) द्रव्य रूप में २०० + माल रूप में $२००_{स}$ + (२) $२००_{स}$ माल रूप में।

अथवा बात और भी स्पष्ट करें:

I. $२००_{बे} + २००_{बे}$।

II. (१) द्रव्य रूप में २०० + माल रूप में $२००_{स}$ + (२) $२००_{स}$ माल रूप में।

चूंकि II, भाग १ में माल रूप में $२००_{स}$ का २०० $I_{बे}$ (माल रूप में) से विनिमय

होता है और I तथा II के बीच माल रूप ४०० के इस विनिमय में परिचालित सारा द्रव्य I या II – उसके पास लौट आता है, जिसने उसे पेशगी दिया था, अतः यह द्रव्य I तथा II के बीच विनिमय का एक तत्व होने के कारण दरअसल उस समस्या का तत्व नहीं है, जिसमें हम यहां उलझे हुए हैं। अथवा बात दूसरे ढंग से कहें, तो : मान लीजिये, २०० $I_{बे}$ (माल रूप में) और २०० $II_{स}$ (II, भाग १ के माल रूप में) के बीच विनिमय में द्रव्य अदायगी के साधन का कार्य करता है, क्रय साधन का नहीं और इसलिए शब्दों के सही-सही अर्थ में "परिचलन माध्यम" का भी काम नहीं करता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि चूंकि २०० $I_{बे}$ और २०० $II_{स}$ (भाग १) माल मूल्य परिमाण में समान हैं, इसलिए २०० के उत्पादन साधनों का विनिमय २०० मूल्य की उपभोग वस्तुओं से होता है और द्रव्य यहां केवल अधिकल्पित रूप में कार्य करता है और किसी भी पक्ष को किसी भी भुगतान शेष की अदायगी के लिए परिचलन में कुछ भी द्रव्य डालना नहीं होता। इसलिए समस्या अपने विशुद्ध रूप में तभी प्रस्तुत होती है, जब हम I तथा II दोनों पक्षों की ओर २०० $I_{बे}$ माल और उसका समतुल्य, २०० $II_{स}$ (भाग १) माल को निकाल दें।

समान मूल्य की इन दोनों माल राशियों (I तथा II) के, जो एक दूसरे को संतुलित करती हैं, विलोपन के बाद विनिमय के लिए एक शेषांश रह जाता है, जिसमें समस्या अपना विशुद्ध रूप प्रदर्शित करती है, अर्थात

I. माल रूप में $२००_{बे}$।

II. (१) द्रव्य रूप में $२००_{स}$ + (२) $२००_{स}$ माल रूप में।

यहां स्पष्ट है कि II, भाग १ द्रव्य रूप २०० से अपनी स्थायी पूंजी के संघटक अंश २०० $I_{बे}$ ख़रीदता है। इससे II, भाग १ की स्थायी पूंजी का वस्तुरूप में नवीकरण होता है और I का २०० का बेशी मूल्य पण्य रूप (उत्पादन साधनों अथवा और भी सटीक रूप में स्थायी पूंजी के तत्वों) से द्रव्य रूप में परिवर्तित होता है। I इस द्रव्य से II, भाग २ से उपभोग वस्तुएं ख़रीदता है और II के लिए परिणाम यह हुआ है कि भाग १ के लिए उसकी स्थिर पूंजी के एक स्थायी संघटक अंश का वस्तुरूप में नवीकरण हो गया है और भाग २ के लिए अन्य संघटक अंश (जो उसकी स्थायी पूंजी के ह्रास की क्षतिपूर्ति करता है) का द्रव्य रूप में अवक्षेपण हो गया है। और यह प्रति वर्ष तब तक होता रहता है कि जब इस अंतिम संघटक अंश का भी वस्तुरूप में नवीकरण करना पड़ जाता है।

यहां प्राथमिक शर्त स्पष्टतः यह है कि स्थिर पूंजी II का यह स्थायी संघटक अंश, जो अपने मूल्य की पूरी सीमा तक द्रव्य में पुनःपरिवर्तित होता है और इसीलिए जिसका प्रति वर्ष (भाग १) वस्तुरूप में नवीकरण करना होता है, स्थिर पूंजी II के अन्य स्थायी संघटक अंश के वार्षिक मूल्य ह्रास के बराबर हो, जो अपने पुराने दैहिक रूप में कार्य करता रहता है और जिसकी छीजन – मूल्य ह्रास, जो वह उन मालों को अंतरित करता है, जिनके उत्पादन में वह लगा है – की पहले द्रव्य रूप में क्षतिपूर्ति करनी होती है। ऐसा संतुलन उसी पैमाने पर पुनरुत्पादन का नियम प्रतीत होता है। यह कथन यह कहने के बराबर है कि वर्ग I में, जो उत्पादन साधन प्रस्तुत करता है, समानुपातिक श्रम विभाजन अपरिवर्तित बना रहना चाहिए,

क्योंकि वह एक ओर क्षेत्र II की स्थिर पूंजी के प्रचल घटक उत्पादित करता है और दूसरी ओर उसके स्थायी घटक।

इसकी और बारीकी से छानबीन करने के पहले हमें यह देखना चाहिए कि यदि $II_{स}$ (१) का शेषांश $II_{स}$ (२) के शेषांश के बराबर न हो, बड़ा या छोटा हो, तो क्या बात बनती है। आइये, इन दोनों प्रसंगों का क्रमश: अध्ययन करें।

प्रथम प्रसंग

I. $२००_{बे}$।

II. (१) $२२०_{स}$ (द्रव्य रूप में) + (२) $२००_{स}$ (माल रूप में)।

इस प्रसंग में $II_{स}$ (१) द्रव्य रूप में २०० पाउंड से २०० $I_{बे}$ माल ख़रीदता है और I उसी द्रव्य से २०० $II_{स}$ (२) माल, अर्थात स्थायी पूंजी का वह भाग ख़रीदता है, जिसका द्रव्य रूप में अवक्षेपण होना है। इस तरह यह भाग द्रव्य में परिवर्तित हो जाता है। किंतु द्रव्य रूप में २० $II_{स}$ (१) का स्थायी पूंजी में वस्तुरूप में पुन:परिवर्तन नहीं हो सकता।

ऐसा लगता है कि यह मुसीबत टल सकती है, यदि $I_{बे}$ का शेषांश २०० के बदले २२० कर दिया जाये, जिससे कि पूर्वोक्त विनिमय के ज़रिये २,००० I में से १,८०० के बदले केवल १,७८० का निपटान होगा। तब स्थिति यह होगी :

I. $२२०_{बे}$।

II. (१) $२२०_{स}$ (द्रव्य रूप में) + (२) $२००_{स}$ (माल रूप में)।

$II_{स}$, भाग १ द्रव्य रूप में २२० पाउंड से २२० $I_{बे}$ ख़रीदता है और तब I २०० पाउंड से माल रूप में २०० $II_{स}$ (२) ख़रीदता है। किंतु अब २० पाउंड द्रव्य रूप में I की ओर रह जाते हैं; बेशी मूल्य के इस अंश को वह उपभोग वस्तुओं पर ख़र्च किये बिना केवल द्रव्य रूप में रख सकता है। इस तरह कठिनाई $II_{स}$ (भाग १) से $I_{बे}$ को अंतरित मात्र हो जाती है।

दूसरी ओर अब हम यह मान लें कि $II_{स}$, भाग १ $II_{स}$, भाग २ से छोटा है; तब स्थिति यह होती है :

द्वितीय प्रसंग

I. $२००_{बे}$ (माल रूप में)।

II. (१) $१८०_{स}$ (द्रव्य रूप में) + (२) $२००_{स}$ (माल रूप में)।

II (भाग १) द्रव्य रूप में १८० पाउंड से १८० $I_{बे}$ माल ख़रीदता है। I इस द्रव्य से II (भाग २) से उसी मूल्य का माल, अतः १८० $II_{स}$ (२) ख़रीदता है। अब एक ओर अविक्रेय २० $I_{बे}$ शेष हैं और दूसरी ओर भी २० $II_{स}$ (२) – ४० का माल शेष है, जो द्रव्य में अपरिवर्तनीय है।

I के शेषांश को १८० के बराबर कर देने से भी बात बनेगी नहीं। बेशक, तब I में कुछ बेशी नहीं रहेगी, लेकिन पहले की तरह $\text{II}_{\text{स}}$ (भाग २) में अब भी २० बेशी रहेगी, जो अविक्रेय और द्रव्य में अपरिवर्तनीय है।

प्रथम प्रसंग में, जहां II (२) से II (१) बड़ा है, $\text{II}_{\text{स}}$ (१) की ओर द्रव्य रूप में बेशी शेष रहता है, जो स्थायी पूंजी में पुनःपरिवर्तित नहीं किया जा सकता; और यदि $\text{I}_{\text{बे}}$ शेष को $\text{II}_{\text{स}}$ (१) के बराबर मान लिया जाये, तब भी $\text{I}_{\text{बे}}$ की ओर द्रव्य रूप में वही बेशी बनी रहती है, जिसे उपभोग वस्तुओं में परिवर्तित नहीं किया जा सकता।

द्वितीय प्रसंग में, जहां $\text{II}_{\text{स}}$ (२) से $\text{II}_{\text{स}}$ (१) छोटा है, २०० $\text{I}_{\text{बे}}$ तथा $\text{II}_{\text{स}}$ (२) की ओर द्रव्य न्यूनता रहती है और दोनों ही ओर बराबर-बराबर बेशी माल रहता है; और $\text{I}_{\text{बे}}$ का शेषांश $\text{II}_{\text{स}}$ (१) के बराबर मान लिया जाये, तो $\text{II}_{\text{स}}$ (२) की ओर द्रव्य न्यूनता और माल में बेशी रह जाती है।

चूंकि उत्पादन आदेशों द्वारा निर्धारित होता है और पुनरुत्पादन में इससे कोई फ़र्क़ नहीं आता कि एक साल I तथा II स्थिर पूंजियों के स्थायी घटकों का उत्पादन ज्यादा है और दूसरे साल उनके प्रचल घटकों का उत्पादन ज्यादा है, अतः यदि हम मान लें कि $\text{I}_{\text{बे}}$ के शेषांश हमेशा $\text{II}_{\text{स}}$ (१) के बराबर हैं, तो प्रथम प्रसंग में $\text{I}_{\text{बे}}$ को उपभोग वस्तुओं में तभी पुनः-परिवर्तित किया जा सकता है, जब I उससे II के बेशी मूल्य का एक अंश ख़रीदे और उसका उपभोग करने के बदले द्रव्य रूप में संचय करे। द्वितीय प्रसंग में बात तभी बन सकती है, जब I स्वयं द्रव्य ख़र्च करे और यह ऐसी कल्पना है, जिसे हम पहले ही अस्वीकार कर चुके हैं।

यदि $\text{II}_{\text{स}}$ (२) से $\text{II}_{\text{स}}$ (१) बड़ा हो, तो $\text{I}_{\text{बे}}$ में बेशी द्रव्य के सिद्धिकरण के लिए विदेशी मालों का आयात करना पड़ेगा। इसके विपरीत, यदि $\text{II}_{\text{स}}$ (२) से $\text{II}_{\text{स}}$ (१) छोटा हो, तो उत्पादन साधनों में $\text{II}_{\text{स}}$ के ह्रासवान अंश के सिद्धिकरण के लिए II मालों (उपभोग वस्तुओं) का निर्यात करना होगा। फलतः दोनों ही प्रसंगों में विदेश व्यापार आवश्यक होगा।

यदि यह भी मान लिया जाये कि अपरिवर्तित पैमाने पर पुनरुत्पादन के अध्ययन के लिए यह कल्पना करनी होगी कि उद्योग की सभी शाखाओं में उत्पादिता एक सी बनी रहती है, अतः उनके मालों के समानुपातिक मूल्य संबंध भी एक से रहते हैं, फिर भी ये अंतोक्त दोनों प्रसंग, जिनमें $\text{II}_{\text{स}}$ (२) से $\text{II}_{\text{स}}$ (१) बड़ा या छोटा है, विस्तारित पैमाने पर उत्पादन के लिए हमेशा दिलचस्प बने रहेंगे, जहां इन प्रसंगों से अनिवार्यतः सामना हो सकता है।

३) परिणाम

स्थायी पूंजी के प्रतिस्थापन के संदर्भ में निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए:

उत्पादन के पैमाने ही नहीं, बल्कि अन्य सभी बातों और सर्वोपरि श्रम उत्पादिता के यथावत बने रहने पर यदि पूर्व वर्ष की अपेक्षा $\text{II}_{\text{स}}$ के स्थायी तत्व के और बड़े भाग की समाप्ति होती है और इसलिए और बड़े भाग का वस्तुरूप में नवीकरण आवश्यक होता है, तो

स्थायी पूंजी का जो भाग अभी केवल अपनी समाप्ति की राह में है और इस बीच जिसका समाप्ति का दिन आने तक द्रव्य रूप में प्रतिस्थापन ज़रूरी है, वह उसी अनुपात में घटेगा, क्योंकि यह माना गया था कि II में कार्यरत पूंजी के स्थायी भाग (और मूल्य) की राशि एक सी बनी रहती है। किंतु इसके साथ निम्नलिखित परिस्थितियां आ जाती हैं: **प्रथम**, यदि माल पूंजी I के अधिकांश में $II_{स}$ की स्थायी पूंजी के तत्व समाहित हों, तो उसी के अनुरूप अल्पतर भाग में $II_{स}$ के प्रचल संघटक अंश समाहित होंगे, क्योंकि $II_{स}$ के लिए I का कुल उत्पादन अपरिवर्तित रहता है। इनमें से अगर कोई एक भाग बढ़ता है, तो दूसरा घटता है, और कोई एक घटता है, तो दूसरा बढ़ता है। दूसरी ओर वर्ग II के कुल उत्पादन का परिमाण भी वही बना रहता है। किंतु यदि उसका कच्चा माल, अधतैयार उत्पाद और सहायक सामग्री (अर्थात स्थिर पूंजी II के प्रचल तत्व) घट जायें, तो यह कैसे संभव होगा? **द्वितीय**, स्थायी पूंजी $II_{स}$ का अधिकांश द्रव्य रूप में बहाल होकर अपने द्रव्य रूप से अपने दैहिक रूप में पुनःपरिवर्तित होने के लिए I के पास पहुंच जाता है। इसलिए I और II के बीच केवल उनके माल विनिमय के लिए परिचालित द्रव्य के अलावा I के पास और अधिक द्रव्य का प्रवाह होता है; यह अधिक द्रव्य परस्पर माल विनिमय कराने का साधन नहीं है, वरन क्रय साधन के रूप में एकपक्षीय ढंग से ही कार्य करता है। किंतु तब $II_{स}$ की माल संहति में, जो छीजन के समतुल्य की वाहक है, – और इस प्रकार माल संहति II में, जिसे केवल द्रव्य I से, न कि माल I से विनिमीत किया जाना है – भी यथानुपात कमी आयेगी। केवल क्रय साधन के रूप में II से I के पास अधिक द्रव्य प्रवाहित होगा और माल II और भी कम होगा, जिसके संदर्भ में I को केवल ग्राहक रूप में कार्य करना होगा। अतः $I_{बे}$ का अधिक भाग माल II में परिवर्तनीय न होगा – क्योंकि $I_{प}$ पहले ही माल II में परिवर्तित हो चुका है – वरन द्रव्य रूप में बना रहेगा।

इसके विपरीत प्रसंग का, जिसमें किसी वर्ष स्थायी पूंजी II के समापनों का पुनरुत्पादन कम, और इसके विपरीत मूल्य ह्रास भाग अधिक होता है, अधिक विवेचन आवश्यक नहीं है।

अपरिवर्तित पैमाने पर पुनरुत्पादन के चलते रहने के बावजूद संकट – अत्युत्पादन का संकट – उत्पन्न होगा।

संक्षेप में, यदि साधारण पुनरुत्पादन और अन्य अपरिवर्तित परिस्थितियों के अंतर्गत – ख़ासकर उत्पादक शक्ति, श्रम के कुल परिमाण और सघनता के अपरिवर्तित रहने पर – समाप्त प्राय स्थायी पूंजी (जिसका नवीकरण होना है) और अब भी अपने पुराने दैहिक रूप में कार्यशील स्थायी पूंजी (जो अपने मूल्य ह्रास की क्षतिपूर्ति में उत्पाद में ही मूल्य जोड़ती है) के बीच कोई अस्थिर अनुपात माना जाये, तो एक प्रसंग में प्रचल संघटक अंशों की जिस राशि का पुनरुत्पादन होना है, वह यथावत रहेगी, जब कि पुनरुत्पादित होनेवाले स्थायी संघटक अंशों की राशि बढ़ जायेगी। इसलिए कुल उत्पादन I को बढ़ना होगा, वरना द्रव्य संबंधों के अलावा भी पुनरुत्पादन में न्यूनता होगी।

दूसरे प्रसंग में वस्तुरूप में पुनरुत्पादित होनेवाली स्थायी पूंजी II का आकार यदि अनुपाततः घट जाये और इसलिए स्थायी पूंजी II के जिस संघटक अंश का अब द्रव्य रूप में ही प्रतिस्थापन करना है, वह उसी अनुपात में बढ़ जाये, तो I द्वारा पुनरुत्पादित स्थिर पूंजी II के प्रचल संघटक अंशों की मात्रा अपरिवर्तित बनी रहेगी, जब कि पुनरुत्पादित होनेवाले स्थायी

संघटक अंशों की मात्रा घट जायेगी। अतः या तो I के समुच्चित उत्पादन में कमी आयेगी या फिर बेशी होगी (जैसे कि पहले न्यूनता हुई थी) और यह बेशी द्रव्य में परिवर्तनीय न होगी।

यह सच है कि प्रथम प्रसंग में वही श्रम अधिक उत्पादिता, विस्तार अथवा सघनता द्वारा अधिक उत्पाद दे सकता है और उस हालत में न्यूनता को इस प्रकार पूरा किया जा सकता है। किंतु ऐसा परिवर्तन पूंजी और श्रम के I के उत्पादन की एक शाखा से दूसरी में स्थानांतरण के बिना नहीं हो सकता, और ऐसा हर स्थानांतरण तात्कालिक व्यवधान पैदा करेगा। इसके अलावा (जिस हद तक श्रम के विस्तार और उसकी सघनता में वृद्धि होगी), I को विनिमय में II के कम मूल्य के लिए अपना अधिक मूल्य देना होगा। अतः I के उत्पाद में मूल्य ह्रास होगा।

द्वितीय प्रसंग में इसका उलटा होगा, जहां I को अपना उत्पादन सीमित करना होगा, जिसका मतलब है उसके मज़दूरों और पूंजीपतियों के लिए संकट अथवा वह बेशी पैदा करेगा, जिसका फिर वही मतलब है–संकट। इस तरह की बेशी अपने आप में कोई अनिष्ट नहीं है, वरन लाभकारी ही है, किंतु पूंजीवादी उत्पादन के अंतर्गत वह अनिष्ट ही है।

दोनों ही प्रसंगों में विदेश व्यापार सहायक हो सकता है: पहले प्रसंग में, द्रव्य रूप में जमा माल I को उपभोग वस्तुओं में बदलने के लिए और द्वितीय प्रसंग में बेशी माल राशि का निपटान करने में। किंतु चूंकि विदेश व्यापार किन्हीं तत्वों का (मूल्य के संदर्भ में भी) प्रतिस्थापन मात्र नहीं करता, इसलिए वह अंतर्विरोधों को केवल और बड़े दायरे में स्थानांतरित कर देता है और उन्हें अधिक व्यप्ति प्रदान करता है।

पुनरुत्पादन के पूंजीवादी स्वरूप का उन्मूलन करने के साथ प्रश्न केवल स्थायी पूंजी (वह पूंजी, जो हमारे उदाहरण में उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में कार्य करती है) के समाप्त होते–समाप्त होते, अतः वस्तुरूप में पुनरुत्पादित किये जानेवाले–अंश के विभिन्न क्रमागत वर्षों में बदलते परिमाण का रह जाता है। किसी एक साल वह बहुत बड़ा हो (औसत नश्वरता से ज्यादा, जैसा कि आदमियों के साथ होता है), तब वह अगले साल अवश्य ही उतना ही छोटा होगा। फलस्वरूप उपभोग वस्तुओं के वार्षिक उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल, अर्धतैयार उत्पाद और सहायक सामग्री की मात्रा नहीं घटती, बशर्ते कि और सब बातें यथावत रहें। अतः उत्पादन साधनों के समुच्चित उत्पादन को एक प्रसंग में बढ़ना और दूसरे में घटना ही होगा। इसका केवल निरंतर सापेक्ष अत्युत्पादन द्वारा ही प्रतिकार किया जा सकता है। एक ओर स्थायी पूंजी की प्रत्यक्ष आवश्यकता से अधिक उत्पादित एक निश्चित मात्रा होनी चाहिए; दूसरी ओर विशेष रूप से कच्चे माल वग़ैरह की वर्ष भर की प्रत्यक्ष आवश्यकता से आधिक्य में पूर्ति होनी चाहिए (यह बात निर्वाह साधनों पर ख़ास तौर से लागू होती है)। इस तरह के अत्युत्पादन का मतलब है समाज द्वारा स्वयं अपने पुनरुत्पादन के भौतिक साधनों पर उसका नियंत्रण। किंतु पूंजीवादी समाज में ऐसा अत्युत्पादन अव्यवस्था का तत्व होता है।

पुनरुत्पादन के अपरिवर्तित पैमाने के आधार पर स्थायी पूंजी का यह उदाहरण विलक्षण है। स्थायी और प्रचल पूंजी के उत्पादन में अनुपात की विषमता संकटों की कैफ़ियत देने के लिए अर्थशास्त्रियों का एक प्रिय तर्क है। उनके लिए यह बात नई है कि अनुपात की यह विषमता तब भी पैदा हो सकती है और होती है कि जब स्थायी पूंजी केवल **परिरक्षित** रखी जाती है और ऐसा पहले से कार्यशील सामाजिक पूंजी के साधारण पुनरुत्पादन के आधार पर आदर्श सामान्य उत्पादन की कल्पना पर भी हो सकता है और होता है।

१२. द्रव्य सामग्री का पुनरुत्पादन

एक उपादान की अभी तक पूर्णतः उपेक्षा की गयी है, यानी सोने और चांदी के वार्षिक पुनरुत्पादन की। विलास वस्तुओं, मुलम्मासाज़ी, आदि की सामग्री मात्र होने के नाते उनके विशेष उल्लेख की वैसे ही जरूरत नहीं है, जैसे अन्य किसी उत्पाद के उल्लेख की। किंतु द्रव्य सामग्री के रूप में और इसलिए संभाव्य द्रव्य के रूप में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। सरलता के लिए हम यहां केवल सोने को द्रव्य सामग्री मान लेते हैं।

पुराने आंकड़ों के अनुसार सोने का कुल वार्षिक उत्पादन ८,००,०००-६,००,००० पाउंड (वज़न) था, जो मोटे तौर से ११,००० या १२,५०० लाख मार्क के बराबर था। किंतु सोयेत्बेर[53] के अनुसार यह १८७१ से लेकर १८७५ तक के औसत उत्पादन के आधार पर केवल १,७०,६७५ किलोग्राम ही था, जिसका मोटे तौर पर मूल्य ४,७६० लाख मार्क था। इस राशि में मोटे तौर पर आस्ट्रेलिया ने १,६७०, संयुक्त राज्य अमरीका ने १,६६० और रूस ने ६३० लाख मार्क के सोने की पूर्ति की। शेष भाग विभिन्न देशों में १ करोड़ मार्क से कम राशि में बंटा हुआ है। इस अवधि में चांदी का वार्षिक उत्पादन २० लाख किलोग्राम से कुछ कम था, जिसका मूल्य ३,५४० १/२ लाख मार्क था। इस राशि में मोटे तौर पर मेक्सिको ने १,०८०, संयुक्त राज्य अमरीका ने १,०२०, दक्षिणी अमरीका ने ६७०, जर्मनी ने २६० लाख मार्क की पूर्ति की, इत्यादि।

जिन देशों में पूंजीवादी उत्पादन की प्रमुखता है, उनमें केवल संयुक्त राज्य अमरीका ही सोने तथा चांदी का उत्पादक है। यूरोप के पूंजीवादी देश अपनी अधिकांश चांदी और लगभग सारा सोना आस्ट्रेलिया, संयुक्त राज्य अमरीका, मेक्सिको, दक्षिणी अमरीका और रूस से प्राप्त करते हैं।

लेकिन हम यह मान लेते हैं कि सोने की खानें पूंजीवादी उत्पादन पद्धतिवाले देश में हैं, जिसके वार्षिक पुनरुत्पादन का हम यहां विश्लेषण कर रहे हैं और इसके कारण निम्नलिखित हैं :

विदेश व्यापार के बिना पूंजीवादी उत्पादन का अस्तित्व ही नहीं होता। किंतु जब हम एक दिये हुए पैमाने पर सामान्य वार्षिक पुनरुत्पादन की कल्पना करते हैं, तब हम यह भी मान लेते हैं कि विदेश व्यापार मूल्य संबंधों को प्रभावित किये बिना, और इसलिए उन मूल्य संबंधों को, जिनमें "उत्पादन साधन" और "उपभोग वस्तुएं" ये दोनों संवर्ग परस्पर विनिमय करते हैं, अथवा स्थिर पूंजी, परिवर्ती पूंजी तथा बेशी मूल्य के संबंधों को भी, जिनमें इनमें से प्रत्येक संवर्ग के उत्पाद का मूल्य विभाजित हो सकता है, प्रभावित किये बिना स्वदेशी उत्पाद को केवल अन्य उपयोग रूप अथवा अन्य दैहिक रूप की वस्तुओं द्वारा प्रतिस्थापित करता है। इसलिए उत्पाद के प्रति वर्ष पुनरुत्पादित मूल्य के विश्लेषण में विदेश व्यापार का सम्मिलन समस्या का अथवा उसके समाधान का कोई नया तत्व प्रस्तुत किये बिना केवल उलझाव पैदा कर सकता है। इस कारण उसे पूर्णतः अलग रखना चाहिए। फलतः सोने को भी यहां वार्षिक पुनरुत्पादन का प्रत्यक्ष तत्व माना जाना चाहिए, न कि विदेश से विनिमय द्वारा आयातित माल तत्व।

सामान्यतः धातुओं के उत्पादन की ही भांति सोने का उत्पादन वर्ग I से संबद्ध है, जिसमें

[53] Ad. Soetbeer, *Edelmetall-Production*, Gotha, 1879.

उत्पादन साधनों का उत्पादन आता है। यदि यह मान लें कि सोने का वार्षिक उत्पादन ३० के बराबर है (सहूलियत के लिए; दरअसल हमारी सारणी के अन्य आंकड़ों की तुलना में यह आंकड़ा बहुत ज्यादा है)। मान लीजिये कि यह मूल्य $२०_{स} + ५_{प} + ५_{बे}$ में विभाज्य है; और $२०_{स}$ का विनिमय $I_{स}$ के दूसरे तत्वों से होना है और इसका अध्ययन बाद में* किया जायेगा; किंतु $५_{प} + ५_{बे}$ (I) का विनिमय $II_{स}$ के तत्वों से, अर्थात उपभोग वस्तुओं से होना है।

जहां तक $५_{प}$ का संबंध है, प्रत्येक स्वर्ण उत्पादक प्रतिष्ठान शुरूआत श्रम शक्ति की ख़रीद से करता है। यह काम इस व्यवसाय विशेष द्वारा उत्पादित सोने के ज़रिये नहीं किया जाता, वरन देश में मुद्रा पूर्ति के एक अंश से किया जाता है। मज़दूर इस $५_{प}$ से उपभोग वस्तुएं II से ख़रीदते हैं और II इस द्रव्य से उत्पादन साधन I से ख़रीदता है। अब मान लीजिये, II २ के बराबर सोना I से माल सामग्री आदि के रूप में (उसकी स्थिर पूंजी के संघटक अंश) ख़रीदता है, तब $२_{प}$ द्रव्य के रूप में स्वर्ण उत्पादकों I के पास लौट आते हैं, जो पहले ही परिचलन में है। यदि II कोई और सामग्री I से नहीं ख़रीदता, तो I अपना सोना द्रव्य के रूप में परिचलन में डालकर II से ख़रीदारी करता है, क्योंकि सोने से कोई भी माल ख़रीदा जा सकता है। अंतर केवल इतना है कि I यहां विक्रेता की तरह नहीं, केवल ग्राहक की तरह काम करता है। स्वर्ण खनिक I अपने माल से हमेशा छुटकारा पा सकते हैं; वह हमेशा प्रत्यक्ष विनिमेय रूप में होता है।

मान लीजिये, किसी सूत निर्माता ने अपने मज़दूरों को $५_{प}$ दिये हैं, जो अपनी बारी में उसके लिए बेशी मूल्य के अलावा ५ के बराबर सूत उत्पाद का सृजन करते हैं। ५ से मज़दूर $II_{स}$ से ख़रीदारी करते हैं, और वह I से द्रव्य में ५ से सूत ख़रीदता है और इस प्रकार $५_{प}$ द्रव्य के रूप में सूत निर्माता के पास लौट आते हैं। अब कल्पित प्रसंग में, $I_{स्व}$ (स्वर्ण उत्पादकों को हम यही कहेंगे) अपने मज़दूरों को द्रव्य के रूप में $५_{प}$ पेशगी देता है, जो पहले परिचलन में थे। मज़दूर इन्हें उपभोग वस्तुओं पर ख़र्च करते हैं, किंतु II से $I_{स्व}$ के पास ५ में से केवल २ लौटकर आते हैं। फिर भी $I_{स्व}$ सूत निर्माता की ही भांति पुनरुत्पादन प्रक्रिया को फिर से शुरू कर सकता है। कारण यह कि उसके मज़दूरों ने उसे स्वर्ण रूप में ५ दिये हैं, जिनमें २ उसने बेच दिये हैं और ३ अभी उसके हाथ में हैं, जिससे कि उसे उन्हें सिक्कों में ढालना[54] या बैंक नोटों में बदलना भर होगा और उसकी सारी परिवर्ती पूंजी मुद्रा रूप में II के और हस्तक्षेप के बिना सीधे उसके हाथ में फिर आ जायेगी।

वार्षिक पुनरुत्पादन की इस पहली प्रक्रिया ने भी द्रव्य की उस मात्रा में परिवर्तन कर डाला है, जो यथार्थतः अथवा वस्तुतः परिचलन में आती है। हमने माना था कि $II_{स}$ ने

---

*पृष्ठ ४१४ पर एंगेल्स की पादटिप्पणी देखिये। – सं०

[54] "स्वर्ण बुलियन (कलधौत) की काफ़ी मात्रा ... उसके मालिक सीधे सैन-फ़्रांसिस्को की टकसाल में ले जाते हैं।" Reports of H. M. Secretaries of Embassy and Legation, 1879, भाग ३, पृष्ठ ३३७।

$२_प$ ($I_{स्व}$) सामग्री के रूप में ख़रीदा था और $I_{स्व}$ ने – अपनी परिवर्ती पूंजी के द्रव्य रूप के नाते II के अंतर्गत – ३ को पुनः व्यय किया है। अतः नये स्वर्ण उत्पादन द्वारा पूरित द्रव्य राशि के ३ II के भीतर ही बने रहे और I को नहीं लौटे। हमारी कल्पना के अनुसार II ने अपनी स्वर्ण सामग्री की आवश्यकता की तुष्टि कर ली है। उसके हाथ में ३ स्वर्ण अपसंचय के रूप में रह जाते हैं। चूंकि ये उसकी स्थिर पूंजी का कोई तत्व नहीं बनाते और चूंकि श्रम शक्ति ख़रीदने के लिए II के पास पहले से काफ़ी द्रव्य पूंजी थी; इसके अलावा, चूंकि मूल्य ह्रास तत्व को छोड़कर इन अतिरिक्त $३_{स्व}$ को $II_स$ के अंतर्गत कोई कार्य नहीं करना है, जिसके एक अंश से उनका विनिमय हुआ था (वे मूल्य ह्रास तत्व की pro tanto क्षतिपूर्ति तभी कर सकते हैं कि $II_स$ (१) अगर $II_स$ (२) की अपेक्षा छोटा हो, जो बात आकस्मिक होगी); किंतु दूसरी ओर, यानी मूल्य ह्रास तत्व को छोड़कर $II_स$ का समस्त माल उत्पाद $I_{(प+बे)}$ उत्पादन साधन से विनिमय करना होता है – इसलिए इस द्रव्य को $II_स$ से $II_{बे}$ को अंतरित करना होता है, वह चाहे जीवनावश्यक वस्तुओं में हो या विलास वस्तुओं में और इसके उलटे $II_{बे}$ से $II_स$ को तदनुरूप पण्य मूल्य अंतरित करना होता है। परिणाम: बेशी मूल्य का एक अंश द्रव्य अपसंचय के रूप में एकत्र हो जाता है।

पुनरुत्पादन के दूसरे वर्ष में २ पुनः $I_{स्व}$ के पास लौट आयेगा और ३ वस्तुरूप में प्रतिस्थापित हो जायेगा, अर्थात II में फिर अपसंचय आदि की हैसियत से विमुक्त हो जायेगा, बशर्ते कि प्रति वर्ष उत्पादित सोने का वही परिमाण सामग्री रूप में इस्तेमाल होता रहे।

सामान्यतः परिवर्ती पूंजी के संदर्भ में: अन्य किसी भी पूंजीपति की तरह पूंजीपति $I_{स्व}$ को यह पूंजी श्रम शक्ति की ख़रीद के लिए द्रव्य रूप में निरंतर पेशगी देनी होती है। लेकिन जहां तक इस प का संबंध है, इसे उस पूंजीपति को नहीं, वरन उसके मज़दूरों को II से ख़रीदना होता है। इसलिए ऐसा कभी नहीं हो सकता कि II की पहल के बिना वह ग्राहक बनकर II में सोना डाले। किंतु जहां तक II उससे सामग्री ख़रीदता है और जहां तक उसे स्थिर पूंजी $II_स$ को निरंतर स्वर्ण सामग्री में बदलना होता है, वहां तक II से $(I_{स्व})_प$ का एक अंश उसके पास वैसे ही लौट आता है, जैसे वह I के अन्य पूंजीपतियों के पास लौटता है। और जहां तक ऐसा नहीं होता, वहां तक वह अपने स्वर्ण रूप प का सीधे अपने उत्पाद से प्रतिस्थापन करता है। किंतु जिस सीमा तक द्रव्य के रूप में पेशगी दिया प II से उसके पास लौटकर नहीं आता, पहले से उपलब्ध परिचलन साधनों का एक अंश (I से प्राप्त और I को न लौटाया गया) II में अपसंचय में परिवर्तित हो जाता है और इस कारण उसके बेशी मूल्य का एक अंश उपभोग वस्तुओं पर ख़र्च नहीं होता। चूंकि नई स्वर्ण खानें निरंतर खुलती रहती हैं या पुरानी खानें फिर से चालू होती रहती हैं, इसलिए $I_{स्व}$ द्वारा प में लगाये जानेवाले द्रव्य का एक अंश हमेशा नये स्वर्ण उत्पादन के पहले से विद्यमान द्रव्य का हिस्सा होता है; इसे $I_{स्व}$ अपने मज़दूरों के माध्यम से II में डालता है और जब तक वह II से $I_{स्व}$ के पास न लौटे, तब तक वह वहां अपसंचय निर्माण का एक तत्व बना रहता है।

किंतु जहां तक $(I_{स्व})_{बे}$ का संबंध है, $I_{स्व}$ हमेशा ग्राहक का काम कर सकता है।

वह अपना बे सोने की शक्ल में परिचलन में डालता है और उसके बदले वहां से उपभोग वस्तुएं $II_{स}$ निकालता है। II में सोना अंशतः सामग्री के रूप में इस्तेमाल किया जाता है और इस प्रकार उत्पादक पूंजी के स्थिर घटक स के वास्तविक तत्व के रूप में कार्य करता है। जब ऐसा नहीं होता, तब द्रव्य के रूप में विद्यमान $II_{बे}$ के अंश के नाते वह फिर अपसंचय निर्माण का तत्व बन जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि $I_{स}$ के सिवा, जिसका विश्लेषण[55] हमने आगे के लिए रख छोड़ा है, वास्तविक संचय, यानी विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन को छोड़कर साधारण पुनरुत्पादन में भी द्रव्य का एकत्रीकरण अथवा अपसंचय अनिवार्यतः शामिल है। और चूंकि इसकी प्रति वर्ष पुनरावृत्ति होती है, इसलिए इससे उस कल्पना की व्याख्या हो जाती है, जिससे हमने पूंजीवादी उत्पादन के विश्लेषण की शुरूआत की थी, यानी यह कि पुनरुत्पादन के आरंभ में माल विनिमय के अनुरूप द्रव्य पूर्ति I और II के पूंजीपति वर्गों के हाथ में होती है। परिचलनगत द्रव्य मूल्य ह्रास के कारण क्षय होनेवाली स्वर्ण राशि को निकाल देने पर भी ऐसा संचय होता ही है।

कहना न होगा कि पूंजीवादी उत्पादन जितना ही विकसित होता है, सभी के हाथों में उतना ही अधिक द्रव्य संचित होता है और इसलिए नये स्वर्ण उत्पादन से इस अपसंचय में प्रति वर्ष जुड़नेवाली मात्रा उतनी ही कम होगी, यद्यपि इस प्रकार जोड़ी हुई निरपेक्ष मात्रा बहुत काफ़ी हो सकती है। हम यहां एक बार फिर टूक के ख़िलाफ़ उठाई गई आपत्ति* पर सामान्य रूप में वापस आ जाते हैं। यह कैसे संभव है कि प्रत्येक पूंजीपति वार्षिक उत्पाद से द्रव्य रूप में बेशी मूल्य निकाले, यानी परिचलन में वह जितना द्रव्य डालता है, उससे अधिक निकाले, क्योंकि परिचलन में डाले हुए तमाम द्रव्य का स्रोत अंततोगत्वा स्वयं पूंजीपति वर्ग को ही मानना होता है?

हम पहले (अध्याय १७ में) प्रतिपादित विचारों का सार प्रस्तुत करके इसका उत्तर देते हैं:

१) यहां एक ही कल्पना आवश्यक है, वह यह है कि वार्षिक पुनरुत्पादन की संहति के विभिन्न तत्वों के विनिमय के लिए सामान्यतः पर्याप्त द्रव्य उपलब्ध होता है। इस कल्पना में इस तथ्य से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि माल मूल्य का एक अंश बेशी मूल्य का होता है। मान लीजिये कि समस्त उत्पादन स्वयं श्रमिकों के अधिकार में है और इसलिए उनका बेशी श्रम ख़ुद उन्हीं के लिए किया हुआ, न कि पूंजीपतियों के लिए किया हुआ बेशी श्रम है, तब परिचालित माल मूल्यों की मात्रा वही होगी और अन्य सब बातें यथावत रहें, तो उनके परिचलन के लिए वही द्रव्य राशि आवश्यक होगी। इसलिए दोनों ही प्रसंगों में प्रश्न केवल यह है: माल मूल्यों के इस कुल योग के विनिमय को संभव बनानेवाला द्रव्य कहां से आता है? प्रश्न यह है ही नहीं: बेशी मूल्य को द्रव्य में बदल देने के लिए द्रव्य कहां से आता है?

अगर इस बात पर वापस जायें, तो यह सच है कि प्रत्येक माल में स+प+बे समाहित होते हैं और इसलिए समस्त माल राशि के परिचलन के लिए एक ओर पूंजी स+प के परिचलन के लिए एक निश्चित द्रव्य राशि आवश्यक होती है और दूसरी ओर पूंजीपतियों की आय,

---

[55] क्षेत्र I की स्थिर पूंजी के अंतर्गत नवोत्पादित स्वर्ण के विनिमय का अध्ययन पाण्डुलिपि में नहीं है। – फ़े० एं०

* इस पुस्तक का पृष्ठ २६३ देखें। – सं०

बेशी मूल्य बे के परिचलन के लिए अन्य द्रव्य राशि आवश्यक होती है। वैयक्तिक पूंजीपति के लिए तथा संपूर्ण पूंजीपति वर्ग के लिए भी वह द्रव्य, जिसके रूप में वे पूंजी पेशगी देते हैं, उस द्रव्य से भिन्न होता है, जिसके रूप में वे अपनी आय ख़र्च करते हैं। यह अंतोक्त द्रव्य कहां से आता है? सीधे उसी द्रव्य राशि से, जो पूंजीपति वर्ग के हाथ में है; अतः कुल मिलाकर उस कुल द्रव्य राशि से, जो समाज में है, जिसका एक अंश पूंजीपतियों की आय को परिचालित करता है। हम ऊपर देख चुके हैं कि नया व्यवसाय क़ायम करनेवाला हर पूंजीपति अपने व्यवसाय के ढंग से चालू हो जाने के साथ अपने भरण-पोषण पर उपभोग वस्तुओं में ख़र्च किये द्रव्य को उसके बेशी मूल्य को द्रव्य में बदलने के काम आनेवाले द्रव्य के रूप में वापस पा लेता है। लेकिन मोटे तौर पर सारी कठिनाई के दो स्रोत हैं:

पहले तो यदि हम केवल पूंजी के आवर्त और परिचलन का विश्लेषण करें और इस प्रकार पूंजीपति को केवल पूंजी के साकार रूप में, न कि पूंजीपति उपभोक्ता और बांके छैले की तरह देखें, तो सचमुच हम यह देखते हैं कि वह बेशी मूल्य को अपनी माल पूंजी के एक संघटक अंश के रूप में निरंतर परिचलन में डालता रहता है, लेकिन हम द्रव्य को उसके हाथ में आय के रूप में कभी नहीं देखते। हम उसे अपने बेशी मूल्य के उपभोग के लिए परिचलन में द्रव्य डालते कभी नहीं देखते हैं।

दूसरे, यदि पूंजीपति वर्ग आय की शक्ल में कोई रक़म परिचलन में डालता है, तो लगता है कि वह कुल वार्षिक उत्पाद के इस अंश का समतुल्य दे रहा है और इस तरह यह अंश बेशी मूल्य नहीं रह जाता। किंतु जिस बेशी उत्पाद में बेशी मूल्य विद्यमान है, उसके लिए पूंजीपति वर्ग को एक कौड़ी भी ख़र्च नहीं करनी होती। वर्ग रूप में पूंजीपति उसे मुफ़्त क़ब्ज़े में रखते और उपभोग में लाते हैं और द्रव्य परिचलन इस तथ्य को बदल नहीं सकता। इस परिचलन से जो तबदीली आती है, वह केवल यह कि अपने बेशी उत्पाद का वस्तुरूप में उपभोग करने के बदले, जो सामान्यतः असंभव है, प्रत्येक पूंजीपति अपने द्वारा हथियाये बेशी मूल्य की राशि के बराबर भांति-भांति के माल समाज के सामान्य वार्षिक बेशी उत्पाद भंडार से निकालता है और उनको हथिया लेता है। किंतु परिचलन की क्रियाविधि से सिद्ध हो गया है कि पूंजीपति वर्ग जहां अपनी आय ख़र्च करने के लिए परिचलन में द्रव्य डालता है, वहां वह परिचलन से यह द्रव्य निकालता भी है और इस प्रक्रिया को वह बार-बार जारी रख सकता है। फलतः एक वर्ग के रूप में पूंजीपति पहले की तरह बेशी मूल्य को द्रव्य में बदलने के लिए आवश्यक राशि के मालिक बने रहते हैं। इसलिए यदि पूंजीपति न केवल माल रूप में अपना बेशी मूल्य माल बाज़ार से अपनी उपभोग निधि के लिए निकालता है, वरन इसके साथ ही वह द्रव्य वापस भी पा जाता है, जिससे उसने इन मालों के लिए अदायगी की है, तो उसने स्पष्टतः मालों का कोई समतुल्य दिये बिना ही उन्हें परिचलन से निकाल लिया है। यद्यपि वह उनके लिए द्रव्य देता है, फिर भी उनके लिए वह कुछ ख़र्च नहीं करता। यदि मैं एक पाउंड का माल ख़रीदूं और यदि माल विक्रेता मुझे उस बेशी उत्पाद के लिए वह पाउंड वापस कर दे, जो मुझे बिला कुछ ख़र्च किये मिला था, तो यह स्पष्ट है कि मुझे माल मुफ़्त प्राप्त हुआ है। इस क्रिया की निरंतर आवृत्ति इस तथ्य को नहीं बदल देती कि मैं निरंतर माल निकालता रहता हूं और निरंतर पाउंड मेरे हाथ में रहता है, यद्यपि थोड़ी देर को माल ख़रीदने के लिए मैं उससे जुदा हो जाता हूं। पूंजीपति यह धन उस बेशी मूल्य के द्रव्य समतुल्य के रूप में वापस पा जाता है, जिसके लिए उसने कुछ ख़र्च नहीं किया है।

हम देख चुके हैं कि ऐडम स्मिथ के यहां सामाजिक उत्पाद का समग्र मूल्य अपने को आय में, प+बे में वियोजित कर लेता है, जिससे कि स्थिर पूंजी मूल्य शून्य रह जाता है। इससे अनिवार्यतः यह नतीजा निकलता है कि वार्षिक आय के परिचलन के लिए आवश्यक द्रव्य समग्र वार्षिक उत्पाद के परिचलन के लिए भी पर्याप्त होगा और इसलिए हमारे उदाहरण में जो द्रव्य ३,००० मूल्य की उपभोग वस्तुओं के परिचलन के लिए आवश्यक है, वह ९,००० मूल्य के समग्र वार्षिक उत्पाद के परिचलन के लिए भी पर्याप्त होगा। दरअसल ऐडम स्मिथ का यही मत है, और टॉ० टूक ने उसे दोहराया है। आय के सिद्धिकरण के लिए आवश्यक द्रव्य की मात्रा के और समग्र सामाजिक उत्पाद को परिचालित करने के लिए आवश्यक द्रव्य की मात्रा के साथ अनुपात की यह भ्रांत धारणा उस समझहीन, चिंतनहीन ढंग का अनिवार्य परिणाम है, जिससे कुल वार्षिक उत्पाद की सामग्री और मूल्य के विभिन्न तत्व पुनरुत्पादित और प्रति वर्ष प्रतिस्थापित किये जाते हैं। अतः इसका खंडन पहले भी हो चुका है।

आइये, स्वयं स्मिथ और टूक की बातें सुनें।

खंड २, अध्याय २ में स्मिथ कहते हैं: "प्रत्येक देश के परिचलन को दो भिन्न शाखाओं में विभाजित माना जा सकता है: दूकानदारों का एक दूसरे के साथ परिचलन और दूकानदारों तथा उपभोक्ताओं के बीच परिचलन। यद्यपि द्रव्य की वही मुद्राएं, चाहे वे काग़ज़ की हों या धातु की, कभी एक परिचलन में, तो कभी दूसरे परिचलन में इस्तेमाल की जा सकती हैं, फिर भी चूंकि दोनों लगातार साथ ही साथ चलते रहते हैं, इसलिए इनमें से प्रत्येक को काम चलाने के लिए एक या दूसरे प्रकार के द्रव्य की कुछ जमा की आवश्यकता होती है। विभिन्न दूकानदारों के बीच परिचालित माल का मूल्य दूकानदारों और उपभोक्ताओं के बीच परिचालित माल के मूल्य से कभी ज़्यादा नहीं हो सकता; कारण कि दूकानदार जो कुछ ख़रीदते हैं, वह अंततोगत्वा उपभोक्ताओं को बेचने के लिए ही उद्दिष्ट होता है। दूकानदारों के बीच परिचलन चूंकि थोक रूप में होता है, इसलिए वह प्रत्येक विशेष सौदे के लिए सामान्यतः काफ़ी बड़ी रक़म की अपेक्षा करता है। इसके विपरीत दूकानदारों और उपभोक्ताओं के बीच परिचलन सामान्यतः खुदरा होता है; इसलिए वह अक्सर बहुत छोटी रक़म की अपेक्षा करता है, बहुधा एक शिलिंग या आधा पेंस भी काफ़ी हो जाता है। किंतु छोटी रक़में बड़ी रक़मों के मुक़ाबले में कहीं तेज़ी से परिचालित होती हैं ... अतः यद्यपि सभी उपभोक्ताओं की वार्षिक ख़रीद कम से कम" [यह "कम से कम" प्रचुर है] "मूल्य में सभी दूकानदारों की ख़रीद के बराबर होती है, फिर भी वह सामान्यतः द्रव्य की बहुत कम मात्रा से की जा सकती है," इत्यादि।

ऐडम स्मिथ के इस उद्धरण पर टॉ० टूक यह टिप्पणी करते हैं (*An Inquiry into the Currency Principle*, लंदन, १८४४, पृष्ठ ३४-३६ पर जहां-तहां): "इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि यहां जो भेद किया गया है, वह तत्वतः सही है ... दूकानदारों तथा उपभोक्ताओं के बीच विनिमय में मज़दूरी का भुगतान भी शामिल है, जो उपभोक्ताओं का मुख्य साधन है ... दूकानदारों और दूकानदारों के बीच सभी लेन-देन जिनका आशय उत्पादक अथवा आयातक से उत्पादन की अथवा अन्य मध्यवर्ती प्रक्रियाओं की सभी मंज़िलों के ज़रिये खुदरा दूकानदार अथवा निर्यातक व्यापारी की सभी बिक्रियों से है, पूंजी के संचलनों अथवा अंतरणों में वियोज्य होते हैं। लेकिन अधिकांश लेन-देनों में पूंजी के अंतरण अनिवार्यतः यह पूर्वापेक्षा नहीं करते और वस्तुतः उनके लिए यह आवश्यक भी नहीं है कि अंतरण के समय द्रव्य, यानी बैंक नोट या सिक्के – मेरा आशय है दैहिक रूप में, न कि कल्पना में – एक हाथ से दूसरे हाथ में

जायें ... दूकानदारों और दूकानदारों के बीच लेन-देनों की कुल राशि को अंततोगत्वा दूकानदारों और उपभोक्ताओं के बीच लेन-देनों की राशि के द्वारा ही निर्धारित और सीमित होना होगा।"

यदि यह अंतिम वाक्य अलग होता, तो सोचा जा सकता था कि टूक ने केवल यह तथ्य बयान किया है कि दूकानदारों के बीच विनिमयों में और दूकानदारों और उपभोक्ताओं के बीच विनिमयों में, दूसरे शब्दों में कुल वार्षिक आय के मूल्य और जिस पूंजी द्वारा इसका उत्पादन होता है, उसके मूल्य के बीच एक निश्चित अनुपात होता है। किंतु बात ऐसी नहीं है। वह ऐडम स्मिथ के मत का स्पष्टतया अनुमोदन करते हैं। इसलिए उनके परिचलन सिद्धांत की विशेषकर आलोचना करना बेकार है।

२) अपनी जीवन यात्रा शुरू करते समय प्रत्येक औद्योगिक पूंजी परिचलन में अपने संपूर्ण स्थायी संघटक अंश के बदले एकबारगी द्रव्य डालती है, जिसे वह अपने वार्षिक उत्पाद की बिक्री के ज़रिये ही धीरे-धीरे, वर्षों के दौरान पुनः प्राप्त करती है। इस प्रकार वह परिचलन में पहले उससे ज्यादा धन डालती है, जितना उससे निकालती है। समस्त पूंजी के वस्तुरूप में हर नवीकरण के समय इसकी पुनरावृत्ति होती है। कुछेक उद्यमों के प्रसंग में इसकी आवृत्ति प्रति वर्ष होती है, जिनमें स्थायी पूंजी का नवीकरण वस्तुरूप में करना होता है। हर मरम्मत के समय, हर बार स्थायी पूंजी के केवल आंशिक नवीकरण के समय इसकी अंशतः पुनरावृत्ति होती है। इसलिए जहां एक ओर परिचलन में जितना पैसा डाला जाता है, उससे ज्यादा निकाला जाता है, वहां दूसरी ओर इसका उलटा होता है।

उद्योग की उन सभी शाखाओं में, जिनमें उत्पादन अवधि – कार्य अवधि से भिन्न – दीर्घकालीन होती है, इस अवधि में पूंजीपति उत्पादक निरंतर परिचलन में द्रव्य डालते रहते हैं, अंशतः नियोजित श्रम शक्ति की अदायगी के लिए और अंशतः उपभुक्त होनेवाले उत्पादन साधनों की ख़रीद के लिए। इस प्रकार उत्पादन साधन बाज़ार से प्रत्यक्षतः निकाले जाते हैं और उपभोग वस्तुओं को अपनी मज़दूरी ख़र्च करनेवाले मज़दूरों द्वारा अंशतः अप्रत्यक्षतः और पूंजीपतियों द्वारा अंशतः प्रत्यक्षतः निकाला जाता है, जो अपना उपभोग ज़रा भी स्थगित नहीं करते, यद्यपि वे साथ ही बाज़ार में माल के रूप में कोई समतुल्य भी नहीं डालते। इस अवधि में उनके द्वारा परिचलन में डाला द्रव्य माल मूल्य को, उसमें निहित बेशी मूल्य समेत द्रव्य में बदलने के काम आता है। यह बात पूंजीवादी उत्पादन की विकसित अवस्था में संयुक्त पूंजी कंपनियों आदि द्वारा चलाये जानेवाले लंबे चलनेवाले उद्यमों में बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है, जैसे रेलमार्गों, नहरों, गोदियों, बड़े नगरीय भवनों, लोहे के जहाज़ों का निर्माण, ज़मीन की बड़े पैमाने पर जलनिकासी, इत्यादि।

३) जहां अन्य पूंजीपति – स्थायी पूंजी में निवेश के अलावा – परिचलन में जितना पैसा डालते हैं, श्रम शक्ति तथा प्रचल तत्वों के क्रय में उससे ज्यादा निकालते हैं, वहां सोना-चांदी उत्पादक पूंजीपति, बहुमूल्य धातु के अलावा, जो कच्चे माल का काम देती है, परिचलन में केवल द्रव्य डालते हैं, जब कि उससे केवल माल निकालते हैं। ह्रासित अंश के सिवा स्थिर पूंजी, अधिकांश परिवर्ती पूंजी और संचय को छोड़कर, जो स्वयं उनके ही हाथों में संचित हो सकता है, समस्त बेशी मूल्य – सभी द्रव्य रूप में परिचलन में डाल दिये जाते हैं।

४) एक ओर भांति-भांति की चीज़ें मालों के रूप में परिचालित होती हैं, जिनका उत्पादन दिये हुए वर्ष के दौरान नहीं हुआ था, जैसे भूखंड, भवन, आदि; इनके अलावा

ऐसा माल परिचालित होता है, जिसकी उत्पादन अवधि साल भर से ज्यादा होती है, जैसे पशु, लकड़ी, शराब, वग़ैरह। इस तथा अन्य परिघटनाओं के लिए यह निश्चित करना महत्वपूर्ण है कि प्रत्यक्ष परिचलन हेतु आवश्यक द्रव्य की माला के अलावा उसकी एक निश्चित माला हमेशा एक संभाव्य अकार्यशील अवस्था में रहे, जो प्रेरणा मिलने पर कार्य करना शुरू कर सकती है। इसके अलावा ऐसे उत्पादों का मूल्य बहुधा क्रमशः और खंडशः परिचालित होता है, जैसे किराये की शक्ल में मकानों का मूल्य अनेक वर्षों में परिचालित होता है।

दूसरी ओर पुनरुत्पादन प्रक्रिया की सभी गतियां द्रव्य परिचलन द्वारा संपन्न नहीं होतीं। उत्पादन प्रक्रिया के तत्वों के प्राप्त किये जाने के साथ वह सारी प्रक्रिया परिचलन से निकल जाती है। स्वयं उत्पादक जिस उत्पाद का प्रत्यक्षतः उपभोग करता है, चाहे व्यक्तिगत रूप में, चाहे उत्पादक रूप में, वह सब भी निकल जाता है। खेतिहर मज़दूरों का वस्तुरूप में भरण-पोषण भी इसी मद में आता है।

इसलिए जो द्रव्य राशि वार्षिक उत्पाद को परिचालित करती है, वह क्रमशः संचित किये जाने के कारण समाज में पहले से ही विद्यमान होती है। वह नियत वर्ष के दौरान उत्पादित नये मूल्य के अंतर्गत नहीं होती, संभवतः उस सोने को छोड़कर, जिसका उपयोग ह्रासित सिक्कों की क्षतिपूर्ति के लिए किया जाता है।

यह विवेचन द्रव्य के रूप में केवल मूल्यवान धातुओं के परिचलन की और इस परिचलन में नक़द क्रय-विक्रय के सरलतम रूप की पूर्वापेक्षा करता है; यद्यपि द्रव्य सादे धातु सिक्कों के ही परिचलन के आधार पर अदायगी के साधन का भी कार्य कर सकता है और इतिहास के दौर में वस्तुतः ऐसा करता रहा है और इस आधार पर उधार पद्धति और उसकी क्रिया-विधि के किन्हीं पक्षों का विकास हुआ है।

यह कल्पना केवल प्रणाली के विचार से ही नहीं की जाती है, यद्यपि यह भी काफ़ी महत्वपूर्ण है, जैसा कि इस तथ्य से जाहिर होता है कि टूक और उनके अनुयाइयों को तथा उनके विरोधियों को भी बैंक नोटों के परिचलन से संबद्ध अपने विवादों में निरंतर विशुद्ध धातु परिचलन की परिकल्पना पर लौटकर आना पड़ा था। उन्हें ऐसा post festum करना पड़ा और उन्होंने ऐसा बहुत ही सतही ढंग से किया था, जो अनिवार्य भी था, क्योंकि प्रस्थान बिंदु, ने इस प्रकार उनके विश्लेषण में प्रासंगिक बिंदु की भूमिका ही अदा की थी।

लेकिन द्रव्य परिचलन का उसके **आद्य** रूप में प्रस्तुत सरलतम अध्ययन – और यह यहां वार्षिक पुनरुत्पादन प्रक्रिया का एक अंतर्भूत तत्व है – सिद्ध करता है:

क) उन्नत पूंजीवादी उत्पादन और इसलिए उजरती मज़दूरी व्यवस्था के प्राधान्य के कल्पित होने के कारण द्रव्य पूंजी स्पष्टतया प्रमुख भूमिका निबाहती है, क्योंकि परिवर्ती पूंजी इसी के रूप में पेशगी दी जाती है। उजरती मज़दूरी व्यवस्था के विकास के साथ-साथ सारा उत्पाद मालों में रूपांतरित होता जाता है और इसलिए – कुछ महत्वपूर्ण अपवाद छोड़कर – अपनी गति के एक दौर के नाते समूचे तौर पर उसे द्रव्य में रूपांतरण से गुज़रना होता है। परिचालित द्रव्य की माला मालों के द्रव्य में इस परिवर्तन के लिए पर्याप्त होनी चाहिए और इसका अधिकांश औद्योगिक पूंजीपतियों द्वारा मज़दूरी के रूप में, उस द्रव्य के रूप में उपलब्ध की जाती है, जिसे श्रम शक्ति की अदायगी में परिवर्ती पूंजी के द्रव्य रूप की तरह पेशगी दिये गये द्रव्य के रूप में उपलब्ध किया जाता है और जो मज़दूरों के हाथ में सामान्यतः केवल परिचलन के माध्यम (क्रय साधन) का काम करता है। यह बात नैसर्गिक अर्थव्यवस्था की

बिल्कुल उलटी है, जिसका वश्यता के हर रूप में (इसमें भूदासत्व भी शामिल है) प्राधान्य होता है और न्यूनाधिक आदिम समुदायों में तो और भी अधिक होता है, चाहे उनके साथ वश्यता या दासत्व की परिस्थितियां हों, या न हों।

दास व्यवस्था के अंतर्गत श्रम शक्ति के क्रय में निवेशित मुद्रा पूंजी स्थायी पूंजी के द्रव्य रूप की भूमिका निबाहती है, जिसका प्रतिस्थापन दास जीवन के सक्रिय काल के समाप्त होने के साथ-साथ क्रमशः ही होता है। इसलिए एथेंसवासियों में दासस्वामी द्वारा अपने दास को औद्योगिक काम में लगाकर प्रत्यक्षतः कमाये अथवा अन्य औद्योगिक नियोजकों को किराये पर देकर (जैसे खनन के लिए) अप्रत्यक्षतः कमाये मुनाफ़े को केवल पेशगी द्रव्य पूंजी पैर ब्याज (जमा मूल्य ह्रास छूट) समझा जाता था, जैसे पूंजीवादी उत्पादन के अंतर्गत औद्योगिक पूंजीपति बेशी मूल्य के एक भाग तथा स्थायी पूंजी के मूल्य ह्रास को अपनी स्थायी पूंजी के ब्याज तथा प्रतिस्थापन के खाते में डालता है। यही उन पूंजीपतियों का भी क़ायदा है, जो स्थायी पूंजी (इमारतें, मशीनें, वग़ैरह) भाड़े पर उठाते हैं। यहां मात्र घरेलू दासों पर विचार नहीं किया जा रहा, वे चाहे आवश्यक सेवाएं करते हों, चाहे विलास के साधनों के रूप में प्रदर्शन मात्र के लिए हों। वे आधुनिक चाकर वर्ग के अनुरूप हैं। किंतु दास व्यवस्था भी – जब तक वह खेती, कारख़ानेदारी, जहाज़रानी, वग़ैरह के उत्पादक श्रम का प्रमुख रूप रहती है, जैसे वह यूनान और रोम के उन्नत राज्यों में थी – नैसर्गिक अर्थव्यवस्था का एक तत्व बनाये रखती है। दास बाज़ार अपने माल – श्रम शक्ति – की पूर्ति युद्ध, लूट-पाट, आदि के ज़रिये बनाये रखता है और इस लूट-पाट का संवर्धन परिचलन प्रक्रिया से नहीं, वरन प्रत्यक्ष शारीरिक ज़ोर-ज़बरदस्ती द्वारा दूसरों की श्रम शक्ति के वास्तविक उपयोग द्वारा किया जाता है। संयुक्त राज्य अमरीका में भी उजरती श्रमवाले उत्तर के राज्यों तथा दास प्रथावाले दक्षिण के राज्यों के बीच के अंतःस्थ क्षेत्र के दक्षिण के लिए दास उत्पादक प्रदेश में, जहां बाज़ार में डाला जानेवाला दास स्वयं इस प्रकार वार्षिक पुनरुत्पादन का एक तत्व बन जाता था, बदल दिये जाने के बाद यह व्यवस्था ज़्यादा समय के लिए काफ़ी सिद्ध न हुई और फलस्वरूप बाज़ार की मांग पूरा करने के लिए अफ़्रीकी ग़ुलामों के व्यापार को जब तक संभव हुआ, जारी रखा गया।

ख) पूंजीवादी उत्पादन के आधार पर वार्षिक उत्पाद के विनिमय में द्रव्य के स्वतःस्फूर्त प्रवाह और पश्चप्रवाह ; स्थायी पूंजियों का उनके पूरे मूल्य तक एक बार पेशगी दिया जाना और परिचलन से इस मूल्य की अनेक वर्षों में क्रमिक निकासी, दूसरे शब्दों में अपसंचयों के वार्षिक निर्माण द्वारा उनका द्रव्य रूप में क्रमशः पुनर्गठन, जो नये सोने के वार्षिक उत्पादन पर आधारित अपसंचयों के समरूप संचय से तत्वतः भिन्न होता है ; मालों की उत्पादन अवधि की दीर्घता के अनुसार द्रव्य के पेशगी दिये जाने और फलतः मालों की बिक्री द्वारा उसकी परिचलन से पुनःप्राप्ति की जा सकने तक उसे हमेशा फिर से अपसंचित किये रखने की भिन्न-भिन्न कालावधियां ; और कुछ नहीं, तो उत्पादन स्थलों के उनके बाज़ारों से अलग-अलग फ़ासलों पर होने के फलस्वरूप द्रव्य के पेशगी दिये जाने की भिन्न-भिन्न कालावधियां ; इसके अलावा व्यवसाय की विभिन्न शाखाओं में और एक ही शाखा के अलग-अलग व्यवसायों में उत्पादक पूर्ति की हालत अथवा उसके सापेक्ष आकार के अनुसार पश्चप्रवाह की अवधि और परिमाण में और इसलिए स्थिर पूंजी के तत्वों के ख़रीदे जाने की अवधियों में अंतर, और यह सब पुनरुत्पादन वर्ष के दौरान – उधार पद्धति के यांत्रिक साधनों के व्यवस्थित उपयोग का और उपलभ्य उधारार्थ पूंजियों के वास्तविक खोज निकालने का समारंभ करने के लिए स्वतःस्फूर्त

गति के इन सभी विभिन्न पक्षों को अनुभव से हृदयंगम करने और उन्हें उभारकर प्रस्तुत करने भर की आवश्यकता थी।

यहां व्यवसाय की उन शाखाओं, जिनका उत्पादन अन्यथा सामान्य परिस्थितियों में उसी पैमाने पर निरंतर चलता रहता है, और उन शाखाओं में, जो साल के अलग-अलग दौरों में श्रम शक्ति की विभिन्न मात्राएं इस्तेमाल करती हैं, जैसे खेती, अंतर भी शामिल किया जाना चाहिए।

१३. देस्तु द त्रासी का पुनरुत्पादन सिद्धांत[56]

आइये, सामाजिक पुनरुत्पादन का विश्लेषण करनेवाले अर्थशास्त्रियों की उलझनभरी और साथ ही दंभपूर्ण विचारहीनता का निदर्शन हम प्रकांड तर्कशास्त्री देस्तु द त्रासी के उदाहरण से करें (तुलना के लिए देखें : Buch I, p. 146, Note 30),* जिन्हें रिकार्डो तक महत्व देते थे और अति लब्धप्रतिष्ठ लेखक कहते थे (*Principles*, पृष्ठ ३३३)।

सामाजिक पुनरुत्पादन और परिचलन की समूची प्रक्रिया के संदर्भ में यह "लब्धप्रतिष्ठ लेखक" निम्नलिखित व्याख्याएं देते हैं :

"मुझसे पूछा जायेगा कि ये औद्योगिक उद्यमकर्ता किस तरह ऐसे बड़े मुनाफ़े कमाते हैं और किन लोगों से वे उन्हें बटोरते हैं। मेरा जवाब है कि जो भी चीज़ वे पैदा करते हैं, उसे पैदा करने की लागत से ज्यादा पर बेचकर; और वे बेचते हैं :

"१) एक दूसरे को, अपनी आवश्यकताओं की तुष्टि के लिए उद्दिष्ट अपने उपभोग के समस्त अंश को, जिसकी अदायगी वे अपने मुनाफ़ों के एक अंश से करते हैं;

"२) उजरती मज़दूरों को, जिन्हें वे ख़ुद पैसा देते हैं और जिन्हें निष्क्रिय पूंजीपति पैसा देते हैं, उन्हें भी; इन उजरती मजदूरों से वे इस प्रकार संभवतः उनकी थोड़ी सी बचत के सिवा उनकी सारी मज़दूरी को खसोट लेते हैं;

"३) निष्क्रिय पूंजीपतियों को, जो उनकी अदायगी अपनी आय के उस अंश से करते हैं, जो उन्होंने अभी अपने द्वारा प्रत्यक्षतः नियोजित उजरती मजदूरों को नहीं दिया है; परिणामस्वरूप वे उन्हें प्रति वर्ष जो किराया देते हैं, वह सारा का सारा किसी न किसी तरह उनके पास लौट आता है।" (देस्तु द त्रासी, *Traité de la volonté et de ses effets*, पेरिस, १८२६, पृष्ठ २३९।)

दूसरे शब्दों में पूंजीपति अपने बेशी मूल्य के उस अंश के विनिमय में एक दूसरे को मात देकर धनी बनते हैं, जिसे वे अपने व्यक्तिगत उपभोग के लिए अलग रखते हैं अथवा आय के रूप में उपभोग करते हैं। उदाहरण के लिए, अगर उनके बेशी मूल्य का अथवा उनके मुनाफ़ों का यह अंश ४०० पाउंड के बराबर है, तो कल्पना यह की गई है कि उसके प्रत्येक अंशधारी द्वारा अपने अंश के दूसरे को २५ प्रतिशत ज्यादा पर बेचने पर ४०० पाउंड की इस राशि को बढ़कर – कहिये कि ५०० पाउंड हो जाना चाहिए। लेकिन चूंकि सभी ऐसा ही करते हैं, इसलिए अगर उन्होंने एक दूसरे को वास्तविक मूल्य पर बेचा होता, तो भी नतीजा वही होता। उन्हें

---

[56] पाण्डुलिपि २ से। – फ़े० एं०

* हिंदी संस्करण : पृष्ठ १८५, टिप्पणी १। – सं०

५०० पाउंड की द्रव्य रूप में ज़रूरत महज़ ४०० पाउंड के माल के परिचलन के लिए है और यह ख़ुद को धनी बनाने का नहीं, वरन निर्धन बनाने का तरीक़ा लगेगा, क्योंकि यह उन्हें अपनी कुल संपदा के एक बड़े अंश को परिचलन साधन के निष्प्रयोजन रूप में अनुत्पादक ढंग से रखने के लिए मजबूर करता है। सारी बात का निचोड़ यह निकलता है कि अपने मालों की क़ीमत में सर्वतोमुखी नामिक वृद्धि के बावजूद पूंजीपति वर्ग के पास व्यक्तिगत उपभोग के लिए आपस में वितरित करने को केवल ४०० पाउंड का माल रह जाता है, लेकिन वे एक दूसरे पर ४०० पाउंड के माल को ५०० पाउंड मूल्य के माल का परिचलन करने के लिए आवश्यक द्रव्य राशि द्वारा परिचालित करने की अनुकंपा करते हैं।

और यह सब इस बात से क़तई दरकिनार कि "उनके मुनाफ़े का एक अंश" और इसलिए सामान्यतः मालों की ऐसी पूर्ति, जिसमें मुनाफ़ा अस्तित्वमान है, यहां कल्पित है। किंतु देस्तु ने तो हमें ठीक यही बताने का जिम्मा लिया था कि ये मुनाफ़े आते कहां से हैं। मुनाफ़े के परिचलन के लिए आवश्यक द्रव्य राशि अति गौण समस्या है। मालों की जिस राशि में मुनाफ़ा प्रकट होता है, उसका मूल इस तथ्य में प्रतीत होता है कि पूंजीपति इन मालों को एक दूसरे को सिर्फ़ बेचते ही नहीं हैं – यद्यपि यह भी काफ़ी बारीक और गहरी बात है, बल्कि एक दूसरे को बहुत ही ऊंचे दाम पर बेचते हैं। तो अब पूंजीपतियों के धनी बनने के एक स्रोत का हमें पता चल गया। यह बात "एंत्स्पेक्तोर ब्रयेज़िग"* के रहस्य के जोड़ की है कि बेहद ग़रीबी का कारण बेहद pauvreté [ग़रीबी] है।

२) इसके अलावा वही पूंजीपति बेचते हैं "उजरती मजदूरों को, जिन्हें वे ख़ुद पैसा देते हैं और जिन्हें निष्क्रिय पूंजीपति पैसा देते हैं, उन्हें भी; इन उजरती मजदूरों से वे इस प्रकार संभवतः उनकी थोड़ी सी बचत के सिवा उनकी सारी मजदूरी को खसोट लेते हैं।"

इसलिए श्रीमान देस्तु के अनुसार इन पूंजीपतियों के धनी बनने का दूसरा स्रोत मुद्रा पूंजी का पश्चप्रवाह है, वह रूप है, जिसमें पूंजीपतियों ने मज़दूरों को मजदूरी पेशगी दी है।

इसलिए यदि पूंजीपतियों ने अपने मज़दूरों को मसलन, १०० पाउंड मजदूरी के रूप में दिये और तब यदि वही मजदूर उन्हीं पूंजीपतियों से उसी मूल्य, १०० पाउंड, के माल ख़रीदते हैं, जिससे कि पूंजीपतियों ने श्रम शक्ति के ग्राहकों के रूप में १०० पाउंड की जो राशि पेशगी दी थी, वह पूंजीपतियों के पास लौट आती है, जब वे मज़दूरों के हाथ १०० पाउंड मूल्य का माल बेचते हैं, और इस तरह पूंजीपति **अधिक धनी बन जाते हैं**। थोड़ी सी सामान्य बुद्धिवाला भी समझ लेगा कि वे अपने हाथ में अपने वही १०० पाउंड फिर पाते हैं, जो प्रक्रिया के पहले उनके पास थे। प्रक्रिया के शुरू होने के समय उनके पास द्रव्य रूप में १०० पाउंड होते हैं। इन १०० पाउंड से वे श्रम शक्ति ख़रीदते हैं। ख़रीदा हुआ श्रम द्रव्य रूप में इन १०० पाउंड के बदले माल पैदा करता है, जिसका मूल्य, जहां तक हम अब जानते हैं, १०० पाउंड के बराबर है। १०० पाउंड का माल अपने मजदूरों को बेचकर पूंजीपति १०० पाउंड द्रव्य रूप में वापस पा लेते हैं। तब पूंजीपतियों के पास फिर द्रव्य रूप में १०० पाउंड होते हैं और मजदूरों के पास ख़ुद मज़दूरों का बनाया हुआ १०० पाउंड का माल होता है। यह समझना मुश्किल है कि इससे पूंजीपति और ज्यादा धनी कैसे बन सकते हैं। अगर द्रव्य रूप में ये १०० पाउंड उनके पास वापस न आते, तो उन्हें पहले मजदूरों को उनके श्रम के लिए द्रव्य रूप में

* जर्मन व्यंग्यकार फ़्रित्स रायतर (१८१०-१८७४) की कई कृतियों का एक पात्र। – सं०

१०० पाउंड देने पड़ते और दूसरे, उन्हें इस श्रम का उत्पाद, १०० पाउंड की उपभोग वस्तुएं, मुफ़्त देना पड़ता। इसलिए इस द्रव्य का पश्चप्रवाह बहुत से बहुत इसकी व्याख्या कर सकता है कि इस लेन-देन से पूंजीपति और ज्यादा ग़रीब क्यों नहीं हुए, लेकिन इसकी हरगिज़ व्याख्या नहीं कर सकता कि वे इससे ज्यादा धनी क्यों हो जाते हैं।

बेशक यह अलग सवाल है कि पूंजीपतियों के हाथ में ये १०० पाउंड आये कैसे और मज़दूरों को ख़ुद अपने लिए माल पैदा करने के बदले क्यों अपनी श्रम शक्ति का इन १०० पाउंड से विनिमय करना पड़ता है। किंतु देस्तु की सी प्रतिभा के विचारक के लिए यह सब स्वत:सिद्ध है।

स्वयं देस्तु भी इस समाधान से पूर्णत: संतुष्ट नहीं होते। आख़िर उन्होंने हमसे यह तो कहा नहीं था कि कोई आदमी कोई रक़म, १०० पाउंड, ख़र्च करके और इसके बाद १०० पाउंड रक़म फिर हासिल करके, अत: १०० पाउंड के द्रव्य रूप में पश्चप्रवाह से ज्यादा धनी बन जाता है, जिससे केवल इसी बात का पता चलता है कि द्रव्य रूप में १०० पाउंड खो क्यों नहीं जाते। वह हमसे कहते हैं कि पूंजीपति "जो भी चीज़ वे पैदा करते हैं, उसे पैदा करने की लागत से ज्यादा पर बेचकर" धनी बनते हैं।

फलत: पूंजीपति मज़दूरों से भी अपने लेन-देनों में उन्हें बहुत महंगा बेचकर अधिक धनी बनेंगे। बहुत ठीक! "वे मज़दूरी देते हैं ... और यह सब इन सभी लोगों के व्यय के ज़रिये उनके पास वापस आ जाता है, जो मज़दूरी में उन्होंने" [पूंजीपतियों ने] "जो कुछ लगाया था, उससे ज्यादा उन्हें" [उत्पाद के लिए] "देते हैं।" (वही, पृष्ठ २४०।) दूसरे शब्दों में पूंजीपति मज़दूरों को मज़दूरी में १०० पाउंड देते हैं और फिर इन मज़दूरों को उन्हीं का उत्पाद १२० पाउंड पर बेच देते हैं, जिससे कि वे अपने १०० पाउंड वापस ही नहीं पा जाते, बल्कि २० पाउंड का मुनाफ़ा भी पा जाते हैं? यह असंभव है। मज़दूर वही धन दे सकते हैं, जो उन्हें मज़दूरी के रूप में मिलता है। यदि उन्हें पूंजीपतियों से मज़दूरी में १०० पाउंड मिलते हैं, तो वे १०० पाउंड की ही ख़रीदारी कर सकते हैं, १२० पाउंड की नहीं। इसलिए इससे काम नहीं चलेगा। लेकिन एक रास्ता अभी और है। मज़दूर पूंजीपतियों से १०० पाउंड का माल ख़रीदते हैं, लेकिन असल में पाते सिर्फ़ ८० पाउंड का माल ही हैं। इस तरह २० पाउंड उनसे क़तई ठग लिये जाते हैं। और पूंजीपति को २० पाउंड का निरपेक्ष लाभ होता है, क्योंकि उसने श्रम शक्ति के लिए उसके मूल्य से असल में २०% कम दिये अथवा चक्करदार रास्ते से वास्तविक मज़दूरी में २० फ़ीसदी कटौती कर दी।

पूंजीपति वर्ग अगर आरंभ में ही मज़दूरों को मज़दूरी में केवल ८० पाउंड दे और बाद में द्रव्य रूप के इन ८० पाउंड के बदले उन्हें वस्तुत: ८० पाउंड का ही माल दे, तो भी वह इसी लक्ष्य की सिद्धि करेगा। पूंजीपति वर्ग पर समूचे तौर पर विचार करें, तो यही सामान्य तरीक़ा जान पड़ता है, क्योंकि स्वयं श्रीमान देस्तु के अनुसार मेहनतकश वर्ग को "पर्याप्त मज़दूरी" मिलनी चाहिए (पृष्ठ २१९), क्योंकि उनकी मज़दूरी कम से कम इतनी तो होनी ही चाहिए कि वे जीने और काम करने लायक़ बने रहें, "निर्वाह मात्र को तो जुटा सकें" (पृष्ठ १८०)। यदि मज़दूरों को ऐसी पर्याप्त मज़दूरी नहीं मिलती है, तो उसका अर्थ, उन्हीं देस्तु के अनुसार होगा "उद्योग की मौत" (पृष्ठ २०८), जो इस कारण ऐसा तरीक़ा नहीं लगता कि जिससे पूंजीपति ज्यादा धनी बन सकें। किंतु मज़दूर वर्ग को पूंजीपति जो मज़दूरी देते हैं, उसका पैमाना चाहे जो हो, मज़दूरी का एक निश्चित मूल्य होता है, यथा ८० पाउंड।

यदि पूंजीपति वर्ग मज़दूरों को ८० पाउंड देता है, तो उसे इन ८० पाउंड के बदले उन्हें ८० पाउंड का माल भी देना होगा और ८० पाउंड का पश्चप्रवाह उसे अधिक धनी नहीं बनाता। यदि वह उन्हें द्रव्य रूप में १०० पाउंड देता है और उन्हें ८० पाउंड का माल १०० पाउंड में बेचता है, तो वह उनकी सामान्य मज़दूरी से उन्हें द्रव्य रूप में २५% अधिक देता है, और बदले में उन्हें २५% कम माल देता है।

दूसरे शब्दों में, जिस निधि से पूंजीपति वर्ग सामान्यतः अपना लाभ प्राप्त करता है, वह फ़र्ज़ी तौर पर श्रम शक्ति के लिए उसके मूल्य से कम, अर्थात उजरती मज़दूरों के नाते उनके सामान्य पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक निर्वाह साधनों के मूल्य से कम अदायगी करके सामान्य मज़दूरी से कटौतियों से बनी होती है। इसलिए यदि सामान्य मज़दूरी दी जाती है,—और देस्तु के अनुसार ऐसा होता ही है—तो न तो औद्योगिक पूंजीपतियों के लिए और न निष्क्रिय पूंजीपतियों के लिए ही कोई लाभ निधि हो सकती है।

इसलिए देस्तु को इस सारे रहस्य को कि पूंजीपति वर्ग कैसे धनी बनता है, यों प्रकट करना चाहिए था: मज़दूरी में कटौती करके। उस हालत में जिन अन्य बेशी मूल्य निधियों का वह १ तथा ३ के अंतर्गत उल्लेख करते हैं, उनका कहीं अस्तित्व न होगा।

इसलिए जिन देशों में भी मज़दूरों की नक़द मज़दूरी वर्ग रूप में उनके निर्वाह के लिए आवश्यक उपभोग वस्तुओं के मूल्य में परिवर्तित कर दी जायेगी, उन सभी देशों में पूंजीपतियों के लिए न कोई उपभोग निधि और न कोई संचय निधि होगी और इसलिए पूंजीपति वर्ग के लिए कोई अस्तित्व निधि भी न होगी और इसलिए पूंजीपति वर्ग भी न होगा। और देस्तु के अनुसार प्राचीन सभ्यतावाले सभी समृद्ध और विकसित देशों में ऐसा ही होना चाहिए भी, क्योंकि उनमें, "हमारे प्राचीन समाजों में, उजरती मज़दूरों की भरण-पोषण निधि... लगभग स्थिर परिमाण की होती है" (पृष्ठ २०२)।

मज़दूरी से कटौतियों से भी पूंजीपति इस तरह धनी नहीं बन जाता कि पहले मज़दूर को १०० पाउंड द्रव्य रूप में दे और फिर इन १०० पाउंड के बदले उसे ८० पाउंड का माल दे और इस तरह दरअसल १०० पाउंड के द्वारा ८० पाउंड का, २५% अधिक का माल परिचालित करे। पूंजीपति बेशी मूल्य उत्पाद के उस अंश, जिसमें बेशी मूल्य प्रकट होता है, के अलावा उत्पाद के उस २५ प्रतिशत अंश को भी, जो मज़दूर को मज़दूरी के रूप में मिलना चाहिए, हथिया करके धनी बनता है। देस्तु द्वारा कल्पित मूर्खतापूर्ण तरीक़े से पूंजीपति वर्ग को कोई लाभ नहीं होगा। वह मज़दूरी के १०० पाउंड देता है और इन १०० पाउंड के बदले मज़दूर को ८० पाउंड का उसी का उत्पाद वापस कर देता है। किंतु अगले लेन-देन में उसे उसी प्रक्रिया के लिए फिर १०० पाउंड पेशगी देने होंगे। इस तरह वह एक बेकार का खेल खेलेगा कि द्रव्य रूप में १०० पाउंड पेशगी दे और बदले में ८० पाउंड का माल दे, बजाय इसके कि द्रव्य रूप में ८० पाउंड पेशगी दे और उनके बदले में ८० पाउंड का माल दे। अर्थात वह अपनी परिवर्ती पूंजी के परिचलन के लिए आवश्यक मुद्रा पूंजी से २५% अधिक निरंतर निष्प्रयोजन पेशगी देता रहेगा, जो धनी बनने का बड़ा विचित्र तरीक़ा है।

३) अंतिम बात, पूंजीपति बेचते हैं "निष्क्रिय पूंजीपतियों को, जो उनकी अदायगी अपनी आय के उस अंश से करते हैं, जो उन्होंने अभी अपने द्वारा प्रत्यक्षतः नियोजित उजरती मज़दूरों को नहीं दिया है; परिणामस्वरूप वे उन्हें प्रति वर्ष जो किराया देते हैं, वह सारा का सारा किसी न किसी तरह उनके पास लौट आता है।"

ऊपर हम देख चुके हैं कि औद्योगिक पूंजीपति "अपने मुनाफ़ों के एक अंश से अपनी आवश्यकताओं की तुष्टि के लिए उद्दिष्ट अपने उपभोग के समस्त अंश की अदायगी करते हैं।" इसलिए मान लीजिये कि उनके मुनाफ़े २०० पाउंड के बराबर हैं। और इनमें से वे, मसलन, १०० पाउंड अपने व्यक्तिगत उपभोग में लगा देते हैं। किंतु दूसरा आधा भाग अथवा १०० पाउंड उनका नहीं है, वह निष्क्रिय पूंजीपतियों का है, यानी उनका, जो किराया ज़मीन पाते हैं, और उन पूंजीपतियों का है, जो ब्याज पर पैसा उठाते हैं। इसलिए उन्हें १०० पाउंड इन भद्रजनों को देने होंगे। मान लीजिये कि इन भद्रजनों को इस द्रव्य में से ८० पाउंड की आवश्यकता अपने व्यक्तिगत उपभोग के लिए है और २० पाउंड की सेवक रखने, वग़ैरह के लिए है। उन ८० पाउंड से वे औद्योगिक पूंजीपतियों से उपभोग वस्तुएं ख़रीदते हैं। इस प्रकार जहां इन पूंजीपतियों को ८० पाउंड का माल देना होता है, वहां उन्हें द्रव्य रूप में ८० पाउंड अथवा किराये, सूद, वग़ैरह के नाम पर निष्क्रिय पूंजीपतियों को दिये १०० पाउंड का ४/५ हिस्सा वापस मिल जाता है। इसके अलावा चाकर वर्ग, जो निष्क्रिय पूंजीपतियों का प्रत्यक्ष उजरती मज़दूर है, अपने मालिकों से २० पाउंड पा जाता है। ये नौकर भी इसी प्रकार औद्योगिक पूंजीपतियों से २० पाउंड की उपभोग वस्तुएं ख़रीदते हैं। इस तरह २० पाउंड के माल को देने पर ये पूंजीपति द्रव्य रूप में २० पाउंड वापस पा जाते हैं, जो उनके द्वारा निष्क्रिय पूंजीपतियों को किराये, सूद, वग़ैरह के लिए दिये १०० पाउंड का अंतिम पंचमांश हैं।

लेन-देन के अंत में औद्योगिक पूंजीपतियों ने द्रव्य रूप में १०० पाउंड वसूल कर लिये हैं, जो उन्होंने किराये, सूद, वग़ैरह के लिए निष्क्रिय पूंजीपतियों को दिये थे। किंतु इसी बीच उनके बेशी उत्पाद का १०० पाउंड के बराबर आधा भाग उनके हाथ से निकलकर निष्क्रिय पूंजीपतियों की उपभोग निधि में पहुंच गया।

यहां विचाराधीन प्रश्न के संदर्भ में निष्क्रिय पूंजीपतियों और उनके प्रत्यक्ष उजरती मज़दूरों के बीच १०० पाउंड के वितरण को जैसे भी करके लाना स्पष्टतः अनावश्यक है। मामला सीधा है: उनका किराया, सूद, संक्षेप में – बेशी मूल्य में उनका २०० पाउंड के बराबर हिस्सा उन्हें औद्योगिक पूंजीपतियों द्वारा द्रव्य रूप में दिया जाता है, जो १०० पाउंड के बराबर होता है। इन १०० पाउंड से वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में औद्योगिक पूंजीपतियों से उपभोग वस्तुएं ख़रीदते हैं। इस प्रकार वे उन्हें द्रव्य रूप में १०० पाउंड वापस करते हैं और उनसे १०० पाउंड की उपभोग वस्तुएं लेते हैं।

इसके साथ औद्योगिक पूंजीपतियों द्वारा निष्क्रिय पूंजीपतियों को दिये द्रव्य रूप में १०० पाउंड का पश्चप्रवाह पूरा हो जाता है। क्या द्रव्य का यह पश्चप्रवाह औद्योगिक पूंजीपतियों को धनी बनाने का साधन है, जैसा कि देस्तु सोचते हैं? लेन-देन के पहले उनके पास २०० पाउंड की एक मूल्य राशि थी, जिसमें १०० द्रव्य रूप में थे और १०० उपभोग वस्तुओं के रूप में। लेन-देन के बाद उनके पास आद्य मूल्य राशि का आधा ही है। द्रव्य रूप में १०० पाउंड फिर उनके पास आ गये हैं, लेकिन उपभोग वस्तुओं के रूप में १०० पाउंड चले गये हैं, जो निष्क्रिय पूंजीपतियों के हाथ में पहुंच गये हैं। इसलिए १०० पाउंड से समृद्ध होने के बदले वे १०० पाउंड से और निर्धन हो गये हैं। पहले १०० पाउंड द्रव्य रूप में देने और फिर १०० पाउंड की उपभोग वस्तुओं की अदायगी में ये १०० पाउंड द्रव्य रूप में वापस पाने के चक्करदार रास्ते के बदले, यदि वे किराया, सूद, वग़ैरह अपने उत्पाद के दैहिक रूप में प्रत्यक्षतः दे देते, तो परिचलन

से उनके पास द्रव्य रूप में लौटते १०० पाउंड न होते, क्योंकि उन्होंने यह द्रव्य राशि परि-चलन में डाली ही न होती। जिस रूप में अदायगी की राह से सारी प्रक्रिया केवल यह रही होती: २०० पाउंड के बेशी उत्पाद का अर्धांश वे अपने लिए रख लेते और दूसरा अर्धांश बदले में कोई समतुल्य पाये बिना निष्क्रिय पूंजीपतियों को दे देते। देस्तु तक को यह कहने का लोभ न होता कि यह और धनी बनने का साधन है।

निस्संदेह औद्योगिक पूंजीपति निष्क्रिय पूंजीपतियों से जो ज़मीन और पूंजी उधार लेते हैं और जिसके लिए किराया ज़मीन, सूद, वग़ैरह के रूप में अपने बेशी मूल्य का एक भाग उन्हें देना होता है, वह उनके लिए लाभदायी है, क्योंकि यह सामान्य रूप में माल के और उत्पाद के उस अंश के, जो बेशी उत्पाद होता है, अथवा जिसमें बेशी मूल्य प्रकट होता है, उत्पादन की शर्तों में एक है। यह लाभ उधार ली हुई भूमि और पूंजी के उपयोग से प्रोद्भूत होता है, उनके लिए दी हुई क़ीमत से नहीं। बल्कि यह क़ीमत लाभ से कटौती ही है। अन्यथा यह तर्क करना होगा कि यदि औद्योगिक पूंजीपति अपने बेशी मूल्य का द्वितीय अर्धांश दूसरों को देने के बदले उसे अपने पास रख सकें, तो इससे वे धनी बनने के बदले और निर्धन हो जायेंगे। यह द्रव्य के पश्चप्रवाह जैसी परिचलन की परिघटनाओं को उत्पाद के वितरण से, जो परिचलन के इन परिघटनाओं द्वारा संवर्धित ही होता है, गडमड करने से उत्पन्न उलझन है।

फिर भी इन्हीं देस्तु में इतनी चतुराई है कि कहें: "इन निष्क्रिय भद्रजनों की आय कहां से आती है? क्या यह आय उस किराये से नहीं होती, जो उनकी पूंजी को काम में लगानेवाले लोग अपने मुनाफ़े से उन्हें देते हैं, यानी वे लोग, जो उनकी निधि से ऐसे श्रम का भुगतान करते हैं, जो अपनी लागत से ज्यादा पैदा करता है, संक्षेप में औद्योगिक पूंजीपति। संपदा का स्रोत जानने के लिए फिर उन्हीं पर ध्यान देना सदैव आवश्यक है। यही वे लोग हैं, जो वास्तव में प्रथमोक्त द्वारा नियोजित उजरती मजदूरों का भरण-पोषण करते हैं" (पृष्ठ २४६)।

इसलिए अब इस किराये, आदि की अदायगी औद्योगिक पूंजीपतियों के मुनाफ़े से कटौती बन गयी है। इससे पहले वह उनका अपने को धनी बनाने का एक साधन थी।

लेकिन फिर भी हमारे देस्तु को तसल्ली देने के लिए कम से कम एक चीज़ तो रह जाती है। ये भले उद्योगपति निष्क्रिय पूंजीपतियों से वैसा ही व्यवहार करते हैं, जैसा वे एक दूसरे से और मजदूरों से करते आये हैं। वे उन्हें सभी माल बहुत महंगा, मसलन, २० प्रतिशत ज्यादा दाम पर बेचते हैं। अब दो संभावनाएं हैं। या तो निष्क्रिय पूंजीपतियों के पास उन १०० पाउंड के अलावा, जो उन्हें औद्योगिक पूंजीपतियों से प्रति वर्ष मिलते हैं, धन के अन्य स्रोत हैं या फिर नहीं हैं। पहली स्थिति में औद्योगिक पूंजीपति उन्हें १०० पाउंड का माल, मसलन, १२० पाउंड पर बेचते हैं। परिणामस्वरूप अपना माल बेच लेने पर वे निष्क्रिय लोगों को दिये १०० पाउंड ही नहीं वापस पा जाते, वरन इसके अलावा २० पाउंड भी पा जाते हैं, जो उनके लिए दरअसल नया मूल्य हैं। अब हिसाब कैसा नजर आता है? उन्होंने मालों के रूप में १०० पाउंड मुफ़्त में दे दिये हैं, क्योंकि उनके मालों के आंशिक भुगतान में उन्हें द्रव्य रूप में जो १०० पाउंड दिये गये थे, वे उन्हीं का धन थे। इस तरह उनके माल का उन्हीं के धन से भुगतान किया गया है। इस तरह उन्हें १०० पाउंड का घाटा हुआ है। किंतु उन्हें अपने मालों की क़ीमत के रूप में उनके मूल्य के अलावा २० पाउंड अधिक भी मिले हैं, जिससे २० पाउंड की क्षतिपूर्ति हो जाती है। इसका १०० पाउंड के घाटे के साथ जोड़ बैठाइये, तो

८० पाउंड का घाटा फिर भी रह जाता है। जोड़ का कभी इंदराज नहीं, हमेशा बाक़ी ही बाक़ी। निष्क्रिय पूंजीपतियों की ठगाई ने औद्योगिक पूंजीपतियों का घाटा तो कम कर दिया है, लेकिन इस सबने उनकी संपदा के ह्रास को समृद्धीकरण के साधन में नहीं बदल दिया है। लेकिन यह तरकीब अनिश्चित काल तक काम आती रहे, यह नहीं हो सकता, क्योंकि निष्क्रिय पूंजीपति अगर साल दर साल द्रव्य रूप में केवल १०० पाउंड प्राप्त करते हैं, तो उनके लिए साल दर साल द्रव्य रूप में १२० पाउंड देते रहना संभव नहीं होगा।

अब दूसरा तरीक़ा रह जाता है: औद्योगिक पूंजीपति निष्क्रिय पूंजीपतियों को द्रव्य रूप में दिये १०० पाउंड के बदले ८० पाउंड का माल बेचते हैं। इस हालत में पहले की ही तरह किराये, सूद, वग़ैरह के रूप में वे अब भी ८० पाउंड मुफ़्त में दे देते हैं। इस धोखाधड़ी के ज़रिये औद्योगिक पूंजीपतियों ने निष्क्रियों को दिये जानेवाले अपने ख़िराज को कम तो कर लिया है, फिर भी वह बना हुआ तो है ही, और निष्क्रिय लोग इस स्थिति में होते हैं – यह घोषित करनेवाले उसी सिद्धांत के अनुसार कि क़ीमतें विक्रेताओं के सुनाम पर निर्भर करती हैं – कि भविष्य में अपनी ज़मीन और पूंजी के किराये, सूद, वग़ैरह के तौर पर पहले के १०० पाउंड के बदले १२० पाउंड की मांग करें।

यह चमत्कारी विश्लेषण उस गंभीर विचारक के सर्वथा योग्य है, जो एक ओर ऐडम स्मिथ की यह नक़ल करता है कि "श्रम सारी संपदा का स्रोत है" (पृष्ठ २४२), और यह कि औद्योगिक पूंजीपति "अपनी पूंजी उस श्रम के भुगतान में लगाते हैं, जो मुनाफ़े सहित उसका पुनरुत्पादन करता है" (पृष्ठ २४६), और दूसरी ओर, जो यह निष्कर्ष निकालता है कि ये औद्योगिक पूंजीपति "अन्य सभी लोगों का भरण-पोषण करते हैं और एकमात्र ऐसे लोग हैं, जो सार्वजनिक संपदा की वृद्धि करते हैं और हमारे सभी उपभोग साधनों का सृजन करते हैं" (पृष्ठ २४२), और यह कि पूंजीपतियों का भरण-पोषण मज़दूर नहीं करते, वरन मज़दूरों का भरण-पोषण पूंजीपति करते हैं, इस विलक्षण कारण से कि मज़दूरों को जो धन दिया जाता है, वह उनके हाथ में नहीं रह पाता, वरन मज़दूरों द्वारा ही उत्पादित मालों की अदायगी में पूंजीपतियों के पास निरंतर लौटता रहता है। "वे बस यही करते हैं कि इस हाथ से दिया और उस हाथ से वापस लिया। इसलिए उनके उपभोग को उन्हें काम पर लेनेवालों द्वारा ही जनित माना जाना चाहिए" (पृष्ठ २३५)।

सामाजिक पुनरुत्पादन और उपभोग के इस सुविस्तृत विश्लेषण के बाद कि वे द्रव्य परिचलन से कैसे सम्पन्न होते हैं, देस्तु आगे कहते हैं: "यही वह चीज़ है, जो संपदा की इस perpetuum mobile [सतत गतिशीलता] को पूर्ण बनाती है, जिस गति को ठीक से न समझे जाने पर भी" (mal connu, मैं भी यही कहूंगा!) "उचित ही परिचलन का नाम दिया गया है। कारण यह कि सचमुच यह एक परिपथ है और सदा अपने प्रस्थान बिंदु पर लौट आता है। इसी बिंदु पर उत्पादन की निष्पत्ति होती है" (पृष्ठ २३६ और २४०)।

अति लब्धप्रतिष्ठ लेखक देस्तु, फ़्रांसीसी संस्थान और फ़िलाडेलफ़िया दार्शनिक समाज के सदस्य, और वस्तुतः एक हद तक अनगढ़ अर्थशास्त्रियों के बीच एक नक्षत्र, देस्तु अपने पाठकों से अंत में अनुरोध करते हैं कि जिस आश्चर्यजनक स्पष्टता से उन्होंने सामाजिक प्रक्रिया का विवेचन प्रस्तुत किया है, विषय पर उन्होंने जो प्रकाश पुंज डाला है, उसकी वे प्रशंसा करें, और बड़ी अनुकंपा करके वह पाठकों को यह भी बता देते हैं कि इस सारे प्रकाश का स्रोत कहां है। इसे मूल में ही पढ़ना उचित है: "On remarquera, j'espère, combien cette

manière de considérer la consommation de nos richesses est concordante avec tout ce que nous avons dit à propos de leur production et de leur distribution, et en même temps *quelle clarté elle répand sur toute la marche de la société.* D'oú viennent cet accord et cette *lucidité?* De ce que nous avons rencontré la vérité. Cela rappelle l'effet de ces miroirs où les objets se peignent nettement et dans leurs justes proportions, quand on est placé dans leur vrai point de vue, et où tout paraît confus et dèsuni, quand on en est trop près ou trop loin." (पृष्ठ २४२ और २४३।)*

Voilà le crétinisme bourgeois dans toute sa bèatitudé! "**

---

*"मैं आशा करता हूं कि इस बात पर ध्यान दिया जायेगा कि अपनी संपदा की निष्पत्ति को देखने की यह पद्धति उसके उत्पादन और वितरण के बारे में हम जो कुछ कहते आये हैं, उस सब के कितनी अनुरूप है, और साथ ही **समाज की सारी प्रगति पर यह कितना प्रकाश डालती है।** इस अनुरूपता और इस **सुबोधगम्यता** का स्रोत क्या है? यह तथ्य कि हमने सत्य का साक्षात्कार कर लिया है। यहां उन दर्पणों के प्रभाव का स्मरण हो आता है, जिनमें सही परिप्रेक्ष्य होने पर चीज़ें ठीक-ठीक और अपने सही आकार-प्रकार में प्रतिबिंबित होती हैं, किंतु जिनमें चीज़ों को बहुत पास या बहुत दूर रखने पर सब कुछ उलझा हुआ और अस्त-व्यस्त दिखाई देता है।" – सं०

**यह है बूर्जुआ मूर्खता का भव्यतम प्रदर्शन! – सं०

अध्याय २१[57]

संचय तथा विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन

प्रथम खंड में दिखाया जा चुका है कि वैयक्तिक पूंजीपति के प्रसंग में संचय कैसे कार्य करता है। माल पूंजी के द्रव्य में परिवर्तित होने से बेशी उत्पाद भी, जिसमें बेशी मूल्य व्यक्त होता है, द्रव्य में बदल जाता है। पूंजीपति इस प्रकार रूपांतरित बेशी मूल्य को अपनी उत्पादक पूंजी के अतिरिक्त नैसर्गिक तत्वों में पुन:परिवर्तित कर लेता है। उत्पादन के अगले चक्र में वर्धित पूंजी वर्धित उत्पाद प्रदान करती है। किंतु वैयक्तिक पूंजी के प्रसंग में जो कुछ होता है, वह समूचे तौर पर वार्षिक पुनरुत्पादन में भी लक्षित होना चाहिए, जैसे साधारण पुनरुत्पादन का विश्लेषण करने पर हम इसे होते देख चुके हैं, अर्थात वैयक्तिक पूंजी के प्रसंग में उसके उपयुक्त स्थायी संघटक अंशों का संचित होते द्रव्य में निरंतर अवक्षेपण समाज के वार्षिक पुनरुत्पादन में भी व्यक्त होता है।

यदि कोई वैयक्तिक पूंजी $४००_{स} + १००_{प}$ के बराबर है और वार्षिक बेशी मूल्य १०० के बराबर है, तो माल उत्पाद $४००_{स} + १००_{प} + १००_{बे}$ के बराबर होगा। ये ६०० द्रव्य में परिवर्तित हो जाते हैं। इस द्रव्य से $४००_{स}$ फिर स्थिर पूंजी के नैसर्गिक रूप में बदल जाते हैं, $१००_{प}$ श्रम शक्ति में, और इसके अलावा – बशर्ते कि सारा बेशी मूल्य संचित हो रहा हो – उत्पादक पूंजी के नैसर्गिक तत्वों में रूपांतरण द्वारा $१००_{बे}$ अतिरिक्त स्थिर पूंजी में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रसंग में यह मान लिया गया है कि: १) यह राशि नियत प्राविधिक परिस्थितियों में कार्यशील स्थिर पूंजी के प्रसार के लिए अथवा नये औद्योगिक व्यवसाय की स्थापना के लिए पर्याप्त है। किंतु ऐसा भी हो सकता है कि बेशी मूल्य को द्रव्य में बदलना ही पड़े और इस द्रव्य को इस प्रक्रिया के पहले, अर्थात वास्तविक संचय, उत्पादन का प्रसार होने के पहले – कहीं अधिक समय तक अपसंचित रखना पड़े ; २) विस्तारित पैमाने पर उत्पादन प्रक्रिया में यथार्थतः पहले ही विद्यमान है। कारण यह कि द्रव्य (द्रव्य रूप में अपसंचित बेशी मूल्य) को उत्पादक पूंजी के तत्वों में बदलने के लिए यह आवश्यक है कि ये तत्व बाज़ार में मालों के रूप में ख़रीदे जा सकें। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि वे तैयार उत्पाद के रूप में न ख़रीदे जाकर आदेशानुसार बनाये जाते हैं। उनकी अदायगी तब तक नहीं की जाती, जब

---

[57] यहां से अंत तक पांडुलिपि ८। – फ़्रे० एं०

तक वे अस्तित्व में नहीं आ जाते और कम से कम जहां तक कि उनका संबंध है, जब तक विस्तारित पैमाने पर वास्तविक पुनरुत्पादन, अब तक के सामान्य उत्पादन का प्रसार, नहीं हो जाता। उनका संभाव्य रूप में, अर्थात अपने तत्वों के रूप में होना ज़रूरी था, क्योंकि माल का वास्तव में उत्पादन होने के लिए बस आदेश के आवेग की ही, अर्थात उसके वस्तुतः अस्तित्व में आने के पहले उसकी ख़रीद की और उसकी अपेक्षित बिक्री की, ज़रूरत होती है। तब एक पक्ष का द्रव्य दूसरे पक्ष के विस्तारित पुनरुत्पादन को प्रेरित करता है, क्योंकि उसकी संभावना द्रव्य **के बिना** भी विद्यमान होती है। कारण यह कि द्रव्य अपने आप में वास्तविक पुनरुत्पादन का तत्व नहीं है।

उदाहरण के लिए, पूंजीपति क, जो एक साल में या कई सालों में अपने द्वारा क्रमशः उत्पादित मालों की कुछ मात्राएं बेचता है, इस तरह मालों के उस अंश को भी, जो बेशी मूल्य का वाहक – बेशी उत्पाद – है अथवा दूसरे शब्दों में अपने द्वारा माल रूप में उत्पादित बेशी मूल्य को ही द्रव्य रूप में बदल लेता है, उसका क्रमशः संचय करता जाता है और इस प्रकार अपने लिए नई संभाव्य मुद्रा पूंजी का निर्माण कर लेता है – संभाव्य इसलिए कि उत्पादक पूंजी के तत्वों में परिवर्तित हो जाने की उसमें क्षमता है और इसी के लिए वह निर्दिष्ट है। किंतु वास्तव में वह केवल साधारण अपसंचय ही करता है, जो वास्तविक पुनरुत्पादन का तत्व नहीं है। पहले उसकी कार्यवाही सिर्फ़ यही होती है कि वह परिचलन से परिचालित द्रव्य क्रमशः निकालता रहता है। बेशक यह असंभव नहीं कि जो परिचालित द्रव्य अब वह तिजोरी में बंद कर लेता है, वह ख़ुद परिचलन में पड़ने से पहले किसी अन्य अपसंचय का अंश था। क का यह अपसंचय, जो संभाव्य रूप में नई मुद्रा पूंजी है, वैसे ही अतिरिक्त सामाजिक संपदा नहीं है, जैसे वह तब भी न होता कि अगर उसे उपभोग वस्तुओं पर ख़र्च कर दिया जाता। किंतु हो सकता है कि परिचलन से निकाला गया और इसलिए परिचलन में पहले से विद्यमान द्रव्य किसी अपसंचय के संघटक अंश रूप में पहले कभी जमा किया गया हो, मज़दूरी का द्रव्य रूप रहा हो, उत्पादन साधनों अथवा अन्य मालों को द्रव्य में परिवर्तित कर चुका हो अथवा किसी पूंजीपति की स्थिर पूंजी के कुछ भागों अथवा आय को परिचालित कर चुका हो। वह उसी प्रकार नई संपदा नहीं होता, कि जिस प्रकार – साधारण माल परिचलन के दृष्टिकोण से विचार करने पर – द्रव्य इस आधार पर अपने १० गुने मूल्य का वाहक नहीं बन जाता कि वह दिन में १० बार आवर्तित हुआ था और उसने १० भिन्न माल मूल्यों का सिद्धिकरण किया था, बल्कि केवल अपने वास्तविक मूल्य का वाहक होता है। माल उसके बिना विद्यमान रहते हैं, और चाहे एक आवर्त में हो, चाहे १० में, वह स्वयं वैसा ही बना रहता है कि जैसा वह है (अथवा मूल्य ह्रास के कारण और भी घट जाता है)। केवल सोने के उत्पादन में नई संपदा (संभाव्य द्रव्य) का सृजन होता है, क्योंकि सोने के उत्पाद में बेशी उत्पाद, बेशी मूल्य का निधान है, और यह नई संपदा नवीन संभाव्य मुद्रा पूंजियों की द्रव्य सामग्री को उतना ही बढ़ाती है कि जिस सीमा तक सारा नवीन द्रव्य उत्पाद परिचलन में दाख़िल हो जाता है।

यद्यपि द्रव्य के रूप में अपसंचित यह बेशी मूल्य अतिरिक्त नवीन सामाजिक संपदा नहीं है, फिर भी जिस कार्य के लिए उसका अपसंचय किया जाता है, उसकी वजह से वह नवीन संभाव्य मुद्रा पूंजी को व्यक्त करता है। (हम आगे चलकर देखेंगे कि नवीन मुद्रा पूंजी के पैदा होने का बेशी मूल्य के द्रव्य में क्रमशः परिवर्तित होने के अलावा एक और भी तरीक़ा है।)

मालों को बाद में ख़रीदारी किये बिना बेचने से परिचलन से द्रव्य निकल आता है और अपसंचय के रूप में जमा होता है। अतः यदि इस क्रिया को सामान्य प्रक्रिया माना जाये, तो यह पहेली बनी रहती है कि ग्राहक कहां से आयेंगे, क्योंकि इस प्रक्रिया में अपसंचय के निमित्त बेचना तो हर कोई चाहेगा, पर ख़रीदना कोई नहीं चाहेगा। और इस बात को सामान्य रूप में मानना होगा, क्योंकि प्रत्येक वैयक्तिक पूंजी संचित होने की प्रक्रिया में हो सकती है।

यदि हम वार्षिक पुनरुत्पादन के विभिन्न भागों के बीच परिचलन प्रक्रिया के सरल रेखा में होने की कल्पना करें,—और यह ग़लत होगा, क्योंकि कुछ अपवाद छोड़कर, उसमें सदा परस्पर विरोधी गतियां होती हैं—तो हमें शुरूआत सोने (या चांदी) के उत्पादक से करनी होगी, जो ख़रीदता है, पर बेचता नहीं है और यह मानना होगा कि और सब लोग उसी के हाथ बिक्री करते हैं। उस स्थिति में वर्ष का सारा सामाजिक बेशी उत्पाद (सारे बेशी मूल्य का वाहक) उसके हाथों में आ जायेगा, और अन्य सभी पूंजीपति उसका बेशी उत्पाद आपस में pro rata बांट लेंगे, जो क़ुदरती तौर पर द्रव्य रूप में, उसके बेशी मूल्य के स्वर्ण में मूर्त रूप में है। कारण यह कि स्वर्ण उत्पादक के उत्पाद के जिस अंश से उसकी क्रियाशील पूंजी की क्षतिपूर्ति होनी है, वह पहले ही बंधा हुआ है और निपटाया जा चुका है। तब स्वर्ण उत्पादक का सोने के रूप में सृजित बेशी मूल्य वह एकमात्र निधि होगा, जिससे अन्य सभी पूंजीपति अपने वार्षिक बेशी उत्पाद को द्रव्य में परिवर्तित करने की सामग्री प्राप्त करेंगे। तब उसके मूल्य के परिमाण को समाज के समस्त वार्षिक बेशी मूल्य के बराबर होना होगा, जिसे पहले अपसंचय का रूप ग्रहण करना होगा। ये सब कल्पनाएं जितनी भी बेतुकी हों, इसके अलावा और कोई काम नहीं करेंगी कि अपसंचय के सहकालिक और सार्विक निर्माण की संभावना की व्याख्या करें और स्वर्ण उत्पादक द्वारा पुनरुत्पादन के अलावा वे उसे एक क़दम भी आगे न ले जा सकेंगी।

इस प्रतीयमान कठिनाई का समाधान करने से पहले हमें क्षेत्र I (उत्पादन साधनों का उत्पादन) में संचय और क्षेत्र II (उपभोग वस्तुओं का उत्पादन) में संचय के बीच भेद करना होगा। हम शुरूआत क्षेत्र I से करेंगे।

१. क्षेत्र I में संचय

१) अपसंचय का निर्माण

यह स्पष्ट है कि वर्ग I की अंगभूत उद्योग की नाना शाखाओं में पूंजी निवेश और उद्योग की इन शाखाओं में से प्रत्येक में पूंजी के विभिन्न अलग-अलग निवेश अपने परिमाणों, प्राविधिक अवस्थाओं, बाजार की परिस्थितियों, आदि के अलावा अपनी आयु, अर्थात अब तक कार्यशील रह चुकने के समय के अनुसार बेशी मूल्य से संभाव्य मुद्रा पूंजी में क्रमिक रूपांतरण की विभिन्न मंजिलों में होते हैं, चाहे इस मुद्रा पूंजी को क्रियाशील पूंजी के प्रसार के काम आना हो, चाहे नये औद्योगिक व्यवसाय क़ायम करने के, जो उत्पादन के प्रसार के दो रूप हैं। पूंजीपतियों का एक हिस्सा अपनी संभाव्य मुद्रा पूंजी को, जो बढ़कर समुचित आकार की हो चुकी होती है, निरंतर उत्पादक पूंजी में परिवर्तित करता रहता है, अर्थात वे बेशी मूल्य के द्रव्य में परिवर्तन से अपसंचित द्रव्य से उत्पादन साधन, स्थिर पूंजी के अतिरिक्त तत्व ख़रीदते

हैं। इस बीच पूंजीपतियों का दूसरा हिस्सा अब भी अपनी संभाव्य मुद्रा पूंजी के अपसंचय में लगा होता है। इन दोनों संवर्गों के पूंजीपति एक दूसरे के सामने आते हैं: कुछ ग्राहक के नाते, तो अन्य विक्रेता के नाते और दोनों में से प्रत्येक इनमें से एक भूमिका ही निबाहता है।

उदाहरणत:, मान लीजिये क ख को (जो एकाधिक ग्राहक का प्रतीक हो सकता है) ६०० ($४००_{\text{स}} + १००_{\text{प}} + १००_{\text{बे}}$ के बराबर) बेचता है। क द्रव्य रूप में ६०० के बदले माल के रूप में ६०० बेचता है; जिनमें १०० बेशी मूल्य हैं, जिन्हें वह परिचलन से निकाल लेता है और द्रव्य के रूप में अपसंचित कर लेता है। किंतु द्रव्य में ये १०० उस बेशी उत्पाद का द्रव्य रूप मात्र हैं, जो १०० के मूल्य का वाहक था। अपसंचय बनने का मतलब उत्पादन का बिल्कुल न होना और इसलिए उत्पादन वृद्धि न होना भी है। यहां पूंजीपति की कारगुज़ारी सिर्फ़ इतनी है कि वह अपने बेशी उत्पाद की बिक्री से हथियाये द्रव्य रूप में १०० को परिचलन से निकाल लेता है, जिन्हें वह अपने क़ब्ज़े में किये रहता है और तिजोरी में बंद कर देता है। यह कार्य अकेले क द्वारा ही नहीं, वरन परिचलन परिसर के नाना बिंदुओं पर क', क'', क''', आदि अन्य पूंजीपतियों द्वारा भी किया जाता है, जो सभी समान उत्साह से इस प्रकार के अपसंचय निर्माण में जुटे रहते हैं। ये नाना बिंदु, जिन पर परिचलन से द्रव्य निकाला जाता है और सैकड़ों व्यक्तिगत अपसंचयों अथवा संभाव्य मुद्रा पूंजियों के रूप में संचित किया जाता है, परिचलन की राह में नाना बाधाओं जैसे लगते हैं, क्योंकि वे द्रव्य को निश्चल कर देते हैं और उसे कुछ समय के लिए अपनी परिचालित होने की क्षमता से वंचित कर देते हैं। किंतु यह ध्यान में रखना चाहिए कि साधारण माल परिचलन में अपसंचय उसके पूंजीवादी माल उत्पादन पर आधारित होने के बहुत पहले ही हो जाता है। समाज में विद्यमान द्रव्य राशि उसके वास्तविक परिचलन में आनेवाले अंश से सदैव बड़ी होती है, यद्यपि वह परिस्थितियों के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है। यहां हमारा फिर उसी अपसंचय और अपसंचयों के उसी निर्माण से साबिक़ा होता है, किंतु अब वह पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया के एक अंतर्वर्ती तत्व के रूप में होता है।

उस आनंदानुभूति की कल्पना की जा सकती है कि जब उधार पद्धति के अंतर्गत ये सभी संभाव्य पूंजियां बैंकों आदि के हाथों में अपने संकेंद्रण के फलस्वरूप प्रयोज्य, "उधारार्थ पूंजी", मुद्रा पूंजी बन जाती हैं और वह भी अब निष्क्रिय, दूर के ढोल जैसी नहीं, वरन तेज़ी से बढ़ती सक्रिय पूंजी।

फिर भी क अपसंचय निर्माण उसी सीमा तक संपन्न करता है कि जिस सीमा तक वह— जहां तक उसके बेशी उत्पाद का संबंध है—केवल विक्रेता का काम करता है और बाद में ग्राहक का काम नहीं करता। अत: उसके द्वारा बेशी उत्पाद का, द्रव्य में परिवर्तित किये जानेवाले उसके बेशी मूल्य के वाहक का, क्रमिक उत्पादन उसके अपसंचय का निर्माण करने की आधारिका है। प्रस्तुत प्रसंग में, जिसमें हम केवल संवर्ग I के भीतर परिचलन की छानबीन कर रहे हैं, बेशी उत्पाद का दैहिक रूप उस कुल उत्पाद के दैहिक रूप की ही भांति कि जिसका वह एक अंश है, स्थिर पूंजी I के एक तत्व का दैहिक रूप है, अर्थात वह उत्पादन साधनों का निर्माण करनेवाले उत्पादन साधनों के संवर्ग में होता है। हम शीघ्र ही देखेंगे कि इसका होता क्या है, ख, ख', ख'', इत्यादि ग्राहकों के हाथ में वह क्या कार्य करता है।

यहां सबसे पहले यह बात मन में बिठा लेनी चाहिए कि यद्यपि क अपने बेशी मूल्य की राशि के बराबर द्रव्य परिचलन से निकालता और उसका अपसंचय करता है, पर दूसरी ओर वह बदले में अन्य माल निकाले बिना परिचलन में माल डालता है। इससे ख, ख', ख'', इत्यादि परिचलन में द्रव्य डाल पाते हैं और उसमें से केवल माल निकालने की स्थिति में होते हैं। प्रस्तुत प्रसंग में यह माल अपने दैहिक रूप और अपने गंतव्य के अनुसार ख, ख', इत्यादि की स्थिर पूंजी में स्थायी या प्रचल तत्व की तरह प्रवेश करता है। हम शीघ्र ही इसके बारे में और बातें भी सुनेंगे, जब हम बेशी उत्पाद के ग्राहक, ख, ख', इत्यादि की चर्चा करेंगे।

प्रसंगवश हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि जैसा कि हमने साधारण पुनरुत्पादन के प्रसंग में देखा था, यहां हम फिर देखते हैं कि वार्षिक उत्पाद के विभिन्न संघटक अंशों का विनिमय, अर्थात उनका परिचलन (जिसमें साथ ही पूंजी का पुनरुत्पादन और वस्तुतः उसका उसकी विभिन्न संज्ञाओं–जैसे स्थिर, परिवर्ती, स्थायी, प्रचल, मुद्रा तथा माल पूंजी–में पुनरावर्तन समाविष्ट होगा) किसी भी प्रकार मालों के बाद में विक्रय से अनुपूरित मात्र क्रय की अथवा बाद में क्रय से अनुपूरित विक्रय की पूर्वकल्पना नहीं करता है, जिससे कि वास्तव में माल का माल से कोरा विनिमय होगा, जैसा कि राजनीतिक अर्थशास्त्र, और ख़ास तौर से प्रकृतितंत्रवादियों और ऐडम स्मिथ के ज़माने से मुक्त व्यापारपंथ द्वारा माना जाता है। हम जानते हैं कि स्थायी पूंजी के लिए एक बार आवश्यक व्यय कर दिया जाने के बाद वह अपनी कार्यशीलता की समूची अवधि में प्रतिस्थापित नहीं होती, वरन अपने पुराने रूप में क्रियाशील बनी रहती है, जब कि उसका मूल्य द्रव्य के रूप में क्रमशः अवक्षेपित होता जाता है। हम देख चुके हैं कि स्थायी पूंजी $II_{स}$ का नियतकालिक नवीकरण (जिसमें समस्त पूंजी मूल्य $II_{स}$ $I_{(प+बे)}$ मूल्य के तत्वों में परिवर्तित होता है) एक ओर यह पूर्वापेक्षा करता है कि $II_{स}$ के द्रव्य रूप से उसके दैहिक रूप में पुनःपरिवर्तित स्थायी अंश की **मात्र ख़रीद** की जाती है और $I_{बे}$ की **मात्र बिक्री** इसके अनुरूप होती है और दूसरी ओर यह पूर्वापेक्षा करता है कि $II_{स}$ की ओर से **मात्र बिक्री** होती है, द्रव्य में अवक्षेपित उसके मूल्य के स्थायी (मूल्य ह्रास के) भाग की **बिक्री** होती है और $I_{बे}$ की ख़रीद मात्र इसके अनुरूप होती है। इस प्रसंग में विनिमय सामान्य गति से होता रहे, इसके लिए यह मानना होगा कि $II_{स}$ की ओर से मात्र ख़रीद मूल्य परिमाण में $II_{स}$ की ओर से मात्र बिक्री के बराबर है और इसी तरह $II_{स}$, भाग १ को $I_{बे}$ की मात्र बिक्री $II_{स}$, भाग २ से उसकी मात्र ख़रीद के बराबर है (पृष्ठ ४०२-४०३)। अन्यथा साधारण पुनरुत्पादन में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। यहां की मात्र ख़रीद का वहां की मात्र बिक्री से प्रतिसंतुलन करना होगा। इसी प्रकार इस प्रसंग में यह भी मानना होगा कि $I_{बे}$ के जिस भाग से क, क', क'' के अपसंचयों का निर्माण होता है, उसकी मात्र बिक्री $I_{बे}$ के उस अंश की मात्र ख़रीद से संतुलित होती है, जो ख, ख', ख'' के अपसंचयों को अतिरिक्त उत्पादक पूंजी के तत्वों में परिवर्तित करता है।

जहां तक यह संतुलन इस तथ्य से बहाल होता है कि ग्राहक आगे चलकर उतनी ही मूल्य राशि का विक्रेता बन जाता है और इसी प्रकार इसके विपरीत भी, वहां तक द्रव्य उस पक्ष

के पास लौट आता है, जिसने ख़रीद के समय उसे पेशगी दिया था और जिसने फिर ख़रीदने से पहले बिक्री की थी। किंतु जहां तक मालों के स्वयं विनिमय का, वार्षिक उत्पाद के विभिन्न अंशों के विनिमय का प्रश्न है, वास्तविक संतुलन परस्पर विनिमीत मालों के मूल्यों के बराबर होने की अपेक्षा करता है।

किंतु चूंकि एकपक्षीय विनिमय ही किये जाते हैं, एक ओर कुछ मात्र क्रय, दूसरी ओर कुछ मात्र विक्रय – और हम देख चुके हैं कि पूंजीवाद के आधार पर वार्षिक उत्पाद का सामान्य विनिमय ऐसे एकपक्षीय रूपांतरण अनिवार्य बना देता है – इसलिए संतुलन तभी क़ायम रखा जा सकता है कि जब यह माना जाये कि एकपक्षीय क्रय और एकपक्षीय विक्रय की मूल्य राशि एक सी है। माल उत्पादन पूंजीवादी उत्पादन का सामान्य रूप है, इस तथ्य में द्रव्य की उसमें परिचलन माध्यम के रूप में ही नहीं, बल्कि द्रव्य पूंजी के रूप में निबाही जानेवाली भूमिका भी निहित है और वह सामान्य विनिमय की कुछ ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करता है, जो उत्पादन की इस पद्धति की और इसलिए पुनरुत्पादन के सामान्य क्रम की विशेषता हैं, फिर चाहे वह साधारण पैमाने पर हो, चाहे विस्तारित पैमाने पर और जो असामान्य गति की नाना परिस्थितियों में, संकटों की नाना संभावनाओं में बदल जाती हैं, क्योंकि इस उत्पादन की स्वतःस्फूर्त प्रकृति के कारण संतुलन का होना स्वयं एक आकस्मिक घटना है।

हम यह भी देख चुके हैं कि $I_{प}$ के $II_{स}$ के अनुरूप मूल्य राशि से विनिमय में अंततोगत्वा ठीक $II_{स}$ के प्रसंग में ही माल II का समतुल्य माल मूल्य I से प्रतिस्थापन होता है और इसलिए समष्टि पूंजीपति II की ओर से उसके अपने मालों की बिक्री की बाद में I से उसी मूल्य राशि के माल की ख़रीद से अनुपूर्ति की जाती है। यह प्रतिस्थापन तो हो जाता है। किंतु जो नहीं होता, वह I तथा II पूंजीपतियों के बीच उनके अपने-अपने माल का विनिमय है। $II_{स}$ अपना माल मज़दूर वर्ग I को बेचता है। मज़दूर वर्ग I उसके सामने एकांगी रूप में, मालों के ग्राहक के रूप में आता है और वह उसके सामने एकांगी रूप में मालों के विक्रेता के रूप में आता है। इस तरह प्राप्त धन से $II_{स}$ समष्टि पूंजीपति I के सामने एकांगी रूप में मालों के ग्राहक के रूप में आता है और समष्टि पूंजीपति I उसके सामने एकांगी रूप में $I_{प}$ राशि के मालों के विक्रेता के रूप में खड़ा होता है। मालों की इस बिक्री द्वारा ही अंततोगत्वा I अपनी परिवर्ती पूंजी द्रव्य पूंजी के रूप में पुनरुत्पादित करता है। यदि पूंजी I एकपक्षीय ढंग से $I_{प}$ राशि के मालों के विक्रेता के नाते एकांगी रूप में पूंजी II के सामने आती है, तो वह मज़दूर वर्ग I के सामने उसकी श्रम शक्ति को ख़रीदनेवाले मालों के ग्राहक के रूप में आती है। और यदि मज़दूर वर्ग I मालों के ग्राहक के रूप में (यानी निर्वाह साधन ख़रीदनेवाले के रूप में) पूंजीपति II के सामने एकांगी रूप में आता है, तो वह पूंजीपति I के सामने एकांगी रूप में मालों के विक्रेता की तरह, यानी अपनी श्रम शक्ति के विक्रेता की तरह आता है।

मज़दूर वर्ग I द्वारा निरंतर श्रम शक्ति की पूर्ति, माल पूंजी I के एक अंश का परिवर्ती पूंजी के द्रव्य रूप में पुनःपरिवर्तन, स्थिर पूंजी $II_{स}$ के नैसर्गिक तत्वों द्वारा माल पूंजी II के एक अंश का प्रतिस्थापन – ये सभी आवश्यक आधारिकाएं परस्पर निर्भर हैं, किंतु वे एक बहुत

ही पेचीदा प्रक्रिया द्वारा अस्तित्व में आती हैं, जिसमें परिचलन की तीन प्रक्रियाएं भी शामिल हैं, जो एक दूसरे से स्वतंत्र रूप में होती हैं, लेकिन आपस में मिल जाती हैं। यह प्रक्रिया इतनी ज़्यादा पेचीदा है कि असामान्य भटकाव के न जाने कितने अवसर पेश करती है।

२) अतिरिक्त स्थिर पूंजी

बेशी मूल्य के वाहक बेशी उत्पाद के लिए उसके हस्तगतकर्ताओं – पूंजीपति I – को कौड़ी भी ख़र्च नहीं करनी पड़ती। उसकी प्राप्ति के लिए उन्हें किसी भी प्रकार न तो कोई द्रव्य पेशगी देना होता है, न माल। प्रकृतितंत्रवादियों तक में पेशगी को उत्पादक पूंजी के तत्वों में मूर्त मूल्य का सामान्य रूप माना जाता था। इसलिए पूंजीपति I जो कुछ भी पेशगी देते हैं, वह उनकी स्थिर और परिवर्ती पूंजी के अलावा और कुछ नहीं होता। मजदूर अपनी मेहनत से उनकी स्थिर पूंजी को बनाये ही नहीं रखता है; वह उनकी परिवर्ती पूंजी मूल्य का मालों की शक्ल में नवसृजित तदनुरूप मूल्यांश द्वारा प्रतिस्थापन ही नहीं करता है; वह अपने बेशी श्रम द्वारा उन्हें बेशी उत्पाद के रूप में विद्यमान बेशी मूल्य की पूर्ति भी करता है। इस बेशी उत्पाद की क्रमिक बिक्री द्वारा वे अपसंचय का, अतिरिक्त संभाव्य द्रव्य पूंजी का निर्माण करते हैं। विचाराधीन प्रसंग में इस बेशी उत्पाद में आरंभ से ही उत्पादन साधनों के उत्पादन साधन समाहित होते हैं। केवल ख, ख', ख'', इत्यादि (I) के हाथों में पहुंचने पर ही यह बेशी उत्पाद अतिरिक्त स्थिर पूंजी का कार्य करता है। किंतु वह बिकने से पहले ही अपसंचय बटोरने-वाले क, क', क'' (I) के हाथों में भी यह virtualiter – आभासी – द्रव्य पूंजी होती है। यदि हम केवल I द्वारा पुनरुत्पादन की मूल्य राशि पर भी विचार करते हैं, तब भी हम साधारण पुनरुत्पादन के दायरे में ही घूमते होते हैं, क्योंकि यह आभासी अतिरिक्त स्थिर पूंजी (बेशी उत्पाद) पैदा करने के लिए कोई अतिरिक्त पूंजी गतिशील नहीं की गई है और न बेशी श्रम की उससे कोई और बड़ी मात्रा ख़र्च की गयी है, जितनी साधारण पुनरुत्पादन के आधार पर की जाती है। यहां जो अंतर है, वह केवल किये गये बेशी श्रम के रूप में है, उसके विशेष उपयोगी स्वरूप की मूर्त प्रकृति में है। वह $II_{स}$ के बदले $I_{स}$ के लिए उत्पादन साधनों पर ख़र्च किया गया है, उपभोग वस्तुओं के उत्पादन साधनों के बदले उत्पादन साधनों के उत्पादन साधनों पर ख़र्च किया गया है। साधारण पुनरुत्पादन के प्रसंग में यह माना गया था कि समस्त बेशी मूल्य I आय के रूप में अतः माल II पर ख़र्च किया जाता है। अतः बेशी मूल्य में केवल वे उत्पादन साधन समाहित थे, जिन्हें स्थिर पूंजी $II_{स}$ को उसके दैहिक रूप में प्रतिस्थापित करना था। साधारण पुनरुत्पादन से विस्तारित पुनरुत्पादन में संक्रमण हो सके, इसके लिए आवश्यक है कि क्षेत्र I में उत्पादन इस स्थिति में हो कि वह II के लिए स्थिर पूंजी के कुछ कम तत्व बनाये और I के लिए उतने ही ज्यादा बनाये। यह संक्रमण, जो हमेशा ही कठिनाइयों के बिना नहीं होता, इस तथ्य से सुसाध्य हो जाता है कि I का कुछ उत्पाद दोनों में से किसी भी क्षेत्र में उत्पादन साधनों का काम कर सकता है।

इसलिए मामले पर मूल्य परिमाण के दृष्टिकोण से ही विचार करने से नतीजा यह निकलता है कि विस्तारित पुनरुत्पादन के भौतिक आधार की उत्पत्ति साधारण पुनरुत्पादन की परिधि में होती है। यह उत्पादन साधनों के उत्पादन में, आभासी बेशी पूंजी I की रचना में प्रत्यक्षतः व्यय हुआ मजदूर वर्ग I का बेशी श्रम मात्र है। अतः क, क', क'' (I) द्वारा – द्रव्य के

किसी पूंजीवादी व्यय के बिना निर्मित उनके बेशी उत्पाद की क्रमिक बिक्री द्वारा – आभासी अतिरिक्त द्रव्य पूंजी का निर्माण अतिरिक्त उत्पादित उत्पादन साधन I का द्रव्य रूप मात्र है।

फलतः हमारे प्रसंग में आभासी अतिरिक्त पूंजी का उत्पादन (हम देखेंगे कि वह बिल्कुल दूसरे ढंग से भी निर्मित हो सकती है) स्वयं उत्पादन प्रक्रिया की एक परिघटना के अलावा, एक रूप विशेष में उत्पादक पूंजी के तत्वों के उत्पादन के अलावा और कुछ नहीं है।

अतः अतिरिक्त आभासी द्रव्य पूंजी का परिचलन परिसर के नाना बिंदुओं पर बड़े पैमाने पर उत्पादन वस्तुतः अतिरिक्त उत्पादक पूंजी के बहुविध उत्पादन का परिणाम और उसकी अभिव्यंजना मात्र है, स्वयं जिसका उदय औद्योगिक पूंजीपति से अतिरिक्त द्रव्य व्यय की अपेक्षा नहीं करता।

क, क', क'', इत्यादि (I) द्वारा इस वस्तुतः अतिरिक्त उत्पादक पूंजी का आभासी द्रव्य पूंजी (अपसंचय) में उनके बेशी उत्पाद की क्रमिक बिक्री से, – अतः मालों की अनुपूरक ख़रीद के बिना बारंबार एकांगी बिक्री से – क्रमिक रूपांतरण परिचलन से बारंबार द्रव्य की निकासी और तदनुरूप अपसंचय के निर्माण से संपन्न होता है। उस मामले को छोड़कर, जिसमें ग्राहक स्वर्ण उत्पादक होता है, इस अपसंचय का आशय किसी भी प्रकार बहुमूल्य धातुओं के रूप में अतिरिक्त संपदा नहीं होता, वरन पहले से परिचालित द्रव्य के कार्य में परिवर्तन ही होता है। कुछ समय पहले वह परिचलन माध्यम का कार्य कर रहा था, अब वह अपसंचय का, निर्माण की प्रक्रिया में वस्तुतः नई द्रव्य पूंजी का कार्य करता है। इस प्रकार अतिरिक्त द्रव्य पूंजी के निर्माण तथा बहुमूल्य धातुओं की देश में विद्यमान मात्रा का आपस में कोई भी नैमित्तिक संबंध नहीं है।

इसलिए आगे यह नतीजा और निकलता है: किसी देश में पहले से कार्यशील उत्पादक पूंजी (उसमें समाविष्ट श्रम शक्ति सहित, जो बेशी उत्पाद की उत्पादक है) जितना ही ज्यादा होगी, उतना ही श्रम की उत्पादक शक्ति अधिक विकसित होगी और इस कारण उत्पादन साधनों के उत्पादन के द्रुत प्रसार के प्राविधिक साधन भी अधिक विकसित होंगे – अतः अपने मूल्य के लिहाज़ से और जिन उपयोग मूल्यों में वह व्यक्त होती है, उनकी मात्रा के लिहाज़ से भी, बेशी उत्पाद की मात्रा जितना ही अधिक होगी, उतना ही

१) क, क', क'', इत्यादि के पास बेशी उत्पाद के रूप में वस्तुतः अतिरिक्त उत्पादक पूंजी अधिक होगी, तथा

२) इस बेशी उत्पाद की द्रव्य में रूपांतरित मात्रा और इसलिए क, क', क'' के पास वस्तुतः अतिरिक्त द्रव्य पूंजी की मात्रा अधिक होगी। यह तथ्य कि, उदाहरण के लिए, फ़ुलरटन सामान्य अर्थ में अत्युत्पादन की बात नहीं सुनना चाहते, बल्कि केवल पूंजी – आशय द्रव्य पूंजी से है – के अत्युत्पादन की बात ही सुनना चाहते हैं, फिर यही प्रकट करता है कि अच्छे से अच्छे पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों को भी अपनी ही व्यवस्था की क्रियाविधि का कैसा अत्यल्प ज्ञान है।

पूंजीपति क, क', क'' (I) द्वारा प्रत्यक्षतः उत्पादित तथा हस्तगत बेशी उत्पाद जहां पूंजी संचय का, अर्थात विस्तारित पुनरुत्पादन का वास्तविक आधार है, यद्यपि जब तक वह ख, ख', ख'', इत्यादि (I) के पास पहुंच नहीं जाता, तब तक वह यथार्थतः इस हैसियत में कार्य नहीं करता, वहां दूसरी तरफ़ वह अपनी द्रव्य की कोशस्थ अवस्था में – अपसंचय के

रूप में और क्रमशः निर्माण की प्रक्रिया के अंतर्गत आभासी द्रव्य पूंजी के रूप में – नितांत अनुत्पादक होता है, इस रूप में वह उत्पादन प्रक्रिया के साथ-साथ तो चलता है, किंतु उसके बाहर ही रहता है। वह पूंजीवादी उत्पादन के गले में बंधा हुआ पत्थर है। आभासी द्रव्य पूंजी के रूप में संचित होते हुए इस बेशी मूल्य का उपयोग करके उससे लाभ अथवा आय प्राप्त करने की अभिलाषा उधार पद्धति और "काग़ज़ात" द्वारा पूर्ण होती है। इस तरह द्रव्य पूंजी अन्य रूप में उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था के क्रम और विशद विकास पर असीम प्रभाव डालने के योग्य हो जाती है।

आभासी द्रव्य पूंजी में परिवर्तित बेशी उत्पाद परिमाण में उतना ही अधिक बढ़ेगा, जितना ही अधिक पहले से कार्यशील पूंजी की कुल राशि होगी, जिसकी कार्यशीलता से उसका उद्भव हुआ है। प्रति वर्ष पुनरुत्पादित आभासी द्रव्य पूंजी के परिमाण की निरपेक्ष वृद्धि से उसका खंडीकरण भी सुगमतर हो जाता है, जिससे कि किसी व्यवसाय विशेष में उसका और भी तेज़ी से निवेश किया जा सकता है, फिर चाहे उसी पूंजीपति के यहां, चाहे दूसरों के यहां (उदाहरण के लिए, उत्तराधिकार में प्राप्त संपदा आदि के बंटवारे के मामले में कुटुंब के सदस्यों के यहां)। द्रव्य पूंजी के खंडीकरण से यहां आशय यह है कि वह अपनी मूल पूंजी राशि से बिल्कुल जुदा हो जाती है, जिससे कि नई द्रव्य पूंजी के रूप में नये और स्वतंत्र व्यवसाय में निवेशित की जा सके।

जहां क, क′, क″, इत्यादि (I) बेशी उत्पाद के विक्रेता इसे उत्पादन प्रक्रिया के प्रत्यक्ष फल के रूप में पाते हैं, जिसमें साधारण पुनरुत्पादन में भी आवश्यक स्थिर और परिवर्ती पूंजी के पेशगी दिये जाने के अलावा परिचलन की कोई अतिरिक्त क्रियाएं आवश्यक नहीं होतीं; और जहां ये विक्रेता इस प्रकार विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन के लिए वास्तविक आधार तैयार करते हैं, और यथार्थ में वस्तुतः अतिरिक्त पूंजी का निर्माण करते हैं, वहां ख, ख′, ख″, इत्यादि (I) का रवैया इससे भिन्न होता है। १) क, क′, क″, इत्यादि का बेशी उत्पाद, जब तक ख, ख′, ख″, इत्यादि (I) के हाथ में नहीं पहुंच जाता, तब तक वह वास्तव में अतिरिक्त स्थिर पूंजी की तरह कार्य नहीं करता (हम उत्पादक पूंजी के दूसरे तत्व – अतिरिक्त श्रम शक्ति, दूसरे शब्दों में अतिरिक्त परिवर्ती पूंजी – पर फ़िलहाल विचार नहीं करते)। २) बेशी उत्पाद के उनके हाथ में पहुंच जाने के लिए एक परिचलन क्रिया आवश्यक होगी – उन्हें यह बेशी उत्पाद ख़रीदना होगा।

१) के सिलसिले में यहां ध्यान में रखना चाहिए कि हो सकता है बेशी उत्पाद का एक बड़ा भाग (वस्तुतः अतिरिक्त स्थिर पूंजी) ख, ख′, ख″ (I) के हाथों में अगले साल तक या और भी आगे तक औद्योगिक पूंजी की तरह कार्य न करे, यद्यपि उसका उत्पादन दिये हुए वर्ष में क, क′, क″ (I) ने किया है। २) के सिलसिले में सवाल पैदा होता है: परिचलन प्रक्रिया के लिए आवश्यक द्रव्य कहां से आता है?

चूंकि ख, ख′, ख″, इत्यादि (I) द्वारा निर्मित उत्पाद, उत्पादन की उसी प्रक्रिया में वस्तुरूप में पुनः प्रवेश करता है, इसलिए कहना न होगा कि pro tanto उनके अपने ही बेशी उत्पाद का एक भाग (परिचलन के दख़ल के बिना ही) सीधे उनकी उत्पादक पूंजी को अंतरित हो जाता है और स्थिर पूंजी का अतिरिक्त तत्व बन जाता है। और pro tanto इस उत्पाद से क, क′, इत्यादि (I) के बेशी उत्पाद का द्रव्य में परिवर्तन नहीं होता। इसके

अलावा द्रव्य कहां से आता है? हमें मालूम है कि ख, ख', ख'', इत्यादि (I) ने बेशी उत्पाद को बेचकर अपने अपसंचय का निर्माण वैसे ही किया है जैसे क, क' इत्यादि ने। अब वे ऐसे मुक़ाम पर आ गये हैं, जहां उनकी अपसंचित, केवल आभासी द्रव्य पूंजी अतिरिक्त द्रव्य पूंजी की तरह प्रभावी ढंग से कार्य करेगी। किंतु यह सब कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगाना है। यह सवाल अब भी बना ही रहता है: वह द्रव्य कहां से आता है, जिसे पहले ख (I) ने परिचलन से निकाला था और संचित किया था?

साधारण पुनरुत्पादन के विश्लेषण से हम जानते हैं कि अपने बेशी उत्पाद का विनिमय कर सकने के लिए I तथा II पूंजीपतियों के पास कुछ द्रव्य राशि उपलब्ध होनी चाहिए। उस स्थिति में जो द्रव्य केवल उपभोग वस्तुओं पर ख़र्च की जानेवाली आय का काम करता था, वह पूंजीपतियों के पास उसी मात्रा में लौट आया, जिस मात्रा में उन्होंने अपने-अपने मालों के विनिमय के लिए उसे पेशगी दिया था। यहां वही द्रव्य पुन: प्रकट हो जाता है, किंतु उसका कार्य भिन्न होता है। क और ख (I), एक दूसरे को बारी-बारी से बेशी उत्पाद को अतिरिक्त आभासी द्रव्य पूंजी में परिवर्तित करने के द्रव्य की पूर्ति करते हैं और नवनिर्मित द्रव्य पूंजी को बारी-बारी से क्रय माध्यम के रूप में परिचलन में वापस डालते हैं।

इस प्रसंग में की गयी अकेली कल्पना यह है कि विचाराधीन देश में द्रव्य की राशि (परिचलन वेग, आदि स्थिर रहते हैं) सक्रिय परिचलन तथा आरक्षित निधि, दोनों के लिए पर्याप्त होगी। जैसा कि हम देख चुके हैं, यह वही कल्पना है, जो साधारण माल परिचलन के सिलसिले में करनी पड़ी थी। अलबत्ता वर्तमान प्रसंग में अपसंचयों का कार्य भिन्न है। इसके अलावा उपलभ्य द्रव्य की राशि अधिक होनी चाहिए, एक तो इसलिए कि पूंजीवादी उत्पादन के अंतर्गत सभी उत्पाद (नवोत्पादित बहुमूल्य धातुओं को तथा कुछ ऐसे उत्पाद छोड़कर, जिनका उपभोग उत्पादक स्वयं करता है) मालों के रूप में निर्मित किये जाते हैं और इसलिए उन्हें द्रव्य की कोशावस्था पार करनी होती है; दूसरे, इसलिए कि पूंजीवादी आधार पर माल पूंजी की मात्रा और उसके मूल्य का परिमाण निरपेक्ष रूप से ज्यादा बड़ा ही नहीं होता, वरन अनुपम शीघ्रता से बढ़ता भी है; तीसरे, इसलिए कि निरंतर प्रसारमान परिवर्ती पूंजी को सदैव द्रव्य पूंजी में परिवर्तित करना होता है; चौथे, इसलिए कि नई द्रव्य पूंजियों का निर्माण उत्पादन के विस्तार के साथ क़दम मिलाये रहता है, ताकि तदनुरूप अपसंचय निर्माण के लिए सामग्री सुलभ रहे।

सामान्यत: यह बात पूंजीवादी उत्पादन की उस पहली मंजिल के बारे में सही है, जिसमें उधार पद्धति के साथ भी अक्सर धातु मुद्रा परिचलन चलता है और यह बात उधार पद्धति के सर्वाधिक विकसित दौर पर भी उस हद तक लागू होती है कि धातु मुद्रा परिचलन उसका आधार रहता है। एक ओर बहुमूल्य धातुओं का अतिरिक्त उत्पादन बारी-बारी से प्रचुर या अपर्याप्त होने के कारण यहां मालों की क़ीमतों पर दीर्घ ही नहीं, अत्यल्प अंतरालों पर भी विक्षोभकारी प्रभाव डाल सकता है। दूसरी ओर उधार की सारी क्रियाविधि लगातार विविध क्रियाओं, तरीक़ों और प्राविधिक उपायों के ज़रिये वास्तविक धातु परिचलन को घटाकर अपेक्षाकृत और भी घटते अल्पतम स्तर तक लाने में लगी रहती है। सारे तंत्र की कृत्रिमता और उसके सामान्य क्रम को अस्त-व्यस्त करने की संभावना उसी परिमाण में बढ़ती जाती है।

विभिन्न ख, ख', ख'', इत्यादि (I) की आभासी नई द्रव्य पूंजी जब अपना सक्रिय

पूंजी का कार्य आरंभ करती है, तब उन्हें अपने उत्पाद (उनके बेशी उत्पाद के अंश) एक दूसरे से ख़रीदना या एक दूसरे को बेचना पड़ सकता है। Pro tanto अलग-अलग ख के पास उनके द्वारा अपने-अपने बेशी उत्पाद के परिचलन के लिए पेशगी दिया द्रव्य उसी अनुपात में लौट आता है, जिसमें अपने-अपने मालों के परिचलन के लिए उन्होंने उसे पेशगी दिया था। यदि द्रव्य भुगतान साधन के रूप में परिचलन करता हो, तो जहां तक परस्पर क्रय-विक्रय एक दूसरे के बराबर नहीं होते, वहां केवल संतुलन दुरुस्त करना रह जाता है। किंतु यहां, जैसे कि और सब कहीं, सबसे पहले और सर्वोपरि धातु मुद्रा परिचलन की उसके सबसे सादे, सबसे आदिम रूप में कल्पना करना महत्वपूर्ण है, क्योंकि तब द्रव्य का प्रवाह और पश्चप्रवाह, संतुलन का दुरुस्त होना, संक्षेप में उधार पद्धति के अंतर्गत सचेत रूप से नियमित की हुई प्रक्रियाओं की तरह प्रकट होनेवाले सारे तत्व यहां अपने को उधार पद्धति से स्वतंत्र रूप में प्रस्तुत करते हैं और सारी स्थिति आदिम रूप में प्रकट होती है, न कि बादवाले, प्रतिबिंबित रूप में।

३) अतिरिक्त परिवर्ती पूंजी

अब तक हम केवल अतिरिक्त स्थिर पूंजी की ही बात करते आये हैं। अब हमें अतिरिक्त परिवर्ती पूंजी के विवेचन की ओर ध्यान देना चाहिए।

पहले खंड में हम बहुत विस्तार से इस बात की व्याख्या कर चुके हैं कि पूंजीवादी उत्पादन पद्धति के अंतर्गत श्रम शक्ति सदैव सुलभ होती है और आवश्यकता पड़ने पर मज़दूरों की संख्या अथवा नियोजित श्रम शक्ति की मात्रा बढ़ाये बिना अधिक श्रम गतिशील किया जा सकता है। इसलिए हम इसकी और अधिक चर्चा नहीं करेंगे, बल्कि यह मान लेंगे कि नवसृजित द्रव्य पूंजी के परिवर्ती पूंजी में परिणत होने योग्य अंश को वह श्रम शक्ति सदैव सुलभ होगी, जिसमें उसे अपने को रूपांतरित करना है। पहले खंड में इसकी व्याख्या भी की जा चुकी है कि दी हुई पूंजी संचय के बिना भी किन्हीं सीमाओं के भीतर अपने उत्पादन परिमाण का प्रसार कर सकती है। किंतु यहां हम पूंजी संचय की उसके विशिष्ट अर्थ में चर्चा कर रहे हैं, इसलिए उत्पादन के प्रसार में बेशी मूल्य का अतिरिक्त द्रव्य पूंजी में परिवर्तन और इस प्रकार उस पूंजी का प्रसार भी निहित है, जो उत्पादन का आधार होती है।

स्वर्ण उत्पादक अपने स्वर्णिम बेशी मूल्य के एक अंश का आभासी द्रव्य पूंजी के रूप में संचय कर सकता है। जैसे ही उसकी राशि पर्याप्त हो जाती है, वह उसे पहले अपने बेशी उत्पाद को बेचने की ज़रूरत के बिना सीधे नई परिवर्ती पूंजी में रूपांतरित कर सकता है। वैसे ही वह उसे स्थिर पूंजी के तत्वों में भी बदल सकता है। किंतु उस हालत में उसे अपनी स्थिर पूंजी के भौतिक तत्व सुलभ होने चाहिए। इस बात का कोई महत्व नहीं है – जैसा अपने विश्लेषण में अब तक माना गया था – कि प्रत्येक उत्पादक पहले अपना तैयार उत्पाद जमा करता है और तब उसे बाज़ार ले जाता है अथवा वह आदेशों की पूर्ति करता है। दोनों ही मामलों में उत्पादन के वास्तविक प्रसार की, अर्थात बेशी उत्पाद की कल्पना की जाती है; एक में वह यथार्थतः सुलभ है, दूसरे में वह संभाव्यतः सुलभ है, हस्तांतरित करने योग्य है।

२. क्षेत्र II में संचय

हमने अभी तक यह माना है कि क, क', क'' (I) अपना बेशी उत्पाद ख, ख', ख'', इत्यादि को बेचते हैं, जो उसी क्षेत्र I में हैं। किंतु मान लीजिये कि क (I) अपना बेशी उत्पाद क्षेत्र II में ख को बेचकर द्रव्य में बदलता है। यह क (I) द्वारा बाद में उपभोग वस्तुएं ख़रीदे बिना ख (II) को उत्पादन साधन बेचे जाने से, यानी क द्वारा एकपक्षीय बिक्री से ही हो सकता है। लेकिन चूंकि $II_{स}$ को माल पूंजी के रूप से उत्पादक स्थिर पूंजी के दैहिक रूप में तब तक परिवर्तित नहीं किया जा सकता, जब तक न केवल $I_{प}$ का, वरन $I_{बे}$ के भी कम से कम एक अंश का $II_{स}$ के, जो उपभोग वस्तुओं के रूप में विद्यमान है, एक अंश से विनिमय न हो; किंतु अब क अपने $I_{बे}$ को यह विनिमय करके द्रव्य में नहीं बदलता, बल्कि II से अपने $I_{बे}$ की बिक्री से प्राप्त द्रव्य को – उसका विनिमय उपभोग वस्तु $II_{स}$ की ख़रीद में करने के बजाय – परिचलन से निकालकर बदलता है, इसलिए अब क (I) के यहां जो हो रहा है, वह सचमुच अतिरिक्त आभासी द्रव्य पूंजी का निर्माण है, किंतु दूसरी ओर ख (II) की स्थिर पूंजी का उसी के बराबर मूल्य परिमाण का और अपने को उत्पादक स्थिर पूंजी के दैहिक रूप में रूपांतरित करने में असमर्थ एक अंश माल पूंजी के रूप में बंधा हुआ है। दूसरे शब्दों में ख (II) के मालों का एक अंश और दरअसल prime facie [प्रत्यक्षतः] वह अंश, जिसकी बिक्री के बिना वह अपनी स्थिर पूंजी को पूर्णतः उसके उत्पादक रूप में पुनःपरिवर्तित नहीं कर सकता, अविक्रेय हो गया है। इसलिए जहां तक इस अंश का संबंध है, अत्युत्पादन हुआ है, जो, जहां तक इसी अंश का संबंध है, इसी प्रकार उसी पैमाने तक पर पुनरुत्पादन में बाधक होता है।

इस प्रसंग में क (I) की अतिरिक्त आभासी द्रव्य पूंजी सचमुच बेशी उत्पाद (बेशी मूल्य) का द्रव्य रूप है, किंतु इसी रूप में विचार करने पर बेशी उत्पाद (बेशी मूल्य) यहां अभी विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन की परिघटना नहीं है, वरन साधारण पुनरुत्पादन की परिघटना ही है। $I_{(प+बे)}$, जिसके बारे में यह बात कम से कम बे के एक अंश के संदर्भ में सही है, का अंततोगत्वा $II_{स}$ से विनिमय करना होगा, जिससे कि $II_{स}$ का पुनरुत्पादन उसी पैमाने पर हो सके। ख (II) को अपना बेशी उत्पाद बेचकर क (I) ने उसे स्थिर पूंजी के मूल्य का तदनुरूप अंश दैहिक रूप में प्रदान कर दिया है। किंतु इसके साथ ही परिचलन से द्रव्य निकालकर बिक्री के बाद पूरक ख़रीदारी न करके उसने ख (II) के मालों का उतना ही भाग अविक्रेय बना दिया है। इसलिए यदि हम समग्र सामाजिक पुनरुत्पादन पर दृष्टिपात करें, जिसमें I और II दोनों के पूंजीपति शामिल हैं, तो हम देखेंगे कि क (I) के बेशी उत्पाद का आभासी द्रव्य पूंजी में परिवर्तन ख (II) की माल पूंजी को, जो समान मूल्य राशि को दर्शाती है, उत्पादक (स्थिर) पूंजी में पुनःपरिवर्तित करने की असंभाव्यता को और इसलिए विस्तारित पैमाने पर आभासी उत्पादन को नहीं, वरन साधारण

पुनरुत्पादन में अवरोध को और इस प्रकार साधारण पुनरुत्पादन में न्यूनता को प्रकट करता है। चूंकि क (I) के बेशी उत्पाद का निर्माण और उसका विक्रय साधारण पुनरुत्पादन की सामान्य परिघटनाएं हैं, इसलिए साधारण पुनरुत्पादन के आधार पर भी यहां हमारे सामने निम्न अन्योन्याश्रित परिघटनाएं हैं: वर्ग I में आभासी अतिरिक्त द्रव्य पूंजी का निर्माण (अतः II के दृष्टिकोण से अल्पोपभोग); वर्ग II में माल पूर्तियों का जमाव, जिन्हें उत्पादक पूंजी में पुनःपरिवर्तित नहीं किया जा सकता (अतः II में अपेक्षाकृत अत्युत्पादन); I में द्रव्य पूंजी का आधिक्य और II में पुनरुत्पादन न्यूनता।

इस स्थल पर और अधिक ठहरे बिना हम इतना ही कहेंगे कि साधारण पुनरुत्पादन के विश्लेषण में हमने माना था कि I और II का सारा बेशी मूल्य आय के रूप में ख़र्च किया जाता है। लेकिन दरअसल बेशी मूल्य का एक अंश ही आय के रूप में ख़र्च होता है और दूसरा पूंजी में परिवर्तित हो जाता है। वास्तविक संचय इस कल्पना के आधार पर ही हो सकता है। संचय उपभोग के मोल पर होता है जैसी व्यापक शब्दावली में छिपी यह बात एक भ्रांति है, जो पूंजीवादी उत्पादन की प्रकृति के विपरीत है। कारण यह कि यह मान लिया जाता है कि पूंजीवादी उत्पादन का उद्देश्य और उसका प्रेरक हेतु उपभोग है, न कि बेशी मूल्य को हथियाना और उसका पूंजीकरण, अर्थात संचय है।

आइये, अब क्षेत्र II में होनेवाले संचय को ज़रा ध्यान से देखें।

$II_{स}$ के संदर्भ में पहली कठिनाई, अर्थात उसका माल पूंजी II के घटक रूप से स्थिर पूंजी II के दैहिक रूप में पुनःपरिवर्तन, साधारण पुनरुत्पादन से संबद्ध है। आइये, पहलेवाली सारणी ही लेते हैं:

($१,०००_{प}+१,०००_{बे}$) I का विनिमय

२,००० $II_{स}$ से होता है।

अब यदि, उदाहरणतः, I के बेशी उत्पाद के अर्धांश, अतः $\frac{१,०००}{२}$ बे अथवा ५०० $I_{बे}$ को स्थिर पूंजी के रूप में क्षेत्र I में पुनः समाविष्ट कर लिया जाता है, तो बेशी उत्पाद का यह भाग I में अवरुद्ध होने के कारण $II_{स}$ के किसी भाग को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है। उपभोग वस्तुओं में परिवर्तित होने के बदले उसे स्वयं I में उत्पादन के अतिरिक्त साधन के रूप में काम करना पड़ता है (और यहां परिचलन के इस भाग में I तथा II के बीच विनिमय दरअसल पारस्परिक है, यानी I के श्रमिकों द्वारा १,००० $I_{प}$ द्वारा १,००० $II_{स}$ के प्रतिस्थापन से भिन्न माल दोहरा स्थान-परिवर्तन करते हैं)। वह I तथा II में यह कार्य एक ही समय नहीं कर सकता। ऐसा नहीं हो सकता कि पूंजीपति अपने बेशी उत्पाद का मूल्य उपभोग वस्तुओं पर ख़र्च करे और साथ ही बेशी उत्पाद का उत्पादक ढंग से उपभोग भी कर ले, यानी इसका अपनी उत्पादक पूंजी में समावेश कर ले। अतः २,००० $I_{(प+बे)}$ के बदले केवल १,५००, यानी ($१,०००_{प}+५००_{बे}$) I इस योग्य होते हैं कि उनका विनिमय २,००० $II_{स}$ से हो; ५०० $II_{स}$ अपने माल रूप से उत्पादक (स्थिर) पूंजी II में पुनःपरिवर्तित

नहीं हो सकते। इसलिए II में अत्युत्पादन होगा, जो परिमाण में उत्पादन के ठीक उस प्रसार के बराबर होगा, जो I में होता है। II में यह अत्युत्पादन I पर यहां तक प्रभाव डाल सकता है कि I के मजदूरों द्वारा II की उपभोग वस्तुओं पर ख़र्च किये जानेवाले १,००० का पश्चप्रवाह भी अंशतः ही हो, जिससे ये १,००० परिवर्ती द्रव्य पूंजी के रूप में I पूंजीपतियों के पास लौटकर आयेंगे ही नहीं। इस प्रकार ये पूंजीपति अपरिवर्तित पैमाने पर भी पुनरुत्पादन में अपने को प्रतिबाधित पायेंगे और यह भी उसके प्रसार का प्रयत्न मात्र करने से। इस संदर्भ में यह ध्यान में रखना चाहिए कि I में यथार्थतः केवल साधारण पुनरुत्पादन हुआ था और उसके तत्वों को जैसे कि वे हमारी सारणी में प्रस्तुत किये गये हैं, भविष्य में, यथा अगले साल प्रसार की दृष्टि से बस अलग ढंग से समूहित किया गया है।

हो सकता है कि इस कठिनाई से निम्नलिखित तरीक़े से बच निकलने का प्रयास किया जाये : जो ५०० $II_{स}$ पूंजीपतियों ने भंडार में जमा कर रखे हैं और जो तुरंत उत्पादक पूंजी में परिवर्तित नहीं किये जा सकते, वे अत्युत्पादन तो दूर, उलटे पुनरुत्पादन का आवश्यक तत्व हैं, जिसकी ओर हमने अभी तक ध्यान नहीं दिया था। हम देख चुके हैं कि अनेक बिंदुओं पर द्रव्य पूर्ति का संचय किया जाना चाहिए, अतः परिचलन से द्रव्य निकाला जाना चाहिए, अंशतः I में नई द्रव्य पूंजी का निर्माण संभव बनाने के लिए और अंशतः क्रमशः ह्रासमान स्थायी पूंजी के मूल्य को द्रव्य रूप में अस्थायी तौर पर क़ब्ज़े में रखे रखने के लिए। लेकिन चूंकि हमने अपनी सारणी बनाते समय सारा द्रव्य और सारा माल केवल I तथा II पूंजीपतियों के हाथों में रख दिया था और चूंकि यहां न तो व्यापारी हैं, न सर्राफ़, न बैंकर, न ऐसे वर्ग, जो केवल उपभोग करते हैं और प्रत्यक्ष उत्पादन नहीं करते, इसलिए यह नतीजा निकलता है कि यहां अपने-अपने उत्पादकों के पास माल भंडारों का निरंतर निर्माण पुनरुत्पादन तंत्र को चालू रखने के लिए अपरिहार्य है। अतः पूंजीपति II ने जो ५०० $II_{स}$ भंडार में डाले हुए हैं, वे उपभोग वस्तुओं की माल पूर्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो पुनरुत्पादन में निहित उपभोग प्रक्रिया के सातत्य को सुनिश्चित करती है, जिसका यहां अर्थ है साल दर साल उसका चालू रहना। वह उपभोग निधि, जो अभी अपने विक्रेताओं के हाथ में है, जो साथ ही उसके उत्पादक भी हैं, किसी साल इसलिए घटकर शून्य के स्तर पर नहीं पहुंच सकती कि अगले साल की शुरूआत शून्य से हो, जैसे आज से कल तक के संक्रमण में भी ऐसी बात नहीं हो सकती। चूंकि मालों की ऐसी पूर्तियों का निरंतर फिर से – यद्यपि भिन्न-भिन्न परिमाण में – निर्माण करना होता है, इसलिए हमारे पूंजीपति उत्पादकों II के पास आरक्षित द्रव्य पूंजी रहनी चाहिए, जिससे कि अपनी उत्पादन प्रक्रिया जारी रख सकें, यद्यपि उनकी उत्पादक पूंजी का एक भाग अस्थायी रूप में मालों की शक्ल में बंधकर पड़ा होता है। हमारी कल्पना यह है कि वे समस्त व्यापार व्यवसाय को उत्पादन व्यवसाय से संयुक्त कर लेते हैं। इसलिए उनके पास ज़रूरत के समय काम आने के लिए अतिरिक्त द्रव्य पूंजी भी रहनी चाहिए, जो पुनरुत्पादन प्रक्रिया में पृथक कार्यों के अलग होने और विभिन्न प्रकार के पूंजीपतियों में वितरित होने के समय व्यापारियों के हाथ में होती है।

इस पर ये आपत्तियां की जा सकती हैं : १) ऐसी पूर्तियों का निर्माण और इस निर्माण की आवश्यकता सभी – I और II दोनों के ही – पूंजीपतियों के लिए है। मालों के विक्रेता मात्र मानकर उन पर विचार करें, तो उनमें केवल यह भिन्नता है कि वे भिन्न प्रकार के माल बेचते हैं। माल II की पूर्ति का मतलब है माल I की पूर्व पूर्ति। यदि हम एक ओर

इस पूर्ति की उपेक्षा करें, तो दूसरी ओर भी हमें ऐसा ही करना होगा। लेकिन अगर हम दोनों ओर की पूर्तियों को ध्यान में रखें, तो समस्या किसी तरह बदल नहीं जाती।

२) ठीक जैसे II के प्रसंग में कोई साल अगले साल के वास्ते मालों की पूर्ति के साथ ख़त्म होता है, वैसे ही वह उसके ही प्रसंग में मालों की पिछले साल से ली पूर्ति के साथ शुरू हुआ था। इसलिए वार्षिक पुनरुत्पादन के उसके सबसे अमूर्त रूप में विश्लेषण में हमें उसे दोनों ही प्रसंगों में ख़ारिज करना होगा। अगर अगले साल के लिए दी जानेवाली माल पूर्ति सहित हम नियत वर्ष का समूचा उत्पादन उसमें रहने दें और इसके साथ ही उससे उसे पूर्व वर्ष से अंतरित माल पूर्ति को निकाल लें, तो हमारे सामने हमारे विश्लेषण के विषय के रूप में औसत साल का वास्तविक समुच्चित उत्पाद आ जायेगा।

३) यह सीधी सी बात कि साधारण पुनरुत्पादन के विश्लेषण में हमें उस कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा था, जिससे अब निपटना है, यह सिद्ध करती है कि हमारे सामने एक विशिष्ट परिघटना है, जिसका एकमात्र कारण I तत्वों का (पुनरुत्पादन के संदर्भ में) भिन्न समूहन है, बदला हुआ समूहन है, जिसके बिना विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन हो ही नहीं सकता।

३. संचय का सारणीबद्ध प्रस्तुतीकरण

अब हम पुनरुत्पादन का अध्ययन निम्न सारणी के अनुसार करेंगे:

$$\text{सारणी क)}\left.\begin{array}{l} \text{I. } ४,०००_{स} + १,०००_{प} + १,०००_{बे} = ६,००० \\ \text{II. } १,५००_{स} + \ \ ३७६_{प} + \ \ ३७६_{बे} = २,२५२ \end{array}\right\} \text{योग } ८,२५२।$$

सबसे पहले हम यह देखते हैं कि वार्षिक सामाजिक उत्पाद का कुल योग अथवा ८,२५२ पहली सारणी के कुल योग से कम है, जहां वह ९,००० था। हम इससे काफ़ी बड़ी संख्या, मसलन, १० गुना बड़ी संख्या की भी कल्पना कर सकते हैं। हमने अपनी पहली सारणी की अपेक्षा छोटी राशि इसलिए चुनी है कि यह स्पष्टतः लक्षित हो जाये कि विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन (जिसे यहां पूंजी के और बड़े निवेश से चलाया जानेवाला उत्पादन भर माना गया है) किसी भी तरह उत्पाद के निरपेक्ष परिमाण से संबद्ध नहीं है और मालों की दी हुई मात्रा के लिए इसका आशय केवल दिये हुए उत्पाद के विभिन्न तत्वों के कार्यों का भिन्न क्रम अथवा भिन्न परिसीमन होता है, फलतः जहां तक उत्पाद के मूल्य का संबंध है, यह केवल साधारण पुनरुत्पादन है। जो चीज परिवर्तित होती है, वह साधारण पुनरुत्पादन के दिये हुए तत्वों की मात्रा नहीं, वरन उनका गुणात्मक निर्धारण है, और यह परिवर्तन विस्तारित पैमाने पर आगे होनेवाले पुनरुत्पादन का भौतिक पूर्वाधार है।[58]

परिवर्ती और स्थिर पूंजी के बीच के अनुपात को बदलकर हम सारणी को दूसरा रूप दे सकते हैं। उदाहरण के लिए, इस प्रकार:

---

[58] इससे जेम्स मिल और एस० बेली के बीच पूंजी संचय को लेकर चले विवाद का, जिसकी चर्चा एक अन्य दृष्टिकोण से हम पहले खंड (Kap. XXII, 5, Note 64) [हिंदी संस्करण: अध्याय २४, अनुभाग ५, पृष्ठ ६८४, टिप्पणी २] में कर चुके हैं, यानी औद्योगिक पूंजी का परिमाण बदले बिना उसके कार्य को विस्तारित करने की संभावना के बारे में विवाद का सदा के लिए ख़ात्मा हो जाता है। इसकी चर्चा हम आगे फिर करेंगे।

$$\text{सारणी ख)} \left.\begin{array}{l} \text{I. ४,०००}_{\text{स}} + \text{८७५}_{\text{प}} + \text{८७५}_{\text{बे}} = \text{५,७५०} \\ \text{II. १,७५०}_{\text{स}} + \text{३७६}_{\text{प}} + \text{३७६}_{\text{बे}} = \text{२,५०२} \end{array}\right\} \text{योग ८,२५२।}$$

यह सारणी साधारण पुनरुत्पादन के लिए तैयार की गयी प्रतीत होती है, क्योंकि सारा बेशी मूल्य संचित हुए बिना आय के रूप में उपभोग में आ जाता है। क) और ख) दोनों ही मामलों में हमारे पास उसी मूल्य परिमाण का वार्षिक उत्पाद होता है; केवल कार्यात्मक दृष्टि से ख) के अंतर्गत उसके तत्व इस प्रकार समूहित हैं कि उसी पैमाने पर पुनरुत्पादन फिर चालू हो जाता है; जब कि क) के अंतर्गत कार्यात्मक समूहन विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन का भौतिक आधार है। ख) के अंतर्गत ($\text{८७५}_{\text{प}} + \text{८७५}_{\text{बे}}$) I अथवा १,७५० $\text{I}_{(\text{प}+\text{बे})}$ का विनिमय बिना किसी अधिशेष के १,७५० $\text{II}_{\text{स}}$ से होता है, जब कि क) के अंतर्गत २,००० $\text{I}_{(\text{प}+\text{बे})}$ के बराबर ($\text{१,०००}_{\text{प}} + \text{१,०००}_{\text{बे}}$) I के १,५०० $\text{II}_{\text{स}}$ से विनिमय के फलस्वरूप वर्ग I में संचय के लिए ५०० $\text{I}_{\text{बे}}$ का अधिशेष रह जाता है।

आइये, सारणी क) की और गहरी परीक्षा करें। मान लीजिये, I और II दोनों अपने बेशी मूल्य का आधा भाग संचित करते हैं, अर्थात उसे आय के रूप में ख़र्च करने के बदले वे उसे अतिरिक्त पूंजी के तत्व में बदल देते हैं। चूंकि १,००० $\text{I}_{\text{बे}}$ का आधा हिस्सा या ५०० ही किसी न किसी रूप में संचित करना, अतिरिक्त द्रव्य पूंजी के रूप में निवेशित करना है, यानी अतिरिक्त उत्पादक पूंजी में बदला जाना है, इसलिए केवल ($\text{१,०००}_{\text{प}} + \text{५००}_{\text{बे}}$) I आय के रूप में ख़र्च होते हैं। इसलिए यहां केवल १,५०० $\text{II}_{\text{स}}$ के सामान्य आकार के तौर पर सामने आते हैं। १,५०० $\text{I}_{(\text{प}+\text{बे})}$ और १,५०० $\text{II}_{\text{स}}$ के बीच विनिमय की और ज्यादा छानबीन करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि यह काम साधारण पुनरुत्पादन प्रक्रिया के अंतर्गत पहले ही किया जा चुका है; न ४,००० $\text{I}_{\text{स}}$ पर ध्यान देना जरूरी है, क्योंकि नये सिरे से शुरू होनेवाले पुनरुत्पादन की पुनर्व्यवस्था का भी साधारण पुनरुत्पादन प्रक्रिया के रूप में विवेचन किया जा चुका है (जो इस बार विस्तारित पैमाने पर होगा)।

अब हमारे लिए जिस अकेली चीज़ की छानबीन करना रह जाता है, वह ५०० $\text{I}_{\text{बे}}$ तथा ($\text{३७६}_{\text{प}} + \text{३७६}_{\text{बे}}$) II है, क्योंकि एक ओर तो यह I तथा II दोनों के आंतरिक संबंधों का मामला है, दूसरी ओर उनके बीच की गति का मामला है। चूंकि हमने यह माना है कि II में भी उसी प्रकार बेशी मूल्य के अर्धांश का संचय होगा, इसलिए यहां १८८ पूंजी में तबदील किये जायेंगे और इनका एक चौथाई*, यानी ४७ अथवा उसे पूर्णांक बनाने के लिए ४८ परिवर्ती पूंजी होंगे, जिससे कि स्थिर पूंजी में परिवर्तित होने को १४० शेष रहेंगे।

यहां हमारे सामने एक नई समस्या आ जाती है, जिसका होना इस प्रचलित दृष्टिकोण के लिए अजीब लगेगा कि एक प्रकार के मालों का दूसरे प्रकार के मालों से अथवा मालों का द्रव्य से और पुनः उसी द्रव्य का अन्य प्रकार के मालों से विनिमय होता है। १४० $\text{II}_{\text{बे}}$

---

*यह प्रकटतः चूक है, यह पांचवां हिस्सा होना चाहिए; लेकिन इससे अंतिम निष्कर्ष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।—सं०

उत्पादक पूंजी में तभी परिवर्तित हो सकते हैं कि जब वे उसी मूल्य के $I_{बे}$ के मालों द्वारा प्रतिस्थापित हों। यह तो स्वतःसिद्ध है कि $I_{बे}$ के जिस भाग का $II_{बे}$ से विनिमय होना है, उसमें उत्पादन साधन समाहित होने चाहिए, जो I और II दोनों के उत्पादन में अथवा अकेले II के उत्पादन में प्रवेश कर सकें। यह प्रतिस्थापन II की ओर से एकपक्षीय ख़रीदारी के ज़रिये ही संभव हो सकता है, क्योंकि ५०० $I_{बे}$ के समूचे बेशी उत्पाद को, जिसकी हमें अभी परीक्षा करना है, I के अंतर्गत संचय का काम करना है, अतः उसका II मालों से विनिमय नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में I एक ही समय उसका संचय करे और उपभोग भी करे, ऐसा नहीं हो सकता। अतः II को बाद में I के हाथ अपने माल की बिक्री से यह द्रव्य वापस पाये बिना १४० $I_{बे}$ नक़द देकर ख़रीदना होगा। और यह प्रक्रिया प्रत्येक नये वार्षिक उत्पादन में, जहां तक कि वह विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन होता है, लगातार दोहरायी जाती है। इसके लिए II के अंतर्गत द्रव्य का स्रोत कहां है?

उलटे, प्रतीत यही होता है कि II नई द्रव्य पूंजी के निर्माण के लिए बहुत ही लाभहीन क्षेत्र है, जो वास्तविक संचय के साथ-साथ होता है और जो पूंजीवादी उत्पादन के अधीन उसे आवश्यक बनाता है और जो आरंभ में अपने को वस्तुतः सामान्य अपसंचय के रूप में प्रस्तुत करता है।

पहले हमारे सामने ३७६ $II_{प}$ हैं। श्रम शक्ति के लिए पेशगी दी गयी ३७६ की द्रव्य पूंजी माल II की ख़रीदारी के ज़रिये पूंजीपति II के पास परिवर्ती पूंजी की तरह द्रव्य रूप में निरंतर लौट आती है। प्रारंभ-बिंदु – पूंजीपति के जेब – से चलने और वहीं वापस आने की यह निरंतर आवृत्ति इस चक्र में घूमते द्रव्य में किसी भी तरह बढ़ोतरी नहीं कर देती। इसलिए यह द्रव्य संचय का स्रोत नहीं है। न इस द्रव्य को अपसंचित, वस्तुतः नवीन द्रव्य पूंजी का निर्माण करने के लिए परिचलन से निकाला जा सकता है।

लेकिन ज़रा ठहरिये! क्या थोड़ा सा मुनाफ़ा कमाने की गुंजाइश यहां नहीं है?

हमें यह न भूलना चाहिए कि वर्ग I के मुक़ाबले वर्ग II को यह सुविधा है कि मज़दूरों को स्वयं अपने द्वारा उत्पादित माल उससे फिर ख़रीदना होता है। II श्रम शक्ति का ग्राहक और इसके साथ ही अपने द्वारा नियोजित श्रम शक्ति के मालिकों के हाथ वह मालों का विक्रेता भी है। अतः II :

१) मज़दूरी को महज़ सामान्य औसत स्तर से सीधे नीचे गिरा सकता है – और इस बात में वह I के पूंजीपतियों के समान है। इस तरकीब से द्रव्य का परिवर्ती पूंजी के द्रव्य रूप में कार्यशील अंश मुक्त हो जाता है और यदि यह प्रक्रिया निरंतर दोहराई जाती रहे, तो वह अपसंचय का, और इस प्रकार II में वस्तुतः अतिरिक्त द्रव्य पूंजी का एक सामान्य स्रोत बन सकती है। बेशक हम यहां ठगी से हुए अनियत लाभ की बात नहीं कर रहे हैं, क्योंकि हम यहां पूंजी के सामान्य निर्माण का विवेचन कर रहे हैं। किंतु यह न भूलना चाहिए कि जो सामान्य मज़दूरी वास्तव में दी जाती है (जो ceteric paribus [अन्य परिस्थितियां यथा-वत रहने पर] परिवर्ती पूंजी का परिमाण निर्धारित करती है), वह पूंजीपतियों द्वारा उनकी सहृदयता के कारण नहीं दी जाती, वरन उसे विद्यमान संबंधों के अंतर्गत देना पड़ता है। इससे व्याख्या की उपर्युक्त पद्धति निरस्त हो जाती है। यदि हम यह मानें कि $३७६_{प}$ II द्वारा व्यय की जानेवाली परिवर्ती पूंजी है, तो हमें सिर्फ़ पैदा हुई एक नई समस्या का समाधान करने के

लिए ही अचानक इस परिकल्पना को छिपे-छिपे लाने का कोई अधिकार नहीं है कि वह ३७६$_प$ के बजाय केवल ३५०$_प$ दे सकता है।

२) दूसरी ओर समग्र रूप में II को I की अपेक्षा यह उपर्युक्त सुविधा है कि वह श्रम शक्ति का ग्राहक है और साथ ही साथ अपने ही श्रमिकों को अपने माल का विक्रेता भी है। प्रत्येक औद्योगिक देश (यथा ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमरीका) इसके अत्यंत ठोस प्रमाण उपलब्ध करता है कि इस सुविधा से कैसे लाभ उठाया जा सकता है – नाम को सामान्य मज़दूरी देकर, पर बदले में माल में समतुल्य दिये बिना उसका एक हिस्सा हथियाकर, यानी चुराकर; यही काम जिंस रूप मज़दूरी के ज़रिये या परिचलन माध्यम में धोखाधड़ी के ज़रिये (और शायद इस सफ़ाई से कि क़ानून की पकड़ में भी न आ सके) करके। (इस मौक़े का कुछ उपयुक्त उदाहरण देकर इस विचार को विस्तार देने के लिए उपयोग कीजिये।) यह १) के अंतर्गत किया गया कार्य ही है, बस दूसरे वेश में है और टेढ़े रास्ते से किया गया है। इसलिए इसे भी पहलेवाले की तरह ही अस्वीकार कर देना चाहिए। यहां हम वास्तव में दी हुई मज़दूरी का विवेचन कर रहे हैं, न कि नामिक मज़दूरी का।

हम देखते हैं कि पूंजीवाद की क्रियाविधि के वस्तुगत विश्लेषण में उसके साथ अब भी असाधारण चीमड़पन से चिपके कुछेक दाग़ों का सैद्धांतिक कठिनाइयों से बचने के लिए बहाने की तरह इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। लेकिन विचित्र बात है कि मेरे अधिकांश बूर्जुआ आलोचक मुझे इसलिए खरी-खोटी सुनाते हैं, मानो मैंने – यथा 'पूंजी' के प्रथम खंड में – यह मानकर पूंजीपतियों के प्रति अन्याय किया हो कि पूंजीपति श्रम शक्ति की अदायगी उसके वास्तविक मूल्य के अनुसार करता है, एक ऐसा काम कि जो वह ज़्यादातर नहीं ही करता! (जिस उदारता का श्रेय मुझे दिया जाता है, उसका कुछ उपयोग करते हुए शैफ़्ले को उद्धृत करना उचित होगा।)

इस तरह ३७६ II$_प$ के सहारे हम पहले बताये हुए लक्ष्य के कुछ अधिक समीप नहीं पहुंच जाते।

किंतु ३७६ II$_बे$ की स्थिति तो और भी अधिक संकटपूर्ण जान पड़ती है। यहां बस एक ही वर्ग के पूंजीपति अपनी पैदा की उपभोग वस्तुओं का पारस्परिक क्रय-विक्रय करते हुए एक दूसरे के सामने आते हैं। इन लेन-देनों के लिए आवश्यक धन केवल परिचलन के माध्यम का कार्य करता है और सामान्य स्थिति में वह संबद्ध लोगों के पास उसी अनुपात में लौटेगा, जिसमें उन्होंने उसे परिचलन के लिए पेशगी दिया था, जिससे कि वह उसी रास्ते पर बार-बार चक्कर लगाता रहे।

दो ही तरीक़े दिखाई देते हैं, जिनसे इस द्रव्य को वस्तुतः अतिरिक्त द्रव्य पूंजी के निर्माण के लिए परिचलन से निकाला जा सकता है। या तो पूंजीपति II का एक हिस्सा दूसरे को ठगता है और इस तरह उनका धन उनसे छीन लेता है। हम जानते हैं कि नई द्रव्य पूंजी के निर्माण के लिए परिचलन माध्यम का पूर्व प्रसार आवश्यक नहीं है। आवश्यक बस यह है कि कुछ लोगों द्वारा परिचलन से धन निकाला जाये और जमा कर लिया जाये। यदि यह धन चुरा भी लिया जाये, जिससे कि पूंजीपति II के एक हिस्से द्वारा अतिरिक्त द्रव्य पूंजी का निर्माण किये जाने से दूसरे हिस्से की निश्चित धन हानि होगी, तो भी स्थिति में कोई अंतर नहीं आयेगा। ठगे गये पूंजीपति II ज़रा कम मौज में रहेंगे, बस इतना ही।

अथवा $II_{बे}$ का एक हिस्सा, जो जीवनावश्यक वस्तुओं का प्रतीक है, क्षेत्र II के भीतर सीधे नयी परिवर्ती पूंजी में परिवर्तित हो जाता है। यह कैसे होता है, इसकी परीक्षा हम इस अध्याय के अंत में (४ के अंतर्गत) करेंगे।

१) पहला उदाहरण

क) साधारण पुनरुत्पादन की सारणी

$$\left.\begin{array}{l} I.\ ४,०००_{स} + १,०००_{प} + १,०००_{बे} = ६,००० \\ II.\ २,०००_{स} + \ \ ५००_{प} + \ \ ५००_{बे} = ३,००० \end{array}\right\} \text{योग } ९,०००।$$

ख) विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन की
प्रारंभिक सारणी

$$\left.\begin{array}{l} I.\ ४,०००_{स} + १,०००_{प} + १,०००_{बे} = ६,००० \\ II.\ १,५००_{स} + \ \ ७५०_{प} + \ \ ७५०_{बे} = ३,००० \end{array}\right\} \text{योग } ९,०००।$$

यह मान लेने पर कि सारणी ख में आधे बेशी मूल्य I, यानी ५०० का संचय होता है, हमें पहले ($१,०००_{प} + ५००_{बे}$) I अथवा १,५०० $I_{(प+बे)}$ प्राप्त होते हैं, जिनका प्रतिस्थापन १,५०० $II_{स}$ द्वारा होगा। इससे I में $४,०००_{स} + ५००_{बे}$ रह जाते हैं, जिनमें से $५००_{बे}$ संचित होंगे। १,५०० $II_{स}$ द्वारा ($१,०००_{प} + ५००_{बे}$) I का प्रतिस्थापन साधारण पुनरुत्पादन की प्रक्रिया है, जिसका विवेचन पहले हो चुका है।

अब यह मान लीजिये कि ५०० $I_{बे}$ से ४०० को स्थिर पूंजी में और १०० को परिवर्ती पूंजी में बदलना है। I के अंतर्गत $४००_{बे}$ का विनिमय और इस तरह उनके पूंजीकरण का विवेचन पहले ही हो चुका है। इसलिए उनका और सोच-विचार के बिना $I_{स}$ में संयोजन किया जा सकता है और उस स्थिति में I के लिए हम यह पाते हैं:

$४,४००_{स} + १,०००_{प} + १००_{बे}$ (जिनमें $१००_{बे}$ को $१००_{प}$ में बदलना है)।

अपनी बारी में II संचय के लिए I से १०० $I_{बे}$ (उत्पादन साधनों में विद्यमान) ख़रीदता है, जो अब अतिरिक्त स्थिर पूंजी II बन जाते हैं, जबकि उनके लिए वह द्रव्य रूप में जो १०० देता है, वे I की अतिरिक्त परिवर्ती पूंजी के द्रव्य रूप में तबदील हो जाते हैं। इस तरह हमारे पास I के लिए $४,४००_{स} + १,१००_{प}$ की पूंजी रहती है (जिसमें अंतोक्त द्रव्य रूप में हैं), जो कुल मिलाकर ५,५०० है।

अब II के पास उसकी स्थिर पूंजी के रूप में $१,६००_{स}$ हैं। इन्हें काम में डालने के लिए उसे द्रव्य रूप में $५०_{प}$ और नई श्रम शक्ति ख़रीदने के लिए पेशगी देने होंगे, जिससे उसकी परिवर्ती पूंजी ७५० से बढ़कर ८०० हो जायेगी। कुल १५० द्वारा II की स्थिर और परिवर्ती पूंजी के इस प्रसार की पूर्ति उसके बेशी मूल्य में से होती है। अतः पूंजीपति II के लिए उपभोग निधि के रूप में ७५० $II_{बे}$ में से केवल $६००_{बे}$ रह जाते हैं, जिनका वार्षिक उत्पाद अब इस तरह वितरित होता है:

II. $१,६००_{स} + ८००_{प} + ६००_{बे}$ (उपभोग निधि) = ३,०००।

उपभोग वस्तुओं के रूप में उत्पादित $१५०_{बे}$, जिन्हें यहां $(१००_{स} + ५०_{प})$ II में परिवर्तित कर लिया गया है, अपने दैहिक रूप में पूरी तरह मज़दूरों के उपभोग में चले जाते हैं, ऊपर बताये अनुसार १०० का उपभोग I ($१००\ I_{प}$) के मज़दूरों द्वारा और ५० का II ($५०\ II_{प}$) के मज़दूरों द्वारा किया जाता है। दरअसल II में, जिसमें उसका कुल उत्पाद संचय के लिए उपयुक्त रूप में तैयार होता है, **आवश्यक** उपभोग वस्तुओं के रूप में बेशी मूल्य से १०० अधिक हिस्से का पुनरुत्पादन करना होगा। यदि पुनरुत्पादन वास्तव में विस्तारित पैमाने पर शुरू होता है, तो परिवर्ती द्रव्य पूंजी I के १०० उसके मज़दूरों के हाथों होकर II के पास लौट आते हैं, जब कि II माल पूर्ति के रूप में I को $१००_{बे}$ और इसके साथ ही माल पूर्ति के रूप में ५० ख़ुद अपने मज़दूर वर्ग को अंतरित करता है।

संचय के लिए क्रम व्यवस्था में किया परिवर्तन इस प्रकार है:

$$\left.\begin{array}{l} \text{I. } ४,४००_{स} + १,१००_{प} + ५०० \text{ उपभोग निधि} = ६,००० \\ \text{II. } १,६००_{स} + \ ८००_{प} + ६०० \text{ उपभोग निधि} = ३,००० \end{array}\right\} \text{पहले की ही तरह योग } ९,०००।$$

इन राशियों में निम्नलिखित पूंजी हैं:

$$\left.\begin{array}{l} \text{I. } ४,४००_{स} + १,१००_{प} \text{ (द्रव्य)} = ५,५०० \\ \text{II. } १,६००_{स} + \ ८००_{प} \text{ (द्रव्य)} = २,४०० \end{array}\right\} = ७,९००,$$

ज़ब कि उत्पादन की शुरूआत निम्न से हुई थी:

$$\left.\begin{array}{l} \text{I. } ४,०००_{स} + १,०००_{प} = ५,००० \\ \text{II. } १,५००_{स} + \ ७५०_{प} = २,२५० \end{array}\right\} = ७,२५०।$$

अब यदि वास्तविक संचय इस आधार पर होता है, यानी यदि उत्पादन वास्तव में इस परिवर्धित पूंजी से होता रहता है, तो अगले वर्ष के अंत में हमें यह प्राप्त होता है:

$$\left.\begin{array}{l} \text{I. } ४,४००_{स} + १,१००_{प} + १,१००_{बे} = ६,६०० \\ \text{II. } १,६००_{स} + \ ८००_{प} + \ ८००_{बे} = ३,२०० \end{array}\right\} = ९,८००।$$

अब मान लीजिये कि I में संचय उसी अनुपात में होता रहता है, जिससे कि $५५०_{बे}$ आय के रूप में ख़र्च होते हैं और $५५०_{बे}$ संचित होते हैं। उस हालत में $१,१००\ I_{प}$ का प्रतिस्थापन पहले $१,१००\ II_{स}$ द्वारा होता है और उसी मूल्य के II के मालों के रूप में $५५०\ I_{बे}$ का सिद्धिकरण करना होगा; और इस तरह कुल योग $१,६५०\ I_{(प+बे)}$ होगा। किंतु जो स्थिर पूंजी II प्रतिस्थापित होनी है, वह केवल १,६०० के बराबर है; अतः बाक़ी

५० पूरक ८०० $II_{बे}$ में से जोड़े जायेंगे। फ़िलहाल द्रव्य पक्ष को अलग रहने दें, तो इस लेन-देन का परिणाम यह होगा:

I. $४,४००_{स} + ५००_{बे}$ (जिनका पूंजीकरण होना है); इसके अलावा माल $II_{स}$ के रूप में सिद्धिकृत, पूंजीपतियों और मजदूरों की उपभोग निधि $१,६५०_{(प+बे)}$।

II. $१,६५०_{स}$ (जैसा कि ऊपर दिखाया गया है, ५० $II_{बे}$ से जोड़े गये हैं) + $+ ८००_{प} + ७५०_{बे}$ (पूंजीपतियों की उपभोग निधि)।

किंतु यदि II में प तथा स का पुराना अनुपात क़ायम रखा जाये, तो $५०_{स}$ के लिए $२५_{प}$ और व्यय करने होंगे; इन्हें $७५०_{बे}$ से प्राप्त किया जा सकता है। तब हमारे सामने ये होते हैं:

$$II.\ १,६५०_{स} + ८२५_{प} + ७२५_{बे}।$$

I में $५५०_{बे}$ का पूंजीकरण करना होगा। यदि पूर्वोक्त अनुपात क़ायम रखा जाये, तो इस राशि के ४४० से स्थिर पूंजी बनेगी और ११० से परिवर्ती पूंजी बनेगी। ७२५ $II_{बे}$ में से ये ११० निकाले जा सकते हैं, अर्थात ११० मूल्य की उपभोग वस्तुओं का उपभोग II पूंजीपतियों के बदले I मजदूर करते हैं; नतीजा यह कि II पूंजीपतियों को इन $११०_{बे}$ का उपभोग न कर पाने पर उनका पूंजीकरण करना होता है। तब ७२५ $II_{बे}$ में से ६१५ $II_{बे}$ शेष रहते हैं। किंतु यदि II इस प्रकार इन ११० को अतिरिक्त स्थिर पूंजी में परिवर्तित कर लेता है, तो उसे ५५ की अतिरिक्त परिवर्ती पूंजी दरकार होती है। इसकी पूर्ति भी बेशी मूल्य से ही करनी होगी। इस राशि को ६१५ $II_{बे}$ में से घटा देने पर II पूंजीपतियों के उपभोग के लिए ५६० रह जाते हैं। ये सभी वास्तविक और संभाव्य अंतरण कर लेने के बाद हमें यह पूंजी मूल्य प्राप्त होता है:

$$I.(४,४००_{स} + ४४०_{स}) + (१,१००_{प} + ११०_{प}) = ४,८४०_{स} + १,२१०_{प} = ६,०५०$$

$$II.\ (१,६००_{स} + ५०_{स} + ११०_{स}) + (८००_{प} + २५_{प} + ५५_{प}) =$$

$$= १,७६०_{स} + ८८०_{प} = \frac{२,६४०}{८,६९०}।$$

सब कुछ सामान्य गति से होता चले, इसके लिए आवश्यक है कि I की अपेक्षा II में संचय और तेज़ी से हो, वरना $I_{(प+बे)}$ अंश, जिसे $II_{स}$ मालों में परिवर्तित करना है, $II_{स}$ की अपेक्षा तेज़ी से बढ़ेगा, जब कि उसका विनिमय उसी से हो सकता है।

यदि इस आधार पर पुनरुत्पादन चालू रहे और परिस्थितियां अन्यथा अपरिवर्तित रहें, तो अगला वर्ष समाप्त होने पर यह स्थिति होती है:

$$\left.\begin{array}{l} I.\ ४,८४०_{स} + १,२१०_{प} + १,२१०_{बे} = ७,२६० \\ II.\ १,७६०_{स} + \ \ ८८०_{प} + \ \ ८८०_{बे} = ३,५२० \end{array}\right\} = १०,७८०।$$

यदि बेशी मूल्य के विभाजन की दर अपरिवर्तित रहती है, तो I के पास आय के रूप में खर्च करने को पहले $१,२१०_{प}$ तथा बे का आधा भाग या ६०५, कुल १,८१५ रहता है। यह उपभोग निधि भी $II_{स}$ की अपेक्षा ५५ अधिक है। ये ५५ $८८०_{बे}$ में से घटाने होंगे, जिससे ८२५ बचेंगे। इसके अलावा ५५ $II_{बे}$ के $II_{स}$ में परिवर्तन का मतलब है २७ १/२ की अनुरूप परिवर्ती पूंजी से $II_{बे}$ से एक और कटौती, जिससे उपभोग के लिए ७९७ १/२ $II_{बे}$ बच रहेंगे।

अब I को $६०५_{बे}$ का पूंजीकरण करना है। इनमें से ४८४ स्थिर पूंजी हैं और १२१ परिवर्ती। इन १२१ को $II_{बे}$ से घटाना होगा, जो अब भी ७९७ १/२ के बराबर है, जिससे ६७६ १/२ $II_{बे}$ शेष रहते हैं। अब II अन्य १२१ को स्थिर पूंजी में बदलता है और इसके लिए उसे ६० १/२ की अन्य परिवर्ती पूंजी दरकार होती है, जो उसी तरह ६७६ १/२ में से आती है, जिससे उपभोग के लिए ६१६ शेष रहते हैं।

अब हमारे पास निम्नलिखित पूंजियां होती हैं :

I. स्थिर : ४,८४० + ४८४ = ५,३२४।
परिवर्ती : १,२१० + १२१ = १,३३१।
II. स्थिर : १,७६० + ५५ + १२१ = १,९३६।
परिवर्ती : ८८० + २७ १/२ + ६० १/२ = ९६८।

$$\text{योग :}\left.\begin{array}{l}\text{I. } ५,३२४_{स} + १,३३१_{प} = ६,६५५ \\ \text{II. } १,९३६_{स} + \quad ९६८_{प} = २,९०४\end{array}\right\} = ९,५५९।$$

वर्ष की समाप्ति पर उत्पाद यह होता है :

$$\left.\begin{array}{l}\text{I. } ५,३२४_{स} + १,३३१_{प} + १,३३१_{बे} = ७,९८६ \\ \text{II. } १,९३६_{स} + \quad ९६८_{प} + \quad ९६८_{बे} = ३,८७२\end{array}\right\} = ११,८५८।$$

इसी परिकलन को दुहराने और भिन्नांशों को पूर्ण संख्या का रूप देने से अगले वर्ष की समाप्ति पर निम्नलिखित उत्पाद प्राप्त होता है :

$$\left.\begin{array}{l}\text{I. } ५,८५६_{स} + १,४६४_{प} + १,४६४_{बे} = ८,७८४ \\ \text{II. } २,१२९_{स} + १,०६५_{प} + १,०६५_{बे} = ४,२५९\end{array}\right\} = १३,०४३।$$

इससे अगले वर्ष की समाप्ति पर उत्पाद यह होगा :

$$\left.\begin{array}{l}\text{I. } ६,४४२_{स} + १,६१०_{प} + १,६१०_{बे} = ९,६६२ \\ \text{II. } २,३४२_{स} + १,१७२_{प} + १,१७२_{बे} = ४,६८६\end{array}\right\} = १४,३४८।$$

विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन के ४ वर्षों में I और II की कुल पूंजी $५,५००_{स}+$ $+१,७५०_{प}=७,२५०$ से बढ़कर $८,७८४_{स}+२,७८२_{प}=११,५६६$ हो गयी है; दूसरे शब्दों में १०० : १६० के अनुपात में बढ़ी है। शुरू में कुल बेशी मूल्य १,७५० था; अब वह २,७८२ है। शुरू में उपभुक्त बेशी मूल्य I के लिए ५०० और II के लिए ६००, कुल १,१०० था। पिछले साल वह I के लिए ७३२ और II के लिए ७४५, कुल १,४७७ था। अतः वह १०० : १३४ के अनुपात में बढ़ा है।

२) दूसरा उदाहरण

अब ९,००० का वार्षिक उत्पाद ले लीजिये, जो औद्योगिक पूंजीपति वर्ग के हाथ में ऐसे रूप में पूर्णतः माल पूंजी है, जिसमें परिवर्ती पूंजी का स्थिर पूंजी से सामान्य औसत अनुपात १ : ५ है। यह पूंजीवादी उत्पादन के, और तदनुसार सामाजिक श्रम की उत्पादिता के काफ़ी विकास की, उत्पादन के पैमाने में काफ़ी पूर्ववर्ती वृद्धि की और अंततः उन सभी परिस्थितियों के विकास की पूर्वापेक्षा करता है, जिनसे मज़दूर वर्ग में आपेक्षिक जनसंख्या आधिक्य पैदा हो जाता है। तब विविध भिन्नांशों को पूर्ण संख्या का रूप देने के बाद वार्षिक उत्पाद का विभाजन इस प्रकार होगा :

$$\left.\begin{array}{l} \text{I. } ५,०००_{स}+१,०००_{प}+१,०००_{बे}=७,००० \\ \text{II. } १,४३०_{स}+\;\;२८५_{प}+\;\;२८५_{बे}=२,००० \end{array}\right\}=९,०००।$$

अब यह मान लीजिये कि पूंजीपति वर्ग I आधे बेशी मूल्य का उपभोग कर लेता है और बाक़ी आधा भाग संचित करता है। उस हालत में $(१,०००_{प}+५००_{बे})$ I अथवा १,५०० को १,५०० $II_{स}$ में परिवर्तित करना होगा। चूंकि $II_{स}$ यहां केवल १,४३० के बराबर है, इसलिए बेशी मूल्य में से ७० जोड़ना आवश्यक होगा। २८५ $II_{बे}$ में से यह राशि घटाने पर २१५ $II_{बे}$ रह जाते हैं। तब हमारे पास :

I. $५,०००_{स}+५००_{बे}$ (जिनका पूंजीकरण होना है) $+१,५००_{(प+बे)}$ पूंजीपतियों और मज़दूरों की उपभोग निधि में होते हैं।

II. $१,४३०_{स}+७०_{बे}$ (जिनका पूंजीकरण होना है) $+२८५_{प}+२१५_{बे}$।

चूंकि यहां $II_{स}$ में ७० $II_{बे}$ सीधे जोड़ दिये गये हैं, इसलिए इस अतिरिक्त स्थिर पूंजी को गतिशील करने के लिए ७०/५, यानी १४ की परिवर्ती पूंजी दरकार होगी। ये १४ भी २१५ $II_{बे}$ में से हासिल किये जायेंगे, जिससे २०१ $II_{बे}$ बच रहेंगे और हमारे पास होंगे :

$$\text{II. } (१,४३०_{स}+७०_{स})+(२८५_{प}+१४_{प})+२०१_{बे}।$$

१,५०० $I_{(प+१/२बे)}$ का १,५०० $II_{स}$ से विनिमय साधारण पुनरुत्पादन प्रक्रिया

है और उसके बारे में अधिक कुछ कहना अनावश्यक है। फिर भी कुछ विशेषताएं बच रहती हैं, जिन पर यहां ध्यान देना चाहिए, जो इस तथ्य से पैदा होती हैं कि संचयशील पुनरुत्पादन में $I_{(प+१/२बे)}$ का प्रतिस्थापन अकेले $II_{स}$ से नहीं, वरन $II_{स}$ तथा $II_{बे}$ के एक अंश के योग द्वारा होता है।

कहना न होगा कि संचय की कल्पना करने के साथ $II_{स}$ की तुलना में $I_{(प+बे)}$ अधिक हो जाता है; वह $II_{स}$ के बराबर नहीं होता, जैसे कि साधारण पुनरुत्पादन में होता है। कारण यह कि एक तो I अपने बेशी उत्पाद के एक अंश का अपनी ही उत्पादक पूंजी में समावेश करता है और उसका ५/६ भाग स्थिर पूंजी में परिवर्तित करता है, इसलिए वह साथ ही साथ इस ५/६ का उपभोग वस्तु II द्वारा प्रतिस्थापन नहीं कर सकता। दूसरे, I को अपने ही बेशी उत्पाद से II के अंतर्गत संचय के वास्ते आवश्यक स्थिर पूंजी के लिए सामग्री जुटानी होती है, जैसे II को I के लिए उस परिवर्ती पूंजी के लिए सामग्री जुटानी पड़ती है, जो स्वयं I द्वारा नियोजित I की बेशी उपज के अंश को अतिरिक्त स्थिर पूंजी के रूप में गतिशील करेगी। हम जानते हैं कि वास्तविक परिवर्ती पूंजी में, अतः अतिरिक्त परिवर्ती पूंजी में भी श्रम शक्ति समाहित होती है। यह पूंजीपति I नहीं है कि जो II से जीवनावश्यक वस्तुओं की पूर्ति ख़रीदता है और उनका स्वयं अपने द्वारा नियोजित अतिरिक्त श्रम शक्ति के लिए संचय करता है, जैसा दास स्वामी को करना पड़ता था। ख़ुद मजदूर II के साथ लेन-देन करते हैं। किंतु इससे यह नहीं हो जाता कि पूंजीपति अपनी अतिरिक्त श्रम शक्ति की उपभोग वस्तुओं को अंततः अपनी अतिरिक्त श्रम शक्ति के उत्पादन और भरण-पोषण के इतने साधन मात्र समझना और इसलिए अपनी परिवर्ती पूंजी का दैहिक रूप समझना बंद कर दे। उसका अपना तात्कालिक कार्य – I के प्रस्तुत प्रसंग में – केवल अतिरिक्त श्रम शक्ति ख़रीदने के लिए आवश्यक नई द्रव्य पूंजी को जमा करते रहना होता है। जैसे ही वह उसका अपनी पूंजी में समावेश कर लेता है, द्रव्य इस श्रम शक्ति के लिए माल II की ख़रीद का साधन बन जाता है, जिसके लिए ये उपभोग वस्तुएं सुलभ होनी चाहिए।

प्रसंगवश पूंजीपति को और उसके अख़बारों को अक्सर उस तरीक़े से असंतोष होता है, जिससे श्रम शक्ति अपना धन ख़र्च करती है और II मालों से असंतोष होता है, जिनके रूप में वह इस धन का सिद्धिकरण करती है। ऐसे मौक़ों पर वह फ़लसफ़ा झाड़ता है, संस्कृति को लेकर बक़वास करता है और परोपकार की बातें बघारता है, यथा वाशिंगटन स्थित ब्रिटिश दूतावास के सचिव श्री ड्रमंड की तरह। उनके अनुसार *The Nation* (एक पत्रिका) में गत अक्तूबर, १८७९ में एक दिलचस्प लेख छपा था, जिसमें और बातों के अलावा ये अंश भी थे: "श्रमिक जनों ने आविष्कारों की प्रगति के साथ संस्कृति में प्रगति नहीं की है और उन पर ऐसी चीज़ें बरसाई जाती रही हैं, जिनका उपयोग करना वे नहीं जानते और इसलिए जिनके लिए वे बाजार नहीं बनाते।" [प्रत्येक पूंजीपति स्वभावतः चाहता है कि मजदूर उसका माल ख़रीदें।] "कोई कारण नहीं कि श्रमिक उतनी ही सुख-सुविधाओं की कामना न करे, जितनी की उसी के बराबर कमाई करनेवाला कोई पादरी, वकील और डाक्टर करता है।" [वकीलों, पादरियों और डाक्टरों के इस वर्ग को सचमुच कई सुख-सुविधाओं की तो कामना मात्र से संतोष करना होता है!] "लेकिन वह ऐसा नहीं करता। यह समस्या बनी रहती है कि उसका बुद्धिसंगत और स्वस्थ तरीक़ों से उपभोक्ता के रूप में उत्थान कैसे किया जाये, और

यह समस्या ग्रासान नहीं है, क्योंकि उसकी ग्राकांक्षा इससे उसके काम के घंटों के घटने के ग्रागे नहीं जाती, क्योंकि लैक्चरबाज उसकी मानसिक ग्रौर नैतिक शक्तियों की उन्नति करके उसकी स्थिति सुधारने का प्रयत्न करने के बजाय उसे इसी के लिए उकसाते हैं।" (Reports of H. M.'s Secretaries of Embassy and Legation on the Manufactures, Commerce, etc. of the Countries in which they reside. London, 1879, p. 404.)

लगता है कि काम के लंबे घंटे ही उन बुद्धिसंगत ग्रौर स्वस्थ तरीक़ों का रहस्य हैं, जो मजदूर की मानसिक ग्रौर नैतिक शक्तियों का विकास करके उसे उन्नति की ग्रोर ले जायेंगे ग्रौर उसे विवेकशील उपभोक्ता बनायेंगे। पूंजीपति के मालों का बुद्धिसंगत उपभोक्ता बनने के लिए सबसे पहले उसे चाहिए कि वह ग्रपने ही पूंजीपति को ग्रपनी श्रम शक्ति का ग्रबुद्धिसंगत ग्रौर ग्रस्वस्थ ढंग से उपभोग करने दे – किंतु लैक्चरबाज उसे रोकते हैं! बुद्धिसंगत उपभोग से पूंजीपति का तात्पर्य क्या है, यह जहां भी वह ग्रपने ही मजदूरों से सीधे व्यापार करने की कृपा करता है, वहां स्पष्ट है, यथा जिंस रूप मजदूरी प्रणाली में, जिसमें मजदूरों को मकान देना भी शामिल होता है, जिससे कि पूंजीपति साथ ही साथ उनके लिए मकान मालिक भी बन जाता है – जो व्यवसाय की ग्रनेक शाखाग्रों में एक शाखा ही है।

वही ड्रमंड, जिनका कोमल हृदय मजदूर वर्ग की उन्नति के लिए पूंजीपतियों के प्रयत्नों पर मुग्ध है, उसी विवरण में ग्रन्य बातों के ग्रलावा लॉवेल एंड लॉरेंस मिल्स के सूती माल उत्पादन के बारे में भी बताते हैं। कारख़ाने में काम करनेवाली लड़कियों के भोजन तथा ग्रावास गृह मिलों की मालिक कंपनी या निगम के होते हैं। इन गृहों की प्रबंधक उसी कंपनी की सेवा में है, जिसने उनके लिए ग्राचार-संहिता निर्दिष्ट की है। रात में १० के बाद किसी लड़की को बाहर रहने की इजाजत नहीं है। ग्रौर इसके बाद एक बेमिसाल चीज ग्राती है – स्पेशल पुलिस इसके लिए गश्त लगाती है कि इन नियमों का उल्लंघन तो नहीं होता। रात में १० के बाद कोई भी लड़की न भीतर ग्रा सकती है ग्रौर न बाहर जा सकती है। कोई भी लड़की कंपनी के ग्रहाते के ग्रलावा ग्रौर कहीं नहीं रह सकती ग्रौर उसमें हर मकान से कंपनी को हर हफ़्ते लगभग १० डालर किराया ग्राता है। ग्रौर ग्रब हमें बुद्धिसंगत उपभोक्ता के उसकी पूरी महिमा के साथ दर्शन होते हैं: "लेकिन चूंकि श्रेष्ठतम श्रमजीवी महिला ग्रावासों में से कई में सदा विद्यमान पियानो होता ही है, इसलिए गाना-बजाना ग्रौर नाच मजदूरिनों का काफ़ी ध्यान खींचते हैं, कम से कम उनमें से उनका तो जरूर ही, जिनके लिए करघों पर १० घंटे के लगातार काम के बाद वास्तविक विश्राम की ग्रपेक्षा नीरसता से मुक्ति पाना ग्रधिक ग्रावश्यक है।" (पृष्ठ ४१२।) किंतु मजदूर को बुद्धिसंगत उपभोक्ता बनाने का मुख्य रहस्य तो ग्रभी प्रकट किया जाने को है। श्री ड्रमंड टर्नर्स फ़ाल्स (कनेक्टीकट रिवर) का छुरी-कांटा कारख़ाना देखने जाते हैं ग्रौर इस उद्यम के कोषाध्यक्ष श्री ग्रोकमैन पहले उन्हें यह बताने के बाद कि ग्रमरीकी छुरी-कांटे ख़ासकर गुणवत्ता में ग्रंग्रेजी माल से बेहतर होते हैं, ग्रागे कहते हैं: "समय ग्रा रहा है कि हम इंगलैंड को क़ीमतों में भी पछाड़ देंगे, गुणवत्ता के लिहाज से हम ग्रब भी ग्रागे हैं, यह तो लोग मानते ही हैं, लेकिन हमें क़ीमतें ग्रौर कम करनी हैं ग्रौर जैसे ही हमें कम क़ीमत पर इस्पात मिलने लगेगा ग्रौर हमारे मजदूर बस में ग्रा जायेंगे, हम यह भी हासिल कर लेंगे।" (पृष्ठ ४२७।) मजदूरी में कटौती ग्रौर लंबा कार्य काल – यही उन बुद्धिसंगत ग्रौर स्वस्थ तरीक़ों का सार है, जो मजदूर की उन्नति करके उसे बुद्धिसंगत उपभोक्ता का गौरव प्रदान करेंगे, जिससे कि संस्कृति ग्रौर ग्राविष्कारों की प्रगति द्वारा "वे ग्रपने पर बरसाई जाती चीजों के लिए बाजार बना सकें"।

फलतः जैसे I को अपने बेशी उत्पाद से II की अतिरिक्त स्थिर पूंजी की पूर्ति करनी पड़ती है, वैसे ही I के लिए II अतिरिक्त परिवर्ती पूंजी की पूर्ति करता है। जहां तक परिवर्ती पूंजी का संबंध है, II अपने लिए और I के लिए अपने कुल उत्पाद के अधिकांश के पुनरुत्पादन द्वारा, अतः विशेषकर बेशी उत्पाद के अधिकांश के आवश्यक उपभोग वस्तुओं के रूप में अपने पुनरुत्पादन द्वारा संचय करता है।

उत्पादन में बढ़ती हुई पूंजी के आधार पर $I_{(प+बे)}$ $II_{स}$ तथा पूंजी के रूप में पुनःसमाविष्ट बेशी उत्पाद के अंश तथा II में उत्पादन के प्रसार के लिए आवश्यक स्थिर पूंजी के अतिरिक्त भाग के योग के बराबर होगा; और इस प्रसार का अल्पतम मान वह है, जिसके बिना वास्तविक संचय, अर्थात स्वयं I में उत्पादन का वास्तविक प्रसार असंभव होगा।

अब अंत में जिस प्रसंग का विवेचन किया गया था, उस पर लौटें, तो उसमें हम यह विशेषता पाते हैं कि $II_{स}$ $I_{(प+१/२बे)}$ से छोटा है, उत्पाद I के उस अंश से छोटा है, जो उपभोग वस्तुओं पर आय के रूप में ख़र्च किया जाता है, जिससे कि १,५०० $I_{(प+बे)}$ का विनिमय करने पर बेशी उत्पाद II के ७० के बराबर अंश का तुरंत सिद्धिकरण हो जाता है। जहां तक $II_{स}$ का संबंध है, जो १,४३० के बराबर है, अन्य परिस्थितियों के यथावत रहने पर उसका प्रतिस्थापन मूल्य के समान परिमाण द्वारा $I_{(प+बे)}$ में से करना होगा, जिससे कि II में साधारण पुनरुत्पादन हो सके और उस सीमा तक उसकी ओर हमारे लिए यहां और अधिक ध्यान देना आवश्यक नहीं है। अतिरिक्त ७० $II_{बे}$ का मामला दूसरा है। I के लिए जो बात केवल उपभोग वस्तुओं द्वारा आय का प्रतिस्थापन है, केवल उपभोग हेतु माल विनिमय है, वह II के लिए उसकी स्थिर पूंजी का माल पूंजी के रूप से उसके दैहिक रूप में पुनःपरिवर्तन मात्र नहीं है, जैसे कि वह साधारण पुनरुत्पादन में है, वरन वह संचय की प्रत्यक्ष प्रक्रिया है, उसके बेशी उत्पाद के एक अंश का उपभोग वस्तुओं के रूप से स्थिर पूंजी के रूप में रूपांतरण है। यदि I द्रव्य रूप में ७० पाउंड (बेशी मूल्य के परिवर्तन हेतु आरक्षित द्रव्य निधि) से ७० $II_{बे}$ ख़रीदता है, और यदि II बदले में ७० $I_{बे}$ नहीं ख़रीदता, वरन ७० पाउंड को द्रव्य पूंजी के रूप में संचित कर लेता है, तो यह द्रव्य पूंजी सचमुच सदैव अतिरिक्त उत्पाद की अभिव्यक्ति होगी (यथार्थतः II के बेशी उत्पाद की, जिसका वह अशेषभाजक अंश है), यद्यपि वह ऐसा उत्पाद नहीं है कि जो उत्पादन में फिर दाख़िल होता हो, किंतु इस हालत में II के यहां द्रव्य का यह संचय साथ ही यह भी व्यक्त करेगा कि उत्पादन साधनों के रूप में ७० $I_{बे}$ अविक्रेय है। I में II के यहां समकालिक पुनरुत्पादन के अप्रसार के अनुरूप आपेक्षिक अत्युत्पादन होगा।

किंतु इसके अलावा जब तक द्रव्य रूप में वे ७०, जो I से आये थे, II द्वारा ७० $I_{बे}$ की ख़रीद के ज़रिये पूर्णतः या अंशतः I के पास लौट नहीं आते, तब तक द्रव्य रूप में ये ७० II के पास अंशतः या पूर्णतः अतिरिक्त आभासी द्रव्य पूंजी के रूप में प्रकट होते हैं। यह बात I तथा II के बीच प्रत्येक विनिमय पर लागू होती है, जब तक कि उनके अपने-अपने मालों के परस्पर प्रतिस्थापन द्वारा द्रव्य का अपने प्रारंभ बिंदु पर प्रत्यावर्तन पूरा नहीं हो जाता। किंतु सामान्य क्रम में द्रव्य यहां यह भूमिका केवल अस्थायी रूप में निबाहता है।

लेकिन उधार पद्धति में, जिसमें यह माना जाता है कि अस्थायी रूप से विमुक्त सारी अतिरिक्त द्रव्य पूंजी तुरंत अतिरिक्त द्रव्य पूंजी की तरह सक्रिय कार्य करने लगती है, इस तरह की केवल अस्थायी रूप में विमुक्त द्रव्य पूंजी, मिसाल के लिए I के नये उद्यमों में काम देने के लिए आकर्षित की जा सकती है, जब कि उसे वहां दूसरे उद्यमों में अटके बेशी उत्पाद का सिद्धिकरण करना होगा। इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि स्थिर पूंजी II में ७० $I_{बे}$ के संयोजन के लिए परिवर्ती पूंजी II में साथ ही १४ का प्रसार होना भी आवश्यक है। इसका मतलब है – जैसे कि $I_{स}$ पूंजी में बेशी उत्पाद $I_{बे}$ के प्रत्यक्ष समावेश में I में भी था – कि II में पुनरुत्पादन प्रक्रिया शुरू हो चुकी है और उसकी प्रवृत्ति आगे और पूंजीकरण की ओर है; दूसरे शब्दों में इसका मतलब है बेशी उत्पाद के आवश्यक निर्वाह साधनों से संरचित अंश का प्रसार।

जैसा कि हम देख चुके हैं, दूसरे उदाहरण में, यदि ५०० $I_{बे}$ का पूंजीकरण अभीष्ट है, तो ९,००० का उत्पाद पुनरुत्पादन हेतु निम्नलिखित ढंग से वितरित करना होगा। ऐसा करते हुए हम केवल मालों को ध्यान में रखते हैं और द्रव्य परिचलन को नजरअंदाज करते हैं।

I. $५,०००_{स} + ५००_{बे}$ (जिसका पूंजीकरण होना है) $+ १,५००_{(प+बे)}$ उपभोग निधि बराबर है माल रूप ७,००० के।

II. $१,५००_{स} + २९९_{प} + २०१_{बे}$ बराबर है माल रूप २,००० के। कुल योग माल रूप ९,०००।

पूंजीकरण निम्नलिखित ढंग से होता है:

I में जिन $५००_{बे}$ का पूंजीकरण हो रहा है, वे दो हिस्सों – ५/६ अथवा $४१७_{स}$ तथा १/६ अथवा $८३_{प}$ – में विभाजित हो जाते हैं। $८३_{प}$ उतनी ही राशि $II_{बे}$ से निकालते हैं, जो स्थिर पूंजी के तत्व ख़रीदता है और उन्हें $II_{स}$ में जोड़ देता है। $II_{स}$ में ८३ की वृद्धि का मतलब है $II_{प}$ में ८३ के पंचमांश, यानी १७ की वृद्धि। इसलिए इस विनिमय के बाद स्थिति यह होती है:

I. $(५,०००_{स} + ४१७_{बे})_{स} + (१,०००_{प} + ८३_{बे})_{प} = ५,४१७_{स} + १,०८३_{प} = ६,५००$।

II. $(१,५००_{स} + ८३_{बे})_{स} + (२९९_{प} + १७_{बे})_{प} = १,५८३_{स} + ३१६_{प} = १,८९९$।

योग ८,३९९।

I के यहां पूंजी ६,००० से बढ़कर ६,५०० हो गई है, यानी १/१२ गुना बढ़ गई है। II के यहां पूंजी १,७१५ से बढ़कर १,८९९ हो गई है या १/९ से कुछ कम बढ़ी है।

इस आधार पर दूसरे वर्ष में पुनरुत्पादन उस वर्ष के अंत में पूंजी को यहां तक पहुंचा देता है:

I. $(५,४१७_{स} + ४५२_{बे})_{स} + (१,०८३_{प} + ९०_{बे})_{प} = ५,८६९_{स} + १,१७३_{प} = ७,०४२$।

II. $(१,५८३_{स} + ४२_{बे} + ९०_{बे})_{स} + (३१६_{प} + ८_{बे} + १८_{बे})_{प} = १,७१५_{स} + ३७२_{प} = २,०५७$।

तीसरे साल के अंत में यह उत्पाद होगा :

$$\text{I. } ५,८६६_{स} + १,१७३_{प} + १,१७३_{बे}।$$

$$\text{II. } १,७१५_{स} + ३४२_{प} + ३४२_{बे}।$$

यदि I पहले की तरह ही अपना आधा बेशी मूल्य संचित करे, तो पता चलता है कि $I_{(प+१/२बे)}$ से $१,१७३_{प} + ५८७_{(१/२ बे)}$ की प्राप्ति होती है, जो १,७६० के बराबर, समग्र १,७१५ $II_{स}$ से बड़ी राशि है, जिसमें ४५ अधिक हैं। इसे उत्पादन साधनों की समान राशि $II_{स}$ को अंतरित करके पुनःसंतुलित करना होगा, जिससे उसमें ४५ की वृद्धि होती है, जिससे उसमें पंचमांश, या ९ जोड़ना आवश्यक हो जाता है। इसके अलावा पूंजीकृत ५८७ $I_{बे}$ ५/६ और १/६ भागों में, अर्थात $४८९_{स}$ तथा $९८_{प}$ में विभाजित होते हैं। II में ९८ का मतलब है स्थिर पूंजी में ९८ का नवीन परिवर्धन और इसका मतलब है परिवर्ती पूंजी II में पंचमांश अथवा २० की वृद्धि। अब स्थिति यह होती है :

$$\text{I. } (५,८६६_{स} + ४८९_{बे})_{स} + (१,१७३_{प} + ९८_{बे})_{प} = ६,३५८_{स} + १,२७१_{प} = ७,६२९।$$

$$\text{II. } (१,७१५_{स} + ४५_{बे} + ९८_{बे})_{स} + (३४२_{प} + ९_{बे} + २०_{बे})_{प} = १,८५८_{स} + ३७१_{प} = २,२२९।$$

कुल पूंजी = ९,८५८।

बढ़ते हुए पुनरुत्पादन के ३ वर्षों में I की कुल पूंजी ६,००० से बढ़कर ७,६२९ और II की १,७१५ से बढ़कर २,२२९ हो गई है; समुच्चित सामाजिक पूंजी ७,७१५ से बढ़कर ९,८५८ हो गई है।

३) संचय में $II_{स}$ का प्रतिस्थापन

इस प्रकार $II_{स}$ से $I_{(प+बे)}$ के विनिमय में हमारे सामने विभिन्न प्रसंग आते हैं।

साधारण पुनरुत्पादन में दोनों को बराबर होना और एक दूसरे को प्रतिस्थापित करना चाहिए, क्योंकि साधारण पुनरुत्पादन अन्यथा व्यवधान के बिना चल नहीं सकता, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं।

संचय में सबसे अधिक विचारणीय संचय की दर है। पूर्व प्रसंगों में हम यह मानकर चले थे कि I में संचय की दर १/२ बे I के बराबर है और वह साल दर साल स्थिर बनी रहती है। हमने केवल उस अनुपात में परिवर्तन किया था, जिसमें यह संचित पूंजी परिवर्ती पूंजी तथा स्थिर पूंजी में विभाजित थी। तब हमारे सामने तीन प्रसंग थे :

१) $I_{(प+१/२बे)}$ $II_{स}$ के बराबर है, अतः वह $I_{(प+बे)}$ से छोटा है। ऐसा हमेशा ही होगा, वरना I संचय नहीं कर सकता।

२) $I_{(प+१/२ बे)}$ $II_{स}$ से बड़ा है। इस प्रसंग में $II_{स}$ में $II_{बे}$ का तदनुरूप अंश जोड़कर प्रतिस्थापन किया जाता है, जिससे कि यह राशि $I_{(प+१/२बे)}$ के बराबर हो जाती है। यहां II के लिए प्रतिस्थापन उसकी स्थिर पूंजी का साधारण पुनरुत्पादन नहीं

है, वरन संचय है, उसकी स्थिर पूंजी का उसके बेशी उत्पाद के उस अंश द्वारा परिवर्धन है, जिसका वह I के उत्पादन साधनों से विनिमय करता है। इस परिवर्धन में साथ ही उसके अपने बेशी उत्पाद में से परिवर्ती पूंजी II में तदनुरूप अंश का जुड़ना भी निहित है।

३) $I_{(प+१/२बे)}$ $II_स$ से छोटा है। इस प्रसंग में II विनिमय द्वारा अपनी स्थिर पूंजी का पूरी तरह पुनरुत्पादन नहीं करता और उसे I से ख़रीदारी करके घाटा पूरा करना होता है। किंतु इसके लिए परिवर्ती पूंजी II का और अधिक संचय अनिवार्य नहीं है, क्योंकि उसकी स्थिर पूंजी केवल इसी क्रिया द्वारा पूर्णतः पुनरुत्पादित होती है। दूसरी ओर I के पूंजीपतियों का जो हिस्सा केवल अतिरिक्त द्रव्य पूंजी संचित करता है, वह इस लेन-देन के ज़रिये आंशिक रूप में यह संचय पहले ही कर चुका होता है।

साधारण पुनरुत्पादन की यह आधारिका कि $I_{(प+बे)}$ $II_स$ के बराबर है, पूंजीवादी उत्पादन के लिए असंगत ही नहीं है, यद्यपि वह इस संभावना को अपवर्जित नहीं करती कि १०-११ साल के उद्योग चक्र में किसी साल पिछले वर्ष की तुलना में कुल पैदावार कम होगी, जिससे कि उस पिछले वर्ष की तुलना में साधारण पुनरुत्पादन तक भी न होगा। इसके अलावा जनसंख्या की नैसर्गिक वार्षिक वृद्धि के दृष्टिगत साधारण पुनरुत्पादन केवल इस सीमा तक हो सकता है कि कुल बेशी मूल्य के प्रतीक १,५०० में अनुत्पादक सेवकों की तदनुरूप अधिक संख्या हिस्सा बंटायेगी। किंतु ऐसी परिस्थितियों में पूंजी का संचय, वास्तविक पूंजीवादी उत्पादन असंभव होगा। अतः पूंजीवादी संचय की वास्तविकता $II_स$ के $I_{(प+बे)}$ के बराबर होने की संभावना को अपवर्जित कर देती है। तथापि पूंजीवादी संचय के चलते भी यह संभव है कि उत्पादन की पूर्व अवधियों की शृंखलाओं में संचय प्रक्रियाओं ने जो रास्ता अपनाया था, उसके फलस्वरूप $II_स$ न केवल $I_{(प+बे)}$ के बराबर हो जाये, वरन उससे बड़ा भी हो जाये। इसका मतलब II में अत्युत्पादन होगा और उसका जबरदस्त सहसापात के अलावा और किसी तरह समायोजन न किया जा सकेगा, जिसके परिणामस्वरूप II की कुछ पूंजी का I को अंतरण हो जायेगा।

और न $I_{(प+बे)}$ का $II_स$ से संबंध तब ही बदल जाता है कि अगर स्थिर पूंजी II का एक अंश अपने को पुनरुत्पादित करता है, जैसा कि उदाहरणतः खेती में घर पर उगाये हुए बीजों के उपयोग में होता है। I तथा II के बीच विनिमय में $II_स$ के इस अंश को वैसे ही ध्यान में नहीं रखना होता है, जैसे $I_स$ को। न इससे स्थिति में कोई अंतर आता है कि अगर II के उत्पाद का एक अंश उत्पादन साधनों के रूप में I में प्रवेश करने योग्य हो। I द्वारा पूरित उत्पादन साधनों के एक अंश से इसका प्रतिकार हो जाता है और यदि हम सामाजिक उत्पादन के दोनों बड़े क्षेत्रों के बीच विनिमय – उत्पादन साधनों के उत्पादकों और उपभोग वस्तुओं के उत्पादकों के बीच विनिमय – की विशुद्ध और अनावृत्त रूप में परीक्षा करना चाहते हैं, तो इस अंश की प्रारंभ में ही दोनों ओर कटौती करनी होगी।

अतः पूंजीवादी उत्पादन के अंतर्गत $I_{(प+बे)}$ $II_स$ के बराबर नहीं हो सकता; दूसरे शब्दों में परस्पर विनिमय में दोनों संतुलित नहीं हो सकते। दूसरी ओर, यदि $I_{बे/क}$ को $I_{बे}$ का वह अंश मान लिया जाये, जिसे पूंजीपति I आय के रूप में ख़र्च करते हैं, तो

$II_{स}$ की तुलना में $I_{(प+बे/क)}$ उससे बड़ा या छोटा या उसके बराबर हो सकता है। किंतु $II_{(स+बे)}$ की अपेक्षा $I_{(प+बे/क)}$ सदैव उतना छोटा होगा, जितना $II_{बे}$ का वह अंश कि जो हर हालत में पूंजीपति वर्ग II द्वारा उपभुक्त होता है।

यहां ध्यान में रखना चाहिए कि संचय के इस विवेचन में स्थिर पूंजी के मूल्य को, जहां तक वह पूंजी उस माल पूंजी के मूल्य का एक अंश है, जिसका उत्पादन उसकी सहायता से हुआ है, यथातथ्यतापूर्वक प्रस्तुत नहीं किया गया है। नवसंचित स्थिर पूंजी का स्थायी अंश इन स्थायी तत्वों की भिन्न-भिन्न प्रकृति के अनुसार माल पूंजी में केवल धीरे-धीरे और नियत समय पर ही प्रवेश करता है। इसलिए जब भी कच्ची सामग्री, अर्धतैयार माल, वग़ैरह माल उत्पादन में विशाल मात्राओं में शामिल होते हैं, तब माल पूंजी में अधिकांशतः परिवर्ती पूंजी के प्रचल स्थिर घटकों के प्रतिस्थापन समाहित होते हैं। (फिर भी प्रचल घटकों के विशिष्ट आवर्त के कारण सारी बात को प्रस्तुत करने के इस तरीक़े को अपनाया जा सकता है। तब यह माना जाता है कि प्रचल अंश उसे अंतरित किये स्थायी पूंजी के मूल्यांश के साथ वर्ष के दौरान इतनी अधिक बार आवर्तित होता है कि पूरित मालों की समुच्चित राशि मूल्य में वार्षिक उत्पादन में दाख़िल होनेवाली समग्र पूंजी के मूल्य के बराबर होती है।) लेकिन जहां भी मशीनी उद्योग के लिए केवल सहायक सामग्री का उपयोग किया जाता है और कच्चे माल का उपयोग नहीं होता, वहां श्रम तत्व को, जो प के बराबर है, माल पूंजी में उसके वृहत्तर घटक के रूप में ही पुनः प्रकट होना होगा। जहां लाभ की दर के परिकलन में बेशी मूल्य का हिसाब कुल पूंजी के आधार पर लगाया जाता है, चाहे स्थायी घटक नियतकालिक रूप में उत्पाद को अधिक मूल्य अंतरित करें, चाहे कम, वहां नियतकालिक रूप में सृजित किसी भी माल पूंजी के मूल्य के परिकलन में स्थिर पूंजी का स्थायी अंश केवल इस सीमा तक शामिल किया जाता है कि औसत रूप में वह छीज के कारण उत्पाद को मूल्य प्रदान करता है।

४. पूरक टिप्पणी

II के लिए द्रव्य का मूल स्रोत स्वर्ण उद्योग I का प+बे है, जिसका $II_{स}$ के एक अंश से विनिमय होता है। स्वर्ण उत्पादक का प+बे केवल इस सीमा तक II में प्रवेश नहीं करता कि वह बेशी मूल्य संचित करता है अथवा उसे उत्पादन साधन I में परिवर्तित करता है, यानी इस सीमा तक कि वह अपने उत्पादन का प्रसार करता है। दूसरी ओर, चूंकि स्वयं स्वर्ण उत्पादक के यहां द्रव्य संचय अंततोगत्वा विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन की तरफ़ ले जाता है, इसलिए स्वर्ण उत्पादन के बेशी मूल्य का जो भाग आय के रूप में ख़र्च नहीं किया जाता, वह II के यहां स्वर्ण उत्पादक की अतिरिक्त परिवर्ती पूंजी के रूप में पहुंच जाता है, और यहां नवीन अपसंचयों के निर्माण को बढ़ावा देता है अथवा I को प्रत्यक्ष विक्रय किये बिना उससे क्रय करने के लिए नये साधन जुटाता है। स्वर्ण उत्पादन के इस $I_{(प+बे)}$ से प्राप्त द्रव्य में से सोने का वह अंश घटा देना चाहिए, जिसकी कच्चे माल वग़ैरह के रूप में, संक्षेप में अपनी स्थिर पूंजी के प्रतिस्थापन हेतु एक तत्व के रूप में कुछ II उत्पादन शाखाओं को ज़रूरत होती है। अपसंचयों के प्रारंभिक निर्माण का भावी विस्तारित पुनरुत्पादन के लिए एक

तत्व I तथा II के बीच विनिमय में विद्यमान रहता है: I के लिए केवल तब, जब $I_{बे}$ का एक अंश II के हाथ समतुल्य क्रय के बिना एकपक्षीय ढंग से बेचा जाये और वहां वह अतिरिक्त स्थिर पूंजी II का काम करे; II के लिए तब, जब अतिरिक्त परिवर्ती पूंजी के सिलसिले में I की वही स्थिति होती है और इसके अलावा, जब I बेशी मूल्य का जो अंश आय के रूप में ख़र्च करे, उसकी क्षतिपूर्ति $II_{स}$ द्वारा न हो, अतः $II_{बे}$ का एक अंश उसके ज़रिये ख़रीदा जाये और इस तरह द्रव्य में तबदील किया जाये। यदि $I_{(प+बे/क)}$ $II_{स}$ से बड़ा हो, तो $II_{स}$ के लिए आवश्यक नहीं कि $II_{बे}$ में से I ने जितने अंश का उपभोग किया है, उतने अंश का उसके साधारण पुनरुत्पादन के लिए मालों के रूप में प्रतिस्थापन किया जाये। सवाल यह है कि स्वयं पूंजीपति II के परस्पर विनिमय के क्षेत्र में किस हद तक अपसंचय हो सकता है, जहां इनके बीच का विनिमय $II_{बे}$ का परस्पर विनिमय ही हो सकता है। हम जानते हैं कि II के यहां प्रत्यक्ष संचय $II_{बे}$ के एक अंश के परिवर्ती पूंजी में सीधे परिवर्तन से होता है (जैसे I के यहां $I_{बे}$ का एक अंश स्थिर पूंजी में सीधे बदल जाता है)। II की विभिन्न व्यवसाय शाखाओं के अंतर्गत और वैयक्तिक पूंजीपतियों के लिए प्रत्येक व्यवसाय शाखा के अंतर्गत संचय के विभिन्न आयु संवर्गों में मामले की I की तरह की mutatis mutandis व्याख्या की जा सकती है। कुछ अभी अपसंचयन की मंजिल में हैं, और वे क्रय किये बिना बिक्री ही करते हैं; अन्य पुनरुत्पादन के वास्तविक प्रसार पर पहुंच रहे हैं और वे बेचे बिना ख़रीदारी ही करते हैं। बेशक अतिरिक्त परिवर्ती द्रव्य पूंजी पहले अतिरिक्त श्रम शक्ति में निवेशित की जाती है, किंतु इससे अतिरिक्त मज़दूरों के उपभोग में आनेवाली अतिरिक्त उपभोग वस्तुओं के अपसंचयकर्ताओं से निर्वाह साधन ख़रीद लिये जाते हैं। इनके पास से उनके अपसंचय निर्माण के pro rata द्रव्य अपने प्रस्थान बिंदु पर लौटकर नहीं आता। ये लोग उसे जमा कर लेते हैं।

नाम-निर्देशिका

Index of Authorities

Index of Authorities
Quoted in *Capital*, Volume II

I Authors

from Banking. London, 1844. — ४१६-४१७

TURGOT, A. R. J. *Réflexions sur la formation et la distribution des richesses.* (1766). In: Oeuvres, éd Daire, v. I. Paris, 1884. — १७५, ३०४, ३१£

TYLOR, E. B. *Researches into the Early History of Mankind and the Development of Civilisation.* London, John Murray, 1865. — ३८४

W

WAYLAND, Francis. *The Elements of Political Economy.* Boston, 1843. — २०३

WILLIAMS, R. P. *On the Maintenance and Renewal of Permanent Way.* Minutes of proceedings of the Institution of civil engineers; with abstracts of the Discussions. V. XXV, London, 1866. – १५८, १६६

II. ANONYMOUS

Manava Dharma Sastra, or the Institutes of Manu according to the gloss of Kulluka, comprising the Indian system of duties, religious and civil. Verbally translated from the original, with a preface by Sir William Jones, and collated with the Sanskrit text, by Graves Chanmey Haughton, esq. M. A., F. R. S., etc., etc.; Prof. of Hindu literature in the East India College. 3. ed. Madras, 1863. – २१३

The Source and Remedy of the National Difficulties, Deduced from Principles of Political Economy, in a letter to Lord John Russell. London, 1821. — २१

III. NEWSPAPERS AND PERIODICALS

Economist. London, May 8, 1847.—१२£

— June 16, 1866. — २२७
— June 30, 1866. — २२७
— July 7, 1866. — २२७

Maney Market Review. 1867. — १६४

Neue Rheinische Zeitung, Organ der Demokratie. Köln, 1848/49. — १७

Zeitschrift f. d. gesamte Staatswissenschaft. Tübingen, 1879. — १६

IV. PARLAMENTARY REPORTS AND OTHER OFFICIAL PUBLICATIONS

East India (Madras and Orissa Famine). Return to an Address of the Honourable The House of Commons. July 4, 1867. — २१३

East India (Bengal and Orissa Famine). Papers and Correspondence relative to the Famine in Bengal and Orissa, including the Report of the Famine Commission and the Minutes of the Liėutenant Governor of Bengal and the Governor General of India. May 31, 1867. — १३३

East India (Bengal and Orissa Famine). Papers, relating to the Famine in Behar, including Mr. F. R. Cookerell's Report. Part III. May 31, 1867. — १३३

Reports by H. M. Secretaries of Embassy and Legation on the Manufactures, Commerce, etc., of the countries in which they reside. London. No. 8 (1865). — २१७

No. 14 (1879). — ४१२, ४५१, ४५२

Report from the Select Committee on Bank Acts; together with the Proceedings of the Committee, Minutes of Evidence, Appendix and Index. Part I. Report and Evidence. July 30, 1857. — २११

Royal Commission on Railways. Minutes of Evidence taken before the Commissioners, London, 1867. — १५७, १६१, १६५, २२६

विषय-निर्देशिका

ए

औ

क

न

र

स

ह

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन को इस पुस्तक के अनुवाद और डिज़ाइन के सम्बन्ध में आपकी राय जानकर और आपके अन्य सुझाव प्राप्त कर बड़ी प्रसन्नता होगी। अपने सुझाव हमें इस पते पर भेजें :

प्रगति प्रकाशन,

१७, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।